एमएएचडी-07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

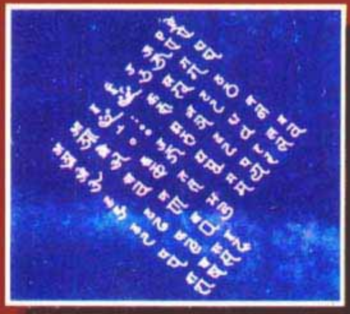

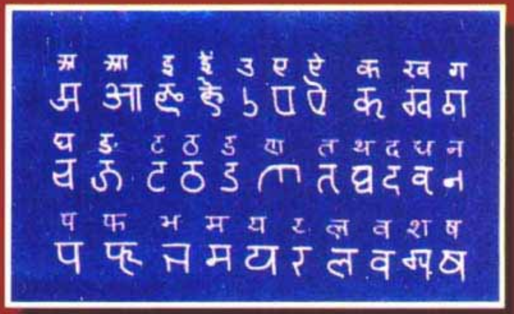

पदे न वर्षाः विद्यन्ते, वर्णेव्यवयवाः च न
वाक्यात् पदानाम् अत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन्

भाषा विज्ञान

एमएएचडी–07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भाषा विज्ञान

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक

प्रो. (डॉ.) चन्द्रकला पाण्डेय
हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

समन्वयक

डॉ. मीता शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) सुदेश बत्रा**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **(डॉ.) कुमार कृष्ण**
  अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  हिमांचल विश्वविद्यालय, शिमला
- **प्रो. (डॉ.) नन्दलाल कल्ला**
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
  जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
- **डॉ. नन्दकिशोर आचार्य**
  वरिष्ठ आलोचक व साहित्यकार, बीकानेर
- **प्रो. (डॉ.) जवरीमल पारख**
  अध्यक्ष, मानविकी विद्यापीठ
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **प्रो. (डॉ.) रंजना बेन अरगडे**
  अहमदाबाद विश्वविद्यालय, गुजरात
- **डॉ. हेतु भारद्वाज**
  पूर्व प्राचार्य,
  पारीक महाविद्यालय जयपुर

संपादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक

प्रो. (डॉ.) चन्द्रकला पाण्डेय
हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

इकाई-लेखक	इकाई सं
डॉ. कमलेश त्रिवेदी एसोसिएट प्रोफेसर सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभनगर ,गुजरात	1,6
प्रो.(डॉ.) गीता नायक हिन्दी विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	2, 23
डॉ. रमेश रावत हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी अलीगढ़, उत्तर प्रदेश	3
डॉ. मीता शर्मा सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	4,7
डॉ. सुनील कुमार द्विवेदी प्रवक्ता,हिन्दी विभाग उत्तर बंग विश्वविद्यालय, सिलीगुड़ी,दार्जलिंग	8,9
प्रो.(डॉ.) राजमणि शर्मा भूतपूर्व प्राचार्य, काशी हिन्दी विश्वविद्यालय वाराणसी	10,15,16,17,18
प्रो. (डॉ.) चन्द्रकला पाण्डेय हिन्दी विभाग कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता	5,11,20,21 12
प्रो. (डॉ.) शैल पाण्डेय हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश	13,19
डॉ. रेशमी पांडा मुखर्जी प्रवक्ता, गोखले मेमोरियल गर्ल्स कॉलेज कलकत्ता	14,22
डॉ. अरुण होता हिन्दी विभाग बारासात स्टेट यूनिवर्सिटी, कलकत्ता	24
डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डे रीडर, हिन्दी विभाग नार्थ इस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग (मेघालय)	24
डॉ. श्रुति रीडर, हिन्दी विभाग नार्थ इस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग (मेघालय)	25

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच कुलपति **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा**	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया** निदेशक **संकाय विभाग**	**योगेन्द्र गोयल** प्रभारी **पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - फरवरी 2012 ISBN No.-13/978-81-8496-105-8

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

एमएएचडी-07

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भाषा विज्ञान

खण्ड सं.	इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1		**भाषा और भाषा विज्ञान : एक परिचय**	
	1	भाषा परिभाषा और अभिलक्षण	14–33
	2	भाषा का उद्‌गम और विकास	34–59
	3	भाषा संरचना और भाषिक कार्य	60–79
	4	भाषा विज्ञान परिभाषा, क्षेत्र और अध्ययन की पद्धतियां	80–99
	5	भाषा विज्ञान और अन्य सामाजिक विज्ञान	100–114
	6	भाषा विज्ञान के अध्ययन की भारतीय परम्परा	115–135
	7	भाषा विज्ञान के अध्ययन की पाश्चात्य परम्परा	136–150
2		**भाषा और भाषिक संरचना**	
	8	ध्वनि संरचना	151–169
	9	ध्वनि प्रक्रिया	170–187
	10	रूप संरचना : रूप की अवधारणा	188–203
	11	वाक्य संरचना	204–224
	12	अर्थ संरचना	225–243
	13	लिपि का उद्भव एवं विकास और नागरी लिपि	244–265
	14	हिन्दी की शब्द सम्पदा	266–286
3		**भाषा परिवार और हिन्दी**	
	15	विश्व के प्रमुख भाषा परिवार	287–308
	16	भारोपीय भाषा परिवार	309–325
	17	प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं	326–351
	18	आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय	352–368
	19	हिन्दी का उद्भव एवं विकास और नागरी लिपि	369–390
4		**हिन्दी और उसके विभिन्न**	
	20	हिन्दी के विभिन्न रूप और उनके प्रकार्य	391–409
	21	हिन्दी की संवैधानिक स्थिति	410–428
	22	अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान	429–450
	23	भाषा शिक्षण और हिन्दी	451–476
	24	शैली विज्ञान : उद्भव एवं विकास	477–491
	25	शैली विज्ञान-प्रतिमान एवं प्रक्रिया, क्षेत्र और अन्य अनुशासनों से सम्बन्ध	492–515

पाठ्यक्रम - परिचय

साहित्य भाषा की अमूल्य संपत्ति है । भाषा ने अपने ऐतिहासिक विकास में जो कुछ अर्जित किया है वह भाषा के साहित्य में ही सुरक्षित रहता है । इस भाषा के विधिवत ज्ञान के लिए भाषा विज्ञान का अध्ययन जरूरी है । भाषा विज्ञान समकालीन, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक अध्ययन के जरिए भाषा के उद्भव-विकास, व्युत्पत्ति गठन, प्रकृति एवं प्रवृत्ति का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए भाषिक अध्ययन की सैद्धांतिकी भी निर्मित तथा निर्धारित करता है । साहित्य और भाषा विज्ञान के मध्य उपकार्य और उपकारक का संबंध है । यह दोनों परस्पर सहयोगी हैं । भाषा विज्ञान से अनभिज्ञ साहित्य शिक्षक की स्थिति उतनी ही दयनीय मानी जा सकती है जितनी शरीर विज्ञान से अनभिज्ञ चिकित्सक की । भाषा के सम्यक् ज्ञान बिना साहित्य का अध्ययन एकांगी बन कर रह जाता है । साहित्य के हर अध्येता के लिए भाषा का ज्ञान और भाषा के ज्ञान के लिए भाषा विज्ञान का ज्ञान अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य है । अनिवार्यता को दृष्टि में रख एम.ए. हिन्दी (उत्तरार्द्ध) के पाठ्यक्रम के तृतीय प्रश्न पत्र को 'भाषा विज्ञान' शीर्षक से अनिवार्य पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है ।

यह पूरा पाठ्यक्रम चार खंडों में विभाजित किया गया है जिसमें भाषा विकास की परंपरा और अध्ययन के आयामों को अविच्छिन्न रूप में रखा गया है । नीचे चारों खंडों का परिचय दिया जा रहा है ।

खंड- 1

यह खंड 'भाषा और भाषा विज्ञान एक परिचय' शीर्षक से लिखा गया है । इसमे कुल सात इकाइयाँ हैं । भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण, भाषा का उद्भव एवं विकास, भाषा संरचना और भाषिक ग्रकार्य, भाषा विज्ञान की परिभाषा और अध्ययन क्षेत्र, भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ एवं इसका अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध और भाषा विज्ञान के अध्ययन की पाश्चात्य एवं भारतीय परंपरा को इस खंड में सम्मिलित कर उस पर अध्ययन सामग्री तैयार की गई है । इस खंड में यह स्पष्ट किया गया है कि भाषा विज्ञान जैसा व्यापक विषय भाषाओं के अध्ययन में किस दृष्टि को अपनाता है । भाषा विज्ञान के अध्ययन की भारतीय और पाश्चात्य परंपराओं को तुलनात्मक प्रविधि से प्रस्तुत करते हुए दिखाया गया है कि आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रतिष्ठित होने के पूर्व ही भारत में भाषा चिंतन की एक समृद्ध परंपरा थी । संस्कृत के भाषा चिंतकों ने स्तरीय व्याकरण ही नहीं लिखा अपितु अर्थ की सत्ता आदि के बारे में भी तात्विक विश्लेषण किया । इस क्षेत्र में किया गया उनका दार्शनिक चिंतन और विश्लेषण पद्धति प्रकाश स्तम्भ की तरह आज भी पथ निर्देश कर रहे हैं । भाषाओं के मध्य समान तत्वों का दर्शन करते हुए और महान रचनाओं को पढ़ते हुए विद्वानों की रूचि और जिज्ञासा बढ़ी तथा उन्होंने भाषाओं के मध्य सम्पर्क सूत्र तलाशना आरंभ किया । संस्कृत, जर्मन, लेटिन, ग्रीक आदि भाषाओं के प्रति विशेष दिलचस्पी ने ही विद्वानों को भाषाओं पर तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रेरित किया और तुलनात्मक भाषा विज्ञान की नींव रखी गई । इसी प्रकार भाषा में बदलावों की खोज करते हुए ऐतिहासिक भाषा विइप्तन और अन्य सामाजिक विद्वानों का पारस्परिक संबंध भी दिखाया गया है ।

खंड-2

यह खंड 'भाषा और भाषिक संरचनाएं' शीर्षक से लिखा गया है । इस खंड में कुल सात इकाइयाँ हैं । जिनमें ध्वनि संरचना के अंतर्गत ध्वनि के आयामों, क् गींकरपा, ध्वनि नियम, ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं एवं प्रक्रिया, स्वनों का वर्गीकरण, स्वन गुण, स्वनिम संरचना का स्वरूप, स्वनिम वितरण एवं विश्लेषण पर विचार किया गया है । रूप संरचना के अंतर्गत रूप की अवधारणा, रूपिक एवं सरूप की परिभाषा, रूपिम के भेद, प्रकार्य तथा रूप परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं पर अध्ययन सामग्री तैयार की गई है । वाक्य संरचना के अंतर्गत वाक्य ही अवधारणा, उसका वर्गीकरण, वाक्य विश्लेषण, गहन और बादय संरचना विचारणीय रहे हैं ।

अर्थ संरचना में अर्थ की अवधारणा, अर्थ परिवर्तन के कारणों तथा दिशाओं को विश्लेषित किया गया है । इस खंड का वैशिष्ट्य है भाषा विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों के जरिए ध्वनि संरचना, पद संरचना, अर्थ संरचना, एवं वाक्य संरचना के नानाविध पहलुओं का सूक्ष्म और सहज विश्लेषण । हिन्दी की ध्वनियों के साथ अर्थ भेदक ध्वनियों (स्वनिमों) का औच्चारणिक परिवेश, स्वनिम वितरण, स्वनिम विश्लेषण का विवेचन किया गया है । इसी के साथ हिन्दी के रूप, पद तथा शब्द एवं पदों से संरचित 'पदबंध का विश्लेशण किया गया है । वाक्य विज्ञान भाषा का मुख्य और महत्वपूर्ण पहलू है जो विस्तृत के साथ जटिल भी है इसे किंचित अधिक श्रम से सहज संप्रेषणीय बनाकर प्रस्तुत किया गया है ।

अर्थ विज्ञान में व्याकरण ग्रंथों से इतर पर्यायता विलोमता आदि का भी अध्ययन किया गया है । इस खंड की अंतिम दो इकाइयों में लिपि के उद्भव तथा विकास, संसार की कुछ प्रमुख लिपियों, नागरी लिपि के गुण दोष मानकीकरण तथा वैज्ञानिकता पर विस्तृत विचार किया गया है । हिन्दी में आगत शब्दों को समेकित करते हुए हिन्दी की शब्द संपदा शीर्षक इकाई लिखी गयी है जिसमें विविध स्रोतों से आए हिन्दी में घुलमिल हमारे अपने शब्दों में शामिल होकर शब्द संसाधन को विपुल रूप में समृद्धि देने वाले तत्सम, तद्भव देशी, विदेशी तथा ध्वन्यात्मक आदि शब्दों का विश्लेषण है ।

खंड-3

इस इकाई की रचना 'विभिन्न भाषा परिवार और हिन्दी शीर्षक से की गई है । खंड 3 में कुल पांच इकाइयां हैं विश्व के प्रमुख भाषा परिवारों के अंतर्गत भारोपीय परिवारों का विशेष परिचय दिया गया है । प्राचीन एवं मध्यकालीन भाषाओं वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में तात्विक अंतर, वैयाकरणिक वैशिष्ट्य, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की ध्वनि एवं रूप संरचनागत विशेषताएं आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के सामान्य परिचय के साथ हिन्दी के उद्भव और विकास उसकी उपभाषाओं पश्चिमी एवं पूर्वी का विस्तृत विवेचन किया गया है । भाषिक विकास के नैरन्तर्य को, उसके अविच्छिन्न क्रम को अत्यंत सहजता एवं संप्रेषणीयता के साथ पठनीय और अध्ययनयोग्य बनाया गया है । पाठ्यक्रम के इस खंड के निर्माण में हमारा लक्ष्य विश्व के प्रमुख भाषा परिवारों से आपका परिचय कराते हुए प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से उनका संबंध जोड़कर समझाना तथा प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से मध्यकालीन और उनसे आधुनिक

भारतीय आर्यभाषाओं के विकास के अद्‍य सिलसिले को हृदयंगम कराना रहा है । हिन्दी भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा तीनों का महत् दायित्व निभाती है । ऐसी विशिष्ट भाषा के उद्भव और विकास की कहानी उसकी उपभाषाओं और बोलियों के कारण प्राप्त समृद्धि के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की गई है ।

खंड-4

यह खंड 'हिन्दी और उसके विभिन्न कार्य' शीर्षक से लिखा गया है । यह अंतिम खंड है और कुछ खासियतें भी समटे हुए है । हिन्दी पहले केवल. साहित्य की भाषा थी हिन्तु आज बहुरूपी बन चुकी है । अब वह प्रयोजनमूलक बन विविध वाङ्मयों और ज्ञान विज्ञान को अपनी शब्दावली में अभिव्यक्त करने में सक्षम बनती जा रही है । रेशीय' के साथ उसका एक अन्तरदेशीय रूप भी उभर चुका हैं । हमारे संप्रेषण तंत्र में हिन्दी का प्रचार प्रयोग विकास पथ पर बढ़ता जा रहा है । इस खंड की छ: इकाइयों में से दो में हिन्दी के विविध रूपों, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, माध्यम एवं संचार भाषा के परिचय के साथ हिन्दी की संवैधानिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए भारत सरकार की राजभाषा नीति को समझाया गया है । शेष चार इंकाइयों में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का सामान्य परिचय एवं उसके प्रमुख प्रकारों पर सविस्तार विचार किया गया है । इनमे भाषा शिक्षण और हिन्दी तथा शैली विज्ञान की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके प्रतिमान एवं प्रक्रिया तथा अन्य अनुशासनों से शैली विज्ञान के संबंध को स्पष्ट किया गया है । भाषा शिक्षण, अनुवाद कोश कला और शैली विज्ञान का अध्ययन आपके लिए अत्यंत उपयोगी होगा । शैली विज्ञान का ज्ञान भाषा के बोधात्मक, अभिधात्मक ओर सौंदर्यपरक संसाधनों के प्रायोजन मूलक पक्षों से आपको परिचित कराएगा, भाषा के सामाजिक और सृजनात्मक प्रकार्य का अध्ययन होने के कारण आपको यह जानकारी भी हो जाएगी कि संप्रेषण में कौनसी भाषिक इकाइयाँ आऐगी ।

चार खंडों में विभाजित भाषा विज्ञान का यह पाठ्यक्रम भाषा विज्ञान की एक सुस्पष्ट समझ बनाने के लक्ष्य से बनाया गया है और तदनुसार पाठ्य सामग्री तैयार की गई है ।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इस पाठ्यक्रम का अध्ययन आपको भाषा विज्ञान की सही और सम्यक जानकारी देने में समर्थ होगा ओर हिन्दी संरचना के महत्वपूर्ण उपादानों को समझने में आपका सहायक भी । हिन्दी भाषा के विविध रूपों ओर प्रयोजनमूलक संदर्भो को भी आप वैज्ञानिक ढंग से आत्मसात कर सुस्पष्ट समझ विकसित कर पाऐंगे । भाषा और भाषाविज्ञान से संबद्ध यह आधारभूत अध्ययन सामग्री आपके लिए नितान्त उपयोगी सिद्ध होगी। ज्ञातव्य है कि प्रत्येक खंड की इकाई के अंत में महत्वपूर्ण संदर्भग्रंथों की सूची भी दी जा रही है जिसकी सहायता से आप अपने इयन में अपेक्षित वृद्धि कर पाऐंगे ।

आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना सहित भाषाविज्ञान का यह पाठ्यक्रम आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है ।

खंड-1 एमए. हिन्दी (उत्तरार्द्ध) के भाषाविज्ञान (तृतीय प्रश्न पत्र) पाठ्यक्रम का पहला खंड 'भाषा **और भाषाविज्ञान-**एक परिचय' शीर्षक से रचित है ।

पाठ्यक्रम परिचय की भूमका में भाषा विज्ञान पर जो परिचयात्मक टिप्पणी दी गई है उसे यहाँ यथावत संयुका करते हुए बिना किसी प्राक्कथन के हम सीधे खंड की इकाइयों पर आ जाते हैं । इस खंडमें कुल सात इकाइयां हैं जिनमें निम्नलिखित रूपों में अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गई हैं:-

इकाई- 1 भाषा मानव सभ्यता के विकास की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है, यह एक व्यवस्था ओर संप्रेषण का सहजतम माध्यम है । इस इकाई में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई भाषा की विभिन्न परिभाषाओं, भाषा के अभिलक्षणों एवं विशेषताओं पर विचार किया गया है ।

इकाई-2 भाषा के उद्भव और विकास की रोचक कथा को अनेक उदाहरणों के साथ इस इकाई में व्याख्यायित किया गया है ।

इकाई-3. इस इकाई में भाषा के संरचना पक्ष और भाषिक प्रकार्य को सहज सरल शत। में विश्लेषित कर अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गई है ।

इकाई-4 चौथी इकाई में भाषा का अध्ययन प्रस्तुत करने वाले क्षेत्र, भाषाविज्ञान की उन विविध परिभाषाओं का परिचय और विश्लेषण किया गया है जिन्हें पाश्चात्य और भारतीय भाषाविदों ने अलग अलग दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है । इसी इकाई में भाषा विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र एवं भाषा वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों पर विचार किया गया है ।

इकाई-5 भाषा सभी सामाजिक विज्ञानों की बुनियाद है । इस इकाई में भाषाविज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों के मध्य के संबंध को दर्शाया गया है ।

इकाई-6 इस इकाई 'भाषा विज्ञान के अध्ययन की भारतीय परंपरा' में स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार आधुनिक भाषा विज्ञान की अवधारणा के पूर्व ही भारत में भाषा चिंतन की समृद्ध धरोहर तैयार की जा चुकी थी । संस्कृत भाषाचितकों ने न केवल संस्कृत भाषा के लिए उन्नत व्याकरण ही लिखा अपितु अर्थ की सत्ता आदि के विषय में भी सोचा ।

इकाई-7 यह इस खंड की अंतिम इकाई है जो 'भाषा विज्ञान के अध्ययन की पाश्चात्य परंपरा' शीर्षक से रचित है । इसके आधुनिक भाषा विज्ञान के उद्भव और विकास की चर्चा की गई है । अंतिम दोनों इकाइयों को एक क्रम में पढ़ें तो स्पष्ट होगा भाषा विज्ञान एक व्यापक और गंभीर विषय है, जिसे अपने वर्तमान स्वरूप में पहुँचने में सैकड़ों वर्ष लग गए हैं और पाणिनि, पतंजलि, कात्यायन से लेकर सम्यूर, ब्लूमफील्ड, चॉक्की तक सैकड़ों मनीषियों ने इसे अपने ज्ञान और चिंतन से समृद्ध बनाया है ।

खंड -- 2: भाषा विज्ञान के पाठ्यक्रम की भूमिका के क्रम में हम यहाँ इकाइयों के परिचय पर आ जाते हैं । यह खंड भाषा और भाषिक संरचनाएँ शीर्षक से रचित है । इसमें कुल सात इकाइयां हैं जिनका परिचय निम्नलिखित रूप में दिया जा रहा है-

इकाई-8 यह इकाई 'ध्वनि संरचना शीर्षक से रचित है । इसमें ध्वनि के विविध आयामों, उच्चारणात्मक, प्रसारणिक तथा श्रवणात्मक का परिचय देते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण, स्वरों

और व्यंजनों का वर्गीकरण, ध्वनि परिवर्तन के कारण और दिशाएं तथा ग्रिम, बर्नर और ग्रासमैन के ध्वनि नियमों की चर्चा की गई है ।

इकाई -9. इस इकाई में स्वन संरचना के स्वरूप और शाखाओं, वागवयव स्वनों का वर्गीकरण एवं स्वन गुण का विवरण दिया गया है । इसी के साथ स्वनिम की अवधारणा पर विचार करते हुए, स्वनिम संरचना के स्वरूप, स्वनिमों के भेद एवं स्वनिमों के विश्लेषण पर प्रकाश डाला गया है ।

इकाई- 10. फप संरचना शीर्षक इस इकाई में रूप की अवधारणा, रूपिम एवं सरूप की परिभाषा, रूपिम के भेद एवं प्रकार्य तथा रूप परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं पर अध्ययन सामग्री तैयार की गई है ।

इकाई- 11. वाक्य संरचना शीर्षक से रचित यह इकाई वाक्य की अवधारणा, वाक्यों का वर्गीकरण, वाक्य विशेषण की प्रविधि तथा गहन संरचना एवं बाहय संरचना पर विचार करती है।

इकाई- 12 यह इकाई 'अर्थ संरचना शीर्षक से रचित है । इसमें अर्थ की अवधारणा, अर्थ परिवर्तन के कारणों एवं दिशाओं पर विचार किया गया है ।

इकाई- 13 लिपि भाषा का एक महत्वपूर्ण घटक है । 'लिपि का उद्भव और विकास' शीर्षक से लिखी गई इस इकाई में विश्व की कुछ प्रमुख लिपियों पर परिचयात्मक टिप्पणी के साथ नागरी लिपि पर विस्तृत विचार सामग्री दी गई है । नागरी लिपि के उद्भव एवं विकास के साथ इस लिपि के गुण-दोष, इसमे सुधार की आवश्यकता, वैज्ञानिकता एवं मानकीकरण के साथ नागरी लिपि और ध्वन्यात्मक लेखन पर भी संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत की गई है ।

इकाई- 14 इस खंड की यह अंतिम इकाई है जो हिन्दी की 'शब्द सम्पदा' शीर्षक से रचित है । इसमें हिन्दी में प्रयुक्त उन सभी शब्दों के स्रोतों पर विचार किया गया है । जहाँ से आगत शब्द आज हिन्दी की प्रकृति में ढल हिन्दी के अपने शब्द बन चुके हैं ।

खंड 3 का परिचय

यह खंड विभिन्न भाषा परिवार और हिन्दी शीर्षक से रचित है । इसमें कुल पांच इकाइयाँ हैं, जिनका परिचय निम्नलिखित रूप से दिया जा रहा है:-

इकाई- 15 इस इकाई की रचना 'विश्व के प्रमुख भाषा परिवार' शीर्षक से की गई है । विश्व के प्रमुख भाषा परिवारों और उनमें बोली जाने वाली प्रमुख भाषाओं का परिचय उनकी ध्वनि, रूप अर्थ विन्यास संबंधी विशेषताओं के साथ इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है ।

इकाई- 16 'भारोपीय भाषा परिवार शीर्षक इस इकाई में भारोपीय भाषा परिवार की भाषाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है । भाषाओं के ध्वनिगत और रूपगत वैशिष्ट्य को भी अध्ययन में समेटा गया है ।

इकाई- 17 प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय भाषाओं, वैदिक तथा लौकिक संस्कृत दोनों का तात्विक अंतर, उनकी व्याकरणगत विशेषताएं, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और उनकी वैयाकरणिक विशेषताओं का परिचय इस इकाई में दिया गया है ।

इकाई- 18 यह इकाई 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय' शीर्षक से रचित है तथा प्रमुख आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के ध्वनि, रूप, अर्थ एवं वाक्य वैन्यासिक वैशिष्ट्य का विश्लेषण प्रस्तुत करती है ।

इकाई- 19 इस इकाई की रचना हिन्दी का उद्भव और विकास शीर्षक से की गई है । इसमें हिन्दी के उद्भव और विकास के विवेचन के साथ हिन्दी की उपभाषाओं पश्चिमी एवं पूर्वी का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

खंड 4 का परिचय

भाषा विज्ञान पाठ्यक्रम का यह अंतिम खंड हिन्दी और उनके विभिन्न कार्य' शीर्षक से वर्गीकृत है । इसमें कुल 6 इकाइयाँ हैं, जिनका परिचय निम्नानुसार दिया जा रहा है:-

इकाई-20 इस इकाई में हिन्दी के विविध रूप और उनके प्रकार्यों का परिचय प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी के रूपों में राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, माध्यम एवं संचार भाषा की विशेषताएं विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं ।

इकाई-21 : इस इकाई में भारत सरकार की राजभाषा नीति का स्पष्ट्रीकरण किया गया है इसी संदर्भ में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति पर भी चर्चा की गई है ।

इकाई-22 : यह. इकाई अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान शीर्षक से रचित है । यह प्रायोगिक भाषा विज्ञान है इसके अंतर्गत अध्ययनयोग्य प्रमुख विषयों पर यहाँ समीक्षात्मक टिप्पणियाँ प्रस्तुत हैं।

इकाई-23 : भाषा शिक्षण और हिन्दी शीर्षक से रचित यह इकाई भाषा के शिक्षण में भाषाविज्ञान की उपादेयता को स्पष्ट करती है ।

इकाई-24 : शैली विज्ञान की अवधारणा, इसके उद्भव और विकास, शैली विज्ञान के विश्लेषण प्रतिमान एवं प्रक्रिया पर इस इकाई में पर्याप्त अध्ययन सामग्री दी गई है ।

इकाई-25 : इस खंड की अंतिम इकाई में शैली विज्ञान का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध दिखाया गया है ।,

ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त सभी खंडों की प्रत्येक इकाई के अंत में शब्दावली, अभ्यास के लिए निबंधात्मक एवं लघूत्तरी प्रश्न दिये गये हैं । विस्तृत एवं गहन अध्ययन के लिए सहायक एवं उपयोगी संदर्भ ग्रंथ सूची दी गई है, आप इन्हें भी देखें और अध्ययन करें ।

इकाई-1 भाषा : परिभाषा और अभिलक्षण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सम्प्रेषण के साधन

1.2.1 मूक साधन

1.2.1.1 इंगित भाषा

1.2.1.2 संकेत भाषा

1.2.2 मुखर साधन

1.3 भाषा की परिभाषा

1.3.1 पाश्चात्य विद्वानों के मत

1.3.2 भारतीय विद्वानों के मत

1.4 भाषा के अभिलक्षण

1.4.1 मानव और मनावेत्तर भाषा

1.4.2 यादृच्छिकता

1.4.3 अनुकरणशीलता

1.4.4 सृजनात्मकता

1.4.5 परिवर्तनशीलता

1.4.6 बहु घटकता या विच्छिन्नता

1.4.7 अभिरचना की द्वैतता

1.4.8 वक्ता-श्रोता की दोहरी भूमिका

1.4.9 दिशा और काल की अंतरणता

1.4.10 असहजवृत्तिकता

1.5 भाषा और भाषिक व्यवहार

1.6 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.7 सारांश

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.9 भाषा और भाषिक व्यवहार

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- सम्प्रेषण के विविध रूप और उसमें भाषा के महत्व की जानकारी दे सकेंगे ।
- भाषा सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों की जानकारी प्राप्त कर भाषा की निश्चित परिभाषा बता सकेंगे ।

- मानव और मानवेत्तर सम्प्रेषण व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में मानव भाषा के अभिलक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

मानव का सर्वोत्तम सृजन भाषा है । सम्प्रेषण के लिये उपलब्ध सभी साधनों में भाषा अनुपम साधन है । भाषा के द्वारा ही मनुष्य समाज के विविध क्षेत्रों के बारे में, सभी ज्ञानानुशासनों की जानकारी प्राप्त करता हैं । मानव एवं मानव समाज के विकास में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है । भाषा केवल भावों एवं विचारों के आदान प्रदान का साधन मात्र नहीं है अपितु मानव के चिंतन एवं सोचने का साधन है । मानव, मानव समाज तथा समाज के विविध क्षेत्र को जोड़ने वाली शृंखला भाषा है । प्रस्तुत इकाई में सम्प्रेषण के एक अहम साधन के रूप में आप भाषा की परिभाषा एवं मानव मानवेत्तर भाषा के अन्तर के आधार पर भाषिक अभिलक्षणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

1.2 सम्प्रेषण के साधन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में अन्य लोगों से वह अपने भाव एवं विचार बातचीत के द्वारा सम्प्रेषण करता है । भाव-विचार के आदान प्रदान की यह प्रक्रिया अनेक तरीकों से, अनेक रूपों में होती है । अपने भाव या विचार दूसरों तक पहुंचाने या प्राप्त करने के साधन को मोटे तौर पर दो रूपों में देखा जा सकता है- मूक और मुखर ।

मूक साधन में वाणी का प्रयोग सर्वथा नहीं होता है जबकि दूसरे साधन मुखर में वाणी का ही महत्व है ।

1.2.1 मूक साधन

यदि इसे गहराई से देखें तो मूक साधन को पुन: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1.2.1.1 इंगित भाषा

इंगित भाषा के अन्तर्गत चेष्टाएँ जैसे - हाथ-हिलाना, नेत्र भंगिमा, मुख विकार, गर्दन हिलाना इत्यादि आती हैं । ठीक इसी प्रकार अपने विभिन्न भावों जैसे कि घृणा, क्रोध, उल्लास, प्रेम, सहमति, असहमति की अभिव्यक्ति विविध आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से मनुष्य करता आया है । अमरीका के पश्चिमी प्रदेशों में इण्डियन जातियों में ऐसी इंगित भाषा देखी गई है । ऑस्ट्रेलिया के कुछ आदिम जन-गणों को रात में बात-चीत करते समय आग का सहारा लेना पड़ता है । इंगितों के सहारे वे अपनी बात को समझाते हैं ।

1.2.1.2 संकेत भाषा

भावाभिव्यक्ति का दूसरा एक तरीका यह भी है कि भाव या विचार को किसी संकेत या प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाय । उदाहरण के रूप में शिक्षक के द्वारा मेज पर हाथ पटकना- इसके द्वारा शांत हो जाने का संकेत । एक मित्र के द्वारा मुँह पर अंगुली रखकर

दूसरे मित्र को चुप रहने का संकेत । दूर खड़े किसी को हाथ उठाकर अपनी ओर बुलाने का संकेत तो कभी केवल सिर हिलाकर ही हाँ या ना का संकेत करना । रेलगाडी को लाल या हरी बत्ती के द्वारा रूकने या जाने का संकेत । चोर द्वारा हाथ दबाकर या ऐसे कुछ इशारों के द्वारा संकेत परस्पर लिये-दिये जाते हैं । इंगितों-संकेतों के माध्यम से होने वाले भाव या विचार के आदान-प्रदान का क्षेत्र व्यापक होते हुए भी उसे भाषा नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसकी अपनी कुछ सीमाएं भी हैं ।

1.2.2 मुखर साधन

मनुष्य अपने भाव विचार के आदान-प्रदान हेतु जिस दूसरे साधन को अपनाता है, वह मुखर साधन है । इसके अन्तर्गत मानव और मानवेत्तर सभी प्रणियों की बोलियों का समावेश होता है । मुख साधन में वाक् का प्रयोग होता है । पुन: इसके व्यक्त वाक् और अव्यक्त वाक् दो विभाग किये जा सकते हैं । मानव की अपेक्षा मानवेत्तर भाषा में बहुत अन्तर तो होता है, लेकिन मूलभूत अन्तर यह है कि - प्राणियों की भाषा अनिश्चित और अस्पष्ट होती है; अत: उसे अव्यक्त वाक् या वाणी कहा गया है । मानव द्वारा जिस मुखर साधन का प्रयोग किया जाता है उसे व्यक्त वाणी अर्थात् निश्चित स्पष्ट वाणी कहा जाता है । मानव द्वारा जिस मुखर साधन का प्रयोग किया जाता है उसे व्यक्त वाणी अर्थात् निश्चित स्पष्ट वाणी कहा जाता है । मानव द्वारा प्रयुक्त बोली की निश्चितता एवं स्पष्टता के पीछे उसका चिंतन है । एक सुव्यवस्थित चिंतन, प्रयत्न के परिणाम स्वरूप निःसृत होने के कारण ही वह स्पष्ट एवं निश्चित होती है । उसका अध्ययन विश्लेषण किया जा सकता है । उसे सीखा और सिखाया जा सकता है ।

मनुष्य की भाषा ही उसके भावों, विचारों को स्पष्टता, पूर्णता एवं सुनिश्चितता प्रदान करती है । यहां एक बात और समझ लेना जरूरी है कि मनुष्य द्वारा प्रयुक्त वाणी आवश्यक नहीं कि हमेशा सार्थक ही हो । मानव कृत ध्वनियाँ सार्थक भी हो सकती है और निरर्थक भी । भाषा विज्ञान केवल सार्थक ध्वनियों का अध्ययन विश्लेषण करता है । भाषा के संबंध में एक और बात महत्वपूर्ण है वह यह कि भाषा के द्वारा हमेशा अपने भावों की शत प्रतिशत अभिव्यक्ति नहीं होती है । कभी कभार भावतिरेक की स्थिति में भाषा असमर्थ हो जाती है तब भंगिमा के द्वारा भाव की अधिक सुन्दर अभिव्यक्ति होती है । साहित्य में विरह, मिलन आदि विविध स्थितियों में साहित्यकार नायक नायिकाओं की भाव-भंगिमा का सुन्दर अंकन करता है ।

भाषा केवल भाव-विचार की अभिव्यक्ति का ही नहीं विचार करने एव सोचने का भी माध्यम-साधन हैं । बिना भाषा मनुष्य का विचार करना, सोचना भी बंद हो जाता है । अत: भाषा एवं विचार का अटूट सम्बन्ध सिद्ध होता है । वर्षों से भाषा से या भाषा द्वारा मनुष्य और समाज दोनों का निरन्तर विकास होता आया है, हो रहा है और होता रहेगा । मनुष्य और भाषा का पारस्परिक टकराव ही नये चिंतन, नयी संस्कृति, नयी सोच और नये समाज को जन्म देता है । मानव और मानवेत्तर भाषा में यह मूलभूत अन्तर है कि- बरसों से पशु-पक्षियों की वही भाषा है जब कि मानव भाषा में और मानव समाज में निरन्तर विकास और परिवर्तन देखा जा सकता है ।

1.3 भाषा की परिभाषा

ऐसी मानव भाषा को निश्चित सीमा में बांधना अर्थात् उसकी परिभाषा देना उतना आसान नहीं हैं । आदिकाल से मानवभाषा को परिभाषित करने का उपक्रम भारत एवं पश्चिम में अनेक विद्वानों ने किया है तथापि किसी भी परिभाषा को भाषा के पूर्ण स्वरूप का उद्घाटन करनेवाली परिभाषा का नाम नहीं दिया जा सकता । वैसे परिभाषा शब्द अपने आप में बड़ा अस्पष्ट है क्योंकि, जिसे हम परिभाषा कहते हैं वह परिभाष्य वस्तु के लक्षणों, उद्देश्यों आदि के आधार पर उसकी व्याख्या भर होती है । विवेच्य वस्तु का यथाशक्ति पूर्ण एवं संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक होता है । यह कार्य परिभाषा के द्वारा सम्पन्न होता है । शास्त्रकारों ने परिभाषा की परिभाषा देते हुए लिखा है:

"तदेव हि लक्षणं (यदव्यान्त्यतिव्यान्त्यसंभवरूपं) दोषत्रय शून्यम्"

अर्थात् जो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव रूप तीनों दोषों से मुक्त हो, वह परिभाषा है । यहाँ भाषा की परिभाषा देते समय इस बात का ध्यान रखा जायेगा । भाषा की निश्चित परिभाषा तक पहुंचने के लिये भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों के द्वारा भाषा के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये गये हैं उन्हें जानना आवश्यक है ।

1.3.1 पाश्चात्य विद्वानों के मत

1. "Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which members of a social group co-operate and interacte" (stutevant)

   अर्थात् भाषा उन वाचिक प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था हे जिसके द्वारा समाज विशेष के सदस्य परस्पर व्यवहार और क्रिया-प्रतिक्रिया में संलगन होते हैं ।(स्त्रुत्वाँ)

2. "Language may be defined as the expression of thought by means of speech sounds" (Henry sweet)

   अर्थात् भाषा वाक् प्रतीकों के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति है ।(स्वीट)

3. "The common defination of speech is the use of articulate sound-symbols for the expression of thought" (A.H. Gardiner)

   अर्थात् विचारों की अभिव्यक्ति के लिये उच्चरित ध्वनि प्रतीकों के प्रयोग को भाषा कहते हैं ।(ए.एच.गार्डनर)

4. "Language is a purely human and non-instincitive method of communicating ideas, emotions, and desires by means of a system of volunatarily produced symbols. These symbols are in the first instance auditory and they are produced by the so-called organs of speech" (Edard Spir)

अर्थात् विचारों, भावनाओं और इच्छाओं को स्वेच्छा से उत्पन्न प्रतीकों के माध्यम से सम्प्रेषित करने की विर्षुद्ध मानवीय ओर यत्नज पद्धति को भाषा कहते हैं । उच्चारण अवयवों से उत्पन्न माध्यम-प्रतीक प्राथमिकत: श्रावणिक होते हैं । (एडवर्ड सपीर)

5. “The essence of Language is human acitivityon the part of an individual to make him-self under-stood by another and activity on the part of that other to understand what was in the mind of the first.” (Jospoerson Otto)

भाषा का सार तत्व यह है कि - वह एक मानवीय सक्रियता है, मनुष्य-मनुष्य के बीच पारस्परिक बोध के लिए सक्रियता, ताकि वक्ता के मन की बात को श्रोता समझ सके।

-येस्पर्सन

6. “A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co-operate”(Block and Triager)

"भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके सहारे कोई सामाजिक समुदाय परस्पर सहयोग करता है ।

-ब्लाग तथा ट्रेगर

7. “Language is a system of conventional sign that can be voluntarily produced at any time” (Ebbinghaus)

भाषा ऐसे परंपरागत चिन्हों की व्यवस्था है जिन्हें स्वेच्छा से मनुष्य कभी भी उत्पन्न कर सकता है |

8. ”Language is articulated with limited sound organised for the purpose of Expression“(Croce-aesthetics)

भाषा सीमित ध्वनियों से संयोजित व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य अभिव्यक्ति होता है ।

-क्राचे एस्थेस्किस

9. “Language can be thought of as organised noise used in situations actual social situations or in other words contextualised systematic sounds” (A. Mclntosh-M.K. Halliday)

भाषा एक व्यवस्थित ध्वनि योजना है, जिसका प्रयोग वास्तविक सामाजिक स्थितियों में किया जाता है । दूसरे शब्दों में भाषा को संदर्भ जनित व्यवस्थित ध्वनि योजना कहना समीचीन होगा ।

-ए.मैकिनटोश-एम.के.हैलिडे

10. “A Language is an instument of communication in value of which human experience is analyzed differently in each given community.” (Elements of General Linguistics, Matinet)

भाषा सम्प्रेषण का एक साधन है, जिसके द्वारा अलग-अलग मानव समुदाय अपने-अपने अनुभवों का विश्लेषण करतें है ।

-मार्टिने एलीमेन्टस ऑफ जनरल लिग्विस्टिकस

11. “Language is structured ie. eachutterance far from being a random series of words is put together according to some principle or set of principles which determines the word that occure and te form and order of the words.”(Ed. J.P. Allen & S Pit Corder)

भाषा संचरित होती है, अर्थात् प्रत्येक भाषिक उक्ति सिद्धांतों के आधार पर संघटित होती है । ये सिद्धांत प्रयुक्त शब्दों के रूप, शब्द क्रम आदि का निश्चय करते हैं ।

जे.पी. एलेन और एस.पिट काडर

12. “I will consider a language to be a set (finite orinfinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finite set of elements” (Noam chomsky)

चॉम्सकी भाषा को परिभाषित करते हुए उसे असीम ओर सीमित वाक्य समूहों का समुच्चय मानते हैं ।

चॉम्सकी

13. “Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which, human leving as member of a social group and participants in culture interact and communicate.

भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके जरिए एक सामाजिक समुदाय के लोग जो एक ही संस्कृति के सहचर हैं, भावविनिमय या संवाद करते हैं ।

-इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका

1.3.2 भारतीय विद्वानों के मत

1. "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भांति प्रकट कर सकता है ओर दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है ।"

-पंडित कामता प्रसाद गुरू

2. "जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार विनिमय या सहयोग करते हैं उस यादृच्छिक रूढ़ ध्वनिसंकेत प्रणाली को भाषा करते हैं ।"

-डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा

3. "मनुष्य और मनुष्यों के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्ति ध्वनि संकेतों को जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं ।"

-डॉ. श्याम सुन्दर दास

4. "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित मूलत: प्राय: यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों को आदान-प्रदा करते हैं।

डॉ. भोलाना तिवारी

5. भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिसमें मनुष्य अपने उच्चारणोंपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किये गये वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं"

- डॉ. मंगलदेवी शास्त्री

6. "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है ।"

- डॉ. पी.डी. गुणे

7. "अर्थवान् कण्ठ से निःसृत ध्वनि समष्टि ही भाषा है ।"

- सुकुमार सेन

'भाषा' शब्द 'भाष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है कहना या बोलना । भाषा का सहारा हम अपनी बात दूसरों तक पहुंचाने के लिये तथा दूसरों की बात खुद समझने के लिये लेते हैं ।

प्राचीन संस्कृत विद्वानों में भाषा संबंधी चिंतन देखने को मिलता है । महर्षि पतंजलि ने भाषा के संबंध में कहा है " व्यक्त वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्त वाच: ' अर्थात् जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है उसे भाषा कहते हैं । भाषा के इस व्यक्त भाव को आगे चलकर कई विद्वानों ने विश्लेषित किया है ।

आचार्य भर्तृहरि ने 'वाक्य पदीय' में शब्द की उत्पत्ति और ग्रहण के सम्बन्ध में लिखा है-

"शब्दकारणमभर्धस्य स हि तेनोपजन्यते

तथा च बुद्धिविषयाददथ्राच्छब्द: प्रतीयते । 3.3.3.2.

बुद्धयर्थादेव बुद्धयर्थे जाते तदानि दृश्यते । 3.3.3.3.

अर्थात् आशय यह हे कि - "शब्द-व्यापार या भाषण-प्रक्रिया बुद्धियों के बीच आदान-प्रदान का माध्यम है ।" इस प्रकार देखा जा सकता है कि -भारतीय संस्कृत विद्वानों तथा भाषाविदों के द्वारा तथा पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा भाषा को परिभाषित करने का यत्न समय-समय पर होता रहा है तथापि भाषा की अपनी प्रकृति परिवर्तनशीलता एवं सृजनात्मकत को मद्देनजर रख प्रत्येक समय पर भाषा नया रूप धारण करती है अत: किसी एक परिभाषा को समीचीन या उपयुक्त कहना ठीक नहीं हैं । हाँ यह जरूर है कि - कुछ परिभाषाएँ भाषा के स्वरूप को अधिक करीबी एवं स्पष्टता से उजागर करने में सहायक सिद्ध होती है । उपर्युक्त सभी मतों को ध्यान में रखते हुए भाषा के स्वरूप को निम्नलिखित मुद्दों में व्यक्त किया जा सकता है ।

क. भाषा प्रतीकात्मक होती है अर्थात् ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ प्रत्येक स्तर पर भाषा में प्रतीक ही है । भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है ।

ख. भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था होती हैं । भाषा में प्रयुक्त प्रतीक ध्वन्यात्मक होते हैं मानव उच्चारण अवयवों से उच्चारित-वाक प्रतीक होते है । अन्य साधनों से अन्य प्रकार की ध्वनियों जैसी ताली बजाना, चुटकी बजाना आदि से जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह ध्वनि भाषा के अन्तर्गत नहीं आती है भले ही उससे कामचलाऊ विनिमय होता हो ।

ग. भाषा में प्रयुक्त ध्वनि प्रतीक याद्दच्छिक होते है ।

Arbitrary Vocal symbols- अर्थात् ध्वनि, शब्द, रूप आदि सभी स्तर पर भाषा की व्यवस्था याद्च्छिक होती है । याद्दच्छिक अर्थात् 'माना हुआ' । भाषा में प्रयुक्त प्रतीक भाषा-भाषी समाज द्वारा माने हुए होते है, व्यक्ति द्वारा नहीं समष्टि भाषा में ध्वनि-समष्टि या शब्द का जो अर्थ होता है वे यों ही, बिना किसी तर्क, या नियम व्याकरण आदि के माना हुआ होता है । यदि यह सम्बन्ध सहजात, तर्कपूर्ण, स्वाभाविक या नियमित होता तो सभी भाषाओं में साम्य मिलता । उदाहरण के रूप में अंग्रेजी में जिसे 'वाटर' कहते हैं उसे हिन्दी में 'पानी' या अन्य भाषाओं में अलग-अलग शब्द प्रतीकों से पहचाना जाता है । अगर यह संबंध याद्दच्छिक नहीं होता तो संसार की सभी भाषाओं में एक वस्तु के लिए एक ही शब्द प्रतीक का प्रयोग होता । ऐसी स्थिति में भाषा भी एक ही होती । लेकिन ऐसा नहीं है ।

भाषा की विविध परिभाषाओं के विश्लेषण से भाषा के दो पक्ष उभर कर सामने आते हैं - पहला है भाषा का मानसिक पक्ष और दूसरा है उसका भौतिक पक्ष मानसिक पक्षभाषा का अमूर्त या अप्रकट रूप है जबकि भौतिक मूर्त या प्रकट रूप । किसी भी वक्ता के बोलने वाले के मन में भावों और विचारों की अवस्थिति अमूर्त रूप में रहती ही है उन्हें प्रकट करने की इच्छा होने पर वक्ता को वागिन्द्रियों की मदद लेनी पड़ती है जिससे वह भाषा को मूर्त रूप देता है । श्रोता या सुनने वाले के मन में भी भावों और विचारों के रूप में भाषा अमूर्त रूप में मौजूद रहती है । वक्ता के अभिप्राय को श्रोता इसी कारण यथावत समझ लेता है क्योंकि वक्ता द्वारा उच्चारित भाषा श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से उसके मन में स्थित विचारों से सामंजस्य बैठा लेती है । संप्रेषणीयता और ग्राह्यता की इस प्रक्रिया से ही विचारों का पारस्परिक विनिमय भाषा के माध्यम से संभव हो जाता है ।

इस प्रक्रिया में वक्ता और श्रोता के मध्य सामंजस्य होना अति आवश्यक है । यदि श्रोता वक्ता की भाषा नही जानता तो अर्थ संप्रेषण नहीं हो पाएगा । कई बार वक्ता और श्रोता के मध्य बौद्धिक स्तर भेद के कारण भी अर्थ संप्रेषण में बाधा पहुंचती है । भाषा की इसी विशेषता को लक्ष्य कर बी.एल. हार्फ ने अपनी पुस्तक Linguistic velativity (भाषा सापेक्ष्यता) में कहा है "भाषा विश्व को देखने के लिए एक प्रकार की ऐनक है जो केवल एक भाषायी समाज के लिए नजर बनने का काम करती है । दूसरा समाज उसे ऐनक के रूप में व्यवहृत नहीं कर पाता है और करे भी तो देख नहीं पाता हैं ।

भाषिक संप्रेषण के आधार पर भाषा के तीन पक्ष माने गये हैं । पहला है - उच्चारण पक्ष दूसरा संवहन पक्ष और तीसरा ग्रहण पक्ष ।

क उच्चारण पक्ष - वक्ता के मन में अवस्थित भाव या विचार पहले मानसिक स्तर पर वाक्य के रूप में आकार ग्रहण करते हैं इसके पश्चात वकता क्रम से वाक्य की ध्वनियों को उच्चारित करता है । उदाहरण के लिए तुम घर जाओ = त् + उ + म् + अ + घ् + अ + र् + अ + ज + अ + ओ । भाषा के इस पक्ष का अध्ययन ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है ।

ख संवहन पक्ष - जब वक्ता ध्वनियों का उच्चारण करता है तो वे वायु तरंगों से प्रवाहित होती हुई श्रोता के कर्ण कुहर में प्रवेश करती है । जैसे शांत तालाब में कंकड़ फैंकने पर लहरों का एक वृत्त आकार ग्रहण करता है और कुछ दूरी तक जाते जाते लहरों का वृत क्षीण होकर पुन: जल में खो जाता है, उसी प्रकार उच्चरित ध्वनियां एक खास दूरी के बाद सुनाई नहीं देती । इसे भाषा का संवहन पक्ष कहते हैं इस पक्ष का अध्ययन भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत सूक्ष्मता से एवं विस्तार पूर्वक किया जाता है ।

ग ग्रहण पक्ष - वक्ता जिन ध्वनियों का उच्चारण करता है, वे वायुतरंगों के माध्यम से श्रोता के कानों तक पहुंचती है और उसके मन में उसी शब्द बिंब का निर्माण करती है जो वक्ता के मन में अवस्थित था । यही अर्थ बोध है । कान के जरिए ध्वनियां मस्तिष्क तंतुओं तक किस प्रकार पहुंचती है और उनसे शब्द बिंब कैसे बनता है? इस पहलू का अध्ययन शरीर विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है ।

घ जब दो व्यक्ति बातचीत करते है तो क्रमश: दोनों वक्ता एवं श्रोता की भूमिका का निर्वहन करते हैं । वक्ता की बात खत्म होने पर वह श्रोता बन जाता है और श्रोता वक्ता । यह क्रम बातचीत समाप्त होने तक चलता रहता है ।

ङ भाषा की अपनी व्यवस्था होती है । हर भाषा की ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य एवं अर्थस्तर की निश्चित व्यवस्था होती है व्यवस्था के कारण ही भाषा का अपना स्वतंत्र अस्तित्व और महत्व होता है । व्यवस्था के कारण ही वह भाषा बनती है, उसे मानक स्थान की प्राप्ति होती है अन्यथा वह बोली या सामान्य ध्वनियों का समूह मात्र रह जाती है । व्यवस्था से ही भाषा की पहचान होती है ।

च भाषा का प्रमुख प्रकार्य सम्प्रेषण है अर्थात् भावों विचारों का आदान-प्रदान । दुनिया में अभी तक इससे अधिक समर्थ और सक्षम साधन नहीं बना है । यदि सृष्टि परमात्मा द्वारा रचित सुन्दर सृजन है तो इस सृष्टि में भाषा सबसे महत्वपूर्ण विचार-विनिमय साधन है । भाषा के माध्यम से सामान्य से लेकर विशेष प्रकार के भाव-विचारों का आदान-प्रदान होता है । दुनिया में मानव समाज, संस्कृति सभ्यता या विविध क्षेत्रों में हुए विकास और उस विकास को जन-जन तक पहुंचाने का माध्यम एकमात्र भाषा है ।

छ भाषा का प्रयोग निश्चित मानव-समुदाय या समाज विशेष में होता है । भाषा के प्रयोक्ताओं का वर्ग तथा उसका निश्चित क्षेत्र होता है । जैसे मराठी का महाराष्ट्र, गुजराती का गुजरात, असमिया का असम, आदि । वैसे भाषा प्रयोग की दृष्टि से किसी सीमांकन की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि एक वक्ता और श्रोता अर्थात दो समान भाषाभाषी मिलने पर दुनिया में कहीं भी किसी भी भाषा को बोला-समझा जा सकता है

वह जैसा कि - बताया गया कि - वहाँ वक्ता श्रोता के समान भाषाभाषी होना जरूरी है जबकि, भाषा के निश्चित क्षेत्र में आप भाषा का प्रयोग किसी से भी सहज रूप से कर सकते हैं । इस दृष्टि से भाषा बोलने वालों का निश्चित समुदाय, वर्ग एवं क्षेत्र होता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि - "भाषा मानव उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समुदाय विशेष के लोग परस्पर विचार-विनिमय करते हैं । "

1.4 भाषा के अभिलक्षण

जब भाषा के अभिलक्षण की बात की जाती है तो उससे आशय यह हे कि भाषा (मानव भाषा) की विशेषता या मूलभूत लक्षण कौन से हैं जो उसे मानवेत्तर भाषा से अलग करते है । ऐसी कौन सी बात है जिससे मानव भाषा मानवेत्तर भाषा या अन्य भाषा रूपों से अलगाती है । संसार में मानवभाषा संप्रेषण का सर्वोत्कृष्ट साधन हैं । वैसे भाव या विचार के आदान-प्रदान के अनेक तरीकों की चर्चा इत:पूर्व की जा चुकी है । सृष्टि में सभी पशु-पक्षी, जीव जन्तु ओर यहां तक वनस्पति, पेड़-पौधों, जलवायु आदि के बीच भी एक विशेष प्रकार से तार जुड़ा हुआ है पारस्परिक जुड़े तन्तु से परस्पर आदान प्रदान भी होता है । सम्प्रेषण को व्यापक धरातल पर देखने पर विभिन्न ज्ञानानुशासनों ने अपने-अपने क्षेत्र में खोज करके इस बात को एक या दूसरे रूप में, एक या दूसरा नाम देकर इसे सिद्ध किया है । यहां उस विस्तृत संदर्भ की चर्चा असंगत होगी परन्तु मोटे तौर पर मानव और मानवेत्तर भाषा के बीच अन्तर के प्रमुख मुद्दों की चर्चा करना आवश्यक है । जिसकी चर्चा जाने माने भाषा वैज्ञानिकों ने की हैं जिसकी पीठिका पर भाषा के अभिलक्षणों की बात की जा सकती है ।

1.4.1 मानव और मनावेत्तर भाषा

भाषा की परिभाषा की चर्चा करते समय मानव और मानवेत्तर भाषा के कुछ मूलभूत मुद्दों का जिक्र किय गया है । वस्तुत: कुछ साम्य होते हुए भी मानव और मानवेत्तर भाषा एक नहीं है । इस बात को भूलना नहीं चाहिए । प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक हॉकेट Hockett : The origin of speech लेख में, मैकनेल - Mc Neill : The Aquisition of Language लेख में, तथा चोम्सकी - Chomsky : Cartesian Linguistics में इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये हैं । हॉकेट ने मानव ओर मानवेत्तर भाषा की तुलना सर्जनात्मकता यादृच्छिकता तथा पैटर्न की द्वैतता आदि तेरह आधारों पर की है । मैकनेल ने दो आधार की बात की है - संरचनात्मक ओर प्रकार्यात्मक, जैसे संरचनात्मक दृष्टि से मानव भाषा में योजन-व्यवस्था होती है । विभिन्न ध्वनियों के संयोग से शब्द, शब्दों के संयोग से वाक्य बनते हैं । प्रकार्यात्मक आधार में तीन प्रकार्य की चर्चा है- वस्तुओं को संकेतिक करने वाला वस्तुपरक प्रकार्य, भावों को संकेतक करने वाला भाव का प्रकार्य की चर्चा है - वस्तुओं को संकेतित करने वाला वस्तुपरक प्रकार्य, भावों को संकेतित करने वाला भाव पर प्रकार्य तथा बाहय घटनाओं या आंतरिक स्थिति के विषय में कथन करने वाला प्रकथनपरक प्रकार्य है । चोम्सकी ने सृजनात्मकता के आधार पर

मानव और मानवेत्तर भाषा को अलगाने का प्रयास किया हे । मानव अपनी भाषा के माध्यम से नये या पुराने भावों को असीमित रूप में अभिव्यक्ति दे सकता है जबकि मानवेत्तर भाषा में अभिव्यक्ति की शक्ति सीमित होती है, दूसरी बात यह कि - मानवेत्तर भाषा प्राय: उद्दीपन-अनुप्रक्रिया के रूप में ही होती है जब कि मानव भाषा नहीं । तीसरी प्रमुख बात यह कही है कि मानव भाषा किसी भी अननुमानित, अज्ञान, या नये से नये संदर्भ को अभिव्यक्ति देने में समर्थ होती है जब कि मानवेत्तर भाषा में यह क्षमता नहीं होती है ।

मानव और मानवेत्तर भाषा को अलगाने की इस प्रक्रिया से ही भाषा के अभिलक्षणों का जन्म हुआ । अलग-अलग भाषा वैज्ञानिकों ने इन अभिलक्षणों की चर्चा अलग-अलग संख्या में गिनाते हुए की है जैसे हॉकेट ने सात अभिलक्षणों का उल्लेख किया है तो हिन्दी भाषा वैज्ञानिकों ने भी अलग-अलग नाम देकर उसकी चर्चा की हैं । संख्या या नाम के चक्कर में पड़े बिना भाषा की प्रकृति को समझना आवश्यक है अत: यहां हिन्दी के प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक भोलानाथ तिवारी द्‌वारा चर्चित भाषा के प्रमुख दस अभिलक्षणों की चर्चा प्रस्तुत है-

1.4.2 यादृच्छिकता

'यादृच्छिक' का अर्थ है - 'जैसी इच्छा हो' या 'माना हुआ' । भाषा का यह प्रमुख अभिलक्षण है । भाषा में यादृच्छिकता सभी स्तर पर पायी जाती है । भाषा में जो ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य या अर्थ होता है वह किसी भाषाभाषी समाज द्‌वारा माना हुआ होता है । यादृच्छिकता वैयक्तिक नहीं समाज, भाषाभाषी द्‌वारा माना हुआ वैशिष्ठ्य है । जैसे कोई एक व्यक्ति कहे कि मैं 'किताब' को 'ताकिब' कहूंगा ऐसा मान लेता है तो वह भले ही माने पर इससे संप्रेषण नहीं होगा । जब तक यह समाज द्‌वारा स्वीकृत या समाज द्‌वारा माना नहीं जाता तब तक वह यादृच्छिक नहीं होगा । दूसरी बात यह कि यादृच्छिकता से आशय यह है कि - वह तर्कप्रसूत नहीं होता । शब्द प्रतीक एवं शब्द प्रतीक से जिस वस्तु का अर्थ बोध होता है उसके बीच कोई तार्किक या वैज्ञानिक संबंध नहीं होता है और न ही कोई सहजात संबंध होता है । जैसे 'किताब' शब्द प्रतीक और उस शब्द प्रतीक से मानसिक प्रत्यय के द्‌वारा जिस वस्तु को बोध होता है उनके बीच का संबंध माना हुआ होता है । हिन्दी भाषाभाषी समुदाय द्‌वारा उस वस्तु के लिए 'किताब' शब्द माना हुआ है स्वीकृत है । अत: 'किताब' शब्द बोलते ही जैसे कोई हिन्दी भाषा-भाषी सुनता है तो उसके मस्तिष्क में...... ऐसा नहीं है हिन्दी भाषा में 'किताब' है अग्रेंजी भाषा में kooB'" तो गुजराती में 'चौपडी' या 'पुस्तक' । वस्तु एक है पर उस वस्तु या भाव के लिए प्रयुक्त शब्द प्रतीक अलग-अलग होते हैं । यह यादृच्छिकता के कारण ही है ।

1.4.3 अनुकरणशीलता

भाषा अर्जित संपत्ति है । मनुष्य को भाषा जन्म से या पैतृक संपत्ति के रूप में प्राप्त नहीं होती है । मनुष्य जिस परिवार, समाज में जन्म लेता है वहीं से भाषा का अर्जन करता है । भाषा सीखी जाती हैं । भाषा सृजन की प्रक्रिया अनुकरण के द्‌वारा होती है । प्रत्येक मनुष्य अनुकरण करके ही भाषा सीखता है । अनुकरण की यह प्रक्रिया दो रूपों में होती है । बालक

अपने माता पिता, परिवार, पास-पड़ोस या अपने आस-पास के वातावरण से जाने अनजाने भाषा सीखता है । लोग-बोलते हैं, वह सुनता है । बार-बार सुनने पर उच्चरित ध्वनियों का अनुकरण कर उच्चारण करता है । साथ में अमुक चीज, वस्तु, पदार्थ आदि को इस नाम से पहचाना जाता है, यह भी सब सीख लेता है जैसे किसी विशेष प्राणी के लिये 'गाय' शब्द बार बार सुनने पर उसे बोध हो जाता है कि - इसे गाय' कहा जाता है साथ ही 'गाय' ध्वनियों का उच्चारण । ऐसे ही समस्त पदार्थों, भावों, व्यवहार आदि की जानकारी प्राप्त करता है । इस प्रकार से भाषा अधिगम की प्रक्रिया को अनौपचारिक अनुकरण के द्वारा भाषा अर्जन की प्रक्रिया कहा जाता है।

जबकि, बालक एक उम्र के बाद स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय या अनौपचारिक रूप से शिक्षा देने वाली संस्थाओं से जो भाषा अर्जन करता है, उसे अनौपचारिक भाषा अधिगम प्रक्रिया कहा जाता है । संभव हे कि जहाँ बालक औपचारिक रूप से भाषा सीखने के क्रम में गलत उच्चारण, अपूर्ण जानकारी के कारण या अनुकरण में खामी के कारण भाषा का अर्जन दोषपूर्ण रूप में करता है । इन सारे भाषा संबंधी दोषों का उपचार एवं निदान औपचारिक भाषा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत हो जाता है । एक बात और भी ध्यान रहे कि-मनुष्य जीवनभर अनौपचारिक रूप से भाषा का अर्जन करता ही रहता है, औपचारिक शिक्षा उसे भाषा सीखने-सिखाने के लिए व्यवस्थित दिशा निर्देशन करती है । समाज के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी सामाजिक, आर्थिक आदि व्यावहारिक कार्यो में भाषा ही माध्यम के रूप में काम करती है । अत: मनुष्य जीवन के हर कदम पर भाषा का अर्जन करता रहता है- अनुकरण के द्वारा और भाषा के माध्यम से उसके व्यक्तित्व का विकास भी होता है । भाषा सीखने योग्य होती है अत: उसी अधिगम्यता के रूप में समाज के विविध क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त होती है इसी को सांस्कृतिक संप्रेषणीयता या परमपरानुगामिता भी कहा जाता है । कुल मिलाकर कहें तो भाषा मनुष्य को मानवेत्तर पशु-पक्षी, जीवों की भांति जन्मजात या आनुवांशिक रूप में नहीं मिलती उसे सीखना-अर्जित करना पडता हैं यह अर्जन अनुकरण के रूप में होता है ।

1.4.4 सृजनात्मकता

मानव ओर मानवेत्तर भाषा को अलगानेवाला यह अभिलक्षण है प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक चौम्सकी ने सृजनात्मकता को आधार बनाकर भाषा के असीमितता के तत्व की चर्चा की है । भाषा में सीमित ध्वनियाँ, शब्द रूप होने के बावजूद मानव अपनी आवश्यकता अनुसार नित्य-नवीन वाक्यों का प्रयोग करता रहा है और भाव विचार के आदान-प्रदान की शृंखला अविरत रूप से बरसों से जारी है । उसमें कहीं कोई अवरोध या बाधा उपस्थित नहीं हुई है । सब से महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हमेशा नये वाक्यों के प्रयोग के उपरान्त भी वक्ता श्रोता के बीच सम्प्रेषण सहजता, सरलता से हो जाता है दोनों की भाषिक क्षमता के अनुरूप वाक्य निरन्तर संप्रेषण का प्रकार्य पूर्ण करते हैं । मानवेत्तर भाषा में यह संभव नहीं है । एक पशु वर्षो से जैसा बोल रहा है वैसा ही आज भी बोलता है । इसी कारण मानवेत्तर भाषा में सृजनात्मकता या नया नहीं हैं । मानव भाषा में सृजनात्मकता होने के कारण ही बरसों से सभी भाषा में भाषा-भाषी भाषा का प्रयोग अपनी इच्छा और आवश्यकता अनुसार करते आ रहे हैं तथापि भाषा

हर प्रयोक्ता को हर समय नयेपन या ताजगी की अनुभूति कराती है जैसे मैं, तुम, वह, मिलना इन चारों शब्दों से - 'मुझे', तुमसे वह बात कहने के लिये मिलना है ।' 'वह तुमसे मुझे मिलवाने की इच्छा रखता है', 'तुम मुझसे मिलो, उसमें उसकी खुशी है', 'मुझे तुमको उससे मिलवाना है । आदि अनेक वाक्यों की रचना हो सकती है ।

1.4.5 परिवर्तनशीलता

भाषा परिवर्तनशील होती है । भाषा की जीवन्तता का यह प्रमाण है । भाषा और समाज का अन्त: सम्बन्ध होता है । समाज भी परिवर्तनशील होता है । समाज के परिवर्तन से आशय है समाज में रहनेवाले लोग-मनुष्य आदि का परिवर्तन । यह परिवर्तन भौतिक और मानसिक दोनों स्तर पर होता हैं परिस्थितियाँ बदलने पर भाषा भी मानव और समाज के अनुरूप अपना रूप बदलती है मनुष्य अपनी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भाषा-प्रयोग में बदलाव लाता है । परिवर्तन कभी स्वयं होता है तो कभी परिस्थितिवर्ष । भाषा परिवर्तन के कई कारण होते हैं । भाषा परिवर्तन द्रुतगति से नहीं अपनी गति से होता है । संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से अनेक आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के विकास का इतिहास इसका प्रमाण है । केवल हिन्दी भाषा की ही बात करें तो सौ साल पहले की हिन्दी और आज की हिन्दी में निश्चित रूप से परिवर्तन आया है । संचार एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र के विकास, भूमंडलीकरण के चलते परिस्थितयों में आये परिवर्तन ने अनेक नये शब्दों का जन्म दिया है तो कुछ का परिवर्तन भी किया गया । भाषा-व्यवस्था के ढांचे में -नये वाक्य, अर्थ परिवर्तन आदि स्पष्ट नजर आते हैं । उदाहरण के रूप में -संगणक, मोबाईल, इंटरनेट आदि नये शब्द तथा उससे सम्बन्धित नयी संकल्पना प्रस्तुत करने वाले पारिभाषिक शब्द, अवधारणा आदि को लिया जा सकता है । पुराने उदाहरण में देखें तो संध्या का सांझ, सूर्य का सूरज होना शब्द स्तरीय परिवर्तन है तो वैसे ध्वनि, रूप, अर्थ स्तर पर परिवर्तन के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

भाषा में आनेवाला परिवर्तन ही भाषा को सृजनात्मक क्षमता प्रदान करता है साथ ही नयापन भी । इस अभिलक्षण के कारण ही मानवभाषा पशु-पक्षियों, अन्य जीव-जन्तुओं की भाषा से अलग पड़ती है । मानवेत्तर भाषा में परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं होती है । भैंस, बैल, सिंह, आदि पशुओं की भाषा वैसी ही है जैसी सालों पहले थी । आज भी कौआ-कांय-कांय ही करता है, कोयल भी ठीक वेसे ही कुहुकती है जैसे बरसों पहले कुहुकती थी । सृजनात्मकता के पीछे अनुकरणग्राह्यता और परिवर्तनशीलता जैसे अभिलक्षण काम करते है ।

1.4.6 बहुघटकता या विच्छिन्नता

भाषा अनेक स्तरीय व्यवस्था होती है । मानव भाषा की यह विशिष्टिता है कि-विभिन्न भाव एवं विचार की अभिव्यक्ति मनुष्य जिस भाषा के माध्यम से करता है वह अनेक घटकों से निर्मित होती है । जैसे कई ध्वनियाँ मिलकर शब्द, कई शब्दों के योग से वाक्य बनता है । मानव अपनी भावाभिव्यक्ति जिस प्रकार भाषा के माध्यम से करता है वैसे मानवेत्तर भाषा से पशु-पक्षी या अन्य जीव जन्तु नहीं कर सकते । और न ही उनकी अभिव्यक्ति को हम खंडों या

टुकड़ों में विश्लेषित कर सकते हैं जैसे किसी मानव भाषा में हुई अभिव्यक्ति को भाषिक विश्लेषण से स्पष्ट कर सकते हैं । उदाहरण के रूप में नर-मादा पशु की आपसी भावोत्तेजक ध्वनियों को विश्लेषण संभव नहीं है जबकि मानव भाषा में हुई बातचीत को वाक्य, पद, शब्द, ध्वनि आदि में विभाजित किया जा सकता है । इस प्रकार मानव भाषा की एकाधिक इकाईयों के योग से निर्मित होने को ही बहुतघटकता या विच्छिन्नता कहा जाता है ।

1.4.7 अभिरचना की द्वैतता

मानव भाषा में द्विस्तरीय अभिरचना होती है । जैसे एक स्तर पर भाषा सार्थक होती है तो दूसरे स्तर पर वह अर्थभेदक होती है । भाषा की दो स्तरीय व्यवस्था को ही अभिरचना की द्वैतता कहा जाता है । उदाहरण के रूप में एक वाक्य लें- "सोहन स्कूल जाता है" यह वाक्य स्तर है जिसका एक सुनिश्चित अर्थ है । वाक्य को विभाजित करने पर 'सोहन, स्कूल जाता है' इकाईयाँ मिलती हैं जिन्हें रूपिम कहा जायेगा । रूपिम स्तर पर भाषा सार्थक होती है परन्तु जैसे उसका आगे विभाजन करते हैं जैसे सोहन का स् + ओ + ह् + अ + न + अ वैसे ही अन्य रूपिमों का विभाजन करने पर जो ध्वनियाँ प्राप्त होती है वह सार्थक नहीं होती हैं, और न ही उसे निरर्थक कहा जा सकता है । क्योंकि निरर्थक होने पर भला ये सार्थक शब्दों का निर्माण कैसे कर सकती हैं । इस स्तर पर वे अर्थभेदक होती हैं । अर्थात सार्थक न होने के बावजूद एक ध्वनि दूसरी ध्वनि के साथ मिलकर सार्थक शब्द का निर्माण करती है । जैसे 'क' और 'ल' का कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं होता है पर दोनों के योग से कल सार्थक शब्द का निर्माण होता है । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भाषा की अभिरचना द्वैतता में एक स्तर पर भाषा सार्थक होती है जैसे-वाक्य, पद, शब्द तो दूसरे स्तर पर अर्थभेदक होती है जैसे ध्वनि स्तर पर।

1.4.8 वक्ता-श्रोता की दोहरी भूमिका

मानव भाषा में कम से कम दो मनुष्यों के बीच आदान-प्रदान की, संप्रेषण की प्रक्रिया घटित होती है । भाषा बोली जाती है अत: वहाँ वक्ता आ जाता है । भाषा सुनी जाती है अत: वहाँ श्रोता की भूमिका होती है । वक्ता-श्रोता के बीच बोलते-सुनने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है अर्थात् उदाहरण के रूप में सोहन बोलता है और रमेश सुनता है तब सोहन वक्ता है और रमेश श्रोता है । पर जब सोहन की बात सुनकर रमेश बोलता है और सोहन सुनता है तब सोहन श्रोता हो जाता है और रमेश वक्ता । भाषा-व्यवहार में वक्ता श्रोता की भूमिका हमेशा बदलती रहती है अत: भाषा में वक्ता हमेशा वक्ता या श्रोता हमेशा श्रोता नहीं रहता है । भूमिकाओं का बदलाव ही वक्ता-श्रोता की दोहरी भूमिका का निर्देश करता है ।

1.4.9 दिशा और काल की अंतरणता

मानवेत्तर भाषा से मानवभाषा को अलग करने वाला यह एक अन्य अभिलक्षण है । मानव भाषा के लिये स्थान और काल का बंधन नहीं होता है । जैसे मानव भाषा वर्तमान काल की सूचना तो देती है पर उसी भाषा से हम अतीत और भविष्य के विषय में भी बातचीत कर सकते हैं । उदाहरण के रूप में खड़ी बोली वर्तमान की भाषा है पर इस वर्तमान की भाषा से

हम अतीत की सभी भाषाओं, परिस्थितियों के बारे में बात कर सकते हैं । ऐसा नहीं कि खडी बोली 1वीं2 सदी में नहीं थी तो उस समय की बात नहीं कर सकते हैं । ठीक वैसे ही सौ साल के बाद क्या होगा उसके विषय में वर्तमान की भाषा में सूचना दे सकते हैं ऐसा नहीं कि उस समय वर्तमान भाषा होगी या नहीं यह तय न होने के कारण हम नहीं बता सकते । इस प्रकार भाषा कालांतरित होती है । कालांतरण की भांति भाषा स्थानान्तरण के बंधन से भी मुक्त होती है । जैसे हिन्दी, हिन्दी भाषी प्रदेशों में तो भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह अन्य प्रदेशों या विदेशों में नहीं बोली जा सकती । दो समान भाषा-भाषी मिलने पर भाषा का प्रयोग विश्व में कहीं भी किसी भी स्थान पर किया जा सकता है । भाषा को काल की तरह स्थान का बंधन भी नहीं होता है ।

1.4.10 असहजवृत्तिकता

मानवेत्तर भाषा सहजवृत्तिक होती है अर्थात् पशु-पक्षियों में जो वृत्ति जगती है तदनुसार ध्वनियां निकालते हैं । वहाँ कोई बात छिपाने या ढंकने की नहीं होती है ।मानव भाषा के माध्यम से मानव अपने भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान करता है परन्तु हमेशा भाव एवं विचारों की सहज अभिव्यक्ति नहीं होती है । कभी कभार मानव अपने भाव या विचार को छिपाने के लिए भी भाषा का प्रयोग करता है । अर्थात् भाषा का कृत्रिम, सहज-वृत्तिक प्रयोग संभव है । उदाहरण के रूप में घर में पति-पत्नी के बीच झगड़ा होता है, परस्पर अत्यन्त गुस्से में होने पर भी उसी समय आकस्मिक किसी मेहमान के आने पर प्रसन्नता की मुद्रा में खुशी की अभिव्यक्ति करते हैं । जबकि, वे वास्तव में गुस्से में होते हैं और आकस्मिक आये अतिथि के विषय में मन में न जाने क्या सोचते हैं पर भाषा में प्यार मोहब्बत की अभिव्यक्ति करते है । किसी भाषा वैज्ञानिक ने कहा है कि भाषा से जहां एक ओर सत्य का उद्घाटन हो सकता है वही भाषा से मनुष्य सत्य को छिपा भी सकता है ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि - निश्चित रूप से मानव भाषा ऐसी विलक्षण विशेषताओं से युक्त होती है जिसके परिणाम स्वरूप वह जहां एक मानवेत्तर भाषा से अलग तो होती ही है पर साथ में मानव एवं मानव समाज के विकास एवं प्रगति की कहानी भी कहती है।

1.5 भाषा और भाषिक व्यवहार

भाषा की प्रचलित परिभाषा के अनुसार यह विचारों को संप्रेषित करने का जरिया है, लेकिन इस संप्रेषण के माध्यम द्वारा अनुष्य केवल पारस्परिक वार्तालाप ही नहीं करता विचार करता है, भाषण देता है, अभिनय एवं विनय करता है तथा स्वागत वार्तालाप जैसे अनेक कार्य कलापों में भाषा का सहारा लेता है । भाषा के विविध प्रयोगों और उपयोगों को भाषिक व्यवहार कहा जाता है ।

मनुष्य के भाषिक व्यवहार को तीन भागों में बांट सकते हैं:-

1. स्वागत या आत्मालाप
2. बातचीत या वार्तालाप
3. भाषण (एक वक्ता द्वारा बड़े समुदाय को संज्ञोधित करना)

1. **स्वागत या आत्मालाप** : इसका आशय है अपने जीवन में विविध स्थितियों में स्वागत वार्तालाप करता है । विशेषकर विचार करते समय किसी आवेश अथवा उत्तेजना के क्षणों में परीक्षा आदि के लिये किसी सूत्र को कंठस्थ करते हुए अथवा पठित अंश को दोहराने के लिये ओर प्रार्थना तथा ईश्वर के सामने आत्मनिवेदन करते हुए - इन सबके अतिरिक्त नहाते हुए गुनगुनाना, बहुत छोटे शिशुओं से बातें करना । सुसुप्तावस्था में कुछ-कुछ बोलना आदि इसके अंतर्गत आते है । इस प्रकार का भाषिक व्यवहार कमोबेश हर वर्ग के लोगों में लक्षित किया जाता है ।
2. **बातचीत या वार्तालाप :** भाषिक व्यवहार का सबसे सशक्त व्यापक ओर महत्वपूर्ण पक्ष है बातचीत या वार्तालाप । इसमें वक्ता और श्रोता दोनों की अवस्थिति होती है और वक्ता श्रोता का स्थान बदलता रहता है । यह सिलसिला काफी देर तक चलता रह सकता है । कभी-कभी यह बातचीत दो या अधिक लोगों के बीच भी होती है । संभाषण की अनेक स्थितियां इस वर्ग में आती हैं । जिनमें आज्ञा, अनुज्ञा, निर्देश, प्रश्न उत्तर, भावाभिव्यक्ति आदि अनेक रूप परिलक्षित हो सकते है ।
3. **भाषण (एक वक्ता द्वारा बड़े समुदाय को संज्ञोधित करना) :** भाषिक व्यवहार का यह पहलू एक वक्ता का अपेक्षाकृत बडे समुदाय से रूबरू होना है इसमें वक्ता मुखर होता है जबकि श्रोता निष्क्रिय । कुछ अपवादों को छोड़ दे तो विद्यालयों, महाविद्यालयों की कक्षाएँ, राजनीतिक नेताओं की जनसभाएं, संतों ओर महात्माओं के प्रवचन, आकाशवाणी और दूरदर्शन की वार्ताएँ, समाचार बुलेटिन, रेल्वे स्टेशनों और हवाई अडडों की घोषणाएँ, एक पक्षीय भाषण के विविध उदाहरण है ।

भाषा के दो पक्ष है जेसा कि हम पहले बता चुके हैं मानसिक और भौतिक । स्थूल अर्थो में ध्वनियों का समूह भाषा कहलाता है । ध्वनियों के मेल से शब्द, शब्दों के मेल से पद और पदों के मेल से वाक्य बनते हैं । वाक्य भाषा की सबसे छोटी, सार्थक इकाई है जिसके द्वारा मानव मन में स्थित विभिन्न भावों ओर विचारों की प्रकट किया जाता है । किन्तु भाषा का यह स्वरूप केवल भौतिक है इसके अलावा भाषा का एक सूक्ष्म रूप भी है जिसे भाषा का मानसिक पक्ष भी कहा जा सकता है । उदाहरण के लिये जब कोई कहता है कि अलका बंगला जानती है तो तात्पर्य यह होता है कि अलका के मस्तिष्क में मौजूद उन भाषिक संस्कारों के बारे में बात की जा रही है जिसकी मदद से वह बंगला भाषा बोलती और समझती है|

एक संगीतकार के दिमाग में संगीत संस्कार के रूप में मौजूद रहता है । जब वह कोई वाद्ययंत्र बजाता है तो उससे संगीत के स्वर सुनियोजित रूप में प्रस्फुटित होते हैं, लेकिन एक ऐसा व्यक्ति जो संगीत नहीं जानता वह वाद्ययंत्र को छोडकर केवल बेहतरीन ध्वनियां या शोर ही उत्पन्न कर सकता है । स्वर लहरियों से पूर्ण संगीत नहीं । इससे स्पष्ट होता है कि जिस तरह संगीत मानसिक संस्कार है उसी तरह भाषा भी मानसिक संस्कार है और मानसिक संस्कारहीन व्यक्ति न वह भाषा बोल सकेगा और न ही वह समझ सकेगा ।

तेजपाल चौधरी लिखते हैं "किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि भाषा का भौतिक पक्ष नगण्य या कम महत्वपूर्ण है । जिस प्रकार अच्छे वाद्य यंत्रों के बिना अच्छा संगीत उत्पन्न नहीं किया जा

सकता उसी प्रकार स्वास्थ्य वागवयवों के बिना निर्दोष भाषा नहीं बोली जा सकती । जब हम संभाषण करते हैं, तो हमारे भाव और विचार भाषिक संस्कारों की सहायता से वाक्य रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, वागवयव उन्हें उच्चारित भाषा का रूप देते हैं और श्रोता अपने भाषिक संस्कारों के कारण उन्हें अविकल रूप से ग्रहण कर लेता है । वस्तुत: वक्ता और श्रोता के बीच जितना ज्यादा भाषिक तालमेल होगा उनका संभाषण उतना ही सफल होगा । आयु, शिक्षा, सामाजिक और बौद्धिक स्तर मिलकर भाषिक तालमेल को निर्धारित करते हैं ।"

भाषा के मानसिक और भौतिक पक्षों की बात फर्दिना द सस्यूर ने भी कही है । वे मानते है कि भाषा के दो रूप होते हैं : भाषा ओर वाक् । भाषा संस्कार रूप में विद्‌यमान अमूर्त वस्तु है ओर वाक् उसका स्थूल भौतिक रूप । इतना ही नहीं भाषा सामाजिक वस्तु है और वाक् वैयक्तिक । सस्यूर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भाषा समाज के संस्कारों में अमूर्त रूप में विद्‌यमान रहती है और वाक् व्यवहार में प्रयुक्त होता है| भाषा का भौतिक रूप वक्ता की योग्यता शिक्षा-दीक्षा और परिवेश के अनुसार बदलता रहता है परन्तु मानसिक रूप अपेक्षाकृत स्थिर रहता है । हां, जब कोई भाषिक परिवर्तन बहुत व्यापक जन समुदाय द्‌वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह भाषा के अमूर्त संस्कारों को भी प्रभावित करता है ओर समयान्तर में भाषा विकास का रूप ले लेता है ।

निर्दोष संप्रेषण के लिये वक्ता और श्रोता के मध्य तालमेल का होना अति अनिवार्य हैं उदाहरण के लिये यदि एक मनोविज्ञान की प्रवक्ता अपने निरक्षर नौकर को मनोविज्ञान की बारीकियां समझाए तो या तो वह ऊब कर वहां से भाग जाएगा अथवा अपने स्वामी के प्रति आज्ञानुवर्तिता प्रदर्शित करते हुए झूठमूठ सिर हिलाता रहेगा । बौद्धिक स्तर की यह असमानता तो टाली भी जा सकती है लेकिन यदि श्रोता वक्ता की भाषा से ही अनभिज्ञ हो तो परस्पर संभावना एक निष्फल चेष्टा बन कर रह जायेगी ।

मनुष्य का जीवन आज से पहले की तुलना में कहीं अधिक जटिल, संश्लिष्ट और तेज गति वाला हो गया है । हमें अपने दैनिक काम में भी कई भाषाओं की जरूरत पडती है । घर में हम अपनी मातृभाषा बोलते हैं घर के बाहर स्थानीय भाषा ओर कई स्थानों पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी । व्यावहारिक जरूरत के कारण लोग एकाधिक भाषाओं में भाषिक तालमेल और संप्रेषण में सक्षम सिद्ध हो रहे हैं ।

1.6 विचार संदर्भ/शब्दावली

1. इंगित - संकेत, इशारा
2. प्रतिपाद्‌य - विषय
3. सृजन - बनाना, निर्माण करना
4. यादृच्छिकता - जैसी इच्छा हो अथवा जो माना गया है उसे मानने की प्रवृत्ति
5. आनुवांशिक - वंश परंपरा से प्राप्त
6. द्‌वैतता - द्‌विस्तरीय, दोहरापन
7. निःसृत - निकली हुई
8. विनिमय - पारस्परिक लेन-देन

9. जीवंतता - प्राणवत्ता, जीवन के लक्षण

10. बहुघटकता - अनेक खण्डों वाला, भाषा के संदर्भ में मानव भाषा का कई इकाइयों यथा वाक्य, पद, शब्द, ध्वनि से मिल कर बनना है ।

11. मानवेत्तर - मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी

12. आंगिक - शरीर के अंगों से संकलित

13. अवयव - अंग

14. संगणक - कम्प्यूटर के लिये प्रयुक्त होने वाला शब्द ।

1.7 सारांश

मानव के भावों एवं विचारों के आदान-प्रदान के कई तरीके हैं । इंगितों, संकेतों, विविध, हावभाव, चेष्टाओं, भंगिमाओं के द्‌वारा यह कार्य होता है पर उसकी अपनी सीमा है । उसे भाषा नहीं कहा जा सकता । भाषा की एक निश्चित व्यवस्था होती है । संप्रेषण के सभी साधनों में से भाषा ही सर्वश्रेष्ठ साधन है । मानव एवं मानव समाज की सर्वोत्कृष्ट साधना के परिणाम स्वरूप भाषा का जन्म हुआ है । सृष्टि यदि परमात्मा का सुन्दर सृजन है तो भाषा मानव समाज का सुन्दर एवं सर्वोत्कृष्ट सृजन है । भाषा से जहां भावों एवं विचारों का परस्पर आदान-प्रदान होता है वहीं भाषा के द्‌वारा मानव का चिंतन मनन एवं सोचने का कार्य भी सम्पन्न होता है ।

भाषा के अभाव में मानव एवं समाज के विविध क्षेत्रों के विकास एवं प्रगति की कल्पना भी नहीं की सकती है । अत: आचार्य दण्डी ने ठीक ही कहा है कि भाषा रूपी दीपक के प्रकाश से तीनों लोक का अंधकार दूर होता है । इससे आशय यह है कि समाज या संसार के विकास को समझने के लिये भाषा जरूरी है । भाषा महज एक साधन है परन्तु उस साधन से दुनिया भर की सभी क्षेत्रों की जानकारियां हासिल की जा सकती हैं । भाषा ज्ञान नहीं ज्ञान प्राप्ति का साधन है ।

मानव भाषा की तरह मानवेत्तर भाषा का अपना अस्तित्व है परन्तु मानव भाषा वर्षो की मनुष्य एवं समाज की कठोर साधना का फल है । अत: उसकी कुछ अपनी निजी विशेषताएं एवं अभिलक्षण है जो उसे मानवेत्तर भाषा से अलगाते है । पशु-पक्षियों, जन्य जीवजन्तुओं की भाषा युगों से वैसी की वैसी है वहीं मानव भाषा निरन्तर परिवर्तन और अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर आये परिवर्तनों का संकेत देती है । मानवेत्तर भाषा में जहां सृजनात्मकता का नामोनिशान नहीं होता है वहीं मानव भाषा प्रत्येक समय, प्रत्येक अभिव्यक्ति में सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति कराने में सक्षम, समर्थ होती है । एक ओर जहां पशु-पक्षी का बच्चा जन्म से ही सहज रूप से अनुवांशिक रूप से अपने माता-पिता की भाषा सीखकर जन्म लेता है । उसे कुछ सीखने-सिखाने की जरूरत नहीं होती है । वहीं मानव भाषा का अर्जन करता है ओर वह अर्जन अनुकरण के रूप में होता है । संस्कृत विद्‌वान् का पुत्र जन्म से संस्कृत नहीं बोलता उसे अर्जन करना पड़ता है अन्यथा वह जैसा का तैसा रहेगा । इसके विपरीत गांव के किसान का लडका अर्जन प्रक्रिया से गुजरते हुए संस्कृत भाषा का विद्‌वान बन सकता है । भाषा का अर्जन अनुकरण से होता है अनुकरण औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में होता है । मानव जीवन भर अनौपचारिक रूप से भाषा सीखता है और इसी क्रम में वह समाज के विविध क्षेत्रों

की जानकारी, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आदि की जानकारी भी प्राप्त करता है अत: भाषा को सांस्कृतिक संप्रेषणीयता का सबल साधन माना जाता है ।

भाषा जहां वाक्य, रूप, शब्द, स्तर पर सार्थक होती है वहां ध्वनि स्तर पर अर्थभेदक होती है जिसे अभिरचना की द्‌वैतता कहा जाता है । भाषा की एक अन्य विशेषता उसकी बहु घटकता में है । भाषा के द्‌वारा व्यक्त भाव या विचार जो वाक्य में होते हैं उसे विभाजित-विश्लेषित कर रूप, शब्द, ध्वनि जैसे खंड किये जा सकते हैं जबकि मानवेत्तर भाषा में यह संभव नहीं हैं । भाषा स्थान एवं काल की सीमाओं के बंधन से मुक्त होती है अर्थात् वर्तमान की भाषा में अतीत एवं भविष्य के विषय में बातचीत हो सकती है । वैसे ही भाषा का प्रयोग दुनिया में कहीं भी किसी भी स्थान पर किया जा सकता है ।

भाव एवं विचारों की अभिव्यक्ति का सबल माध्यम होने के बावजूद भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने भाव या विचार छिपाने का कार्य भी कर सकता है । भाषा की इस प्रकृति को असहजवृतिकता कहा जाता है । भाषा में वक्ता ओर श्रोता की भूमिका हमेशा समान नहीं रहती । वह बदलती रहती हैं । बोलने पर वक्ता ओर सुनने पर श्रोता । बातचीत में यह भूमिकाएं बदलती रहती है । निष्कर्षत: भाषा मनुष्य का अनुपम सृजन हैं अभी तक भाषा से अधिक श्रेष्ठ भाव-विचार विनिमय का साधन आविष्कृत नहीं हु आ है । वह भाषा मानव उच्चारण अवयवों से उच्चारित होती है । भाषा याद्‌च्छिक ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है । भाषा मानव समुदाय में प्रयुक्त होती हें अत: उसका क्षेत्र समुदाय की दृष्टि से निश्चित होता है । भाषा का प्रमुख प्रकार्य संप्रेषण है अर्थात् भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान करना ।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

क दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. सम्प्रेषण के विविध साधन बतलाइये ।
2. भाषा संबंधी भारतीय विद्‌वानों के मतों पर प्रकाश डालिये ।
3. भाषा संबंधी पाश्चात्य विद्‌वानों के मतों पर प्रकाश डालिये ।
4. प्रमुख भारतीय एवं पाश्चात्य विद्‌वानों के मतों की चर्चा करते हु ए भाषा की परिभाषा दीजिये ।
5. भाषा की परिभाषा देते हु ए भाषा संबंधी प्रमुख मुद्दों का परिचय दीजिये ।
6. मानव और मानवेत्तर भाषा संबंधी भाषा वैज्ञानिकों के मत पर प्रकाश डालिये ।
7. प्रमुख भाषिक अभिलक्षणों की सोदाहरण चर्चा कीजिये ।
8. टिप्पणी:
   अ. मूक साधन एवं मुखर साधन
   ब. किन्हीं दो भारतीय विद्‌वानों की भाषा की परिभाषा
   स. परिवर्तनशीलता
   द. यादृच्छिकता
   य. अभिरचना की द्‌वैतता

र. मानव और मानवेत्तर भाषा

ख लघूत्तरी प्रश्न

1. संकेत भाषा का आशय सोदाहरण बताइये ।
2. भाषा के संवहन पक्ष से क्या तात्पर्य है ।
3. भाषा संबंधी चोम्सकी की परिभाषा दीजिये ।
4. भोलानाथ तिवारी की भाषा परिभाषा को स्पष्ट कीजिये ।
5. भाषा के अभिलक्षण दिशा और काल की अंतरणता को संक्षेप में समझाइये ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये

1. भाषा............................... का अहम साधन है ।
2. प्रत्येक भाषिक उक्त किन्हीं सिद्धांतों के आधार पर............................. होती है।
3. भाषा एक व्यवस्थित... है ।
4. .... का अर्थ है जैसी इच्छा हो ।
5. भाषा की... उसकी जीवंतता का प्रतीक है ।

घ. सही/गलत चिह्नित कीजिये

1. भाषा असीम ध्वनियों से संयोजित व्यवस्था है - सही/गलत
2. भाषा में प्रयुक्त ध्वनि प्रतीक अमूर्त होते हैं । सही/गलत
3. उच्चारण अवयवों से उत्पन्न माध्यम-प्रतीक प्राथमिकता दृश्य होते हैं । सही/गलत
4. मनुष्य को भाषा पैतृक संपत्ति के रूप में मिलती है । सही/गलत
5. मानव भाषा के लिये स्थान और काल का बंधन नहीं होता है । सही/गलत

1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद, 1997
2. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद,
3. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा; भाषा विज्ञान की भूमिका, अनुपम प्रकाशन, पटना, 2001
4. डॉ. उदयनारायण तिवारी; हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1979

इकाई-2 भाषा का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भाषा उद्भव के सिद्धान्त

2.2.1 दिव्योत्पत्ति अथवा ईश्वर सिद्धान्त

2.2.2 संकेत सिद्धान्त

2.2.3 अनुकरण (डिङ्-डॉङ.) सिद्धान्त

2.2.4 अनुकरण (बोउ-बोउ) सिद्धान्त

2.2.5 आवेग (पुह-पूह) सिद्धान्त

2.2.6 श्रम (यो-हे-हो) सिद्धान्त

2.2.7 इंगित (हाव-भाव) सिद्धान्त

2.2.8 सम्पर्क सिद्धान्त

2.2.8 संगीत सिद्धान्त

2.2.10 प्रतीक सिद्धान्त

2.2.11 समन्वय (मिश्रित) सिद्धान्त

2.2.12 प्रतिभा सिद्धान्त

2.3 भाषा विकास का स्वरूप, दिशाएँ और कारण

2.3.1 भाषा विकास का स्वरूप

2.3.2 भाषा विकास की दिशाएँ

2.3.2.1 ध्वनि विकास

2.3.2.2 शब्द विकास

2.3.2.3 पद विकास

2.3.2.4 वाक्य विकास

2.3.2.5 अर्थ विकास

2.3.3 भाषा-विकास के कारण

2.4 विचार संदर्भ/शब्दावली

2.5 सारांश

2.3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.3.6 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में भाषा का उद्भव एवं विकास का अध्ययन किया जायेगा । इसे पढ्ने के बाद आप :-

- भाषा के उद्भव के स्वरूप को समझ सकेंगे ।.
- भाषा उद्भव के विभिन्न सिद्धान्तों का विधिवत परिचय प्राप्त करते हुए उनका परीक्षण एवं विश्लेषण कर सकेंगे ।
- भाषा विकास (परिवर्तन) की विविध दिशाओं ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य एवं अर्थ से परिचित हो सकेंगे ।
- भाषा विकास के बाहय एवं आन्तरिक कारणों से परिचित हो सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

किसी भी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को "भाषा विज्ञान" कहते है । यह निर्विवाद सत्य है कि जिस तरह व्याकरण के बिना भाषा को लिखना और बोलना भली प्रकार नहीं आता उसी तरह भाषा विज्ञान के बिना भाषा के उद्भव संबंधी रहस्यों का सम्यक् ज्ञान नहीं होता । भाषा विज्ञान ही वह कुंजी है जिसके द्वारा किसी भाषा की बनावट, उसके ह्रास एवं विकास के बोधक ध्वनि विकास, शब्द विकास, रूप विकास, अर्थ विकास एवं वाक्य विकास आदि का ज्ञान होता है ।

भाषा विज्ञान ही वह विज्ञान है जहाँ भाषा की उत्पत्ति एवं विकास की व्याख्या, वर्णनात्मक, तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन के माध्यम से होती है । अत: भाषा के सम्यक् उद्भव एवं विकास के अध्ययन के लिये भाषा विज्ञान एक अनिवार्य विज्ञान और अपरिहार्य विषय है ।

2.2 भाषा-उद्भव के सिद्धान्त

भाषा ज्ञान एवं शिक्षा का आधार है क्योंकि भाषा समस्त कार्य का आधार है । भाषा जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक क्षण हमारे साथ रहती है किन्तु "अतिपरिचयादवज्ञा' की तरह हम उसकी अवहेलना करते हैं और यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि भाषा जैसी अमूल्य निधि का उद्भव कैसे हुआ।

यह माना जाता है कि श्वसन उसी क्षण प्रारंभ हुआ होगा जिस क्षण श्वसन क्रिया पर निर्भर पहले जीवधारी का जन्म हुआ, किन्तु श्वसन का वैज्ञानिक अध्ययन बहुत बाद में हुआ होगा । ठीक यही बात भाषा के विषय में कही जा सकती है । आदि मानव ने भी अपनी अभिव्यक्ति किसी क्रिया, नाद अथवा हावभाव के रूप में व्यक्त की होगी । बच्चे की भाषा उत्पत्ति पर विचार करने पर हम पाते हैं कि बच्चा अपनी भाषा, रूदन क्रिया के माध्यम से प्रारंभ करता है धीरे-धीरे रूदन क्रिया में सुखात्मक एवं दुखात्मक विभेद दृष्टि गोचर होने लगते है । कुछ ही महीनों में बालक वाग्यंत्र का प्रयोग कर हँसने, बड़बड़ाने एवं चीखने लगता है ।

भाषा का उद्भव कैसे हुआ, किसके द्वारा हुआ इन प्रश्नों पर मनुष्य ने अनेक वर्षो बाद विचार किया होगा जो आज तक एक पहेली बना हुआ हैं क्योंकि लाखों वर्ष पूर्व मानव के जन्म के साथ जन्मी भाषा की परिस्थितियों एवं कारणों को जानने का कोई साधन मनुष्य के पास नहीं था ।

भाषा की उत्पत्ति के लिये दो बातें अनिवार्य है :-

(1) वागयन्त्र से ध्वनन या वर्णोच्चारण की क्षमता प्राप्त करना ।

(2) उच्चरित ध्वनि का अर्थ के साथ संबंध स्थापित करने का प्रारंभ ।

जहाँ तक ध्वनन अर्थात् ध्वनि उत्पन्न करने का प्रश्न है वह उन अगणित पशु-पक्षियों में पाया जाता है जिनके पास ध्वनि यंत्र है जैसे घोड़ा हिनहिनाता है; बंदर खी-खी करता है इसमें सार्थकता का अभाव है

विचारणीय विषय यह है कि मनुष्य ने सर्वप्रथम शब्द और अर्थ का संबंध कैसे स्थापित किया? इस बात का उत्तर ही जिज्ञासा का विषय है ।

भाषा-उद्भव विषयक अनेक सिद्धान्तों के प्रचलन के बाद भी भाषा की उत्पत्ति का निश्चित उत्तर प्राप्त न होने के कारण भाषा वैज्ञानिकों ने इस विषय को भाषा विज्ञान के क्षेत्र से बाहर घोषित किया । 1866 ई. में पेरिस में भाषा विज्ञान की एक समिति (ला सोसिएट फॉर लिग्विस्टिक) की स्थापना हुई थी । उसने अपने अधिनियम में निर्देश दिया कि "भाषा के उद्भव और विश्वभाषा निर्माण" इन दो विषयों पर विचार नहीं होगा क्योंकि भाषोत्पत्ति विषयक सिद्धान्त अनुमान पर आश्रित है । विज्ञान अनुमान पर आश्रित न होकर तथ्यों पर निर्भर होता है साथ ही भाषा उद्भव का निकट संबंध भाषा विज्ञान से न होकर मानव विज्ञान, दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान एवं समाज शास्त्र से है ।

इसके अतिरिक्त भाषा के उद्भव संबंधी ज्ञान से भाषा की रचना को समझने में कोई मदद नहीं मिलती ।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिक इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करना समीचीन नहीं मानते । उनका मत है कि भाषा के उद्‌गम की समस्या भाषा विज्ञान की शक्ति के बाहर हैं । वस्तुत: मानव की उत्पत्ति और मानव समाज की सृष्टि से इस समस्या का घनिष्ठ संबंध है । मानव मस्तिष्क के विकास तथा समाज के संगठन के साथ-साथ भाषा की क्रमिक सृष्टि हुई । अत: स्पष्ट है कि भाषा की उत्पत्ति का विषय भाषा विज्ञान का न होकर मानव इतिहास तथा समाजशास्त्र का है और इतिहासकारों एवं समाजशास्त्रियों को ही इस विषय पर विचार विमर्श करना चाहिये । विद्‌वानों ने भाषा के उद्भव के संबंध में जो कुछ सिद्धान्त प्रकट किये है उनका ऐतिहासिक महत्व है । जिससे यह पता चलता है कि विद्‌वानों ने भाषा उद्भव संबंधी समस्या का किस तरह समाधान किया । इसीलिये आगे भाषा उद्भव संबंधी सिद्धान्तों का निरूपण किया जायेगा, जो असंख्य पीढ़ियों एवं अनेक शताब्दियों से प्रचलित भाषा के उद्‌गम की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं ।

2.2.1 दिव्योत्पत्ति अथवा ईश्वर सिद्धान्त

यह सबसे प्राचीन मत है । इस मत का कथन है कि जिस प्रकार परमात्मा ने मानव सृष्टि की है उसी प्रकार मानव के लिए एक परिष्कृत भाषा भी दी है अर्थात् भाषा को ईश्वर ने उत्पन्न किया और उसे मनुष्यों को सिखाया । यही मत पूर्व व पश्चिम के सभी देशों व जातियों में प्रचलित था । इसी कारण धार्मिक लोग अपने धर्म ग्रन्थों की भाषा को आदि भाषा मानते थे । भारत के कुछ धर्मानुयायी वैदिक भाषा को मूल भाषा मानते हैं । उनके अनुसार देवता उसी भाषा में बोलते हैं और संसार की अन्य भाषाएँ उसी से निकली है । वेद, उपनिषद, दर्शन, ग्रन्थ

और स्मृतियों में अनेक प्रमाण इस विषय के प्राप्त होते हैं कि ईश्वर से ही वेदों की उत्पत्ति हुई है ।

देवी वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपा: पशवो वदन्ति ।

(ऋग्वेद ८- १०० - ११)

अर्थात् वाग्देवी (भाषा) को देवों ने उत्पन्न किया और उसे सभी प्राणी बोलते हैं । इस मन्त्र में भाषा की दैवी उत्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख है । "अ.इ.उण्.." आदि 14 महेश्वर सूत्र शिव के डमरू से उत्पन्न माने जाते हैं । यह भी भाषा की दैवी उत्पत्ति का सूचक है ।

हिन्दू लोग अपनी इसी मान्यता के आधार पर संस्कृत भाषा को देववाणी कहते है । 'संस्कृत आदि भाषा है' इस कथन की परम्परा को लेकर बाद में अनिश्वर वादी जैन और बौद्धों ने भी अर्द्धमागधी या पालि को आदि भाषा कहना प्रारम्भ किया । ईसाइयों ने 'ओल्ड टेस्टामेंट' की हिब्रू भाषा को और मुसलमानों ने कुरान की भाषा अरबी को आदि भाषा घोषित किया ।

एक जर्मन विद्वान सुसमिल्स ने भाषा की दैवी उत्पत्ति का समर्थन करते हुए कहा है कि "भाषा मानवकृत नहीं है अपितु परमात्मा से साक्षात् उपहार रूप में प्राप्त हुई है ।" जर्मन लोग जर्मन भाषा को आदि भाषा कहते हैं । इसी प्रकार ग्रीस के विद्वानों में 'फूसेइ-थेसइ' का विवाद शताब्दियों तक चला कि भाषा ईश्वरीय देन है या मानवकृत ।

इस प्रकार विविध मतावलम्बी अपने-अपने धर्म ग्रन्थों की भाषा को ईश्वर से उत्पन्न कहकर भाषा के दैवी उत्पत्ति संबंधी सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं । जिस प्रकार 'बिनु हरि कृपा तृनहु नहिं डोलै' के अनुगामी की दृष्टि में ईश्वरेच्छा सारी समस्याओं का सहज समाधान कर देती है, किन्तु विज्ञान की तर्कग्राही दृष्टि उसे स्वीकार नहीं कर पाती । एक अन्य वर्ग दैवी उत्पत्ति के इस मत को श्रद्धा आधारित मत मानते हैं ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त पर मुख्य आपत्तियाँ निम्नलिखित हैं :-

(1) यह सिद्धान्त तर्क विज्ञान संगत नहीं है । केवल आस्था पर निर्भर है ।

(2) यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त है तो भाषाओं के इतने भेद क्यों हैं? पशु-पक्षियों की भाषा तो संसार में समान है किन्तु मानव मात्र की भाषा समान क्यों नहीं है?

(3) जर्मन विद्वान हेर्डेर ने अपने पुरस्कृत निबंध "ओरिजिन ऑफ लैंग्वेज" में इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुए लिखा है यदि भाषा ईश्वरकृत होती तो यह अधिक सुव्यवस्थित और तर्क संगत होती । अधिकांश भाषाएँ अव्यवस्थित और त्रुटि पूर्ण है ।

(4) यदि भाषा ईश्वरीय देन है तो यह जन्म से ही मनुष्य को प्राप्त हो जाती । उसे समाज से सीखने की आवश्यकता नहीं होती । परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है ।

सभी विद्वान इस विचार से सहमत हैं कि भाषा की उत्पत्ति ईश्वरीय या दैवी हो या न हो, परन्तु एक बात सत्य है कि सार्थक और स्पष्ट उच्चारण के योग्य वाग्-यन्त्र और उसको संचालित करने वाली बुद्धि मनुष्य को ईश्वरीय देन है । सामान्यत: यह मत विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है ।

2.2.2 संकेत सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को निर्णयवाद, निर्णय सिद्धान्त, स्वीकारवाद आदि नामों से जाना जाता है । इस सिद्धान्त के मूल में मानव में आज भी विचार आदान-प्रदान के लिए संकेत प्रणाली विद्‌यमान है । इसके अनुसार व्यक्ति प्रारम्भ में अपने विचार संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त करता था । धीरे-धीरे आवश्यकताओं के परिणाम स्वरूप उन्होंने एक साथ मिलकर विभिन्न पदार्थों, क्रियाओं आदि के लिए ध्वनि संकेत निर्धारित कर लिए । इस मत के प्रवर्तक 18 वीं शती के प्रसिद्ध फ्रेंच विचारक रूसो है । इनका अभिप्राय है कि प्रारम्भ में मनुष्य, पशुओं के समान आँख, हाथ, पैर, सिर आदि अंगों को चला कर अर्थात् शारीरिक संकेतों से अपना अभिप्राय स्पष्ट करता था । किन्तु इससे मनुष्य का अभिप्राय पूर्णत: व्यक्त नहीं हो पाता था । इस असुविधा को दूर करने के लिए मनुष्य ने निर्णय किया कि अमुक-अमुक वस्तुओं के अमुक-अमुक नाम निर्धारित किए जाएंगे । इसको सामाजिक समझौता भी कहा जा सकता है । इस समझौते ने ध्वन्यात्मक भाषा को जन्म दिया और भाषा की उत्पत्ति हुई ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त में अनेक विसंगतियाँ हैं -

(1) संकेत तो भाषा का ही संक्षिप्तीकरण है । यदि भाषा नहीं तो संकेतों का अर्थ क्या होगा?

(2) भाषा के बिना सभा-आयोजन और विचार विनिमय कैसे होगा ।

(3) विभिन्न अर्थों के लिए संकेत शब्दों के निर्माण के लिए क्या आधार था? व्यक्ति विशेष के कथन को सर्वसम्मत मान लिया गया या सबने अपने सुझाव दिए । ऐसे में अन्तिम निर्णय की क्या प्रणाली थी? संकेत सिद्धान्त को लेकर अनेक शंकाये हैं जिनका समाधान इस सिद्धान्त से नहीं होता जैसे सृष्टि के आरम्भ में संकेत निर्माण कर लिया गया था पर यह संकेत किसने दिया और जब तक संकेत स्थिर नहीं हुआ था, तब तक लोक व्यवहार कैसे सम्पन्न होता था? जो संकेत निर्धारित हुए वे आगे चलकर बदल क्यों गए? बदले गए तो किसकी सम्मति से? आदि समस्याओं के कारण यह सिद्धान्त मान्य नहीं है ।

2.2.3 अनुरणन (डिङ्-डॉङ्) सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को धातु सिद्धान्त, अनुरणात्मक, अनुकरण, डिङ्-डॉङ्. वाद आदि नामों से निर्दिष्ट किया गया है । इस मत के मूल प्रवर्तक प्लेटो थे किन्तु इसको हेस ने पल्लवित और मैक्समूलर ने पुष्पित किया । इस सिद्धान्त के अनुसार शब्द और अर्थ में रहस्यात्मक नैसर्गिक संबंध है । संसार में किसी भी वस्तु पर चोट मारने पर एक विशेष ध्वनि (झंकार) होती है । उदाहरण के तौर पर हथौड़े से किसी धातु, लकड़ी, कील, पत्थर अथवा शीशे आदि पर आघात करने से विभिन्न प्रकार की ध्वनि (नाद) निकलती है । इसे रणन् कहा जाता है, यही उस वस्तु की पहचान है । इसी रणन के आधार पर लोहा, लकड़ी और काँच आदि में अन्तर किया जाता है । इसी प्रकार किसी वस्तु के गिर जाने पर केवल उसकी आवाज से हम पहचान लेते हैं कि

काँच, बर्तन, लकड़ी अथवा पत्थर गिरा । तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु की अपनी विशिष्ट ध्वनि जो आघात पड़ने पर सुनाई देती है इसे रणन् कहा जाता है ।

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रत्येक वस्तु को देखकर मानव मस्तिष्क में झंकार (रणन) हुई उसी आधार पर प्रत्येक वस्तु का अलग-अलग नाम रखा गया । यह नामकरण प्रक्रिया रणन-मूलक थी । नदी की कल-कल या नद-नद ध्वनि से प्रेरित होकर उसका नाम नदी रखा गया इसी प्रकार अश्व, संसार, पर्वत, मनुष्य आदि नाम रखे गए । इस सिद्धान्त के मानने वालों में आनायास रूप से अभिव्यक्त इन ध्वनियों को धातु की संज्ञा दी गयी । उनके अनुसार इन्हीं धातुओं से भाषा का जन्म हुआ ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त की कुछ स्पष्ट न्यूनताएँ हैं :-

(1) यह सिद्धान्त इतना दोषपूर्ण था कि स्वयं प्रोफेसर मैक्समूलर ने इसे बाद में छोड़ दिया था ।

(2) यह सिद्धान्त शब्द और अर्थ में नैसर्गिक संबंध मानता है जो तर्क संगत से अधिक रहस्यात्मक है । जादूगर की तरह मनुष्य बाहय वस्तुओं से सम्पर्क होते ही शब्द बनाता चला गया जैसे-जैसे सारे शब्द निष्पन्न होते गए वैसे-वैसे उसकी शक्ति भी समाप्त होती गयी ।

(3) डिङ्.-डॉङ्. घण्टे की ध्वनि को कहते हैं । घण्टे की झंकार के आधार पर इसका यह नाम पड़ा । इस सिद्धान्त के द्वारा 400-500 मूल शब्द स्वीकार किए गए, किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि किस वस्तु को देखकर मस्तिष्क में कैसी ध्वनि झंकृत हुई ।

2.2.4 अनुकरण (बोउ-बोउ) सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को ध्वन्यनुकरण अथवा अनुकरण सिद्धान्त, शब्दानुकरणवाद, भो-भो वाद आदि कहा जाता है । इसके अनुसार मनुष्य ने अपने आस-पास के पशु पक्षियों से होने वाली ध्वनियों के अनुकरण पर अपने लिए शब्द बनाए और फिर उसी आधार पर भाषा रूपी भवन खड़ा किया । इस सिद्धान्त का मूलनाम “ओनोमेटो पोइक थ्योरी" है । जिसका अर्थ है ध्वन्यानुकरण सिद्धान्त । इसे 'इकोइक थ्योरी' भी कहते हैं क्योंकि यह सिद्धान्त इको (प्रतिध्वनि) पर निर्भर है । प्रो. मैक्समूलर ने सिद्धान्त को उपहासास्पद बताते हुए इसका नाम बोउ-बोउ सिद्धान्त अर्थात भो-भो वाद मनोरंजनार्थ रखा ।

इस सिद्धान्त का अभिमत है कि सर्वप्रथम भाषा का निर्माण अनुकरण के आधार पर किया गया होगा । जैसे एक पक्षी काँव-काँव या काउ-काउ बोलता था तो मानव ने तुरन्त उसकी ध्वनि का अनुकरण करके उस पक्षी का नाम काक या काग रख दिया । इसीलिए आज भी संस्कृत में उसे 'काक्' असमिया में 'काउरी', मणिपुरी में 'क्वाक', मराठी में ‘कावला', उडिया में 'काउ', तेलुगु में ‘काकि' तमिल एवं मलयालम में 'काक्का', कन्नड में ‘कागे' हिन्दी में 'कागा',

बंगाली में 'काक' पंजाबी में 'कॉ' और अंग्रेजी में 'क्रो' कहते हैं । ये सभी शब्द अनुकरण के आधार पर बने है । ।

इसी प्रकार गर्जन, तर्जन, चमाचम, जगमग, चकमक, छलछल, कलकल, खटखटाना, गिड़गिड़ाना आदि शब्दों का निर्माण ध्वनि साम्य के आधार पर हुआ ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष दिखाई देते हैं -

(1) सभी भाषाओं में थोड़े से ही शब्द अनुकरणात्मक होते हैं और कुछ भाषाओं में तो एक भी शब्द अनुकरणात्मक नहीं होता । इससे यह सिद्ध होता है कि अनुकरणात्मक शब्द से भिन्न भाषा के अन्य शब्दों की उत्पत्ति कैसे हुई होगी?

(2) यह सिद्धान्त मनुष्य को भाषाविहीन मानकर चलता है और यह सिद्ध करता है कि मानव को भाषा पशु-पक्षियों का अनुकरण करने पर प्राप्त हुई ।

(3) सभी भाषाओं में अनुकरणात्मक शब्द भी एक से नहीं मिलते जैसे झर-झर की ध्वनि करने वाले को संस्कृत में निर्झर, हिन्दी में 'झरना', अंग्रेजी में 'स्ट्रिम' और जर्मन में 'स्ट्रीम' आदि कहते हैं । यदि अनुकरण के आधार पर भाषा के शब्द बने होते तो सभी समान होते किन्तु ऐसा सर्वत्र दिखाई नहीं देता ।

(4) यह मत अधिक से अधिक 1 प्रतिशत शब्दों का समाधान करता है । 99 प्रतिशत शब्दों के लिए यह मत मौन है ।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण भाषा की उत्पत्ति अनुकरण के आधार पर नहीं हुई है । ओटायेस्पर्सन ने भी इसे आंशिक मान्यता प्रदान की है । अत: यह मत सीमित अंश में ही मान्य है पूर्णतया मान्य नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में पृथक ध्वनियाँ झंकृत हो सकती है । इससे एक वस्तु के अनेक नाम हो सकते है । यह मत अस्वीकृत होने पर भी रोचकता के लिए प्रचलित है ।

2.2.5 आवेग या (पुह-पूह) सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को मनोभावाभिव्यंजक, मनोभावाभिव्यक्ति एवं पुह-पूह वाद आदि नामों से व्यक्त किया जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य पहले विचार प्रधान प्राणी न होकर भाव प्रधान प्राणी था इसीलिए आदिकाल में मनुष्य ने अपने हर्ष-शोक, घृणा, क्रोध, भय, विस्मय आदि भावावेश को प्रकट करने वाले शब्दों या ध्वनियों का उच्चारण किया । इन ध्वनियों से ही बाद में भाषा का उद्भव हुआ । हर्ष में अहो, अहा, आहा, वाह आदि, शोक में आह, ओह, हाय, हायरे, क्रोध में आ:, घृणा में छि:, धत्, दुत्, धिक् आदि शब्द इसी प्रकार के हैं । मनुष्य इन आवेग सूचक ध्वनियों के द्वारा अपने मनोभावों को प्रकट करता था । धीरे-धीरे भाषण शक्ति का विकास हुआ और भाषा का उद्भव हुआ । विकासवाद के जन्मदाता डार्विन ने आवेग ध्वनियों का कारण शारीरिक माना है । जैसे घृणा में हुह, पिश् ध्वनि निकलती है तो विस्मय की स्थिति में ओह ध्वनि निकलती है ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त में अनेक दोष हैं :-

(1) आवेग शब्द आवेगात्मकता को ही प्रकट करते हैं सामान्य भावाभिव्यक्ति को नहीं अतएव इनका संबंध भाषा के मुख्य अंग से नहीं है ।

(2) भिन्न-भिन्न भाषाओं में ऐसे शब्द एक रूप में नहीं मिलते यदि ये शब्द स्वाभाविक रूप से निःसृत हुए होते तो अवश्य ही सभी मनुष्यों में ये लगभग एक से होते । पर संसार भर के मनुष्य दुःखी होने पर एक प्रकार से न हाय करते हैं और न प्रसन्न होने पर एक प्रकार से वाह ।

(3) प्रोफेसर वैन्फी ने इस मत का खण्डन किया है कि आवेग ध्वनियाँ भाषा की अक्षमता को सूचित करती है । ये भाव भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किए जा सकते । अत: इनसे भाषा का उद्भव नहीं हो सकता ।

(4) ये शब्द विचार पूर्वक प्रयुक्त नहीं होते अपितु आवेग की तीव्रता में अनायास निकल पड़ते है ।

(5) हाँ इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि इस प्रकार की ध्वनियाँ आरम्भ में अधिक रही होगी और उनका प्रयोग भी भाषा के अभाव में अधिक होता रहा होगा । सारांशत: यह कह सकते. हैं कि आवेग सिद्धान्त भी भाषोत्पत्ति विषयक उलझन को सुलझाने में असमर्थ है ।

2.2.6 श्रमध्वनि (यो-हे-हो) सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को श्रमध्वनि या यो-हे-हो वाद भी कहते हैं । इस सिद्धान्त के प्रतिपादक न्वायर नामक विद्वान थे । उनका सिद्धान्त था कि शारीरिक श्रम करते समय श्वांस-प्रश्वांस की गति तीव्र हो जाती है । जिसके फलस्वरूप मांसपेशियों में ही नहीं अपितु स्वर तंत्रियों का भी संकोच-विस्तार होने लगता है और स्वर तंत्रियों का कंपन बढ़ जाता है और इससे कुछ ध्वनियाँ अनायास निकलने लगती है । उदाहरणार्थ कपड़ा धोते वक्त धोबी (छियो-छियो) बोलता है तो नाव खेते समय मल्लाह (हैया-हैया) या छप्पर उठाते समय मजदूर (हो-हो, हूँ-हूँ) कहते हैं ।

इसी प्रकार आदि मानव भी अपने श्रम निवारण के लिए कुछ ध्वनियों का उच्चारण करता रहा होगा और इन्हीं ध्वनियों से भाषा का उद्भव हुआ होगा ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त में निम्नलिखित (कमियाँ) न्यूनताएँ दृष्टिगोचर होती हैं -

(1) ये श्रम मूलक ध्वनियाँ निरर्थक होती है । अत: इन निरर्थक ध्वनियों से कभी भी सार्थक ध्वनिमयी भाषा का उद्भव सम्भव नहीं है ।

(2) इन ध्वनियों का किसी भी भाषा में कोई विशेष स्थान नहीं है क्योंकि छियो-छियो या हैं-हैं या हो-हो आदि ध्वनियाँ अर्थ शून्य हैं जो परिश्रम करते समय स्वर तंत्रियों से अनायास निकल जाती हैं । सभी व्यक्ति इनका उच्चारण नहीं करते ।

(3) इन ध्वनियों का संबंध सामूहिक कार्य करने से है जैसे किसी भारी पदार्थ को उठाने के लिए जब एक आदमी पहले जोर लगाओ कहता है तब अन्य सभी मजदूर 'हैं-ई-साब' एक साथ कहते हैं । जिससे सामूहिक शक्ति द्वारा वह भारी पदार्थ सहज ही में उठ जाता है ।

(4) इन ध्वनियों का संबंध बौद्धिक चिंतन से नहीं अपितु शारीरिक श्रम से है ।

(5) अत: निर्विवाद सत्य है कि ऐसी निरर्थक एवं चिन्तनहीन ध्वनियों से कभी भाषा की उत्पति नहीं हो सकती । इसके संबंध में बेन्फी का यह कथन अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे शब्द केवल वहाँ प्रयुक्त किए जाते हैं जहाँ बोलना संभव नहीं होता । अत: यह सिद्धान्त अंशत: ठीक है

2.2.7 इंगित सिद्धान्त (हाव-भाव सिद्धान्त)

इस सिद्धान्त के प्रस्तावक डॉ. राय है । 1930 ई. के लगभग प्रो. रिचर्डस और आइसलैण्डिक भाषा के विद्वान अलेक्जेंडर जोहान्सन ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया । उन्होंने भारोपीय, हीब्रू, पुरानी चीनी, तुर्की आदि भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर अपनी तीन पुस्तकों में इंगित सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना की है । प्रो. रिचर्डस ने अपनी पुस्तक "ह्यूमन स्पीच" में इसे मौखिक इंगित सिद्धान्त के नाम से प्रस्तुत किया है । डार्विन ने भी छः असम्बद्ध भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस सिद्धान्त की पुष्टि की थी । ये भाषा के विकास की चार सीढ़ियाँ मानते है-

(1) भावव्यंजक ध्वनियाँ - भय, हर्ष, क्रोध आदि की अवस्था में मौखिक ध्वनियों द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्त करना ।

(2) अनुकरणात्मक शब्द - पशु-पक्षियों आदि की ध्वनियों के अनुकरण पर शब्द रचना ।

(3) भाव संकेत या इंगित - अंगों के संकेतों द्वारा भाव प्रकाशन । इसे जोहान्सन ने "अनजाने अनुकरण" कहा है । इसमें केवल स्थूल वस्तुओं के लिए शब्द बने ।

(4) इसमें सूक्ष्मभावों के लिए शब्द बने ।

इस मत का कथन है कि प्रारम्भ में मनुष्य ने अपनी आंशिक चेष्टाओं का ही वाणी के द्वारा अनुकरण किया और फिर भाषा बनी । जैसे-पानी पीने के समय होठों के मिलने और सांस अन्दर खींचने पर 'पा' जैसी ध्वनि हुई इसलिए 'पा' का अर्थ पीना हुआ । इसी प्रकार पीते समय 'सर' या 'शरब' ध्वनि को लेकर 'शर्बत बना । इसी प्रकार अन्य शब्द भी बने । एलेक्जेण्डर जोहान्सन ने यह निष्कर्ष निकाला कि सम्पूर्ण भाषा की उत्पत्ति इन्हीं इंगितों के आधार पर हुई है ।

समीक्षा

यह सिद्धान्त भी सारहीन ही है -

(1) अपने अनुकरण पर शब्द रचना हास्यास्पद है । दूसरे के अनुकरण पर शब्द रचना मान्य हो सकती है ।

(2) कुछ सामान्य क्रियाएँ अवश्य इंगितों से निर्मित हुई हैं किन्तु भाषाओं की अन्य सभी क्रियाओं पर यह नियम लागू नहीं होता ।

(3) यदि सभी इंगितों से भाषा की उत्पत्ति होती है तो पशुओं एवं पक्षियों में भाषा अभी तक क्यों विकसित नहीं हुई? वे तो इंगितों पर ही आज तक अपना काम चलाते है ।

(4) हाथ, पैर, ओष्ठ आदि के आधार पर शब्द रचना की कल्पना निर्मूल है ।

(5) अत: उक्त दोषों के कारण इंगित सिद्धान्त भी मान्य नहीं है । इतना अवश्य है कि भाषा में कुछ शब्द अवश्य इंगित सिद्धान्त पर बने हैं परन्तु समग्र भाषा को इससे उत्पन्न मानना उपयुक्त नहीं है ।

2.2.8 सम्पर्क सिद्धान्त

इस मत के प्रवर्तक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी. रवेज है । सम्पर्क का अर्थ है; सामाजिक जीवों में आपसी सम्पर्क रखने की सहजात प्रवृत्ति । इस मत का कथन है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अत: उसमें सम्पर्क स्थापित करने की प्रवृत्ति सहज है । प्रारम्भ में मनुष्य भूख, प्यास, पुकारना आदि की अभिव्यक्ति के लिए इंगित, भौतिक एवं स्पर्श आदि के द्वारा विचारों को अभिव्यक्त करता होगा भाषा उसी का विकसित रूप है । जैसे-जैसे सम्पर्क की आवश्यकता बढ़ती गई उसकी स्पष्टता की आवश्यकता का अनुभव होता गया । सम्पर्क के माध्यम (ध्वनि) का भी विकास होता गया पहले सम्पर्क भावों के स्तर पर फिर विचार के स्तर पर हुआ होगा । इसमें प्रारम्भिक शब्दों का संबंध क्रिया से रहा होगा जैसे माँ का अर्थ दूध या पानी से रहा होगा, फिर छोटे वाक्य बने होंगे तत्पश्चात् विचारों के स्तर पर सम्पर्क बढ़ने से भाषा का विकास हुआ होगा ।

समीक्षा

यह सिद्धान्त भी दोषपूर्ण है-

(1) यह सिद्धान्त मानव मन की स्वाभाविक पद्धति एवं उसकी विकास प्रक्रिया पर आधारित होने के कारण अधिक तर्क संगत है किन्तु

(2) इस सिद्धान्त से न तो भाषा की उत्पत्ति संबंधी जानकारी मिलती है और न ही भाषा वैज्ञानिक जानकारी ही ।

2.2.9 संगीत सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को प्रेम सिद्धान्त भी कहा जाता है । डार्विन, स्पेंसर और येस्पर्सन अंशत: इस सिद्धान्त को मानते है । इस सिद्धान्त के अनुसार मानव के संगीत से भाषा की उत्पत्ति हुई है । आदिम मनुष्य भावुकता में तथा रिक्त समय को व्यतीत करने के लिए कुछ गुनगुनाता होगा उसके गुनगुनाने की निरर्थक ध्वनियाँ धीरे-धीरे वस्तुओं से सम्बद्ध हो गयी और वे सार्थक हो गयी ।

इस प्रकार प्रेम, शोक, दुःख, हर्ष आदि के अवसर पर उच्चरित ये ध्वनियाँ अर्थ पूर्ण शब्द बनी और भाषा का उद्भव हुआ ।

समीक्षा

इस सिद्धान्त में भी कुछ दोष है -

(1) गुनगुनाने से भाषा की उत्पत्ति होना केवल अनुमान पर आधारित है । इसका कोई प्रमाण नहीं है ।

(2) आदिम व्यक्ति गुनगुनाता था इसका कोई भी पुष्ट आधार नहीं है ।

अत: यह सिद्धान्त अस्वीकार किया गया ।

2.2.10 प्रतीक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार यह माना जाता है कि संयोग से या अन्य किसी संबंध से किसी शब्द का किसी अर्थ से संबंध हो जाता है और वह शब्द उस अर्थ का प्रतीक हो जाता है । प्रो. स्वीट ने आदिम भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत अधिक मानी है । भाषा विज्ञान में ऐसे शब्दों को नर्सरी शब्द कहते हैं । ये माता-पिता, भाई-बहन, आदि से सम्बद्ध होते है । इनमें अधिकांश में प्रारम्भिक ध्वनि ओष्ठ्य होती है । अधिकांश भाषाओं में माता-पिता, भाई-बहन आदि के वाचक शब्द इसी वर्ग से प्रारम्भ होते हैं ।

समीक्षा

इस सिद्धांत के भी कुछ दोष हैं-

(1) प्रतीक सिद्धान्त मूलत: भाषा के प्रारम्भिक शब्दों की व्याख्या करता है ।

(2) यह सिद्धान्त स्थूल अर्थ के बोधक शब्दों की उत्पत्ति बता सकता है, किन्तु सूक्ष्म अर्थ के बोधक शब्दों की उत्पत्ति बताने में यह असमर्थ है ।

2.2.11 समन्वय / मिश्रित सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के समर्थक एवं प्रवर्तक प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री हेनरी स्वीट है । यह सिद्धान्त अनेक सिद्धान्तों का मिश्रित रूप है । उनका कथन है कि यदि उपर्युक्त सिद्धान्तों में से आवश्यक सिद्धान्तों को एकत्र कर लिया जाय तो भाषा की उत्पत्ति की समस्या बहुत कुछ हल हो सकती है । प्रो. स्वीट के अनुसार आरम्भिक शब्द समूह तीन प्रकार के शब्दों से बने थे-

(1) अनुकरणात्मक जैसे-म्याँऊ, कु-कु, आदि

(2) मनोभावाभिव्यंजक - जैसे-आहा, ओह, वाह, छि:, धिक् आदि ।

(3) प्रतीकात्मक-जैसे-नर्सरी शब्द । योग्यतमावशेष, नियमानुसार, प्रारम्भिक । असंख्य शब्दों में से योग्यतम शब्द शेष बचे है ।

समीक्षा

(1) भाषा की उत्पत्ति समझाने के लिए अन्य कोई एकमत शुद्ध न होने से सबका समन्वय उपयुक्त माना गया ।

(2) यह सिद्धान्त सामान्यता निर्विरोध रूप से स्वीकार किया जाता है ।

2.2.12 प्रतिभा सिद्धान्त

प्रतिभा सिद्धान्त के संस्थापक आचार्य भर्तृहरि है । "वाक्यपदीय" में भर्तृहरि ने प्रतिभा को विश्व की आत्मा माना है और उसे सर्वशक्ति सम्पन्न बताया है । मनुष्य में प्रतिभा जन्मजात है, मानव में प्रतिभा आत्मा के रूप में है । प्रतिभा के बिना मानव की सत्ता संभव नहीं है । किसी भी वस्तु, ध्वनि, अथवा गुण का निर्णय प्रतिभा के द्वारा होता है । भर्तृहरि ने इसे प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध किया है कि विश्व के प्रत्येक प्राणी में प्रतिभा आत्मा के रूप में कार्य करती है । प्रत्येक प्राणी के आहार, प्रेम, वेश-भूषा, चलना-फिरना, कूदना और ध्वनि में अन्तर होता है । यह इस बात का प्रमाण है कि प्रत्येक प्राणी अपनी विशिष्ट प्रतिभा के कारण ऐसा करता है ।

भट्टतौत ने प्रतिभा का लक्षण किया है- "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रति भामता (इति रूद्र:)" नये-नये भावों विचारों के उन्मेष को प्रतिभा कहते हैं अत: यह स्पष्ट है कि भाषा जैसी अमूल्य वस्तु को मनुष्य की प्रतिभा ने ही उत्पन्न किया होगा । शब्दों (भाषा) में ही विश्व को बाँधने की शक्ति हैं । शब्द (भाषा) नेत्र हैं और प्रतिभा आत्मा है । यही शब्द (भाषा) विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं ।

ऊपर भाषा की उत्पत्ति के विषय में दिये गये सिद्धान्तों में से सम्पर्क सिद्धान्त, प्रतीक-सिद्धान्त और समन्वय-सिद्धान्त इन तीनों सिद्धान्तों को छोड़कर शेष सिद्धान्त पूर्णतया और कुछ अंशत: अस्वीकृत किये गये है । सब सिद्धान्तों को मिला देने पर भी भाषा के 1 या 2 प्रतिशत शब्दों की समस्या का ही समाधान हो पाता है । 98 या 99 प्रतिशत शब्द अछूते ही रहते है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्य में एक भी शब्द ऐसा नहीं हैं, जो इन सिद्धान्तों के समन्वित रूप से भी बनाया जा सके -

"भाषा यादृच्छिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है । "

इन सिद्धान्तों की कुछ मौलिक न्यूनताएँ है -,

(1) ये सिद्धान्त यह मानकर चलते है कि -

(i) मानव आदिकाल में मूक था, यह सिद्धान्त शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से स्वीकार्य नहीं है ।

(ii) आदिकाल में विकास की प्रक्रिया जितनी शीघ्रता से पशु-पक्षियों आदि पर परिलक्षित होती है, उतनी मनुष्य पर नहीं । पशु-पक्षियों में रंभाना, चहचहाना, शब्द करना, जन्म सिद्ध है पर मनुष्य में नहीं ।

(iii) मनुष्य में कोई मौलिक उद्भावना या शक्ति नहीं थी ।

(iv) मनुष्य आदिकाल में अत्यन्त असहाय था । वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ था । (2) इन सभी सिद्धान्तों के द्वारा स्थूल अर्थ के बोधक कतिपय शब्दों की व्याख्या हो जाती, है पर 99 प्रतिशत शब्दों के लिए कोई उत्तर नहीं

मिलता है । सूक्ष्म अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए कोई भी शब्द इन सिद्धान्तों के द्वारा नहीं बन पाते हैं ।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि प्रतिभा प्रत्येक जीव में पृथक-पृथक रूप में रहती है यह प्रत्येक व्यक्ति में संस्कारजन्य होती है । यही मानव जीवन को संचालित करती है । यही प्रत्येक जीव को आवश्यकतानुसार कार्य करने की प्रेरणा देती है । गौरैया का सुन्दर घोंसला बनाना, मकड़ी का जाला बनाना, बन्दर का कूदना, भैंस आदि का जल में तैरना आदि कार्य प्रतिभा के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं । अभी तक प्रतिभा अनुद्बुद्ध रूप में थी आवश्यकता ने बाध्य होकर प्रतिभा पर बल दिया । इस प्रकार आवश्यकता और प्रतिभा के समन्वय से भाषा की उत्पत्ति हुई । भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि से भाषा ईश्वरीय नहीं है । अपितु प्रतिभा ईश्वरीय है इसके द्वारा ही भाषा की सृष्टि होती है । इसी अर्थ में भाषा को ईश्वरीय देन कहा जा सकता है । हम यह कह सकते हैं कि प्रतिभा एक रूप नहीं है और न ही हो सकती है अपितु वह सर्वशक्ति सम्पन्न है ।

2.3 भाषा-विकास का स्वरूप दिशाएँ एवं कारण

2.3.1 भाषा विकास का स्वरूप

विकास (परिवर्तन) सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का नियम है । संसार की कोई भी वस्तु जिस रूप में उत्पन्न होती है, उसी रूप में सदा नही रहती अपितु बदलती रहती है इस बदलाव को ही परिवर्तन अथवा विकास कहते है । परिवर्तन ही जीवन है, चेतना है, विकास है और उल्लास है, जहाँ परिवर्तन नही है, वहाँ जीवन भी नहीं है ।

इसी प्रकार मानव की भाषा मानव का एक अंग है उसमें भी सृष्टि के नियमानुसार परिवर्तन, परिवर्धन, क्षरत्व और नित नूतन रमणीयत्व है । आचार्य यास्क ने निरुक्त में वार्ष्यायणि का मत उद्धृत किया है कि प्रत्येक भौतिक तत्व में 6 प्रकार का विकार होता है - 1. उत्पत्ति 2. स्थिति 3. विकास 4. वृद्धि 5. क्षय 6. विनाश अर्थात् प्रत्येक भौतिक वस्तु का जन्म होता है, उसकी सत्ता होती है, उसमें विकास होता है उसमें वृद्धि होती है, उसमें क्षीणता आती है, और अंत में उसका विनाश हो जाता है ।

परिवर्तन अथवा विकास के कारण ही इस सृष्टि के जगत और संसार नाम पड़े है । यह परिवर्तन संसार के प्रत्येक पदार्थ में दृष्टिगोचर होता है । फूल कली के रूप में आता है, खिलता है, मुरझाता है, नष्ट हो जाता है| किन्तु विकास की गति सभी वस्तुओं में एक जैसी नहीं होती । धान एवं गेहूँ का विकास आसानी से दिखाई पड़ता है, जई छाँव में रखने से दस दिनों में एक बित्ते से भी बड़ी हो जाती है इसके प्रतिकूल अमरूद और जामुन का पौधा बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है और उसके विकास की गति अनुभव में नही आती अर्थात् विकास का क्षण कभी रूकता नहीं है किन्तु किस क्षण कितना विकास हुआ इसको नापने का यन्त्र हमारे पास नहीं है । जब विकास काफी अधिक हो जाता है तभी वह अनुभव में आता है । सभी वस्तुओं के विकास की गति एक नहीं होती और न ही एक वस्तु के विकास की गति विभिन्न

परिस्थितियों और वातावरणों में एक होती है अत: विकास की गति में वस्तु और परिस्थिति के भेद से भेद हो जाता है ।

भाषा भी परिवर्तन के इस नियम का अपवाद नही है । भाषा भी उत्पन्न होती है, बढ़ती है, फलती-फूलती है और परिवर्तित होती जाती है । भाषा को बहता नीर कहा गया है । भाषा की उपमा नदी के प्रवाह से दी जाती है जिस प्रकार नदी अपने उद्‌गम स्थल से निकल कर निरन्तर बहती जाती है, उसमें अनेक नाले, नदी और नद् मिलते जाते हैं उसके स्वरूप में परिवर्तन और परिवर्धन होता जाता है परन्तु उसका नाम वही प्रचलित रहता है ।

उसी प्रकार भाषा में भी विभिन्न धर्म, जातियों और संस्कृतियों के शब्द निरन्तर आकर मिलते रहते हैं परन्तु उसका नाम भी वही प्रचलित रहता है इस प्रकार भाषा की धारा अबाध गति से चलती रहती है । भाषा में सतत् विकास होता रहता है वह सौ वर्ष पहले जैसी थी वैसी ही आज नही रहती अपितु उसमें कहीं-कहीं तो पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है । भाषा मनुष्य की तरह अपना पुराना चोला उतार कर नया चोला पहन लेती है जैसे प्राचीन वैदिक संस्कृत ने अपना पुराना चोला बदला तो वह लौकिक संस्कृत हो गयी फिर चोला बदलते हुए पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमान आर्य-भाषा हिन्दी आदि के रूप में अभिनय के लिए प्रस्तुत हुई है यह परिवर्तन ही उसके आकर्षण का केन्द्र है ।

भाषा के विकास पर बहुत पहले से किसी न किसी रूप में विचार किया गया है । शब्द शास्त्र पर विचार करने वाले भारतीय आचार्यों में कात्यायन, पतंजलि, कैय्यट तथा जयादत्त वामन के नाम इस दृष्टि से उल्लेख्य है । योरोप में इस विषय पर व्यवस्थित रूप से विचार करने वाले प्रथम व्यक्ति डेनिश विद्‌वान जे.एच. ब्रेड्सडार्फ हैं । इन्होने 1821 में ध्वनि परिवर्तन पर विचार करते समय तथा अन्यत्र भी भाषा परिवर्तन के 7-8 कारण गिनाए थे तब से इस सदी तक पॉल येस्पर्सन आदि अनेक लोगों ने इस विषय को उठाया । पिछले कुछ दशक में स्ट्रटवेन्ट ने इस विषय का पहली बार विस्तार से विवेचन किया लेकिन उसे भी पूर्ण नहीं माना जा सकता ।

विभिन्न भाषाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भाषा में विकास स्थान-भेद, काल-भेद, परिस्थिति-भेद से दृष्टिगोचर होता है । उदाहरण के तौर पर भारतीय भाषाएँ एक ही मूल भाषा से निकली हैं परन्तु स्थान भेद से वे उडिया, हिन्दी, बंगला, मराठी, पंजाबी आदि भिन्न रूप से प्रचलित है । इन भाषाओं में पर्याप्त अन्तर हो गया है एक भाषा-भाषी दूसरी भाषा को अनायास नहीं समझ सकता । इसी प्रकार काल-भेद के कारण वैदिक संस्कृत से हिन्दी तक की भाषा में रूप भेद दृष्टिगोचर होता है । आचार्य भर्तृहरि ने "वाक्यपदीय" में कहा है कि परिस्थिति-भेद, देश-भेद, और काल-भेद से प्रत्येक वस्तु में शक्ति-भेद होता है । विद्‌वान इस बात पर सहमत हैं कि भाषा में परिवर्तन होता है किन्तु परिवर्तन के कारणों के संबंध में वे एक मत नहीं हैं ।

2.3.2 भाषा-विकास की दिशाएँ

भाषा-विज्ञान भाषा का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करता है । भाषा के द्वारा मनुष्य अपने विचारों को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करता है । भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है । सर्वप्रथम उच्चारण होता है अनेक ध्वनियों से मिलकर शब्द बनते हैं और शब्द में प्रत्यय के योग से पद बनते हैं अनेक पदों से वाक्य की रचना होती है और वाक्य से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है । जिस प्रकार भाषा कहने पर भाषा के सभी अंगों ध्वनि, शब्द पद, वाक्य और अर्थ का बोध होता है उसी प्रकार भाषा के विकास से इन चारों के विकास का बोध होता है अर्थात् भाषा के विकास क्रम में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ के पाँचों रूप में यह विकास दृष्टिगोचर होता है अत: भाषा विकास की पाँच प्रमुख दिशाएँ हैं-

2.3.2.1 - ध्वनि-विकास

भाषा का मूल आधार ध्वनि है । ध्वनि चिह्नों की समष्टि ही भाषा है । भाषा-ध्वनि वह ध्वनि है जिसे मनुष्य अपने मुँह के नियत स्थान से निश्चित प्रयत्न द्वारा किसी ध्येय को स्पष्ट करने के लिए उच्चरित करे और श्रोता उसे उसी अर्थ में ग्रहण करे । "ध्वनि भाषा की लघुत्तम सार्थक इकाई है" । बच्चा निरन्तर विकसित होते हुए पूर्ण मानव बन जाता है उसी प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होते रहते हैं जो भाषा की प्रणवत्ता, पूर्णता एवं प्रगतिशीलता का प्रमाण है ।

ध्वनियों का विकास दो प्रकार से होता है (1) वक्ता के कारण (2) श्रोता के कारण । वक्ता की ध्वनियों पर पड़ने वाला यह प्रभाव दो प्रकार का होता है - 1. आभ्यान्तर 2. बाहय । आभ्यान्तर कारणों का संबंध वक्ता के उच्चारण और श्रोता के सुनने से है । बाहय कारण मानव जीवन की विभिन्न बाहय परिस्थितियों जैसे राजनैतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक आदि से सम्बद्ध होते हैं । प्रयत्न लाघव, मिथ्या-सा.श्य, अपूर्ण अनुकरण व अपूर्ण श्रवण आदि कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन होता है । छोटा बालक नए शब्दों को शुद्ध रूप से नहीं सुन पाता है अत: उसका अनुकरण अपूर्ण होता है फलस्वरूप विकृत शब्द प्रचलित हो जाता है । पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी आदि में अनेक ध्वनि परिवर्तन के उदाहरण मिलते हैं । कहीं पर अग्र स्वर का लोप होता है-अन्नाघ > अनाज > नाज, अपिधान > पिधान(ढक्कन), अपिधेहि > पिधेही (ढक दो), अवगाहन > वगाहन (स्नान), अभ्यन्तर > भीतर(अन्दर) । इसी प्रकार मध्य स्वर लोप, अन्त्य स्वर लोप, व्यंजन स्वरलोप, अक्षरलोप आगम, पूर्ण-विपर्यय आदि होते हैं । मीरजा पुर > मिर्जापुर, स्थली > थाली, सूची > सूई, भाण्डागार > भंडार, स्वर्गगंगा > स्वरगंगा । नाककटा झ नकटा, स्नान > अस्नान, स्टेशन > इस्टेशन या सटेशन, मेघ > मेह, स्तन > थन, स्नान > नहाना आदि । इसी प्रकार कुछ अन्य प्रकार के ध्वनि-विकास देखे जाते हैं जैसे 'लखनऊ' को बहुत से लोग 'नखलऊ', 'सिगन्ल' को 'सिंगल', 'सूर्य को सूरज', 'मुकुट' को 'मौर्य', 'मैकेन्जी' को 'मक्खनजी', 'ऐडवान्स को 'अडवान्स', बोलते है । इस तरह से भाषा में विविध प्रकार के ध्वनि विकास दृष्टिगोचर होते है ।

2.3.2.2 - शब्द-विकास

ध्वनियों के संयोग से ही शब्द बनता है । जब कई ध्वनियाँ संयुक्त होकर उच्चरित होती है तब शब्द उत्पन्न होता है । अत: सार्थक ध्वनि-समूह को शब्द कहते हैं । शब्दों में परिवर्तन से भाषा-विकास की दिशा का संकेत मिलता है । संस्कृत के अनेक शब्द प्राकृत, अपभ्रंश में परिवर्तित होते हुए आज हिन्दी में बिल्कुल नए रूप में प्राप्त होते हैं । जैसे वैदिक शब्द 'मातृ', 'पितृ, 'भातृ', 'माता', 'पिता' 'भ्राता' हुए और अब 'मां', 'बाप' और 'भाई' हो गए । इसी प्रकार 'गंगोपाध्याय' का 'गांगुली', 'भ्रातृजाया' शब्द बदल कर 'भौजी'(भाभी) और 'मातृष्वषा', 'मौसी' (मावषी) हो गया । इस तरह विविध प्रकार के शब्द परिवर्तन द्वारा भाषा परिवर्तन की दिशा का बोध होता है ।

2.3.2.3 - पद-विकास

शब्द में प्रत्यय, विभक्ति या किया चिह्न के योग से पद बनते हैं । प्रत्येक शब्द तब तक किसी वाक्य में प्रयुक्त नहीं होता जब तक वह पद का रूप ग्रहण नहीं कर लेता जैसे- राम ने रावण को मारा । वाक्य में राम ने, रावण को, और मारा ये तीन पद हैं । राम के साथ जब 'ने' विभक्ति का योग हुआ तब 'राम ने', कर्ता पद बना है, रावण के साथ जब 'को' विभक्ति का योग हुआ तब 'रावण को', कर्म पद बना और मारना क्रिया के साथ जब अन्त 'आ' प्रत्यय का योग हुआ तब मारा भूतकाल का क्रिया पद बना है ।

पद निर्माण की यह पद्धति पहले प्राकृत एवं अपभ्रंश मे आकर परिवर्तित हुई और हिन्दी भाषा के आविर्भाव के साथ यह पद पद्धति और भी बदल गयी । पदों के क्रम के बदल जाने पर वाक्य का अर्थ बदल जाता है क्योंकि प्रत्येक भाषा में पदों का क्रम निश्चित होता है । कारक चिह्न और क्रिया चिह्नों के परिवर्तन के कारण भाषा में पद-परिवर्तन की दिशा सूचित होती है।

2.3.2.4 - वाक्य-विकास

पदो के संयोग से वाक्य बनते हैं । वाक्य भाषा का महत्वपूर्ण अंग है । "पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं ।" अथवा "भांषा की लघुत्तमपूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है ।" वाक्य के निर्माण से ही भाषा-विकास की दिशा का ज्ञान होता है । संस्कृत में वाक्य रचना परिष्कृत एवं व्यवस्थित है किसी भी पद को आगे या पीछे कर देने पर भी वाक्य के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता था । जैसे- यदि 'मैं गाँव को जाता हूँ' वाक्य को संस्कृत में कहें तो 'अहं ग्राम गच्छामि' कह सकते हैं, 'गच्छाम्यहं ग्रामम्' कह सकते हैं, 'ग्रामं अहं गच्छामि' कह सकते हैं, 'गच्छामि ग्रामं अहम्' भी कह सकते हैं और इन वाक्यों के अर्थ में कोई परिवर्तन नही होता । यही दशा कुछ काल तक प्राकृत और अपभ्रंश में भी रही । इनमें भी वाक्य के सभी पद इतने व्यवस्थित ढ़ंग से नियमित होते थे कि उनको कहीं भी किसी स्थान या क्रम से रख देने पर उनके अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता था । परन्तु हिन्दी का आविर्भाव होते ही यह व्यवस्था न रही । हिन्दी में पद का क्रम है कर्ता > कर्म > क्रिया । क्रम बदल देने पर अर्थ में अन्तर आ जाता है जैसे-"राम ने रावण को मारा" और "रावण ने राम को मारा" इन

दोनों वाक्यों में क्रम बदलने से अर्थ पूरी तरह बदल गया । इसी प्रकार अन्य भाषाएँ जैसे चीनी, सूडानी, आदि भाषाओं में स्थान या क्रम बदल देने पर अर्थ बदल जाता है । उदा. चीनी भाषा में वो-ता-नी जिसका अर्थ है 'मैं मारता हूँ तुझे' लेकिन नी-ता-वो, क्रम बदल देने पर अर्थ होगा 'तू मारता है मुझे' ।

इस प्रकार वाक्य परिवर्तन के द्वारा भी भाषा परिवर्तन का ज्ञान होता है अत: वाक्य परिवर्तन भी भाषा परिवर्तन की एक दिशा है ।

2.3.2.5 - अर्थ-विकास

अर्थ भाषा की आत्मा है । अर्थ के बिना शब्द, शब्द नहीं है और वाक्य, वाक्य नहीं है । भाषा का प्रयोग अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए ही होता है । भाषा परिवर्तन की दिशा का ज्ञान अर्थ परिवर्तन से ही होता है । प्राय: जो शब्द पहले जिस अर्थ में प्रयुक्त होते रहते हैं कालान्तर में उन शब्दों का प्रयोग अन्य अर्थो में भी होने लगता है । अर्थात् भाषा के बाह्य रूप के साथ-साथ उसका आन्तरिक रूप भी परिवर्तित होता रहता है क्योंकि प्रयोग ही भाषा का नियामक है प्रयोग जब रूढ़ हो जाते हैं तो इनका मूल अर्थ उसमें नहीं रह जाता है । अर्थ का यह परिवर्तन अर्थ-विकास एवं अर्थ की दिशाएँ कहलाता है । अर्थ परिवर्तन की तीन प्रमुख दिशाएँ हैं, अर्थ का कहीं विस्तार होता हैं, कहीं संकोच होता है तो कहीं बिल्कुल ही अर्थ बदल जाता है । जैसे-तेल शब्द का मूल अर्थ था तिल का सार, लेकिन कालान्तर में इस शब्द के अर्थ में इतना विस्तार हुआ कि सभी पदार्थो के सार को तेल कहने लगे । इसलिए आज सरसों का तेल, मूँगफली का तेल, मिट्टी का तेल और यहाँ तक आदमी का तेल आदि कहा जाता है । इसी प्रकार वेद में मृग शब्द पशु मात्र का वाचक था वह बाद में केवल हिरन के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा यह अर्थ संकोच की दिशा को बताता है । अर्थ संकोच के अन्य उदाहरण पंकज, नीरज, सरोज, सन्यास, आदि हैं । जब एक अर्थ के लुप्त होने पर उसके स्थान पर नवीन अर्थ आ जाता है तो उसे अर्थादेश कहते है जैसे-असुर शब्द ऋग्वेद में देवता के लिए प्रयुक्त है किन्तु आज वह राक्षस का वाचक है । यही कारण है कि विविध अर्थ परिवर्तन को भी भाषा परिवर्तन की एक दिशा माना जाता है ।

2.3.3 भाषा-विकास के कारण

संसार की अधिकांश भाषाओं के इतिहास का सम्यक अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि भाषा में परिवर्तन विविध दिशाओं में होता है और इसे कोई रोक नहीं सकता । भाषा में परिवर्तन क्यों होता है इसके कारणों पर प्राचीन समय से विचार होता होता आ रहा है । इस विषय पर जिन शब्द-शास्त्रियों, ने विचार किया उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं:- आचार्य यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पंतजलि, भर्तृहरि, जयादित्य, वामन, भटटोजित दीक्षित और नागेश भट्ट । वर्तमान समय में भाषा परिवर्तन विषय पर अनेक विद्वानों ने विशद विवेचन प्रस्तुत किया है । यूरोप में इस विषय पर सर्वप्रथम विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करने वाले डेनिश विद्वान जे.एच. ब्रेड्सडॉर्क थे । इन्होंने 1821 में एक पुस्तिका प्रकाशित की थी । उसमें भाषा-परिवर्तन के

कारण बताये थे । इस विषय पर प्रो. ई. एच.स्टुर्टवेंट, ओटो येस्पर्सन और हेनरी एम. होनिग्सवाल्ड ने आधुनिक पद्धति से बहु त विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है ।

भाषा विकास के कारणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है -

1. आभ्यन्तर या आन्तरिक कारण
2. बाह्य या बाहरी कारण ।

2.3.3.1 आभ्यन्तर कारण

आभ्यन्तर कारण वे है जिनका संबंध भाषा की प्रवृत्ति से है या जो वक्ता और श्रोता की शारीरिक या मानसिक स्थिति से सम्बन्ध रखते है । आभ्यन्तर कारण को मूलभूत कारण भी कहा जा सकता है । ये कारण भाषा के मूल में रहते है ये जाने-अनजाने भाषा में परिवर्तन या विकास उपस्थित करते रहते है । ये भाषा में साक्षात परिवर्तन नहीं करते अपितु परिवर्तन का कारण प्रस्तुत करते है । धीरे-धीरे वह परिवर्तन सर्वजनग्राह्य हो जाता है ।

(i) **अपूर्ण श्रवण** -भाषा मनुष्य की अर्जित सम्पत्ति है, भाषा मनुष्य अपने पूर्वजों से सीखता है बालक अपने माता-पिता से भाषा सीखता है । भाषा सीखने की क्रिया में तीन बातें होती है:- 1. सुनना, 2. स्मरण रखना, 3. पुन: उच्चारण । कितनी ही ध्वनियाँ या शब्द ऐसे होते है जो प्रथम बार सुनने पर स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ते और सुनने में अशुद्धि अथवा अपूर्ण श्रवण के कारण बालक अशुद्ध स्मरण रखेगा तो अशुद्ध उच्चारण करेगा । जिस प्रकार सुनने में त्रुटि संभव है उसी प्रकार याद रखने में भी त्रुटि हो जाती है इसी लिए वर को बर, शंकर को संकर, स्वजन को श्वजन, आदि अशुद्धियाँ भाषा में प्रचलित हो जाती है ।

(ii) **अपूर्ण अनुकरण** - भाषा सीखने की प्रक्रिया पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि बच्चा अनुकरण से भाषा सीखता है । वह असंख्य बार अशुद्ध एवं अस्पष्ट उच्चारण करता है किन्तु अज्ञान, अशिक्षा, बुद्धि या वाग्यन्त्र या अन्य कमी के कारण जब अपने किसी साथी के द्वारा उच्चारित शब्द का ठीक-ठीक अनुकरण नहीं कर पाता तब उसके इस अपूर्ण अनुकरण के कारण भाषा में बडे-बड़े विचित्र परिवर्तन हो जाते है जैसे- 'मौसी' को 'मोची' कहना, 'एक्जामिनर' को 'एकजानवर' 'थिएटर' को 'थेटर', 'गुलाब' को 'डुलाब', 'आतिशबाजी' को 'आशिकबाजी' आदि । इस प्रकार भाषा में परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है । अनुकरण की अपूर्णता के कई कारण है ।

(अ) वाग्यन्त्र की विभिन्नता - प्रत्येक व्यक्ति का वाग्यन्त्र या उच्चारण अवयव समान नही होता । वाग्यन्त्र के कारण पुरूष और स्त्री, बालक, युवा और वृद्ध के उच्चारण में अन्तर आता है । वाग्यन्त्र में दोष के कारण कई मनुष्य हकलाते हैं, नाक से बोलते है एवं गूंगे होते हैं । साथ ही विकृत मुख वाले लम्बे होठ वाले, भावावेश के कारण गद्गद् ध्वनि वाले या रूद्ध कण्ठं और बद्ध जिहवा वाले मनुष्य ठीक से नहीं बोल पाते, फलस्वरूप भाषा में परिवर्तन दृष्टि गोचर होता है ।

(आ) अन्वधानता - सावधानी से न सुनना भी अनुकरण की अपूर्णता का कारण है । साथ ही अस्पष्ट सुनना या कुछ अनसुना करना यह अनुकरण का मानसिक पक्ष है । यदि शब्द या वाक्य सावधानी से नहीं सुना तो उसका अनुकरण भी त्रुटिपूर्ण होगा ऐसे उच्चारण भाषा में परिवर्तन लाते हैं ।

(इ) अशिक्षा - शिक्षा के अभाव के कारण ग्रामीण जन अर्द्धशिक्षित एवं अशिक्षित व्यक्ति ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर पाते उनका अनुकरण दोष युक्त होता है जिससे भाषा परिवर्तित होती है । अशिक्षा के कारण बच्चा कक्षा को कच्छा, छात्र को क्षात्र देश को देस, ष्ण को किशुन 'आर्ट्स कालेज' को 'आठ कालेज', 'सिनॉप्सीस' को 'सन आफ सी और 'यूनिवर्सिटी' को यू नेवर सी टी‘ आदि अशुद्ध शब्दों का प्रयोग करता है जिससे भाषा परिवर्तित होती है ।

(iii) **प्रयत्नलाघव** - भाषा परिवर्तन के आन्तरिक कारणों में प्रयत्नलाघव का स्थान सर्वोपरि है । प्रयत्नलाघव का अर्थ है कम प्रयत्न करना । मानव की प्रवृत्ति है कि वह कम परिश्रम से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है अर्थात वह कामचोरी, आलस्य अथवा लघुमार्ग से काम चलाने का प्रयत्न करता है । तात्पर्य यह है कि मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि कम परिश्रम से अधिक लाभ उठाया जाय । इस तरह के व्यक्ति कम से कम समय में कम से कम बोलकर अथवा लिखकर अधिक से अधिक अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करना चाहते हैं । इसमें श्रम और समय की बचत भी होनी चाहिए । इस मनोवृत्ति के कारण मनुष्य 'माइक्रोफोन' को 'माइक', 'न्यूज पेपर' को 'पेपर‘, 'द्‌वारिका प्रसाद' को डी.पी,. भारतीय जनता पार्टी को बी.जे.पी., 'जनरल पोस्ट ऑफिस' को जी.पी.ओ., 'काशी हिन्दू विश्वविद्‌यालय' को बी.एच.यू., आदि प्रयत्नलाघव के कारण अनेक प्रकार के भाषा परिवर्तन होते हैं ।

(iv) **प्रयोगाधिक्य -** जिस प्रकार अन्य वस्तुएँ अधिक प्रयोग से घिस जाती है उसी प्रकार भाषा में शब्द भी अधिक प्रयोग के कारण घिस जाते हैं । यह भी प्रयत्नलाघव की प्रवृत्ति का एक रूप हैं जैसे:- उपाध्याय< ओझा< झा, चतुर्वेदी< चौबे, त्रिपाठी< तिवारी, द्‌विवेदी< दुबे, घृत> घी, सत्य< सच्च झ सच, आदि ।

(v) **भावातिरेक -** भाषा विकास में भावातिरेक भी बड़ा कार्य करता है । यह भावातिरेक प्राय: प्रेम शोक, क्रोध आदि भावों के आधिक्य के अवसर पर देखा जाता है जब मानव अधिक प्रेम के कारण आत्मविभोर हो जाता है तो भाई को भैय्या, बच्चा को बचवा, जी को जियरा बोलता है । जबकि क्रोधा वेग में चमार को चमरवा, राम को रामू और शोका वेग में कर्म के लिए करमवा, पुत्र के लिए पुतवा आदि शब्दों का अतिरेक देखा जाता है ।

(vi) **बलाघात** - जब किसी शब्द का उच्चारण करते समय उसमें से किसी ध्वनि, शब्द या पद पर अधिक बल दिया जाता है और किसी पर कम तो सबल ध्वनि की पार्श्ववर्ती ध्वनि कालांतर में निर्बल होने के कारण लुप्त हो जाती है । जिससे भाषा में अद्भुत परिवर्तन आ जाता है । जैसे-निम्ब का नीम, कुष्ठ का कोढ़, उपाध्याय का झा,

भ्रातृजाया का भौजी, भाण्डागारिक का भण्डारी, सुवर्णकार का सुनार आदि परिवर्तनों का मूल कारण बलाघात है । अत: बलाघात से भाषा में बड़े-बड़े परिवर्तन होते हैं ।

(vii) **प्रमाद या असावधानी** - प्राय: मानव प्रमाद या असावधानी के कारण शब्दों को तोड-मरोडकर बोलता है । कभी-कभी वर्ण विपर्यय कर देता है तो कभी अन्य अर्थ वाले शब्दों को अन्य अर्थ में प्रयुक्त कर देता है, तो कभी व्याकरण की अवहेलना कर अशुद्ध शब्दों का प्रयोग कर देता है जो आगे चलकर बद्धमूल होकर प्रचलन में आ जाते है । जैसे- गुरु को गुर उपेक्षा को अपेक्षा, साँप को श्राप, विद्वत्ता को विद्वानता, सौन्दर्य को सौन्दर्यता, श्रेष्ठ को श्रेष्ठतम, चाकू को काचू, लड़की को लकड़ी आदि सभी परिवर्तन असावधानी के कारण दृष्टिगोचर होते है ।

(viii) **सादृश्य** -जब मानव किसी शब्द प्रयोग को देखकर उसके मूल आधार का पता लगाए बिना उसी के समान दूसरा शब्द गढ़ लेता है वहाँ सादृश्य परिवर्तन देखा जाता है । आज कल प्राय: अनेक पुस्तकों में सृष्टा, दृष्टा, दृष्टव्य शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं । वास्तव में इनके स्थान पर क्रमश: 'स्रष्टा', 'द्रष्टा', 'द्रष्टव्य' शब्द शुद्ध रूप में लिखे जाने चाहिए, परन्तु 'सृष्टि' को देखकर वे 'सृष्टा' लिखने लगे है, 'दृष्टि' को देखकर 'दृष्टा' और 'दृष्टव्य' शब्दों का प्रयोग करने लगे है, जो सर्वथा अशुद्ध प्रयोग है । ऐसे ही कुछ कवियों ने 'निर्गुण' के सादृश्य पर 'सर्गुण', दुःख के सादृश्य पर 'सुक्ख' शब्द गढ़ लिए है यह सादृश्य भाषा विकास में बहुत महत्वपूर्ण है । यह सादृश्य वास्तविकता पर निर्भर न होकर अन्धानुकरण पर निर्भर होता है इसलिये इसे मिथ्या सादृश्य भी कहा जाता है । सादृश्य भाषा परिवर्तन के कारण के रूप में विश्व की सभी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व रखता है ।

(ix) **नवीनीकरण की प्रवृत्ति -** मनुष्य की यह प्रवृत्ति है कि वह कुछ न कुछ नवीन कार्य करके अपने नाम को अमर एवं स्थिर कर जाना चाहता है । इस मनोवृत्ति को ही नव-निर्माण की प्रवृत्ति भी कहते हैं । इस प्रवृत्ति के कारण कुछ लोग नित्य नए-नए शब्दों के निर्माण में लगे है । इस नवीनीकरण की प्रवृत्ति के कारण मैक्समूलर को मोक्षमूलर, ऐकेडमी को अकादमी, लिंग्विस्टिक्स को भाषिकी, इसी तरह से स्वीकारना, बतियाना, फिल्माना, फोन को फुनियाना आदि क्रिया शब्दो का जन्म होने से भाषा में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है ।

(x) **बौद्धिक स्तर** - प्रत्येक मनुष्य का बौद्धिक स्तर एक सा नहीं होता । बौद्धिक स्तर का विचारों पर प्रभाव पड़ता है । बौद्धिक स्तर में अन्तर के कारण शब्दों के अर्थ में खासतौर से अमूर्त शब्दों के अर्थ में विशेष और अनेक अर्थ हो जाते है । जैसे एक के लिए संध्या, हवन, दान उत्तम कार्य है तो दूसरे के लिए ढोंग । इसी तरह से पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, धर्म-अधर्म, आदि शब्द प्रत्येक व्यक्ति के बौद्धिक स्तर के अनुसार पृथक अर्थ बताते हैं इसी प्रकार बौद्धिक स्तर की भिन्नता भाषा में परिवर्तन का कारण बनती है ।

(xi) **जातीय मनोवृत्ति -** प्रत्येक जाति की कुछ निजी विशेषताएँ होती है और वे विशेषताएँ उस जाति की भाषा में दिखाई देती हैं जैसे- आर्य जाति प्रगतिशील रही है इसलिए संस्कृत में गत्यर्थक धातुओं की संख्या अधिक है- जैसे गम्, व्रज, इ, अट् आदि । इसी प्रकार फ्रांसीसियों में कोमलता है अत: उनकी भाषा में सुकुमारता है, अंग्रेजों में समय-निष्ठा मुख्य है । अत: अंग्रेजी के धातु रूपों में काल पर बहुत बल है । आर्य जाति धर्म प्रधान है इसलिए संस्कृत में धर्म-कर्म से संबद्ध अनेकों शब्द है । जबकि अंग्रेजी आदि में धर्म आदि से संबंद्ध शब्द बहुत कम है । इस प्रकार जातीय मनोवृत्ति। भाषा में परिवर्तन का कारण बन जाती है ।

(xii) **अंधानुसरण** - कभी-कभी मानव किसी अन्य भाषा का अन्धानुसरण करके अपनी भाषा में भी वैसे ही प्रयोग करने लगता है । इससे भाषा में प्रयोग एवं वाक्य रचना में परिवर्तन आ जाता है ।

जैसे अंग्रेजी के अंधानुसरण पर उसी भाषा के प्रत्यय लेकर हिन्दी में भी शब्द बना लिए गए है जैसे- रद्दाफिकेशन, सरलीफाई आदि । इसी प्रकार अल्पशिक्षित लोग हिन्दी की क्रिया में अंग्रेजी का प्रत्यय 'इंग' लगाकर विचित्र परिवर्तन प्रस्तुत करते है जैसे 'माय कार इज कीचड़ में फसिंग, ऐसे अनेक शब्द जैसे पड़न्त, गड़न्त, मरन्त आदि इसी मनोवृत्ति के परिचायक है । अत: अंधानुसरण के कारण भाषा परिवर्तित होती रहती है ।

2.3.3.2 बाह्य कारण

बाह्य कारण वे हैं जो भाषा को बाहर से प्रभावित करते है । भाषा-परिवेश सापेक्ष वस्तु है अत: उस पर अनेक बाह्य तत्व जैसे भूगोल, संस्कृति, समाज, विज्ञान आदि भाषा पर प्रभाव डालकर भाषा में विकास करते है । बाह्य कारण निम्नलिखित है ।

(i) **भौगोलिक कारण -** जलवायु अथवा भूगोल का भाषा का प्रभाव पड़ता है । एक प्राचीन कहावत है कि "चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी" अत: स्थान भेद से भाषा में भेद होता ही जिन प्रदेशों की जलवायु ऊष्ण होती है, वहाँ के निवासियों का वाग्यंत्र इतना स्पष्ट एवं मुखर होता कि वे सभी प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण कर लेते है । जैसे भारत के राजस्थान, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के निवासी भाषा का शुद्ध उच्चारण करते है क्योंकि उनका वाग्यंत्र पूर्ण रूप से खुला होता है किन्तु शीत देश के निवासी वाग्यंत्र के पूर्ण न खुलने के कारण तालव्य ध्वनियों का उच्चारण करने में सक्षम नहीं होते । जैसे अंग्रेज जाति के लोग तोताराम को टोटाराम, दादूदयाल को डाडूडयाल बोलते है । जर्मन भाषा शास्त्री हाइनरिश मेयर बेन्फी और कोलित्स ने भाषा परिवर्तन में भौगोलिक प्रभाव को विशेष महत्व दिया है ।

(ii) **ऐतिहासिक कारण** - भाषा परिवर्तन पर इतिहास का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है यद्यपि इतिहास में धर्म संस्कृति, राजनीति, आदि का ग्रहण हो जाता है । ऐतिहासिक कारणों में विदेशी आक्रमण राजनीतिक विप्लव, अक्रामक जाति, व्यापारिक संबंध आदि आते है । भारतवर्ष में शक हूण, आमीर, यवन, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और अंग्रेज आदि आये ।

भारतीय भाषाओं का भी यही इतिहास के प्रत्येक शासक जाति ने अपना प्रभाव भाषा पर छोड़ा है । फलस्वरूप हिन्दी में फारसी की, क़, ख, ग, ज ध्वनियों एवं इनाम, ईमान, फुर्सत आदि शब्द आये । अरबी के - अजब, किताब, ताबीज आदि । तुर्की के- कैंची, कुली, गलीचा, चाकू आदि । अग्रेंजी के - ऑफिस, स्कूल, स्प्रिंग, कमीशन आदि शब्द आये । इस तरह भाषा संबंधी परिवर्तन में ऐतिहासिक कारणों का भी प्रभाव पड़ा है ।

(iii) **सांस्कृतिक (धार्मिक) कारण** - संस्कृति ही प्रत्येक देश अथवा समाज की अस्मिता की परिचायक है । संस्कृति ही किसी देश का विकास अथवा विनाश करती है । भाषा पर भी इसका प्रभाव पडता है और उसके द्वारा भाषा में विकास होता है । सांस्कृतिक प्रभाव विभिन्न संस्थाओं, महापुरूषों, और विभिन्न संस्कृतियों के सम्मेलन से पड़ता है । विश्व में अनेक सांस्कृतिक क्रांतियां हुई । भारत वर्ष में सांस्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात महर्षि दयानन्द ने 1875 ई में आर्य समाज की स्थापना के द्वारा किया । ऐतिहासिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक कारणों से विभिन्न संस्कृतियां एक दूसरे के सम्पर्क में आई और उनकी भाषाओं पर भी एक दूसरे का प्रभाव पड़ा । जैसे आर्य-द्रविड़ संस्कृति, आर्य-ग्रीक संस्कृति, आर्य-मुस्लिम संस्कृति, ग्रीक-रोमन संस्कृति, ग्रीक-आंग्ल संस्कृति, रोमन-आंग्ल संस्कृति, आर्य और यवन संस्कृति । इन संस्कृतियों के सम्मेलन से भाषा पर दो प्रकार के प्रभाव पड़े ।

(अ) प्रत्यक्ष प्रभाव

(i) **शब्दों की लेन देन -** हिन्दी में आस्ट्रिक के गंगा, द्रविड़ के तीर यवन के होडा, दाम, सुरंग । तर्कों एवं मुसलमानों के पाजामा, तकिया रजाई । यूरोपियन के न्याय और पेंशन संबंधी आदि । हिन्दी में इस प्रकार के शब्दों की ठीक से छानबीन की जाय तो इनकी संख्या आठ हजार के करीब है ।

(ii) **ध्वनि का आना** - यूरोपीय भाषा में ट ध्वनि नहीं थी, द्रविड़ों के प्रभाव से भाषा में ये ध्वनियाँ आ गई है । इस तरह हिन्दी भाषा में मुसलमानों तथा अंग्रेजों के सम्पर्क से कई नई ध्वनियाँ आ गई है । जैसे - क़, ज़, ग़, ख़, फ़ तथा ऑ ।

(iii) हिन्दी का वाक्य गठन, मुहावरे, लोकोक्ति आदि फारसी और अंग्रेजी भाषा से प्रभावित हैं । जैसे पानी-पानी होना, फारसी भाषा का 'आब-आब शुदन' का अनुवाद है तो कार्य रूप में परिणत करना अंग्रेजी के to translate into action का ।

(आ) अप्रत्यक्ष

विचार विनिमय के कारण एक दूसरे का साहित्य कला आदि पर प्रभाव पड़ता है और उससे भाषा अछूती नहीं रहती ।

(iv) **वैयक्तिक कारण** - महापुरूष भी भाषा को प्रभावित करते है । महात्मा गांधी के प्रभाव के कारण स्वदेशी आन्दोलन, हिन्दी आन्दोलन स्वाधीनता आन्दोलन आदि चले । इनके द्वारा हिन्दी भाषा को बहुत आर्थिक बल मिला । आर्य भाषा हिन्दी के प्रचार के लिए उन्होंने अनेक संस्थाएं प्रचलित की, गोस्वामी तुलसीदास और जायसी ने

हिन्दी के साथ अवधी को तो सूरदास ने हिन्दी के साथ ब्रज भाषा को अधिक प्रभावित किया । इस तरह से व्यक्तिगत भाषा, भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

अ सामाजिक कारण

भाषा और समाज का परस्पर निकट संबंध है । हर भाषा समाज में जन्म लेती है और समाज में ही पनपती है । समाज में कभी क्रांति, कभी युद्ध कभी शांति, तो कभी विप्लव, कभी जय, कभी पराजय होता है । जिसका प्रभाव भाषा पर पड़ता है । शांति के समय कला, साहित्य, संगीत अर्थ और दर्शन की उन्नति होती है, तो युद्ध के समय वीरता, शूर गाथा, रणनीति शास्त्र विद्या व सैन्य शिक्षा की उन्नति होती है और इससे संबंधित अनेक शब्दों का जन्म होता है । भारत वर्ष में इनके कारण विभिन्न जातियों के आगमन से भाषा में परिवर्तन हुआ है । शक-हूण, फारसी, मुसलमान ईसाई के आगमन से सहस्त्रों नए शब्द आए है जैसे कचहरी, अदालत, जच्चा, मेहतर, वायरलेस, ऐयर फोर्स, ब्लैक आउट, बमबारी, रडार, बी.एस.एफ. आदि । जो शीघ्र ही भाषा शब्दावली के अंग बन गए ।

(vi) **साहित्यिक कारण** - भाषा के विकास में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । साहित्य भी भाषा को निश्चित, स्थिर और जीवित रूप प्रदान करता है । जनमानस अपनी बोलचाल की भाषा में साहित्य रचता है । प्राचीन समय में उच्च वर्ग की भाषा संस्कृत को त्याग महावीर और गौतम बुद्ध ने लोक भाषा को अपनाकर अर्द्धमागधी और पालि भाषा में साहित्य रचना की । इसी प्रकार भक्तिकाल के कवि कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, रहीम आदि ने लोक भाषा का प्रयोग कर लोकतंत्र की स्थापना की । वही बिहारी, मतिराम, देव और घनानन्द ने श्रृंगार की रस धारा बहायी । इसी प्रकार छायावादी कवियों प्रसाद, पंत, निराला ने खड़ी बोली को अपने काव्य के माध्यम से समृद्ध बनाया । साहित्य जहां भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है वहीं कभी-कभी साहित्य आश्रय पाकर लोक-भाषा त्रिम भाषा बन जाती है । इस प्रकार साहित्य भाषा के परिवर्तन में असाधारण योग देती है ।

(vii) **वैज्ञानिक कारण** - भाषा के विकास में विज्ञान का योगदान सर्वथा विचारणीय है । आज विज्ञान ने ज्ञान की विविध शाखाओं का आविष्कार करके भाषा में नए-नए शब्द निर्मित किए है जिससे न केवल भाषा का विकास हो रहा है । नए-नए शब्दों के आविष्कार से हिन्दी भाषा का शब्दकोष समृद्ध हो रहा है । आज विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों को समझने के लिए ऑक्सीजन के लिए ओषजन, एटम के लिए परमाणु, कम्पाउण्ड के लिए यौगिक, ऑरबिट के लिए कक्ष आदि शब्द हिन्दी में बनाये गए हैं । इन वैज्ञानिक आविष्कारों से भाषा में विकास दृष्टिगोचर होता है ।

(viii) **सामाजिक कारण** - सभ्यता समाज का प्रतिबिम्ब है या यह कह सकते है कि दोनो एक दूसरे के पूरक है । समाज के बाहय रूप में वेशभूषा, .षि, व्यापार, उद्योग कला एवं मनोरंजन की चीजें आती है । विज्ञान की उन्नति के साथ सभ्यता का विकास हो रहा है । नए यन्त्र, नए औजार, नई मशीन नए शिल्प नए मनोरंजन के साधन दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है । साथ ही साथ नए-नए शब्दों की रचना की गति भी वेग से चल रही

है । भाषा का शब्द कोष और नव-शब्द निर्माण की प्रक्रिया तीव्रता से चल रही है, तो दूसरी ओर सभ्यता के प्रबल प्रभाव में अनुपयोगी या अति क्लिश) शब्द वीरगति को प्राप्त हो रहे है अत: सभ्यता के कारण भाषा में परिवर्तन हो रहा है ।

2.4 विचार संदर्भ शब्दावली

1.	विधिवत	-	अच्छी तरह से
2.	रणन	-	बजना, बजाना
3.	निःसृत	-	निकले हुए
4.	आब	-	पानी (फारसी क्रिया शब्द)
5.	शुदन	-	होना (फरसी शब्द)
6.	क्षरत्व	-	धीरे-धीरे नाश होना
7.	पिधान	-	ढक्कन, आवरण
8.	भ्रातृजाया	-	भाई की पत्नी
9.	अनुद्बुद्ध	-	सुषुप्त, अप्रकट
10.	विहंगावलोकन	-	सरसरी तौर पर देखना
11.	प्रज्ञा	-	बुद्धि, समझ
12.	उष्ण	-	गर्म
13.	विनिमय	-	लेन-देन, आदान-प्रदान
14.	सर्वजन ग्राहय	-	सबके द्वारा ग्रहण होने लायक
15.	प्रयत्नलाघव	-	भाषा में उच्चारणगत कठिनता को सरल बनाने के लिए कम श्रम का विधान । भाषा में क्लिष्ट ध्वनियों के उच्चारण में सरलता का आश्रय लेकर कम प्रयत्न में सरल ध्वनि के उच्चारण को अपनाना ।
16.	बालाघात	-	शब्दों में प्रयुक्त सभी ध्वनियां समबल नहीं होती । कुछ ध्वनियां अधिक मुखर, कुछ कम तो कुछ बहुत कम होती हैं । धीरे्धीरे कमजोर ध्वनियां समाप्त हो केवल सबल रह जाती है । जैसे पानीय > पानी स्थान > थान
17.	अर्थ संकोच	-	जब कोई शब्द व्यापक अर्थ से सिमट कर संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है जैसे पति का अर्थ रक्षा करने वाले के अर्थ से सिमट कर 'शौहर' के अर्थ में संकुचित हो गया ।
18.	अर्थादेश	-	जब किसी शब्द का अर्थ पूर्णतया बदल जाता है । तो उसे अर्थादेश कहते हैं । अर्थादेश में कभी-कभी अर्थ सर्वथा विपरीत हो जाता है जैसे वैदिक भाषा में असुर शब्द का अर्थ देवता था जो बाद मंष राक्षस के अर्थ में प्रचलित हुआ ।
19.	सहजात	-	एक साथ उत्पन्न
20.	कतिपय	-	कुछ

2.5 सारांश

भाषा उद्भव का विहंगावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि भाषा उत्पत्ति संबंधी सिद्धांतों में से कुछ दैव श्रद्धा तो कुछ पूर्ण आंशिक अनुमान पर अथवा कोरी कल्पनाओं पर आधारित है । हम पूर्ण आश्वस्त होकर यह नहीं कह सकते हैं कि भाषा उद्भव अमुक सिद्धांत से हुआ है । वास्तविकता तो यह है कि भाषा का उद्भव एक पहेली बना हुआ हैं जो अभी तक सुलझ नहीं पायी है ।

दूसरी ओर यह भी सच है कि आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा-उद्भव का प्रश्न भाषा विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में नहीं आता । साथ ही अनुमान प्रसूत होने के कारण ये सिद्धांत नही, अपितु कल्पना मात्र है । सम्भवत: इसी सत्य को समझते हुए सन् 1886 में फ्रांस की भाषा विज्ञान समिति ने इस प्रश्न पर विचार करना ही अनावश्यक घोषित कर दिया था ।

आज का युग विकासवाद पर विश्वास करता है । मनुष्य और मनुष्य से जुड़ी प्रत्येक वस्तु का आरंभ विकास के आधार पर माना जाता है । भाषा-मनुष्य की एक सामाजिक निधि है और विकासवाद के अनुरूप उसका भी आरम्भ परिवर्तन, और विनाश होता है । भाषा का विकास पांच दिशाओं ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ में होता है । जो भाषा के महत्वपूर्ण अंग है ।

संसार की प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता है अत: भाषा में परिवर्तन स्वाभाविक है । भाषा परिवर्तन के मुख्यत: आभ्यंन्तर और बाह्य कारण दृष्टिगोचर हुए हैं, जिसके कारण भाषा निरन्तर नदी की धारा की तरह प्रवहमान होती रही है और आज भी प्रवहमान है ।

2.3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. भाषा की उद्भव के संबंध में प्राप्त विभिन्न मतों का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
2. भाषा के उद्भव के संबंध में आपकी दृष्टि में कौनसा सिद्धांत सर्वाधिक मान्य होना चाहिए? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए ।
3. भाषा-विकास की विविध दशाओं का विवेचन कीजिए ।
4. भाषा-विकास के आन्तरिक कारणों पर प्रकाश डालिए ।
5. भाषा-विकास के बाह्य कारणों की विवेचना कीजिए ।

ख. लघुत्तरी प्रश्न

1. समन्वय सिद्धांत का परिचय देते हुए इसकी समीक्षा कीजिए ।
2. अनुकरण सिद्धांत की विश्वसनीयता पर प्रकाश डलिए ।
3. भाषा विकास के कारणों पर संक्षेप में विचार कीजिए ।
4. प्रतिभा सिद्धांत पर टिप्पणी लिखिए ।
5. श्रम सिद्धांत की क्या मान्यता है?

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए,

1. श्रम सिद्धांत को.. कहते हैं ।

2. आवेग शब्द... को प्रकट नहीं करते ।
3. संकेत 'सिद्धांत' में अनेक... है ।
4. पीते समय शरब ध्वनि को लेकर......................... शब्द बना ।
5. .... के जन्मदाता डार्विन ने आवेग ध्वनियों का कारण शरीरिक माना है ।

घ. सही / गलत पर निशान लगाइए

1. संगीत सिद्धांत पूरी तरह दोष रहित है । सही / गलत
2. प्रतीक सिद्धांत मूलतः भाषा के प्रारंभिक शब्दों की व्याख्या करता है । सही /गलत
3. संस्कृत के भ्रातृजाया से मौसी शब्द बनता है । सही /गलत
4. मानव जानबूझ कर शब्दों को तोड़ मरोड़ कर बोलता है । सही / गलत
5. प्रतिभा प्रत्येक जीव में पृथक पृथक रूप में रहती है । सही / गलत

2.3.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. कपिल देव द्विवेदी; भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. तेजपाल चौधरी; भाषा और भाषा विज्ञान, विकास प्रकाशन, कानपुर
3. डॉ. नरेन्द्र मिश्र; भाषा और भाषा विज्ञान, प्र.सं. 2001
4. डॉ. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1992
5. डॉ. मंगलदेव शास्त्री; भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1962
6. डॉ. हरीश शर्मा; भाषा विज्ञान की रूपरेखा, प्र सं. 1997
7. डॉ. उदयनारायण तिवारी; अभिनव भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद

इकाई-3 भाषा-संरचना एवं भाषिक कार्य

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 शब्द
3.2.1 शब्द और पद
3.2.2 शब्द-रचना
3.3 उपसर्ग
3.3.1 संस्कृत के उपसर्ग
3.3.2 हिन्दी के उपसर्ग
3.3.3 विदेशी उपसर्ग
3.4 प्रत्यय
3.5 समास
3.5.1 अव्ययी भाव समास
3.5.2 तत्पुरूष समास
3.5.3 कर्मधारय समास
3.5.4 द्विगु समास
3.5.5 द्वन्द समास
3.5.6 बहुब्रीहि समास
3.6 संधि
3.6.1 संधि के प्रकार
3.7 लिंग, वचन और कारक
3.7.1 लिंग
3.7.2 वचन
3.7.3 कारक
3.8 विशेषण
3.9 क्रिया
3.10 वाच्य
3.11 हिन्दी में वाक्य रचना
3.12 क्रिया विशेषण
3.13 वाक्य विचार
3.14 मुहावरे, लोकोक्तियां तथा सूक्तियां
3.15 परिभाषिक शब्दावली
3.16 पत्र लेखन
3.17 अनुवाद
3.18 विचार संदर्भ / शब्दावली

3.19 सारांश
3.20 अभ्यासार्थ प्रश्न
3.21 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप हिन्दी भाषा की संरचना से अच्छी तरह परिचित हो जाएंगे । हिन्दी की प्रकृति और प्रवृति को किस प्रकार व्याकरणिक संरचना स्थिर ओर नियंत्रित करती है । कौन-कौन से घटक भाषा की रूप रचना को समृद्ध करते हैं? इन्हें समझ कर आप भाषिक शुद्धता को स्वयं अपनी भाषा का अंग बना सकेंगे ।

यह सर्वविदित है कि औपचारिक रूप से हिन्दी इस देश की राजभाषा है । इसके अतिरिक्त यह इस देश की अस्मिता का पर्याय बन चुकी है । अत: हिन्दी भाषा में तथा सामाजिक-राजनैतिक स्तर पर राजभाषा और सम्पर्क भाषा के रूप में । हिन्दी की प्रकृति जनोन्मुखी रही है । प्रस्तुत इकाई में हिन्दी की संरचना और उसके प्रकार्यात्मक स्वरूप का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी की यह विडम्बना रही है कि हिन्दी का व्याकरण संस्कृत व्याकरण के अनुकरण पर विकसित हुआ अथवा अंग्रेजी व्याकरण के सहारे, जिसे हम हिन्दी का अपना व्याकरण कह सकें, वह व्याकरण आज भी हमारे पास नहीं है । आचार्य किशोरी दास वाजपेयी जैसे वैयाकरणों ने हिन्दी का अपना व्याकरण विकसित करने की दिशा में जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उसे सारस्वत जगत में समुचित प्रतिष्ठा नहीं मिली । यद्यपि हिन्दी के महत्त्व को राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भली-भांति पहचान लिया गया था, तथापित स्वतंत्रता के बाद ही हिन्दी को संविधान में राजभाषा का दर्जा मिला और हिन्दी हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान बन गयी । हिन्दी ने पिछली शताब्दी में उसे अनुशासन का रूप धारण कर लिया है जो भारतीय सांस्कृतिक चिंतनधारा के वैविध्यपूर्ण रूपों को एक सूत्र में बाँधकर राष्ट्रीय जीवन की एक समग्र झाँकी प्रस्तुत कर सके, किन्तु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ राजनैतिक विवादों ने हिन्दी की स्थिति को कमजोर किया है और उसके राष्ट्रीय स्वरूप को विवादास्पद बना दिया है । दूसरे यह कि चूँकि हिन्दी हमारी मातृभाषा है, अत: हम उसे गंभीरता से नहीं लेते हैं । इस उपेक्षा भाव से भी हिन्दी की क्षति हुई है, किन्तु एक तथ्य यह भी है कि हिन्दी का विकास विभिन्न स्तरों पर हो रहा है । जीवन में हिन्दी की आवश्यकता बढ़ती जा रही है । अदालतों और सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है । प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है । उधर विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में भी हिन्दी के प्रयोग से हमारे युवा लाभान्वित हो रहे हैं।

अत: उक्त परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत इकाई में हिन्दी के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक स्वरूप का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ताकि पाठक लाभान्वित हो सके ।

3.2 शब्द

शब्द का संबंध 'शब्द' धातु से है जिसका अर्थ है बोलना । इसका अर्थ 'ध्वनि' है । अंग्रेजी के "word" तथा अरबी के लफ्ज का अर्थ होता है- ध्वनि किया हुआ या मुँह से फेंका हुआ । पतंजलि का कथन है कि 'जिसके बोलने से अर्थ की प्रतीति हो, वह शब्द है' । अर्थ के स्तर पर भाषा की सबसे छोटी इकाई को भी शब्द कहा गया है | सामान्य रूप से वर्णों का वह समूह जिसमें किसी अर्थ की प्रतीति होती हो, शब्द कहलाता है । जैसे 'पुस्तक' कहने या पढने से एक वस्तु विशेष का बोध होता है जो उसका अर्थ है, इसलिए 'पुस्तक' शब्द है, जबकि इन्हीं वर्णों को इस प्रकार रख दिया जाए 'कस्तपु' तो किसी अर्थ की प्रतीति नहीं होती । इसलिए यह समूह शब्द नहीं हे । अत: अर्थ की प्रतीति शब्द के लिए आवश्यक है ।

3.2.1 शब्द और पद

स्पष्ट है कि सार्थक ध्वनि समूह को हम शब्द कहते हैं, किन्तु जब कोई सार्थक शब्द व्याकरणिक प्रत्ययों के योग से वाक्य में प्रयोग होने योग्य हो जाता है तो उसे पद कहा जाता है । 'बालक पुस्तक पढ़ते हैं' यह एक वाक्य है तथा 'बालक', 'पुस्तक' 'पढ़ते' हैं अलग अलग शब्द हैं क्योंकि इनके अर्थ हैं, पर जब यही शब्द वाक्य में हैं तो इन्हें पद कहा जाएगा ।

3.2.2 शब्द-रचना

धातु मूल अथवा मूल शब्द के आगे-पीछे कुछ जोड़कर अथवा दो. या दो से अधिक शब्दों को मिलाकर नये शब्द का निर्माण किया जाता हैं शब्द की इस प्रक्रिया को शब्द रचना कहते है । शब्द रचना उपसर्ग, प्रत्यय, समास, संधि, तद्धति, कृदन्त आदि से संभावित होती है।

यहाँ शब्द रचना के विभिन्न अवयवों का परिचय दिया जा रहा है-

3.3 उपसर्ग

उपसर्ग शब्द से पूर्व लगने वाला वह अक्षर समूह है जो शब्द के पूर्व लगने से या तो उसके अर्थ में परिवर्तन या विशेषता ला देता है, जैसे जन, गति, गम शब्दों में 'दुर' उपसर्ग लगने से दुर्जन, दुर्गति, दुर्गम शब्द बन गये । हम देखते है कि दुर उपसर्ग के लगने से तीनों शब्दों का अर्थ बिल्कुल ही बदल गया है । इसी प्रकार नाश, जय, ध्वंस शब्दों में 'वि' उपसर्ग के लगने से विनाश, विजय, विध्वंस शब्द बने हैं । यहाँ इस उपसर्ग के लगने से इन शब्दों का अर्थ बिल्कुल तो जरूर नहीं बदला, लेकिन 'वि' उपसर्ग लगने से तीनों ही शब्दों के अर्थ में विशेषता आ गयी है ।

इन उपसर्गों का स्वतंत्र रूप से कोई अर्थ नहीं होता, लेकिन शब्दों के साथ लगने से शब्द में विकार उत्पन्न कर देते हैं । यह भी ध्यान देने योग्य है कि एक उपसर्ग प्राय: एक या दो अर्थो में ही प्रयुक्त होता है ।

हिन्दी में प्रचलित उपसर्गों को तीन वर्गो में रख सकते हैं - (1) संस्कृत के उपसर्ग (2) हिन्दी के उपसर्ग और (3) विदेशी उपसर्ग ।

3.3.1 संस्कृत के उपसर्ग

संस्कृत में उपसर्गों की संख्या 21 मानी गयी है । संस्कृत के उपसर्ग हिन्दी में भी प्रयुक्त होते हैं, लेकिन केवल तत्सम शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं । अत: यह उपसर्ग हिन्दी में अलग महत्व नहीं रखते, पर तत्सम शब्दों के साथ इनका प्रयोग होता है, इसलिये इनका अध्ययन भी आवश्यक है । नीचे संस्कृत के वे उपसर्ग दिये जा रहे है, जिनका प्रयोग हिन्दी में भी होता है ।

यथा-अति, अधि, अनु, अप, अभि, अव, आ, उत्, उप, दुर् या नि, निर् या निस् परा, परि, प्र, प्रति, वि, सम्, सु आदि ।

नीचे कुछ उपसर्गों के उदाहरण दिये जा रहे हैं, यथा-

उपसर्ग	**अर्थ**	**प्रयोग**
अति	अधिक, ऊपर या आगे	अतिकाल अतिशय, अतिप्रिय
अधि	प्रधान, समीपता, ऊँचाई, श्रेष्ठता आदि	अधिकार, अधिनायक, अधिष्ठाता
अनु	पीछे, पश्चात्, समान, क्रमसूचक आदि	अनुचर, अनुमान, अनुकरण
अव	अनादर, हीनता, नीचे, पतन	अवगुण, अवसान, अवगत
उत्	ऊपर, श्रेष्ठ, उच्चता	उत्कर्ष, उत्सर्ग, उत्तम
उप	समीप, गौण, छोटा, सहायक, सहायता	उपकार, उपचार, उपसंहार

संस्कृत के इन उपसर्गों के अतिरिक्त कुछ विशेषण एवं अव्यय भी इस प्रकार के है जिनका प्रयोग उपसर्गों के रूप में ही होता है । उपसर्गवत् प्रयुक्त होने वाले विशेषण एवं अव्यय निम्नलिखित हैं-

यथा - अ, कु, स या सह, अन्, अध:, चिर, सत्, पुरस, पुनर, तिरस अंतर, स्व, सह आदि । उदाहरण-

उपसर्ग	**अर्थ**	**प्रयोग**
अ	रहित, विहि	नअभाव, अज्ञान, अथाह
कु	बुरा	कुपात्र, कुकर्म, कुफल
स या सह		साथ सहयोग, सहचर, सहज
अध:	नीचे	अधःपतन, अधोगति
चिर	सदैव	चिरकाल, चिरायु, चिरंजीवी

3.3.2 हिन्दी के उपसर्ग

हिन्दी में बहुत थोड़े से उपसर्गों का प्रयोग होता है । हिन्दी के उपसर्ग संस्कृत उपसर्गों के तद्भव शब्दों के साथ ही प्रयुक्त होते हैं, यथा- अ, अन्, अध, उन्, औ, क, कु, दु, बिन, स, सु, अनु, पर आदि । उदाहरण-

उपसर्ग	**अर्थ**	**प्रयोग**

अ	अभाव, निषेध	अधर, अमोल अचेतन
अध	आधा	अधपका, अधजला, अधनंगा
उन्	कम	उन्नीस, उन्तीस, उनचालीस
स, सु	सहित, उत्तम	सकाम, सुमार्ग, सजीव

3.3.3 विदेशी उपसर्ग

हिन्दी में विदेशी उपसर्ग भी प्रचलित है । उर्दू अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी के कुछ उपसर्ग हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि उपसर्ग इन्हीं भाषाओं के शब्दों के साथ प्रयोग किये जाते है तथा उपसर्ग सहित विदेशी भाषाओं के ये शब्द ही हिन्दी में स्वीकार कर लिये जाते हैं । विदेशी उपसर्ग अपनी भाषाओं के साथ ही जुड़ते है । यथा-अल, कम, खुश, गैर, दर, ना, बद, बे, ला,सर, हम सर सब आदि । उदाहरण-

उपसर्ग	अर्थ	प्रयोग
अल	निश्चित	अलबत्ता, अलमस्त
कम	थोड़ा, हीन	कमजोर, कमसमझ कमउम्र
गैर	नहीं	गैरआबाद गैरहाजिर, गैर कानूनी
सब	छोटा	सब-इन्सपेक्टर, सबट्रेजरी

3.4 प्रत्यय

'प्रत्यय' वे अक्षर या अक्षर समूह है जो अन्य शब्दों के बाद जोड़े जाते हैं । हिन्दी में संस्कृत प्रत्ययों की प्रधानता है जो प्राय: तत्सम शब्दों पर ही लगाये जाते हैं । हिन्दी के कुछ अपने प्रत्यय भी हैं तथा कुछ अरबी फारसी के लिए गए है ।

धातु पर प्रत्यय लगाकर जब नये शब्द बनाये जाते है तो ऐसे प्रत्ययों को 'कृत प्रत्यय' कहते हैं तथा नये शब्दों को 'कृदन्त' कहते हें । यदि संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि पर प्रत्यय लगाकर नये शब्द बनाये जाते हैं, तो ऐसे प्रत्ययों को 'तद्धित प्रत्यय' कहते है । तथा नये शब्दों को 'तद्धितान्त' कहते हैं । यहाँ दोनों प्रकार के प्रत्यय दिये गये हैं और उनके सामने कृ. और त. या कृ. अथवा त. लिखा गया है । उसी क्रम से उदाहरण भी दिये गये है । स्वरों से आरंभ होने वाले प्रत्ययों से पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर का लोप समझना चाहिए, यथा-

(1) अक्कड़ (कृ.) - कर्तृवाचक संज्ञा, यथा-पी+अक्कड़=पियक्कड़ | घूम+अक्कड़=घुमक्कड़ । इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति अक्क-ट+'अक्कड़' से की गयी है ।

(2) अता(कृ.) - वर्तमान कृदन्त, यथा उड़ता, चलता फिरता । इनके स्त्रीलिंग रूप उड़ती, चलती, फिरती है । इनका सम्बन्ध संस्कृत के प्रत्यय अत् (शतृ) से है ।

(3) आ (कृ., त:) - भूतकालिक कृदन्त, भाववाचक संज्ञा, करणवाचक संज्ञा, विशेषण, यथा बैठ, उठा । झगड़ा झटका, घेरा, फाँसा । भूखा, प्यासा ।

(4) आई (कृ., त.) - भाववाचक संज्ञा, यथा-लड़ाई, खुदाई, भलाई, बुराई, चतुराई, पंडिताई आदि ।

(5) आहट (कृ., त.) - भावचाक संज्ञा, यथा-गड़गड़ाहट, गुर्राहट, चिकनाहट, कडुआहट आदि। यह देशज प्रत्यय है ।

3.5 समास

दो या दो से अधिक शब्दों को पारस्परिक सम्बन्धद्योतक शब्दों के लोप होने से उन दो या दो से अधिक शब्दों के योग से जो नया शब्द बनता है, उसे सामासिक शब्द कहते हैं । शब्दों के इस योग को 'समास' कहते है । .समास भारोपीय परिवार की भाषाओं की विशेषता है । जब सामासिक शब्द को तोड़ा जाता है और लुप्त सम्बन्ध द्योतक शब्दों, प्रत्ययों, विभक्तियों, आदि को प्रकट किया जाता है, तब इसे 'समास-विग्रह' कहते हैं । कभी-कभी संस्कृत में विभक्तियों का लोप नहीं भी होता है और समास बन जाता है, यथा-सरसिज, अन्तेवासिन, किन्तु यह प्रवृत्ति अपवाद मात्र है ।

समास छः प्रकार के होते है- (1) अव्ययीभाव, (2) तत्पुरूष, (3) कर्मधारय, (4) द्विगु (5) बहुब्रीहि, (6) द्वन्द । कर्मधारय और बहुब्रीहि समास को 'तत्पुरूष' समास का ही अंग माना गया है अत: मूल रूप से समास के चार भेद हैं-

3.5.1 अव्ययी भाव समास

जिस समास का पहला पद अव्यय हो और जिससे बना समस्त पद क्रिया विशेषण अव्यय हो, उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं । हिन्दी में संस्कृत से लिए हुए अव्ययीभाव सामासिक शब्द बहुत हैं- यथाशक्ति, प्रतिदिन, आमरण । शुद्ध हिन्दी में अव्ययीभाव समास पद कम है, यथा-हरदिन, निधड़क । द्विरूक्ति से भी अव्ययीभाव समास बनता है, यथा धीरे-धीरे, बार-बार, बीचोंबीच । कतिपय अन्य उदाहरण देखिए-

आजन्म	-	जन्म से मृत्यु तक
यथाविधि	-	विधि के अनुसार
हर साल	-	हरेक साल

3.5.2 तत्पुरूष समास

जिस समास में उत्तर पद (अंतिम पद) की प्रधानता रहती है, उसे तत्पुरूष समास कहते हैं इस समास में दोनों शब्दों के बीच आने वाले परसर्गों (को, के, द्वारा, के, लिए, से, की, के, में, पर) आदि का लोप हो जाता है । जैसे- राजकन्या, सत्यपालन, देवपुत्र आदि ।

(1) कर्म तत्पुरूष - इसमें प्रथम खण्ड की कर्म- विभक्ति का लोप होता है, यथा-

गगन को चूमने वाला	गगनचुम्बी
चिड़िया को मारने वाला	चिड़ीमार

(2) करण तत्पुरूष - इसमें प्रथम खण्ड की करण विभक्ति का लोप होता है, जैसे-

प्रकाश से युक्त	प्रकाशयुक्त
रेखा से अंकित	रेखांकित

(3) सम्प्रदान तत्पुरूष- इसमें प्रथम खण्ड की सम्प्रदान विभक्ति का लोप होता है यथा-

देश के लिए भक्ति	देशभक्ति
रसोई के लिए घर	रसोईघर

(4) अपादान तत्पुरूष- इसमें प्रथम पद की अपादान विभक्ति का लोप होता है, यथा-

देश से निकाला	देशनिकाला
ऋण से मुक्त	ऋणमुक्त

(5) सम्बन्ध तत्पुरूष - इसमें प्रथम पद की सम्बन्ध विभक्ति का लोप होता है, यथा-

राजा की पुत्री	राजपुत्री
जनता का पथ	जनपथ

(6) अधिकरण तत्पुरूष- इसमें प्रथम पद की अधिकरण विभक्ति का लोप होता है यथा-

ग्राम में वास	ग्रामवास
अपने पर बीती	आपबीती

3.5.3 कर्मधारय समास

जिस समास में पूर्व पद विशेषण हो और उत्तर पद प्रधान हो तथा उपमेय-उपमान का सम्बन्ध हो, वहाँ कर्मधारय समास होता है, जैसे-

पीत+अम्बर	पीताम्बर
सत्सं+गति	सत्संगति
नीला+-आकाश	नीलाकाश

3.5.4 द्विगु समास

जब समस्त शब्द का प्रथम खण्ड (विशेषण) संख्यावाची होता है और उससे समूह का बोध होता है तो द्विगु समास होता है, जैसे-

तीनों लोकों का समूह	त्रिलोक
चार मासों का समूह	चौमासा
पाँच तंत्रों का समूह	पंचतंत्र
नव रत्नों का समूह	नवरतन

3.5.5 द्वन्द समास

जिस सामासिक पद में दोनों पद प्रधान हों तथा दोनों पदों को मिलाने वाले समुच्चबोधक अव्यय (और, या, तथा, अथवा) का लोप हो, वहाँ द्वन्द्व समास होता है । इस समास के तीन भेद होते है- (1) इतरेतर द्वन्द्व, (2) वैकल्पिक द्वन्द्व, और (3) समाहार द्वन्द्व ।

(1) इतरेतर द्वन्द्व -जिस समास के दोनों पदों के बीच 'और' अर्थ निहित रहता है, उसे इतरेतर द्वन्द्व समास कहते हैं, यथा-

माता और पिता	माता-पिता

सीता और राम	सीता-राम
गुण और अवगुण	गुण-अवगुण

(2) वैकल्पिक द्वन्द्व-इसमें समस्त पद के दोनों पद 'या', 'अथवा' आदि से जुड़े होते हैं । विकल्प-बोधक तथा समुच्चय बोधक शब्द समास करते ही लुप्त हो जाते हैं । उदाहरणार्थ-

पाप या पुण्य	पाप-पुण्य
साग या पात	साग-पात
उल्टा या सीधा	उल्टा-सीधा
सुख या दुख	सुख-दुख

(3) समाहार द्वन्द्व -सामासिक पदों के अतिरिक्त अन्य मिलते-जुलते अर्थ का बोध हो तो उसे समाहार द्वन्द्व समास कहते है । इस समास में दोनों पदों के बाद 'आदि' का अर्थ छिपा रहता है, जैसे-

कंकड-पत्थर	कंकड़ पत्थर आदि
कीड़ा-काँटा	कीड़ा काँटा आदि
दाल-रोटी	दाल रोटी आदि

समानार्थी युग्मों में भी 'आदि' अर्थ छिपा रहता है । इस कारण इन्हें भी समाहार द्वन्द्व समास मानना चाहिए. जैसे- बर्तन-भाँडे, बाल-बच्चे, जीव-जन्तु साँप-सपोला आदि । समाहार द्वन्द्व समास सामान्यत: बहुवचन होते हैं ।

3.5.6 बहुब्रीहि समास

जिसमें कोई भी पद प्रधान नहीं होता, बल्कि समस्त पद किसी अन्य पद का विशेषण होता है, वहाँ 'बहुब्रीहि समास' होता है । तत्पुरूष के सभी भेद बहुब्रीहि में भी हो सकते है, अन्तर यही है कि तत्पुरूष समास सामासिक पद किसी का विशेषण नहीं होता है उदाहरणार्थ -

दशानन	दस हैं आनन(मुख) जिसके अर्थात रावण
नीलकंठ	नीला है कंठ जिनका, अर्थात् महादेव शिव
चन्द्रमौलि	चन्द्र है सिर पर जिसके अर्थात् शंकर
लम्बोदर	लम्बा है उदर(पेट) जिनका, अर्थात्' गणेश

3.6 संधि

संधि शब्द का अर्थ है मिलना या मेल । व्याकरण में संधि का अर्थ है दो या दो से अधिक वर्णों का मेल । जब दो पद अथवा एक ही पद के दो अवयव एक-दूसरे के पीछे बोले जाते हैं, तब पहले पद के अंतिम वर्ण तथा दूसरे पद के प्रथम वर्ण में मेल होकर विकार उत्पन्न हो जाता है, इसे ही संधि कहते हैं । जैसे 'पीत' तथा 'अम्बर' दो शब्द हैं । जब इन दोनों को निकट रखकर बोला जाए तो पहले पद 'पीत' के अंतिम वर्ण 'अ' (पीत+अ) तथा दूसरे

पद के प्रथम वर्ण 'अ' में मेल हो जायेगा तथा दोनों वर्ण 'आ' हो जायेंगे तथा शब्द मिलकर 'पीताम्बर' शब्द हो जायेगा ।

सरल शब्दों में कह सकते हैं कि दो वर्णों के पास-पास आने पर उनमें जो विकार उत्पन्न होता है, उसे संधि कहते है । संधि में दो वर्णों का मेल होता है तथा संधि के बाद वर्णों का रूप बदल जाता है । संधि-विच्छेद करने पर ही वर्णों के वास्तविक रूप का पता चलता है जैसे 'तल्लीन' शब्द है । संधि-विच्छेद कर पता चलता है कि यह तत्ली+न से बना है । संधि-विच्छेद करने के पश्चात् ही 'त्' तथा 'ल' का रूप स्पष्ट होता है ।

3.6.1 संधि के प्रकार

संधि तीन प्रकार की होती है-

(1) स्वर संधि- दो स्वरों के मेल से जो विकार उत्पन्न होता है, उसे स्वर संधि कहते हैं, जैसे-

सदा+एव=सदैव (आ+ए)

हिम+आलय=हिमालय (अ+आ)

(2) व्यंजन संधि-दो व्यंजनों अथवा एक स्वर और एक व्यंजन के बीच के मेल को व्यंजन संधि कहते हैं, यथा-

तत्तल्लीन=लीन+ (त्ल+)

सद्+आचारस=दाचार (दअ+)

(3) विसर्ग संधि-विसर्ग के पश्चात् कोई स्वर अथवा व्यंजन आने से जो मेल होता है, उसे विसर्ग संधि कहते हैं, जैसे-

मन:+हरमनोहर= (:ह+)

मन:+-अनुकूल=मनोनुकूल (:अ)

3.7 लिंग, वचन और कारक

3.7.1 लिंग

संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों से दो लिंगों का बोध होता है । या तो वे पुरूष का बोध कराते है या स्त्री का । जड़ पदार्थो में भी स्त्री या पुरूष का बोध होता है । इसी आधार पर दो प्रकार के लिंग होते हैं-पुल्लिंग और स्त्रीलिंग ।

(1) पुल्लिंग - जिस शब्द से पुरूष का बोध होता है, वह पुल्लिंग होता है । जैसे - राम गया (पुल्लिंग), वह गया (पुल्लिंग), लड़का, गिलास, कमरा, मकान, पहाड़ आदि शब्द पुरूष का बोध कराते हैं, अत: पुल्लिंग हैं ।

(2) स्त्रीलिंग - जिन संज्ञा या सर्वनाम शब्दों से स्त्रीवाचक बोध होता है, वे स्त्रीलिंग कहलाते है । सीता गयी (स्त्रीलिंग), वह आयी (स्त्रीलिंग), गंगा, रमा, किताब. कुर्सी आदि शब्दों के स्त्रीवाचक बोध होता है, अत: ये स्त्रीलिंग हैं ।

3.7.2 वचन

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में तीन वचन थे, किन्तु मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में केवल एकवचन और बहुवचन रह गये थे । आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में दो ही वचन है-

एकवचन - शब्द के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है, उसको एकवचन कहते है, जैसे- बच्चा, गाय, माता पुस्तक आदि ।

बहुवचन - शब्द के जिस रूप से अनेकता का बोध होता है, उसे बहुवचन कहते हैं, जैसे कपड़े, मालाएँ, पुस्तकें, लताएँ आदि ।

वचन की पहचान निम्न प्रकार से की जा सकती है-

1. वचन की पहचान हम संज्ञा अथवा सर्वनाम से भी कर सकते हैं, जैसे- (अ) बच्चा रो रहा है, (ब) बच्चे रो रहे हैं ।
2. यदि वचन की पहचान संज्ञा अथवा सर्वनाम से भी नहीं होती, तो हम क्रिया के द्‌वारा भी उसकी पहचान कर सकते हैं- (अ) मोर नाच रहा है, (ब) मोर नाच रहे हैं ।

3.7.3 कारक

जो शब्द संज्ञा तथा सर्वनाम की प्रक्रिया के साथ सम्बन्ध प्रकट करते हैं वे कारक शब्द कहलाते हैं, जैसे- 'राम ने पुस्तक पढ़ी' में 'पढ़ना' क्रिया है तथा इस क्रिया को सम्पन्न करने वाला 'राम' है । 'ने' द्‌वारा किया तथा काम करने वाले का संबंध प्रकट होता है ।

हिन्दी में आठ कारक माने गये हैं-

1. कर्त्ता कारक-जिस संज्ञा या सर्वनाम से कार्य करने वाले का बोध होता है, उसे कर्त्ता कारक कहते हैं । जैसे-

   राम ने पुस्तक पढ़ी - कर्त्ता राम ने

   मैंने दरवाजा खोला - कर्त्ता मैंने

2. कर्म कारक-जिस वस्तु पर क्रिया व्यापार का प्रभाव पड़े उसे कर्म कारक कहते हैं । जैसे-

   'राम ने पुस्तक पढ़ी' ।

   यहाँ 'पढ़ी' क्रिया का प्रभाव पुस्तक पर पड़ता हैं पुस्तक का कारक कर्म कारक है । इसी प्रकार 'मैंने दरवाजा खोला' में दरवाजा कर्म कारक है ।

3. करण कारक-जिस शब्द से क्रिया के साधन का बोध होता है, उसे करण कारक कहते हैं । यथा-

   राम ने कलम से खत लिखा-

   इस वाक्य में लिखा क्रिया हे तथा कलम लिखने का साधन है, अत: 'कलम से' में करण कारक है ।

सम्प्रदान कारक-जिसके लिए कोई कार्य किया जाता है, उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं । यथा-

उसने राम को किताब दी ।

यहाँ देना क्रिया ह तथा यह क्रिया राम के लिए की जाती है, अत: 'राम को' सम्प्रदान कारक है ।

4. अपादान कारक-जहाँ एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ के अलग होने का बोध होता है, उसे अपादान कारक कहते हैं । यथा-

   पेड़ से पत्ता गिरा ।

   यहाँ पत्ता पेड़ से अलग होता है । अत: 'पेड़ से' में अपादान कारक है ।

5. सम्बन्ध कारक-जहाँ संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध अन्य पदार्थ से हो, वहाँ सम्बन्ध कारक होता है । यथा-

   ये मेरी पुस्तक हैं ।

   यहाँ 'मेरी' का सम्बन्ध पुस्तकों से हे । अत: 'मेरी' यहाँ सम्बन्ध कारक है ।

6. अधिकरण कारक-जिससे क्रिया के आधार या स्थान का बोध होता है, वहाँ अधिकरण कारक होता है । जैसे-

   मैं मेज पर पुस्तकें रखता हूँ ।

   यहाँ 'पुस्तकें' रखने का स्थान 'मेज' है । अत: 'मेज पर' अधिकरण कारक है ।

7. सम्बोधन कारक - संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारा, बुलाया या उद्‌बोधित किया जाये, उसे सम्बोधन कहते हैं ।

3.8 विशेषण

संज्ञा की विशेषता बताने वाले शब्द विशेषण कहलाते हैं । विशेषण शब्द संज्ञा शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं तथा ये गुण-दोष आदि को प्रकट करते हैं । उदाहरणार्थ-

उसके पास लाल घोड़ा है ।

यहाँ लाल शब्द घोड़े की विशेषता का बोधक है ।

विशेषण के भेद सामान्यत: विशेषण पाँच प्रकार के होते हैं-

1. गुणवाचक-संज्ञा शब्दों के गुण-अवगुणों को प्रकट करने वाले शब्द गुणवाचक विशेषण कहलाते हैं । संख्यावाचक विशेषण-जो विशेषण शब्द किसी संज्ञा की संख्या का बोध कराते है, वे संख्यावाचक विशेषण होते हैं । जैसे-चार लड़के, प्रत्येक व्यक्ति ।
2. परिमाणवाचक विशेषण-जो विशेषण किसी वस्तु की नाप तौल या मात्रा बतलाते हैं, वे परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं । जैसे- एक सेर दूध, थोड़ा पानी ।
3. संकेतवाचक विशेषण-जो विशेषण किसी संज्ञा की ओर संकेत करते हैं, संकेतवाचक विशेषण कहलाते हैं । जैसे-वे लड़के पढ़ रहे हैं, यह स्त्री सुन्दर है ।
4. व्यक्तिवाचक विशेषण-व्यक्तिवाचकसंज्ञा से बनने वाले विशेषण व्यक्तिवाचक विशेषण कहलाते हैं । जैसे- भारतीय समय (भारत व्यक्तिवाचक संज्ञा से)

5. जापानी गुड़िया (जापान व्यक्तिवाचक संज्ञा से)

3.9 क्रिया

कुछ करने या होने की सूचना प्रदान करने वाले रूपों को क्रिया कहते हैं क्रिया की रचना धातु से होती है । धातु क्रिया का मूल अंग होता है, जैसे-उठ, बैठ, लिख, पढ़ । धातु से क्रिया के विभिन्न रूप बनते हैं, किन्तु धातु क्रिया के सभी रूपों में विद्यमान रहती है । जैसे-चल धातु है, इससे चलना, चलो, चलें, चलूँ, चला, चली, चले, चलेंगे आदि बनते हैं ।

क्रिया के भेद- क्रिया के भेद कई प्रकार से किए जाते हैं-

1. **कर्म के अनुसार क्रिया के भेद** - कर्म के अनुसार क्रिया दो प्रकार की होती है- (क) सकर्मक क्रिया और (ख) अकर्मक क्रिया । जिन क्रियाओं का फल कर्म पर पड़ता है, वे सकर्मक क्रिया कहलाती है अर्थात् कर्म सहित क्रिया होती है । उदाहरण-

   अ. मोहन पुस्तक पढ़ता है ।

   ब. वह पत्र लिखता है ।

   इन वाक्यों में 'पढ़ता है', 'लिखता है', क्रियाएँ है । इनका प्रभाव क्रमश: पुस्तक तथा पत्र पर पड़ता है । जिस क्रिया का व्यापार कर्त्ता तक ही सीमित रहता है, अर्थात् जिस क्रिया का कोई कर्म नहीं होता, वे अकर्मक क्रियाएँ होती है । उदाहरणार्थ-

   'पानी बरसता है' इसमें बरसना क्रिया है, किन्तु उसका प्रभाव केवल पानी तक सीमित है । इसमें कोई कर्म नहीं है । अत: बरसता है अकर्मक क्रिया है ।

2. बनावट के अनुसार क्रिया के भेद-जैसे उल्लेख किया जा चुका है, क्रियाओं का निर्माण धातु से होता है । धातुएँ दो प्रकार की होती है-

   मूल धातु-जो दूसरे शब्द के सहारे निर्मित नहीं होती, वे मूल धातु होती हैं । जैसे-चलना, जाना, आना आदि ।

   यौगिक धातु-जो धातु किसी दूसरे शब्द के सहारे निर्मित होती है, वे यौगिक धातु कहलाती है । जैसे चलना, से चल, चलेंगे, चलेगा आदि ।

   यौगिक धातुएँ चार प्रकार की होती हैं-

   (क) **प्रेरणात्मक क्रियाएँ -** जहाँ कर्त्ता स्वयं कोई कार्य न कर किसी दूसरे से करवाता है या दूसरे को करने की प्रेरणा देता है, जैसे-
   राम ने दर्जी से कुर्त्ता सिलवाया ।

   (ख) **संयुक्त क्रियाएँ**-जो दो या दो से अधिक धातुओं से बनती है । जैसे-
   वह गीत गाने लगा है ।

   (ग) **पूर्वकालिक क्रियाएँ**-वे क्रियाएँ जिनका पूर्ण होना किसी दूसरी क्रिया के पूर्ण होने के पूर्व ही पाया जाए पूर्वकालिक क्रियाएँ कहलाती हैं, जैसे-
   वह खाना खाकर स्कूल गया ।

(घ) नाम धातु क्रिया-संज्ञा से निर्मित होने वाली क्रियाएँ नाम धातु क्रिया कहलाती हैं, जैसे-

राम ने सारी सम्पत्ति हथिया ली । (हाथ से)

3. व्यवहार की दृष्टि से क्रिया में भेद-

(क) निश्चय बोधक क्रिया-जिससे किसी कार्य के निश्चय को बोध हो, वे निश्चय बोधक क्रियाएँ होती है, जैसे-

वह निरन्तर लिखता रहा है ।

(ख) अनिश्चय बोधक क्रिया-जिससे किसी कार्य के निश्चय का बोध हो, वे अनिश्चय बोधक क्रियाएँ होती हैं, जैसे-

वह सो रहा होगा ।

(ग) (ग) आज्ञार्थक क्रियाएँ-जिन क्रियाओं से आज्ञा, प्रार्थना, अनुमति का बोध हो, वे आज्ञार्थक क्रियाएँ कहलाती हैं । जैसे-

पुस्तक लाओ ।

3.10 वाच्य

जब क्रिया कर्त्ता, कर्म या किसी भाव का विधान करती है, तब वह क्रमश: कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य या भाववाच्य में बदल जाती है । उदाहरण के लिए - 'मैं रोटी खाता हूँ' (कर्तवाच्य), ‘रोटी खाई जाती है', (कर्मवाच्य), 'मुझसे चला नहीं जाता’ (भाववाच्य) ।

3.11 हिन्दी में वाक्य रचना

वाक्य शब्दों का एक ऐसा समूह है जो एक विचार-विशेष को पूरी तरह प्रकट कर देता है । प्रत्येक वाक्य में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध. दो खण्ड होते हैं । पहले को उद्देश्य और दूसरे को विधेय कहते हैं । उदाहरणार्थ-

‘राम गाता है’ वाक्य में राम उद्देश्य है, 'गाता है' विधेय है । वाक्य के अन्तर्गत शब्दों के परस्पर सम्बन्ध विषयक विचार को विश्लेषित किया जाता है । इसलिए यह स्पष्ट है कि भाषा की रचना पर विचार करते हुए हमें सबसे पहले वाक्य की रचना पर विचार करना होता है । हमारी विचार-शैली का भेद वाक्य भेद से प्रकट होता है । इसलिए भिन्न-भिन्न भाषाओं में वाक्य रचना के भेद से या वाक्य में कर्त्ता, कर्म, क्रिया आदि के परस्पर सम्बन्धों को प्रकट करने के भिन्न प्रकारों से वाक्य स्वभाव और रचना का बहुत कुछ पता लग सकता है । संसार की भिन्न-भिन्न मनुष्य जातियों की विचार-शैली। भिन्न-भिन्न होती है । पदार्थों के प्रति भी उनकी दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न इसीलिए होती हैं । यही कारण है कि भिन्न-भिन्न भाषाओं में वाक्य रचना एक सी न होकर भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है ।

3.12 क्रिया विशेषण

क्रिया की विशेषता बतलाने वाले शब्दों को क्रिया-विशेषण कहते है । जैसे- ‘वह तेजी से लिखता है’ । इस वाक्य में लिखता है क्रिया है तथा ‘तेजी से' शब्द क्रिया की विशेषता 'तीव्रता' को

प्रकट करता है और उसकी विशेषता बतलाता हैं अत: 'तेजी से' क्रिया विशेषण है । क्रिया-विशेषण के मुख्यत: चार भेद किये गये हैं-

1. कालबोधक क्रिया-विशेषण
2. स्थानबोधक क्रिया-विशेषण
3. परिणामबोधक क्रिया-विशेषण
4. रीतिबोधक क्रिया-विशेषण

सम्बन्धबोधक अव्यय-संज्ञा तथा सर्वनाम के पश्चात् प्रयुक्त होने वाले परसर्ग मूल सम्बन्धबोधक अव्यय कहे जाते हैं, जैसे-ने, को, की, से, आदि ।

अन्य सम्बन्ध बोधक-इसमें संज्ञा या सर्वनाम के पूर्व या पश्चात् दोनों स्थितियों में प्रयुक्त होने वाले सम्बन्ध बोधक अव्ययों की गणना होती है, जैसे-बगैर, बिना, मारे सिवा आदि।

समुच्चयबोधक अव्यय-वाक्य के यपों, अंशों व उपवाक्यों को परस्पर जोड़ने वाले अव्ययों को समुच्चबोधक अव्यय कहते हैं । जेसे-अत:, अथवा, अर्थात्, किन्तु, यदि आदि ।

विस्मयादिबोधक अव्यय-विस्मयादिबोधक मनोभावों की अभिव्यंजना करने वालों को विस्मयादिबोधक अव्यय कहते हैं । जैसे-अरे! अहा! छि! थू! वाह! हाय! आदि ।

3.13 वाक्य विचार

अभिव्यक्ति का आधार वाक्य माना गया है । वाक्य निर्माण शब्दों के मेल से होता है । जैसे-

1. राम राजा दशरथ के पुत्र थे ।
2. दशरथ राजा राम के पुत्र थे ।

इन दोनों वाक्यों को देखने से पता चलता है कि पहला वाक्य यह स्पष्ट करता है कि राम नाम व्यक्ति दशरथ का पुत्र था, जो राजा थे, किन्तु दूसरे उदाहरण से कुछ भी स्पष्ट नहीं होता । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि दूसरे उदाहरण के शब्द-समूह का अर्थ निकलता । अत: यह कहा जा सकता है कि वह सार्थक शब्द समूह वाक्य कहलाता है जिससे वक्ता या लेखक के आशय का ठीक-ठीक बोध श्रोता या पाठक को हो सके ।

वाक्य के आवश्यक तत्व

वाक्य के स्वरूप को समझने के लिए वाक्य के तत्त्वों को जानना आवश्यक है । वाक्य के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं-

1. सार्थकता-इसका तात्पर्य यह है कि वाक्य किसी भाव या तथ्य को स्पष्ट करता है । 'रामचरित मानस' तुलसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है । यह वाक्य एक तथ्य को व्यक्त करता है ।
2. क्रमबद्धता-वाक्य में आने वाले शब्द एक क्रम में प्रयुक्त होने चाहिए तथा वाक्य सुन्दर और सार्थक बनता है और इसे ही क्रमबद्धता कहते हैं ।

3. आकांक्षा-वक्ता या लेखक वाक्य में पूरी बात कहना चाहता हैं । यदि वाक्य में बात अधूरी रह जाती है तो उसे कहने और सुनने की जिज्ञासा अपूर्ण रह जाती है । यही जिज्ञासा आकांक्षा कहलाती है ।
4. योग्यता-किसी आशय को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त शब्दों का चयन ही योग्यता कहलाता है अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त शब्दों में किसी आशय को स्पष्ट करने की योग्यता होनी चाहिए । जैसे-वह पुस्तक लिखता है ।

अन्वय

कर्त्ता, क्रिया, कर्म वाक्य के प्रमुख अंग है । इन तीनों के पारस्परिक सम्बन्ध से ही कोई वाक्य शुद्ध बनता है । कर्त्ता, क्रिया, कर्म के परस्पर सम्बन्ध को ही अन्वय या मेल कहते है ।

3.14 मुहावरें, लोकोक्तियाँ तथा सूक्तियाँ

मुहावरे भाषा के सौंदर्य में वृद्धि करते हैं । मुहावरों का निर्माण विद्वानों या वैयाकरणों के द्वारा न होकर लोक-व्यवहार द्वारा होता है । मुहावरे मनुष्य की अनुभूतियों के सजीव चित्र उपस्थित करते हैं । हिन्दी मुहावरों से समृद्ध भाषा है । मुहावरों की भाँति लोकोक्तियाँ भी लोक-जीवन की सिद्ध अनुभूतियाँ की अभिव्यक्ति है । इनमें वाचक अर्थ की अपेक्षा लक्ष्यार्थ की प्रधानता होती है । लोकोक्तियाँ लोक-जीवन के व्यापक अनुभवों को सामान्य शब्दों के माध्यम से व्यक्त करती है । सूक्तियों में भी ज्ञात-अज्ञात लेखकों और विचारकों के चिन्तन-मनन का सारतत्व छिपा होता है । हिन्दी में अनेक विद्वानों और चिंतकों की सूक्तियों का भण्डार है जिससे हिन्दी की अभिव्यक्ति क्षमता बढ़ी है ।

3.15 परिभाषिक शब्दावली

हिन्दी ने व्यापक स्तर पर और जीवन के विविध क्षेत्रों में काम आने वाली परिभाषिक शब्दावली भी विकसित की है । जिसका प्रयोग भिन्न-भिन्न विभागों और कार्यालयों में होता आया है और हो रहा है । उदाहरण के लिए कुछ प्रशासनिक शब्द और वाक्यांश देखिए-

Abondonment claim-	दावे का परित्याग
Abstrack of Account	लेखा-सार
In accordance with	के अनुसार
Accountable for	के लिए उत्तरदायी
Act of misconduct	कदाचार
Kindly acknowledge	कृपया पावती भेजिए
Needful has been done	जरूरी कार्यवाही कर दी गयी है
The proposal is self explanatory	प्रस्ताव स्वत: स्पष्ट है
The reuired papers are placed below	अपेक्षित कागज पत्र नीचे रखे हैं
The proposal is quite in order	यह प्रस्ताव नियमानुसार ठीक है

3.16 पत्र लेखन

पत्र जहाँ रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, वहीं मनुष्य को आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करते हैं । हिन्दी में महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध का पत्र-साहित्य प्रभूत रूप में उपलब्ध है जिसके अध्ययन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है तथापि पत्र लिखते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रख जाना चाहिए-

1. पत्र में अनावश्यक तत्त्वों का समावेश नहीं होना चाहिए ।
2. पत्र में सरल भाषा और उचित शैली का प्रयोग होना चाहिए ।
3. पत्र में किसी बात को अधिक विस्तार नहीं देना चाहिए ।
4. पत्र में भावों तथा विचारों की स्पष्टता आवश्यक है ।

पत्र के प्रकार-

1. व्यक्तिगत एवं सामाजिक पत्र
2. व्यावसायिक पत्र
3. शासकीय पत्र एवं सांस्कृतिक पत्र

स्थानाभाव के कारण सभी प्रकारों के उदाहरण देना संभव नहीं है । केवल निम्नलिखित एक उदाहरण प्रस्तुत है ।

मित्र को पत्र : छात्रावास जीवन के अनुभव

20, विवेकानन्द छात्रावास,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर-302002

20 अगस्त, 2005

बन्धुवर,

नमस्ते,

मैं तुमको इस पत्र से पूर्व दो पत्र डाल चुका हूँ लेकिन एक का भी उत्तर नहीं मिल सका हैं अब यह तीसरा और अन्तिम पत्र लिख रहा हूँ । यदि इसका उत्तर नहीं दिया समझूँगाकि मुझसे तुम्हें कोई प्रेम नहीं है ।

मित्र! हॉस्टल की दिनचर्या विचित्र होती है । सुबह देर से सोकर उठना, फिर नहाना-धोना, इसी में कॉलेज जाने तक का समय बीत जाता है । 10 बजे से 4:30 बजे तक कॉलेज में रहना पडता है । शाम को 5 बजे वापस आकर चाय नाश्ता होता है, फिर शहर में खाना खाने के लिए दो-चार मित्रों के साथ चले जाते है लौटते-लौटते रात के 8:30-9:00 बज जाते हैं । लौटने के बाद हॉस्टल में रात को जो होता है, मत पूछो । पढ़ाई-लिखाई की बातों को छोडकर सभी कुछ होता है । यही नित्य कर्म है, नित्य धर्म है ।

तुम्हारी कया गतिविधियाँ हैं? जिन्दगी कैसे कट रही है? क्या कोई नई बात इस बीच हुई है?

सभी बातों को सविस्तार अपने पत्र में लिखना । तुम्हारा पत्र न पाने से मन खिन्न रहता है ।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में, तुम्हारा मित्र

3.17 अनुवाद

भाषायी स्तर पर अनुवाद का फलक विश्वव्यापी है तथा विचार सम्प्रेषण का यह सबसे प्रभावशाली माध्यम है । अनुवाद का शाब्दिक अर्थ है-पुन: कथन या किसी के बाद कहना । अनुवचन, अनुवाक्, अनुवेदित, पश्चात कथन या पुन: कथन शब्द अनुवाद के पर्यायवाची शब्द माने गये हैं, किन्तु अनुवाद का ध्यवन्यार्थ इन सभी शब्दों से कहीं अधिक व्यापक है, क्योंकि अनुवाद की प्रक्रिया में किसी के विचारों को दूसरी भाषा में प्रस्तुत किया जाता है । अनुवाद में मुख्य तत्त्व एक भाषा के कथन को दूसरी भाषा में समझना है । इसे समझाने में मूल भाषा में कहे गये भाव का सम्यक् सम्प्रेषण सन्निहित है । अत: अनुवाद में आधारभूत उपादान हैं-मूल भाषा का ज्ञान, मूल भाषा की अभिव्यक्ति भंगिमाओं का ज्ञान, मूल कथन की अर्थ-व्यंजना का बोध तथा दूसरी भाषा में इस प्रकार रूपान्तरण करने की क्षमता कि पाठक या श्रोता को मूल कथ्य भली प्रकार सम्प्रेषित हो जाए । इसलिए अनुवाद एक भाषा की पाठ्य-सामग्री को दूसरी भाषा में रूपान्तरित करने की तकनीकी प्रक्रिया मात्र नहीं है, बल्कि एक भाषा की पाठ्य सामग्री को दूसरी सामग्री में पुन: सृजित करना है ।

अत: अनुवाद एक कला है, एक जीवन्त प्रक्रिया है एवं दो संस्कृतियों के बीच सार्थक संवाद है ।

अनुवाद के प्रकार

अनुवाद चार प्रकार के बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. भाषापरक अनुवाद (शब्दिक अनुवादमू-(ल भाषा के अनुवाद को दूसरी भाषा में रूपान्तर करना भाषापरक अनुवाद कहलाता है ।
2. तथ्यपरक अनुवाद-मूल भाषा में व्यक्त तथ्यों को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना तथ्यपरक अनुवाद कहलाता है । वैज्ञानिक, तकनीकी तथा आर्थिक ' तथ्यों का रूपान्तर ही कोटि में आता है ।
3. सांस्कृतिक अनुवाद-मूल भाषा में व्यक्त सांस्कृतिक विचारों का दूसरी भाषा में रूपान्तर करना सांस्कृतिक अनुवाद कहलाता है । धार्मिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक पाठ्य सामग्री का अनुवाद इस कोटि में आता है ।
4. सौंदर्यपरक अनुवाद-मूल भाषा के ललित साहित्य का जिसका आधार सौंदर्य है, दूसरी भाषा में रूपान्तर सौंदर्यपरक अनुवाद कहलाता है । रचनात्मक साहित्यिक का अनुवाद इसी कोटि में आता है ।

अच्छे अनुवाद की विशेषताएँ

1. अच्छे अनुवाद में मूल भाषा के जैसा लालित्य होना चाहिए ।

2. अनुवाद की भाषा भावाभिव्यंजक होनी चाहिए ।
3. अनुवाद में सृजनात्मक होनी चाहिए ।
4. अनुवाद में मूल वक्तव्य के सारे तथ्य व्यक्त होने चाहिए ।

3.18 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.उपसर्ग	:	वे शब्द या शब्दांश जो मूल शब्द के आगे जुड़कर अर्थ में विशेषत्व या परिवर्तन लाते हैं । उपसर्ग शब्द दो शब्दों उप+सर्ग से बना है उप आगे, पहले, सर्ग चलना ।
2. प्रत्यय	:	वे शब्द या शब्दांश जो मूल शब्द के पीछे जुड़कर वही काम करते हैं जो उपसर्ग
3.जनोन्मुखी	:	जनता के हित के लिए अग्रसर
4. सूक्तियां	:	सुख्यात लोगों द्वारा कही गई बात जिसका उपयोग उदाहरण के तौर पर या आदर्श कथन के रूप में किया जाता है ।
5. प्रकार्यात्मक	:	व्यावहारिक या प्रयोजन योग्य
6. लफ़्ज़	:	सार्थक शब्द
7. प्रतीति	:	विश्वास
8. पूर्वकालिक क्रियाएँ	:	वे क्रियाएं जिनका पूर्ण होना किसी दूसरी क्रिया के पूर्ण होने के पहले ही हो गया है । जैसे वह पढ़कर उठा ।
9. संयुक्त क्रियाएँ	:	जो क्रियाएँ दो या दो से अधिक धातुओं से बनती हैं जैसे वह गीत गाने लगा है ।
10. परसर्ग	:	कारक के चिन्ह, विभक्तियां (ने, को, में, से, पर आदि)
11. आकांक्षा	:	इच्छा, वक्ता या लेखक अगर वाक्य में अपनी बात अधूरी छोड़ देता हो तो उसे सुनने या जानने की जिज्ञासा आकांक्षा कहलाती है ।
12. फलक	:	पटल, आधार
13. सम्यक्	:	ठीक-ठीक, पूरी तरह
14. जीवंत प्रक्रिया	:	प्राणवान, कार्यविधि
15. इतरेतर द्वन्द्व	:	जिस समास के दोनों पदों के बीच कुछ 'और' अर्थ निहित हो जैसे माता और पिता
16. संधि	:	मिलना, मेल
17. धातु	:	क्रिया की रचना में सहायक मूल शब्द
18. यौगिक धातु	:	जो धातु किसी दूसरे शब्द के सहारे निर्मित हो
19. हथियाना	:	अधिकार में ले लेना, कब्जा कर लेना
20. नाम धातु क्रिया	:	संज्ञा से निर्मित क्रियाएं वह बतिया रहा है

3.19 सारांश

व्याकरण का कार्य भाषा के अंगों के विच्छेदन द्वारा उनके सही स्वरूप को समझाना है । संस्कृत वाड्मय में व्याकरण शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में हुआ है । इसके अंतर्गत ध्वनियों का उच्चारण, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण वर्ग के शब्दों में सुप विभक्तियां युक्त कर बनने वाले पदों की सिद्धि क्रिया के विभिन्न गणों और लकारों के रूप, तद्धित और कृदन्त शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया, सभी प्रत्यय और उनसे निर्मित होने वाले शब्द आदि । अनेक विषय आ जाते हैं । हिन्दी व्याकरण एवं रचना में भी करीब-करीब इन सबका विवेचन किया गया हैं इस इकाई में भाषा रचना एवं भाषिक प्रकार्यों का विस्तृत विवेचन किया गया है जिन्हें ठीक से समझ कर आप अपनी भाषा को व्याकरण सम्मत और त्रुटि विहिन कर सकेंगे ।

हिन्दी के राजभाषा का स्वरूप ग्रहण करने के बाद इसका प्रयोजन विविध मुखी बन गया है । इसी इकाई में हिन्दी के विविध प्रयोजनपरक रूपों का भी विवरण दिया गया है । यह हिन्दी का व्यावहारिक पक्ष है और इससे अवगत होना समय की मांग है ।

3.20 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. भाषा संरचना एवं भाषिक प्रकार्य से क्या तात्पर्य है?
2. संस्कृत और हिन्दी के उपसर्गों का विवरण सोदाहरण दीजिए ।
3. समास एवं उनके भेदों पर प्रकाश डालिए ।
4. क्रिया एवं उनके भेद सोदाहरण समझाइए ।
5. वाच्य एवं उनके प्रकारों पर प्रकाश डालिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. उपसर्ग एवं प्रत्यय का अन्तर उदाहरण देते हुए समझाइए ।
2. कर्मधारय और बहुब्रीहि समास का मूल अंतर क्या है?
3. लिंग निर्णय कीजिए, आँसू मोती, मुलाकात, चाय, दही, खेत, अवस्था, लहर, गरदन, पुलिस
4. समास विग्रह करते हुए उनके नाम बताएँ- नीलकंठ, यथाविधि, हरसाल, रेखांकित, गगनचुम्बी, नीलाकाश, जनपथ, साग-पात, पंचतंत्र, चन्द्रमौलि ।
5. संधि किसे कहते हैं । इसके कितने भेद हैं । प्रत्येक भेद के दो दो उदाहरण दीजिए।

ग. पारिभाषित शब्द लिखिए

1. The proposal in quik in order
2. Accountable for
3. Abondoment claim
4. Act of misconduct
5. The proposal in self explanary

घ .सही / गलत पर निशान लगाइए

1. मुहावरे भाषा का सौंदर्य क्षय करते हैं । सही / गलत
2. संधि का अर्थ विग्रह है । सही / गलत
3. उपसर्ग मूल शब्दों के पीछे जोड़े जाते हैं । सही / गलत
4. 'ग्रामवास' शब्द में बहुब्रीहि समास है । सही / गलत
5. चिड़िया का बहुवचन चिड़ियाँ होगा । सही / गलत

3.21 संदर्भ ग्रंथ

1. वासुदेव प्रसाद; आधुनिक हिन्दी व्याकरण रचना, भारती भवन, पटना
2. धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी भाषा का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद ।
3. वी.रा. जगन्नाथ; प्रयोग और प्रयोग, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली
4. हरिवंश राय शर्मा; साहित्यिक मुहावरा-लोकोक्ति कोश, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
5. कामता प्रसाद गुरू; हिन्दी व्याकरण, नागरी प्रणाली, सभा, काशी
6. डॉ. हरदेव बाहरी; हिन्दी उद्‌गम: विकास और रूप, किताब महल, इलाहाबाद

इकाई-4 भाषा विज्ञान : परिभाषा, क्षेत्र और अध्ययन की पद्धतियाँ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भाषा विज्ञान : परिभाषा व स्वरूप

4.2.1 भाषा विज्ञान का अर्थ व नामकरण

4.2.2 भाषा की परिभाषा

4.2.3 भाषा विज्ञान: कला अथवा विज्ञान

4.3 भाषा-विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र

4.3.1 भाषा-विज्ञान अध्ययन के प्रधान क्षेत्र

4.3.2 भाषा-विज्ञान अध्ययन के गौण क्षेत्र

4.4 भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ

4.4.1 वर्णनात्मक पद्धति

4.4.2 ऐतिहासिक पद्धति

4.4.3 तुलनात्मक पद्धति

4.4.4 व्यावहारिक पद्धति

4.4.5 व्यतिरेकी पद्धति

4.4.6 ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियों में परस्पर निर्भरता

4.5 भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता

4.6 विचार संदर्भ / शब्दावली

4.7 सारांश

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.9 संदर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :-

- भाषा विज्ञान का अर्थ, परिभाषा व स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रधान व गौण क्षेत्रों की जानकारी ग्रहण कर सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियों की जानकारी प्राप्त कर अपने ज्ञान का अभिवर्धन कर सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता से परिचित होकर भाषा विज्ञान के संबंध में अधिकाधिक शोध करने की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

भाषा विज्ञान के मुख्य प्रकरण, भाषा का इतिहास, भाषा विज्ञान का इतिहास, भाषा का वर्गीकरण, ध्वनिशिक्षा, ध्वनिविचार, रूपविचार, अर्थविचार, वाक्य विचार और भाषामूलक प्रचीन शोध है । अन्तिम और सबसे आवश्यक प्रकरण है, किसी एक भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन । ये सब मिलकर भाषा विज्ञान को पूर्ण बनाते है । हर शास्त्र, विषय और शीर्षक का अपना महत्त्व होता है- आर्थिक, भौतिक, लौकिक, पारलौकिक, यश, व्यवहार और कल्याण - कामना आदि । विज्ञान ने तो हर अध्ययन का उद्देश्य निश्चित कर दिया है । उसकी पूरी प्रयोगशाला इसी के लिए है । उसके सारे सूत्र इसी के लिए है । भाषा विज्ञान आज का विकसित विषय है । इसके उद्देश्य विविध विद्वानों ने निश्चित किए है । भाषा विज्ञान के अध्ययन का आशय है - भाषा के विषय में किया गया अध्ययन न कि सीधे भाषा का अध्ययन । भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का आशय है - भाषा के अन्तस की खोज न कि भाषा संबंधी रचनाओं का अध्ययन ।

व्याकरण का भाषा विज्ञान पर बड़ा ऋण है । पाणिनि ने लिखा है - "असन्देहार्थम् चाध्येय व्याकरणम्' अर्थात् व्याकरण का अध्ययन अज्ञात सुलभ संदेहों के निवारण हेतु ही किया जाना चाहिए । भाषा के सम्पूर्ण अगों, क्षेत्रों, दशाओं, संबंधों, परिवर्तनों और शैलियों का अध्ययन भाषा - विज्ञान में किया जाता है । अत: इनके संबंध में उत्पन्न जिज्ञासाएँ एवं स्थिति ज्ञान के निवारण के लिए भाषा विज्ञान का अध्ययन किया जाता है । यही इसका उद्देश्य या प्रयोजन है । भाषा विज्ञान में शब्द, रूप, अर्थ, और वाक्य आदि के संबंध में ज्ञान हो जाता है । इनकी विविध दशाओं का ज्ञान हो जाता है, विकास की प्रक्रिया का भी सही-सही ज्ञान हो जाता है । भाषा का विकास अपने क्रमिक विकास के साथ सामने आ जाता है । इससे किसी क्षेत्र के जाति, समाज, संस्कृति, सभ्यता, कला साहित्य के विकास का भी पता चल जाता है । क्योंकि भाषा किसी भी ज्ञान या विद्या की प्रस्तुति का सशक्त माध्यम है ।

4.2 भाषा विज्ञान : परिभाषा व स्वरूप

4.2.1 अर्थ व नामकरण

भारतवर्ष में प्राचीन काल में ही शब्दों की व्युत्पत्ति और स्वरों के उच्चारण आदि पर विद्वानों का ध्यान गया था । ब्राहमण-ग्रंथों तथा प्रातिशाख्यों में अनेक स्थानों पर इस प्रकार के विवेचन किए गए है । बाद में यास्क ने अपने निरूक्त ग्रंथ में, जो वेदों के छ' अंगों में से एक मुख्य अंग माना जाता है तथा जो वेदार्थ ज्ञान का प्रधान साधन माना जाता है, इस विषय का विस्तृत विवेचन किया है । वास्तव में यह निरूक्त भाषा विज्ञान का ही दूसरा नाम है । 'ब्राहमण' आदि ग्रंथों में एक और प्राचीन शब्द मिलता है, जो भाषा विज्ञान का बोधक माना जाता है । यह शब्द है 'निर्वचन', जो निरूक्त शब्द का समानार्थक है । इसका साधारण अर्थ बोलना, उच्चारण करना, कहना, समझना, व्याख्या करना, कहावत आदि है ।

एक और पुराना शब्द 'शास्त्र है, जिससे आजकल व्याकरण का अर्थ लिया जाता है । यदि हम इसके अर्थ को समझे, तो यह भी भलीभाँति भाषा विज्ञान का पर्याय हो सकता है

क्योंकि भाषा शब्दों से ही बनती है और 'भाषा विज्ञान' या 'भाषा शास्त्र' वास्तव में 'शब्द विज्ञान' या 'शब्द शास्त्र' ही है पर यह 'शब्द शास्त्र' एक तो व्याकरण के अर्थ में प्रयुक्त होता है और दूसरे उतना अधिक व्यापक नही है । इसे इतना अधिक व्यापक होना चाहिए, जिससे एक ओर व्याकरण और दूसरी ओर 'भाषा विज्ञान' दोनों का उसमें समावेश हो सके ।

यद्यपि भाषा विज्ञान अपने शुद्ध और सच्चे रूप में प्राचीन समय में उतना अधिक आदर नही पा सका, जबकि उसके दूसरे अंग व्याकरण ने इस देश में बहुत अधिक उन्नति की । कुछ भी हो, संस्कृत हिन्दी का अध्ययन इतने वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप से हुआ है कि हिन्दी संस्कृत - व्याकरण आजकल के भाषा वैज्ञानिकों के लिए भी आदर और आश्चर्य की वस्तु माना जाता है ।

भाषा विज्ञान का अर्थ है - भाषा का विज्ञान अथवा विशिष्ट ज्ञान । विशिष्ट ज्ञान से आशय उस सम्पूर्ण ज्ञान से है- जो वैज्ञानिक दृष्टि से प्राप्त हुआ है ।, अंग्रेजी में भाषा - विज्ञान से आशय Science of Language से है । अर्थात् भाषिक विज्ञान । यह ज्ञान सम्पूर्णता और सुव्यवस्था के साथ होता है । ' 'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है - जो मानव भाषा एवं बोलियों का उनकी आन्तरिक संरचना के आधार पर अध्ययन करता है तथा इसके परिणाम स्वरूप भाषा-विषयक कतिपय ऐसे सार्वभौम सिद्धान्तों का अनुसंधान करता है - जो विश्व की सभी भाषाओं एवं बोलियों में समान रूप से लाग होते है ।"

आज भाषा - विज्ञान अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना चुका है । विश्व में इसकी महत्ता है । इसके विशेषज्ञ देशभर में है । प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा ने कहा है - " **भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान । इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा विज्ञान कहलाएगा । "**

पाश्चात्य - जगत् में इसके लिए सबसे प्रचलित पद फिलालॉजी है । Philology ग्रीक शब्द Philशब्द = , Logos= विज्ञान से बना है । प्राचीन यूरोप में भाषा - विज्ञान का अध्ययन भारत की भाँति 'भाषा - व्याकरण में ही किया जाता था । इसी से वहाँ पर भाषा (Language) से बना शब्द है Linguistics । भारत में तो, Philology अधिक भाषा - विज्ञान के लिए Linguistics शब्द का प्रयोग होता है । फ्रांस में इसी को Linguistique कहा गया है । इन दोनों में भेद भी बताए गये हैं ।

जिससे लिखित भाषा का अध्ययन किया जाता है उसे 'फिलालॉजी' और जिसमें बोलचाल की भाषा का अध्ययन किया जाता है उसे 'लिंग्युस्टिक' कहते हैं । "जिसमें भाषाओं की आन्तरिक रचना का अध्ययन किया जाता है उसे 'लिग्युस्टिक' और जिसमें भाषाओं के आन्तरिक और बाह्य सभी रूपों का अध्ययन किया जाता है उसे फिलालॉजी कहते है । ये दोनों शब्दभिन्न रूप और अर्थ में प्रयुक्त किए जाने लगे है । भाषा-विज्ञान (फिलालॉजी) के अन्तर्गत प्राचीन भाषा-सामग्री का विश्लेषण किया जात है और लिंग्युस्टिक्स (भाषा शास्त्र) के अन्तर्गत आधुनिक जीवित भाषाओं और बोलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जात है ।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार द्वारा निर्मित मानविकी शब्दावली (भाषा-विज्ञान) में 'लिंग्विस्टिक्स' के लिए भाषा- विज्ञान एवं फिलालॉजी के लिए' 'वाड्मीमासा' शब्द का प्रयोग किया गया है ।इस प्रकार फिलालॉजी का क्षेत्र व्यापक हो गया है - अर्थ विचार, ध्वनि विचार, साहित्य, भाषा, शैली, कोष-निर्माण, पाठालोचन, ग्रंथ-सम्पादन तथा लोकवार्ता का विश्लेषण भी फिलालॉजी में आ गया है, परन्तु लिंग्विस्टिक्स किसी प्राणवान भाषा की संरचना - विधि एवं विश्लेषण तक ही सीमित रह गया है । आज वाड्मीमांसा (Philology) का बोध प्रस्तुत: उस अध्ययन से होता है जो यूरोप में 19वीं शताब्दी में सम्पन्न हुआ था, किन्तु भाषा-विज्ञान (Linguistics) से उस पद्धति का बोध होता है- जिसका प्रवर्तन हॉकिट, हैरिस, फिल्मोर, हालिडे एवं चॉमस्की आदि विद्वान करते आ रहे हैं । इस प्रकार हिन्दी में हमें उल्लेख्य नाम मिले - भाषा-विज्ञान, भाषा शास्त्र, भाषा तत्त्व, भाषा विचार, भाषा लोचन, तुलनात्मक भाषा शास्त्र, भाषिकी, शब्दशास्त्र, तुलनात्मक व्याकरण, व्याकरण शास्त्र, निरूक्त, वाड्मीमांसा, शब्दमीमांसा, शब्दानुशासन, व्याकरण, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान, जिहा-विज्ञान, संरचनात्मक, भाषा-विज्ञान, भाषा मीमांसा आदि । किन्तु इन सभी नामों में भाषा-विज्ञान नाम ही सर्वाधिक प्रचलित है । डॉ. श्यामसुन्दरदास, डॉ. रामचन्द्र वर्मा, डॉ. अम्बाप्रसाद सुमन, श्री किशोरीदास वाजपेयी, डॉ. बाबूराम सक्सेना तथा डॉ. देवेन्द्र नाथ शर्मा आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों में 'भाषा-विज्ञान' का ही व्यवहार किया है । डॉ. मंगलदेव शास्त्री, डॉ. उदयनारायण तिवारी तथा देवेन्द्र कुमार शास्त्री ने इस विषय के लिए अपनी पुस्तकों में भाषाशास्त्र का नाम व्यवहार किया है । डॉ. उदयनारायण तिवारी 'भाषा-विज्ञान' तथा 'भाषा शास्त्र' नामों में कोई अन्तर नही मानते है । डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री का कहना है - "भाषा शास्त्र से हमारा अभिप्राय 'लिंग्विस्टिक्स' से है । पं. सीताराम चतुर्वेदी ने इस विषय से संबंधित अपनी पुस्तक का नाम 'भाषा लोचन' रखा है । डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के शब्दों में - 'भाषा की प्रकृति, उसके गठन तथा व्यवहार आदि की वस्तुनिष्ठ परीक्षा करने वाले भाषा विज्ञान का नाम भाषिकी है । अधिकांश लोगों ने भाषा-विज्ञान पद का प्रयोग किया है । यह संक्षिप्त वैज्ञानिक प्रचलित, स्पष्ट, संप्रेक्षणीय एवं सहज है ।

4.2.2 परिभाषा

भाषा विज्ञान को भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने अलग - अलग ढंग से परिभाषित किया है, जिसका विवेचन इस प्रकार है -

(क) भारतीय मत :

डॉ. पी. डी. गुणे - " जो भाषा-विज्ञान को (Science of language) कहते हैं, के अनुसार, "भाषाओं का विशिष्ट अध्ययन (विज्ञान) है । भाषा-विज्ञान विभिन्न वर्गो की भाषाओं की वर्गीय समानता तथा असमानता का अध्ययन प्रस्तुत करता है ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी- "भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा अथवा भाषाओं का एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक अध्ययन-विश्लेषण तथा तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है । '

डॉ. श्याम सुन्दर दास - "भाषा-विज्ञान उस शास्त्र को कहते है जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है ।

डॉ. उदयनारायण तिवारी - "भाषा-विज्ञान उस शास्त्र को कहते है जिसमें हम भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों का विवेचन, अध्ययन और अनुशीलन करना सीखते है । "

डॉ. मनमोहन गौतम - "भाषा-विज्ञान वह शास्त्र है जिसमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा की उत्पत्ति, बनावट, प्रकृति, विकास तथा ह्रास आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की जाती डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना - "भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा एवं भा-तत्त्वों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है । "

डॉ. देवीशंकर - "भाषा-विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते है ।"

डॉ. हरीश शर्मा - "भाषा-विज्ञान भाषा मात्र के अध्ययन से सम्बद्ध एक गद्यात्मक अध्ययन है । भाषा-तत्त्वों के विश्लेषण-संश्लेषण संबंधी देश काल सापेक्ष व्यवस्थित अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षो के माध्यम से भाषा मात्र के अनुशीलन एवं सिद्धान्त निरूपण संबंधी अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहते है । "

(ख) **पाश्चात्य-** पाश्चात्य-जगत में फिलालॉजी और लिंगविस्टिक्स दोनों नामों से अध्ययन हुए है, दोनों पर पहले विचार किया जा चुका है । अध्ययन के फलस्वरूप दोनों पर पुस्तकें और परिभाषाऐं मिलती है- मैक्समूलर- "भाषा-विज्ञान, जिसको फिलालॉजी कहना ही सही है, भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है । वेबसटर डिक्शनरी ने भाषा विज्ञान को अत्यंत व्यापक अर्थ में परिभाषित करते हुए लिखा है 'Study of literature that includes grammer criticism, litrary history, language history, system of.....and any thing else that is relevant to literature or to language as used in literature.

हॉल - "भाषा की प्रकृति और क्रियाशीलता को समझाने वाला विज्ञान भाषा-विज्ञान है ।

रोबिन्स- “समस्त देशों और कालों की मानवीय भाषा के सभी रूपों-प्रयोग का वैज्ञानिक अध्ययन भाषा-विज्ञान कहलाता है ।"

भारतीय और यूरोपीय परिभाषाओं को देखने से स्पष्ट होता है कि भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाला विज्ञान या शास्त्र ही भाषा-विज्ञान है । अत: भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन ही भाषा-विज्ञान है ।

4.2.3 भाषा विज्ञान : कला अथवा विज्ञान

अध्ययन के विषयों को प्राय: दो वर्गों विज्ञान और कला में बांटा जाता है । बी.ए., एम.ए. या आर्ट्स फैकल्टी में 'कला' का यही अर्थ है । वस्तुत: ज्ञान की इन दो शाखाओं के कारण ही यह प्रश्न उठता है कि भाषा विज्ञान 'विज्ञान' है या 'कला' यह बात ध्यान देने की है कि इस प्रश्न में 'कला' का अर्थ 'ललित या उपयोगी कला' नहीं है, जैसा कि कुछ लोग ले लेते है । इस प्रकार भाषा विज्ञान 'ललित कला- या 'उपयोगी कला' में कला का जो अर्थ है उस दृष्टि से तो कला नही है, किन्तु बी. ए. आदि मे कला का जो विस्तृत अर्थ है, उस दृष्टि से कला है, क्योंकि मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि ऐसे विषय जो रसायन शास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि की भाँति निश्चित विज्ञान (Exact Science) नही है, कला के ही अन्तर्गत आते है । भाषा विज्ञान भी लगभग इन्हीं की कोटि का है ।

आजकल अध्ययन के विषयों को मोटे रूप से तीन वर्गो में रखने की परम्परा चल पड़ी है: (क) प्राकृतिक विज्ञान (Natural science)ए जैसे भौतिक, रसायन - शास्त्र आदि; (ख) सामाजिक विज्ञान (Social Science), जैसे समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि; (ग) मानविकी (Humanities), जैसे साहित्य, संगीतशास्त्र, चित्रकला आदि । यदि भाषा विज्ञान को इसमें रखने की बात उठाई जाए तो वह समवेत रूप से सामाजिक विज्ञान के निकट पडेगा । यों यदि उसके विभिन्न विभागों की ओर दृष्टि दौडाए तो उसकी ध्वनिविज्ञान-शाखा, विशेषत: ध्वनि के उच्चरित होने के बाद कान तक के संचरण का अध्ययन, प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र मे पड़ती है तो उसकी शैली विज्ञान-शाखा एक सीमा तक मानविकी में है ।

प्रश्न है कि भाषा विज्ञान की गणना कला में की जाये या विज्ञान में । कला के अन्तर्गत मनुष्य की कृतियाँ ही आती है; जैसे चित्रकला, मूर्तिकला, काव्यकला आदि । विज्ञान उसे कहते है, जिसमें ईश्वर या प्रकृति की कृतियों की मीमांसा होती है, जैसे भौतिक विज्ञान वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान मनोविज्ञान आदि । भाषा विज्ञान विज्ञान है या कला, इस पर यूरोप के विद्वानों ने बहुत कुछ विचार किया है और अन्त में यह ही सिद्धान्त निकाला है कि यह विज्ञान है, कला नही है; क्योंकि भाषा भी वास्तव में एक ईश्वरदत्त शक्ति है और उसका आरम्भ तथा विकास आदि भी प्राकृतिक रूप में ही होता है; मनुष्य अपनी शक्ति से और जानबूझकर कदाचित् ही उसमें कोई परिवर्तन कर सकता है ।

4.3 भाषा विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र

श्री येस्पर्सन के शब्दों में - "Language is a city to the building of which every human being brought a stone" अर्थात् भाषा एक नगर है - जिसके निर्माण में प्रत्येक मानव एक पत्थर लाया है ।" भाषा सभी ज्ञान-विज्ञान, कला, सौंदर्य, समाज, साहित्य सबकी अभिव्यक्ति का माध्यम होती है ।

भाषा, भाषा के विविध रूपों, अंगों, परिवारों, समाज, प्रकृति, व्याकरण, वर्ग विचार, ध्वनि, पद, वाक्य, अर्थ, कोष, व्युत्पत्ति, विकास, देशी-विदेशी रूप और संबंध इसके अध्ययन

के क्षेत्र है ।भाषा विज्ञान का क्षेत्र उतना ही विस्तृत और व्यापक है - जितनी मानव जाति व मानव समाज ।

विविध विद्वानों के मतों को देखते हुए हम भाषा-विज्ञान के अध्ययन क्षेत्रों को दो वर्गों में बाँट कर विचार कर सकते हैं । इनमें सभी के वर्ग आ जाते है । इसके साथ सब स्पष्ट भी हो जाते हैं । प्रथम वर्ग - प्रधान वर्ग है और द्वितीय गौण वर्ग है । इसके प्रधान वर्ग पर तो अलग-अलग अध्याय भी दिए गए है ।

4.3.1 भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रधान क्षेत्र

1. **ध्वनि या स्वर विज्ञान (Phonetics) -** शब्द का आधार ध्वनि (स्वर) है । इस प्रकरण में ध्वनियों से संबंधित अवयवों-मुख-विवर, नासिका-विवर, स्वर-तंत्री तथा ध्वनि-यंत्र और ध्वनि उत्पन्न होने की क्रिया तथा ध्वनि-लहर और उसके सुने जाने आदि का अध्ययन होता है । भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का वर्णन और विश्लेषण इसी में होता है । ध्वनिगत व्यवस्था भी दी जाती है । इसके ऐतिहासिक अध्ययन में ध्वनि परिवर्तन के कारणों और दिशाओं पर भी विचार किया गया है । ध्वनियों का अध्ययन भी एककालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी होता है । अत: वाक्-ध्वनि के वैज्ञानिक अध्ययन का कार्य ध्वनि विज्ञान में होता है । भाषा के सर्वांगीण ज्ञान के लिए यह अध्ययन आवश्यक है ।
2. **शब्द विज्ञान (Wordology) -** रूप और पद का प्राथमिक स्वरूप शब्द है । यह ध्वनि स्वरूप होता है । इसमें हम शब्दों की उत्पत्ति, विकास, नाम-विज्ञान, व्यक्ति या भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन (विकास) के कारण और दिशाओं आदि का विचार करते है । इसी में नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित होने वाले शब्द कोष का नाम 'शब्दसागर' रखा गया । शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है । आगे शब्द विज्ञान पर एक स्वतंत्र अध्याय-4 में विस्तार से विचार किया गया है । भारतीय विद्वानों ने शब्द के तीन भेद किए है - (1) संज्ञा, (2) क्रिया, (3) अव्यय । सर्वनाम और विशेषण संज्ञा में ही आ जाते है । कुछ ने तो विशेषण को गुण वाचक संज्ञा भी बताया है । अंग्रेजी में शब्द के आठ भेद स्वीकार किये गये है । (1) Noun (संज्ञा), (2) Pronoun (सर्वनाम), (3) Adjective (विशेषण), (4) Verb (क्रिया), (5) Adverb (क्रिया विशेषण), (6) Preposition (समुच्चय बोधक), (7) Conjunction (संबंध बोधक), (8) Interjection (विस्मयादि बोधक) ।
3. **पद विज्ञान (Morphology)** वाक्य में प्रयुक्त शब्द रूप को पद कहते हैं । यह स्वरूप सविभक्तिक होता है । इससे वाक्य का सीधा निर्माण होता है । इसको रूप भी कहते है । इसमें संबंध तत्त्व, विकार, भाषा के व्याकरणिक रूपों के विकास तथा उसके कारण आदि पर विचार किया जाता है । अत: जब वह सुबन्त (विभक्ति) या तिडन्त (क्रिया-चिह्न) से युक्त हो जाता है, तो वह पद कहलाने लगता है । जैसे - राम ने रावण को मारा । यही राम ने' 'रावण को' और 'मारा' तीनों पद हो गए है । इसी से

'रूप-विज्ञान' की दो उप-शाखाओं में से एक को 'शब्द-विज्ञान' और दूसरी को 'पद-विज्ञान' कहते है ।

4. **वाक्य विज्ञान (Syntax)** भाषा की पूर्ण और दीर्घ इकाई वाक्य है । इससे विचार विनिमय सम्पन्न किया जाता है । यह भाषा का सबसे अधिक, स्वाभाविक और महत्त्वपूर्ण अंग है । इसके चार रूप हैं- (क) एक कालिक, (ख), ऐतिहासिक. (ग) तुलनात्मक, (घ) व्यतिरेकी । वाक्य विज्ञान में पद क्रम, अन्वय, निकटस्थ अवयव, केन्द्रीयता, बाह्य संरचना, आन्तरिक संरचना, रूपान्तरण, परिवर्तन के कारण, परिवर्तन की दिशाएँ आदि का अध्ययन किया जाता है । प्रत्येक वाक्य में दो घटक होते है- उद्देश्य और विधेय । जिसके विषय में कहा जाए उसको उद्देश्य और जो कुछ कहा जाए उसको विधेय कहते है । जैसे- 'राम गाँव जाता है' वाक्य में राम-उद्देश्य और गाँव जाता है, विधेय है ।
5. **अर्थ विज्ञान (Sementics)** यह भाषा की आत्मा है । भाषा का यह आन्तरिक स्तर है । इसका अध्ययन भी एक कालिक, तुलनात्मक, ऐतिहासिक तथा व्यतिरेकी आदि रूपों में होता है । इसमें शब्दों के अर्थो का निर्धारण, उनके स्तर, परिवर्तन, कारण व दिशाएँ, पर्याय व विलोम आदि पर भी विचार किया जाता है । अर्थ के कई रूप होते है- व्याकरणिक, कोशीय, प्रासंगिक, क्षेत्रीय, ऐतिहासिक और सामाजिक आदि । अर्थ-विकास की मुख्य तीन दिशाएँ होती हैं- (1) विस्तार, (2) संकोच और (3) विपर्यय ।

   यही भाषा-विज्ञान के पांच प्रमुख अंग या शाखाएँ है । आगे विस्तार से उल्लेख किया गया है ।

4.3.2 भाषा-विज्ञान अध्ययन के गौण क्षेत्र

1. **भाषा की उत्पति** - भाषा ही तो भाषा विज्ञान का मूलाधार है । भाषा की उत्पति का मत विवादास्पद है । कुछ लोगों ने इसको भाषा विज्ञान से बाहर का तत्त्व माना है । भाषा की सम्पूर्ण गतिविधियों पर विचार करना ही भाषा विज्ञान है ।
2. **भाषाओं का वर्गीकरण** - भाषा के अंगों और लिपियों के आधार पर हम उनका विभाजन करते है । इस आधार पर हम भाषाओं का तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन कर उनका वर्गीकरण करते हैं । इसी आधार पर भाषाओं के परिवार निश्चित किए जाते हैं।
3. **भाषिक भूगोल -** इससे किसी भी भाषा के भौगोलिक विस्तार को समझा जाता है । भाषा-क्षेत्र निर्धारण होता है । भाषा-परिवार विभाजन में इसका बहुत बड़ा योगदान रहता है । बोली भूगोल भी एक विषय होता है । आज भाषा-भूगोल की अनेक अच्छी पुस्तकें आ चुकी हैं । इसमें आवश्यकतानुसार समकालीन, तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषा के अध्ययन की तीनों पद्धतियों को अपनाया जाता है । इसी अध्ययन के आधार पर भाषिक एटलस भी बनाए जाते हैं ।

4. **भाषा कालक्रम विज्ञान** - गणना के आधार पर अनेक तथ्यों को ज्ञात करने की यह रीति है । इसमें आधारभूत शब्द समूह में पुराने और नये तत्त्वों के आधार पर किसी भाषा की अवस्था आदि का ज्ञान किया जाता है ।
5. **भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक सर्वेक्षण** - इसमें भाषा के आधार पर अतीत के संबंध में कुछ जाना जाता है । आज का आदमी भाषिक क्रियाकलापों से अतीत को जानने का प्रयास करता है । भाषा-विज्ञान से अनेक सार्थक सर्वेक्षण हुए हैं । इससे प्रागैतिहासिक संस्कृति और सभ्यता का भी पता चल जाता है ।
6. **लिपि विज्ञान -** भाषा और भाषा विज्ञान के अध्ययन में लिपि का भी योगदान है । लिपि सबको स्थिर और व्यवस्थित करती है । ध्वनि को यह आक्षरिक रूप देती है । ध्वनि को संकेतात्मक या प्रतीकात्मक चित्र देती है । ध्वनि की सहायता से लिपि के सुधार आदि पर भी भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में विचार किया जाता है ।
7. **मनोभाषा विज्ञान -** इसमें भाषा-विज्ञान के मनो-वैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है ।
8. **समाज भाषा विज्ञान** - इसमें समाज और भाषा का संबंध तथा विविध समाज के स्तरों द्वारा प्रयुक्त भाषा की ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य रचना तथा अर्थ आदि विषयक विशेषताओं का अध्ययन होता है ।
9. **शैली-विज्ञान -** हर भाषा-भाषी की भाषा-पद्धति कुछ भिन्न अवश्य होती है । यह एक-एक की अपनी पहचान होती है । शैली व्यक्तित्व का निर्माण करती है । इन निजी विशेषताओं का शैली विज्ञान में अध्ययन होता है ।
10. **सर्वेक्षण पद्धति -** किसी क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली भाषा के विश्लेषण के लिये सामग्री एकत्रित करने की रीति का इसमें अध्ययन होता है । इसमें सूचक, सर्वेक्षण, प्रश्नावली सामग्री-संचयन एवं लेखन और सबके उपयोग की रीति का अध्ययन किया जाता है ।
11. **भू-भाषा-विज्ञान** - इसमें विश्व में भाषाओं का फैलाव उनके राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की आकलन विधि, साम्य-वैषम्य, राष्ट्रो की निजी भिन्नता राष्ट्रों की सांस्कृतिक नीति भाषा को कैसे प्रभावित करती है तथा राष्ट्र-भाषा या राज-भाषा जैसी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है ।
12. **कोश-विज्ञान** - इसमें शब्द समूह और अर्थ तत्व की बातों का संकलन होता है । शब्दों की व्युत्पत्ति, अर्थ प्रयोग और आवश्यक टिप्पणियाँ दी जाती है । शब्द का कोशीय अर्थ अपना विशेष महत्त्व रखता है ।
13. **व्युत्पत्ति विज्ञान -** इसमें शब्दों की उत्पत्ति और विकास या परिवर्तन पर विचार किया जाता है । शब्द का उद्भव और विकास देखा जाता है । शब्द का शारीरिक इतिहास बताया जाता है ।
14. **अनुवाद विज्ञान -** एक भाषा मे किसी अन्य भाषा के अनुवाद या भाषान्तरण में अधिक कठिनाईयाँ आती हैं । अर्थ, भाव, प्रसंग, देशकाल वातावरण, समाज, संस्कृति तथा धर्म

और दर्शन आदि को लेकर विशेष रूप से । ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य अर्थ और शैली संबंधी कठिनाईयाँ आती है । भाषा विज्ञान में इन पर विधिवत विचार होता है । भाषा विज्ञान का यह नया अंग स्थापित हो रहा है । इनके अतिरिक्त नाम-विज्ञान, पर्याय-विज्ञान, जाति-भाषा-विज्ञान, मेटालिंग्विस्टिक्स, पुनर्निर्माण आदि की भी भाषा विज्ञान की नई शाखाओं के रूप में चर्चा की जाती है । मेटालिंग्विस्टिक्स में भाषिक एवं तकनीक, शिल्प विधि तथा पारिभाषिक शब्दावली का अध्ययन किया जाता है । जाति-भाषा-विज्ञान में सामाजिक विकास की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है

4.4 भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ

प्रत्येक विषय के अध्ययन की कुछ पद्धतियाँ होती है । इन्हीं को विधि और रीति भी कहते है । इन्हीं पद्धतियों के आधार पर भेद या प्रकार को भी स्पष्ट किया जाता है । भाषा-विज्ञान भाषा का वस्तुनिष्ठ एवं व्यवस्थित अध्ययन करता है । तथ्य - निष्पादन हेतु स्वाभाविक है कि किसी भाषा की संरचना या गठन एवं प्रकृति का पूर्ण विवेचन, विश्लेषण एवं परीक्षण विविध कोणों से किया जाए । ऐसा करने में ही इन पद्धतियों का विकास हुआ है । इन्हीं पद्धतियों या प्रणालियों के आधार पर ही भा-विज्ञान के विभिन्न प्रकारों या पक्षों का निर्धारण किया जाता है । भाषा-विज्ञान की अब तक विकसित अध्ययन की पद्धतियाँ इस प्रकार है -

प्राय: सभी भाषाविदों ने चार पद्धतियों और प्रकारों की चर्चा की है -

4.4.1 वर्णात्मक 4.4.2 ऐतिहासिक, 4.4.3 तुलनात्मक, 4.4.4 योगिक या यावहारिक।

4.4.1 वर्णनात्मक पद्धति (Synchronic or Descriptive Method) :

इसको बहुकालिक या ऐतिहासिक पद्धति का विपरीत समझना चाहिए । इसमें किसी भाषा विशेष का किसी एक समय का अध्ययन किया जाता है- जैसे, 'आज की हिन्दी' ‘वर्तमान हिन्दी’ । इसको समकालिक एवं एक कालिक भी कह सकते है । इसमें भाषा की ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ आदि का एककालिक अध्ययन होता है । संरचनात्मक पद्धति भी इसी पद्धति से अलग हुई है । वर्णनात्मक को कुछ लोगों ने विवरणात्मक भी लिखा है । आजकल समकालीन शब्द अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है । आचार्य पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ने समकालीनता का खूब उपयोग किया है । आज भी ध्वनि, शब्द-रचना, रूप, विकास और वाक्य रचना आदि के अध्ययन हेतु इसका उपयोग किया जाता है । अन्त: संरचना प्रधान दृष्टि, वस्तुपरक, दृष्टिकोण, रचना विधान का प्रस्तुतीकरण, विवेचन एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन, एक निश्चित समय की सीमा, अर्थ निरपेक्षता आदि इस पद्धति की अपनी विशेषताएँ है । ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्धतियों में भी इसका उपयोग होता है ।

यह पद्धति अन्य प्रकार के अध्ययनों या पद्धतियों का मूलाधार है । इसमें किसी भाषा के ध्वनिगत स्वरूप के अध्ययन पर बल दिया जाता है । ध्वनि ही भाषा का मूल रूप है । भाषा के वर्णात्मक अध्ययन का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण पाणिनीय व्याकरण है । पाणिनि की

विश्लेषणात्मक क्षमता पर विदेशी भी मुग्ध हो जाते है पर इससे वर्णात्मक भाषा विज्ञान और व्याकरण को एक नहीं कहा जा सकता है । आज यह शाखा अपना स्वतंत्र स्थान भी रखती है । अमेरिका के अतिरिक्त अपने देश में भी इस पर सराहनीय कार्य हो रहे है । यहाँ के तारापोरवाला तथा डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा ने इस दिशा में बहुत कार्य किये हैं । डॉ0 सिद्धेश्वर वर्मा की पुस्तक 'प्राचीन भारतीय वैयाकरणों के ध्वन्यात्मक विचारों का विवेचनात्मक अध्ययन' (Critical Studies in the Phonetic Observetion of Indian Grammarians) इस दृष्टि से बहुत सराहनीय है ।

इस प्रकार हम देखते है कि वर्णात्मक अध्ययन पद्धति में काल विशेष में विशेष ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ संज्ञक सम्पूर्ण अंगों का अध्ययन, विवेचन एवं विश्लेषण सम्पन्न होता है ।

इसका जनक स्विटजरलैण्ड निवासी द सास्यूर को माना जाता है । इसके मुख्य केन्द्र जेनेवा और प्रोहा बताए जाते है । विदेशों में इसका महत्त्व अधिक बढ़ गया है । डॉ. भोला नाथ तिवारी ने इसको वर्णात्मक में ही माना है । परन्तु आज इसकी स्वतंत्र पद्धति के रूप में स्थापना हो चुकी है । इससे संरचनात्मक भाषा विज्ञान की प्रतिष्ठा हो चुकी है । इस पद्धति को भाषा का गणित कहा जा सकता है । अमेरीका में इस पद्धति का खूब विकास हो रहा है ।

आज यूरोप तथा अमेरिका में संरचनात्मक भाषा-विज्ञान में कई संप्रदाय विकसित हो रहे है - जिनमें मुख्य हैं भाषिम (Glossematics) स्वनगुणिक, (Prosodic), स्तर परक (Stratificational)ए व्यवस्थापक (Systemic) एवं प्रकार्यपरक (Functional) अमेरिका में इसके लिए पूरा श्रेय ब्लूमफील्ड को दिया जाता है । इस पद्धति में भाषा की संरचना के आधार पर अध्ययन किया जाता है । भाषा-अध्ययन की यह पद्धति भाषा की विभिन्न इकाइयों के पूर्ण चिन्तन पर निर्धारित होती है । इसमें भाषा का विवेचन और विश्लेषण संगठनात्मक दृष्टिकोण से करते है । इसमें भाषा की पारम्परिक संबद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है । वर्णात्मक पद्धति में भी कही - कही संरचनात्मक रूप उभर आता है इन दोनों पद्धतियों में विशेष अन्तर यह है कि वर्णात्मक पद्धति में भाषा की इकाईयों का अध्ययन एकाकी रूप में किया जात है, जबकि संरचनात्मक अध्ययन में विभिन्न इकाईयों के पारस्परिक संबंध पर भी विचार किया जाता है । जैसे - 'काम' शब्द के संरचनात्मक अध्ययन में इसके विभिन्न ध्वनि-चिह्नों क् + आ + म् + अ के लिखित तथा उच्चरित रूप पर चिन्तन करते है । इस प्रकार शब्द-संरचना के साथ-साथ ध्वनि-संरचना पर भी विचार हो जाता है । आजकल इस पद्धति पर विशेष कार्य हो रहे है । इसके एक-एक घटक पर कार्य हो रहे है-ध्वनि ग्राम (Phonemics) लयग्राम (Tonetics), बोली-विज्ञान (Dialectology) आदि ।

4.4.2 ऐतिहासिक पद्धति

इसमें किसी भी भाषा के इतिहास के कई काल बिन्दुओं को मिलाकर भाषा के उद्भव और विकास का अध्ययन किया जाता है । भाषा-परिवर्तन के विविध रूपों का इसमें अध्ययन किया जाता है । किसी भाषा के प्रचीन रूप और उसके वर्तमान विकास को जानने में यह पद्धति

सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होती है । जैसे हिन्दी के विकास को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ट के विकास क्रम को बड़ी सरलता से समझा जा सकता है ।

इसमें कोशगत परिवर्तन, पद एवं वाक्य मूलक परिवर्तन तथा ध्वनि परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं पर कई दृष्टियों से विचार किया जाता है । ध्वनि परिवर्तन के दिशा-निर्धारण हेतु लोप, आगम, समीकरण, विषमीकरण, उष्मीकरण, महाप्राणीकरण जैसे -प्रकृतिपरक संदर्भो पर विचार किया जाता है । इसी प्रकार इस अध्ययन में पुनर्निर्माण ध्वनि नियम, सादृश्य, सरलीकरण, पुरालेख शाखा, (इपि ग्राफी) पुरालिपि शास्त्र (पैलियाग्राफी) जैसे ढेर से बुनियादी शास्त्रीय एवं तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया जाता है और विवेच्य भाषा को उच्चकोटि के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा परखा जाता है ।

इसके अध्ययन आधार के लिए हम विविध सामग्रियों का उपयोग करते है ' लिखित आलेख भित्ति लेख, मुद्राओं, सिक्कों या शिलालेखों पर उत्कीर्ण सामग्री आदि । इस पद्धति में तुलनात्मक संरचनात्मक पद्धतियों का भी उपयोग किया जाता है इस संदर्भ में मारिसस्वाडेश नामक विद्वान ने 1950 में उल्लेखनीय कार्य किया था । तदुपरान्त राबर्ट लीज एवं ग्लीसन ने इस अध्ययन को आगे बढ़ाया । इसमें सांख्यिकीय या गणितीय पद्धति पर निष्कर्ष निकाला जाता है । इससे भाषा के नए-पुराने रूपों के भेदों को समझने में सुविधा होती है । विकास के एक - एक सोपान का इससे अंदाज लग जाता है । ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ के परिवर्तन, विकास के कारण दिशाओं एवं अन्य भाषिक परिवर्तनों की धाराओं का पता लग जाता है ।

4.4.3 तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

इस पद्धति के आधार पर तुलनात्मक भाषा-विज्ञान नामक भेद बनता है । इसमें कम-से-कम दो भाषाओं को अध्ययन का आधार बनाना पड़ता है । इस पद्धति में वर्णात्मक और ऐतिहासिक पद्धतियों का योगदान रहता है । प्रारम्भ में तुलनात्मक भाषा विज्ञान की बडी लोकप्रियता थी । इसी पद्धति की देन है कि विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक बसी ग्रीक, लैटिन और संस्कृत में निकटता स्थापित हो सकी है और हम यह कह सकते हैं कि यह सभी एक ही परिवार की भाषाएँ है । पिता के लिए ग्रीक और लैटिन में Pater, संस्कृत में पितृ (बहुवचन में पितर:), अवेस्ता में पितर, फारसी में पिदर, फ्रेंच में Pere, जर्मन में Vater, डेनिश और स्वीडिश में Fader, पुरानी अंग्रेजी में Fader और वर्तमान अंग्रेजी में Father शब्द प्रयुक्त होते है- जिनमें अत्याधिक साम्य है । इसी प्रकार मातृवाचक और भातृवाचक शब्दों में भी साम्य है । हिन्दी की विभिन्न बोलियों-खडी बोली, ब्रज, हरियाणवी, कन्नौजी, बुन्देली, पंजाबी आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है ।

इस पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं की ध्वनियों, वर्णो, शब्दों, पदों, वाक्यों और अर्थो आदि की तुलना की जाती है । भाषा-परिवार के निर्धारण में भी यह पद्धति बहुत सहायक सिद्ध होती है । भाषा की सहजता, सरलता या विशेषताओं को स्पष्ट रूप से रेखांकित करने के लिए यह पद्धति उपयोग होती है । आज भी किसी विकसित भाषा का सम्यक अध्ययन करने के लिए यह पद्धति सबसे अधिक उपयोगी है । जैसे - यदि हम 'हिन्दी' की ध्वनियों एवं इनके रूपों

का सम्यक अध्ययन करना चाहें, तो ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, कन्नौजी, बुन्देली आदि रूपों का भी तुलनात्मक अध्ययन करना अनिवार्य होगा । इसी प्रकार के अध्ययन के निष्कर्षो पर भाषाओं का इतिहास लिखा जाता है ।

डॉ0 पी. डी. गुणे के शब्दों में **'तुलनात्मक 'भाषा-विज्ञान' का संबंध भाषा के अतीत और वर्तमान के तथ्यों से है । यह भाषा के जीवन के विभिन्न जालों के तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके उसका इतिहास प्रस्तुत करता है ।"** विश्व के प्रमुख भाषा-परिवार ग्रिम, नियम आदि भाषा-संबंधी तुलनात्मक अध्ययन की ही महत्वपूर्ण देन हैं ।

4.4.4 व्यावहारिक पद्धति

इसमें भाषा के जीवन्त रूप का यावहारिक ढंग से अध्ययन किया जात है । यह अध्ययन किसी क्षेत्र विशेष से जुडा होता है, इसलिए इसे क्षेत्रीय कार्य (Field Work) भी कहते है । इस पद्धति के अध्ययन में अध्येता को किसी क्षेत्र में जाकर भाषा-भाषी से सम्पर्क करके भाषागत निर्णय लेने पड़ते हैं । इसमें किसी बोली की ध्वनियों शब्दों के साथ बोलने वाले की भाषा में प्रयुक्त मुहावरे, कहावतों आदि की प्रयोग दशाओं का भी अध्ययन किया जाता है । ज्ञान की सभी शाखाओं को हम सैद्धांतिक व यावहारिक या प्रायोगिक के रूप में बाँटते हैं । आज भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग भाषा-शिक्षण, कोश-विज्ञान व्युत्पति-विज्ञान एवं अनुवाद-विज्ञान की समस्याओं को सुलझाने के लिए किया जा रहा है ।

वाक्-चिकित्सा, व्याकरण-संरचना, लिपि व्यवस्था आदि में इस पद्धति से सहयोग किया जा रहा है । अमेरिका और अन्य अंग्रेजी भाषा-भाषी राष्ट्रों में इसका उपयोग भाषा-शिक्षण कार्य में हो रहा है । आज जो यह कम्प्यूटर भाषा-विज्ञान और समाज-भाषा-विज्ञान से भी संबद्ध हो गया है । यह पद्धति प्रयोग पर अवलम्बित है । भाषा शिक्षण के सम्बन्ध में चॉम्स्की की यह स्थापना है कि भाषायी दक्षता मनुष्य के अन्तरतम में सन्निहित रहती है और उसका संबंध हमारे मन से जुडा रहता है ।

इसी पद्धति के कारण भाषा विज्ञान, विज्ञान की कोटि में आता है । समाज मनोविज्ञान एवं व्यक्ति मनोविज्ञान से भी यह पद्धति जुड़ी हुई है । इस पद्धति में भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों का यावहारिक या प्रचनित रूप में ही अध्ययन किया जाता है । इसी प्रक्रिया से टाईपराइटर, वक्ता, श्रोता या रचनाकारों की मनोदशा समझने, रचनाओं की भाषिक संरचना संबंधी व्याख्या करने, समाज मनोविज्ञान को समझने, शब्द-कोश-निर्माण उच्चारण-श्रवण संबंधी दोष-दर्शन व निवारण करने आदि कार्य में इसका सहयोग लिया जाता है ।

4.4.5 व्यतिरेकी पद्धति

व्यतिरेकी का अर्थ है 'विशेष' । इसमें अध्येय भाषाओं में अन्तर्निहित विषमताओं को उद्घाषित किया जाता है । जबकि तुलनात्मक पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं के साम्य वैषम्य में को स्पर्श किया जाता है ।

आज भाषा के विविध अंगों के आधार पर विशेषीकृत शाखाओं के रूप में विकसित व्यतिरेकी स्वनविज्ञान, व्यतिरेकी-वाक्य-विज्ञान, व्यतिरेकी-बोली-विज्ञान, व्यतिरेकी-शैली-विज्ञान

आदि में भी यह अध्ययन प्रारंभ हो चुका है । इससे भाषा-शिक्षण में बड़ी सहायता मिल रही है ।

द्वितीय विश्वयुद्व के समय विदेशों में लडने वाले सैनिको के लिये वहाँ की भाषा को यथाशीघ्र सीखने और सिखाने की ऐसी विधि की खोज करने के लिये भाषा वैज्ञानिक चिन्तित हुए । इस तरह की समस्या यूरोप एवं अमेरिका में साथ-साथ प्रारंभ हुई थी, परन्तु इस पद्धति के विकास का श्रेय अमरीकी भाषा वैज्ञानिकों को जाता है जिनमें चार्ल्स सी, फ्रोज एवं राबर्ट लेडो का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है । इस तरह इसका इतिहास छोटा है ।

आज संसार को बहु भाषाओं को सीखने की आवश्यकता है । संसार में कोई एक ऐसी भाषा नहीं है जिसे समझा या सबसे जोडा जा सके । ऐसी दशा में इस अध्ययन पद्धति की उपयोगिता स्वत: सिद्ध हो जाती है । इस पर आज अनेक पुस्तकाध्याय एवं शोध पत्र आ रहे हैं।

4.4.6 ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियों में परस्पर निर्भरता

किसी भाषा का अध्ययन मुख्य रूप से दो प्रकार से होता है- पहला ऐतिहासिक और दूसरा तुलनात्मक । तुलनात्मक अध्ययन भी अधिकांशत: में ऐतिहासिक अध्ययन पर ही निर्भर है । जब तक किसी शब्द के अनेक प्राचीन और नवीन रूप न प्राप्त हों, तब तक उनकी परस्पर तुलना करके किसी निश्चित सिद्धान्त पर पहुँचना कठिन है । उदाहरण के लिए हम वेद में ‘वर्ष' में आए हुए समा, शरद्, हिम, हेमन्त, वर्ष आदि शब्द पाते है । ये सब शब्द ऋतुवाचक है । पर यह पता नही चलता था कि ग्रीष्म-ऋतु-वाची ‘समा’ शब्द कहाँ से आया? अन्त में एक अन्वेषण से पता लगाया गया कि अवेस्ता की भाषा में ग्रीष्म के लिए ‘हमा’ शब्द आया है । इससे स्पष्ट हो गया है कि ये ‘हमा’ और ‘समा’ शब्द एक ही है । इसी प्रकार पिता शब्द का भी हाल है । तुलनात्मक अध्ययन में भाषा के अंत्यावयव वाक्य माने जाते है । अतएव तुलना वाक्यों की होनी चाहिये, शब्दों की नहीं । यह तुलना 'प्रवृत्ति-निवृत्ति, विधि-निषेध सूचक वाक्यों से होनी चाहिये । जहाँ ऐसे वाक्य न मिलें, वहाँ सविभक्तिक शब्दों अर्थात् पदों द्वारा तुलना होनी चाहिए । प्रातिपदिक शब्दों द्वारा यह काम ठीक-ठीक नहीं चल सकता । जब विभक्तियाँ और अर्थ दोनों एक हो तब शब्दों की समानता स्थिर की जा सकती है । अर्थ-साम्य और रूप-साम्य के निश्चित हो जाने पर ही कुछ परिणाम निकल सकता है । भाषा शास्त्रियों ने तुलना के लिए पहले तीन प्रकार के शब्दों को लिया था संज्ञावाचक, संबंधवाचक (पिता, माता आदि) और गृहस्थीवाचक । तुलना के लिए संख्यावाचक शब्दों की उपयोगिता सर्वप्रधान है, क्योंकि उसमें परिवर्तन बहुत कम होता है । पहाडों की गिनती में अभी तक प्राचीन शब्द प्रचलित हैं, संबंधवाचक और गृहस्थीवाचक शब्द भी स्थायी है । इनके भी अंग स्थिर होते है, इनका भी लोप प्राय: कम होता है । तुलना तभी ठीक होगी जब ऐतिहासिक प्रक्रिया से शब्दों का परिवार निश्चित हो जाये । व्यतिरेकी का अर्थ है "विशेष” । इसमें अध्येय भाषाओं में अन्तर्निहित विषमताओं को उद्घाषित किया जाता है । जबकि तुलनात्मक पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं के साम्य - वैषम्य में को स्पर्श किया जाता है । इस अध्ययन से विविध भाषाभाषियों

के समाज, संस्कृति इतिहास भूगोल, रहन-सहन, धर्म और साहित्य के बारे में भी जानकारी मिल जाती है ।

4.5 भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता

भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता बहुमुखी है । भाषा के समान भाषा विज्ञान के उपयोग को संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **मानव जाति पर प्रकाश** : बाबू श्यामसुन्दर दास के शब्दों में "भाषा विज्ञान उस समय का इतिहास लिखने में सहायक होता है, जिस समय का इतिहास स्वयं इतिहास को भी ज्ञात नहीं है ।" मोहनजोदडो, एलोरा और अजन्ता से प्राप्त भाषिक सामग्री से तत्कालीन मानव-समाज के अनेक पक्षों को सामने रखता है । शिलालेखों से सब कुछ प्राप्त हो जात है । प्रागैतिहासिक खोजों में भी भाषा विज्ञान बड़ा सहायक होता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भाषाओं का मूल उद्‌गम और उत्स अमुक भाषा रही है । तत्कालीन समाज के रहन-सहन, खान-पान, शिक्षा, धार्मिक आस्था-अनास्था, उत्सवों, त्यौहारों, एक दूसरे के राग विराग का पता भी इससे चल जाता है । आर्य भाषा के उद्‌गम और स्रोतों का पता लगाने में भाषा-विज्ञान से यथेष्ट सहायक मिली है । आर्य भाषा के आधार पर ही आर्यों के मूल स्थान, उनके खान-पान, रीति-रिवाजों, वेश भूषा तथा उनकी मूल भाषा को जाना जा सकता है । कुल मिलाकर मानव जाति के इतिहास पर इसने प्रकाश डाला है ।
2. **विश्वबन्धुत्व में उपयोगी :** विश्व की भाषाओं में कही न कही एकता है । इससे मानव एकता भी परिलक्षित होती है । भारोपीय भाषा-भाषी एक जाति की संतानें प्रमाणित होती है । फलत: भाषा विज्ञान का अध्ययन मानव जीवन में परिवर्तन ला देता है, मानव अपूर्णता को वह दूर कर देता है । भाषा-विज्ञान से ही स्पष्ट होता है कि भाषाओं में पारस्परिक संबंध क्या है । इसी का श्रेय है कि संस्कृत, लैटिन, ग्रीक जर्मन आदि भाषाओं में पारिवारिक संबंध स्थापित हो गए हैं और भारत से लेकर यूरोप तक आत्मीयता, निकटता और समता का प्रचार हुआ है ।

    भाषा - विज्ञान ने विश्व में परस्पर भाईचारे के सौहार्दपूर्ण संबंधों को प्रचारित-प्रसारित किया है । अपने तुलनात्मक अध्ययन से उसने अद्भुत संबद्धता दिखाई है । इसके साथ ही एक दूसरे की प्रकृति, शील, स्वभाव, राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक सोच, रहन-सहन, आचार-व्यवहार की भी जानकारी भाषा-विज्ञान से मिल जाती है ।
3. **सामाजिक शास्त्रों की सामग्री का मूल स्रोत** : भाषा विज्ञान के अध्ययन से विविध समाज शास्त्रीय अध्ययन सामग्री की प्राप्ति होती है । इतिहास, पुरातत्व शास्त्र, समाज शास्त्र, मानव शास्त्र तथा मनोविज्ञान आदि विभिन्न शास्त्र और विज्ञान अपनी पर्याप्त अध्ययन सामग्री को भाषा-विज्ञान के माध्यम से प्राप्त कर पाते हैं । आज सकल ज्ञान-विज्ञान के आदन-प्रदान का माध्यम भाषा है । वैदिक तथा अन्य वाड्मय को पढने के लिए अनेक विदेशियों ने संस्कृत तथा अन्य भाषाओं का अध्ययन किया ।

4. **साहित्य के अध्ययन में उपयोगी** : आज साहित्य के भाषा शास्त्र पर किताबें आने लगी है । साहित्य के समग्र विवेचन में भाषा - शैली का उल्लेख किया जाता है । साहित्य की रचना बिना भाषा के संभव नही है । साहित्य को हृदय प्रधान और भाषा को बुद्धि प्रधान कह कर कुछ लोग भेद पैदा करते है; पर ढंग से देखा और समझा जाए तो दोनों एक दूसरे के पूरक है । दोनों के लिए हृदय और बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है । अतीत के साहित्य को समझने में भाषा सबसे अधिक बाधक है । हिन्दी के रासो साहित्य को पढ़ने क लिए अपभ्रंश भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है । "साहित्य के अध्ययन के लिए भाषा का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है और भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भाषा - विज्ञान की उपेक्षा नहीं की जा सकती है । "

साहित्य के अनेक विवादों को भाषा विज्ञान के ज्ञान से हल किया जा सकता है । यह बोली के विकसित भाषा रूप को बताता है । साहित्य के लोक और शास्त्र संबंधों को इससे समझा जा सकता है |

5. **भाषागत अध्ययन में उपयोगी** : भाषा-विज्ञान भाषा के सम्पूर्ण अध्ययन को प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होता है । ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य और अर्थ पर इसमें सबसे अधिक विचार होता है । देशी-विदेशी भाषाओं को सीखने में भाषा विज्ञान से पूर्णता, सरलता और शीघ्रता आती है । एक भाषा से दूसरी भाषा में भाषिक अनुवाद में इससे सहायता मिलती है । भाषा, लिपि आदि में सरलता और शुद्धता की आदि की दृष्टि से परिवर्तन और परिवर्द्धन करने में इससे सहायता मिलती है । भाषा-विज्ञान से किसी भी भाषा को शुद्ध-शुद्ध लिखना, पढ़ना और बोलना आ जाता है । इसी से भाषा भेद भी समझ में आता है । भाषा-विज्ञान भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन को नयी जमीन सौंपता है |

6. **पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक खोजों में उपयोगी** : पुरातत्त्व और इतिहास संबंधी खोजों में भाषा-विज्ञान सहयोग करता है । भाषा के अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन होता रहता है । कफन और बटन के लिए हिन्दी में कोई उपयुक्त शब्द नही है, इसका कारण है कि संस्कृत काल में शवों को जलाया, गाड़ा या प्रवाहित कर दिया जाता था । कफन की आवश्यकता नहीं थी । इससे शब्द नही बना इसी प्रकार पहले गाँठ बाँधने की परम्परा थी-बटन की नहीं । बारह बन्दी, युगलबन्दी बनती थी । इसी से बटन शब्द नही आया । इस्लाम के आगमन से ऐसे उनके शब्द भाषा में आए । अत: भाषा से उस समय की रीति का पता चलता है । आर्यो के निवास, जीवन, संस्कृति और सभ्यता के संबंध में जानने के लिए आर्य भाषा की मदद सराहनीय है । विश्व के प्राचीन अध्ययनों की जानकारी इसके अध्ययन से मिलती है ।

7. **भाषा-शुद्धता में उपयोगी :** भाषा विज्ञान के मुख्य अंग हैं- ध्वनि, शब्द, पद, या रूप, वाक्य और अर्थ । यही भाषा के भी निर्माता है । भाषा-विज्ञान के माध्यम से इसके उचित प्रयोग एवं समझदारी का ज्ञान हो जात है । भाषा-संरचना में भाषा-विज्ञान का प्रमुख योगदान है । इससे भाषा के सम्पूर्ण अंगों एवं उनके प्रयोगों का विवेचन होता है

। आज व्याकरण भाषा -विज्ञान से सीमित हो गया है । शुद्ध जानकारी का अभाव, वर्तनी की अनेकरूपता, व्याकरण के ज्ञान से रहित होना, शब्दों की सही व्युत्पत्ति न जानना भाषा की शुद्धता के बाधक हैं । इनसे भी भाषिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं । शब्दों में समय-समय पर उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों-वर्णागम, लोप व विपर्यय का ज्ञान भाषा-विज्ञान के अध्ययन से ही हो पाता है । इससे किसी भी भाषा को शुद्ध-शुद्ध बोलना, लिखना और पढ़ना आ जाते है । भाषा की शुद्धता और समुचित प्रयोग का ज्ञान भाषिक तत्त्वों के ज्ञान से ही हो सकता है ।

8. **भाषिक समस्याओं के समाधान में उपयोगी** : भाषा के विभिन्न अंगों के साथ अनेक समस्याएँ भी आती है । ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य और अर्थ आदि को लेकर हिन्दी में अनेक ध्वनियाँ विवादास्पद है- श, ष, ऋ, र के उच्चारण ख, ख़, म, भ, ह्रस्व - दीर्घ मात्रा को लेकर छ, क्ष, में भेद श, ष, श में भेद ग, ग़, फ, फ़, ज, ज़ में प्राय: भेद नही हो पाता है । रोमन ध्वनियों और लिपियों में तो और अव्यवस्था है । भाषिक शब्दावली को लेकर अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है । इनसे अनुवाद की कठिनाइयाँ सामने आती है । हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के मिश्रण की समस्या है । शब्द ही नही वाक्य रचना तक प्रभावित हो रही है ।भाषा विज्ञान सबका समाधान रखता है ।

9. **वैज्ञानिक क्रियाकलापों में उपयोगी :**यह मानना पडेगा कि आज साहित्य से आगे विज्ञान चला गया है । उपयोगिता की दृष्टि से भी इसका बहुत महत्त्व है । कम्प्यूटर प्रणाली ने और वैज्ञानिकता दे दी है । कोड वर्ड की उपयोगिता बढ़ती जा रही है । ध्वनियाँ नया और व्यापक अर्थ पाती जा रही है । टेलीफोन, तार, बेतार का तार और फैक्स और ईमेल आदि के उपयोग बढ़ते जा रहे है । इलेक्ट्रानिक मीडिया ने इधर वैज्ञानिकता को अधिक गति दी है । विशेष ध्वनियाँ बढ़ती जा रही है । अनुवाद, संक्षिप्तीकरण, नोट, टिप्पणी, टिप्पण, संकेत, टिका, पाठालोचन आदि में भी पाठालोचन में भी भाषा-विज्ञान से सहायता मिल रही है । यही उन सांकेतिक शब्दावलियों का निर्माण कराने में सहायक होता है, जिससे अनुवाद सरलता से किया जा सकता है । पारिभाषिक शब्दावली और तकनीकी शब्दों के निर्माण मे भी इसकी उपयोगिता सर्वोपरि है ।

10. **वाक्-चिकित्सा में उपयोगी** : भाषा-विज्ञान वाणी संशोधन-प्रशिक्षण में बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है । भाषा विज्ञान के अध्ययन से किसी भी भाषा को ठीक - ठीक लिखना, पढ़ना और बोलना आ जाता है । जो लोग अशुद्ध उच्चारण करते है - उनको ध्वनियंत्रों की सहायता से सही उच्चारण का प्रशिक्षण दिया जाता है । आजकल कैमरे व एक्सरे मशीन का उपयोग किया जाता है । उच्चारण - स्थान और प्रयत्न का ज्ञान कराकर वाणी संशोधन किया जाता है । इससे हकलाहट और तुतलाहट जैसे वाणी रोग का निदान किया जाता है । इस प्रकार वाग्यंत्र की न्यूनताएँ स्पष्ट हो जाती है - जिससे चिकित्सा में सुगमता होती है ।

11. बौद्धिक संतुष्टि और मनोरंजन के लिए उपयोगी : भाषा विज्ञान के अध्ययन से अनेक जिज्ञासाओं की संतुष्टि होती है । बौद्धिक शांति मिलती है । अनेक रोचक ओर मनोरंजक प्रकरण प्राप्त होते है । उकितयाँ, कहावतें और मुहावरे उपलब्ध हो जाते हैं । भाषा विज्ञान शब्दों के स्वरूपों का दिलचस्प उद्‌घाटन करने में पूर्ण सक्षम होता है । अनेक गोपनीय तथ्यों का इससे उद्‌घाटन होता है ।

4.6 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.	गौण	:	कम महत्त्व वाला
2.	अभिवर्धन	:	बढ़ाना
3.	नासिका विचार	:	नाक के छेद
4.	व्यतिरेकी	:	विशेष
5.	विपर्यय	:	प्रतिकूलता, विरीतता
6.	आधारभूत	:	मौलिक, बुनियादी
7.	वस्तुनिष्ठ	:	वस्तु या विषय केन्द्रित
8.	पुरातत्व	:	प्राचीन अनुसंधान या अध्ययन से संबंधित ज्ञान
9.	कोडवर्ड	:	सांकेतिक शब्द
10.	न्यूनताएं	:	कमियां
11.	संक्षिप्तीकरण	:	छोटा करना, लघुरूप
12.	पारिभाषिक शब्दावली	:	अंग्रेजी भाषा, के समतुल्य शब्द जो पूर्व अर्थ संप्रेषण में सक्षम हो,ऐसे शब्दों की सूची
13.	वाङ्यंत्र	:	उच्चारण में सहायक वाणी के अंग
14.	पाठालोचन	:	पाठ परक आलोचना, पाठ की आलोचना
15.	समा	:	संस्कृत में ग्रीष्म ऋतु के लिए प्रयुक्त शब्द
16.	हमा	:	अवेस्ता की भाषा में ग्रीष्म ऋतु के लिए प्रयुक्त शब्द
17.	सर्वांगीण	:	पूरी तरह, समग्रता में
18.	गठन	:	बनावट
19.	अनवतर	:	लगातार
20.	संयत्र	:	मशीन, औजार

4.7 सारांश

भाषा के माध्यम हैं- ध्वनि, संकेत और लिपि । इन्हीं के जरिए वह चलती और व्यवस्थित होती है । इसी भाषा का विशेष और सर्वांगीण रूप से भाषा विज्ञान में अध्ययन किया जाता है । भाषा-विज्ञान भौतिकी, रसायन और चिकित्सा जैसा न विज्ञान है और न चित्रकला, संगीतकला, ललितकला और वास्तुकला के समान कला है । परन्तु यह कला से अधिक विज्ञान है । इधर विज्ञान शब्द का उपयोग बढ़ता जा रहा है । भाषा विज्ञान के मुख्य

अध्येतव्य हैं-भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति और विकास । भाषा का विकास अनवरत होता रहता है । जिस भाषा का विकास अवरूद्ध हो जाता है-वह मृत भाषा कही जाती है । भाषा विज्ञान में मृत और जीवित दोनों रूपों का अध्ययन किया जाता है । जीवित भाषा के ऐतिहासिक, प्रयोजनमूलक, यावहारिक प्रशासनिक, समाचार, प्रारूप लेखन, संप्रेक्षण एवं प्रयोगात्मक, टिप्पणी तथा देशी विदेशी रूपों का अध्ययन भाषा विज्ञान में होता है । इसमें व्यक्ति की भाषा से लेकर विश्वभाषा के विविध रूपों का अध्ययन किया जाता है । इसमें शास्त्रीय और गँवारू रूप समान रूप से उपयोगी होते है । भाषा-वैज्ञानिक अनुसंधान अनेक दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हो रहे है । अज्ञात को ज्ञात करना फिर ज्ञात को नवीनतम रूप से विश्लेषित करना अनुसंधान है । आज इसका क्षेत्र व्यापक हो गया है । आज विश्व में भाषा विज्ञान विषय स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित हो चुका है । भाषा का भी स्वतंत्र रूप से अध्ययन प्रारम्भ हो गया है । विश्वविद्यालय में साहित्य, संगीत, भाषा, समाज, वाणिज्य, विज्ञान और शिक्षा आदि संकायों के समान भाषा विज्ञान के विभाग भी खुल रहे है । तकनीकी ढंग से इसका प्रशिक्षण चल रहा है । अनेक संयंत्र इसकी सेवा में लगते जा रहे है । अनेक निर्णयों में इनसे अभूतपूर्व सहायता मिल रही है । भाषा विज्ञान की अनेक प्रयोगशालाएँ बड़ी सफलता के साथ कार्यरत हैं ।

4.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. भाषा विज्ञान की विविध परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में इसका स्वरूप निर्धारण कीजिए।
2. भाषा विज्ञान को आप कला मानेंगे या विज्ञान स्पष्ट कीजिए ।
3. भाषा विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र बताइए ।
4. भाषा विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियों का परिचय दीजिए ।
5. भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता पर विचार कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. फिलॉलाजी और लिंगिवस्टिक्स का अंतर स्पष्ट कीजिए ।
2. भाषा विज्ञान की विविध परिभाषाओं में से कौनसी आपको पूर्ण,सरल एवं वैज्ञानिक लगती है?
3. ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियां किस रूप में परस्पर सहयोगी हैं?
4. यावहारिक पद्धति से क्या तात्पर्य है?
5. भाषा विज्ञान के अध्ययन से हुए कोई दो लाभ बताइए ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. रूप और पद का प्राथमिक स्वरूप .... है ।
2. भारतीय विद्वानों ने शब्द के .... भेद किये है ।

3. प्रत्येक वाक्य में दो .... होते हैं ।

4. .... पद्धति को बहुकालिक का विपरीत समझना चाहिए ।

5. .... का अर्थ विशेष होता है ।

घ. सही / गलत पर निशान लगाइए

1. भाषा विज्ञान एक निश्चित विज्ञान है । सही / गलत
2. भाषा की प्रकृति और क्रियाशीलता को समझाने वाला विज्ञान भाषा विज्ञान है । सही / गलत
3. वर्णात्मक अध्ययन का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ पाणिनिय व्याकरण है । सही / गलत
4. तुलनात्मक भाषा विज्ञान का संबंध केवल भाषा के अतीत के तथ्यों से है सही / गलत
5. अध्ययन की यावहारिक पद्धति के कारण भाषा विज्ञान की कोटि में आता है । सही / गलत

4.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. नरेन्द्र मिश्र; भाषा और भाषा विज्ञान, प्रसं.. 2001
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1992
3. डॉ. मंगलदेव शास्त्री; भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1962
4. डॉ. हरीश शर्मा; भाषा विज्ञान की रूपरेखा, प्र. सं. 1997
5. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा; भाषा विज्ञान की भूमिका, प्रसं.. 1966
6. बाबू श्यामसुन्दर दास; भाषा विज्ञान प्र. सं. 1944
7. पं. किशोरीदास वाजपेयी; भारतीय भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1966
8. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी भाषा का इतिहास, दशम संस्करण प्र. सं. 1980
9. डॉ. प्रेमप्रकाश रस्तोगी; हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, प्र. सं. 1966
10. डॉ. उदयनारायण तिवारी; हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, संवत् 2012
11. डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू; भाषा विज्ञान : नये भाषायी सनदर्भ, बुक एनक्लेव जयपुर प्र. सं. 2003
12. डॉ. अनुज प्रताप सिंह; भाषा विज्ञान, नमन प्रकाशन नई दिल्ली, 2007

इकाई-5 भाषा विज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 भाषा विज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों का संबंध
5.2.1 भाषा विज्ञान तथा व्याकरण
5.2.2 भाषा विज्ञान और दर्शनशास्त्र
5.2.3 भाषा विज्ञान तथा साहित्य
5.2.4 भाषा विज्ञान तथा समाज विज्ञान
5.2.5 भाषा विज्ञान तथा अनुवाद विज्ञान
5.2.6 भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान
5.2.7 भाषा विज्ञान और इतिहास
5.2.8 भाषा विज्ञान और भूगोल
5.2.9 भाषा विज्ञान और शरीर विज्ञान
5.2.10 भाषा विज्ञान और सूचना तकनीक
5.3 विचार संदर्भ / शब्दावली
5.4 सारांश
5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.6 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में भाषा विज्ञान एवं उन समाज विज्ञानों के मध्य संबंध दिखाया गया है जो किसी न किसी एक दूसरे के अध्ययन में सहयोगी की भूमिका निभाते हैं ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- भाषा विज्ञान व्याकरण साहित्य एवं दर्शन के बुनियादी संबंधों को समझ एवं समझा सकेंगे।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन में इतिहास, भूगोल, एवं समाज विज्ञान के सहयोग एवं इन समाज विज्ञानों के अध्ययन में भाषा विज्ञान की उपादेयता को समझ और समझा सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान तथा अनुवाद के संबंधों की बरीकी को समझ एवं समझा सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान और शरीर विज्ञान के संबंध को समझते हुए उच्चारण अवयवों के वैशिष्ट्य को समझा सकेंगे ।
- निरंतर विकासमान सूचना तकनीक और भाषा विज्ञान के संबंध को समझ एवं समझा सकेंगे ।

5.1 प्रस्तावना

भाषा विज्ञान की पिछली इकाइयों को पढ़ने के बाद आप स्पष्ट रूप में समझ गये होंगे कि भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है । अन्य विज्ञानों की तुलना में भाषा विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है क्योंकि इसका संबंध किसी एक भाषा से नहीं अपितु मानव मात्र की भाषा से है । भाषा मानव की प्रकृति और प्रकृति का यथार्थ दर्पण है । यह मानव मात्र का अभिन्न अंग है । अत: मानव जीवन से सम्बद्ध विज्ञानों और शास्त्रों से भी भाषा विज्ञान का अभिन्न संबंध स्थापित होता है । जिस तरह समाज का एक व्यक्ति अनेक रूपों में अनेक व्यक्तियों से सम्बद्ध होता है उसी तरह भाषा विज्ञान की अनेक विधाएँ ऐसी हैं जिससे वह अन्य विज्ञानों से निकटतम संपर्क रखती है । भाषा विज्ञान के तात्विक ज्ञान के लिए इन विज्ञान को और शास्त्रों का सहारा लेना पड़ता है । दूसरी ओर कुछ तथ्यों के ठीक-ठीक ज्ञान के लिए वे भाषा विज्ञान की मदद लेते हैं अमेरिका के प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक नीम चॉमस्की से किसी ने एक बार इन्टरव्यू में पूछा कि उनके भाषा वैज्ञानिक अध्ययन और राजनीति में क्या संबंध है । उन्होंने उत्तर दिया मेरे भाषा संबंधी कार्य और राजनीति में कोई संबंध नहीं है । दरअसल मानव प्रकृति के आधारभूत तथ्यों के प्रति दोनों के कुछ मामलों में समान रूख और धारणाएँ हैं । दुनिया के यह मशहूर राजनीति विद् भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आए थे । एक भारतीय भाषा वैज्ञानिक देवी प्रसन्न पटनायक कहते हैं" भाषा और राजनीति का गहरा संबंध है । भाषा चाहे व्यक्ति अथवा समूह की पहचान बने सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में मानी जाए या फिर सांस्कृतिक आदान-प्रदान का कारण बने ये सभी बातें राजनीतिक जोड़-तोड़ से नियंत्रित होती है । राजनीति चाहे व्यक्ति की हो, असमानता की, भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है । इस तरह प्रत्यक्ष हो या परोक्ष भाषा विज्ञान का भी विविध विज्ञानों से कमोबेश संबंध रहता है ।

5.2 भाषा विज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों का संबंध

चूँकि समग्र ज्ञान भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है और भाषा ही समस्त वाङ्मय को प्रकट और संप्रेषणीय रूप देती है इसी कारण अनेक समाज विज्ञान किसी न किसी रूप में भाषा विज्ञान से जुड़े हैं । इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी का कहना है "भाषा अपने विराटतम रूप में अखण्ड है ।तत्वत: उसे अलग अलग शास्त्रों तथा विज्ञानों आदि में इस प्रकार नहीं विभाजित किया जा सकता कि वे एक दूसरे से पूर्णत: अलग हों व्यावहारिक दृष्टि से मनुष्य ने अपनी ज्ञान की सीमा और अध्ययन विश्लेषण की सुविधा के अनुसार अखंड ज्ञान क्षेत्र को कुछ विभागों में बांट रखा है । जिसको उसने अलग अलग विज्ञानों एवं शास्त्रों आदि की संज्ञा दी है । इन ज्ञानों-विज्ञानों एवं शास्त्रों में कुछ तो सामान्य और यावहारिक धरातल पर एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं कहे जा सकते जैसे साहित्य और गणित, रसायनशास्त्र और भाषा विज्ञान वनस्पति विज्ञान और दर्शन । दूसरी ओर ज्ञान के ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो एक दूसरे से सम्बद्ध हैं । यह संबंध कई प्रकार का हे । उदाहरण के लिए कुछ तो एक दूसरे से सामान्य संबंध रखते हैं । कुछ एक दूसरे से पूरक जैसे होते हैं और कुछ का तो आपस में ऐसा सम्बन्ध होता है कि एक की जानकारी के बिना दूसरे का अध्ययन प्राय: असंभव

है । दोनों अन्योन्याश्रित होते हैं । भाषा विज्ञान से भी अनेक ज्ञानों, विज्ञानों एवं शास्त्रों के विभिन्न प्रकार के संबंध हैं ।" निम्नलिखित उप विभाजनों में कुछ प्रमुख समाज विज्ञान के साथ भाषा विज्ञान के संबंध को स्पष्ट किया जा रहा है ।

5.2.1 भाषा विज्ञान तथा व्याकरण

भाषा विज्ञान तथा व्याकरण - व्याकरण शब्द विआ+ उपसर्ग एवं कृ धातु में अन् (ल्युट] प्रत्यय जोड़कर बना है । जिसका अर्थ विश्लेषण अथवा खण्ड करना है । व्याकरण का काम भाषा के अंगों के विच्छेदन द्वारा उनके सही स्वरूप को समझाना है संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में हुआ हैं इसके अंतर्गत ध्वनियों का उच्चारण, संज्ञा सर्वनाम, विश्लेषण वर्ग के शब्दों में सुप् विभक्तियों युक्त कर करने वाले पदों की सिद्धि, क्रिया के विभिन्न गणों और लकारों के रूप, तद्धित और कृदन्त शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया, ?रई प्रत्यय और उनसे निर्मित होने वाले शब्द आदि अनेक विषय आ जाते हैं । पाणिनि रचित अष्टाध्यायी कौमुदी, कात्यायन की व्याख्याएँ एवं पतंजलि के महाभाष्य आदि में इन्हीं विषयों का अध्ययन है । भर्तृहरि ने अपने 'वाक्यदीप' में वाक्यों और पदों के अन्तःसंबध को समझाया है और भाषा में वाक्य के महत्त्व को प्रतिष्ठित किया है | वस्तुतः व्याकरण भाषा के सम्यक् और निर्दोष प्रयोग का ज्ञान कराता है । व्याकरण भले ही व्याकरणीय नियमों का स्रष्टा न हो किन्तु उन्हें करने वाला अनुचर जरूर है । भाषा में निरंतर बदलाव उसकी सहज प्रवृति है जिस पर व्याकरण रोक लगाना चाहता है । इस प्रकार भाषा की केन्द्रापगामी और केन्द्राभिगामी प्रवृत्तियों में द्वन्द्व चलता रहता है । जिसमें परिवर्तनशीलता की ही विजय होती है । लेकिन व्याकरण की यथास्थितिवादी भूमिका परिवर्तन की गति का नियमन करती है जिससे परिवर्तन अराजक नहीं हो पाता और उसकी गति धीमी हो जाती है । यदि यह व्यवस्था न होती तो भाषा इतनी तेजी से बदलती कि नई पीढ़ी अपनी ठीक पहले की पीढ़ी की भाषा भी न समझ पाती ।

व्याकरण का बहुत सशक्त होना भी भाषा के विकास के लिए सुखद नहीं । पाणिनि ने संस्कृत को व्याकरणिक नियमों में बांधा जिससे वैदिक भाषा के रूप वैविध्य पर अंकुश लगा । भाषा अधिक सुव्यवस्थित हुई लेकिन इस अंकुश ने उसके सहज विकास की राह रोक दी जिससे कालान्तर में वह मृत भाषाओं में गिनी जाने लगी, दूसरी और पालि, प्राकृत आदि लोक भाषाएँ सतत विकसित होती हुई भारतीय आर्य भाषाओं के वर्तमान स्वरूप तक पहुँच गई ।

भाषा विज्ञान और व्याकरण की तुलना करते हुए स्पष्ट होता है कि दोनों का अध्ययन क्षेत्र एक ही है । ध्वनि, पद और वाक्य पर दोनों विचार करते हैं । व्याकरण में जिसे वर्ण-विचार, शब्द विचार और वाक्य विचार कहा जाता है, उसे ही भाषा विज्ञान में क्रमशः ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान कहते हैं । लेकिन उनमें एक बड़ा अंतर यह है कि भाषा विज्ञान इन अंगों के विकास और इतिहास का अध्ययन करता है, विकास और परिवर्तन के कारणों की खोज करता है और उनकी वर्तमान स्थिति का विवेचन करता है वहीं व्याकरण का इतिहास और विश्लेषण से कोई लेना देना नहीं । वह एककालिक विज्ञान है और किसी भाषा के केवल तत्कालीन स्वरूप से संबंध रखता हैं यही कारण है कि संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के व्याकरण अपनी-अपनी भाषाओं तक ही सीमित है एक ही भाषा के विकास के तीन सोपान होते

हुए भी उनमें कोई पारस्परिक भी होता है, स्थान की दृष्टि से भी वह एक ही भाषा तक सीमित रहता है, अन्य भाषाओं से उसका संबंध नहीं के बराबर होता है, उदाहरण के लिए लिंग व्यवस्था पर विचार करते हुए हिन्दी का व्याकरण केवल इतना ही बतायेगा कि हिन्दी में केवल दो ही लिंग है वह स्रोत भाषा संस्कृत के तीन लिंगों की चर्चा भी नहीं करेगा और न अन्य भारतीय भाषाओं गुजराती, मराठी में स्थित तीन लिंगों की बात करेगा । व्याकरण वर्णात्मक विज्ञान शुद्धता पर अधिक ध्यान देता है । व्याकरण वह शास्त्र है जिसमें बोलचाल तथा साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा का स्वरूप उसके गठन उसके अवयवों, उसके प्रकारों और पारस्परिक संबंधों तथा उसके रचना विधान और रूप परिवर्तन का विचार होता है । शुद्धता विज्ञान की प्राथमिक शर्त है । वक्ता के द्वारा भाषा का गलत प्रयोग न केवल हास्यास्पद होता है अपितु उससे कई बार संप्रेषण में भी बाधा आती है । भाषा विज्ञान व्याकरण को बुनियाद बनाकर अपना अध्ययन आगे बढ़ाता हैं । इस रूप में दोनों में अन्योन्यश्रित संबंध है ।

5.2.2 भाषा विज्ञान और दर्शनशास्त्र

भाषा विज्ञान और दर्शनशास्त्र के बीच भी गंभीर संबंध हैं विशेषकर भाषा विज्ञान के एक अंग अर्थ विज्ञान से दर्शन का घनिष्ट रिश्ता है । दुनिया के प्राय: सभी देशों में दार्शनिकों द्वारा ही शब्द और अर्थ के चिंतन का कार्य शुरू किया गया । शब्द के स्वरूप अर्थ की अवधारणा, शब्द और अर्थ के मध्य संबंध, शब्द शक्तियों का रूप और उनकी संख्या अथवा भेद, पद और वाक्य में से भाषा का मूल तत्त्व किसे मानेंगे? इन सभी प्रश्नों के बारे में सोचना समझना सर्वप्रथम दार्शनिकों ने ही शुरू किया चाहे वे भारत के रहे हो अथवा यूरोप के । हमारे देश में सबसे पहले वैदिक वाङ्मय में भाषा विषयक विश्लेषण प्राप्त होता है । इसका विकास भर्तृहरि के वाक्य पदीय में मिलता है । वैयाकरणों के स्फोटवाद नैयायिकों के जातिवाद और बौद्धों के अपोहवाद आदि सिद्धांतों का आधार दर्शन ही है । यूनानी दार्शनिकों ने भी भाषा विषयक विश्लेषण किए । कुछ भाषाविद तो भाषा विज्ञान के प्रमुख अंग अर्थ विज्ञान को भाषा विज्ञान की अपेक्षा दर्शनशास्त्र में स्थान देना अधिक औचित्यपूर्ण दिखाना चाहते हैं । दर्शन की तर्क पद्धति भी भाषा विज्ञान से जुड़ी है । तर्क का प्रमुख नियम कारण-कार्य भाव भाषा विज्ञान की समस्याओं के निराकरण में सहायक होता है । भाषा में बदलाव अर्थ में बदलाव, वाक्य विन्यास आदि में बदलाव आदि के कारण को जानने की उत्सुकता तर्कशास्त्र के आधार पर ही होती है । इसी तर्कशास्त्रीय प्रवृत्ति के कारण भाषा की उत्पत्ति, विकास, ध्वनि परिवर्तन आदि के कारणों की खोज की जाती है । तर्कशास्त्र की अन्वय-व्यतिरेक पद्धति भाषा विज्ञान के लिए भी यथेष्ट उपयोगी है ।

5.2.3 भाषा विज्ञान तथा साहित्य

साहित्य भाषा की अमूल्य सम्पत्ति है । भाषा ने अपने ऐतिहासिक विकास में जो कुछ अर्जित किया है वह भाषा के साहित्य में ही सुरक्षित और संरक्षित रहता है । साहित्य को किसी भी भाषा की धरोहर कह सकते हैं । जिससे भाषा की समृद्धि का बोध होता है । भाषा विज्ञान साहित्य की इस सामग्री का इस्तेमाल करता है । भाषाओं के ऐतिहासिक परिचय के साथ उनके

विकास को समझने और समझाने में भी साहित्य से मदद मिलती है । जिन भाषाओं में साहित्य लिखा गया है उन्हें प्रतिष्ठित माना जाता है । साहित्य के जरिए भाषा का कालक्रमानुसार विकास दिखलाया जा सकता है । भाषा के विभिन्न भौगोलिक रूप भी इस माध्यम से पहचाने जा सकते हैं । यदि व्याकरण और भाषा विज्ञान के संबंध को अगली भाव संबंध कहा जाए तो भाषा विज्ञान और साहित्य का संबंध उपकार्य-उपकारक संबंध है । साहित्य और भाषा विज्ञान एक दूसरे के उपकारक हैं । साहित्य भाषा के प्राचीन रूपों को सुरक्षित रखकर भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए उपयोगी सामग्री जुटाता है । इस प्रकार साहित्य भाषा विज्ञान का उपकारक है । दूसरी ओर भाषा विज्ञान भी साहित्य का उपकारी है । साहित्य के अनेक अस्पष्ट और दुर्बोध शब्दों का इतिहास भाषा विज्ञान की मदद बिना नहीं ज्ञात किया जा सकता । वेद के हजारों शब्दों का अर्थ निर्णय भाषा विज्ञान की सहायता से ही हो पाया है । भाषा विज्ञान द्वारा ही एक भाषा का विद्वान अनेक भाषाओं से जुड कर विभिन्न भाषाओं के साहित्य की जानकारी प्राप्त करता है और बहुभाषाविद् बन जाता है । तुलनात्मक भाषा विज्ञान का आधार भी विभिन्न भाषाओं का साहित्य ही है ।

5.2.4 भाषा विज्ञान तथा समाज विज्ञान

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि भाषा एक सामाजिक वस्तु है । सामाजिक बदलाव के साथ ही भाषा में भी बदलाव आता है और उसका विकास होता है । समाज विज्ञान मनुष्य के आचार विचार, आहार व्यवहार, सोच-समझ, आदि का अध्ययन करता है । भाषा में रीति रिवाज, शिष्टाचार, आचार-व्यवहार के सैकड़ों शब्द होते हैं जिनकी व्याख्या समाज विज्ञान के ज्ञान से ही आसानी से की जा सकती है । समाज विज्ञान की सहायता से ही यह बताया जा सकता है कि कैसे विकास का ह्रास के कारण शब्दों के रूप बदले और उनके अर्थ में परिवर्तन आया । योग्यता वाचक त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि शब्दों का जातिवाचक में बदल जाना इसका प्रमाण है ।

आज भाषा विज्ञान और समाज विज्ञान के घनिष्ट संबंध के कारण ही भाषा विज्ञान की एक शाखा को विकास के नए क्षितिज छू रही है । समाज भाषा विज्ञान की संकल्पना का आधार यह मानता है कि सामाजिक संदर्भो से कट कर भाषा का अध्ययन नहीं हो सकता । जहाँ परंपरागत भाषा विज्ञान भाषा को वाक्यों का समूह मानता है । वाक्य पदों के संयोग से बनते हैं, पद शब्द और प्रत्यय आदि के संयोग से तथा शब्द ध्वनियों के संयोग से । परन्तु इतना मानना ही काफी नहीं बल्कि एक प्राणधारी प्राणी भी है । उसी तरह भाषा ध्वनियों, पदों और वाक्यों का समूह भर नहीं अपितु समाज मानस की अभिव्यक्ति है । भाषा के द्वारा हम केवल अपने भाव या विचार ही अभिव्यक्त नहीं करते अपितु अपने सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को साकार करते हैं । हर संस्कृति के वैशिष्ट्य को वहाँ की भाषा संप्रेषित करती है । समाज भाषा विज्ञान अप-भाषा और सुसंस्कृत भाषा के अंतर को भी स्पष्ट करता है । यह कूट भाषा कृत्रिम भाषा मिश्रित भाषा जैसे भाषा के विभिन्न भेदों का भी अध्ययन करता है । संप्रेषण प्रक्रिया में बहुभाषिकता का प्रश्न भाषा सम्मिश्रण और भाषा प्रदूषण के प्रश्नों को भी स्पर्श करता है । पश्चिमी विद्वान सस्यूर ने भाषा के अध्ययन में एक नया अध्याय जोड़ा भाषा को सामाजिक

वस्तु बताते हुए वाणी को उसका व्यक्त और वैयक्तिक रूप कहा । बोआज ने भाषा को संप्रेषण के माध्यम से कहीं बढ़कर माना और समाज तथा संस्कृति की संवाहिका बतलाया । भारत में भी समाज भाषा विज्ञान उपेक्षित नहीं रहा । डॉ. रामविलास शर्मा ने भी 'भाषा और समाज' ग्रंथ लिखकर इस क्षेत्र को समृद्ध किया ।

5.2.5 भाषा विज्ञान तथा अनुवाद विज्ञान

इन दोनों के अंतरंग संबंध को तो इस छोटी सी बात से ही समझा जा सकता है कि अनुवाद को अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की संज्ञा दी जाती है । इस रूप में तो अनुवाद भाषा विज्ञान का ही प्रयोगात्मक या व्यावहारिक रूप है ।

चूँकि अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है फलत: भाषा ही नहीं भाषा विज्ञान से भी इसका गहरा लगाव है । भाषा के कई स्तर जैसे ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य आदि होते हैं जिनका सम्मेलन हमारे सामने भाषा के सुगठित रूप को प्रस्तुत करता है । इन सभी स्तरों का अध्ययन आप भाषा विज्ञान खंड की संबद्ध इकाईयों में कर चुके हैं । यहाँ आपके समक्ष स्पष्ट होना चाहिए कि अनुवाद की प्रक्रिया इन सभी स्तरों को समेटती है और अनुवाद के क्रम में इन सभी स्तरों के प्रति सावधानी बनाए रखना जरूरी है । इसके अतिरिक्त इन विविध स्तरों पर स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति एवं संरचनागत प्रार्थक्य की अधिकारिक जानकारी भी अनुवादक के लिए अनिवार्य होती है । प्रत्येक भाषा की अपनी खास ध्वनियाँ एवं ध्वनि व्यवस्था होती है, उनका अपना शब्द भण्डार होता है, रूप व्यवस्था अर्थात पदों के लिंग, वचन, पुरूष, कारक व्यवस्था क्रिया के काव्य, पक्ष विधि, अन्विति आदि की व्यवस्था भी भिन्न होती है । कई बार समान प्रतीत होने वाली वाक्य संरचनाओं के निहितार्थ भी दो भाषाओं में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं । इन विविध स्तरों पर दो भाषाओं की प्रकृति, संरचना, शैली आदि में जो अंतर होते हैं, वे समान प्रतीत होने वाले प्रसंगों में भी अलग-अलग अर्थ भर देते हैं । अनुवाद में भाषांतरण तो होता है किन्तु अर्थ की रक्षा करना अपरिहार्य रहता है । इस प्रकार अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति, संरचना विविध भाषिक तथा व्याकरणिक स्तरों, विभिन्न शैलियों तथा इन तमाम पक्षों से जुड़ी अर्थ व्यंजनाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए । इसे लक्ष्य करते हुए ही कैटफोर्ड, नाइडा, न्यूयार्क आदि भाषा वैज्ञानिकों ने अनुवाद के अध्ययन की भाषा वैज्ञानिक दृष्टि विकसित की । नीचे संक्षेप में भाषा विज्ञान के विविध घटकों से अनुवाद के संबंध को स्पष्ट किया जा रहा है-

अनुवाद और ध्वनि विज्ञान

ध्वनि की विशेषता आप पहले ही पढ़ चुके हैं और आप अवगत हो चुके हैं कि ध्वनि तथा उच्चारण से ही भाषा की वर्तनी व्यवस्था भी जुड़ी होती है । ध्वनियों के संयोजन से ही शब्द बनते हैं, जो पदों के रूप में वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं । वाक्य प्रोक्ति का आधार होते है और प्रोक्ति ही भाषा के मुख्य प्रकार्य कथ्य का संप्रेषण सम्पन्न करती है । यदि अनुवादक को स्रोत भाषा की ध्वनि व्यवस्था और उस भाषा की लिपि तथा ध्वनि का समुचित ज्ञान न हो तो अनुवाद में बड़ी हास्यास्पद भूलें होने की संभावना रहती है । इस ज्ञान को प्राप्त करने में ध्वनि विज्ञान बहुत सहायक होता है ।

अनुवाद और शब्द विज्ञान

किसी भाषा की ध्वनियों के सार्थक समुच्चय शब्द कहलाते हैं । भाषा के लक्ष्यार्थ के संप्रेक्षण और अर्थ वहन के कार्य को शब्द ही करते हैं अनुवाद मूलत: एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों का दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों में प्रतिस्थापन है । शब्दों के अमिधा लक्षणा अथवा व्यंजना भेद और व्याकरणिक कोटि को देखकर ही शब्दों का अर्थ निर्धारण होता है । सही अनुवाद के लिए शब्द के सही और सटीक रूप की जानकारी अपरिहार्य है । पारिभाषिक शब्दों के अनुसार में भी शब्द विज्ञान की जानकारी से मदद मिलती है, किसी भाषा के शब्द भंडार में बोलियों के शब्दों को चिन्हित करना और उनका सार्थक अनुवाद करना भी शब्द विज्ञान के ज्ञान से ही संभव हो पाता है ।

अनुवाद और रूप विज्ञान

कथ्य का संप्रेषण भाषा के रूप-विन्यास पर निर्भर होता है, इसलिये अनुवादक को स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा दोनों ही रूप-रचना के नियम चूँकि तमाम व्याकरणिक कोटियों पर लागू होते हैं इसलिये इनका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है संज्ञा तथा सर्वनाम के कारकीय रूपों की रचना, संज्ञा, सर्वनाम तथा विश्लेषण तथा क्रिया के लिंग-वचन आदि का बोधन, कृदन्तों की रचना, उपसर्ग प्रत्यय आदि के योग से शब्दों के व्याकरणिक कोटि में परिवर्तन, समास रचना आदि सभी क्रियाओं एवं प्रति क्रियाओं के अध्ययन के उपरांत ही कोई श्रेष्ठ अनुवादक बन सकता है ।

अनुवाद और वाक्य विज्ञान

वाक्य अर्थ संप्रेषण की इकाई है जिसकी रचना रूप बद्ध शब्दों के संयोजन से होती है, वाक्य विज्ञान के अंतर्गत सामान्य रूप से भी और भाषा विशेष के संदभ्र में भी वाक्य रचना और इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है । वाक्य विज्ञान की जानकारी भाषा के सही स्वरूप को समझने के लिए बहुत जरूरी है क्योंकि भिन्न-भिन्न अर्थो के संप्रेषण के लिये भाषा में भिन्न-भिन्न प्रकार की वाक्य रचनाओं का प्रयोग किया जाता है । वाक्य संरचनाओं के सूक्ष्म अंतर को समझने के लिए वाक्य विन्यास का गहन अध्ययन जरूरी हैं किसी भी भाषा के वाक्य में पदों के व्याकरणिक संबंध तय रहते हैं बिना इसे समझे ठीक-ठीक भाषांतरण लगभग असंभव ही है ।

अनुवाद और अर्थ विज्ञान

भाषा का कार्य अर्थ संप्रेषण है । अर्थ विज्ञान में भाषा के अर्थ पक्ष का ही अध्ययन किया जाता है । कभी-कभी शब्दों का सीधा अर्थ अनुवाद को गलत कर देता है । संदर्भ के अनुसार इसके लक्षणात्मक और व्यंजनात्मक अर्थो को ध्यान में रखकर ही सही अनुवाद किया जा सकता है । उदाहरण के लिए अंग्रेजी के एक शब्द के कई अर्थ होते हैं यदि अनुवादक शब्द कोष से अभिधात्मक अर्थ लेकर अनुवाद कर दे और अर्थ संदर्भ को ध्यान में न रखे तो अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है । खासकर लोकोक्तियों मुहावरों और सूक्ति के अनुवाद में अर्थ विज्ञान की मदद बिना सफलता प्राप्त करना मुश्किल है ।

अनुवाद और शैली विज्ञान

शैली का संबंध मूल रूप में भाषा से है इसलिए भाषा का हर स्तर इसके निर्धारण में सहायक हो सकता है । संदर्भ के अनुसार या विशेष संदर्भो में, विशेष ध्वनियों, शब्दों, रूपों, या

वाक्य विन्यास का प्रयोग यहाँ तक कि लिपि की विचित्रताएँ भी कथ्य को प्रस्तुत करने की शैली को रूप दे सकती है । उदाहरण के लिये रेणु की रचनाओं का अनुवाद यदि सीधे-सपाट वर्णात्मक गद्य में कर दिया जाए तो केवल रचनाओं में वर्णित घटनाओं के सामान्य सूत्र ही मिल पायेंगे उसका संपूर्ण संश्लिष्ट प्रभाव नहीं आ पायेगा । प्रेमचंद की रचनाएं यदि क्लिष्ट संस्कृत में भांषातरित की गई तो न केवल लेखक की शैली की सादगी खंडित होगी बल्कि इस शैली से अभिहित कथ्य भी खंडित हो जायेगा । शैली का तमाम व्यापार भाषा से जुड़ा है और अनुवाद भी भाषिक प्रक्रिया ही है । अनुवाद का क्षेत्र बहु त विस्तृत है और जो कुछ भी अनूदित होता है उसकी अपनी शैली होती हैं इसलिये अनुवादक को शैली विज्ञान के नियमों तथा प्रविधियों की ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिए जिससे वह स्रोत भाषा की सामग्री के अर्थ को सही-सही समझ कर संगतयुक्तियों के माध्यम से उस अर्थ को लक्ष्य भाषा में यथा संभव पूर्व रूप से संप्रेषित कर सके ।

5.2.6 भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान

भाषा विज्ञान की एक प्रमुख और स्वतंत्र शाखा अर्थ विज्ञान है जिसका स्वरूप सही एवं सटीक ढंग से समझने में मनोविज्ञान यथेष्ट सहायक है । मनुष्य के समस्त प्रयोजन और आशाएं आकांक्षाएं भाषा में प्रतिभाषित होती हैं । व्यक्ति चिंतन, व्यक्ति की मानसिक समस्याएँ तथा उसका साधारण अथवा असाधारण व्यक्तित्व भाषा में ही प्रस्फुटित होता है । इसके माध्यम से भाषा में पाए जाने वाले शब्दों के अर्थो के आयाम बदलते रहते हैं ।

शब्दकोश से अलग, शब्द के गढ़ अर्थ भी होते हैं । इन अर्थो का पता लगाना मनोविज्ञान का काम है । मनोविज्ञान की सहायता से भाषा के आंतरिक स्वरूप का विश्लेषण किया जा सकता है । वर्तमान समय में मनोभाषा विज्ञान के रूप में भाषा विज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा अध्ययन की विधा बन चुकी है । मानसिक व्याधियों के निदान मानसिक गुत्थियों को सुलझाने आदि में मनोचिकित्सक भी इस विधा से उपकृत हो रहे हैं ।

5.2.7 भाषा विज्ञान और इतिहास

आमतौर पर इतिहास कहने से राजनैतिक इतिहास अर्थ ही लिया जाता है लेकिन सच्चे आशय में हर वस्तु, हर शब्द, हर भाषा और अन्यान्य सभी विषयों का इतिहास होता है । इतिहास बोध के आधार पर हम जिस किसी का इतिहास पढ़ कर उस विषय को ठीक से जाँचने और परखने में समर्थ होते हैं इतिहास हमारे सामने सारी सामग्री कालक्रमानुसार प्रस्तुत करता है । इसी रूप में हम भाषा का इतिहास भी जान सकते हैं । भाषा जिस तरह उत्पन्न हु ई उसी तरह लुप्त भी हो गई । ऐसा क्यों घटित हु आ इसका उत्तर इतिहास द्वारा ही मिलेगा । इतिहास तथ्यों के चयन और उन्हें कालक्रमानुसार रखकर परखने का काम करता है । इतिहास कार्य तथा कारण के संबंध का विश्लेषण करता हैं इतिहास में अतीत को वर्तमान से जोड़ा जाता है । इस तरह अतीत का वर्तमान में उपयोग किया जाने लगता है । भाषा में होने वाले परिवर्तनों की उसके बदलते रूपों की ठीक-ठीक विवेचना ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ही की जा सकती है भाषाओं का इतिहास लिखने में यह प्रक्रिया अत्यंत उपयोगी है ।

इस प्रकार भाषा विज्ञान और इतिहास को घनिष्ट माना जा सकता है । ये दोनों एक दूसरे के सहायक हैं । कही भाषा विज्ञान की मदद से प्राचीन अभिलेखों, शिलालेखों, सिक्कों पर अंकित भाषाओं आदि का अध्ययन करते हुए पुराने इतिहास के अज्ञात और अंधेरे में डूबे पक्ष को उजागर किया जा सकता है तो कहीं इतिहास की मदद से शब्दों के अर्थो को सुनिश्चित किया जाता है । ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का आधार ही इतिहास है । शब्द और अर्थ किस प्रकार बदले यह इतिहास द्वारा ही ज्ञात किया जाता है । इसी तरह भाषाओं के ऐतिहासिक या पारिवारिक वर्गीकरण में भी इतिहास का महत्त्वपूर्ण योगदान है इतिहास के तीनों रूपों राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक से भाषा विज्ञान के संबंध को निम्नलिखित रूप में दिखाया जा सकता है:-

सामाजिक इतिहास : सामाजिक इतिहास के द्वारा ही यह तथ्य जाना जाता है कि समाज में प्रचलित परंपराएँ किस प्रकार भाषा को प्रभावित करती हैं । भारतीय भाषाओं में नाते-रिश्ते मूलक शब्दावली एवं उन वाचक संज्ञाओं का जितना प्रयोग मिलता है उतना विश्व की अन्य भाषाओं में नहीं अंग्रेजी में जहाँ ब्रदर इन ली और सिस्टर इन ला तथा अंकल-आन्टी में अनेक संबंध समाहित हो जाते हैं वहाँ हिन्दी में साला, जीजा, साली, भाभी, मामा, चाचा, चाची, बुआ, ताई, ननद आदि अलग अलग शब्द मिलते हैं । भारतीय समाज में रिश्तों के महत्त्व का प्रतिपादन इन अलग अलग शब्दों से हो जाता है ।

राजनीतिक इतिहास : इतिहास के इस प्रकार से ज्ञात होता है कि किस प्रकार शासकों की भाषा शासित देशों में प्रचारित हो जाती हैं भारतीय भाषाओं खासकर हिन्दी के शब्द संसाधन पर ध्यान दें तो स्पष्ट होगा अरबी, फारसी, अंग्रेजी, तुर्की, फ्रेंच, और पुर्तगाली शब्दों का आगमन शासन परिवर्तन के साथ साथ हुआ है । पूर्वी द्वीप समूहों में संस्कृत के शब्दों की अधिकता का कारण इसके जरिए समझा जा सकता है ।

धार्मिक इतिहास : इतिहास का यह भेद धर्म या सम्प्रदाय पर आधारित भाषा संबंधी अनेक समस्याओं का उत्तर देता है । उदाहरण के लिए भारत में हिन्दी, उर्दू समस्या, हिन्दुओं की भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुलता और मुसलमानों की भाषा में अरबी फारसी के शब्दों की अधिकता को लिया जा सकता हैं भाषा विज्ञान के अध्ययन से ही धर्म के प्राचीन रूप को जाना जा सकता है । डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "धार्मिक इतिहास ही इस प्रश्न का उत्तर देता है कि क्यों बंगाली तथा मराठी में ब्रजभाषा में भी कुछ रूप आ जाते हैं या एक ही गांव में रहने वाले हिन्दू की भाषा क्यों अपेक्षाकृत अधिक संस्कृत मिश्रित है तो मुसलमान की भाषा अधिक अरबी. फारसी मिश्रित । धर्म के कारण ही बहुत सी बोलियां अन्यों की तुलना में महत्त्वपूर्ण होकर भाषा बन जाती है । मध्ययुग में ब्रजभाषा और अवधी के महत्व का कारण हमें धार्मिक इतिहास में ही मिलता है । दूसरी और धर्म के प्राचीन रूप की बहुत सी गुत्थियाँ भाषा विज्ञान से सुलझ जाती हैं । एक देश के दूसरे देश पर धार्मिक प्रभाव के अध्ययन में धर्म से सम्बद्ध शब्दों का अध्ययन बड़ी सहायता करता है । इस प्रकार दोनों एक दूसरे से सहायता लेते हैं ।"

5.2.8 भाषा विज्ञान और भूगोल

भाषा को मिट्टी से जुड़ा माना जाता है । भाषा की पहचान भूगोल के आधार पर ही बनती है । चीनी, जापानी, इतालवी, हिन्दी, मराठी, बंगला, और उड़िया आदि । भाषाओं के नामकरण का आधार भी भूगोल ही है । प्राय: भौगोलिक परिस्थितियाँ वहाँ के निवासियों को प्रभावित करती हैं अतएव भौगोलिक कारणों से उच्चारण गत विभिन्नता भी देखी जाती हे । शीत प्रधान देशों में अधिक ठंड के कारण वहाँ के निवासी मुँह कम खोल कर उच्चारण करते हैं जिससे उच्चारण में अस्पष्टता देखी जा सकती है । इसके विपरीत गर्म देशों में सरलता से मुंह खोलने के कारण एक तरफ जहाँ ध्वनियों का अधिक्य रहता है वहीं दूसरी ओर उच्चारणों में भी यथेष्ट स्पष्टता रहती है ।

दुनिया की हजारों भाषाओं के सीमा-निर्धारण में भूगोल की सहायता ली जाती है । जिन सीमावर्ती स्थानों पर दो या तीन विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ भूगोल के साथ ही भाषा वैज्ञानिक साधन भी अपनाऐं जाते हैं । जहाँ जिस भाषा तत्त्व की प्रधानता होती है वहाँ उसी को आधार बनाकर उस क्षेत्र को किसी विशिष्ट भाषा के अंतर्गत घोषित किया जता है ।

भौगोलिक पदार्थो के ज्ञान में भी भूगोल की जरूरत पड़ती है । पेड़ पौधे, वनस्पतियों, नदी, पर्वत, प्रदेश, देश, द्वीप, महाद्वीप आदि के ठीक-ठीक ज्ञान के लिए भूगोल की ही सहायता ली जाती है । किसी भाषा का कम या अधिक प्रसार भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है । समतलों की भाषा अधिक विस्तृत क्षेत्र में फैलती है और विषम पर्वतीय प्रदेशों की भाषा सीमित क्षेत्र में ही सिमट कर रह जाती है । भाषाओं में परिवर्तन का आधार भी भौगोलिक परिस्थितियाँ ही है । समतलों की भाषा में परिवर्तन की जितनी संभावना होती है उतनी विषम स्थलों की भाषा में नहीं, उनमें स्थिरता अधिक होती है । भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ही उच्च जर्मन और निम्न जर्मन में ध्वनि परिवर्तन के कारणों को बड़ी आसानी से समझा जा सकता है । भौगोलिक पदार्थो के ज्ञान के साथ अर्थ विचार में भी भूगोल भाषा विज्ञान की बड़ी सहायता करता है । उष्ट्र का अर्थ भैंसा से ऊँट कैसे हो गया सैंधव का अर्थ घोड़ा और नमक ही क्यों हुआ या संस्कृत में कश्मीर का अर्थ केसर क्यों है आदि । समस्याओं पर विचार करने में भी भूगोल की सहायता अपेक्षित है । भाषा विज्ञान की एक अधुनातन शाखा भाषा भूगोल तो भूगोल से और भी अधिक सम्बद्ध है और इसकी अध्ययन पद्धति भी भूगोल की पद्धति पर ही बहुत कुछ आश्रित है दूसरी ओर किसी जगह के प्रागैतिहासिक कारण के भूगोल के अध्ययन में भाषा विज्ञान भी पर्याप्त सहायता प्रदान करता है । भाषा विज्ञान की पर्याप्त सहायता प्रदान करता है । भाषा भूगोल का एक उल्लेखनीय विषय है । भाषा द्वीप का अध्ययन कभी-कभी किसी भाषा के क्षेत्र में कोई अन्य भाषाभाषी समुदाय आकर बस जाता है । इसे भाषाद्वीप कहते हैं । भाषाद्वीप के निर्माण के दो प्रमुख कारण है पहला राजनैतिक या आर्थिक कारणों से स्थानान्तरण और दूसरा किसी एकान्त प्रदेश में सभी जनजातियों के इर्द-गिर्द सभ्य जातियों का बस जाना । मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा एवं महाराष्ट्र(गढचिरोली) में भी ऐसे कई भाषा द्वीप मौजूद हैं । स्थानान्तरण के उदाहरण अण्डमान निकोबार में देखे जा सकते हैं ।

5.2.9 भाषा विज्ञान और शरीर विज्ञान

मुख से निकली हुई ध्वनि ही भाषा का मूल है । इस ध्वनि के उच्चारण में हवा किस प्रकार भीतर से बाहर आती है, स्वरयंत्र, स्वरतंत्री नासिका विवर, कौवा, तालु, दाँत, जीभ, ओठ, कंठ मूर्धा तथा नाक के कारण हवा एवं उसके कारण निःसृत ध्वनि में क्या परिवर्तन होते हैं, कान किस प्रकार ध्वनि ग्रहण करते हैं आदि का अध्ययन भाषा विज्ञान की परिधि में आता है । इस अध्ययन में शरीर विज्ञान से यथेष्ट मदद मिलती है । लिखित भाषा नेत्रों द्वारा पढ़ी और ग्रहण की जाती है इस प्रक्रिया को भी समझने के लिए भाषा विज्ञान को शरीर विज्ञान से सहायता लेती पड़ती है । इसी प्रकार सुरलहर, अक्षर, बलाघात आदि का अध्ययन भी भाषा विज्ञान के लिए शरीर विज्ञान के सहयोग बिना कष्ट साध्य है । दरअसल भाषा विज्ञान की ध्वनि प्रक्रिया का आधार जो विचारों के उद्गम से लेखक विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण से लेखक विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण तक है शरीर विज्ञान से ही जुड़ा हुआ है ।

पहले बताया जा चुका है भाषा विज्ञान का आधार है भाषा और इस भाषा के लिए दो पक्षों अथवा दो व्यक्तियों की उपस्थिति अनिवार्य है । संप्रेषणीयता की अपेक्षा ग्राह्यता के लिए वक्ता और श्रोता की अपेक्षा होती है । वक्ता द्वारा कुछ अर्थ ग्रहण करता और जवाब देता है ।

यह प्रक्रिया वार्तालाप बन जाती है जिसमें श्रोता और वक्ता का स्थान और कार्य परस्पर विनिमय बन जाता है । इस प्रक्रिया का विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाता है कि वागावयवों की मदद से वक्ता जो कुछ कहता है वह वक्तव्य ध्वनि-तरंगों की सहायता से श्रोता तक पहुँचता है । श्रोता की श्रोनेन्द्रिय उसे ग्रहण करती ओर मन तक पहुँचाती हैं, जो उसे निरर्थक या सार्थक सिद्ध करते हुए श्रोता को तदनुसार ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है । इस प्रकार ध्वनिविज्ञान के अध्ययन के लिए प्रथमत: वक्ता की ध्वनि द्वितीयत: ध्वनि तरंगें और तृतीयत: श्रोता द्वारा ग्रहण इन तीन प्रक्रियाओं का ज्ञान अनिवार्य होता है । ध्वनि विज्ञान के दो पक्ष हैं रचना पक्ष और बोध पक्ष । रचना पक्ष का आधार वक्ता है और बोध पक्ष का श्रोता । रचना पक्ष के ज्ञान के लिए वागवयों की रचना एवं बनावट के बारे में जानना जरूरी है और बोध पक्ष के ज्ञान के लिए श्रोतेन्द्रिय की रचना एवं बनावट का । शरीर विज्ञान के ज्ञान से ही इन दोनों पक्षों का ज्ञान संभव है । शरीर विज्ञान के ज्ञान से ही यह समझना संभव हो पाता है कि तार केन्द्र, मध्य, आरोह, अवरोह, संगीतात्मक ध्वनि, बालाघात आदि के क्या कारण हैं? मुख-सुख या प्रयत्न लाघव की प्रवृत्ति शब्दों के रूप परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है । इस मुख-सुख की प्रवृति की प्रकृति और कारणों पर शरीर विज्ञान के द्वारा ही प्रकाश पड़ता है । वागेन्द्रिय के अवयव जिह्वा, दाँत, ओठ, फेफड़े आदि । यद्यपि मुख्य रूप से भोजन, श्वास, प्रश्वास आदि कार्यो से संबद्ध हैं, लेकिन इनकी मदद से समस्त विश्व की आश्रयभूत भाषा जैसी दिव्य शक्ति का उदय होता है । आज शिशुओं से लेकर वयस्क लोगों तक में उच्चारण संबंधी दोषों को ठीक करने में भाषा वैज्ञानिक शरीर विज्ञान की सहायता को अपरिहार्य सिद्ध कर रहे हैं । वागेन्द्रिय में दोष न होते हुए भी श्रवणेन्द्रिय के दोष के कारण अर्थात् गलत सुन कर गलत उच्चारण के जो उदाहरण मिलते है उनमें भाषा वैज्ञानिक शरीर विज्ञान को अत्यंत उपयोगी उपयोगी समझ ही निदान का पथ अपनाता है ।

5.2.10 भाषा विज्ञान और सूचना तकनीक

सूचना तकनीक आधुनिक युग की एक बड़ी जरूरत है । हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन विश्लेषण से सम्बद्ध मुद्दों के साथ-साथ भाषा विज्ञान के अनेक पहलुओं को इस सूचना तकनीक में प्रभावित किया है । आज भाषा विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में यह एक नया आयाम जुड़ गया है । वस्तुत: भाषा तकनीक और भाषाई कम्प्यूटरीकरण को कुछ विद्वान एक ही विधा मानते हैं लेकिन सच यह है कि कम्प्यूटरीकरण भाषा तकनीक का एक हिस्सा मात्र हैं भाषा तकनीक तो एक विराट संकल्पना है । भाषा तकनीक में स्कूल रूप से कई क्षेत्रों में अध्ययन विश्लेषण एवं शोध कार्य किया जा रहा है जिनमें प्रमुख हैं- मूक एवं बधिक लोगों के लिए भाषा बोध शिक्षण, वाचन, श्रवण, संकेत भाषा आदि के लिए उपकरणों का विकास, भाषा विकारों के उपचार के लिए निदान उपकरण अन्य उपग्रहों से प्राप्त ध्वनि संकेतों का अध्ययन विश्लेषण, दृष्टिविहिन एवं दृष्टिवाधितों के लिए भाषा शिक्षण उपकरणों का विकास इलेक्ट्रोनिक के जरिए भाषा का लेखन, पाठन,वाचन, विश्लेषण, भाषिक मुद्रण, श्रुतलेखन, ध्वनि लेखन, मुद्रण की नई तकनीक एवं लिपि तकनीक में सामंजस्य, ग्राफिक इमेजिंग एवं भाषा, विश्व की भाषाओं के एकीकरण हेतु मेटा लिग्विस्टिक्स का विकास, भाषिक संप्रेषण कर बहुआयामी मॉडल, विश्व की समस्त भाषाओं में लिप्यंतरण, संसार की विभिन्न भाषाओं के लिए इंटरफेस की व्यवस्था आदि । सूचना तकनीक और भाषा विज्ञान दोनों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । क्योंकि ये दोनों ही ज्ञान की ऐसी विधाएँ हैं जिनमें एक दूसरे के मध्य अंतर की रेखा बहुत ही अस्पष्ट है । भाषा विज्ञान में भाषा के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है । चाहे वे सैद्धांतिक हों या यावहारिक । इसलिए भाषा से जुड़े हर विकास का सरोकार भाषा विज्ञान से होता ही हैं चूँकि सूचना तकनीक ने भाषा के क्षेत्र में अभूतूपर्व क्रांति ला दी है । इसलिए सूचना तकनीकी के इन प्रभावों का भाषा पर क्या प्रभाव पड़ने की संभावना है इन सभी का अध्ययन भी भाषा विज्ञान की परिधि में आता है । भारतीय भाषाओं को सूचना तकनीक की नवीनतम उपलखियों से जोड़ने के लिए ऐसे विद्वानों की जरूरत है जो भाषा और भाषा विज्ञान के साथ सूचना तकनीक के विषय में भी पारंगत हो, इसी क्रम में तकनीकी ज्ञान रखने वाले लोगों के लिए तकनीक और विज्ञान के साथ-साथ भाषा और भाषा विज्ञान की भी जानकारी रखना उपयोगी होगा । सूचना तकनीक के क्षेत्र में हो रहे नित नए विकास कार्यो ने भाषा संबंधी अनुसंधानों को एक विस्तृत और सर्वथा नवीन आयाम दिया है । इसी की बदौलत आज किसी भी भाषा के बड़े कॉर्पस डाटाबेस का निर्माण किया जा सकता है जिसमें शब्दों और व्याकरणिक नियमों के संचयन तथा सूचना पुनःप्राप्ति (Information Retirval) की मदद से संरक्षित डाटा का उपयोग किसी विशेष व्याकरणिक कोटि के विश्लेषण हेतु समुचित एवं सुविधाजनक तरीके से किया जा सकता है । यही कारण है कि भाषा विषयक अनुसंधान को लेकर विभिन्न प्रकार के कॉर्पोरा का निर्माण संभव हुआ है, जिसके उपयोग से न सिर्फ भाषा विज्ञान के परंपरागत सिद्धांतों को प्रभावित करने की क्षमता बढ़ी है बल्कि अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अंतर्गत आने वाले विभिन्न क्षेत्र जैसे भाषा शिक्षण, शब्द कोश निर्माण, मशीनी अनुवाद आदि के कार्यो को भी एक नई दिशा प्राप्त हुई है और इस प्रकार कार्य करना अपेक्षाकृत अधिक आसान हो गया है । कॉर्पस आधारित विश्लेषण

नए अनुसंधान संदर्भों पर प्रकाश डालता है और भाषा प्रयोग संबंधी जानकारियों को पहले की तुलना में अधिक तथ्यपरक और विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करता है जिसे परंपरागत दृष्टिकोण से उजागर करना संभव नहीं था । कम्प्यूटरी भाषा विज्ञान के माध्यम से अनुसंधान की प्रकृति एवं उद्देश्य के आधार पर सूक्ष्म व्याकरणिक नियम बनाए जा सकते हैं जिनका न केवल शब्द स्तर पर अपितु रूपिम स्तर पर विश्लेषण भी संभव है ।

5.3 विचार संदर्भ /शब्दावली

1.	अंकुश	:	नियंत्रण
2.	श्रुत लेखन	:	डिक्टेशन, सुनकर लिखना
3.	मूक बधिर	:	गूँगा-बहरा
4.	लिप्यंतरण	:	एक भाषा को एक लिपि से दूसरी लिपि में लिखा जाना ।
5.	भाषाद्वीप	:	किसी भाषा के क्षेत्र में अन्य भाषा भाषी समुदाय के बसने पर वह स्थान भाषाद्वीप कहलाता है ।
6.	आद्यंत	:	शुरू से अंत तक
7.	कूट भाषा	:	संकेतों युक्त भाषा, जिसमें कोई संदेश छिपा हो ।
8.	प्रतिस्थापन	:	फिर से स्थापित किया जाना ।
9.	दृष्टिबाधित	:	नेत्रों की बीमारी के कारण कम दिखाई पड़ना ।
10.	प्रकार्य	:	कार्य या प्रयोजन
11.	यथास्थितिवादी	:	जो बदलने में विश्वास न करता हो, व्यवस्था को यथावत बनाए रखने वाला ।
12.	धरोहर	:	संभाल कर रखने वाली वस्तु विरासत ।
13.	तदर्थ	:	इसके लिए एक बारगी ।
14.	मुख सुख	:	उच्चारण में मुख की सुविधा के लिए ।
15.	अपोहवाद	:	बौद्धों का भाषा विषयक चिंतन
16.	वागावयव	:	वाणी के अंग, उच्चारण में सलयक अंग ।
17.	केन्द्रापरगमी	:	केन्द्र से विपरीत ।
18.	केन्द्रानिगामी	:	केन्द्र की ओर उन्मुख ।
19.	भाषिक निष्प्रण	:	एक भाषा, में कई भाषा के शब्दों का मेल ।
20.	विच्छेदन	:	टुकड़े-टुकड़े करना ।

5.4 सारांश

इस इकाई में आपने भाषा विज्ञान एवं अन्य कई विज्ञानों के पारस्परिक संबंधों के बारे में पढ़ा जिससे यह बात आपके सामने स्पष्ट हो गई होगी कि संसार का सारा ज्ञान भाषा में ही निबद्ध है । ज्ञान की समस्त शाखाएं किसी न किसी रूप में भाषा विज्ञान से जुड़ी हुई हैं । ज्ञान स्वयं में अखंड है किंतु अध्ययन की सुविधा के लिए उसे खंड खंड रूप में पढ़ा और समझा

जाता है । भाषा के माध्यम से शब्द प्रमाण के रूप में ज्ञान हम तक पहुँचता है । यों तो ज्ञान की सभी शाखाओं से भाषा विज्ञान का संबंध किसी न किसी रूप में होती ही है किन्तु शब्द सीमा के कारण आपके अध्ययन के लिए प्रमुखतम को ही प्रस्तुत किया गया है । व्याकरण, दर्शन, साहित्य, अनुवाद, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान, और सूचना तकनीक से भाषा विज्ञान किन रूपों में जुड़ा है किस प्रकार वह कभी सहायक है तो कभी संपूरक और किस प्रकार अन्य विज्ञान शाखाएं भाषा विज्ञान से मदद ले अपने अध्ययन को सफलता के आयामों तक ले जाती हैं इस इकाई को पढने के बाद आप निःसंदेह भाषा विज्ञान एवं अन्य शास्त्रों के संबंध को स्पष्टत: समझ गए होंगे ।

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

अ. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. भाषा विज्ञान का अर्थ बताते हुए इसका अनुवाद विज्ञान से संबंध स्पष्ट कीजिए।
2. भाषा विज्ञान को इतिहास और भूगोल से किस प्रकार संबद्ध कर सकते हैं ।
3. भाषा विज्ञान और सूचना तकनीक का संबंध तय कीजिए ।
4. किन्ही दो समाज विज्ञानों से भाषा विज्ञान का संबंध बताइए ।
5. भाषा विज्ञान और व्याकरण के संबंधों में समता एवं अंतर को चिह्नित कीजिए।

व. लघुत्तरीय प्रश्न

1. भाषाद्वीप से क्या तात्पर्य है?
2. इतिहास और भाषा विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं - कथन से अपनी सहमति लिखिए ।
3. समाज भाषा विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र बताइए ।
4. दर्शन और भाषा विज्ञान में क्या संबंध है?
5. भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान क्या परस्पर सहयोगी हैं?

स. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. रचना पक्ष के ज्ञान के लिए........................... की बनावट का ज्ञान जरूरी है ।
2. मुख सुख की प्रवृति की प्रकृति पर.......................... ही प्रकाश डालता है ।
3. भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण में....................... का महत्त्वपूर्ण योगदान है ।
4. भाषा विज्ञान के अध्ययन से धर्म के..................... रूप को जाना जा सकता है ।
5. किसी भाषा का...................... भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है ।

द. सही / गलत पर निशान लगाइए

1. भाषा भूगोल भाषा विज्ञान की अधुनातन शाखा है । सही / गलत

2. हर भाषा की ध्वनि व्यवस्था एकसी होती है । सही / गलत

3. कथ्य का संप्रेषण भाषा के रूप विधान पर टिका होता है । सही / गलत

4. व्याकरण एककालिक विज्ञान है । सही / गलत

5. भाषा विज्ञान का यावहारिक रूप है । अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान । सही / गलत

5.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. कपिल देव द्विवेदी; भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र
2. तेजपाल चौधरी; भाषा और भाषा विज्ञान
3. सं. राजमल वोरा; भाषा विज्ञान
4. इग्नू; भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा
5. डॉ. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान

इकाई-6 भाषा विज्ञान के अध्ययन की भारतीय परम्परा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
6.3 संस्कृत भाषा में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
6.3.1 ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथ
6.3.2 पदपाठ
6.3.3 प्रातिशाख्य
6.3.4 शिक्षा
6.3.5 निघण्टु
6.3.6 आचार्य यास्क-निरूक्त
6.3.7 आपिशलि एवं काशकृत्स्न
6.3.8 ऐन्द्र सम्प्रदाय
6.3.9 पाणिनि
6.3.10 वार्तिक
6.3.11 पतंजलि
6.3.12 टीकाकार एवं कौमुदीकार
6.3.12.1 प्रमुख टीकाकार
6.3.12.2 प्रमुख कौमुदीकार
6.4 संस्कृत एवं जन भाषा में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
6.4.1 चन्द्रशाखा
6.4.2 जैनेन्द्र शाखा,
6.4.3 शाकटायन शाखा
6.4.4 हेमचन्द्र शाखा
6.4.5 कातन्त्र शाखा
6.4.6 सारस्वत शाखा
6.4.7 बोपदेव शाखा
6.5.8 पालि
6.5.9 प्राकृत
6.5 आधुनिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
6.5.1 कॉडवेल
6.5.2 केलॉग

6.5.3 जॉन बीम्स
6.5.4 हॉर्नले
6.5.5 ग्रियर्सन
6.5.6 डी. ट्रम्प
6.5.7 डॉ. सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर
6.5.8 रेल्फ लिले टर्नर
6.5.9 जूल ब्लॉक
6.5.10 ओझा गौरीशंकर हीराचंद
6.5.11 कामता प्रसाद गुरू
6.6 विचार संदर्भ / शब्दावली
6.7 सारांश
6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.9 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के महत्व को समझ सकेंगे ।
- भाषा-अध्ययन संबंधी संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में सुदृढ़ भारतीय परम्परा को जान पायेंगे ।
- भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों द्वारा आधुनिक काल में हुए भारतीय आर्य भाषाओं के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

भाषा भावों और विचारों के आदान-प्रदान का सबसे सबल, सक्षम साधन है । संसार में भाषा का आविर्भाव मानव जितना ही पुराना है । हाँ यह बताना जरूरी है कि मानव समाज में काफी परिश्रम एवं साधना के बाद मानव भाषा निर्मित हुई होगी । दुनिया की सभी खोजों में सबसे बड़ी खोज मानव भाषा है । मानव भाषा प्रतीकात्मक मानव के उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक व्यवस्था है । मानव भाषा परिवर्तनशील है । मानव की चित्तवृत्तियों के परिवर्तन का प्रभाव समाज पर और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में बाह्य परिवर्तन का प्रभाव मानव चित्त पर पड़ता है । भाषा के माध्यम से इन दोनों परिवर्तनों को समझा, जाना जा सकता है, वहीं दूसरी और इन परिवर्तनों में भाषा भी समाज की आवश्यकतानुसार अपना रूप बदलती है । मानव समाज में समय-समय पर प्राचीन काल से भाषा की व्यवस्था, भाषा की प्रकृति तथा उसकी व्यवस्था के विभिन्न तत्वों को समझने का उद्यम - भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में हुआ है । भारत में यह परम्परा अत्यन्त सशक्त, सुदृढ़ रूप में प्राप्त होती

है । प्रस्तुत इकाई में भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की भारतीय परम्परा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

6.3 भाषा वैज्ञानिक अध्ययन भाषा-

विज्ञान(Linguistics) नाम जरूर पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों एवं विद्वानों द्वारा दिया हुआ है, आधुनिक है परन्तु भाषा संबंधी अध्ययन एवं अनुशीलन की सशक्त परम्परा भारत में मिलती है । वैसे भाषा विषयक अध्ययन भारत के साथ अरब, चीन, जापान, यूरोप, अमेरिका आदि में भी हुआ है परन्तु भाषा के क्षेत्र में जितनी गहनता एवं लगन से तथा अधिक वैज्ञानिक ढंग से भारत में काम हुआ है उतना प्राचीन किसी भी देश में नहीं हुआ है । एक से बढ़कर एक प्रतिभाशाली, प्रखर मेधावी एवं गहन अध्येता भाषा के क्षेत्र में हुए । भारत में भाषा शास्त्र की तथा उसके विविध पक्षों को लेकर अध्ययन की एक सुदृढ़ परंपरा रहीं है । विश्व में इसी कारण भारत को आज आदर के साथ याद किया जाता है- जैसे आधुनिक भाषा विज्ञान के जनक ब्लूमफील्ड अपनी पुस्तक 'Language' में पाणिनीय अष्टाध्यायी के विषय में लिखते हैं-

"This grammer (पाणिनीय अष्टाध्यायी) which dates from somewhere round 350 to 250 BC is one of the greatest monuments of human intelligence. No other language to this day has been so perfectly described. ब्लूमफील्ड के उपर्युक्त कथन से भाषा शास्त्रीय अध्ययन की गुणवत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है । इतना ही नहीं भारत के इस क्षेत्र में हुए कार्य ने विश्व के कई विद्वानों के लिए दिशा निर्देशन का कार्य भी किया है । हार्वर्ड विश्वविद्यालय के जॉन बी. कैरोल लिखते हैं- "Western scholars were for the first exposed to the descriptive method either directly or indirectly by Panini to produce descriptive and historical studies. विश्व के ऐसे कई महान विद्वानों के द्वारा भारतीय भाषा शास्त्रीय अध्ययन की महत्ता को स्वीकार किया गया है और सराहा भी गया है ।

आप पहले पढ चुके हैं कि भाषा विज्ञान अपने वर्तमान स्वरूप में एक प्राचीन ज्ञान शाखा है जो 18वीं सदी के अंतिम दशकों में जन्मी । सर विलियम जोन्स को इसका जन्मदाता माना जाता हैं जिन्होंने रॉयल एसियाटिक सोसाएटी के सदस्यों के समक्ष एक शोध प्रबन्ध पढ़ा । इस प्रबन्ध में संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में पाई जानेवाली समानता को आधार बनाकर यह तथ्य उजागर किया गया था कि भारत और यूरोप की भाषाओं का उद्‌गम स्थान एक ही है । इस विचार ने अध्ययन की एक नयी विधा को प्रोत्साहित किया और भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन का क्रम शुरू हुआ । यही थी भाषा विज्ञान की शुरूआत।

प्राचीन काल में पश्चिमी देशों में भाषा विज्ञान और व्याकरण के क्षेत्र में उतना विस्तृत और गहन अध्ययन नहीं हुआ जितना भारत में । भाषा विज्ञान के अध्ययन की पाश्चात्य परंपरा शीर्षक इकाई में आप इस विषय को विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे और समझेंगे ।

आधुनिक युग में पाश्चात्य विद्वानों ने भाषा विज्ञान के अध्ययन को जो ऊँचाई दी, उसकी गहराई की बुनियाद प्राचीन भारतीय चिंतकों की कृतियों में मौजूद है । इसी को लक्ष्य

कर जूल ब्लॉक ने पाणिनि के ग्रंथ अष्टाध्यायी को समस्त भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का मूल माना है । संज्ञा की दृष्टि से देखें तो प्राचीन भारत में भाषा विज्ञान नामक किसी ज्ञान शाखा का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु शिक्षण निरूक्त और निघण्टु के नाम से ध्वनि विज्ञान, व्युत्पत्ति विज्ञान और कोश विज्ञान का जो बारीक विवेचन वैदिक साहित्य में मिलता है, वह अप्रतिम है और संस्कृत व्याकरण का दायरा तो इतना विस्तीर्ण है कि वह सहज ही स्वन, स्वनिम, रूप, रूपिम, वाक्य, विन्यास शब्द निर्माण ओर अर्थ. विन्यास आदि समस्त भाषिक अध्ययन को स्वयं में समाहित कर लेता है । भारत में वेद को ज्ञान का मूल उत्सव माना गया है । चार संहिताएं, छः वेदांग, वैदिक साहित्य के अंतर्गत आते हैं वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष को गिना जाता है । इनमे से शिक्षा, व्याकरण और निरुक्त भाषा विज्ञान के विषय है ।

शिक्षा उच्चारण शास्त्र से संबंधित है जिसे ध्वनि विज्ञान का वैदिक रूपांतर मान सकते हैं । सायणाचार्य ने शिक्षा का लक्षण बताते हुए कहा है “वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा“ अर्थात् शिक्षा वह शास्त्र है जिसमें वर्णों स्वरों आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती हैं । द्रष्टव्य है कि शिक्षा शास्त्र में स्थान, प्रयत्न, मात्रा इत्यादि का इतना सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है कि तकनीक से सम्पन्न आधुनिक भाषा विज्ञान ही इसकी मान्यताओं को चुनौती नहीं दे सकता । अनुमान किया जाता है कि शिक्षा ग्रंथों की संख्या काफी रही होगी किंतु आज एकमात्र पाणिनिय शिक्षा ग्रंथ ही उपलब्ध है ।

वेदों की 10 शाखाएँ बताई जाती हैं । इन शाखाओं में उच्चारण की दृष्टि से स्थान और प्रदेशगत अंत था । प्रातिशाख्यों में इसी उच्चारण भेद को दिखाया गया है । प्रातिशाख्य भी उच्चारण संबंधी ग्रंथ थे जिन्हें व्यावहारिक ध्वनि शास्त्र और भाषा भूगोल का प्राचीनतम रूप माना जा सकता है । निरुक्त भी भाषा विज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । निरूक्तों की भी कुल संख्या कितनी थी यह मालूम नहीं, इस परम्परा की अकेली उपलब्ध रचना यास्क रचित निरुक्त है, जिसमें कई पूर्ववर्ती निरूक्तकारों की चर्चा मिलती है । इस ग्रंथ में शब्दों की व्युत्पत्ति उनके मूल स्रोत आदि के बारे में विविध प्रश्न उठाये गये हैं जैसे क्या सभी शब्दों की व्युत्पत्ति को धातुओं से जोड़ा जा सकता है, क्या धातुओं से व्युत्पन्न और अन्य शब्दों के स्वरूप में कोई तात्त्विक अंतर है? क्या सभी शब्दों की व्युत्पत्ति को जान पाना मुमकिन हैं? जैसे प्रश्नों का उत्तर तलाशने का प्रयास भी निरुक्त में मिलता है । यास्क के निरुक्त को रूपिम की संकल्पना का मूल स्रोत मान सकते हैं । यास्क ने शब्दों के दो प्रकार बताये हैं - अखंड, सखंड । अखंड वे शब्द हैं जिन्हें लघुतम सार्थक खंडों में विभाजित नहीं किया जा सकता । जैसे-सरल, चरण कल आदि । इसके विपरीत सखंड वे शब्द हैं जिन्हें लघुतम सार्थक खंडों में विभाजित किया जा सके जैसे महत्व, वैदुष्य आदि । निरुक्त का ही उत्तरवर्ती भाग निघण्टु है । निघण्टु वैदिक शब्द कोश है जिसमें वैदिक शब्दों के पर्यायवाची दिये गये हैं ।

ज्ञान-विज्ञान की पुरानी शाखाओं में व्याकरण का स्थान सबसे ऊपर है । भारत में संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में वैयाकरणों की दीर्घ परम्परा रही है । जिनमें पाणिनि,

कात्यायन, पतंजलि, भट्टोजि दीक्षित, भर्तृहरि, वररूचि, प्रेमचंदकी, और मार्कण्डेय विशेष सम्माननीय हैं ।

पाणिनी को संस्कृत व्याकरण का आदि गुरू माना जाता है । उन्होंने सूत्र शैली में अष्टाध्यायी की रचना की, जिसमें वैयाकरणिक परिपूर्णता है । इस ग्रंथ में ध्वनि, पद, कृदन्त, पद्धति, सन्धि, समास और लिंगानुशासन आदि विषयों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है । पाणिनि का सबसे महत्वपूर्ण अवदान है- शब्द निर्माण प्रक्रिया जिसके जरिये भारतीय भाषाएँ हजारों वर्षो से अपनी शब्द संपदा को समृद्ध से समृद्धतम बनाती आई हैं । कात्यायन संस्कृत व्याकरण में वार्तिककार के नाम से जाने जाते हैं । उन्होंने लगभग 1500 वार्तिक लिखे जो कहीं उनकी अधूरी बातों को पूरा करते हैं तो कही पाणिनि के सूत्रों की व्याख्या करते हुए उन्हें और अधिक स्पष्ट करते हैं । पतंजलि सूत्रों के भाष्यकार के रूप में सुख्यात हैं उनके द्वारा रचित ग्रंथ महाभाष्य को व्याकरण का गंभीर और प्रौढ़ ग्रंथ माना जाता है ।

भट्टोजि दीक्षित ने संस्कृत व्याकरण के सिद्धांतों को सरल शैली में प्रस्तुत किया है । इनका विशेष कार्य है अष्टाध्यायी के सूत्रों को विषयानुसार वैज्ञानिक क्रम देना, सूत्रों को स्पष्ट करना और यथा स्थान नियमों का उदाहरण देना । इनकी रचना सिद्धांत कौमुदी क्रो संस्कृत व्याकरण का प्रवेश हार माना जाता है । मौलिक वैयाकरणों में भर्तृहरि अग्रगण्य हैं । भर्तृहरि ने वाक्य को भाषा की एकमात्र सार्थक इकाई माना है । आज आधुनिक भाषा वैज्ञानिक जिस वाक्यवाद को भाषा चिंतन की महत्तम उपलब्धि मानते हैं, वह वर्षो पहले भर्तृहरि के वाक्यपदीय में बडे ही सुन्दर तरीके से विश्लेषित है ।

वररूचि, हेमचन्द्र सूरि, मार्कण्डेय और पुरूषोत्तम प्राकृत के व्याकरणाचार्य हैं । वररूचि का प्राकृत प्रकाश हेमचंद्र सूरि का सिद्ध हेम शब्दानुशासन, मार्कण्डेय का प्राकृत सर्वस्व और पुरूषोत्तम का प्राकृतानुशासन, मध्ययुगीन भाषाओं के उल्लेख्य ग्रंथ हैं । प्राकृतों के इन ग्रंथों से जहां एक ओर प्राकृतों के स्वरूपों को समझने में सहायता मिलती है वहीं उनके क्षेत्रीय भेदों और उपभेदों की प्रामाणिक जानकारी भी प्राप्त होती है ।

इस इकाई में भाषा विज्ञान के भारतीय आचार्यों की एक विवरणिका प्रस्तुत की गई है । जिससे आप यह समझ. सकेंगे कि भाषा विज्ञान एक व्यापक और गंभीर विषय है जिसे अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुंचने में सदियां लगी हैं और पाणिनि, पतंजलि से लेकर थ्रैंक्स ब्लूम, किशोरी दास वाजपेयी और भोलानाथ तिवारी तक अनेक मनीषियों ने इसे अपने ज्ञान ओर चिंतन से समृद्ध बनाया हैं । संस्कृत और जनभाषाओं के वैयाकरणों और उनके भाषा-व्याकरण संबंधी कार्यो के अध्ययन से आपके सामने यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि भारतीय आचार्यों ने ही भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की आधार शिला रखी ओर एक नई राह भी प्रशस्त की ।

6.3 संस्कृत भाषा में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

वैसे इस अध्ययन की शुरुआत वेदों से मानी जा सकती है । ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के कुछ अंशों में भाषा संबंधी प्रारंभिक जानकारी प्राप्त होती है । हालाँकि विर्षुद्ध रूप से इसे भाषा विज्ञान कहना कठिन है लेकिन इतना कहा जा सकता है कि भाषा संबंधी ज्ञान की शुरुआत यहाँ

से मानना अनुचित भी नहीं होगा । व्यावहारिक रूप से भाषा संबंधी कार्य की शुरुआत ब्राह्मण ग्रंथों से होती है अत: उसी क्रम में यहाँ अध्ययन किया जा रहा है ।

6.3.1 ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथ

वेदों के बाद संहिता एवं परवर्ती रचना का नाम ब्राह्मण ग्रन्थ है । इन ग्रंथों में शब्द के अर्थ को समझने का उपक्रम मिलता है । हालाँकि यह ज्यादातर अनुमान आधारित और अशुद्ध है । किसी व्याकरण और धात्वर्थ तक पहुंचने की शुरूआत इन ग्रंथों से ही हुई । ध्वनि और अर्थ तक इनकी गति नहीं थी, परन्तु उनका ध्यान उस तरफ गया है । ऐतरेय ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है ।

6.3.2 पदपाठ

वेदों का सुरक्षित रूप रखने का श्रेय पदपाठ को है । वैदिक संहिताओं को पद रूप में रखने का उपक्रम हुआ । वाक्य एवं शब्द विश्लेषण में संधि एवं समास को आधार बनाया गया । स्वराधात का अध्ययन किया गया । ऋग्वेदीय पदपाठ के साकल्य ऋषि सामवेद के गार्ग्य एवं यजुर्वेद के मध्यन्दिन ऋषि प्रसिद्ध है ।

6.3.3 प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्य का अर्थ प्रतिशाखा के अनुसार वेद का ध्वनि संबंधी अध्ययन है । हुआ यह कि- समय के चलते वैदिक भाषा और जनभाषा के बीच अन्तर बढ़ता गया । लोग वेदों का उच्चारण भूल न जाएं इसलिए वेदों को गाकर अशुद्धि रहित पदपाठ कर सकें इस दृष्टि से ध्वनि संबंधी जो अध्ययन शुरू हुआ उसे प्रातिशाख्य के रूप में पहचाना जाता है । विश्व का सबसे प्राचीन वैज्ञानिक ध्वनि अध्ययन भारत में हुआ है । प्रमुख प्रातिशाख्यों में ऋक्प्रातिशाख्य अथर्वप्रातिशाख्य वाजसनेयी प्रातिशाख्य तथा ऋक्तंत्र व्याकरण आदि हैं । प्रातिशाख्यों का प्रमुख लक्ष्य अपनी-अपनी संहिताओं के परम्परागत उच्चारण को सुरक्षित रखना था अत: स्वराघात, मात्राकाल तथा उच्चारण संबंधी अन्य नियमों के अध्ययन का कार्य हुआ । दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि संस्कृत ध्वनियों का जो उस समय वर्गीकरण किया गया था वह इतना वैज्ञानिक था कि आज भी वही चलता है । नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ऐसे चार भाग पदों के लिए किये गये । धातु तक पहुंचने का प्रयास संभव है कि इसी समय हुआ हो ।

6.3.4 शिक्षा

ध्वनियों का सैद्धान्तिक विवेचन शिक्षा ग्रंथों में हुआ है । आज लगभग 40 शिक्षा ग्रंथ उपलब्ध हैं जैसे पाणिनीय-शिक्षा, नारद शिक्षा, भारद्वाज शिक्षा, याज्ञवल्कय शिक्षा, स्वर-व्यंजन शिक्षा आदि । शिक्षाग्रंथों के रचनाकाल के विषय में कहा जाता है कि ये प्रातिशाख्यों के बाद के हैं । ध्वनि स्वरूप, ध्वनियों का वर्गीकरण, सुर, अक्षर आदि पर उन ग्रंथों में विचार हुआ है ।

6.3.5 निघण्टु

अर्थ की दृष्टि से वैदिक शब्दों के संग्रह का जो ग्रंथ बना उसे निघण्टु कहा गया । जनभाषा के बढ़ते प्रभाव से वैदिक भाषा के अर्थ को सुरक्षित बनाये रखने तथा लोगों तक पहुंचाने के लिए वैदिक कोश बनाया गया वहीं निघण्टु है । उस: समय कई निघण्टु बने पर आज एक ही उपलब्ध है । मैकडोनेल ने यास्क के समय पांच निघण्टु होने की बात की है । वैसे तो वैदिक शब्द संग्रह को निघण्टु कहा जाता था परन्तु बात में इसी क्रम में 'अमरकोश' 'वैजयनती कोश' जैसे लौकिक कोशों को भी निघण्टु कहा जाने लगा । आज उपलब्ध निघण्टु में पांच अध्याय हैं । जिन में प्रथम तीन अध्यायों में शब्दों को पर्यायक्रम में रखा गया है । चौथे अध्याय में वेदों के कुछ क्लिष्ट शब्दों को रखा गया है । पांचवें अध्याय में वैदिक देवताओं के नामों का उल्लेख है ।

6.3.6 आचार्य यास्क-निरूक्त

आचार्य यास्क ने निरुक्त की रचना की है । निरुक्त निघण्टु की व्याख्या है, निघण्टु के प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति ओर उससे निष्पन्न अर्थ पर इसमें विचार किया गया है । यास्क ने शब्दों की व्युत्पत्ति दुराग्रह या पूर्वाग्रह से मुक्त होकर की है । इसका प्रमाण यह है कि अस्पष्ट शब्दों को स्वीकार कर उन्हें अलग रखा गया है ।

1. निरुक्त में जहां निघण्टु के शब्दों के अर्थ समझाने की कोशिश की गई है वहीं प्रयोग एवं अर्थ की स्पष्टता के लिए वैदिक संहिताओं के शब्दप्रयोग के उदाहरण भी दिये गये है ।
2. निरुक्त इनमें पूर्ववर्ती एवं समवर्ती वैयाकरणों का उल्लेख किया गया हे । जिससे भाषा सम्बन्धी अध्ययन की परंपरा का पता चलता है ।
3. शब्द के अर्थ निर्णय में समाज एवं इतिहास के संदर्भ का प्रयोग किया गया है अत: उससे तत्कालीन एवं ऐतिहासिक जानकारी मिलती है ।
4. निरुक्त में शब्द के साथ भाषा की उत्पत्ति, निर्माण एवं विकास पर भी विचार किया गया है । भाषा संबंधी व्यवस्थित अध्ययन करने का श्रेय आचार्य यास्क को जाता है ।
5. वाणी के अलावा अन्य अवयव-संकेतों को भी भाषा माना है हालाँकि अस्पष्ट एवं अव्यावहारिक होने पर उसके अध्ययन की आवश्यकता नहीं मानी है ।
6. शब्दों के नामकरण को लेकर तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है अत: ग्रंथ रोचक बनता है ।
7. आचार्य यास्क ने शब्द की श्रेष्ठता के दो कारण बताये हैं- एक शब्द का अर्थ किसी की इच्छा पर पूर्णत: आधारित न होकर सिद्ध और स्थिर रहता है जिसके कारण वक्ता और श्रोता दोनों में एक अर्थ का बोध होता है । दूसरा यह कि कम परिश्रम में सूक्ष्म अर्थ का बोध होता है ।

8. निरूक्तकार सभी शब्दों को कुछ मूलों पर आधारित होने की बात कहते हैं परिणामस्वरूप बाद में पाणिनि जैसे विद्वान धातु सिद्धान्त का प्रतिपादन कर सकने में सक्षम होते हैं ।
9. भाषा की उत्पत्ति के साथ विभाषाओं की उत्पत्ति की बात करते हैं ।
10. नाम, आख्यात. उपसर्ग, निपात का विस्तृत विवेचन मिलता है । संज्ञा और क्रिया तथा कृदन्त ओर तद्धित के प्रत्यय भेदों का भी कुछ-कुछ उल्लेख मिलता है ।
11. पूर्ववर्ती ग्रंथों से अधिक वैज्ञानिकता एवं शुद्धता तथा विरोधी मतों के खंडन में तार्किकता देखने को मिलती है ।

आचार्य यास्क के भाषा संबंधी कार्य की वैज्ञानिकता और अवैज्ञानिकता को लेकर विद्वानों में अलग अलग मत हैं परन्तु एक सच बात यह है कि जिस समय आचार्य यास्क ने भाषा संबंधी कार्य किया वह समय आज के जैसा नहीं था अत: आज के जैसी वैज्ञानिकता की अपेक्षा रखना उचित भी नहीं है अत: यह बात सच है कि उनके कार्य को पूर्णत: अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता ।

6.3.7 आपिशलि एवं काशकृत्स्न

पाणिनि से पूर्व इन दो वैयाकरणों का व्याकरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । पाणिनि ने जिन दस वैयाकरणों को याद किया है उनमें आपिशलि भी हैं । इन व्याकरण आचार्यों ने पाणिनि के लिए जमीन तैयार की । पाणिनि ने बहुत से ऐसे भाषा संबंधी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जिनका प्रयोग पहले से होता आया है ।

6.3.8 ऐन्द्र सम्प्रदाय

पाणिनि से पूर्व प्रचलित भाषा संबंधी संप्रदायों में यह संप्रदाय सबसे प्राचीन माना जाता है । एक मत के अनुसार वैयाकरण कात्यायन भी इसी संप्रदाय के थे । एक विद्वान के मतानुसार दक्षिण में इस संप्रदाय का अधिक प्रभाव था । दक्षिण के प्राचीनतम वैयाकरण ग्रंथ 'तोल्कप्पियम्' को ऐन्द्र सम्प्रदाय. पर आधारित माना जाता है ।

6.3.9 पाणिनि

यह नाम न केवल संस्कृत या भारतीय परंपरा में बल्कि पूरे विश्व में व्याकरण एवं भाषा संबंधी अधिक सटीक एवं वैज्ञानिक ढंग से काम करने वाले आचार्य के रूप में आदर के साथ लिया जाता है । आज भी पाणिनि के समान विश्व में किसी ने कार्य किया हो ऐसा सुनने में या पढ़ने में नहीं आया हैं । प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक ब्लूमफील्ड ने 'न भूतो न भविष्यति' कहा था, वह आज भी सच सिद्ध होता नजर आ रहा है ।

पाणिनि के जीवन और समय को लेकर विद्वानों में काफी मत पार्थक्य है परन्तु डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने उनका समय ई.पू. पांचवी सदी माना जाता है । जो तर्क संगत लगता है । आहिक, शालकि दासीपुत्र, शलातुरीय जैसे अनेक नामों से पाणिनि को पहचाना जाता था । पाणिनि ने आठ अध्यायों वाली अष्टाध्यायी का सृजन किया जिसमें प्रत्येक अध्याय में चार पाद

हैं और प्रत्येक पाद में अनेक सूत्र हैं । पूरी पुस्तक 14 सूत्रों पर आधारित है-अइउण्, ऋलृक्, ऐऔच्, हयवरट, लण्, अमङणनम् झभड्, घढभष, जबगउदश, खफछठथचटतव, कपय शषसर, हल इन्हें माहेश्वर सूत्र भी कहा जाता है । इनमें प्रत्याहार गण करके बात संक्षेप में कहने की सूत्र पद्धति का प्रयोग किया गया है । पाणिनि की अष्टाध्यायी की कुछ विशेषताएँ है जो इस प्रकार हैं-

1. लौकिक और वैदिक संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है ।
2. सत्रात्मक पद्धति से सटीक, तार्किक एवं वैज्ञानिक ढंग से कार्य किया गया है परिणाम स्वरूप आज इतने बरसों के बाद भी उसका स्थान अन्य कोई ग्रंथ नहीं ले पाया है ।
3. ध्वनि शब्द, रूप, वाक्यरचना तथा अर्थ जैसे भाषा व्यवस्था के समस्त स्तरों का व्यवस्थित विवेचन किया गया है ।
4. चौदह माहेश्वर सूत्रों के आधार पर संक्षिप्त एवं सटीक ढंग से लगभग चार हजार सूत्रों की रचना की है । इन सूत्रों में भाषा के सभी स्तरों का विस्तृत विश्लेषण दिया गया है । इस कार्य की एक अन्य विशेषता उसकी स्पष्टता है ।
5. भाषा में वाक्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए पाणिनि ने यह प्रमाणित किया है कि भाषा का आरंभ वाक्य से हुआ है ।
6. भाषा के मानक रूप के संदर्भ में सामाजिक एवं भौगोलिक क्षेत्र को व्याकरण के अन्तर्गत समाविष्ट करने वाले व्याकरणाचार्य के रूप में पाणिनि को याद किया जाता है ।
7. भाषा में प्राप्त सभी शब्दों का मूल धातु है, पाणिनि ने ऐसा सिद्ध किया । धातु से कोई क्रिया या भाव प्रकट होता है । पाणिनि ने उपसर्ग, प्रत्यय आदि को जोड़कर शब्द एवं रूप रचना की बात की है ।
8. भाषा के शब्दों को सुबन्त एवं तिङ्न्त दो वर्गो में वर्गीकृत किया है । विश्व की सभी भाषाओं में भाषा शास्त्रियों के द्वारा प्रयुक्त शब्दों के वर्गीकरण में यह वर्गीकरण आज भी अधिक वैज्ञानिक एवं सटीक दृष्टि से स्वीकृत है ।

पाणिनि ने 'धातुपाठ' एवं 'गणपाठ' तथा 'उणादिसूत्र' आदि अन्य ग्रंथों की रचना भी की थी । पाणिनि अपने भाषा सम्बन्धी कार्य के लिये विश्व के भाषा एवं व्याकरण जगत् में मील का. पत्थर साबित हुए हैं ।

6.3.10 वार्तिक

पाणिनि की अष्टाध्यायी में जो कुछ कहा गया है, जो नहीं कहा गया है जो कुछ गलत कहा गया है, उस पर विचार करने वाले ग्रंथ को वार्तिक कहा जाता है । वस्तुत: भाषा के परिवर्तन रूप के संदर्भ में अष्टाध्यायी के बाद वार्तिक संशोधन एवं पूरक रूप में कार्य करते हैं । वार्तिकों की संख्या निश्चित नहीं है । प्रमुख वार्तिककारों में व्याघ्रमूर्ति, भारद्वाज, क्रोष्टा, सुनाग बाडव, कात्यायन आदि हैं । इनमें से कात्यायन वार्तिककार के रूप में प्रसिद्ध हैं । परवर्ती भाष्यकार महर्षि पतंजलि ने 1500 वार्तिकों में से 900 के आसपास स्वीकृत कर शेष को

अस्वीकृत किया । इसके बावजूद अष्टाध्यायी जैसी रचना में अशुद्धियां खोजने का विशेष उपक्रम किया यह सामान्य बात नहीं है ।

6.3.11 पतंजलि

संस्कृत में ही नहीं, भारत में तथा भाषा जगत में मुनित्रय के नाम से पहचाने जानेवाले 'पाणिनि, कात्यायन, और पतंजलि' मुनियों में शामिल पतंजलि भी मील के पत्थर हैं । उनके द्वारा रचित भाष्य को उसकी महानता के कारण ही 'महाभाष्य' नाम दिया गया । महाभाष्य में भी आठ अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय में चार पाद तथा हर एक पाद में कुछ आहनिक सूत्र हैं । तीन प्रमुख कारणों से इस ग्रंथ की रचना की गई थी । (क) समय के चलते पाणिनि सूत्रों की अस्पष्टता एवं दुरूहता को दूर करने के लिये (ख) कात्यायन के वार्तिकों का समुचित उत्तर देने के लिये (ग) भाषा के दार्शनिक पक्ष पर प्रकाश डालने के लिये और इन तीनों कार्यो में वे सफल हुए हैं । आधुनिक भाषा विज्ञान का मार्ग एवं दिशा निर्देश कर सकें, उस प्रकार से ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, अर्थ तथा ध्वन्यर्थ आदि का विवेचन किया है ।

6.3.12 टीकाकार एवं कौमुदीकार

टीकाकार एवं कौमुदीकार : पाणिनि एवं पतंजलि के बाद ऐसा महान व्याकरणाचार्य नहीं हुआ जो उसकी भांति मौलिक एवं वैज्ञानिक ढंग से उनके जैसा कार्य कर सके । अत: उनकी(पाणिनि की) अष्टाध्यायी पर समय समय पर टीकाएँ एवं अनन्तर कौमुदियाँ लिखी गई समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए टीकाएँ लिखी गई । जिनमें से प्रमुख निम्नानुसार हैं-

6.3.12.1 प्रमुख टीकाकार

जयादित्य तथा वामन : 'काशिका नाम से प्रसिद्ध आठ अध्यायों में इनकी लिखित टीका हैं । पाणिनि के सूत्रों की बोधगम्यता को ध्यान में रखकर उदाहरणों के साथ समझाया गया है।

जिनेन्द्र बुद्धि बौद्ध मतानुयायी जिनेन्द्र ने 'काशिका न्याय' या काशिका विवरण पंजिका नामक टीका लिखी ।

भर्तृहरि : 'वाक्यपदीय' ग्रंथ के रचयिता भर्तृहरि ने महाभाष्य पर टीका लिखी । व्याकरण के दर्शन पक्ष के संदर्भ में लिखी गई टीका-ब्राहमखंड वाक्यखंड तथा प्रकीर्ण या पदखंड नामक तीन अध्यायों में विभक्त है ।

क्य्यट : 'महाभाष्य प्रदीप' टीका लिखने वाले क्य्यट काश्मीरी थे । तात्विक पक्ष को महत्ता देने वाले क्य्यट महाभाष्य की टीका करने वाले टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध है । नागोजी भट्ट, नारायण तथा ईश्वरानंद जैसे टीकाकारों ने क्य्यट के महाभाष्य प्रदीप की टीका की है । व्याकरण संबंधी 10-11 ग्रंथों की रचना की थी जिसमें परिभाषेन्दु शेखर एवं वैयाकरण सिद्धांत मंजूषा उल्लेखनीय हैं ।

हरदत्त : ये संभवत: दक्षिण भारत में थे और तेलगु साहित्य एवं भाषा से परिचित थे । इन्होंने पदमंजरी टीका लिखी ।

6.3.12.2 प्रमुख कौमुदीकार

व्याकरण पर बहुत अधिक ग्रंथों का निर्माण हो चुका था अत: बोधगम्यता की दृष्टि से सरल ढंग से प्रस्तुति के लिए कौमुदी - की रचना हुई । टीकाओं के क्षेत्र में अधिक काम हो चुका था । अत: कौमुदी के माध्यम से विद्वानों ने भाषा संबंधी कार्य करना ठीक समझा । एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि विदेशी शासन के कारण राजनीतिक, सामाजिक एवं अन्य कारणों से भाषा का रूप परिवर्तित हो रहा था । ऐसे में भाषा को सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरल तरीके से कौमुदी ग्रंथों का सृजन हुआ । प्रधान कौमुदियाँ एवं कौमुदीकार निम्नानुसार हैं-

विमल सरस्वती : 'रुपमाला' नाम से अष्टाध्यायी के सूत्रों पर 1 4वीं सदी में यह कार्य हुआ है । प्रत्याहार संज्ञा और परिभाषा के सूत्रों के पश्चात् स्वर, प्रकृति भाव, व्यंजन और निसर्ग इन चार भागों में सूत्र संबंधी कार्य हुआ है । सुबन्त, स्त्री प्रत्यय एवं कारकों को छ: भागों में स्थान दिया है । पद्धति और समास प्रकरणों को अंत में रखा है । आख्यान प्रकरण विस्तृत है । प्रत्येक लकार पर अलग से विचार किया गया है । लकारार्थ-माला के रूप में परिशिष्ट की प्रस्तुति अन्त में है । सरल, सुरूचिपूर्ण शैली के कारण यह ग्रंथ अधिक लोकप्रिय भी बना ।

रामचन्द्र : 'प्रक्रिया कौमुदी' के नाम से 15वीं सदी में दक्षिणी ब्राह्मण रामचन्द्र द्वारा निर्मित इस कौमुदी की एक विशेषता यह है कि इस पर कई टीकाएँ लिखी गई हैं ।

भट्टोजि दीक्षित : कौमुदीकारों में अग्रिम पंक्ति का नाम है भट्टोजि दीक्षित । संस्कृत व्याकरण के अध्येता इसे अवश्य पढ़ते-पढ़ाते हैं । 'सिद्धांत कौमुदी की विशेषता यह है कि इसके आगे लोग अष्टाध्यायी को भी भूल जाते हैं । सिद्धांत कौमुदी पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी; पर सबसे दिलचस्प बात यह है कि स्वयं भट्टाजि ने बाल मनोरमा एवं 'प्रौढ़ मनोरमा' नामक टीकाएँ लिखी । रामचन्द्र की कौमुदी एवं हेमचन्द्र के शब्दानुशासन को आधार बनाकर सिद्धांत कौमुदी की रचना हुई है ।नागोजी, हरि दीक्षित जैसे प्रखर विद्वानों ने इस पर अपनी टीकाएँ लिखी हैं तो खंडन उद्देश्य से पंडितराज जगन्नाथ ने 'मनोरमा कुचमर्दन' नामक मनोरंजन पूर्ण पुस्तक लिखी ।

वरदराज : अठारवीं सदी में सिद्धांत कौमुदी के लघु, मध्य और सार नामक तीन संक्षिप्त संस्करण लिखने वाले वरदराज संस्कृत अध्येताओं के बीच अधिक लोकप्रिय रहे ।

6.4 संस्कृत एवं जन भाषा में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

ऊपर हमने पाणिनि से पूर्व हुए व्याकरण एवं भाषा संबंधी तथा पाणिनि से जुड़े हुए अर्थात् टीकाकारों एवं कौमुदीकारों का अध्ययन किया, परन्तु इन दोनों से इतर कुछ विद्वानों ने स्वतंत्र शाखाओं के रूप में अपना अध्ययन किया उसे भारतीय भाषा विज्ञान के विकास के संदर्भ में नजर अंदाज नहीं किया जा सकता । वे निम्नानुसार हैं-

6.4.2 चान्द्रशाखा

5वीं सदी में हुए चन्द्रगोमिन ने पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि द्वारा रचित व्याकरण की अपेक्षा अधिक सरल एवं सुन्दर ढंग से व्याकरण की चर्चा की है । वैदिक व्याकरण एवं स्वराघात के संबंध में पाणिनि के कुछ नियमों को भी बदल दिया । माहेश्वर सूत्र 14 से

घटाकर 13 कर दिये- जैसे 'हयवरट' और 'लण' को 'हयवरटलण' एक कर दिया । ठीक वैसे ही कुछ प्रत्याहारों को निकालकर नये जोड़कर सूत्रों की संख्या लगभग 3100 कर दी । चन्द्रगोमिन ने अपने मौलिक 35 सूत्र दिये हैं । अध्यायों की संख्या छ: रखी हैं । बौद्धधर्मी होने के कारण इस शाखा का प्रचार लंका और तिब्बत में काफी हुआ है । चन्द्रगोमिन ने उणादिसूत्र, धातुपाठ गणपाठ आदि की रचना भी की है ।

6.4.2 जैनेन्द्र शाखा

देवनन्दी या पूज्यपाद द्वारा रचित व्याकरण के दो संस्करण जिसमें क्रमश: 3000 एवं 3700 सूत्र है इसमें विशेष मौलिकता का अभाव नजर आता है । पाणिनि और कात्यायन की बातें जस की तस उठा ली गई हैं । धार्मिक कट्टरता से पूर्ण इस ग्रंथ में किसी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त नहीं की गई है । जैनेन्द्र शाखा नाम से ही पता चलता है कि यह जैनों की थी ।

6.4.3 शाकटायन शाखा

जैनों की इस शाखा के प्रमुख व्याकरण-शाकटायन, दयापाल प्रभाचन्द्र और अभयचन्द्र माने जाते हैं । पाणिनि, चन्द्रगोमिन एवं पूज्यपाद के व्याकरण से प्रभावित 'शाकटायन-शब्दानुशासन' में चार-चार पदों के चार अध्यायों में लगभग 3200 सूत्र हैं ।

6.4.4 हेमचन्द्र शाखा

बारहवीं सदी में 'सिद्धहेम शब्दानुशासन' की रचना करने वाले हेमचन्द्राचार्य इस शाखा के स्थापक थे । वे जैन साधु थे । 4500 सूत्र, 32 पाद, और 8 अध्यायों में बंधे हुए इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि यह संस्कृत की अपेक्षा तत्कालीन जनभाषा प्राकृतों का विशिष्ट अध्ययन करने वाला प्रामाणिक ग्रंथ है । कम शब्दों में अधिक कहने का कौशल आचार्य हेमचन्द्र को प्राप्त हुआ था । शाकटायन के शब्दानुशासन का इस पर प्रभाव स्पष्ट है । आचार्य हेमचन्द्र ने पाणिनि की तरह उणादिसूत्र, धातु, पाठ, गण पाठ की भी रचना की है । हेमचन्द्र के शब्दानुशासन पर वृहदवृत्ति 'ढुंढिका' तथा 'हेमलधुन्यास' जैसी प्रसिद्ध टीकाएँ लिखी गई ।

6.4.5 कातन्त्र शाखा

प्राकृत के माध्यम से संस्कृत सीखने वालों के लिए कातन्त्र की रचना हुई जिसका अर्थ है संक्षिप्त व्याकरण । पाणिनि के आधार पर निर्मित ग्रंथ में 1400 सूत्र हैं ।

6.4.6 सारस्वत शाखा

इस शाखा के प्रवर्तक. के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है । सरल, संक्षिप्त एवं सटीक पद्धति से बनाये गये व्याकरण के कारण इसकी लोकप्रियता अधिक रही । पाणिनि के 4000 सूत्रों के स्थान पर इसमें केवल 700 सूत्र हैं । गयासुद्दीन खिलजी तथा सलेमहशाह जैसे मुसलमान शासकों ने इसे प्रोत्साहन दिया ।

6.4.7 बोपदेव शाखा

13वीं सदी में बोपदेव द्वारा स्थापित इस शाखा का व्याकरण ग्रंथ 'मुग्धबोध' है । इसमें पाणिनि के सूत्रों एवं प्रत्याहारों से कुछ अलग तरीके से प्रस्तुति की गई है । पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि भी पाणिनि से अलग है ।

6.4.8 पालि

पालि भाषा में व्याकरण ग्रंथों से सम्बन्धित तीन शाखाएँ मिलती हैं-कच्चायन, मोग्गलान तथा अग्गवंस । संस्कृत से प्रभावित ये ग्रंथ विषय की दृष्टि से इतने सशक्त नहीं है । पालि भाषा में भारत, ब्रहमदेश एवं लंका तीनों में व्याकरण ग्रंथों की रचनाएं हुई हैं ।

कात्यायन या कच्चायन, भोग्गलान और अग्गवंस तीनों संस्कृत के प्रभाव से मुक्त नहीं किन्तु प्रतिपाद्य की ध्वनि से अधूरे हैं । इसी क्रम में आपकी - जानकारी के लिए तीनों का संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है । कच्चायन या कात्यायन का रचनाकाल 8वीं या 9वीं सदी के बीच का कोई समय है । कुछ लोग इन्हें ही संस्कृत वैयाकरण कात्यायन समझने के भ्रम में पड़ जाते हैं अत: इनका पालि नाम कच्चायन ही लोकप्रिय है । इन्होंने कच्चायन व्याकरण लिखा लेकिन उसमें पालि और संस्कृत के ऐतिहासिक संबंधों पर नजर नहीं डालीं इनके व्याकरण पर कई टीकाएं रची गई जिनमें प्रसिद्धि मिली विमलमुनि की टीका न्यास को ।

योग्गलान का रचनाकाल 12वीं सदी माना गया है । ये योग्गलायन नाम से भी जाते हैं । इनके द्वारा रचित टीका भी खुद इन्होंने योग्गलायन पंचिका के नाम से लिखी । इनके ग्रंथ की कुछ सीमाएँ है फिर भी यह काच्चायन से प्रमाणिक और पूर्ण है । अपने ग्रंथ की रचना के लिए इन्होंने पाणिनि एवं चन्द्रगोमिन के व्याकरण को आधार बनाया है । कुछ अप्रसद्धि पालि व्याकरण गन्थों से भी इन्होंने मदद ली है । इनके व्याकरण पर लिखी गई टीकाओं में पियदस्सिन की पादसाधन और राहुल की योगगल्लायन पंचिका पदीय प्रसिद्ध हैं ।

अग्गवंस का समय 12वीं सदी है । ये ब्रहमदेश के रहने वाले थे । इन्होंने सिद्धनीति नामक व्याकरण ग्रंथ लिखा । अग्गवंस की शाखा का प्रचार-प्रसार लंका तक हुआ । कच्चायन से गंभीर रूप में प्रभावित होने के कारण वैयाकरणाचार्य इनकी शाखा को स्वतंत्र न मान कच्चायन की ही अनुगामी मान उन्हीं के भीतर स्थान देते हैं ।

6.4.9 प्राकृत

संस्कृत व्याकरण की पद्धति पर लिखी गई प्राकृत व्याकरण की पुस्तकों का संबंध जीवित प्राकृत से उतना अधिक नहीं रहा जितना संस्कृत नाटकों के प्राकृत अंशों से रहा । प्राकृत वैयाकरणों की दो शाखाएं प्रतीच्य और प्राच्य हैं ।

प्रचीत्य शाखा:

प्रतीच्य शाखा को वाल्मीकि शाखा भी कहा जाता है । वह इसलिए कि इसके रचयिता वाल्मीकि थे । प्रचीत्य शाखा के सूत्रों की त्रिविक्रम की टीका सुप्रसिद्ध है जिसे प्राकृत व्याकरण कहा जाता है । 'शब्द भाषा चन्द्रिका नामक लक्ष्मीधर की टीका भी है ।

प्रचीत्य शाखा का प्रसिद्ध ग्रंथ 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन' है जिसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र हैं । सात अध्यायों में संस्कृत व्याकरण की चर्चा है । आठवें अध्याय में विस्तार से प्राकृतों पर विचार किया गया है । पुरानी शैली पर हेमचन्द्र ने अपने सूत्रों का गठन किया है ।

प्राच्य शाखा:

प्राकृत भाषा का सबसे पुराना व्याकरण ग्रंथ वररूचि कृत 'प्राकृत प्रकाश' है । वररूचि इस शाखा के सुप्रसिद्ध आचार्य हैं । प्रथम नौ अध्यायों में संस्कृत की तर्ज पर मराठी प्राकृत की विस्तृत चर्चा है । 10, 11, व 12 वें अध्याय में क्रमश: पैशाची, मागधी, शौरसेनी का वर्णन है । तीसरी सदी में लिखित 'प्राकृत मंजरी' कात्यायन की सबसे प्राचीन टीका है । इसके अलावा अन्य रचनाओं में लंकेश्वर की 'प्राकृत कामधेनु' वसंतराज की 'प्राकृत संजीवनी' तथा उड़िसा निवासी मार्कडेण्य की 'प्राकृत सर्वस्व' है ।

प्रसिद्ध वैयाकरणों के अलावा अन्य क्षेत्र के विद्‌वानों, चिंतकों, मीमांसकों, साहित्य रसिकों ने भाषा संबंधी अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है । उदाहरण के रूप में भाषा के अर्थ के संबंध में मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन कुछ नैयायिकों ने प्रस्तुत किया । जगदीश तर्कालंकार का शब्द प्रकाशिका ग्रंथ इस विषय में उल्लेखनीय है । तो दूसरी ओर भारतीय काव्य शास्त्र की समृद्ध परंपरा में आचार्य आनन्दवर्धन, आचार्य विश्वनाथ, आचार्य मम्मट आदि कई साहित्यशास्त्री-आचार्यो ने साहित्य और भाषा के अन्तःसबंध का सुरूचिपूर्ण पद्धति से उद्‌घाटन किया । कुछ मीमांसकों ने शब्द, वाक्य, शब्दार्थ आदि पर गहन अध्ययन करके कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं । वेदान्तियों ने अपनी रचनाओं में भाषा विषयक अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में भारत में कई ऐसे प्रतिभा के धनी व्याकरण विशेषज्ञ हुए जिन्होंने अपनी बौद्धिक प्रतिभा से भाषा व्यवस्था संबंधी अपना विशिष्ट अध्ययन प्रस्तुत किया । वैसे तो सभी का अपना महत्व है लेकिन पाणिनि जैसे वैयाकरण ने विश्व के सामने भारत के भाषा संबंधी अध्ययन की महत्ता एवं विशेषता को अपनी वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से प्रस्तुत किया जिसे पहले भी स्वीकारा गया और आज भी उसे अधिक आदर के साथ याद और स्वीकार किया जाता है ।

6.5 आधुनिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

आपने ऊपर पढ़ा और समझा कि भारत में भाषा संबंधी चिंतन अध्ययन कितना प्राचीन है । जिसे आज भाषा विज्ञान कहा जाता है उसका वास्तविक अध्ययन उन्नीसवीं सदी से शुरू होता है और वह भी पश्चिमी विद्‌वानों के द्‌वारा, अत: आधुनिक भाषा विज्ञान के अध्ययन की चर्चा में भारतीय भाषा वैज्ञानिकों के साथ उन भाषा वैज्ञानिकों के विषय में जानना आवश्य है जिन्होंने विदेशी होते हुए भी भारतीय भाषाओं पर कार्य किया है ।

6.5.1 कॉडवेल

इनका समय 1814 से 1891 है । 1846 में 'द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' नाम से उनके द्रविड़ परिवार के भाषा संबंधी किये गये अध्ययन का ग्रंथ रूप में प्रकाशन हुआ ।

6.5.2 केलॉग

हिन्दी व्याकरण को प्रथम सुव्यवस्थित एवं विस्तार से लिखने का श्रेय इन्हें मिलता है । वैसे तो न्यूयार्क से भारत में धर्म प्रचार के लिये आये थे । अध्यापन कार्य इलाहाबाद के थियोलोजिकल ट्रेनिंग स्कूल में किया । व्याकरण ग्रंथ के अलावा उन्होंने अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं जैसे 'लाइट ऑफ एशिया, लाइट ऑफ द वर्ल्ड' । हिन्दी में ये प्रथम व्याकरण ग्रंथ लिखने वाले विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध हुए । अपने इस व्याकरण ग्रंथ में इन्होंने शब्द, ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ जैसे भाषिक तत्वों पर प्रकाश डाला है । साथ ही हिन्दी बोलियों के रूपों की चर्चा की है जैसे मारवाड़ी, जयपुरी, हाडौती, कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली,. कन्नौजी, बैसवाडी, भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि के रूपों का अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

6.5.3 जॉन बीम्स

भारतीय आर्य भाषाओं पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले बीम्स पेशे से इंडियन सिविल सर्विस में आये थे । बंगाल, पंजाब, बिहार, उडीसा, में ये मजिस्ट्रेट, कलेक्टर पद पर कार्यरत रहे । विशेष बात यह है कि प्रशासन के क्षेत्र में कार्य करते हुए भी भाषा अध्ययन के प्रति बाल्यावस्था से रूचि ने भारतीय आर्यभाषाओं के तुलनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित किया । Comparative Grammer of the Modern Aryan Language of India तीन भागों में प्रकाशित हुआ। भारतीय आर्यभाषाओं के तुलनात्मक विकास पर यह प्रथम कार्य है । अभी तक ऐसा कार्य नहीं हुआ है । 125 पन्नों में लिखे इस ग्रंथ की भूमिका भारतीय भाषाओं के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालती है । इस ग्रंथ में हिन्दी, पंजाबी, सिंधी, मराठी, गुजराती, बंगला, उड़िया की ध्वनियों, संज्ञा सर्वनाम, विशेषण एवं क्रियारूपों की संस्कृत के साथ तुलना प्रस्तुत की गई है ।

6.5.4 हॉर्नले

जर्मन पादरी की संतान के रूप में सिकंदरा आगरा(भारत) में जन्मे हार्नले ने अपनी शिक्षा जर्मनी तथा इंग्लैण्ड में ली । इसके पश्चात बनारस के जयनारायण मिशनरी कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में काम किया । रॉयल एशियाटिक सोसाएटी के अध्यक्ष भी रहे तथा उसके जर्नल के संपादक भी बने । रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के जर्नल में इनका पहला भाषा विज्ञान संबंधी निबंध प्रकाशित हुआ । यह निबंध गौड़ीय भाषा समुदाय से सम्बद्ध था । उन्होंने अपने भाषाविज्ञान के ग्रंथ 'A comparative Grammer of the Gaudian Languages'' में आधुनिक आर्य भाषाओं का तुलनात्मक दृष्टिकोण से किया गया अध्ययन भी प्रस्तुत किया । हिन्दी क्रियाओं में लिंग परिवर्तन संबंधी नियम, विभिन्न रूपों का विकास भाषायी मानचित्र तथा लिपियों के विकास का चित्र भी दिये हैं । हिन्दी धातुओं का. संग्रह, इतिहास एवं वर्गीकरण संबंधी विस्तृत चर्चा एक अन्य निबंध में की । हार्नले ने ग्रियर्सन के साथ बिहारी भाषाओं का तुलनात्मक कोष तथा बीम्स के साथ 'पृथ्वीराज रासो' के आदि पर्व का संपादन किया । प्राचीन लिपियों के विकास पर भी काम किया । इस प्रकार देखा जा सकता है

कि भारतीय भाषाओं का इस विदेशी विद्वान ने कितनी लगन और गहराई से अध्ययन किया है।

6.5.5 ग्रियर्सन

भारत की भाषाओं एवं बोलियों का सर्वेक्षण प्रस्तुत करने वाले प्रथम भाषा वैज्ञानिक के रूप में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन का नाम लिया जाता है । सर्वप्रथम "Seven Grammars of the Dialects and subdialects of Bihari Language" ग्रंथ प्रकाशित हुआ । बाद में "Linguistic survey of India" नाम से 11 बड़ी-बड़ी जिल्दों में भारतीय भाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों, उपबोलियों का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया । वस्तुत: भारत जैसे बहुभाषी देश के भाषा-वैविध्य को भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समझने के लिए यह सर्वेक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है । भाषा एवं बोलियों का सीमा निर्धारण कार्य आसान नहीं होता है । इतना विस्तृत कार्य एक आदमी से संभव भी नहीं है । ग्रियर्सन ने अन्य लोगों की सहायता लेकर इस कार्य को पूर्ण किया । ऐसा नहीं कि इस कार्य की सीमाएँ नहीं हैं, अवश्य है परन्तु साथ में यह भी सच है कि-कुछ अपवादों को छोडकर आज भी यह ग्रंथ प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में मान्य है । ग्रियर्सन ने संस्कृत, प्राकृत, आधुनिक भाषाओं एवं लिपियों पर करीबन 200 खोजपूर्ण एवं वैज्ञानिक लेख लिखे हैं । हॉर्नले के साथ 'बिहारी का तुलनात्मक कोष' का महत्वपूर्ण कार्य किया इसके अलावा पिशाच लैंग्विज, मॅन्युअल ऑफ कश्मीरी लैंग्विज, कश्मीरी कोश आदि पर भी अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

6.5.6 डॉ. ट्रम्प

ट्रम्प संस्कृत, प्राकृत सिंधी, एवं पश्तो भाषा के जानकार थे । इन्होंने Grammer of the Sindhi Language Compared with the Sanskrit and Prakrit the congnate Indian Vernaculars नामक सिंधी व्याकरण संबंधी ग्रंथ प्रकाशित किया । तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय भाषाओं के साथ सिंधी भाषाओं के व्याकरण का अध्ययन इसमें है । पश्तो का व्याकरण भी ट्रम्प ने लिखा है ।

6.5.7 डॉ. सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर

मध्य भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व के विद्वान् के रूप में ख्यातिप्राप्त भंडारकर ऐसे प्रथम भारतीय हैं जिन्होंने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में कार्य किया और भारतीय आर्य भाषाओं का सम्यक् अध्ययन किया । भंडारकर प्राचीन भारतीय भाषा विज्ञान के साथ नवीन यूरोपीय भाषा विज्ञान को जोड़कर भारतीय भाषाओं का अध्ययन करनेवाले विद्वान् थे । अत: उनका काम लोगों को अधिक वैज्ञानिक एवं मौलिक होने के कारण पसंद आया । बम्बई विश्वविद्यालय में उन्होंने जो सात व्याख्यान दिये थे, वे बाद में पुस्तक रूप में Wilson philological Lectures शीर्षक से प्रकाशित हुए । सात अध्यायों में क्रमश: भाषाओं के विकास संबंधी सामान्य नियम देते हुए संस्कृत के विकास की विभिन्न अवस्थाएं, पाली तथा उस समय की बोलियों का विवेचन, प्राकृत अपभ्रंश तथा उत्तर भारतीय आधुनिक भाषाओं की ध्वनि, आधुनिक

भाषाओं में पाये जाने वाले प्राचीन तथा नवीन रूपों का विवेचन, प्राचीन मध्य तथा आधुनिक आर्य भाषाओं का संबंध आदि का विश्लेषण किया गया । आधुनिक भारतीय भाषावैज्ञानिकों में भंडारकर का नाम मील के पत्थर के समान है ।

6.5.8 रेल्फ लिले टर्नर

भारतीय आर्य भाषा का प्रथम वैज्ञानिक निरूक्त कोश माने जाने वाले ग्रंथ 'नेपाली कोश' के निर्माता टर्नर थे । नेपाली शब्दों की व्युत्पत्तियाँ देने के साथ भारतीय भाषाओं के शब्दों की तुलना भी दी है । कहीं कहीं यूरोपीय शब्दों की तुलना भी दी है । 212 भाषाओं को आधार बनाया गया है । इसके अलावा मराठी स्वराघात, गुजराती, ध्वनि एवं सिंधी पर भी उनका कार्य है ।

6.5.9 जूल ब्लॉक

जूल ब्लॉक ने ध्वनि और रूप विवेचन के साथ भारतीय भाषा के वैज्ञानिक इतिहास एवं उसकी बनावट के पूर्ण विवेचन के साथ 'मराठी की बनावट' नामक ग्रंथ की रचना की । द्रविड़, तथा द्रविड़ों एवं आर्यों के पूर्व के भारतीयों की भाषा के संबंध में भी कार्य किया है ।

6.5.10 ओझा गौरीशंकर हीराचंद

ओझाजी ने भाषा शास्त्रीय एवं लिपि विषयक अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी जैसे प्राचीन लिपि माला, भारतीय प्राचीन लिपि माला, अशोक की धर्म लिपियाँ आदि । इनमें 'प्राचीन लिपि माला' अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त ग्रंथ है । ब्राह्मी, खरोष्ठी, गुप्त, कुटिल, नागरी, शारदा, बंगला, पश्चिमी, मध्यदेशी, तेलुगु, कन्नड, तमिल आदि लिपियों की उत्पत्ति एवं विकास सम्बन्धी अध्ययन प्रस्तुत किया है । गौरीशंकर भारतीय इतिहास, पुरातत्व, प्राचीन लिपि एवं अनेक भाषाओं के विद्वान् थे उन्होंने उदयपुर के राजकीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष के रूप में तथा बाद में अजमेर के राजपूताना म्यूजियम के क्यूरेटर पद पर सेवाएँ दी ।

6.5.11 कामता प्रसाद गुरू

केलॉग ने हिन्दी व्याकरण का प्रथम ग्रंथ अवश्य लिखा पर एक भारतीय द्वारा हिन्दी भाषा का प्रथम व्याकरण ग्रंथ लिखने का श्रेय कामताप्रसाद गुरू को जाता है । मूलत: ये संस्कृत के विद्वान् थे हिन्दी भाषा का अध्ययन-विश्लेषण उनका कार्य क्षेत्र रहा । हिन्दी भाषा का अत्यन्त गहराई से विश्लेषण उनकी पुस्तक 'हिन्दी-व्याकरण' में देखने को मिलता है ।

6.6 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.	प्रातिशाख्य	-	प्रतिशाखा के अनुसार वेदों का ध्वनि संबंधी अध्ययन। शाब्दिक अर्थ प्रतिशाखा से बना ।
2.	निघण्टु	-	जनभाषा के बढ़ते प्रभाव से वैदिक भाषा के अर्थ को सुरक्षित रखने और उसे लोगों तक पहुचाने के लिये बनाया गया वैदिक कोश।

3.	वार्तिक	-	पाणिनि के अष्टाध्यायी के पूरक ग्रंथ । अष्टाध्यायी में लिखित सही गलत के विश्लेषण ग्रंथ ।
4.	तात्विक	-	तत्व अथवा मूल संबंधी, वास्तविक ।
5.	व्युत्पत्ति	-	उद्‌गम स्थान, शब्द का वह मूल रूप जिससे वह निकला या बना हो ।
6.	आधारशिला	-	नींव या बुनियाद
7.	मील का पत्थर	-	रास्तों पर दूरी नापने के लिए लगाये गये संख्या अंकित पत्थर। भाषा में किसी व्यक्ति अथवा उसके कार्यो की श्रेष्ठता सूचक मुहावरे के रूप में प्रयुक्त ।
8.	निरूक्त	-	निघण्टु(वैदिक कोश) में संकलित प्रत्येक शब्द की बनावट और उससे निष्पन्न अर्थ पर विचार करने वाला ग्रंथ ।
9.	यादृच्छिक	-	जैसी इच्छा हो, या माना हुआ
10.	तर्ज	-	धुन, लय, या माना हुआ
11.	बोधगम्यता	-	सरलता, आसानी से समझ में आने लायक
12.	प्रकीर्ण	-	प्रकरण, अध्याय
13.	शब्दानुशासन	-	शब्दों पर नियंत्रण रखना, व्याकरण
14.	जनभाषा	-	मानक भाषा के समानान्तर जनता के बीच बोली जाने वाली लोकप्रिय भाषा जैसे संस्कृत के समय पालि, प्राकृत और अपभ्रंश थी ।
15.	पदपाठ	-	वैदिक संहिताओं को पदरूप में सुरक्षित रखने का उपक्रम

6.7 सारांश

इस प्रकार देखा जा सकता है कि भाषा संबंधी भारतीय परम्परा वैदिककाल से लेकर उन्नीसवी सदी तक और उसी के विकसित रूप में आज भी है । भाषा विज्ञान संबंधी भारतीय परंपरा को एक तरफ प्राचीन संस्कृत भाषा में हुए कार्यो ने सुदृढ़ आधार प्रदान किया ब्राह्मण-आरण्यक ग्रंथ तक तो ठीक है, परन्तु पदपाठ, प्रातिशाख्य, शिक्षा जैसे अध्ययनों में आधुनिक काल जैसी सुविधाएँ उपलब्ध न होने के बावजूद ध्वनि, रूप संबंधी भाषा व्यवस्था का एक अनुशासन के साथ, एक विशिष्ट पद्धति के साथ अध्ययन हुआ जिसका आज भी कोई सानी नहीं है । तो दूसरी ओर संस्कृत परंपरा में आचार्य यास्क जैसे भाषा के समर्थ विद्‌वान ने शब्दों के अर्थ तथा व्युत्पत्ति संबंधी महत्वपूर्ण कार्य को अंजाम दिया । शब्दों के अर्थ की खोज, उसकी सुरक्षा, कोश निर्माण की शुरूआत वहीं से मानी जाती है । उनका निघण्टु शब्दकोश का पर्याय बन गया तो निरूक्त भाषा में शब्द मूल तक जाकर अर्थ की स्पष्टता करने की प्रविधि एवं प्रक्रिया की मिसाल बना । धातु सिद्धांत की शुरूआत या बीज इसे कहा जा सकता है ।

केवल भारत में ही नहीं विश्व में उस समय भी और आज भी जिसका लोहा ले सके ऐसा तार्किक, वैज्ञानिक, सटीक भाषा संबंधी कार्य का भी कोई जवाब नहीं है । पाणिनि की अष्टाध्यायी ने भारतीय भाषा विज्ञान संबंधी अध्ययन को न केवल सुदृढ़ पीठिका प्रदान की वरन् भारत के भाषा विज्ञान संबंधी ज्ञान एवं कार्य को विश्व के समक्ष उजागर किया दूसरी ओर अष्टाध्यायी के उपरान्त वैसा कार्य होने की गुंजाइश न रह पाने के कारण अष्टाध्यायी के सिद्धांतों को सरल, सुबोध बनाकर लोक भोग्य बनाने के क्रम में टीका एवं कौमुदीकारों की व्यवस्थित, परंपरा का सूत्रपात हुआ जिसमें भर्तृहरि, कय्यट जैसे टीकाकार तथा विमल सरस्वती, रामचन्द्र भट्टाजि दीक्षित जैसे प्रसिद्ध कौमुदीकार मिले । वार्तिक, टीकाएँ, कौमुदियों के माध्यम से भाषा-विज्ञान संबंधी भारतीय परंपरा एक नयी ऊँचाई का स्पर्श करती है ।

भाषा परिवर्तनशील होती है, अत: वैदिक, लौकिक संस्कृत के उपरान्त जन भाषा जो समानान्तर रूप से चल रही थी । भाषा की दृष्टि से उनके बढ़ रहे अन्तर को पाटने का कार्य कुछ विद्वानों ने प्राकृत भाषा में व्याकरण एवं भाषा संबंधी कार्य करके किया । पाणिनि से इतर जो शाखा रूप में व्याकरणिक या भाषा संबंधी कार्य हुआ वह जनभाषा को ध्यान में रखकर हुआ है । चन्द्रशाखा, जैनेन्द्र शाखा, हेमचन्द्र शाखा, बोपदेव शाखा इसके अच्छे उदाहरण है तो प्राच्य-प्रतीच्य शाखा के रूप में भी प्राकृत में यह कार्य हुआ ।

भाषा विज्ञान की भारतीय परंपरा में जहाँ एक ओर संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में रचित भाषा व्यवस्था संबंधी अध्ययन करने वाले ग्रंथ हैं वहीं आधुनिक काल में विश्व में हो रहे परिवर्तन एवं पारस्परिक आदान प्रदान के बढ़ते अवसर के कारण दुनिया के भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में हुए और हो रहे कार्यो से लोग एक दूसरे के परिचय में आये और भारत में विदेशी भाषा वैज्ञानिकों से भारतीय विद्वानों ने विदेशी भाषा वैज्ञानिक कार्यो-पद्धतियों से परिचित होकर भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक, वर्णनात्मक एवं सैद्धान्तिक पद्धति से कार्य किया । भारत जैसे बहुभाषिक एवं भौगोलिक दृष्टि से भाषा वैविध्य रखने वाले देश में भाषा विज्ञान संबंधी क्षेत्र में कार्य की अनेक संभावनाएँ आधुनिक काल में विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों के द्वारा हुए कार्य से हमारे सामने आती है । कॉल्डवेल, ट्रम्प, बीम्स, हार्नले, ग्रियर्सन, टर्नर, ब्लॉक एक ओर तो दूसरी ओर सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, कामताप्रसाद गुरू, गौरीशंकर ओझा, बाबूराम सक्सेना, उदयनारायण तिवारी, पं. किशोरीदास वाजपेयी, धीरेन्द्र वर्मा, सुनीति कुमार चैटर्जी, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डी. भोलानाथ तिवारी आदि कई विद्वानों की एक लम्बी परंपरा के रूप में यह कार्य चलता रहा ।

कुल मिलाकर भारत में भाषा विज्ञान की परंपरा को - (1) शास्त्रीय धारा जो भारतीय अध्ययन की संस्कृत भाषा में निर्मित ग्रंथों की धारा है तथा दूसरी फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका तथा (2) रूस जैसे विदेशी भाषा अध्ययन पद्धति से पुष्ट आधुनिक भाषा विज्ञान अध्ययन की परंपरा ऐसे दो भागों में विभक्त कर सकते हैं पर ध्यान रहे कि ये दोनों परस्पर पूरक बनकर भारतीय भाषा विज्ञान के अध्ययन को सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं तथा भाषा विज्ञान संबंधी अध्ययन के नये आयामों को उजागर करती हैं ।

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. संस्कृत भाषा में हुए भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का परिचय दीजिये ।
2. आचार्य यास्क एवं निरूक्त की विशेषताएं बतलाइये ।
3. मुनित्रय किसे कहा जाता है? स्पष्ट करते हुए मुनित्रय के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन पर प्रकाश डालिये ।
4. पाणिनि की अष्टाध्यायी की विशेषताएं बतलाइये ।
5. शाखा संप्रदायों की विभिन्न शाखाओं को गिनाइये ।
6. पालि एवं प्राकृत भाषा में हुए भाषा अध्ययन संबंधी कार्य का परिचय दीजिये ।
7. विदेशी विद्वानों द्वारा भारतीय आर्य भाषाओं पर किये गये कार्य पर प्रकाश डालिये ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

टिप्पणियाँ लिखिए

1. प्रातिशाख्य
2. शिक्षा
3. निघण्टु और निरूक्त
4. अष्टाध्यायी की विशेषताएं
5. टीकाकार एवं कौमुदीकार
6. वार्तिक
7. हॉर्नले
8. ग्रियर्सन
9. डॉ. सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर

ग. एक या दो शब्दों में उत्तर दीजिये:

1. प्रातिशाख्य का मुख्य कार्य क्या था?
2. पदपाठ का अर्थ बताइये ।
3. मुनित्रय के दो मुनियों के नाम लिखिये ।
4. कच्चायन को और किस नाम से जाना जाता है?
5. 'शब्दानुशासन चन्द्रिका' के टीकाकार कौन थे?
6. वाक्यपदीप के रचयिता का नाम लिखिए ।
7. डी.ट्रम्प किन किन भाषाओं के जानकार थे?
8. जिनेन्द्र बुद्धि ने कौन कौन सी टीकाएँ लिखीं?
9. शाकटायन शाखा के किन्हीं दो वैयाकरणों के नाम लिखिए ।
10. अष्टाध्यायी में कुल कितने सूत्र हैं?

घ सही उत्तर पर निशान लगाएं-

क. 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन' प्रतीच्य शाखा का ग्रंथ है ।

ख. वररूचि के ग्रंथ में मागधी प्राकृत की चर्चा है ।

ग. शिक्षाग्रंथों में अर्थ विज्ञान पर विचार किया गया है ।

घ. यास्क ने शब्द की श्रेष्ठता के दो कारण बताए ।

ङ. महाभाष्य में सात अध्याय हैं ।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क. हरदत्त ने .... टीका लिखी ।

ख. .... ने लघु मध्य और सार नाम से सिद्धांत कौमुदी के संक्षिप्त संस्करण लिखे ।

ग. निरूक्त .... की व्याख्या है ।

घ. द्रविड़ भाषाओं में तुलनात्मक व्याकरण .... रचना है ।

ङ. आपिशालि ने .... के लिए जमीन तैयार की ।

6.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान, किताब महल इलाहाबाद, 1997
2. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा; भाषा विज्ञान की भूमिका, अनुपम प्रकाशन, पटना; 2001
3. कैलाशचन्द्र भाटिया; एवं मोतीलाल चतुर्वेदी; हिन्दी भाषाःविकास और स्वरूप, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2004
4. उदयनारायण तिवारी; हिन्दी भाषा उद्भव एवं विकास, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1979
5. डॉ. हरदेव बाहरी; हिन्दी उद्भव ओर विकास, लोकभारती, इलाहाबाद
6. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा; हिन्दी भाषा का विकास,, अनुपम प्रकाशन, पटना, 2001
7. Language-Leonard Bloomfield London 1993
8. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी अकादमी. इलाहाबाद

इकाई-7 भाषा विज्ञान के अध्ययन की पाश्चात्य परम्परा

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 भाषा परिवार
7.3 प्रमुख पाश्चात्य भाषाविद
7.4 पाश्चात्य भाषा विज्ञान की परंपरा व विकास
7.4.1 यूनान काल
7.4.2 मध्य काल
7.4.3 आधुनिक काल
7.5 भाषा विज्ञान के अध्ययन की प्रमुख पाश्चात्य पद्धति : संरचनात्मक भाषा विज्ञान
7.5.1 फर्दिनाद द सस्युर (1857-1913)
7.5.2 लियोनार्ड ब्लूमफील्ड (1887-1949)
7.6 टैग्मीमिक्स और सिस्टिमिक व्याकरण
7.7 चॉम्स्की के भाषा-सिद्धांत
7.8 विचार संदर्भ / शब्दावली
7.9 सारांश
7.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
7.11 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- भाषाओं के वर्गीकरण के आधारों को समझ सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन की पाश्चात्य परम्परा को जानने से पूर्व प्रमुख पाश्चात्य भाषाविद् की जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे ।
- पाश्चात्य भाषा विज्ञान के क्षेत्र में 'फर्दिनांद द सस्यूर' और ब्लूमफील्ड के योगदान को रेखांकित कर सकेंगे ।
- संरचनात्मक भाषा विज्ञान में विश्लेषण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

हम सभी जानते हैं कि भाषा विज्ञान व्याकरण की तुलना में एक व्यवस्थित अध्ययन क्षेत्र है । भाषा विज्ञान भाषाओं के अध्ययन व वर्णन के लिए एक व्यवस्थित आधार प्रदान करता है जिससे संसार की भाषाओं का समान रूप से व्याकरण तैयार हो सकता है । एक विज्ञान के रूप में भाषा विज्ञान का आविर्भाव आधुनिक काल में ही हुआ हैं और वह भी विशेषकर 19वीं सदी में । आधुनिक युग में एक-दूसरे देशों व समुदायों का सम्पर्क होने से भाषाएं जानने व सीखने के अवसर बढ़े फलस्वरूप तुलनात्मक व ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का

प्रारंभ हुआ । आधुनिक भाषाओं के व्याकरण लिखने की कोई परंपरा न होने के कारण पुरानी भाषाओं के व्याकरण को आधार बनाने के कारण वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का रूप सामने आया । पाश्चात्य भाषा विज्ञान के अध्ययन में तुलनात्मक ऐतिहासिक व वर्णानात्मक के अतिरिक्त भाषाविद् ब्लूमफील्ड ने संरचनात्मक भाषा विज्ञान के संदर्भ में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की । भाषा विज्ञान की पाश्चात्य परंपरा के अंतर्गत ग्रीककाल से लेकर आधुनिक काल तक में प्रमुख भाषाविदों व उनके नियमों, सिद्धांतों की जानकारी इस इकाई में दी जा रही है ।

7.2 भाषा परिवार

जब भारत की राजधानी कलकत्ता थी तब वहाँ उच्चतम न्यायालयों में सन् 1783 में न्यायाधीश सर विलियम जोन्स ने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया । उन्होंने देखा कि संस्कृत, लैटिन, व ग्रीक भाषा में ध्वनि, शब्दावली और रूपरचना की दृष्टि से बहुत समानता है जिसके आधार पर यह सोचा जा सकता है कि ये तीनों भाषाएँ किसी ने किस रूप में सम्बन्धित हैं यही सोच भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार बनी ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि प्रारंभ में यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत के अध्ययन के आधार पर अनुभव किया कि संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं में ध्वनि रूप, शब्द, वाक्य, रचना, आदि कई भाषिक इकाइयों में कई समान तत्व हैं । विशद अध्ययनों के आधार पर ज्ञात हुआ कि वे सब भाषाएँ एक परिवार की हैं, भगिनी भाषाएँ हैं । भाषाविज्ञान का सूत्रपात हो चुका था । विद्वानों में विश्व की भाषाओं के साम्य तथा संबद्धता के प्रति रूचि जागी और भाषाओं की तुलना के आधार पर भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का कार्य तेजी से बढ़ा । एक परिवार की भाषाओं के आंतरिक परिवर्तनों के कारण अलगाव शुरू होता है और परिवर्तन की निरंतर प्रक्रिया के कारण वे एक-दूसरे से दूर होती जाती हैं । हिन्दी / पैर / ईरानी / पात्र/ , अंग्रेजी foot, संस्कृत / पाद / संबद्ध शब्द हैं । इस अंतर को हम हर भाषा के ऐतिहासिक विकास में देख सकते है जैसे-

संस्कृत - कर्म - प्राकृत - कम्म - हिन्दी - काम

विश्व में कई भाषाएं हैं । भाषा-वैज्ञानिक गहन अध्ययन के आधार पर इन्हें चार भाषा-परिवारों में बाँटते हैं जिसे निम्नलिखित आरेख से समझा जा सकता है-

	|– यूरोपीय भाषाएँ	
भारोपीय परिवार	— |	— ईरानी वर्ग
	|– भारत-ईरानी	— दरद (कश्मीरी)
		— भारतीय हिन्दी आर्य भाषाएँ
		— (हिंदी, गुजराती, नेपाली आदि)
द्रविड़ भाषा परिवार	— |– उत्तरी शाखा	— कुड़ख, गोंडी आदि
	|– मध्य शाखा	— तेलुगु
	|– दक्षिणी शाखा	— तमिल, कन्नड, मलयालम,
		— तुक, कोडगु आदि

आस्ट्रिक परिवार	—	खासी, मुंडा, भाषाएँ, (संताली, खड़िया, हो, मुंडारी आदि)
चीनी-तिब्बती परिवार	—	मिजो, नागा भाषाएँ, मणिपुरी, नेवारी आदि ।

हम भाषाओं के संरचना के आधार पर भी वर्गीकृत करते हैं जिसे आकृतिमूलक वर्गीकरण कहा जाता है । इसमें एक परिवार की भाषा की आकृति की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो उस परिवार की सभी भाषाओं में दिखाई देती है । आकृतिमूलक वर्गीकरण को निम्नलिखित आरेख, में स्पष्ट किया गया है-

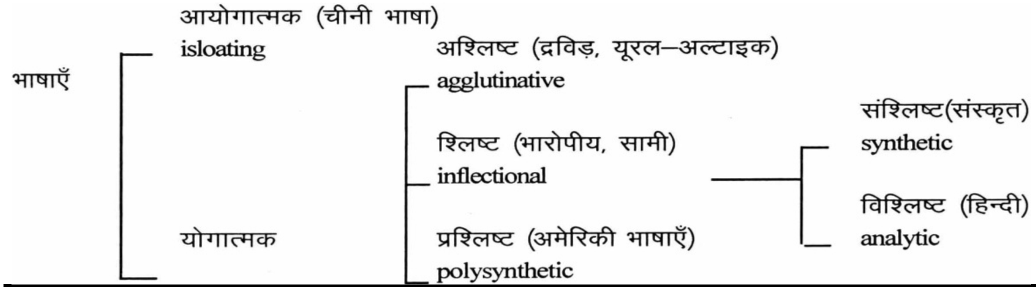

7.3 प्रमुख पाश्चात्य भाषाविद

भाषा विज्ञान का मूल स्वरूप आधुनिक काल में ही तैयार हुआ । इसमें देशी विदेशी भाषाविदों का समान रूप से योगदान हैं । भारत में आज के भाषा विज्ञान की नींव विदेशी विद्वानों ने ही रखी । भाषा विज्ञान के अधयपन के संदर्भ में भारतीय व पाश्चात्य परंपरा व स्वरूप के अलग-अलग अध्ययन की आवश्यकता है । डॉ. अनुप प्रताप सिंह के अनुसार पाश्चात्य परंपरा के अंतर्गत प्रमुख भाषाविद् की गणना इस प्रकार है-

1. **विशप काल्डवेल (1814-1891ई.) -** द्रविड़ परिवार की भाषाओं के अध्ययन में उक्त पादरी पण्डित ने अपना पूरा जीवन इस कार्य में लगा दिया । 1856 ई. में उनका 'द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण प्रकाशित हुआ यह ग्रंथ एक सदी से भी अधिक प्राचीन होने पर भी बहुत उपयोगी हैं अब 1956 ई. में मद्रास विश्वविद्यालय ने इसका नवीन संस्करण निकाला है । भाषा के अध्ययन की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़ा उपयोगी है।

2. **डॉ. हार्नले (जन्म 1841ई.)** - हार्नले की शिक्षा जर्मनी और इंग्लैण्ड में हुई थी । वे 1885 में जयनारायण मिश्नरी कॉलेज, बनारस में प्राध्यापक नियुक्त हुए । 1873ई. में जब वे इंग्लैण्ड गए तो भी अपना गॉडियन व्याकरण लिखते रहे । 1872-73 ई. में उन्होंने अपना प्रथम भाषा वैज्ञानिक निबन्ध (लगभग 100 पृ. का) जो गौड़ीय भाषा-समुदाय से सम्बद्ध था, सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित करवाया । 1880 ई. में उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'A Comparative Grammer of Gaudian Language' प्रकाशित हुआ । इसमें भोजपुरी के व्याकरण के साथ-साथ आधुनिक आर्य भाषाओं की पर्याप्त तुलनात्मक सामग्री दी गयी है । प्राचीन लिपियों के विकास पर भी उन्होंने काम किया ।

3. **जान बीम्स** - इंग्लैण्ड निवासी बीम्स 1857 ई. में इण्डियन सिविल सर्विस में आए और बंगाल में नियुक्त हुए । भारत आने के 10 वर्ष उपरान्त उनका पहला ग्रंथ 'ऐन

आउट लाइन ऑफ इण्डियन फिलालोजी' प्रकाशित हुआ । काल्डवेल से उनको बहुत अधिक प्रेरणा मिली । लगभग 14 वर्ष तक इस विषय पर कार्य करते हुए उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'एन्क्रम्पैरेटिव ग्रामर आफ द मार्डन आर्यन लैंग्वेजेज ऑफ इण्डिया' तीन भागो, (भाग-1-1872 ई. में, भाग-2 1875 में तथा भाग-3 1879 ई. में) प्रकाशित किया । भारतीय आर्य भाषाओं की तुलनात्मक विकास पर यह पहला कार्य है । हिन्दी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उड़िया तथा बंगला की ध्वनियों तथा उनके संज्ञा, सर्वनाम, संख्यावाचक विशेषण तथा क्रिया रूप का संस्कृत से तुलनात्मक विकास दिखलाया गया है ।

4. **डॉ. अर्नेस्ट ट्रम्प** - डॉ. ट्रम्प संस्कृत, प्राकृत, सिंधी तथा पश्तों आदि भाषाओं के विद्वान थे । 1872 में उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'सिंधी व्याकरण (Grammer of the sindhi Language compared with the Sanskrit Prakrit and the cognate Indian Vernaculars) प्रकाशित हुआ, जिसमें संस्कृत, प्राकृत, तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं से भी तुलनात्मक सामग्री दी गयी है ।

5. **सैमुअल एच. केलाग** - न्यूयार्क के वेस्ट हेम्पटन में जन्मे पादरी केलाग भारत में ईसाई धर्म के प्रचारार्थ आए थे । इनका 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' (A Grammer of the Hindi Language) है । ग्रंथ का प्रथम संस्करण 1876 ई. में तथा दूसरा परिवर्द्धित और परिष्कृत संस्करण 1893 में प्रकाशित हुआ । इससे पहली बार हिन्दी का व्याकरण सामने आया । इसका महत्व आज तक बना हुआ है । इसमें लिपि, ध्वनि-व्यवस्था तथा संधि के अतिरिक्त हिन्दी के तत्कालीन परिनिष्ठित रूपों के साथ-साथ मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेरवाड़ी, जयपुरी, हाड़ाती कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली, कनौली वैसवाडी, रीवाडी, भोजपुरी, मगंही, और मैथिली आदि के रूप भी यथास्थान दिये गये है । वाक्य रचना के व्यावहारिक नियम तथा शब्द के विविध रूपों के पर्याप्त उदाहरण दिये गये है । इससे हिन्दी के समग्र रूपों का पता चल जाता है । परवर्ती हिंदी व्याकरणों पर इसकी व्यवस्था का प्रभाव है । कामता प्रसाद गुरू के हिंदी व्याकरण पर संस्कृत व्याकरण के साथ-साथ इसका पर्याप्त प्रभाव है । इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित है ।

6. **रेल्फ लिलेटर्नर** - उनका प्रथम ग्रंथ 1931 ई० में प्रकाशित हुआ । इसमें नेपाली तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द समूह का सर्वप्रथम तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत है । टर्नर ने मराठी, स्वराघात, गुजराती, ध्वनि समूह तथा सिंधी भाषा पर भी कार्य किया है ।

7. **ज्यूल ब्लॉक** - ब्लॉक का 'मराठी-भाषा की बनावट' (La Formation de la Language marathi) नामक ग्रंथ 1919 ई. में प्रकाशित हुआ । उनकी अन्य रचनाएं (1) 'भारतीय आर्य भाषा' (2) 'द्रविड़-भाषाओं का व्याकरणिक गठन' व्यावहारिक एवं व्याकरणिक दृष्टि से उनकी रचनाओं का विशेष महत्त्व है ।

8. **सर जार्ज डॉ. अब्राहम ग्रियर्सन** - ग्रियर्सन साहब का जन्म आयरलैण्ड में हुआ था । उन्होंने भारत में सभी भाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों तथा उपबोलियों का सर्वेक्षण प्रारम्भ किया जो 'Linguistics Survey of India' बड़ी-बड़ी जिल्दों में 1894-1927 में प्रकाशित हुआ । उनका यह ग्रंथ कुछ अपवादों को छोडकर अद्‌वितीय और प्रथम है । संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं और लिपियों पर उनके लगभग 100 खोजपूर्ण तथा वैज्ञानिक लेख प्रकाशित है । उनकी भाषा-विज्ञान संबंधी अन्य मुख्य कृतियां हैं - 'बिहारी का तुलनात्मक कोश' (हार्नले के साथ 1889 अपूर्ण), 'पिशाच लैंग्विज' (1906 ई०) 'ए सैम्युअल ऑर काश्मीरी लैंग्विज' (1911 ई.), काश्मीरी कोश ' (4 खण्डों में 1916-32 ई०)

7.4 पाश्चात्य भाषा विज्ञान की परंपरा व विकास

भाषाविज्ञान के क्षेत्र में भारत की तरह यूरोप तथा अन्य पश्चिमी देशों में भी विस्तार से से कार्य हुआ है । भाषा विज्ञान, के अध्ययन की पाश्चात्य परंपरा को निम्न वर्गो में विभाजित किया जा सकता है:-

7.4.1 यूनान काल

राजनीति, काव्य, दर्शन के साथ-साथ पश्चिमी जगत में भाषा संबंधी अध्ययन भी सर्वप्रथम ग्रीक(यूनान) में प्रारंभ हुआ, जिसे लगभग 469 ई.पू से प्रथम ई.पू. तक माना गया है । सामान्यत: यह माना जाता है कि भाषा-विज्ञान का अध्ययन ग्रीक के शब्द शास्त्र (Philology) के रूप में हुआ । प्राचीन ग्रीक (Phil+Logos) से (Philology) पद बना है । Phil। का अर्थ 'शब्द' तथा Lologs का अर्थ विज्ञान' माना गया है । इस युग में सुकरात, प्लेटो, अरस्तु, थ्रैक्स और कोलुस आदि विद्‌वानों ने भाषा के क्षेत्र में विशद विवेचन किया है । राजनीति विज्ञान का आदि गुरू सुकरात भाषा विज्ञान का भी आदि आचार्य है । सुकरात ने 'शब्द' व 'अर्थ' के सम्बन्ध में अपनी धारणा रखते हुए इनके संबंधों को कल्पित कहा है । प्लेटो ने अपने गुरू की धारणा के विपरीत 'शब्द' व 'अर्थ' के संबंध को प्राकृतिक माना । उन्होंने ग्रीक ध्वनियों को 'सघोष' व 'अघोष' ध्वनियों में विभाजित किया । उनके ग्रंथ 'क्रेटिअस' व 'सेफिस्ट' में भाषा सम्बन्धी आनुषंगिक कार्य किया गया है । अरस्तु ने यूनानी वाङ्मय को बहुत कुछ व्यवस्थित किया । उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'पोलिटिक्स' में भाषा को भावों व विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम स्वीकारा है । उनकी दृष्टि में 'शब्द' व 'अर्थ' में रूढ़गत संबंध है । अरस्तु ने ग्रीक भाषा के संज्ञा, क्रिया कारक लिंग, संबंध सूचक शब्द व मात्रा का अध्ययन किया है । वाक्य का सर्वप्रथम उद्देश्य व विधेय के रूप में विभाजन किया तथा शब्द के साधारण व दुहरे (सार्थकनि+रर्थक दोनों तत्व) दो प्रकार माने है । इस प्रकार अरस्तु ने रूचिपूर्वक अध्ययन प्रस्तुत किया । (दियोनिसिउस थ्रैक्स) तथा (ऐपोलोनिउस दिस कोलुस) ग्रीक भाषा के व्याकरणकार माने गये जिन्होंने सुकरात, प्लेटो व अरसा के सिद्धांतों का प्रतिपादन अपने ग्रंथों में किया ।

इतिहास गवाह है कि जिस गति से ग्रीक का उत्थान हुआ उस गति से पतन भी हुआ । यूनानी सभ्यता के बाद रोमन सभ्यता का उदय हुआ । परिणामस्वरूप ग्रीक भाषा की जगह 'लैटिन भाषा' ने ली । ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार 'लैटिन भाषा' में हुआ । ऐसी स्थिति में विद्वानों ने लैटिन के व्याकरण पर ज्यादा ध्यान दिया । लैटिन भाषा की ध्वनियां, शब्द, अर्थ व उत्पत्ति का अध्ययन हुआ । 15वीं शताब्दी के आसपास लोरेंशसवाल नामक विद्वान ने ग्रीक, लैटिन व हिब्रू यहूदी भाषा के तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा का श्री गणेश किया । उनके द्वारा रचित ग्रंथ 'लैटिनभाषा' का व्याकरण के अनुकरण पर 'बारी' व प्रिस्किन' विद्वानों ने भी व्यावहारिक व सरल व्याकरण ग्रंथ की रचना की ।

7.4.2 मध्य काल

मध्यकाल से पूर्व भाषाविज्ञान के क्षेत्र में मुख्य कार्य सम्पन्न न होकर अनुषंगिक कार्य ही हुए । इस युग में सर्वप्रथम यूरोपीय विद्वानों का ध्यान भाषा के मूल स्रोत की ओर गया । यह युग 18वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है । इस युग में भाषा की उत्पत्ति के संबंध में विविध विचार व्यक्त किये गये हैं सबसे पहले रूसो (1712-1778ई) ने यह मत व्यक्त किया कि भाषा ईश्वर प्रदत्त नहीं है, बल्कि वह मानवकृत है । मानवों ने पारंपरिक विचार-विनिमय के लिए समझौते से भाषा बनायी है । परन्तु इस मत का पर्याप्त विरोध भी हुआ । इसके उपरांत कोंडिलक ने यह मत दिया कि मानवों के भावावेग से उत्पन्न ध्वनियों से भाषा की उत्पत्ति हुई है । विद्वान योहान हर्डर ने भाषा की दैवी उत्पत्ति के मत का खण्डन करते हुए मानव की आवश्यकतानुसार भाषा के निर्माण को प्रमुखता दी । 1974 में 'योनिश' भाषा विद्वान ने आदर्श भाषा के चार गुण बताएं 1. सम्पन्नता 2. सशक्तता 3. स्पष्टता 4. सुश्राव्यता । इनके आधार पर उन्होंने ग्रीक, लैटिन आदि यूरोपीय भाषाओं की तुलना प्रस्तुत की । इसके बाद यूरोप के विद्वानों का ध्यान भाषा के अध्ययन पर विशेष रूप से गया । रूस के विद्वान पी. एस. पिल्लस ने यूरोप व एशिया की विभिन्न भाषाओं के शब्द तुलनात्मक ढंग से अंकित कर 1786 में एक विशद शब्दावली तैयार की । इस प्रकार प्राचीन युग के उत्तरोत्तर विकास की गति इस युग में विद्यमान रही ।

7.4.3 आधुनिक काल

19वीं शती में यूरोप में ज्ञान विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक महान कार्य सम्पन्न हुए । भाषा विज्ञान के संबंध में अध्ययन व अनुसंधान का विकास हुआ और ध्वनि के स्थान पर अक्षर का अस्तित्व सामने आया । आधुनिक युग में तुलनात्मक भाषाविज्ञान के कारण भाषाओं के परस्पर संबंध को समझने का आधार मिला । जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि भाषाओं में अंतर के कारणों की खोज करने के परिणामस्वरूप ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का आविर्भाव हुआ । इस काल के प्रमुख भाषाविद निम्न लिखित है:-

1. **सर विलियम जोन्स** - सर विलियम जोन्स कलकत्ता उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश थे । उनके द्वारा 1786 में स्थापित 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' की

स्थापना के उद्घाटन भाषण में उन्होंने यूरोपीय भाषा विद्वानों को संस्कृत के व्याकरण से परिचय कराया । उन्होंने संस्कृत, ग्रीक व लैटिन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके यह सिद्ध कर दिया कि इनमें कोई मूल अंतर नहीं है ।

2. **रास्मस के. रॉस्क (1787-1832 ई.)** - डेनिश विद्वान रास्क बचपन में ही व्याकरणविद् के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे । उन्होंने आयरलैण्ड की भाषाओं का व्याकरण लिखा- जिसे 'प्राचीन नार्स का व्याकरण' के नाम से जाना जाता है । वास्तव में जैकोब ग्रिम के सिद्धांत का प्रेरणास्रोत रास्क ही थे । साथ ही ऐग्लो सैक्शन व्याकरण की रचना की । उन्होंने अवेस्ता, संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं पीर भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ।

3. **जैकोब ग्रिम (1785-1863 ई.)** - जर्मन विद्वान ग्रिम का 'जर्मन भाषा का व्याकरण' बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है । जो 1819 ई. में प्रकाशित हुआ । भारोपीय भाषाओं के प्रथम परिवर्तन एवं जर्मन भाषाओं में द्वितीय वर्ण-परिवर्तन ग्रिम की बुद्धि की देन है । यही दोनों 'ग्रिम-नियम' के नाम से प्रसिद्ध है । ग्रिम की दृष्टि ऐतिहासिक अधिक रही हे । वे संस्कृत, जर्मन, ग्रीक लैटिन तथा फारसी आदि भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित थे । उन्होंने वाक्य विज्ञान तथा वैज्ञानिक शब्दावली पर भी प्रशंसनीय कार्य किया ।

4. **के.एम. रैप (1836 से 1841 ई.)** - ध्वनि शास्त्र पर चार भागों में पुस्तक लिखकर रैप महोदय ने ध्वनियों का विस्तृत विवेचन किया है । ध्वनि और लिपि के आधार बनाते हुए उन्होंने ध्वन्यात्मक अनुलेखन (जैसा उच्चारण वैसा लेखन) का प्रयोग किया।

5. **आउगुष्ट श्लाइशर (1832-1868 ई.)** - इन्होंने योरोपीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है । वे बहुभाषाविद् थे उन्होंने संसार की भाषाओं का आकृतिमूलक वर्गीकरण किया तथा उनको 3 वर्गो में विभक्त किया है । 1. अयोगात्मक भषाएँ 3. आयोगत्मक अश्लिष्ट भाषाएँ तथा 3. योगात्मक श्लिष्ट भाषाएँ ।

6. **फ्रेडरिक मैक्समूलर** - जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने भाषा विज्ञान पर 1861 ई. में बहुत महत्वपूर्ण व्याख्यान दिये थे- जो कालान्तर में पुस्तक रूप मे प्रकाशित हुए । आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में उनको बड़ी ख्याति मिली । उन्होंने संस्कृत भाषा और नागरी लिपि की महत्ता को प्रतिष्ठापित किया है । उनका अर्थ-विवेचन अपना विशेष महत्त्व रखता है । वेदों पर किया गया उनका कार्य भी सराहनीय है ।

7. **विलियम ड्वाइट ह्विटनी (1827-1894 ई.)** - ह्विटनी साहब संस्कृत के विद्वान ओर अमेरिकावासी थे । 1867 में 'भाषा और भाषा का अध्ययन' 1875 ई. में 'भाषा का जीवन और विकास' तथा 1879 में 'संस्कृत व्याकरण' लिखकर उन्होंने ख्याति अर्जित की । उनका मत है कि 'भाषा एक संस्था है-जिसका विकास धीरे-धीरे होता है ।

8. **कार्ल ब्रुगमान तथा हेरमॉन ओस्टाफ -** 1849- 1919 तक कार्ल ब्रुगमान अनुसंधान कार्य से भाषा-विज्ञान की सेवा करते रहे । उनका विशेष योगदान 'आनुनासिक सिद्धांत' की स्थापना है ।

9. **हेर्मान पाउल (1846 से 1921 ई.)** - पाउल महोदय ने भाषा-विज्ञान की सेवा की । उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है- 'भाषा शास्त्रीय इतिहास के सिद्धांत' यह आज भी भाषा विज्ञान का महान् ग्रंथ बना हुआ है । उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य भाषा विज्ञान के अंतर्गत वाग् शक्ति के सिद्धांतों और दर्शन का स्पष्टीकरण है |

10. **ग्रासमान और बर्नर** - दोनों जर्मन विद्वान थे । दोनों ने जर्मन भाषा में किये गये ध्वनि-परिवर्तन के 'ग्रिम-नियम' के अपवादों को दूर करने का कार्य किया । सबसे पहले ग्रासमान का कार्य सामने आया । कालान्तर में ग्रासमान के कार्य और समाधान शेष रह गए; कुछ अपवादों के समाधान बर्नर ने प्रस्तुत किया दोनों विद्वानों के सुझाए गये नियम समाधान को 'ग्रासमान नियम', 'बर्नर नियम' के नाम से जाना जाता

7.5 भाषा विज्ञान के अध्ययन की प्रमुख पाश्चात्य पद्धति संरचनात्मक भाषा विज्ञान

20वी सदी के प्रारंभ में अमेरिका में संरचनात्मक भाषा विज्ञान के आविर्भाव व व्यापक प्रचार की चर्चा की गई है । जिसमें प्रवर्तक फ्रांस के भाषा वैज्ञानिक सस्युर है और संरचनात्मक भाषा विज्ञान को विश्लेषण के तौर पर रूप देने वाले अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक ब्लूमफील्ड हैं संरचनावाद को आधुनिक युग में वैज्ञानिक अध्ययन का आधार माना जाता है । संरचनात्मक अध्ययन एक व्यवहारवादी मनोविज्ञान और उसी का वर्णन व विश्लेषण करना वैज्ञानिक दृष्टि है । संरचनात्मक भाषा के विज्ञान के दो महान हस्ताक्षर हैं-संस्यूर और ब्लूमफील्ड ।

7.5.1 फर्दिनांद द सस्युर (1857-1913)

सस्युर जेनेवा विश्वविद्यालय में तीन सत्रों में सामान्य भाषाविज्ञान की कक्षाओं में जो व्याख्यान दिये, उन व्याख्यानों के क्लास नोट्स को उनके सहयोगियों और छात्रों ने संगृहीत किया और 1916 में, उनके निधन के बाद पुस्तककार प्रकाशित किया । उस ग्रंथ का नाम था cours de linguistique general. उस ग्रंथ ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति सी ला दी । सस्युर को अपने योगदान के संदर्भ में संरचनावाद का जनक माना जाता है ।

वे ग्रंथ के आरंभ में भाषा विज्ञान के अध्ययन के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए उसके व्यक्तिगत प्रयोग के पक्ष और अभिव्यक्ति प्रयोग के पक्ष पर बल देते है । भाषा स्वत: पूर्ण व्यवस्था है । वह मनुष्य के वाक् व्यवहार का ही एक अंश है ।

इसी संदर्भ में सस्युर वाक् की संकल्पना को प्रस्तुत करते हैं । यद्यपि भाषा का एक व्यक्तिगत पक्ष होता है और एक सामाजिक अनुबंधन का पक्ष, जिसके द्वारा समाज भाषा की व्यवस्था को कायम करता है । भाषा का प्रचलन या उत्पादन सामूहिक होता है । व्यक्ति ही भाषा का उत्पादन या अभिव्यक्ति करता है । अभिव्यक्ति सामूहिक नहीं हो सकती । सस्युर उसी व्यक्तिगत क्षमता को वाक् कहते हैं । सस्युर ने ही सबसे पहले भाषा के समकालिक अध्ययन और ऐतिहासिक क्रम में परिवर्तन आदि को ध्यान में रखते हुए भाषाविज्ञान की दो विशिष्ट शाखाओं का प्रवर्तन किया । 'भाषा की प्रविधि (Mechanisms of Language)

'व्याकरण तथा उसके आ शीर्षक अध्यायों में उन्होंने समकालिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा की संरचना के अध्ययन का विस्तृत विधि विज्ञान प्रस्तुत किया है ।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान शीर्षक भाग में सस्युर ने भाषा परिवर्तन के सादृश्य आदि कारण, भाषा विभेद के भौगोलिक आधार, पूर्व भाषा तथा भाषा पुर्नगठन आदि संकल्पनाओं की चर्चा तो की है । साथ ही ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अध्ययन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण योगदान भी दिया है । एक वृहत् संरचना के दो घटकों को देखते हुए जहां दोनों का अर्थ एक दूसरे पर निर्भर है और कुल मिलाकर संरचना का एक अर्थ भी हैं इसी को सस्युर संरचनात्मक एकात्मक कहते हैं । इस तरह संरचना-घटक की एकात्मकता न केवल शब्दों में, बल्कि भाषा की समस्त संरचनाओं में देखी जा सकती है । प्रतीक विज्ञान का आरंभ सस्युर से माने तो गलत नहीं होगा । वे भाषा विज्ञान को प्रतीक विज्ञान के अंतर्गत रखते हैं । भाषाविज्ञान का संबंध समाजविज्ञान से है । प्रतीक विज्ञान का मनोविज्ञान से लेकिन दोनों विज्ञान कुल मिलाकर अर्थ संप्रेषण की रचना तथा प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं । प्रतीक यादृच्छिक होता हैं अर्थात् ध्वनि-बिंब और प्रत्यय का संबंध यादृच्छिक होता है । प्रत्यय से नया ध्वनि-बिंब अस्तित्व में आ सकता है । ध्वनि-बिंब से नया प्रत्यय सूचित हो सकता है । सस्युर चूंकि पूरी भाषा को प्रतीकों की व्याख्या कहते है । यादृच्छिकता का सिद्धांत समस्त भाषा के परिवर्तनों की व्याख्या में सहायक है । यादृच्छिकता का तात्पर्य व्यवहार में व्यक्ति की स्वच्छंदता नहीं हैं यादृच्छिकता उस सामाजिक बंधन का ही दूसरा नाम है जिससे भाषा सामाजिक वस्तु बनती है । जब कि भाषा में ऐसी यादृच्छिकता नहीं है, बल्कि तार्किक संगति और संगठित व्यवस्था है । इन दोनों के कारण ही भाषा में कई शताब्दी तक भी अधिक परिवर्तन नहीं होता ।

7.5.2 लियोनार्ड ब्लूमफील्ड (187-1949)

ब्लूमफील्ड संरचनात्मक भाषा विज्ञान के प्रर्वतक है । जिन्होंने 1930 से 1960 तक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में कार्य किया है । वे व्यवहारवादी है और उनके अनुसार भाषा समाजोपयोगी व समाजोत्पादक है । ब्लूमफील्ड उन अमेरिकी भाषा वैज्ञानिकों की परंपरा में आते हैं जो नृतत्व विज्ञान को नयी धारा के संदर्भ में अज्ञात संस्कृतियों तथा भाषाओं के अध्ययन के लिए एक नयी पद्धति की खोज में थे । मनोविज्ञान का व्यवहारवाद तथा दर्शन का प्रत्यक्षवाद इस नये अध्ययन का आधार बना । जो प्रत्यक्षत: सामने है उसी को अध्ययन का आधार मानना तथा उसी के संदर्भ में वर्णन प्रस्तुत करना इस पद्धति का लक्ष्य है । इस मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार पर भाषाओं तथा समाज विज्ञान आदि क्षेत्रों में अध्ययन की एक नयी शाखा खुली जिसे संरचनात्मक उपगम कह सकते है । संरचनात्मक अध्ययन प्रत्यक्ष तथ्यों का ही विश्लेषण करता है और प्राप्त सामग्री के आधार पर वर्णन प्रस्तुत करता है ।

ब्लूमफील्ड मानते हैं कि भाषा का व्यवहार हमारे लिए निरीक्षणीय वस्तु है, दृश्यमान या श्रव्यमान है । उनका भाषा विश्लेषण इस आधार पर शुरू होता है कि भाषा मूलत: उच्चरित है, लिखित रूप को भाषा नहीं कह सकते बल्कि वह तो उच्चरित भाषा को दृश्य रूप प्रदान करने का एक तरीका है । इसलिए वे प्रत्यक्ष (उच्चरित) भाषा वस्तु को ही भाषा के अध्ययन का विषय मानते है । सामान्य परिस्थितियों में होने वाला कोई भी वाक् व्यापार भाषा के

अध्ययन का विषय हो सकता है । हम सभी जानते है कि भाषा समाज में विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है । भाषा एक सामाजिक व्यवहार है । यह व्यवहार अन्य व्यवहारों से भिन्न नहीं है । भाषा से अलग व्यवहार भी संप्रेषण में काम आते हैं जैसे आपको प्यास लगी है । आप 'पानी चाहिए' कह सकते हैं या इशारा कर सकते हैं । श्रोता (या द्रष्टा) 'अभी देता हूँ कह सकता है या बिना बोली पानी लाकर दे सकता है । इस तरह यह व्यवहार है और इसका आधार भाषिक है या भाषेतर । हम व्यवहार के रूप में भाषा को देख सकते हैं और अध्ययन कर सकते हैं ।

भाषा के इतर व्यवहारों की तुलना में भाषा व्यवहार की कुछ विशेषताएं है । यहां संकेत उच्चरित ध्वनियों से बने हैं । अर्थात भाषा वैज्ञानिक के लिए निरीक्षण योग्य वस्तु मात्र उच्चरित ध्वनियां है । ध्वनियां प्रेरणा नहीं है बल्कि ध्वनियों से निर्मित उक्तियां संकेत व्यवस्था में सार्थक है । किस तरह ध्वनियों से अर्थ देने वाली उक्तियों का निर्माण होता हैं यह देखना ही भाषा के अध्ययन का लक्ष्य है । मनुष्य सीमित ध्वनियों से अत्यन्त जटिल या अमूर्त विषय पर भी सूक्ष्मता से अर्थ की अभिव्यक्ति करता है । यह भाषा की जटिल व्यवस्था के कारण ही संभव है । यह व्यवस्था ही भाषा विज्ञान है । भाषा वस्तु जगत से अलग होती है । भूख न हो तो भी व्यक्ति 'भूख लगी है कहता है । इस कथन की भी सार्थकता है । भाषा संदर्भ से अलग होती । आप सिर्फ एक श्रोता को ही नहीं, पूरे देश को संबोधित कर सकते हैं । भाषा वास्तविक व्यवहार से अलग हो सकती है । भाषा में चिंतन इसका उदाहरण हैं

भाषा सामाजिक वस्तु हैं । एक भाषा समुदाय के लोग विचारों के संप्रेषण के लिए एक भाषा का प्रयोग करते हैं । अर्थात् सभी व्यक्ति समान ध्वनियों के द्वारा समान अर्थ का संप्रेषण करते है । निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि भाषा समुदाय का हर व्यक्ति उस भाषा का सही प्रतिनिधि होता है ।

ब्लूमफील्ड ने भाषा के भाषिक रूप व संरचना पर विशद अध्ययन किया है । भाषा की परिभाषा स्वरूप व उसकी प्रकृति को चर्चा उनका महत्वपूर्ण योगदान है । उन्होंने भाषा की संरचना या व्यवस्था की चर्चा कर ध्वनियों से लेकर वाक्य तक संरचना का एक अधिक्रम स्थापित किया जिसमें अधिक्रम के स्तर पर भाषिक रूपों से भाषिक संरचनाएं निर्मित है । इसे हम उत्तराधिक्रमीय भाषा विज्ञान कह सकते है । ब्लूमफील्ड ही इस संरचनात्मक भाषाविज्ञान के जनक हैं । अधिक्रम को हम निम्न आरेख से समझ सकते हैं-

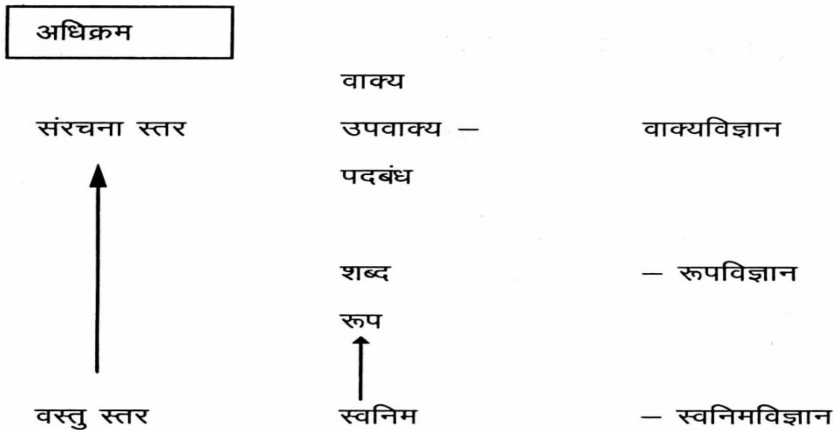

हर स्तर पर संरचना होती हैं अर्थात् वाक्य एक या एक से अधिक उपवाक्यों से निर्मित होता है । यहां वाक्य संरचना है, उपवाक्य घटक । हर उपवाक्य एक या अधिक पदबंधों से निर्मित होता है । यहां उपवाक्यों और पदबंध क्रमश: संरचना और घटक है । इसी तरह रूप से लेकर वाक्य तक संरचना का एक अधिक्रम है ।

उक्त आरेख से स्पष्ट होता है कि स्वन भाषा की आधारवस्तु है । भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'स्वन का अध्ययन उच्चारण, हवा में प्रसरण या श्रवण के आधार पर होता है । " परन्तु भाषा की संरचना की सर्वप्रथम इकाई स्वन को नहीं वरन् स्वनिम को माना गया हैं स्वनिम विज्ञान भाषा की संरचना के अध्ययन का एक पक्ष है जिसमें वाकस्वनों सवनिम नामक अर्थभेदक इकाइयों में व्यवस्थित किया जाता है । लेकिन स्वनिम सार्थक इकाई नहीं है । भाषा की लघुतम इकाई रूप है । रूपिम विज्ञान रूपों को पहचानने, वर्गीकृत करने तथा रूपों से शब्दों से निर्माण का अध्ययन करता है । वाक्य विज्ञान में शब्दों से पदबंध की रचना, पदबंधों से उपवाक्यों की रचना और उपवाक्यों से वाक्यों की रचना का अध्ययन किया जाता है । इस तरह उक्त आरेख में स्वनिम विज्ञान, रूप तथा वाक्य विज्ञान कुल मिलाकर भाषा का व्याकरण कहे जाते हैं । इसे उत्तराधिक्रमीय व्याकरण या भाषावैज्ञानिक व्याकरण कह सकते हैं ।

7.6 टैग्मीमिक्स और सिस्टिमिक व्याकरण

ब्लूमफील्ड के अधिक्रम आरेख सम्बन्धी व्याकरण का सुधार करते हुए अमेरिका के भाषा-वैज्ञानिक पाइक व हैलिडे ने अलग ढंग से व्याकरण की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसे (taxtonomic grammer) 'टेक्स्टोनोमिक' व्याकरण कहा गया ।

1. **टैग्मीमिक्स** - अमेरिकी वैज्ञानिक केनेथ एल. पाइक ने टैगेमीमिक्स नामक उपागम का प्रवर्तन किया । उदाहरण के तौर पर जहां ब्लूमफील्ड उपवाक्य को केवल पदबंध के घटकों में विभाजित करते है, पाइक पदबंधों को उस जगह आने वाले प्रकार्यातमक शब्दों की सूची के साथ सूचित करते हैं । जैसे-

    कर्ता. संज्ञा पदबंध + *कर्म* : संज्ञा पदबंध + *विधेय* : क्रिया पदबंध

2. **सिस्टमिक व्याकरण -** यह भाषा विज्ञान की यूरोपीय शाखा की उपज है । जिसके प्रवर्तक हैलिडे है । हैलिडे मानते है कि भाषा के विश्लेषण में संदर्भ का महत्व है क्योंकि अर्थ संदर्भ का ही प्रकार्य है । इसलिए भाषा अध्ययन में विविध संदर्भो का अध्ययन आवश्यक है और संदर्भो में भाषा के प्रकार्यो को भी अधययन का लक्ष्य बनाया जाना चाहिए । इस संदर्भ में व्याकरण को सिस्टमिक - प्रकार्यात्मक व्याकरण भी कहते हैं । हैलिडे भाषाविज्ञान की यूरोपीय शाखा प्रकार्यात्मक व्याकरण के भी स्तंभ माने जाते हैं ।

7.7 चॉम्स्की

चॉम्स्की, ब्लूमफील्ड भाषा के व्यवहारवादी सिद्धांत का खण्डन करते हुए मनोवादी उपागम पर बल देते है । चॉम्स्की-पोलेंड मूल में अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक है । भाषा की आदत या व्यवहार द्वारा अर्जन के विरोध में चॉम्स्की भाषा की सृजनात्मकता पर अधिक बल देते हैं ।

सृजनात्मकता मन की क्षमता है, जो किन्ही नियमों के अंतर्गत अब तक न सुनी गयी रचनाओं को भी पहचानता है और नये-नये वाक्यों का उत्पादन (निष्पादन) करता है । चॉम्स्की तथा उनके संप्रदाय के विद्वानों का कहना है कि भाषा जन्मजात गुण है जो सिर्फ मानवों की विशेषता है । यह मानव के विकसित मस्तिष्क के कारण है । ब्लूमफील्ड के अनुसार भाषा आदतों का समुच्चय है । चॉम्स्की के अनुसार भाषा सीमित नियमों का समुच्चय है । जिनसे व्यक्ति भाषा के असीमित वाक्यों का उत्पादन करता है । इस कारण भाषा मात्र व्यवहार नहीं, नियमबद्ध व्यवहार है । ये नियम वक्ता तक कैसे पहुंचते हैं ' व्याकरण ग्रंथों से? नहीं । व्यक्ति भाषा सीखने की अपनी जन्मजात प्रवृत्ति के कारण भाषा को सुनता है, भाषा का मन में विश्लेषण करता है ओर भाषा के नियमों को आत्मसात् करता है । इन्हीं मन में अंकित नियमों के आधार पर वह भाषा के सही ओर ग्राह्य वाक्यों का उत्पादन करता है और पहचानता है । नियमबद्ध व्यवहार के रूप में भाषा को देखने के कारण ही हम व्यक्ति की इस सर्जनात्मक शक्ति का स्पष्टीकरण दे पाते हैं । इस दृष्टि से सर्जनात्मकता तथा निष्पादन क्षमता दोनों शब्द समान अर्थ देते हैं ।

चॉम्स्की संप्रदाय के कारण भाषा अर्जन, भाषा दोषों के विश्लेषण आदि क्षेत्रों में भी नये युग का सूत्रपात हुआ। पहले माना जाता था कि व्यक्ति आदत के रूप में व्यवहार द्वारा भाषा सीखता है । इस संप्रदाय ने बच्चों के भाषा अर्जन के संदर्भ में सिद्ध कर दिया कि बच्चे नियमबद्ध व्यवहार के रूप में भाषा सीखते है । हर बच्चे का भाषा सीखने का एक निश्चित क्रम होता है । जैसे पहले एक शब्द, बाद में दो शब्दों के कुछ वाक्य प्रकार आदि, पहले विवृत स्वर, बाद में संवृत स्वर आदि । यह क्रम सार्वभौम होता है । छह साल तक सभी बच्चे अपनी मातृभाषा में दक्ष हो जाते है । भाषा के अर्जन और व्यवहार में जैविक और मानसिक आधार इस संप्रदाय का प्रमुख अभिलक्षण हैं । तीसरा है विश्लेषण की पर्याप्तता । हम यह कैसे मान सकते हैं कोई भी व्याकरण सार्वभौम भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार खरा भी होना चाहिए । चॉम्स्की खुद मानते है कि ऐसा व्याकरण अभी निर्मित होना संभव नहीं है ।

7.8 विचार संदर्भ/शब्दावली

1.	तान	-	स्वर (Tone)
2.	प्रयत्न लाघव	-	उच्चारण की सहजता
3.	सादृश्य	-	समानता
4.	प्रेक्षणीय	-	देखने योग्य
5.	आरेख	-	चित्रांकन, रेखांकन
6.	भारोपीय	-	भारत व यूरोप संबंधी
7.	क्रेटि्कस व सोफिस्ट	-	प्लेटो के ग्रंथ के नाम
8.	वाङ्मय	-	समस्त ज्ञान के कोष
9.	पोलिटिक्स	-	अरस्तु कृत प्रसिद्ध ग्रंथ
10.	उद्देश्य	-	कर्ता, (वाक्य मे जिसके बारे में कहा जाए)
11.	विधेय	-	कर्म, (उद्देश्य के लिए जो कुछ कहा जाए)

12.	सशक्तता	-	सामर्थ्यशीलता
13.	सुश्राव्यता	-	सुनने में शोभनीय
14.	बर्नर नियम	-	जर्मन विद्वान बर्नर द्वारा 'ग्रिम नियम' के अपवादों को दूर करने हेतु सुझाये गये नियम ।
15.	अर्जन	-	प्राप्त करना ।

7.9 सारांश

यूरोप के भाषा-विज्ञान का विकास क्रमश: इस प्रकार है- जर्मन से फ्रांस, फ्रांस से इंग्लैण्ड और इंग्लैण्ड से सर्वाधिक अमेरिका । आज अमेरिका में भाषा विज्ञान संबंधी कार्य हो रहा है । संरचनात्मक भाषा विज्ञान भाषा के अधिक्रमीय विश्लेषण का प्रमुख उपागम है । इसका लक्ष्य केवल वर्तमान में मौखिक रूप से प्रस्तुत भाषा का अध्ययन है, जो विश्लेषण के लिए न ऐतिहासिक साक्ष्य पर निर्भर है, न मानसिक रूप से निहित कारणों का सहारा लेता है । संरचनात्मक भाषा विज्ञान का आविर्भाव सस्युर के ग्रंथ के प्रकाशन से माना जाना चाहिए- लगभग 1915 के आसपास । लेकिन यह 1933 में ब्लूमफील्ड की पुस्तक 'भाषा' के प्रकाशन के साथ ही पूर्ण प्रकाश में आया । तब से लेकर लगभग 1965 तक संरचनात्मक भाषा ' विज्ञान का जोर था । विश्व की कई भाषाओं का वर्णनात्मक व्याकरण लिखा गया । भाषा को आदत (व्यवहार) मानने तथा आदत द्वारा भाषा सीखने की मान्यता के कारण संरचनात्मक भाषाविज्ञान ने भाषा शिक्षण को भी बहुत प्रभावित किया ।

संरचनात्मक भाषाविज्ञान की तुलना में ऊपरी तौर पर व्यक्त संरचनाओं का रचना के स्तर पर विश्लेषण नहीं करता, बल्कि हर वाक्य को भाषिक क्षमता के आधार पर उसकी अंतर्निहित रचना के आधार पर देखने का यत्न करता है । इस कारण इस अध्ययन क्षेत्र में वाक्यों के अंत:संबंधों को शब्द के संचरण के संदर्भ में व्याख्यायित करने पर बल दिया जाता है।

7.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. पाश्चात्य भाषा विज्ञान की परम्परा व विकास पर एक लेख लिखिए ।
2. संरचनात्मक भाषा विज्ञान के संदर्भ में सस्युर' तथा 'ब्लूमफील्ड' के योगदान का वर्णन कीजिए ।
3. आधुनिक काल के प्रमुख पाश्चात्य भाषा के विद्वानों का उल्लेख कीजिए ।
4. उत्तराधिक्रमीय व्याकरण किसे कहते हैं? संरचनात्मक भाषा विज्ञान के संदर्भ में ब्लूमफील्ड के सिद्धांत का विश्लेषण कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. विश्व के भाषा परिवार को आरेख द्वारा वर्गीकृत कीजिए ।
2. आकृतिमूलक वर्गीकरण का रेखांकन कीजिए ।

3. पाश्चात्य भाषा विज्ञान की परम्परा यूनान काल के योगदान पर टिप्पणी लिखिए ।
4. टेक्स्टोनोमिक व्याकरण किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. तमिल, कन्नड व मलयालम आदि भाषाओं को .... भाषा परिवार स्थान प्राप्त है ।
2. ग्रीक भाषा में फिल (Phil) का अर्थ .... है ।
3. .... और .... संरचनात्मक भाषा विज्ञान के महान हस्ताक्षर हैं ।
4. यूरोपीय शाखा प्रकार्यात्मक व्याकरण के .... स्तम्भ माने जाते है ।

घ सही/गलत पर निशान लगाइए

1. भारत-ईरानी भाषाएँ आस्ट्रिक परिवार में सम्मिलित हैं ।
सही/गलत
2. सर विलियम जोन्स मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे ।
सही/गलत
3. जर्मन विद्वान ग्रिम का 'जर्मन भाषा का व्याकरण' एक प्रसिद्ध ग्रंथ है ।
सही/गलत
4. ग्रासमान व बर्नर, जर्मन भाषा के प्रमुख विद्वान है ।
सही/गलत
5. सस्युर ने भाषा संरचना का उत्तराधिक्रम स्थापित किया ।
सही/गलत

7.11 संदर्भ ग्रंथ

1. उदयनारायण तिवारी; भाषाशास्त्र की रूपरेखा, भारती भंडार, इलाहाबाद
2. जय कुमार जलज; ऐतिहासिक भाषा विज्ञान, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली, 2001
3. कृपाशंकर सिंह व चतुर्भुज सहाय; आधुनिक भाषा विज्ञान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977
4. Bloomfield; Leonard & Motilal Banarsidas; language, Delhi, 1963
5. डॉ. नरेन्द्र मिश्र; भाषा और भाषा विज्ञान, प्र.सं. 200।
6. डॉ. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1992
7. डॉ. मंगलदेव शास्त्री; भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1962
8. डॉ. हरीश शर्मा; भाषा विज्ञान की रूपरेखा, प्र सं. 1997
9. डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा; भाषा विज्ञान की भूमिका, प्र.सं. 1966
10. बाबू श्यामसुन्दर दास; भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1944
11. पं. किशोरीदास वाजपेयी; भारतीय भाषा विज्ञान, प्र. सं. 1966

12. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी भाषा का इतिहास, दशम संस्करण प्र. सं. 1980
13. डॉ. प्रेमप्रकाश रस्तोगी; हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, प्र. सं. 1966
14. डॉ. उदयनारायण तिवारी; हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, संवत् 2012
15. डॉ. कृष्ण कुमार रत भाषा विज्ञान : नये भाषायी सनदर्भ, बुक एनक्लेव जयपुर प्र. सं. 2003
16. डॉ. अनुज प्रताप सिंह; भाषा विज्ञान, नमन प्रकाशन नई दिल्ली, 2007

इकाई-8 ध्वनि संरचना

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 ध्वनि आयाम

8.3 ध्वनि का वर्गीकरण

8.3.1 स्वर एवं उनका वर्गीकरण

8.3.2 व्यंजन एवं उनका वर्गीकरण

8.3.3 स्वर और व्यंजन ध्वनियों एवं दिशाएं

8.4 ध्वनि परिवर्तन के कारण एवं दिशाएं

8.5 ध्वनि नियम-ग्रिम, ग्रासमेन एवं बर्नर

8.6 विचार संदर्भ शब्दावली

8.7 सारांश

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप भाषा में -

- भाषा की निरर्थक लघुतम इकाई ध्वनि और उसकी संरचना से परिचित हो सकेंगे ।
- भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि के आयामों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- ध्वनियों का वर्गीकरण एवं ध्वनि के प्रकारों से अवगत हो सकेंगे ।
- स्वर और व्यंजन ध्वनियों का अंतर समझ कर उन्हें समझा पायेंगे ।
- ध्वनि परिवर्तन के कारण एवं परिवर्तन की दिशाएँ जान सकेंगे ।
- ध्वनि परिवर्तन के सर्वजनीय सुख्यात नियमों के बारे में पढ़ और समझ कर जान सकेंगे किन नियमों के तहत भाषा में ध्वनियों का परिवर्तन घटना है ।

8.1 प्रस्तावना

ध्वनि संरचना या ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत भाषा ध्वनियों के वर्गीकरण एवं ध्वनि संवहन, ग्रहण ध्वनियों के वर्गीकरण एवं ध्वनि परिवर्तन आदि का अध्ययन किया जाता है । भारतीय व्याकरण में ध्वनि विज्ञान का अध्ययन प्राचीन काल से होता आया है जिसे 'शिक्षा' संज्ञा से जाना जाता है । पाणिनीय शिक्षा इस विषय का एक उल्लेख गन्ध है । इसके अतिरिक्त भट्टोश्रि दीक्षित की वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी में भी स्वरों और व्यंजनों के उच्चारण का सूक्ष्म विवेचन हुआ है ।

आधुनिक भाषा विज्ञान में इस विषय की जानकारी और गहराई से दी गई है । पाइक, स्टीबल, रोबिन्स ब्लाकट्रेगर डेनियल जोन्स, ब्लूमफील्ड आदि पश्चिमी तथा उदयनारायण तिवारी,

बाबूराम सक्सेना, सुनीति कुमार चटर्जी, मंगलदेव शास्त्री और भोलानाथ तिवारी आदि भारतीय विद्वानों ने ध्वनि और स्वन विज्ञान के अनेक अनछुए पहलुओं पर गंभीर चिन्तन किया है ।

ध्वनि भाषा की निरर्थक लघुतम इकाई है । यह अर्थभेदक तत्त्व है । भाषा की बुनियाद ही ध्वनि पर आधारित है । इसके अभाव में भाषा निर्मिति की कल्पना ही असंभव है । ध्वनि शब्द का संबंध ग्रीक शब्द '96000' से है, जिसका अर्थ ध्वनि ही है । वस्तुतः संस्कृत शब्द भण् (ध्वनि करना या कहना) से ही ध्वनि शब्द विकसित हुआ है । दैनिक जीवन में ध्वनि शब्द व्यापक अर्थो में प्रयुक्त होता है जैसे कि पक्षी की आवाज, रेल की सीटी आदि भी ध्वनियाँ ही है लेकिन ध्वनि विज्ञान में उसी ध्वनि का अध्ययन होता है जिसके संयोग से शब्द बनते हैं शब्दों से पद, पदों से वाक्य और वाक्यों से भाषा । भाषा की इसी लघुतम इकाई का विस्तृत परिचय आप इस इकाई को पढ़ कर प्राप्त करेंगें ।

ध्वनिशास्त्र तो भाषा विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है । अंग्रेजी में फोनोलॉजी और फोनेटिक्स शब्दों का बहुत प्रयोग होता है । 'लॉजी और 'टिक्स विज्ञान के समानार्थी शब्द हैं । फोनेटिक्स मुख्य रूप से ध्वनि-शिक्षा, ध्वनि की परिभाषा, भाषा की विभिन्न ध्वनियों, वागवयन, ध्वनियों के वर्गीकरण, ध्वनि गुण, ध्वनि की उत्पत्ति, ध्वनि के संप्रेषण, श्रवण एवं ग्रहण पर विचार करता है । फोनोलॉजी में स्वनिमशास्त्र स्वन परिवर्तन, स्वनों के इतिहास इत्यादि पर विचार किया जाता है ।

ध्वनि की उत्पत्ति के लिए चार तत्त्वों की आवश्यकता होती है - (1) भाव या विचार (2) विचार प्रकाशनेच्छा (3) प्राणवायु की मदद (4) वागवयवों का सही परिचालन । ये सारी विशेषताएँ मानव में समाहित होती हैं । चेतना से विचारों की उपलब्धि होती है, ये विचार मन के द्वारा गति प्राप्त करते हैं, तत्पश्चात् वायु के द्वारा वागवयवों से नियंत्रित होकर निर्गमित होते हैं । इस पूरी प्रक्रिया से ध्वनि उत्पादन होता है ।

8.2 ध्वनि के आयाम : औच्चारणिक, प्रासरणिक एव श्रावणिक

ऐसा माना जाता है कि भाषा की लघुतम इकाई अपने सार्थक रूप में रूपिम है । यही वाक्यों की उत्पत्ति के मूल में है । ध्वनि की पूरी प्रक्रिया को आद्यंत देखने पर उसके तीन रूप दिखाई पड़ते हैं - (1) उच्चारण या उत्पत्ति (2) संचरण या गमन (3) श्रवण । इन्हीं को पृथक्-पृथक् विश्लेषित करने के लिए उच्चारणत्मक प्रासंगिक या संचारिकी और श्रावणिक ध्वनि सरणियों का निर्माण हुआ है ।

1. औच्चाणिक ध्वनि सारणी

औच्चारणिक ध्वनि, सारणी का संबंध चूँकि शरीर में है इसलिए इसे शारीरिक ध्वनि भी कह सकते हैं । इसमें ध्वनियों के उच्चारण एवं उनकी उत्पत्ति पर विचार किया जाता है । यहाँ वक्ता अपने वागवयवों यथा जीभ, ओष्ठ, दंत इत्यादि के द्वारा ध्वनि तरंगों की उत्पत्ति कर्ता है । यहाँ इसीलिए ध्वनि अवयवों का अध्ययन भी किया जाता है, चूँकि यह ध्वनि उच्चारण से संहस्त है, अत: इसे औच्चारणिक ध्वनि सरणिक कहते हैं । इसी सारणी में यह भी अध्ययन

किया जाता है कि किस ध्वनि का निर्माण या निर्गमन किस वागवयव द्वारा हुआ है । इस प्रकार यहाँ उच्चारण पर आधृत ध्वनियों का विवेचन एवं वर्गीकरण किया जाता है ।

2. प्रासरणिक ध्वनि सारणी

प्रासरणिक ध्वनि सारणी को तरंगीय या सांवहनिक ध्वनि सारणी भी कहा जाता है । इसमें उच्चारण के फलस्वरूप जो ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं, एवं कान तक पहुँचती है, उनका अध्ययन किया जाता है । इसके लिए गणितीय पद्धति अपनाई जाती है । इसमें विविध यंत्रों यथा काइमोग्राफ, ऑसिलोग्राफ इत्यादि की सहायता ली जाती है ।

3. श्रावणिक ध्वनि सारणी

इसे श्रौतिकी या श्रौतिकी ध्वनि सारणी भी कहते हैं । इसका संबंध कर्ण परल से है । इसमें ध्वनियों के सुने जाने का अध्ययन किया जाता है । यहाँ कई स्तरों पर यह अध्ययन किया जाता है कि ध्वनि कैसे कर्णपटल से होकर मध्यकर्ण और फिर अंतःकर्ण से होकर मस्तिष्क में पहुँचती है । इस सारणी का संबंध भी शरीर से ही है चूँकि इसके अंतर्गत हम कान की क्रिया-विधि का भी अध्ययन करते हैं । ध्वनियों का वैविध्य भाषण एवं संगीत दोनों में दिखाई पड़ता है । ध्वनियों की भंगिमाओं का कोई निश्चित ओर छोर नहीं हैं । ध्वनियों के वर्गीकरण के मुख्यत: तीन आधार माने गए हैं- (1) स्थान, (2) करण एवं (3) प्रयत्न । इन तीनों आधारों का पृथक महत्त्व है ।

8.3 ध्वनियों का वर्गीकरण

वार्तालाप के समय मानव कंठ अनेक प्रकार की ध्वनियों का उत्पादन करता है । वस्तुत: मानव के कंठ में असीम शक्ति समाहित होती है ध्वनि के निष्पादन हेतु इन ध्वनियों का वैविध्य भाषण एवं संगीत दोनों में दिखाई पड़ता है । ध्वनियों की भंगिमाओं का कोई निश्चित ओर छोर-नहीं है । ध्वनियों के वर्गीकरण के मुख्यत: तीन आधार माने गए हैं - 1 स्थान, 2. करण एवं 3. प्रयत्न । इन तीनों आधारों का पृथक महत्त्व है । इन्हें इस तरह समझा जा सकता है - यथा, 'क', 'ख, ग, 'घ' एक ही वर्ग की ध्वनियाँ हैं परंतु इनमें अंतर प्रयत्नशील है परंतु 'क' एवं 'प अलग-अलग स्थानों से निःसृत ध्वनियाँ हैं, अत: इनका पार्थक्य स्थान सापेक्ष है । जहाँ तक प्रश्न करण का है तो 'करण का तात्पर्य है कि इंद्रिय । यह चल सत्ता का स्वामी है, स्थान ही तरह इसकी सत्ता अंचल नहीं होती । यथा, तालु स्थान है तो जिह्वा करण क्योंकि पहला अचल है जबकि दूसरा वागवयव चल है । विविध स्थानों, करणों एवं प्रयत्नों से विविध ध्वनियों का उत्पादन होता है ।

ध्वनियों का सबसे पुराना और आज तक प्रचलित वर्गीकरण स्वर, तथा व्यंजन के नाम से जाना जाता है । ‘स्वर’ शब्द एवं ‘स्वृ’ धातु से बना हुआ है जिसका अर्थ है ध्वनि । बाद में स्वर' शब्द प्रयोग उदात्त आदि स्वरों के लिए भी हुआ है । इसी तरह से 'व्यंजन' शब्द वि + अनुज + ल्यूट्र्‌ (अन) अर्थात् वि उपसर्गपूर्वक अज्ज धातु से निर्मित हुआ है । 'अज्ज्' का अर्थ है व्यक्त होना या प्रकट होना । स्वर तथा व्यंजन की विस्तृत परिभाषा बपारव एवं ट्रेगर ने निम्नलिखित रूप में दी हैं :-

स्वर उन ध्वनियों को कहा जा सकता है, जो मुख से बिना किसी बाधा के उच्चरित होती हैं । फेफडों से आने वाली हवा होंठ और उससे आगे तक कहीं अवरूद्ध नहीं होती । इसको कहीं बहुत संकीर्ण मार्ग से नहीं निकलना पड़ता है । यह मुख विवर की स्वर सीमा में ही रहती है और इसके उच्चारण में स्वतंत्री से ऊपर वाले किसी भी वागवयव में कंपन्न नहीं होता है । यह प्राय: घोष ध्वनि होती है परंतु ऐसा अनिवार्यत: नहीं कहा जा सकता है ।'

(Outlines of Lingnistic Analysis, Bloch and Tragn pg.18)

'व्यंजन, वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में फेफड़ों में जो वायु आती है, वह स्वरतंत्रियों या मुख के द्वारा रोकी जाती है या बहुत ही संकुचित रास्ते से बाहर निकलती है, अथवा मुख-विवर की स्वर सीमा से पृथक होते हुए जिह् के एक या दोनों ओर से बाहर आती है या स्वतंत्री के ऊपर वाले किसी वागवयव में कंपन पैदा कर देती है । उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि स्वर ध्वनियाँ जहाँ अबाध हैं, वहीं व्यंजन ध्वनियों सबाध हैं । इसके साथ ही स्वर ध्वनियाँ प्राय: व्यंजन, ध्वनियों की तुलना में अधिक मुखर होती है । प्रो० हेफूनर ने मुखरता की दृष्टि से ध्वनियों को आक्षरिक (Syllabic) एवं अनाक्षरिक (Non- Syllabic) दो भागों में बांटा है । उनके अनुसार आक्षरिक ध्वनियाँ बलाघात को वहन करती हैं, जो क्षमता प्राय: स्वर ध्वनियों में ही है एवं अनाक्षरिक ध्वनियाँ ऐसा नहीं कर सकती हैं, अत: प्राय: व्यंजन ध्वनियाँ इस कोटि में रखी जाती हैं । वैसे ऐसा सर्वत्र नहीं होता । यथा, संस्कृत में र एवं ऊ' व्यंजन ध्वनियाँ हैं पर बलाघात सह सकती है । अंग्रेजी में 'L', 'M' एवं N' कुछ शब्दों में आक्षरिक हैं । इसके अलावा स्वर एवं व्यंजन के बीच में कुछ अन्य ध्वनियाँ भी होती हैं, जिन्हें अर्ध-स्वर कहा जाता है । ये ध्वनियाँ न तो पूर्णत: अबाध हैं और न पूर्णत: सबाध । ये ध्वनियाँ हिंदी में च', छ, रूप में मान्य हैं । अंग्रेजी भाषा में ?' एवं 'भ' से ही अर्धस्वर हैं ।

8.3.1 स्वर एवं उनका वर्गीकरण

स्वरों की प्रकृति पर हमने बहुतसी बातें जान ली हैं । अब उनके वर्गीकरण को जानना जरूरी है । स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर किया जाता हैं

(क) जिह्वा के विविध रूपों की दृष्टि से जिह्वा के व्यावहारिक दृष्टि से अनेक भाग है यथा अग्र पश्च एवं मध्य । इनमें से जो भाग आगम वायु के निर्गम मार्ग को प्रभावित करता है उसके अनुसार स्वरों का भेद हो जाता है ।

1. जिह्वा का अग्रभाग क्रियाशील होकर इ ई, ए, ऐ जैसे स्वरों का उच्चारण करता है । अत: ये स्वर अग्रस्वर हैं ।
2. जिह्वा का मध्यभाग क्रियाशील होकर अ जैसी ध्वनि के उच्चारण को प्रभावित करता है । अत: यह केन्द्रीय या मध्य स्वर है ।
3. जिह्वा के पश्चभाग से आ, उ ऊ, ओ औ उच्चरित होते हैं । अत: ये पश्च स्वर कहे जाएंगे ।

(ख) जिह्वा के व्यवहृत भाग की ऊँचाई की दृष्टि से निःश्वास वायु के निर्गमन के समय अवरोध तो नहीं होता पर जिह्वा को ऊपर उठाकर इसी क्रम में कुछ संकीर्ण अवश्य

कर दिया जाता है । यह संकीर्णता कही अपेक्षाकृत कम होती है तो कहीं ज्यादा । इस दृष्टि से मुख विवरण के चार भेद माने जाते हैं । 1 विवृत, 2. अर्धविवृत, 3. अर्ध संवृत, 4. संवृत ।

1. विवृत 'विवृत से तात्पर्य है खुला हुआ । जब जिह्वा एवं मुखविवर के ऊपरी भाग में अधिकाधिक दूरी रहती है तो विवृत की उत्पत्ति होती है । ये ध्वनियाँ (विवृत) उच्चरित से मुँह को फैला देती हे । यथा - आ ।
2. अर्धविवृत अर्धविवृत ध्वनियों में विवृत ध्वनियों की तुलना में जिह्वा एवं उपरी मुख विवर की दूरी थोड़ी सी कम होती है । इन ध्वनियों के उदाहरणार्थ ऐ, औ को देखा जा सकता है ।
3. अर्धसंवृत जब संवृत की अपेक्षा जिह्वा ओर मुख विवर के ऊपरीभाग की दूरी अधिक रहती है तो अर्धसंवृत ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं । यथा - ए, ओ ।
4. संवृत जब जिह्वा एवं मुखविवर की ऊपरी सतह के बीच कम-से-कम दूरी होती है, तब संवृत ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं । यथा इ ई, उ ऊ ।

(ग) ओष्ठों की स्थिति की दृष्टि में उच्चारणमें ओष्ठों की भूमिका बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है । निःश्वास का बाहय नियमन ओष्ठों का ही काम है । प्रत्येक स्वर के उच्चारण में जिह्वा के साथ ओष्ठों की भी भूमिका होती हैं ओष्ठों की स्थिति विविध प्रकार की होती है, जिनमें निम्न महत्त्वपूर्ण है:

1. प्रसृत : इस स्थिति में ओष्ठ थोडा आगे निकलकर गोल हो जाते हैं इस स्थिति में उ ऊ, ओ औ का उच्चारण होता है ।
2. वर्तुल: इस स्थिति में ओष्ठ थोड़ा आगे निकलकर गोल हो जाते हैं । इस स्थिति में उ ऊ, ओ औ उच्चारण होता है ।
3. अर्धवर्तुल: इस स्थिति में ओष्ठ पूर्ण गोलाकार न होकर अर्द्धगोलाकार होते हैं । ऐसे में आ जैसी ध्वनि उच्चरित होती हैं ।

(घ) मूर्धन्यता जिह्वा के अग्र, मध्य, पश्च भाग उच्चारण में अपनी भूमिका अदा करते हैं । ऐसे में जिह्वानोक प्राय: निश्चेष्ट रहती है । वह दांतों के पीछे पडी रहती है । वह किसी स्थिति विशेष में तालु या मूर्धा की ओर मुड़ सकती है । ऐसे में ध्वनियाँ उत्पन्न होती है, वे मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं । इसके लिए स्वर के नीचे एक बिंदु की व्यवस्था करनी पड़ती है । इस तरह से सभी स्वर ध्वनियाँ या मूर्धन्य हैं या अमूर्धन्य । ये ध्वनियाँ अमेरिकी अंग्रेजी में सुलभ हैं ।

(ङ) कोमल तालु की स्थिति: कोमल तालु और कौवा नासिका विवर को कभी पूर्णतया बंद कर देते हैं तो कभी मध्य में रहते हैं, जिससे वायु मुख और नासिका दोनों मार्ग से निकलती है । इसके आधार पर भी स्वरों का विभाजन संभव है । यथा: अनुनासिक अँ, आँ, ई, ई इत्यादि । जब ऐसा नहीं होगा तब ध्वनि अननुनासिक होगी । उदाहरणार्थ - मौलिक स्वर अ आ, ई, ई इत्यादि ।

(च) घोष और अघोष जब स्वर तंत्रियों खुली रहती हैं तब अंदर से आनेवाली वायु बिना किसी घर्षण के बाहर निकलती है । ऐसी ध्वनियाँ अघोष होती हैं । कभी स्वर तंत्रियों का मुख बंद रहता है, अंदर से आने वाली वायु घर्षण के साथ छोटा छिद्र बनाकर निकलती है, यही सघोष ध्वनि के पैदा होने का कारण है । अत: स्वर ध्वनि संघोष या अघोष भी हो सकती हैं ।

(छ) मात्रा मात्रा के आधार पर भी स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण संभव है । यथा अर्धह्मस्व (उदासीन स्वर अँ), ह्रस्व ए, ह्रस्व ओ इत्यादि ।

(ज) तनाव : मुख की मांसपेशिया अथवा अन्य वागवयवों की दृढ़ता (तनाव) या शैथिल्य के आधार पर भी स्वर ध्वनियों का भेद किया जा सकता है । इस दृष्टि से स्वरों के दो भेद हैं । अ इ उ यदि शिथिल स्वर ध्वनियाँ हैं तो आ, ई, ऊ तनावग्रस्त स्वर ध्वनियाँ हैं ।

(झ) मानस्वर मानस्वर को किसी भाषा विशेष से जोड़कर नहीं देखा जा सकता है । यह एक वैज्ञानिक पद्धति है । इसके आधार पर हरेक भाषा के स्वरों के उच्चारण स्थान यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है । इनकी संख्या आठ बताई जाती है । (विस्तारपूर्वक देखें इकाई 1)

(ञ) गौण मानस्वर. यह पूर्वोक्त है कि होठों की वृत्ताकार या अवृत्ताकार स्थितियाँ होती है । उच्चारण में इनका महत्त्व है संसार की प्राय: भाषाओं में अग्रसवर अवृत्ताकार एवं पश्चस्वर वृत्ताकार होते हैं परंतु अनेक भाषाओं में स्वरों को विपर्यय (ऊपर कहे गए का) के रूप में उच्चरित करते हैं । यही गौण मानस्वर हैं । "

8.3.2 व्यंजन एवं उनका वर्गीकरण

व्यंजन ध्वनियों का परिचय हम पहले ही जान चुके हैं । अ: अब उनका वर्गीकरण अपेक्षित है -

स्थान, करण एवं प्रयत्न के आधार पर व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण संभव है ।

स्थान : स्थान के आधार पर व्यंजन ध्वनियों के कंठ्य, तालव्य एवं मूर्धन्य आदि भेद होते हैं । इसके अलावा वत्स्र्य , दैत्य, दंत्योष्ठ्य, ओष्ठ्य, जिह्वामूलीय उपालिजिस्वीय उरस्य आदि भेद भी हैं ।

(क) **उरस्य** : ये वे व्यंजन ध्वनियाँ हैं जो स्वरतंत्री के मुख से उच्चरित होती हैं । इन्हें काकल्य भी कहा गया है । क्योंकि स्वरयंत्र-मुख को काकल कहते हैं । ह् और विसर्ग (:) काकल ध्वनियों के उदाहरण है ।

(ख) **उपालिजिह्वीय** : ये वे ध्वनियाँ है जो स्वरयंत्र और अलिजिह्वाया कौवा के मध्य स्थित गलबिल (उपालिजिह्वा) से उत्पन्न होती हैं । ऐसी ध्वनियाँ अरबी एवं अफ्रीकी भाषाओं में हैं ।

(ग) **जिह्वामूलीय** : ये ध्वनियाँ जिह्वा पश्च से उच्चरित होती हैं । इनमें जिह्वामूलीय को उठाकर कौवा के पास ले जाया जाता है । इससे वायु निर्गमन संकरे मार्ग से होता है और संघर्षी ध्वनि पैदा होती है । ऐसी ध्वनियाँ अरबी और एस्किमो भाषाओं में हैं ।

(घ) **कंठ्य या कोमल तालव्य** : ये ध्वनियाँ जिह्वा के पिछले भाग के द्वारा कोमल वायु को छूने से उच्चरित होती हैं । इस स्थान से उच्चरित होने के कारण ये कंठ्यध्वनि भी कही जाती हैं । कोमल तलुया कंठ से दो स्थान विशेष संबंधित हैं जिनसे स्वरों (संयुक्त) का उच्चारण होता है. (1) कंठ तालव्य (2) कंठोष्ठ्य

(ङ) **मुर्धन्य:** जिन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वानोक उलटकर तथा मूर्धा का स्पर्श करके वायु प्रवाह रोक देती है । उन्हें मूर्धन्य कहा जाता है । यथा - ट, ष आदि ।

(च) **कठोर तालव्य** : इस प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण कठोर तालु से होता है । इसमें जिह्वाग्र कठोर तालु को स्पर्श करके बाहर जाती वायु का रास्ता रोकता है । उदाहरण के लिए च, छ, ज, य ऐसी ध्वनियाँ है ।

(छ) **वत्स्र्य या बर्स्वय :** दाँतों की जड़ में मसूढ़े के पास के खुरखुरे अंश को वर्त्स कहते हैं । जिह्वाग्र के द्वारा इस स्थान को छूकर जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह वत्स्र्य ध्वनि है । उदाहरणार्थ स, ज, र, ल, न, एवं डी ध्वनियाँ वत्स्र्य ध्वनियाँ हैं ।

(ज) **दंत्य :** इन ध्वनियों की निर्मित जिह्वाग्र द्वारा दांत के संस्पर्श से होती लै । त, थ, द, ध जैसी हिंदी की ध्वनियाँ दंत्य ही हैं ।

(झ) **दंत्योष्ठ्य** : कुछ ऐसी व्यंजन ध्वनियाँ है जिनका उच्चारण ऊपर के दांतों एवं नीचे के होठों की मदद से होता है । यहीं ध्वनियाँ दंत्योष्ठ्य ध्वनियाँ हैं । हिंदी में व एवं फ ऐसी ही ध्वनियाँ हैं ।

(ञ) **ओष्ठ्य :** इन ध्वनियों की उत्पत्ति के मूल में होठ होते हैं । इन्हें कभी तो दोनों होठों की सहायता से उच्चरित किया जाता है (यथा प, फ, व, भ, म) और कभी सिर्फ एक होठ से (यथा श) ।

आभ्यांतर प्रयत्न के आधार पर भी व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण संभव है । इन्हें निम्नतया ऐसा देखा जा

(क) **स्पर्श :** स्पर्श ध्वनियों में जिहवा मुखविवर के ऊपरी भाग को कहीं-न-कहीं स्पर्श करती हैं । उदाहरणार्थ क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग की ध्वनियाँ ऐसी ही हैं ।

(ख) **स्पर्श संघर्षी :** इन ध्वनियों का उच्चारण स्पर्श के साथ निःश्वास वायु के संघर्षण की मांग करता है । अत: ये स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ है । यथा ज्येष्ठ मं 'ज्ये' इसी प्रकार का प्रयोग है ।

(ग) **संघर्षी :** इन ध्वनियों में वायु का निर्गम मार्ग संकीर्ण हो जाता है, अत: वह संघर्ष करके बाहर आती है । यथा श ष, स ।

(घ) **पार्श्विक :** इनमें जिह्वानोक मूर्धा को छूती है एवं वायु दोनों पार्श्वो से बाहर निकलती है । उदाहरणार्थ ल ।

(ङ) **लोड़ित** : इन ध्वनियों के उच्चारण के वक्त, जिह्वानोक वर्त्स पर अनेक या एक बार ठोकर मारती है । र' ऐसी ही एक ध्वनि है ।

(च) **उत्क्षित :** इन ध्वनियों के उच्चारण के वक्त जिह्वा तालु के किसी भाग को झटका देकर हट जाती है । जैसे ड, ढ ।

(छ) **अर्धस्वर :** इन ध्वनियों का उच्चारण पूरी तरह से स्पर्शधर्मी नहीं होता न ही इनमें स्वरों के उच्चारण की सी पार्थक्य की स्थिति होती है । यथा य, व ।

(ज) **अनुनासिक :** इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु मुखरविवर के साथ नासिका से भी निकलती है । नागरी वर्णमाला का प्रत्येक पंचमाक्षर ही अनुनार्णनक है । यथा ड, *, ण ।

इसके अलावा संयुक्त व्यंजन ध्वनियों, जिनके समध्वनि एवं विषमध्वनि दो भेद हैं, की भी परिकल्पा की गई है । यथा समध्वनि - युद्ध में युध् + ध, सच्चा, कच्चा आदि ।

विषम ध्वनि - रक्त, उत्कट, चर्म, गर्म आदि ।

उच्चारण शक्ति के आधार पर व्यंजनों के सशक्त (fortis) और अशक्त (lenis) तथा माध्यम ये तीन भेद किए जा सकते है । सशक्त वे व्यंजन है जिनके मुँह की मांस पेशियाँ दृढ़ ही जैसे स, f । अशक्त व्यंजनों में मांसपेशियाँ शिथिल होती है जैसे र, ल मध्यम वर्ग में च, श आदि ध्वनियाँ आती है । ह्स्वता दीर्घता के आधार पर क, च, प आदि ह्रस्व हैं तो क्क, च्च, प्प आदि दीर्घ) दीर्घ व्यंजनों को लेखन में द्वित्व के आधार पर द्वित्व व्यंजन कहा जाता है ।

कुछ असामान्य व्यंजन और उनके भेद आपके अध्ययन के लिए ऊपर जिन व्यंजनों और उनके भेदों का परिचय दिया गया उनमें से प्राय: सभी बहु प्रचलित और सामान्य है । इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्यंजन है जो असामान्य हैं और जिनका प्रयोग तथा प्रचलन कम है । ऊपर चर्चित सभी व्यंजन प्राय: बहि:स्फोटात्मक थे अर्थात् उनमें हवा फेफड़े से बाहर की ओर आती थी लेकिन अब जिनकी चर्चा की जा रही है वे अन्त:स्फोटात्मक है इनके उच्चारण में हवा बाहर से भीतर जाती है ।

1. अन्त:स्फोटात्मक व्यंजन (Implosive) इन्हें अन्तस्फोट या अन्तर्मुखी भी कहते हैं । ये स्पर्श व्यंजन हैं । सामान्य स्पर्शों की तरह इनके उच्चारण में भी मुँह के किसी भाग में स्पर्श या अवरोध होता है, इसी के साथ स्वरयंत्र भी काफी नीचे हो जाता है । फलत: स्पर्श स्थान और स्वर यंत्र के बीच की जगह विसृत हो जाती है, हवा फैल कर हल्की हो जाती है और अवरोध का उन्मोचन होता है भीती की हल्की हवा के कारण बाहर से हवा बड़ी तेजी से प्रवेश करती है और ये व्यंजन ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं । स्फोटात्मक ध्वनियाँ कभी-कभी बहुत हल्की होती है और द्वयोष्ठ्य, दंत्य, तालव्य और कोमल तालव्य की कोटि में आती हैं । इन्हें अन्य ध्वनियों से अलग दिखाने के लिए इनके पूर्व प्राय: ऊपर एक उल्टा कौका लगाते है- जैसे प .(p)', अफीका की p फ्रिक इबो, हौसा जुल, भारत की सिन्धी (ज व) तथा कुद राजस्थानी भाषाओं में इस प्रकार की ध्वनियाँ मिलती हैं ।
2. उद्गार व्यंजन (Glotalized stop) इन्हें ही स्पर्श ध्वनि माना जाता है । इसमें मुहँ में स्पर्श के अवरोध के साथ-साथ स्वर यंत्रमुख भी स्वरतंत्रियों के करीब आने से बन्द

हो जाता है पहले मुँह में स्फोट होता है फिर आधे सैकेण्ड के बाद स्वरयंत्र में । इस बार स्वरयंत्र कुछ ऊपर उठ जाता है । दोहरे अवरोध और दोहरे उन्योचन के कारण यह ध्वनि एक खास तरह की कुछ तेजी से बोतल के कार्क खुलने जैसी सुनाई पड़ती है । इसके उच्चारण में मुँह की मांसपेशियों में संकोचन से हवा संकुचित रहती है और उन्योचन होते ही जोर से बाहर निकलती है । यह स्पर्श, द्वयोष्ठ्य, तालव्य कोमल तालव्य कई प्रकार की हो सकती है । इसे लिखने में लिपि चिन्ह के आगे ऊपर 'दायां लगाते है जैसे 'क' ('k') 'प' ('p') आदि ये ध्वनियाँ मुख्यत: अफ्रीकी और अंशत: फ्रेंच भाषाओं में मिलती है ।

3. क्लिक (click) इसे अन्तर्मुखी द्विस्पर्श या अन्त:स्फोट स्पर्श भी कहा जाता है । क्लि ध्वनियों की दो मुख्य विशेषताएं है- पहली मुँह में दो स्थानों पर स्पर्श या अवरोध और दूसरी हवा का बाहर से भीतर जाना । दो अवरोधो में से एक तो कोमल तलवा (अर्थात् 'क' के समान) होता है और दूसरा स्पर्श उसके इधर कहीं भी इसके उच्चारण में जीभ तथा मांसपेशियों कुछ सख्त रहती हैं । पहले बाहर के स्पर्श का उन्मोचन होता है । भीतर की मांसपेशियों की सख्ती एवं खिंचाव से भीतर की हवा संकुचित सी रहती है । उन्मोचन होते ही बाहर से हवा घुसती है और तुरन्त ही क स्थानीय स्पर्श भी उन्मोचीत होता है । इस परवर्ती उन्मोचन के अंत धीमा होने के कारण वह सुनाई नहीं पड़ता । ध्वनि के तुरन्त बाद किसी सामान्य स्वर का उच्चारण होता है । क्लिक ध्वनियाँ कई प्रकार की होती है । इनका यह अंतर क- स्थानीय स्पर्श के कारण नहीं होता, क्योंकि यह स्पर्श तो सभी में एक-सा होता है । अन्तर उस दूसरे स्पर्श के कारण होता है जो क-स्थान के इधर घटित होता है । इन पूर्ववर्ती स्पर्शों के आधार पर ही क्लिक ध्वनियों के मुख्यत: 6 भेद किए गए हैं । द्वयोष्ठ्य, दन्त्य, वर्त्स-तालव्य प्रतिवेष्ठित कठोर-तालव्य, वत्स्र्य-पार्श्विक । इनमें अंतिम उन्मोचन 'ल' की तरह केवल एक पार्श्व में होता है । क्लिक ध्वनियाँ प्राय: दक्षिणी अमेरिकी की भाषाओं में पाई जाती है । फ्रेंच भाषा में संशय और अचरज प्रकट करने के लिए त का क्लिप रूप प्रयुक्त होता है । हिन्दी की च+च् अथवा टिक ऽ टिक ध्वनियाँ इसी प्रकार की हैं ।

संयुक्त व्यंजन : हिल, दीर्घ, संयुक्त

संयुक्त व्यंजन दो या दो से अधिक व्यंजनों के मेल से बनते हैं । यदि मिलने वाले दोनों व्यंजन एक हैं जैसे (चक्का = क + क) तो इस संयुक्त व्यंजन को दीर्घ या द्वित्व व्यंजन (Long या double Consonant) कहते हैं लेकिन यदि दोनों अलग अलग वर्ग के हैं (जैसे शर्म = r + म) को इसे संयुक्त व्यंजन (Compound consonant) कहते हैं । इन व्यंजनों के दो भेद किए जा सकते हैं । स्पर्श - संघर्षी या पूर्ण बाधा वाले तथा अन्त । स्पर्श और स्पर्श संघर्षी के द्वित्व में ऐसा होता है कि उसमें स्पर्श की पहली (हवा के आने और स्पर्श होने) आखिरी या तीसरी (उन्मोचन या स्फोट) स्थिति में तो कोई अंतर नहीं आता, केवल दूसरी या अवरोध की स्थिति बड़ी हो जाती हैं । चक्का में वस्तुत: दो क् नहीं उच्चरित होते, बल्कि क् के मध्य की स्थित तुलना में बड़ी हो जाती है । इसी कारण वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार के

द्वित्वों को दो 'क' न कहकर 'क' का दीर्घ रूप या 'दीर्घ व्यंजन क या दीर्घ प्रलम्बित कं' कहना अधिक उचित है, क्योंकि दो 'क' तब कहलाते हैं जब दोनों की तीन-तीन स्थितियाँ घटित होती स्पर्श संघर्षी 'च' आदि व्यंजनों के संबंध में भी यही स्थिति है जग्गी, सच्चा, लज्जा, मिट्टी अड्ड, पत्ती, गद्दी, थप्पड़, अब्बा आदि शब्दों के द्वित्व ऐसे ही है । इस रूप में महाप्राणों का द्वित्व नहीं होता । वस्तुत: अल्पप्राण और महाप्राण ध्वनियों का अंतर स्फोट के वायु प्रवाह के कम और अधिक के कारण होता है । अत: जब दो मिलेंगे तो पहले का स्फोट नहीं होगा, इस प्रकार वह अल्पप्राण हो जाएगा । तात्पर्य यह है कि रव्व, घ्ध, छ्छ झ्झ, ढ्ढ, म्म आदि का उच्चारण हो ही नहीं सकता उच्चारण में वे क्ख, ग्ध, चरू, उठ एवं ब्य हो जाएंगे जैसे घग्घर, मच्छर, झज्झर, भम्भड़ आदि । अन्य प्राय: सभी व्यंजनों के द्वित्व में इस प्रकार की कोई बात नहीं होती केवल उनकी दीर्घता बढ़ जाती है । जैसे गन्ना, अम्मा, रस्सा आदि ।

संयुक्त व्यंजनों में यदि पहला स्पर्श या स्पर्श-संघर्षी है तो वह अस्फोटित होता है, अर्थात् उसका स्फोट या उन्मोचन नहीं होता जैसे पैक्ट, अच्छी आदि । अन्य प्राय: कोई भी व्यंजन आये तो उसमें प्रकृति की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं पड़ता । केवल दीर्घता या मात्रा इस अधिक होती है । संयुक्त व्यंजनों में एक का घोषत्व-अघोषत्व दूसरे के स्वरूप को प्रभावित करता है । नागपुर का उच्चारण 'नाक्पुर' ग पर पड़े प के प्रभाव में कारण है । संस्कृत की संधियों में इसके अनेक उदाहरण पाए जा सकते हैं ।

8.3.3 स्वर और व्यंजन ध्वनियों एवं दिशाएँ

स्वर और व्यंजन की विविध परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इन दोनों में निम्नलिखित अंतर दिखाए हैं -

1. स्वर अकेले उच्चरित हो सकते हैं लेकिन व्यंजनों में स, श ज आदि केवल संघर्षी व्यंजनों के शेष के पहले (अब) या बाद में (जा) स्वर होने पर ही उच्चरित किए जा सकते हैं ।
2. सभी स्वरों का उच्चारण देर तक किया जग सकता है जबकि व्यंजनों में केवल संघर्षी ही ऐसे हैं, शेष का उच्चारण देर तक नहीं हो सकता ।
3. एकाध (ई, ऊ) अपवादों को छोडकर अधिकांश स्वरों के उच्चारण में मुख-विवर में हवा गूँजती हुई बिना विशेष अवरोध के निकल जाती है । अधिकांश व्यंजन इसके विरोधी है और उनमें पूर्ण या अपूर्ण अवरोध हवा के मार्ग में व्यवधान उपस्थित करता है ।
4. सभी स्वर आक्षरिक (Syllabic) होते हैं । संध्यक्षरों (dipthorg) में अवश्य कुछ स्वरों का अनाक्षरिक स्वरूप दिखाई पड़ता है, किन्तु यह अपवाद जैसा है । दूसरी ओर प्राय: सभी व्यंजन सामान्यत: अनाक्षरिक (non syllabic) होते हैं । अपवाद स्वरूप न, र ल आदि व्यंजन ही कभी-कभी कुछ भाषाओं में आक्षरिक रूप में दृष्टिगत होते हैं । इस अंतर का आधार भाषा में प्रयोग हैं ।
5. मुखरता (Sonority) की दृष्टि से भी स्वर-व्यंजन में भेद है । स्वर अपेक्षाकृत अधिक मुखर होते हैं और व्यंजन कम मुखर ।

6. ऑनिलोग्राफ आदि यंत्रों में स्वर और प्रमुख व्यंजनों की लहरों में भी अंतर मिलता है । ही, यह अवश्य है कि र, म, आदि कुछ व्यंजनों की लहरें प्रकृति की दृष्टि से स्वर और व्यंजन के बीच में आती है ।
7. व्यंजनों का उच्चारण मुँह में स्थान-विशेष से होता है, किन्तु स्वरों का उच्चारण किसी एक निश्चित स्थान से नहीं होता । वह पूरे मुख-विवर में होने वाली एक प्रकार की गूँज होती है ।
8. ध्वन्यात्मक (Phonehic) दृष्टि से स्वर-व्यंजन में स्पष्ट भेद कठिन है, किन्तु भाषा विशेष में स्वनिमिक (Phonemic) दृष्टि से उनको अलगाया जा सकता है ।

8.4 ध्वनि परिवर्तन के कारण एवं दिशाएँ

इस दृष्टि में परिवर्तन के अलावा सब कुछ परिवर्तनशील है । ध्वनि के साथ भी यही सच कार्यरत है । वह भी बदलती है । ध्वनि परिवर्तन के कारणों को दो रूपों में देखा जा सकता है 1 अभ्यांतर कारण 2 बाह्य कारण ।

1. अभ्यंतर कारण

(क) मुखसुख. यह ध्वनि परिवर्तन का सबसे प्रमुख कारण है । यह उच्चारण सौकर्य हेतु घटित होता है । मानव प्रवृत्ति है कि वह कम श्रम करके अधिक फल पाना चाहता है । यह बात भाषा के क्रम में भी उतनी ही सच है । मुख-सुख के लिए मानव कठिन शब्दों को सरल बना देता है । यथा सत्य-सच, ब्राहमण-ब्राम्हण-बांभन, स्कूल-इस्कूल आदि ।

(ख) लघुकरण की प्रवृत्ति - मानव अपनी सुविधानुसार लंबे शब्दों को संक्षिप्त कर देता है । इससे भी ध्वनि परिवर्तन होता है । यथा उपाध्याय - ओझा-झा । विविध संस्थाओं के नामों के साथ भी ऐसा ही है- जनवादी-लेखक संघ-जलेस, लोकसभा-लोस, विधानसभा-विस ।

(ग) अनुकरण की अपूर्णता - भाषा अनुकरण द्वारा अर्जित की जाती है । यदि वह अज्ञानतावश गलत या अधूरा हो तो ध्वनि परिवर्तन का कारण बन जाता है । यथा - मास्टर साहब - माट् साहब - मास्साब, स्टेशन-टेसन इत्यादि ।

(घ) अशिक्षा - कई बार अशिक्षित होने के कारण भी शब्दों का गलत उच्चारण किया जाता है । यथा गोस्वामी-गोसाई, बंद्योपाध्याय-बनर्जी, साधु-साहु-साव ।

(ङ) शीघ्रता - कभी-कभी हडबडी में बोलने पर भी ध्वनि परिवर्तन होता है । इसमें ध्वनियों के यथार्थ की संभावनाएँ बनी रहती है । यथा - उन्होंने - उन्ने, किसने - किन्ने, अबही - अभी, तब ही-तभी-किस ही - किसी इत्यादि । यहाँ लघुकरण भी दर्शनीय होता है ।

(च) भावावेश. मानव भावनाओं में बहकर भी शब्दों के गलत उच्चारण कर बैठता है । यथा - राम-रामू कृष्ण-कान्ह, कान्हा, कन्हैया, बच्चा - बाचा बाहरा ।

(छ) काव्यात्मकता - काव्य में छंद के बंध भी ध्वनि परिवर्तन का कारण बन जाते हैं । यथा - वीर-वीरा, अंगडाई - अंगराई जूही-जुही ।

(ज) बलाघात - बलाघात ध्वनि परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं । इसमें ध्वनि विशेष पर बल दिए जाने के कारण अन्य ध्वनियाँ क्षीण हो जाती है । यथा - अभ्यंतर - भीतर, उपरि - पर ।

2. बाह्य कारण

(क) भूगोल का प्रभाव - भूगोल के प्रभाववश भी ध्वनियों में परिवर्तन होता है । यथा सिंधु-हिंदु श्रीरामपुर-सेरामपोर, सप्राह-हफ्ता इत्यादि ।

(ख) सामाजिक - राजनीतिक परिस्थितियाँ - इन परिस्थितियों पर उन्नति या अवनति टिकी होती है, जिससे ध्वनि पर प्रभाव पड़ता है । उन्नति की अवस्था तत्सममयी होता है तो अवनति तद्भव सापेक्ष है । यथा-

दिल्ली-देहली, पंडित-पंडा, कलिकाता-कलकत्ता, बुद्ध-बुद्धू वाराणसी-बनारस ।

(ग) काल प्रभाव - काल प्रभाव से ढेरों शब्दों का तत्सम रूप बदलकर तद्भव हो जाता है । यहाँ भी ध्वनि परिवर्तन देखने को मिलता है । यथा - निवर्तते - बटता ।

(घ) लिपि दोष - कई लिपियों में किसी शब्द विशेष की परिवर्तन होता है । यथा - राम - Ram, अशोक-Ashoka (अशोका), मिश्र-मिश्रा, आदि । इसके अलावा अन्य भाषाओं के प्रभाव एवं सादृश्य से भी ध्वनि परिवर्तन संभव है ।

ध्वनि परिवर्तन के कारणों को जानने के बाद उसकी (ध्वनि परिवर्तन की) दिशाओं को जानना भी उतना ही जरूरी है । प्राय: इनके मूल में प्रयत्न लाघव ही हैं ।

(क) समीकरण

जब दो विषम ध्वनियाँ एक साथ संयुक्त होती है तो एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को प्रभावित करके अपने जैसा बना लेती है । यही समीकरण है जो तीन प्रकार का होता है

(1) पुरोगामी - इसमें पूर्ववर्ती ध्वनि परवर्ती ध्वनि को अपने जैसा रूप दे देती है । यथा - पत्र-पत्ता, चक्र-चक्का, पख-पक्का ।

(2) पश्चगामी. इसमें परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि को अपने जैसा बना लेती है । यथा-तल्लीन-तल्लीन, धर्म-धम्म

(3) पारस्परिक इसमें दोनों ध्वनियाँ पारस्परिक संपर्क में आने के बाद एक तीसरी ध्वनि बन जाती है जैसे सत्य-सव्य-सच

विषमीकरण यह समीकरण का विपर्यय है । यहाँ दो सम ध्वनियों में एक विषम रूप धारण करती है । यथा काक-काग, कंकण-कंगन, मुकुट-मउर ।

(ग) आगम

उच्चारण की सुविधा के लिए शब्दों के आदि, मध्य एवं अंत में जब कुछ ध्वनियाँ आती हैं तो उन्हें आगम कहते हैं । इसके मुख्यत: तीन रूप हैं - (1) आदि स्वरागम, (2) मध्यस्वरागम, (3) अंत्यतस्वरागम । आदि स्वरागम में उच्चारण की सुविधा के

लिए कुछ व्यंजनों विशेष रूप से संयुक्त व्यंजनों से प्रारंभ होने वाले शब्दों के आदि में एक स्वर का आगम हो जाता है । यथा - स्त्री-इस्त्री, स्नान-अस्नान, उल्लास-हु लास इत्यादि ।

संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में होने वाली असुविधा को दूर करने के लिए मध्य में किसी की स्थिति मध्य व्यंजनागम की भी होती है ।

यथा - मध्यस्वरागम. स्टेशन - सटेशन, पंक्ति - पंगल प्रसाद - परसाद ।

मध्य व्यंजनागम : सुनर - सुंदर, सुनरी-सुंदरी, वानर - बंदर ।

कभी-कभी मध्य अक्षरागम की भी - स्थिति होती है । यथा ताम्र-तांबडा, आलस आलकस ।

अंत्य स्वरागम : अंत में उच्चारण - सौकर्य हेतु जब कोई स्वर आ जाता है तो उसे अंत्य स्वरागम कहते हैं । इसे हलंत के द्वारा चिह्नित करते हैं । यथ महत्-महंत, हनुमत्-हनुमंत, ग्राम-गंवई, मुख-मुखड़ा ।

(घ) लोप

उच्चारण सौकर्य या उच्चारण शीध्रता स्वराधात हेतु जब किसी ध्वनि का लोप होता है तो यह (लोप की) स्थिति पनपती है । लोप तीन तरह के होते हैं - 1. स्वरलोप, 2. व्यंजन लोप, 3. अक्षर लोप । ये भी आदि, मध्य, अंत-चरणों में नजर आते हैं ।

आदि स्वर लोप - अनाज-नाज, मध्य स्वरलोप - Do not Don't' अंत्य स्वरलोप - घर-घर ।

आदि व्यंजन लोप-स्थाली-थाली, मध्य व्यंजन लोप -कति -कई अंत्य व्यंजनलोप -उष्ट्र -ऊँट । आदि अक्षरलोप - उपाध्याय-झा, मध्य अक्षरलोप-भांडागार-भंडार, अंत्य अक्षरलोप-माता-माँ ।

(ङ) समाक्षर लोप

जब दो समान ध्वनियाँ एक के बाद दूसरी आती हैं, वहाँ उच्चारण सुविधा के लिए उनमें से एक का लोप हो जाता है । यथा - खरीददार-खरीदार, नाककट-नकटा ।

(च) वर्ण-विपर्यय

इसे विपर्यय भी कहते है । इसमें स्वर या व्यंजन का स्थान असावधानीवश या जानबूझकर बदल दिया जाता है । यथा - स्नान-नहाना, वाराणसी-बनारस, मतलब-मतबल ।

(छ) महाप्राणीकरण

मुख-सुख हेतु अल्पप्राण ध्वनियों को महाप्राण के रूप में उच्चरित किया जाता है । ऐसी ही स्थिति महाप्राणीकरण कहलाती है । यथा - गृह-घर, परशु-फरसा ।

(ज) अल्पप्राणीकरण

यह महाप्राणीकरण का विपर्यय है । मुखसुख हेतु इसमें महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण बना दी जाती हैं ।

यथा स्वादिष्ठ-स्वादिष्ट, सिंधु-हिंदु ।

(झ) घोषीकरण

मुख-सुख हेतु जब अघोष ध्वनियों को घोष में तब्दील करते हैं, तो यह स्थिति तैयार होती है । यथा- शाक-साग, काक-काग, शती-सदी ।

(ञ) अघोषीकरण

इसमें घोष ध्वनियों को अघोष कर देते हैं । यथा-तद् + पर-तत्पर, मदद-मदत ।

(ट) अनुनासिकीकरण

उच्चारण सौकर्य हेतु जब निरानुनासिक शब्दों को अनुनासिक बना दिया जाता है, तब वहाँ अनुनासिकता का आगमन होता है । यह सकारण एवं अकारण दोनों ही तरह की होती है । यथा सकारण-चंद्र-चाँद, कम्पन-काँपना । अकारण-सर्प-साँव भ्रू-भौं ।

(ठ) ऊष्मीकरण

जब कुछ ध्वनियों को ऊष्म ध्वनि में बदला दिया जाता है तब ऊष्मीकरण होता है । यथा - Octo अष्ट ।

(ड) मात्रा-भेद

मुख-सुख हेतु कभी-कभी दीर्घ स्वर को ह्रस्व एवं ह्रस्व को दीर्घ बना दिया जाता है । यही मात्रा भेद है जिससे ध्वनि परिवर्तन होता है । यथा - पुत्र-पूत, अद्य-आज, आलाप-अलाप ।

8.5 ध्वनि नियम- ग्रिम, ग्रासमेन एवं बर्नर

भाषाओं में परिवर्तन का होना एक सामान्य प्रक्रिया है । ये परिवर्तन अवश्यभावी है । परिवर्तन कभी तो सीमित होते हैं पर कभी विराट होते हैं । किसी भाषा-विशेष में किसी समय विशेष में कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ विशेष प्रकार के ध्वनिगत बदलाव आते हैं, जो ध्वनि नियम कहलाते हैं । अत: ध्वनि-नियम किसी-भाषा विशेष से संबंधित होते हैं, ये (किसी) काल-सापेक्ष भी होते हैं, ये परिस्थिति विशेष में कार्यरत होते हैं, विशेष ध्वनियों को ही प्रभावित करते हैं । ध्वनि के कुछ विशिष्ट नियम है जो ग्रिम, ग्रासमेन एवं बर्नर ने दिये है । इन्हें निम्नतया देखा जा सकता है -

ग्रिम नियम

ग्रिम ध्वनि नियम' प्रो० याकोब ग्रिम की देन है । यह दो भागों में विभक्त है । यह नाम (ग्रिम नियम) प्रो० मैक्समूलर ने दिया था ।

1. **प्रथम वर्ण परिवर्तन** - यह प्रागैतिहासिक काल में कभी हुआ, संभवत: छठी और तीसरी शताब्दी ई.पू के बीच । इसका प्रभाव गाथिक निम्न जर्मन और अंग्रेजी डच आदि भाषाओं पर भी पड़ा है । भारोपीय मूल भाषा की व्यंजन ध्वनियाँ इसीलिए संस्कृत, ग्रीक एवं लैटिन में सुरक्षित है । अंग्रेजी का जन्म ही निम्न जर्मन से है । अत: संस्कृत और अंग्रेजी को तुलना से यह, (परवर्ती) परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है । इस वर्ण परिवर्तन में एक तरफ संस्कृत, लैटिन, ग्रीक ल्वोवानिक भाषाएँ है, इनमें मूल ध्वनि

सुरक्षित है । दूसरी ओर गाथिक निम्न जर्मन, अंग्रेजी जैसी भाषाएँ हैं जिनमें यह परिवर्तन हुआ है ।

द्वितीय वर्ण परिवर्तन : दूसरा वर्ण परिवर्तन सातवीं शताब्दी ईस्वी के लगभग हुआ। यह वर्ण तब्दीली केवल जर्मन भाषा के दो रूपों उच्च एवं निम्न में हुई। निम्न जर्मन का प्रतिनिधि रूप अंग्रेजी से उच्च जर्मन में घटित हुआ। यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि निम्न जर्मन अर्थात् समतल जर्मनी (उत्तरी जर्मनी) की भाषा और जर्मनी का दक्षिणी पहाड़ी भाग अर्थात् उच्च जर्मन का क्षेत्र । अंग्रेजी, डच, डैनिश, स्वीडिश भाषाएँ शाखाएँ हैं निम्न जर्मन की तो सांप्रतिक जर्मन भाषा उच्च जर्मन है ।

प्रथम वर्ण परिवर्तन - ग्रिम नियम के मुताबिक पहला वर्ग परिवर्तन निम्नवत हुआ

मूल भारोपीय	**जर्मन**
क त, प (अघोष अल्पप्राण) का	ख (ह) थ, फ (अघोष महाप्राण)
	घ, ध, भ (घोष अल्पप्राण)
घ, ध, भ (घोष महाप्राण) का	ग द, व (घोष महाप्राण)
ग द, ब (घोष अल्पप्राण)का	क त, प (अघोष अल्पप्राण)

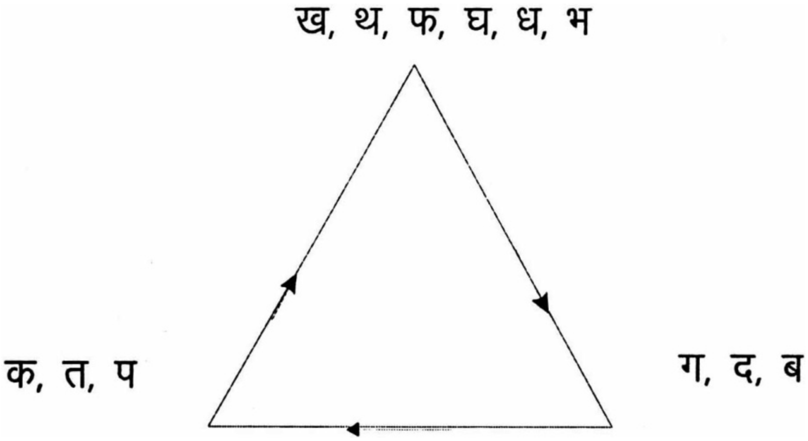

उपर्युक्त तथ्य इस चित्र के द्वारा और भी साफ-साफ समझा जा सकता है ।

यदि भारत यूरोप की प्रतिनिधि भाषा के रूप में संस्कृत को एवं जर्मन की प्रतिनिधि भाषा के रूप में अंग्रेजी को रखा जाए तो हम सहजता से ग्रिम-नियम को समझ सकते है ।

	भारोपीय (संस्कृत)	**जर्मन (अंग्रेजी)**
क से ख या ह	कः/कद्	हु (who)ह्वाट् (What)
त से थ	त्रि/तनु	थ्रि (three)थ्रिन (thin)
प से फ	पद/पत्र	फुट (foot)फेदर (Feather)
घ या ह से ग	हंस	गुस (Goose)
ध से द	विधवा'बंध	विडोउ (Window)बैड (Bend)
भ से ब	भातृ /भू	ब्रदर (Brothn)ब्राउ (Brow)
ग से क	गौ/युग	काउ (Cow)योक (Yoke)

द से त	द्वौ/स्वेद	टू (two)स्वेट (sweat)
ब से प	तुर्बा (लातिन)	थोर्प (thorp)

दूसरा वर्ण - परिवर्तन. दूसरे वर्ण परिवर्तन में हम जर्मन के ही दोनों रूपों (उच्च एवं निम्न) को आधार बना कर ग्रिम नियम को समझ सकते हैं

	निम्न जर्मन (अंग्रेजी)	उच्च जर्मन (आधुनिक जर्मन)
क से ख	बुक (book)	बुख (Buch)
त से थ	(स) वाटर (Water)	व्हासेर (wasser)
प से फ	स्प्रिंग (Spring)	फ्यूलिंग (Fruling)
	स्लिप (slip)	श्लाइफेन (Schlifan)
थ से द	थ्रि(three)	देई (drei)
	नार्थ (north)	नोरदेन (Nordin)

ग्रासमेन नियम :- हेर्मान ग्रासमान या ग्रासमेन (18०9-1877)ए भी एक जर्मन विद्वान ही था । इसने ग्रिम के नियम का संशोधन किया । इस क्रम में उन गलतियों को भी सुधारा जो ग्रिम-नियम में थीं । जैसे ग्रिम नियम के अनुसार ब् को p और द् को त् होना चाहिए परंतु गाथिक में भी ब और द् ही मिलते हैं ।

संस्कृत	गॉथिक
बोधति	बिउदन
दभ्	दउब्स

ग्रासमेन ने संस्कृत एवं ग्रीक भाषाओं का परीक्षण करने पर पाया कि संस्कृत और ग्रीक भाषाओं में दो अव्यवहित सोष्म ध्वनियों में से समान्यतया प्रथम ऊष्म ध्वनि (ह् ध्वनि) निकलती है । जहाँ पर द्वितीय वर्ण रो ऊष्म ध्वनि का प्रवेश हो जाता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ग्रिम द्वारा गिनाए गए अपवाद संदर्भो से इतर भी अपवादों की संभावनाओं पर ग्रासमेन ने विचार किया उनसे जो कार्य छूट गया वह कार्य कार्ल बर्नर ने किया।

3. **बर्नर का नियम :** कार्ल बर्नर भी जर्मन भाषा वैज्ञानिक था । उसका समय 1848 से 1896 का था । उसने भी ग्रिम नियम का संशोधन किया । उसने भी ग्रिम नियम का संशोधन किया उसने कहा कि ग्रिम नियम का आधार Accent (उदात्त स्वर) था । उसके नियम के अनुसार मूल भारोपीय भाषा के शब्दों के क्, त्, पृ को जर्मन भाषाओं में ह, T, P, में तभी बदला जाता है जब मूल भाषा में अव्यवहित पूर्व और कोई उदात्त स्वर होता है यदि उदात्त स्वर क, त्, प् के बाद होगा तो इनकी जगह क्रमश: ग्, द, ब् का आगमन होगा । नीचे दिए गए उदाहरण पर ध्यान दें संस्कृत लैटिन गाथिक अंग्रेजी ध्वनि परिवर्तन :-

युवकस्	Jurencus	Juggs,	young	क- ग
सप्तन्	Septem	Silum	Seven	प -व
शतम्	Cemtum	Jtund	Hundred	क् -ग!

बर्नर के नियम में भी कुछ अपवाद है जिनका समाधान मिथ्या सादृश्य द्वारा संभव हुआ है । विचार

8.6 विचार संदर्भ शब्दावली

1. बलाघात - उच्चारण करते समय किसी ध्वनि विशेष पर इस तरह खास बल पड़ना या देना जिससे अन्य ध्वनियाँ क्षीण हो जाएं ।
2. पंचमाक्षर - व्यंजन के प्रत्येक वर्ग का पांचवा अनुनासिक अक्षर ङ, न,. ण, न तथा म।
3. उच्चारण सौकर्य - अपने मुख, सुख, उच्चारण सुविद्या आदि के कारण, जब वक्ता उच्चारण में बदलाव कर दें ।
4. भण् - कहना
5. निर्मित - बनावट
6. वागवयव - वाणी से जुड़े अंग, उच्चारण में सहायक शरीर के हिस्से
7. श्रवण - सुनने की प्रक्रिया ।
8. औच्चाणिक - उच्चारण से संबंधित
9. आद्यंत - शुरू से आखिर तक
10. कर्ण पटल - कान के भीतर स्थित वह पर्दा जो ध्वनि के श्रवण में सहायक होता है ।
11. निर्गमन - बाहर निकलना
12. विवृत - खुला हुआ
13. शैथिल्य - शिथिलता, ढीलापन
14. काकल - स्वर यंत्र मुख
15. वत्सर्य - दाँतों की जड़ में मसूढ़े के पास का खुरदरा हिस्सा ।

8.7 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि ध्वनि भाषा का मूल है । भाषा की बुनियादी ध्वनि पर ही टिकी होती है । इसे भाषा के अर्थ-भेदक तत्त्व में गिना जाता है । इसके अभाव में भाषा निर्मित ही नहीं हो सकती । आपने ध्वनि के औच्चारणिक प्रासरणिक एवं श्रावणिक रूपों का अध्ययन किया । ध्वनियों के वर्गीकरण से परिचित हुए और समझा कि स्वरों तथा व्यंजनों में किस रूप में तात्विक अंतर होता है । स्वरों का वर्गीकरण जिह्वा के विविध अवस्थानों, उसे व्यवहृत भाग की ऊँचाई की दृष्टि से ओष्ठों की स्थिति की दृष्टि से मूर्धन्यता, कोमल तालु की स्थिति आदि से किस प्रकार किया जाता है, इससे अप अवगत हुए। व्यंजनों का वर्गीकरण भी स्थान, करण, प्रयत्न एवं उच्चारण शक्ति के आधार पर माना गया है । इस इकाई में ध्वनि परिवर्तन के भीतरी और बाहरी कारणों पर विचार किया गया । आपने यह जाना कि सृष्टि के अनेकानेक परिवर्तनशील पदार्थो की तरह भाषा भी परिवर्तनशील है । यह परिवर्तन विविध कारणों से होता है । आपको परिवर्तन के कारणों और दिशाओं से अवगत कराया गया । ध्वनि परिवर्तन के कुछ विशिष्ट सिद्धांत हैं जिसमें ग्रिम, ग्रासमेन एवं बर्नर जैसे भाषा शास्त्रियों के

सिद्धांत ध्वनि नियम के रूप में प्रसिद्ध है । आपको इन नियमों का संक्षिप्त परिचय दिया गया । इस इकाई की परवर्ती इकाई जो स्वनियों के विवेचन से संबंधित है जो पढने के बाद आप ध्वनि विज्ञान के बारे में एक सामाजिक समझ बना पाने में निःसन्देह सक्षम होंगे ।

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घात्तरी प्रश्न

1. ध्वनि किसे कहते है? इसके विविध आयामों का परिचय दीजिए ।
2. 'ध्वनियों का वर्गीकरण' शीर्षक से एक संक्षिप्त निबंध लिखिए ।
3. ध्वनि परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं का परिचय सोदाहरण दीजिए ।
4. उच्चारण शक्ति के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए ।
5. किन्हीं दो ध्वनि नियमों का परिचय दीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. लोडित और उत्क्षिप्त ध्वनियाँ कौन-_कौन सी होती है? इनका उच्चारण किस प्रकार होता है ।
2. स्वरों और व्यंजनों में तात्विक अंतर बताइए ।
3. समीकरण किसे कहते हैं? इसके भेदों का सोदाहरण परिचय दीजिए ।
4. ध्वनि परिवर्तन के किंही दो कारणों पर विचार कीजिए ।
5. 'ध्वनि नियम से क्या तात्पर्य है? बर्नर के ध्वनि नियम का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. ‘त’ और 'थ’...................... ध्वनियाँ है ।
2. .... ध्वनियाँ स्वरतंत्री के मुख से उच्चरित होती हैं ।
3. कई बार........................... होने पर भी शब्दों का गलत उदाहरण हो जाता है ।
4. बर्नर जर्मन......................... ?ऐ....... था ।
5. भाषा की सार्थक लघुतम इकाई................................ है ।

घ. सही ' गलत पर निशान लगाइए

1. भारतीय व्याकरण में ध्वनि विज्ञान का अध्ययन प्राचीन काल से ही होता रहा है । सही/गलत
2. दंतोष्ठ्प ध्वनियाँ ऊपरी ओष्ठ की मदद से उच्चरित होती हैं । सही गलत
3. भूगोल के प्रभाव से कभी ध्वनियाँ नहीं बदलती । सही'/गलत
4. अन्त: स्फोटात्मक व्यंजन स्पर्श व्यंजन भी कहलाते हैं । सही गलत
5. व्यंजन ध्वनियाँ स्वर ध्वनियों की तुलना में कहीं अधिक मुखर होती है । सही /गलत?

8.9 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान, किताबमहल, पटना
2. डॉ. राजमणि शर्मा; आधुनिक भाषा विज्ञान वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. तेजपाल चौधरी; भाषा और भाषा विज्ञान, विकास प्रकाशन, कानपुर

इकाई- 9 ध्वनि प्रक्रिया

इकाई की रूप रेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 वागवयव एवं उनके कार्य
9.3 ध्वनि गुण या स्वन गुण 94 मान स्वर
9.5 स्वनिम स्वरूप और संकल्पना
9.6 स्वनिम के सम्बन्ध में सहायक सिद्धांत
9.7 स्वनिम में भेद
9.8 स्वनिमिक विश्लेषण विधि
9.9 विचार संदर्भ शब्दावली
9.10 सारांश
9. 11 अभ्यासार्थ प्रश्न
9.12 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- ध्वनि संरचना में स्वर के उच्चारण संवहन एवं ग्रहण को भली भांति समझ सकेंगे ।
- स्वर के उच्चारण में सहायक वागवयवों एवं उनके कार्यो से परिचित हो सकेंगे ।
- स्वन गुण एवं ध्वनि की एक विशिष्टता मान स्वरों का अध्ययन का भाषा में स्वर ध्वनियों के महत्त्व की जांच कर सकेंगे ।
- स्वनिम में स्वरूप और संकल्पना से परिचित हो सकेंगे ।
- स्वनिम के अध्ययन में सहायक सिद्धांतों के बारे में पढ़कर स्वयं स्वनियों का वर्गीकरण करने में सक्षम हो सकेंगे ।
- स्वनिम में भेदों को पढ़ कर स्वनियों के प्रकारों की पहचान कर सकेंगे ।
- स्वनिमक विश्लेषण विधि को समझा सकेंगे ।

वस्तुतः इकाई 8 तथा 9 दोनों को एक साथ संपूरक के रूप मे पढ़कर आप ध्वनि (स्वन) की बारीकियों से अच्छी तरह से अवगत हो जायेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

इकाई 08 में हमने स्वन संरचना (ध्वनि संरचना) का स्वरूप, उसकी शाखाएँ एवं ध्वनियों के वर्गीकरण (स्वनों का वर्गीकरण) को अध्ययन तो किया ही उसके साथ ही हम स्वनिम परिवर्तन (ध्वनि परिवर्तन) के कारणों एवं उसकी दिशाओं से भी परिचित हुए । इस अध्ययन में हम वागवयणों, स्व गुणों को तो जान ही पायेंगे, उसके साथ ही स्वनिक तथा संस्वन के बारे मे भी जानकारी हासिल करेंगे ।

वागिन्द्रियाँ ही वे साधन है जिसमें भाषा के शब्दों का प्रकाशन होता है । ये शरीर का अंग है । अत: उनकी स्थिति एवं कार्यो का सही तरह से समझना आवश्यक है । ये दो भागों में बंटी है- (1) करण एवं (2) स्थान । करण वह वागवयन है जो प्राय: गतिशील होते हैं । वे विभिन्न स्थितियाँ एवं लय धारण कर सकते हैं । ओष्ठ जिह्वा इसके अन्यतम उदाहरण हैं । स्थान वागवयो में उन वाग्यंत्रों को देख सकते हैं जो स्थिर होते है । जीभ इन स्थानों को स्पर्श कर सकती है । दंत, तालु एवं मूर्धा इस प्रकार के अवयव हैं । ऊपर के दाँत, ओष्ठय, तालु तीनों अपने ही स्थान पर स्थिर रहते हैं, दृढ रहते हैं । अत: ये स्थान वागवयव हैं । ध्वनि गुण ध्वनियों के लक्षण हैं । ध्वनि गुणों के द्वारा ही भाषा को मूर्त रूप प्राप्त करने में सफलता मिलती है । हम बोलते वक्त कभी किसी शब्द पर बल देते हैं, तो कभी सुर, अनुतान या संगम का प्रयोग करते हैं । इससे वाक्य का सुर तक बदल जाता है । ये ही तथ्य ध्वनि गुण है ।

स्वनिम का संबंध भाषा विशेष से होता है, तथा प्रत्येक भाषा की निजी स्वनिमिक व्यवस्था होती हैं । स्वनिम किसी भाषा के अर्थभेदक तत्त्व हैं । ये व्यतिरेकी होते हैं । एक स्वनिम के अनेक संस्वन होते है, जो पृथक-पृथक होते हैं । ये संध्वनि भी कहे जाते हैं ।

9.2 स्वन (ध्वनि) के विविध वागवयव एवं उनके कार्य

ध्वनि के साधक है वागवयव । ध्वनि की उत्पति, उसका ठहराव उसका संघर्ष इत्यादि सभी बातें वागवयवों से ही जुड़ी है । वागवयवों के द्वारा ही भाषा-ध्वनियों का उच्चारण होता है । विविध प्रकार के वागवयवों के कार्य भी विविध हैं ।

(क) **फेफड़े :** ध्वनि उत्पादन हेतु वायु अपेक्षित है । फेफड़े ही वायु से जुड़े कार्य करते हैं । वे ही वाr' की आपूर्ति का काम करते हैं । हम जिस दूषित वायु का उत्सर्जन करते है, वही भाषा का प्राण तत्त्व हैं ।

(ख) **श्वासनली** फेफड़े श्वासनली से जुडे होते हैं । दूषित वायु इसी श्वासनली से बाहर आती है । इस प्रकार से ध्वनि के संवहन का कार्य भी यह करती हैं ।

(ग) **ग्रसनी :** यह श्वासनली के समानान्तर अवस्थित होती हैं । यह भोजन को अमाशय तक ले जाती हैं । इसका गलबिल से संबंध हैं, जिसका रिश्ता ध्वनि से हैं ।

(घ) **स्वरतंत्री या स्वरतंत्र**. स्वरतंत्र श्वासनली के ऊपर एवं अभिकाकल के कुछ नीचे अवस्थित होता हैं । यह ध्वनि उत्पादक हैं । इसे टेंटुआ भी कहते हैं । स्वर तंत्र मे ही ओष्ठयाकार की समान्तर दो मांसपेशियां होती हैं । यह श्वास मार्ग पर रबर के दो छल्ले जैसी या दो परते जैसी होती हैं । ये ही स्वरतंत्रियाँ हैं । स्वरतंत्रियाँ भारी वस्तु का उठाते समय वायु मार्ग बंद कर मानव शक्ति बढाने के साथ ध्वनि उत्पादन भी करती हैं । ये फुसफुसाहट या भनभनाहट भी पैदा कर सकती हैं ।

(च) **काकल एवं अभिकाकल** : स्वरतंत्रियों के मध्य जो खुला अंश होता है, उसे काकल कहते हैं । भाषण के वक्त यह पूर्ण या अपूर्ण रूप में बाधित रहता हैं ।

अभिकाकल जिह्वामूल के पास स्थित एक मांसल भाग हैं । यह यंत्र ध्वनि उत्पादन तो नहीं करता परन्तु स्वरतंत्र की रक्षा जरूर करता हैं । 'आ के उच्चारण में यह जिह्वा के साथ पिछे हटता है एवं 'ई' के उच्चारण मे आगे की ओर बढ़ता है ।

(छ) **गलबिल** : यह अभिकाकल के ऊपर की और नासाविवर के नीचे जिह्वामूल के नीचे की ओर जो खाली स्थान है वही होता हैं । गलबिल को संकीर्ण करके किसी भी ध्वनि पर प्रभाव डाला जा सकता है ।

(ज) **कौवा** : इसे अलिजिह्वा भी कहते हैं । जिस स्थान से नासाविवर और मुखविवर का रास्ता अलग होता है, उस स्थान पर छोटी जीभ की आकृति का एक गोल पिंड होता हैं । यह पश्च जिह्वा के समीप होता हैं, यही कौवा हैं । यह कोमलतालु से संयुक्त होता है, उसी के साथ उपर नीचे होता रहता है । यह नासिका का मार्ग खोलने व बन्द करने का काम करता है । यह अनुनासिक स्वरों का नासिक्य व्यजनों के उच्चारण में सहायक हैं । यह क,ख,ग के उच्चारण में सहायक हैं । कई स्वरों एवं व्यंजनों का उच्चारण भी इसकी मदद से ही होता हैं ।

(झ) **नासाविवर :** गलबिल से प्रारम्भ होकर नासिकाग्र तक फैला हुआ होता है, यह विवरण इससे ध्वनियाँ अनुनासिक या नासिक्य हो जाती हैं ।

(ञ) **कोमल तालु** : यह गलबिल की ओर से आगे आने पर दिखाई पडता हैं । यह कठोर तालु की समाप्ति से गलबिल तक फैला होता हैं । यह कोमल मांस पिंड है । यह एक चल अवयव हैं । यह मुखविवर एवं नासिका विवर के बीच एक दरवाजा हैं । स्वरों (अ,इ आदि) और स्पर्श व्यंजनों (क,ख,ग) के उच्चारण में यह सहायक होता हैं । यह नासिक्य ध्वनियों के उत्पादन में भी मदद करता हैं ।

(ट) **मूर्धा :** यह कठोर तालु के पीछे की ओर का अंतिम भाग हैं । ट वर्ग की ध्वनियाँ इस स्थान से उच्चारित होती हैं । इसके उच्चारण में जिह्वा उलट कर मूर्धा तक जाती हैं । अतः इसे 'मूर्धन्य' कहते हैं ।

(ठ) **कठोर तालु :** यह कोमल तालु से आगे स्थित कठोर अस्थि संरचना होती हैं । यह वर्त्स से कोमल तालु तक मुख विवर में फेला है । यह स्थिर एवं निश्चेष्ट होता हैं । यह तालव्य ध्वनियों का कारक हैं । स्वरों मे इ ई एवं व्यंजनों में चवर्गीय ध्वनियाँ तथा श ऐसी ही (तालव्य) ध्वनियाँ हैं ।

(ड) **वर्त्स:** यह दांतों के मूल से कठोर तालु के प्रारंभ तक फैला होता है । यह खुरदुरा होता है । यह एक निफिय अवयव हैं । जिह्वा के विविध भागों के स्पर्श से यह ध्वनियों कों विविध रूप देता हैं । स, ज़, र, ल, न जैसी ध्वनियाँ वर्त्स्य ही हैं ।

(ढ) **दंत :** दातों का ध्वनि शास्त्र में बड़ा ही महत्त्व है । दांत (सामने के) जिह्वानोक ओठों के साथ मिलकर ध्वनि उत्पादन में अपनी भूमिका निभाते हैं । त,द,न एवं स का उच्चारण दांतों की ही सहायता से होता है।

(ण) **ओष्ठ** : यह वागवयव बाहर अवस्थित होता है । नीचे का ओष्ठ उपरी ओष्ठ से ज्यादा क्रियाशील होता है । यह खुलकर या बन्द होकर ध्वनि उत्पादन में सहायता देता है । यथा खुलकर-आ, बंद होकर- प वर्ग की ध्वनियों का उच्चारण इसके द्वारा होता हैं । ओठों की विविध स्थितियों मे विविध ध्वनियाँ बाहर आती हैं ।

(ग) जीभ : जिह्वा या जीभ से ही सारी ध्वनियाँ उच्चारित होती हैं । यह स्वादेन्द्रिय एवं

भाषणेन्द्रिय भी हैं । यह मुख के निचले भाग में पडी रहती हैं । यह विविध भागों को स्पर्श कर विविध ध्वनियों का उच्चारण करती हैं । इसके कई रूप हैं:

1. जिह्वानोक: यह जीभ का सबसे आगे का नुकीला भाग है । इसकी विविध स्थितियों से आ,त,थ,द,स जैसी ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं ।
2. जिह्वाफलक: जिह्वाग्र बिन्दु से यह संयुक्त होता है, और यह मुख से बाहर भी निकाला जा सकता हैं । इससे स का उच्चारण संभव होता हैं ।
3. जिह्वाग्र: जीभ का यह अंश कठोर तालु के नीचे पड़ता है । यह डेढ़ इन्च का होता है । इसकी विविध स्थितियों से च,छ जैसी ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं ।
4. जिह्वामध्य: यह जिह्वाग्र एवं जिह्वापश्च के बीच का भाग हैं । इसके कठोर तालु एवं कोमल तालु के बीच का सेतु भी कहा जा सकता हैं । यह मध्य स्वर या केन्द्रीय स्वरों के उच्चारण का कारक हैं ।
5. जिह्वापश्च: यह जिह्वा का शेष भाग है । यह मध्यजिह्वा के बाद स्थित होता है । इसकी विविध स्थितियों से उ, ओ, क्, ख, ग! क् ख, ग जैसी ध्वनियों का उच्चारण संभव हो पाता है ।

9.3 स्वन (ध्वनि) गुण

ध्वनि गुण ध्वनियों के लक्षण ही है । जब हम भाषण देते है तब हमारे मुख से लगातार वाक्य प्रवाह निःसृत होता है । इनमें से कुछ वाक्य ऐसे भी होते है जहाँ कुछ शब्दों या अक्षरों पर काफी बल दिया गया होता है । कभी-कभी इन्ही कारणों से एक ही वाक्य कही अर्थ देता हैं । जिन तत्त्वों से वाक्य मे यह परिवर्तन आता है एवं वे मुर्त होते है, उन्हे हम ध्वनि गुण कहते हैं । इसके कही रूप होते है । इन रूपों को हम निम्नवत देख सकते हैं।

(क) **मात्रा:** इसे दीर्घता भी कहते है । किसी भी ध्वनि के उच्चारण में वक्त का जो हिस्सा खर्च होता हैं, वही मात्रा हैं । प्रत्येक ध्वनि के उच्चारण मे समान समय नहीं लगता, किसी मे कम तो किसी मे ज्यादा लगता हैं । विद्वानों ने मात्रा को तीन भागो में बाटा हैं- हस्व, दीर्घ एवं लुप्त । ह्रस्व की अपेक्षा दीर्घा के उच्चारण मे अधिक समय लगता है, दीर्घ मात्रा के उच्चारण से ज्यादा समय लुप्त में लगता हैं । दीर्घ ध्वनियों की प्रकृति तथा विवरण पर आधारित होती हैं । स्वर ध्वनियों मे सर्वाधिक दीर्घता होती हैं । तत्पश्चात् संघर्षी ध्वनियों के उच्चारण में वक्त लगता हैं । ये ध्वनियाँ प्रवाहमान होती हैं । अत: उच्चारण में समय लगाती हैं । इनसे थोडा से कम वक्त पार्श्विक, अनुनासिक तथा लुंठित ध्वनियों में लगता हैं ।

(ख) **आघात :** आघात का अर्थ होता है चोट । यह दो प्रकार का होता है- एक मे तान का प्रयोग होता है तथा दूसरे में श्वास-वायु का । इन्हें क्रमश: स्वराघात व बलाघात कहा जाता हैं । तान या मात्रा के न बदलने पर भी स्वराघात में फर्क पड़ सकता हैं । बलाघात में किसी ध्वनि पर निःश्वास वायु द्वारा विशेष धक्का दिये जाने के कारण उच्चारण संपन्न होता हैं । जबकि स्वराघात मे स्वर की उच्चता का प्रयोग होता है ।

(ग) **स्वर:** स्वर ही सुर भी है । यह तंत्रियों के कम्पन्न की आवृति पर टिका होता हैं । यह कम्पन्न अधिक हो तो स्वर उच्च होगा और यदि कम होता है तो स्वर निम्न होगा । स्वर के दो भेद होते है-आरोह एवं अवरोह । स्वर की उच्चता आरोह है तो उसका उतार अवरोह है । इसी प्रकार स्वर के अन्य तीन भेद भी हैं- उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । उदात्त तीन बातों पर (पतंजलि के अनुसार) टिका होता है- आयाम (ध्वनि आरोह), दारूणता (स्वर तंत्री में तनाव), अणुता (स्वरतंत्री में संकोच) । उदात्त का तो अर्थ उच्च पा श्रेष्ठ है । अनुदात्त निम्न सुर है । पतंजलि ने इसके सात भेद बताये हैं- उदात्त, उदात्ततर, अनुदात्त, अनुदाततर, स्वरित, स्वरितस्त उदात्त एवं श्रुति । इन सब मे निम्नतर अनुदात्ततर है । स्वरित मे उदात्त में अनुदात्त का समाहार होता है । यह एक समध्वनि है । इसमे आरोह एवं अवरोह होता है । अत: इसे स्वरित कहा जाता है। सुरों की लहर भी होती है जिसके द्वारा वाक्य में आरोह, अवरोह का क्रम बनता है । प्रत्येक वाक्य में यह आद्यंत रहने वाली चीज है । सुर लहर के दो भेद हैं- शब्द सुर लहर व वाक्य सुर लहर ।

(घ) **संगम :** बोलते वक्त एक ध्वनि के दूसरी ध्वनि का आगमन होता है । वक्ता एक ध्वनि की समाप्ति पर ही दूसरी ध्वनि का उच्चारण करता है । यह पूरी प्रक्रिया दो प्रकार से समाप्त होती है- कभी तो यह सीधे-सीधे होती है और दोनों ध्वनियों के बीच कुछ भी नहीं आता । जैसे- 'तुम्हारे' में 'म' के बाद 'ह आ जाता है । किंतु कभी-कभी एक ध्वनि व दूसरी ध्वनि के उच्चारण के बीच में कुछ होता है । यथा तुम 'हारे' यहाँ अर्थ भेद तो होता है, अर्थात् दोनों ध्वनियों के बीच के मौन ने अर्थभेद पैदा किया । यही मौन का विराम संगम है ।

(ङ) **वृत्ति** : वृत्ति का अर्थ है क्षिप्रता (गति) यह ध्वनि उच्चारण मे बहुत महत्त्वपूर्ण होती है । कुछ विद्वान तो इसे ध्वनि गुण ही नहीं मानते हैं । वृत्ति के तीन भेद हैं- 1 द्रुत, 2. मध्यम, 3. विलंबित । हम तीव्र गति से बोलते हैं, या तो मध्यम गति से या फिर विलंबित गति से धीरे-धीरे । वृत्ति के सम्यक निर्वाह पर ही उच्चारण की सटीकता एवं तदर्थ अर्थबोध की सटीकता टिकी होती हैं ।

9.4 मान स्वर

मान स्वरों की संकल्पना स्वर विज्ञान की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इसके अंतर्गत आठ स्वरों को मानक स्वर की मान्यता दी गई है जिनके द्वारा हम संसार की किसी भी भाषा के स्वरों के उच्चारण को ठीक-ठीक आकलन कर सकते हैं । ये आठ स्वर जिह्वा के कार्यो पर आधारित है । किस स्वर के उच्चारण में जिह्वा ऊपर उठकर मुख विवरण को संकरा बनाती है और जिसका उच्चारण करते समय विवरण खुला या अधखुला रहता है । कौनसा स्वर जिह्वा के अग्र भाग द्वारा बोला जाता है, कौनसा मध्य भाग से और कौनसा पश्च से । इसका वैज्ञानिक विश्लेषण ही मानस्वरों की अवधारणा का आधार है ।

भारतीय व्याकरणारचार्यों ने अर्द्धविवृत अर्ध संवृत की संज्ञा से स्वरों का जो वर्गीकरण किया उसी के अग्र और पश्च के विभाजन का संयोजन कर मान स्वरों का चतुर्भुज तैयार किया गया । अत: मान स्वरों की संकल्पना को आधुनिक भाषा विज्ञान का मौलिक अवदान नही माना जा सकता क्योंकि इसका बीज भारतीय व्याकरण में ही मौजूद है ।

आधुनिक काल में इस अध्ययन को जॉन वेलिस ने शुरू किया । उन्होंने स्वरों के उच्चारण में जिह्वा की स्थितियों का अध्ययन किया जो काफी कुछ विवृत-सवृत और अग्र-मध्य-पश्च की भारतीय अवधारणा से मेल खाता हैं । कालान्तर में हेलबेग द्वारा स्वरों का एक त्रिभुज बनाया गया जिसमें पांच स्वर थे । त्रिभुज इस प्रकार है—

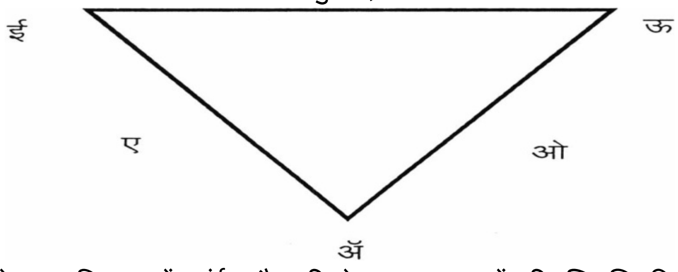

ऊपर दिये गए त्रिभुज में बांई और की रेखा अग्र स्वरों की स्थिति दिखाती है और दांई और की रेखा पश्च स्वरों की । ऊपर की रेखा जिह्वा के ऊपर उटने की स्थिति की सूचक है और मुख विवरण के संकरा होने का संकेत देती है । जबकि नीचे का बिन्दु मुख विवरण के खुला रहने का इस त्रिभुज के आधार पर ई और अ संवृत स्वर है, जिनमें ई अग्र स्वर और अ पश्च स्वर । ए और ओ अर्थ संवृत स्वर का अर्थ निवृत स्वर है जिनमें २ अग्र स्वर और ओ पश्च स्वर । अ निवृत मध्य स्वर है ।

इस त्रिभुज का स्वर विज्ञान कि दुनियां में भव्य स्वागत हुआ । इसकी लोकप्रियता इतनी व्यापक हुई की बाद में जो चतुर्भुज बनाया गया उसे भी त्रिभुज कहा गया आज तक यह स्वर त्रिभुज (Vowil Iromgle) के रूप मे प्रसिद्ध हैं । मान स्वरों का यह चतुर्भुज बाद में मुख्यता भाषाविद् डेनियल जोन्स द्वारा तैयार किया गया, इसमें तीन और स्वरों को शामिल कर आठ स्वरों की उच्चारण की स्थिति को निम्नलिखित रूप से दर्शाया गया ।

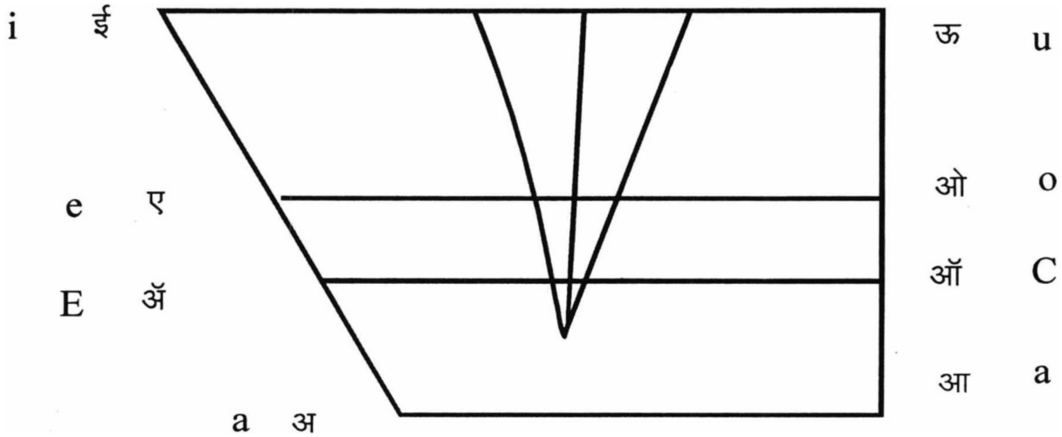

यह चतुर्भुज बांई और मुंह किए आदमी के मुख विवरण का नक्शा हैं । इसमें आड़ी रेखाएं संवृत, अर्धसंवृत, अर्धविवृत और विवृत स्वरों की उच्चारण स्थिति दर्शाती हैं और खड़ी

रेखाएं अग्र और पश्च की । इस नमो से हम एक नजर में जान लेते हैं कि ई- ऊ संवृत स्वर हैं, ए-ओ अर्थ संवृत, अँ-ऑ अर्थ निवृत तथा अ-आ पूर्ण रूप से विवृत ।

यदि हम किसी भाषा में किसी स्वर का सही उच्चारण जानना चाहते हैं तो उसे चतुर्भुज में एक निश्चित बिन्दु पर चिह्नित किया जा सकता है । उदाहरण के लिए हिन्दी के अ का स्थिति अग्र विवृत न होकर मध्य अर्ध विवृत की है । लेकिन रहना-सहना में प्रथम व्यंजन का अ अग्र अर्ध विवृत है जो मान स्वर अ के निकट है ।

9.5 स्वनिम स्वरूप और संकल्पना

बोलचाल में मनुष्य अनगिनत ध्वनियाँ उच्चारित करता है लेकिन व्याकरण की दृष्टि से किसी भी भाषा की ध्वनियाँ पचास, सात से अधिक नहीं होती । उदाहरण स्वरूप यदि हिन्दी के कलम, कागज, किताब, कुर्सी, कृपा, कोयल, कौशल, कांच आदि में आई 'क की ध्वनि को देखे तो स्पष्ट होगा हर शब्द में 'क' ध्वनि का उच्चारण कुछ-कुछ अलग है । कमल मे 'क' ध्वनि कोमल धातु के पश्च भाग से उच्चारित होती है तो किताब की क ध्वनि कोमल धातु के अग्र भाग से । यही स्थिति हम 'ख' के प्रयोग वाले शब्दों या अन्य किसी व्यंजन ध्वनि के प्रयोग वाले शब्दों में देख सकते है, जहाँ एक ही ध्वनि किंचित भिन्न रूप से उच्चरित होती है ।

इस तरह कहा जा सकता है वैज्ञानिक दृष्टि से हर भाषा में हजारों ध्वनियों का प्रयोग होता है, लेकिन व्यवहारिक रूप से इतनी ध्वनियों को किसी भाषा में स्थान देना अत्यन्त मुश्किल है । स्वनिम सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर देता है । इस बात को सही मानेंगे की भिन्न-भिन्न ध्वन्यात्मक संदर्भो में उच्चारित 'क' 'ख' 'ग' अन्यथा ऐसी ही कोई और ध्वनियाँ परस्पर भिन्न होते हुए भी काफी समय रखती हैं । इन ध्वनियों को एक परिवार की संज्ञा दी जा सकती है, जैसे 'क' परिवार, 'ख- परिवार या किसी भी ध्वनि का उसका परिवार । ध्वनियों के इस परिवार को ही स्वनिम Proneme या ध्वनिग्राम कहते हैं ।

स्वनिम को अनेक विद्वानों ने अपने ढंग से पारिभाषित किया हैं । ब्लाक-ट्रेगर ने स्वनिम की परिभाषा इन शब्दों में दी है- ' स्वनिम औपचारिक दृष्टि से मिलती जुलती ध्वनियों का एक समुदाय होता है, जो उस भाषा के इस प्रकार के अन्य समुदायों से भिन्न, विरोधी और अन्यायवर्जी होता है । '

सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डेनियल जोन्स का कहना है' ' स्वनिम किसी भाषा की ऐसी ध्वनियों का एक परिवार होता है, जो अपने स्वभाव में परस्पर संबद्ध होती है और जिनका प्रयोग इस प्रकार होता है कि जिस ध्वन्यात्मक संदर्भ में एक सदस्य आता है, वहाँ दूसरे सदस्य का प्रयोग नहीं हो सकता ।

सीधी सादी शब्दावली में स्वनिम की परिभाषा देते हुए कहा जा सकता है ' 'स्वनिम किसी भाषा की मिलती-जुलती ध्वनियों का वह परिवार है, जिसके सदस्य एक दूसरे के पूरक होते हैं, किन्तु वह परिवार इस प्रकार के अन्य परिवारों से अन्यायवर्जी (एक्सक्लूसिव) होता है । डा. भोलानाथ तिवारी इसे निम्नलिखित रूप से और अधिक स्पष्ट करते है- ' 'स्वनिम Proneme तथा उपस्वन allophone को इस प्रकार समझा-समझाया जा सकता है । हिन्दी में

एक ध्वनि है 'ल' । यदि हम 'उलटा', 'लो', 'ले' तथा 'ला' इन चार शब्दों का सावधानी से उच्चारण करे तो जीभ की, स्पर्श-स्थिति पर ध्यान दे तो स्पष्ट हो जाएगा ल' ('उल्टा का ओके उच्चारण मे जीभ उलट जाती है ल' (लो) दांत की और थोड़ा आगे से उच्चारित होता है, ल' (ले) और आगे से तथा ल^4 (ला) और भी आगे से । अर्थात 'ल' शब्द के इन शब्दों में चार प्रतिनिधि (ल^1 ल^2 ल^3' ल^4:) हैं और चारों के उच्चारण-स्थान एक दूसरे से कुछ-कुछ भिन्न हैं । दूसरे शब्दों में 'ल'एक सामान्य ध्वनि है जिसके वास्तविक रूप मे प्रयुक्त रूप चार हैं । ये प्रयुक्त रूप और भी अधिक हो सकते हैं अगर हम और भी हिन्दी शब्द लें ।

उपर्युक्त बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वास्तविक रूप में उच्चारण और श्रवण ल', न, ल' और न का होता है । इनकी तुलना में 'ल' की सत्ता भौतिक नही है बल्कि मानसिक है । ल के विभिन्न रूपों (1, 2,3,4) के आधार पर एक मुखिया के रूप में उसे अर्थात् सामान्य 'ल' को स्वीकार कर लिया गया है । संक्षेप में यहाँ 'ल' स्वनिम है तथा ल', ल', ल' व न उसके उपस्वन हैं । इस तरह स्वनिम की सत्ता मानसिक होती है तथा उपस्वन की सत्ता भौतिक । स्वनिम जाति है तथा उपस्वन व्यक्ति । उपर दिए गए उदाहरण में 'ल' जाति है तो ल^1, ल^2, ल^3 ल^4 आदि व्यक्तियों से बनी हैं ।

यदि 'ल' को एक परिवार माना जाए तो इसमें ल^1, ल^2, ल^3 ल^4 चार सदस्य हैं । जैसे परिवार में लोगों के मन अलग-अलग हो सकते है परन्तु व फिर भी व एक दूसरे के विरोधी अथवा व्यतिरेकी नहीं होते ठीक वेसी ही स्थिति यहाँ 'ल' और ल^1, ल^2, ल^3 ल^4 के बीच, है । हिन्दी में इनके प्रयोग की एक सुनिश्चित व्यवस्था है, अलग-अगल होकर भी वे मिलकर एक परिवार बनाते हैं । 'ल' परिवार की दृष्टि से वे एक दूसरे के पूरक हैं । भाषा विज्ञान में इस प्रकार की दृष्टि को परिपूरक वितरण Complementary dirtri Iration कहते हैं ।

इस विवेचन से स्वनिम का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

क. स्वनिम एक भाषा से सम्बन्ध रखते हैं । अलग-अलग भाषाओं के अलग-अलग स्वनिम होते हैं, जिनका आपस में संबंध नहीं के बराबर होता है जैसे हिन्दी भाषा के कोमल तालु व स्वनिम 'क' में अरबी-के काकल 'क' का आपस में काई मेल नहीं है । ये पृथक-पृथक स्वनिम हैं, इसी तरह अंग्रेजी का वर्त्स्य और हिन्दी का मूर्धन्य भिन्न-भिन्न स्वनिम हैं ।

कोई भी भाषा जब किसी विदेशी भाषा के शब्द समूहों को अपना बनाती है या ग्रहण करती है तो वह उन्हें अपनी भाषा की प्रकृति ओर प्रवृति के अनुसार गढ़ लेती हैं । अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाएं जो हिन्दी के सम्पर्क में आई ओर हिन्दी ने जिनसे शब्दावली ली उनके शब्द आज पूरी तरह हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ढल गए हैं । किताब, कानून, खत्म, ' गबन और अलमारी, रिक्शा आदि शब्दों के स्वनिम आ हिन्दी के स्वनिम बन चुके हैं । हिन्दी में कुछ विशुद्धतावादी लोग हैं जो चाहते हैं इन शब्दों में उच्चरित स्वनिमों को स्रोत भाषा की प्रकृति के अनुसार 'काकल्य' ही बोलना चाहिए और लिखते समय भी भिन्नता सूचक मुक्ता लगाना चाहिए ।

अंग्रेजी के ऑफिस, ट्रेक्टर, बैंक आदि शब्दों में भी अब ऑ और अँ स्वनियों को हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप बना लिया गया है । अब प्राय: पूरी की पूरी आगत शब्दावली हिन्दी स्वनियों का प्रयोग करती है । स्वनिम परिवार के सदस्यों को सहस्वन या संस्वन कहा जाता है । स्वनिम विज्ञान में इनके लिए खास चिन्हों का प्रयोग किया जाता है । स्वनिम को दो खड़ी रेखाओं के बीच तथा सहस्वन को बड़े कोष्ठ (1 द्वारा प्रदर्शित करते हैं जैसे ।क । (का आदि ।

किसी स्वनिम के सहस्वन परिपूरक वितरण में आते हैं । जिस ध्वन्यात्मक संदर्भ में 'क', का प्रयोग होता है उसमें"क' क' या क्य का नहीं हो सकता । प्रत्येक सहस्वन का क्षेत्र सुनिश्चित है । इसलिए किसी प्रकार के अतिक्रमण के लिए स्थान नहीं । इस बात को ड धनि के दो उदाहरणों से और स्पष्ट किया जा सकता है । । 5 । के दो महत्त्वपूर्ण सहस्वन है (5^2) स्पर्श ध्वनि है और (5^2) उतक्षइप्त । भिन्नता को स्पष्ट करने के लिए उत्सिप्त S को ड़ लिखा जाता है । इन दोनों के प्रयोग का क्षेत्र सुनिश्चित है । (5') का प्रयोग नीचे दी गई स्थितियों में होता है :-

1. शब्द के आरम्भ में जैसे - डलिया, डाकघर, डर, डमरू, डाली, डिंगल आदि
2. शब्द के बीच में अनुसार के बाद जैसे - मंडन, ठंडक, कुंडल, खंडन आदि ।
3. शब्द के मध्य में अनुस्वार के पहले आडंबर, विडंबना आदि ।
4. शब्द के मध्य में द्वित्व की स्थिति में विडंबना आदि अड्डा, गड्डी आदि (5^2) के प्रयोग की स्थितियां निम्नानुसार है:-

   अ शब्द के मध्य में (अनुस्वार से पूर्व, अनुस्वार के बाद और द्वित्व की स्थितियों के अतिरिक्त) - सड़क, पकडना, झडप आदि

   व. शब्दान्त में (अनुस्वार के बाद की स्थिति को छोड़कर)-जड, झाड, पतझड आदि । इसे इस रूप में अंकित किया जा सकता है-

   । 5 । - (5^1)(5^2)

। ढ । के सहस्वनों को भी बिल्कुल । 5 । ही की तरह दिखाया जा सकता है जैसे (दै) का प्रयोग शब्द के आदि में होता है ढोलक, ढेर, ढलान आदि

($ढ^2$) का प्रयोग शब्द के मध्य तथा अंत में जैसे पढ़ाई, चढ़ना, प्रगाढ, ढूँढ़ा, दृढ़, आदि । गौरतलब है कि संस्कृत के तत्सम शब्दों में ड़, ढ, उत्क्षिप्त नहीं थे लेकिन अब हिन्दी में तत्सम शब्द भी तद्भव शब्दों की भांति उपर्युक्त वितरण के भीतर आते हैं संस्कृत के पीड़ा, क्रीड़ा, दृढ़ प्रगाढ हिन्दी में क्रमश: पीड़ा, क्रीडा, दृढ, और प्रगाढ़ बोले तथा लिखे जाते हैं ।

हिन्दी क वर्ग के स्वनिमों को निम्न रूपों में लिखा जाएगा -

।क। [$क^1$] [$क^2$] [$क^3$] [$क^4$] [$क^5$]

।ख। [$ख^1$] [$ख^2$] [$ख^3$] [$ख^4$] [$ख^5$]

।ग। [$ग^1$] [$ग^2$] [$ग^3$] [$ग^4$] [$ग^5$]

।घ। [$घ^1$] [$घ^2$] [$घ^3$] [$घ^4$] [$घ^5$]

आपको बताया जा चुका है कि किसी भाषा के भिन्न-भिन्न स्वनिम व्यतिरेकी की वितरण में आते हैं अर्थात जहाँ एक स्वनिम का प्रयोग होता है वहाँ उसी अर्थ में दूसरे का प्रयोग नहीं किया जा सकता । ये अन्यायवर्ती, होते हैं । इस बात को आप को समझाने के लिए न्यूनतम विरोधी युग्मों के उदाहरण दिए जा रहे हैं

कील-खील - इन दोनों शब्दों पर गौर कीजिए इनमें क और ख को छोडकर शेष ध्वनियाँ समान है । क और ख भी न्यूनतम विरोधी व्यंजन है, दोनों अघोष और स्पर्श हैं तथा दोनों का उच्चारण स्थान कोमल तालु है । यदि अंतर है तो केवल प्रासत्व का ख महाप्राण ध्वनि है तो क अल्पप्राण । इस जरा से अन्तर से दोनों शब्दों के अर्थ एकदम अलग हो गए हैं जहाँ कील का अर्थ लोहे का एक नुकीला टुकड़ा है वहीं खील का अर्थ भुना हुआ धान । एक और उदाहरण देखें–

काली-गाली इन दोनों शब्दों पर भी गौर करें तो देखेंगे क और ग के अतिरिक्त अन्य ध्वनियाँ यहाँ समान है और समान क्रम में आई है । उच्चारण समान है और समान क्रम में आई है । उच्चारण स्थान और आम्यंतर प्रयत्न की दृष्टि से भी दोनों समान है । अन्तर मात्र यही है कि जहाँ क अघोष है वहाँ ग घोष । इस घोषता एवं अघोषता के कारण दोनों शब्दों के अर्थ नितान्त भिन्न हो गए हैं जहाँ काली रंग के अर्थ में श्यामलता का पर्याय है बड़ी गाली का अर्थ अपशब्द है ।

इसी प्रकार च वर्ग ट वर्ग, तवर्ग और प वर्ग ध्वनियों के भी न्यूनतम विरोधी युग्म बनाए जा सकते हैं जैसे-

1.	चल-छल	चल-जल,	जड़-झड़
2.	टालना-डालना	टेर-ढेर	डेला-ढेला
3.	ताल-दाल	ताली-थाली,	तन-धन
4.	पल-पल	पल-बल,	बला-भला

उपर्युका शब्द युग्मों पर ध्यान दें तो स्पष्ट होगा कि हिन्दी में प्रत्येक वर्ग में कम से कम चार व्यंजन है । अघोष, अल्पप्राण, अघोष-महाप्राण घोष अल्पप्राण और घोष महाप्राण । इन्हें परस्पर व्यतिरेकी की विवरण में गिना जाता है । एक प्यासा व्यक्ति यदि पानी चाह रहा हो तो उसे पका ही उच्चारण करना पड़ेगा यदि वह पानी की जगह बाकी-बाकी चिल्लाए तो उसका आशय कोई नहीं समझ पाएगा ।

6. स्वनियों का निर्धारण करने में परिपूरक वितरण और व्यतिरेकी वितरण का यह सूत्र अन्य भाषाभाषियों अथवा शिशुओं (जो अभी नया-नया बोलना सीख रहे है) पर लागू नहीं हो सकता । एक अंग्रेज यदि अपने भारतीय रसोइए को आदेश देते हुए कहे 'खाना बनाओ' तो वह खाना बनाना ही शुरू करेगा किसी की आँख फोड़कर उसे काना बनाने का अर्थ किसी रूप में उसके दिमाग में नहीं उभरेगा । ऐसी स्थिति में क-ख का अंतर अर्थ भेदक नहीं होगा । श्रोता वक्ता की क-ख की ध्वनिभिन्नता को नजरअन्दाज कर उसका पूर्व निश्चित रूढ़ अर्थ ही समझेगा । यहाँ अंग्रेजी भाषा-भाषी के क और ख की अभिन्नता का भाषा वैज्ञानिक कारण है । अंग्रेजी में क और ख दो स्वनिक नहीं है केवल एक ही 'क' है जो हिन्दी के अल्पप्राण क की

तुलना में इंचमात्र महाप्राण है और ख की तुलना में थोड़ा सा अल्पप्राण इसलिए अंग्रेजी में बिकॉज और बिखॉज हिन्दी के कान और खान की तरह अलग-अलग शब्द नहीं है ।

अंग्रेजी ही क्यों भारत में ही पूर्वोत्तर की कुछ भाषाओं में काली-खाली एक ही तरह उच्चरित होते हैं लेकिन वहाँ अर्थ ग्रहण ठीक-ठीक होता है । अंग्रेजी में त और द ध्वनियाँ नहीं है अत: तुलसीदास का टुलसीदास बन जाना सहज स्वाभाविक है क्योंकि त और ट की निकटतम ध्वनियाँ ट और ड है । इसी प्रकार बंगला और उसकी भाषा में ओकारान्तता है अत: अ का उच्चारण वर्तुलओ की तरह किया जाता है इसके कारण अश्रय सहज ही ओजोय तथा भजन भोजोन बन जाता है लेकिन इसके कारण संप्रेषण में कोई अवरोध नहीं आता । यह प्रक्रिया मुक्त वितरण कहलाती है ।

शिशुओं के मुँह से निचली वाली में भी मुक्त वितरण की स्थिति दृष्टव्य है । शिशु रस्सी को लस्सी और हाथ को हात कहने पर भी लोग समझ लेते हैं कि वह क्या कहना चाह रहा है । वस्तुत: मानसिक व्यवहार एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है । अगर स्वनिम स्खलन वक्ता और श्रोता के मध्य बाधक नहीं है तो उसे मुक्त वितरण का उदाहरण मानना चाहिए ।

इस प्रकार वितरणों के संबंध में तीन सूत्र स्मरणीय हैं:-

1. एक स्वनिक के सहस्वन परस्पर परिपूरक वितरण में पड़ते है ।
2. दो स्वनिम एक दूसरे के पूरक नहीं हो सकते । वे व्यतिरेकी वितरण में आते है और अन्यायवर्जी होते है ।
3. यदि वक्ता तथा श्रोता के मध्य स्वनियों का गलत प्रयोग संप्रेषण में बाधक न हो तो उसे मुक्ता समझना चाहिए ।

9.6 स्वनिम के सम्बन्ध में सहायक सिद्धान्त

नीचे कुछ विशेष सिद्धान्त के बारे में बताया जा रहा है जो किसी अज्ञान भाषा के स्वनिमों के अध्ययन में सहायक होते हैं-

1. **वितरण का सिद्धान्त-** यह सिद्धान्त किसी भाषा के स्वनिमों और सहस्वनों के अध्ययन में सर्वाधिक विश्वसनीय आधार प्रदान करता है विज्ञान के नियमानुसार जो ध्वनियाँ परिपूरक वितरण के अंतर्गत आती हैं उन्हें एक ही स्वनिम के सहस्वन के रूप में मानना चाहिए । इसके विपरीत जो व्यतिरेकी वितरण में आये उन्हें स्वतंत्र स्वनिम की संज्ञा देनी चाहिए ।

   परिपूरक वितरण का स्वरूप सहअस्तित्व की भावना के समान है । जिस प्रकार एक परिवार के विविध सदस्य परस्पर अविरोधी होते हैं, उसी प्रकार सहस्वन भी एक दूसरे. के अविरोधी होते है और उसके अपने क्षेत्र सुनिर्धारित-सुनिश्चित होते हैं । (उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं) ।

   इसके विपरीत दो स्वनिम कभी एक दूसरे के पूरक नहीं होते । वे तो परस्पर व्यतिरेकी होते हैं करीब-करीब एक दूसरे से असहयोग सा करते हुए । यदि एक की जगह दूसरे का प्रयोग किया जाए तो (मुक्त विवरण के अतिरिक्त) समुचित अर्थ संप्रेषण नहीं होगा बल्कि कभी-कभी नितान्त भिन्न अर्थ की प्रतीति होगी- वह तो बिल्कुल काली है' और

वह तो बिल्कुल खाली है में एक जहाँ श्याम वर्मा का घोतन करता है वहीं दूसरा व्यर्थता या बेकार के अर्थ का बोध कराता हैं । यहाँ एक स्वनिम भर बदलने से सारे वाक्य का अर्थ परिवर्तित हो गया है ।

2. **ध्वन्यात्मक समानता का सिद्धान्त-** ध्वनि विज्ञान मे स्थान आभ्यन्तर प्रदान और बाहय प्रयत्न के आधार पर स्वरों तथा व्यजनों के स्वरूप निर्धारित किए जाते हैं । स्वनिमों के निर्धारण में यही सर्वाधिक मान्य एवं विश्वसनीय कसौटी है । इस विधि में समान उच्चारण स्थान और समान प्रयत्नों द्वारा उच्चारित दो ध्वनियों का एक ही स्वनिम के सहस्वन माना जा सकता है । लेकिन जब स्थान, आभ्यंतर-प्रयत्न और बाहय प्रयत्नों मे से कोई भी परिवर्तित हो जाता है तो भिन्न स्वनिम का उच्चारण होता है । कान, नकल और अंकित शब्दों का देखे तो इनके प्रयुक्त क' कS क' के उच्चारण में अन्तर होने के बावजूद ये तीनों कामल तालन अघोष, अधप्राण स्पर्श ध्वनियाँ हैं । इस कारण तीनों के वल सहस्वन हैं, भिन्न स्वनिक नहीं । भाषा विज्ञान के शब्दावली के स्थान और प्रयत्नों की अभिन्नता इन्हें एक स्वनिम के सहस्वन-प्रमाणित करती है ।

   इसके विपरीत काली खाली और गाली शब्दों में प्रयुक्त क और ग भिन्न-भिन्न स्वनिम हैं, क्योंकि कोमल तालव्य रहने के बावजूद बाहय प्रयत्न की पुष्टि से व भिन्न हैं जहाँ क अघोष अल्पप्राण है वहाँ ख अघोष महाप्राण तथा ग घोष महाप्राण ।

   कभी- कभी इस नियम के अपवाद भी दृष्टिगत होते है । उदाहरण के लिए ड और ड़ हिन्दी में एक ही स्वनिम के सहस्वन हैं जबकि इनमें ध्वन्यात्मक एकरूपता नहीं है । ड स्पर्श है ड़ उत्क्षिप्त । आभ्यंतर प्रयत्न की भिन्नता को देखते हुए इन्हें स्वतंत्र स्वनिम माना जाना चाहिए । यह अपवाद न होकर अपवादा-मास की स्थिति है । इस तरह की प्रयत्न भिन्नता अन्यत्र भी परिलक्षित की जा सकती हैं । उदाहरण के लिए हिन्दी का चवर्ग स्पर्श संघर्षी वर्ग है लेकिन चुप, चोर आदि स्वरों मे पश्च स्वरों मे पश्च संयोग वाला च उतना संघर्षी नहीं होता जितना अग्र स्वरों के संयोग वाला चिकना, चीत्कार आदि शब्दों का च । इस प्रकार ध्वन्यात्मक एकरूपता के स्वनिम निर्धारण की निर्दोष कसौटी माना जा सकता है ।

3. **ढांचे का सिद्धान्त-** दुनिया की हर भाषा का एक ध्वन्यात्मक ढांचा होता है जिसके आधार पर उस भाषा विशेष के स्वनिमों को निर्धारित कर सकते हैं । उदाहरण के लिए हिन्दी को लें तो देखेंगे इसके प्रत्येक व्यंजन मे उच्चारण स्थान से संबंधित एक वर्ग है क वर्ग का कोमल तालव्य. चवर्ग का तालव्य, टवर्ग का मूर्धन्य, तवर्ग का दन्त्य और चवर्ग का ओष्टय । इसके बाद चार व्यंजन अंतस्थ फिर तीन उष्म और अंत में महाप्राण है । एक क्रम में 'यह ढांचा सजा हुआ है । इस सिद्धान्त से अपरिचित भाषा मे स्वनिम पहचानना भी सहज है जैसे यदि कोई विदेशी हिन्दी के व्यंजनों को सीखना चाहे और उसकी संग्रहीत, ध्वनियों मे कही ढ स्वन न आया हो तो इस ढांचे से उसे पता चल जाएगा की जब प्रत्येक वर्ग मे घोष महाप्राण व्यंजन की अवस्थिति है तो इस ध्वनि का होना ही चाहिए और वह फिर से ध्वनियों को एकत्र करने की चेष्टा करेगा ।

ढांचे का सिद्धान्त वितरण या ध्वन्यात्मक समानता के सिद्धान्त की भाँति पूरी तरह विश्वसनीय नहीं है । अंग्रेजी व्यंजनों के निर्धारण में तो यह नितान्त असफल है ।

4. **ध्वन्यात्मक संदर्भ का सिद्धान्त-** स्वनिम निर्धारण की सर्वोत्तम एवं विश्वसनीय कसौटी है यह सिद्धान्त । इसके अनुसार जो स्वन शब्द के आदि, अध और अन्त सभी ध्वन्यात्मक संदर्भो मे आए उसे सहस्वन मानना चाहिए । उदाहरण के लिए हिन्दी के नासिक्य व्यंजनो की इस कसौटी पर जाँच करें, तो जो निष्कर्ष निकलेंगे वे निम्नलिखित रूप में हैं ।

न व्यंजन-

(1) शब्द के आदि में- नर, नाक, नीर, नीम

(2) शब्द के मध्य में- अनेक, अनोखा, अनिश्चित, अनामिका

(3) शब्द के अन्त में- पवन, दांत, दिन, दमन ।

इसके अलावा 'न' ध्वनि का प्रयोग सभी स्वरों के साथ होता है जैसे नर नाम, नितांत, नुकीला, नेत्र, नहर, नोक, नौका ।

सभी संयुक्त व्यंजनों मे 'न' का प्रयोग देखा जाता हैं । जैसे- न्यास, न्याय, अन्वेषण आदि ।

म व्यंजन-

(1) आदि का प्रयोग- महुआ, माया, मकान, महिमा ।

(2) मध्य प्रयोग - अमीन, समान, उन्मोचन ।

(3) अन्त प्रयोग- कोम, काम, दाम, प्रेम ।

(4) स्वर संयोग- मल, माल, मिलन, मीत, मुकुर, मूक, मेल, मैदान, मोदक, मौसम ।

(5) व्यंजन संयोग-मलान म्यान, प्रद्युम्न साम्य ।

(6) द्वित-सममान सम्मेलन सम्मोहन ।

शेष नसिका व्यंजनों में ड़ और जैसे- पडखा, रंडूगी, अत्रच, प्रत्यत्रचा आदि में । शब्द में आदि में ण का प्रयोग नहीं होता इसके मध्य. अन्त्य और अनुस्वार के विकल्प रूप में प्रयोग मिलते हैं ।

(1) मध्य प्रयोग- परिणय, प्रयोग ।

(2) अंत प्रयोग- श्रवण, दर्पण,. क्या ।

(3) अनुस्वार का विकल्प- घण्टा, मण्डल, अण्डा ।

इस प्रकार ध्वन्यात्मक संदर्भ के सिद्धान्त के आधार पर इन तीनों को 'न' के सहस्वन माना जा सकता है । गौरतलब है कि संस्कृत व्याकरण में र ष और ऋ के बाद अगर न' आये ता उसे ण बना देने का विधान है । इस प्रक्रिया को णत्व विधान कहते हैं ।, जैसे- ऋण, प्रण, अन्वेषण ।

5. **अधिक भेद और अधिक अभेद का सिद्धान्त**- यह एक व्यावहारिक सिद्धान्त है जिसे मितव्ययता का सिद्धान्त भी कहा जाता हैं । इसके अनुसार स्वनिमों के निर्धारण में यह

सावधानी रखने की जरूरत है कि हम किसी संस्वन को स्वनिम मानकर उसके अधिक भेद न निर्धारित कर लें अथवा किसी स्वनिम को संस्वन मानक स्वनिम के कम भेद न निर्धारित कर लें ।

इस सिद्धांत का सबसे बड़ा दोष यह है की यह अध्ययनकर्ता के विवेक पर सब कुछ छोड़ते हु ए स्वनिम निर्धारण की कोई कसौटी प्रस्तुत नहीं करता ।

9.7 स्वनिम के भेद

ऊपर स्वन और स्वनिम के बारे में आपने जो पढ़ा उसके आधार पर स्वनिम के चार भेद किये जा सकते हैं- केन्द्रीय, परिधीय, खंडय एवं अखंडय जो स्वनिम भाषा में सामान्य रूप से अर्थ भेदक तथा व्यतिरेकी होते हैं, उन्हे केन्द्रीय मुख्य तथा जो कुछ सीमित लोग, सीमित शब्दों व सीमित परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हैं । इन्हें परिधीय गौण स्वनिम कहते हैं इन दोनों के अतिरिक्त खंडय एवं अखंडय स्वनिम विशेष स्वनिम भेद हैं जिनके बारे मे विस्तृत चर्चा की जा रही है ।

(3) खंड्य स्वनिम वे ध्वनियाँ हैं जिनका पृथक् एवं स्वतंत्र उच्चारण संभव है । इनका स्वतंत्र अस्तित्व भी होता हैं । यथा अ इ उ क च, प, त इत्यादि ये व्यक्त एवं विभाज्य भी हैं ।

(4) अखंड्य स्वनिम को खंड्येतर स्वनिम भी कहा जाता हैं । इन स्वनिमों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती हैं । ये खंड्य स्वनिमों पर निर्भर रहते हैं । अखंडय स्वनिम कई प्रकार के होते हैं-

(क) मात्रा:- यह एक महत्वपूर्ण अखंडय स्वनिम है । इसे दीर्घता भी कहते हैं । सार एवं व्यंजनों मे मात्राओं की वजह से अंतर उत्पन्न होता हैं । स्वरों मे मात्रा भेद ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत तीन-तीन भागों मे बंटा हैं । यथा अ,आ, इ, ई के उच्चारणों मे फर्क हैं । व्यंजन ध्वनियों में संयुक्त व्यंजन उच्चारण में दुगुने समय की मांग करते हैं इससे अर्थभेद होता हैं यथा बचा एवं बच्चा, पका पक्का इत्यादि ।

(ख) सुर या सुरलहर:- इनका प्रभाव शब्दों एवं वाक्यों दोनों पर पड़ता हैं । स्वरतंत्रियों पर पडते दबाव के आधार पर इनके तीन भेद किए गए हैं-

(1) उदात्त (उच्च), 2) स्वरित (मध्यम), 3) अनुदात्त (निम्न) । सुर से अर्थ में भी अन्तर आ सकता है-

वह मर गया । (सामान्य)

वह मर गया? (प्रश्नवाचक)

वह मर गया! (विस्मय)

(ग) बलाघात:- बलाघात में किसी शब्द अक्षर या वाक्य पर अधिक जोर डालकर उच्चारण किया जाता हैं । यह फेफड़ों से आने वाली वायु की तीव्रता पर निर्भर

करता है । इसके चार भेद किये गये हैं- व) तीव्र, 2) मंद, 3) संश्लिष्ट, 4)हीन ।

(घ) संगम:- शब्दों एवं वाक्यों मे कुछ ध्वनियाँ संयुक्त रूप में कुछ ऐसे मिलती है कि पदच्छेद अथवा यति के द्वारा उनके विविध अर्थो का द्योतन होता है । संगम पर हमने ध्वनि गुण के संदर्भ में हमने पूर्व में ही चर्चा की हैं । अत: इस पर यहाँ पुन: बात. करना असमीचीन हैं । ये अभंग, सभंग एवं सभंगाभंग इन तीनों रूपों में भाषा में मिलते हैं ।

(ङ) अनुनासिकता:- अनुनासिकता से भी अर्थ भेद पैदा होता है । इनमे नासिका विवरण उच्चारण के वक्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं । यह स्वनिम न्यूनतम विरोधी युग्म में भी उपलब्ध हैं । यथा-गोद-गोंद, काटा-काँटा, रग-रंग इत्यादि ।

9.8 स्वनिमिक विश्लेषण विधि

(1) सामग्री- संचयन:- किसी भी जीवित भाषा के स्वनिमों को छांटने के लिए उसको बोलने वाले व्यक्ति से उस भाषा के वाक्य, प्रेषित को सुनकर संकलित किया जाता हैं । जिस व्यक्ति को माध्यम बनाकर यह कार्य किया जाता है, उसे सूचक कहते हैं । यदि किसी मृत भाषा के स्वनिम का विश्लेषण करना हो तो उसके साहित्यिक रूपों से यह कार्य किया जाता है ।

(2) ध्वन्यात्मक लेखन:- उपयुक्त संकलित सामग्री का ध्वन्यात्मक लेखन की सूक्ष्म प्रतिलेखन पद्धति से लिखा जाता हैं । इसे स्वरों एवं व्यंजनों की सूक्ष्मताओं का संकेतन भी होता हैं । इससे बलाघात, सुर आदि का भी उल्लेख किया जाता हैं । इसमें उल्लेखनीय बातें निम्न होती है-

(क) स्वर:- (1)वह घोष अर्थात जीवित, किस प्रकार का है, (2) वह हस्व दीर्घ या लुप्त हैं, (3) वह संवृत या निवृत हैं, (4) वह अनुनासिका है या अनुनासिक । (5) वह अग्र, मध्य या पश्च स्वर है । (6) वह बलाघात या सुर से युक्त है । (7) वह आक्षरिक है या नहीं यदि आक्षरिक है तो किस रूप में । (8) वह अवृतमुखी या वृत्तमुखी ।

(ख) व्यंजन:- (1) कंठ्य, तालव्य आदि स्थानों में से उसका स्थान क्या है । (2) क्या वह अपने मूल रूप में उच्चारित हैं अथवा अन्य रूप में? (3) प्रयत्न की दृष्टि से वह संघर्षो, स्पष्ट या ईषत् स्पष्ट है? अपने असली रूप से अलग ता नहीं । (4) अधरों की स्थिति केसी है । (5) स्पर्श पूर्ण है या अपूर्ण, कहीं स्फोटित या अस्फोटित तो नहीं । (6) अनुनासिक है या अनुनासिक हैं । (7) आक्षरिक है या अनाक्षरिक ।

7. स्वनिमों को छांटने की क्रिया:- किसी भी भाषा में स्वनिमों को निम्न विधि से छांटते हैं:-

(क) सूचक द्वारा संकलित सामग्री का संकलन एवं उसे क्रम-बद्ध किये जाने की चेष्टा । (2) उसका तुलनात्मक परीक्षण । (3) उसका ध्वनियों के साथ संयोजन ।

(1) सर्वप्रथम एक चार्ट तैयार करके प्रत्येक ध्वनि से प्रारम्भ होने वाले शब्द का अलग-अलग नोट किया जाता है । इसमें यह भी नोट किया जाता है कि क्या किसी ध्वनि का किसी विशेष ध्वनि के साथ ही आगमन हो रहा है यह भी देखा जाता है कि संदर्भित ध्वनि किस स्थल (आदि, मध्य या अंत) पर अवस्थित है प्रारंभिक स्वनिम जिन ध्वनियों के साथ जुड़े होते है, उन्हें पृथक नोट किया जाता हैं । प्रारंभिक स्वनिमों की सूची बनने के बाद मध्य एवं अंत्य स्वनिमों की सूची बनाई जाती हैं ।

(2) तुलनात्मक अध्ययन द्वारा प्रत्येक ध्वनि में फर्क देखा जाता है । विरोधी स्वनिमों को छांटकर अलग कर दिया जाता है ।

(3) आदि, मध्य या अंत में प्रत्येक स्वनिम किन ध्वनियों से संयुक्त हैं, इसका विवरण भी) दिया जाता है ।

स्वनिमों का वर्गीकरण: किस संस्वन को किस स्वनिम (जाति) में रखा जाएगा, इसके सामान्यत: तीन नियम हैं: 1) वितरण, 2) समानता 3) कार्यगत एकरूपता । ये तीनों गुण जिन ध्वनियों में प्राप्त होते है, वे एक वर्ग की ध्वनियाँ हैं । वितरण मे यह देखा जाता है कि ध्वनियाँ किन परिस्थितियों मे आयी है । जिन परिस्थितियों में एक ध्वनि प्रयुक्त हुई है, उसी मे दूसरी ध्वनि प्रयुक्त नहीं होती । यदि उन परिस्थितियों में दूसरी ध्वनि प्रयुक्त हो भी जाए तो अर्थभेद हो जाएगा । यथा कान, मान, पान, दान इत्यादि । स्थान और प्रयत्न की समानता ही समानता में देखी जाती है । स्थापना और प्रयत्न की विषमता से स्वनिमों मे विभिन्न होगा । कार्य की एकरूपता से तात्पर्य है की यदि कार्य मे फर्क है तो पूरक एवं सहायक होने पर भी उसे अन्य स्वनिम माना जाएगा ।

9.9 विचार संदर्भ/शब्दावली

1. ग्रसनी - श्वास नली के समानान्तर अवस्थित, भोजन को अमाशय तक ले जाने वाली नली है, इसका रिश्ता ध्वनि से है ।
2. दुत- तेजी से, शीघ्र चाल ।
3. परिपूरक वितरण- भाषा में कुछ वर्ण अलग-अलग रहते हुए भी मिलकर एक परिवार बनाते है । ऐसे वर्ण एक दूसरे के पूरक होते है । भाषा विज्ञान कि शब्दावली मे इसे परिपूरक वितरण कहते हैं ।
4. नासिक्य- नाक से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ प्रत्येक वर्ण का पंचम वर्ण नासिक्य होता है ।
5. निःसृत- निकला हुआ ।
6. वृत्ति- क्षिप्रता या गति ।
7. मात्रा- एक महत्त्वपूर्ण अखंड स्वनिम इसे दीर्घता भी कहते हैं ।

8. सुर लहर- शब्दों और वाक्यों पर प्रभाव डालने वाली ध्वनि तरंग- इसके तीन भेद होते हैं उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।
9. स्वादेन्द्रिय- खाने के स्वाद को महसूस कराने वाली इन्द्रिय मुख्यत: जिह्वा ।
10. स्वरित- सुर लहर के भेदों में से (मध्यम) इसमें आरोह तथा अवरोह होता है ।
11. अभिकाकल- जिह्वामूल के पास स्थित एक मांसल भाग ।
12. मूर्धा- कठोर तालु के पीछे की और स्थित अंतिम भाग ।
13. मानस्वर-आठ सर्वजनीन स्वर जिन्हें मानक स्वर की मान्यता दी गई हैं । जॉन वेलिस ने इसके लिए एक त्रिभुज प्रतीक बनाया है ।
14. प्लुत- हस्व और दीर्घ के बीच की ध्वनि ।
15. स्वनिमिक- स्वनिमों से संबंधित ।

9.10 सारांश

ध्वनि बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्व है क्योंकि अभिव्यक्ति की संहविका तो वह स्वयं ही है । वागवयवों द्वारा मानव. ध्वनि तो उत्पन्न करता है, साथ ही उससे अपने अभिप्रेत के प्रकाशनार्थ योग्य भी बनाता है । ये वागवयक ध्वनि के साधक हैं । फेफडे, श्वासनली. ग्रसनी जहाँ ध्वनि उत्पादन में परोक्ष भूमिका निभाते है, वहाँ स्वरतंत्री, स्वरतंत्र, काकल, अभिकाकल गलबिल कौवा, नास विवर, कोमलतालु मूर्धा, कठोर तालु, वर्त्स, दंत, ओष्ट तथा जिह्वा प्रत्यक्ष भूमिका का 'निर्वाह करते हैं । मानव ध्वनि का शब्दों के वाक्य में पिरोकर भाषाभी व्यक्ति करता है । ध्वनिगुण वे तत्त्व होते हैं जो वाक्य का मूर्त रूप देने के साथ, उनमें परिवर्तन की स्थिति पैदा करते हैं । मात्रा, आघात, स्वर, संगम एवं वृत्ति के रूप में ध्वनि गुण वाक्य में विद्यमान रहते हैं । स्वनिम किसी भाषा की निजी सम्पति है । ये समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं । वें अर्थ परिवर्तन के कारक है । ये खंड्य एवं अखंड्य दो प्रकार के होते हैं । खंड्य स्वनिम तंत्र होते हैं । इनका उच्चारण भी सहज हैं । यथा- अ आ, क इत्यादि । अखंड्य स्वनिमों मे मात्रा सुर, सुरलहर, बलाघात, संगम एवं अनुनासिकता का उल्लेख किया जाता हैं । ये स्वर तंत्र नहीं होते और ये खंड्य स्वनिमों पर उच्चारणार्थ निर्भर होते हैं । इन स्वनिमों को संकलन एवं ध्वन्यात्मक लेखन करने के क्रम में विविध क्रम में उनका विशलेषण भी होता हैं । प्रत्येक स्वनिम के एक या अनेक संस्वन होते हैं । ये स्वनिम सभी जाती की ईकाइयाँ हैं । ये ही उच्चारण में प्रत्यक्ष रूप से ध्वनित होते हैं ।

सहस्वन (संस्वन) स्वनिम के वे रूप है जिनका व्यवहार होता हैं । भाषा में संस्वन ही प्रत्यक्ष होते है स्वनिम नहीं । स्वनिम यदि एक जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं तो संस्वहन उस जाति के व्यक्ति विशेष का । यथा- काम, कभी आदि में कस्व जाति (गे स्वनिम हैं । एक स्वनिम के अनेक संस्वन हो सकते हैं । संस्वन के भेद से स्वनिम में अंतर नहीं होता है । बाद की ध्वनि के आधार पर 'क' के उच्चारण में भेद हो सकता हैं । यथा काल, कुल करनी कलीन क्षत्रिय आदि । ऐसे स्वहनों को क', क', क' इत्यादि के रूप में लिखकर फर्क दिखाया जाता है ।

सहस्वन अर्थमड़क नहीं होते हैं, क को किसी भी स्थान से उच्चारित किया जाए कंठ में या उसके आगे-पीछे के स्थानों से उसके अर्थ मे अंतर नहीं आएगा ।

9.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. वागवयवों का परिचय देते हुए उनके कार्य बतलाइये ।
2. ध्वनिगुण क्या है? इसके विभिन्न रूपों का परिचय दीजिए ।
3. स्वनिम के स्वरूप एवं संकल्पना का विश्लेषण किजिए ।
4. स्वनिम के अध्ययन में सहायक किन्हीं दो सिद्धान्तों का परिचय दीजिए ।
5. स्वनिम के भेदों का सोदाहरण विवेचन कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. मानस्वर पर टिप्पणी लिखिए ।
2. परिपूरक वितरण का आशय स्पष्ट कीजिए ।
3. स्वनिम के वितरण के संबंध मे कौन से तीन सूत्र प्रसिद्ध हैं ।
4. ध्वन्यात्मक संदर्भ का सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए ।
5. खण्ड और अखण्ड्य स्वनिम मे अंतर सोदाहरण बताईये ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. वृत्ति का अर्थ है.................................... ।
2. आधुनिक काल में मानस्वर का अध्ययन... ने शुरू किया ।
3. .... अर्थ भेदक नहीं होते हैं ।
4. .... जिह्वा का शेष भाग है ।
5. दो स्वनिम कभी एक दूसरे के....................................... नहीं होते हैं ।

घ. सही ' गलत पर निशान लगाइये

1. प्रत्येक भाषा की निजी ' स्वनिमिक होती है । सही/गलत
2. विलंबित वृति के भेदों में से एक हैं । सही / गलत
3. किसी स्वनिम के सहस्वन परिपूरक वितरण में नहीं आते । सही गलत
4. बंगला और असमी भाषाओं में उकारान्तता हैं । सही गलत
5. खंड, स्वनिम स्वतंत्र नहीं होते हैं । सही गलत

9.12 संदर्भ ग्रन्थ

इकाई 8 में दिए गए संदर्भ गन्थों में इस इकाई के अतिरिक्त अध्ययन में सहायता ली जा सकती है ।

इकाई-10 रूप संरचना : रूप की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 रूप संरचना. रूप की अवधारणा

10.2.1 रूप स्वरूप एवं परिभाषा

क. शब्द तथा रूप (पद)

ख. अर्थ तत्त्व एवं संबंध तत्त्व

10.2.2 रूपिम एवं सरूप की परिभाषा

10.2.3 रूपिम निर्धारण पद्धति

10.2.4 रूपियों तथा संख्यों का अंकन : पद्धति

10.2.5 रूपिम के भेद

10.2.6 रूपिम के प्रकार्य आधार, व्याकरणिक कोटियाँ

10.2.7 रूप परिवर्तन की दिशाएं तथा कारण

क. दिशाएँ

ख. कारण

10.2.8 रूप स्वनिम विज्ञान

10.3 विचार संदर्भ/शब्दावली

10.4 सारांश

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.6 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- रूप विज्ञान एवं रूपिम विज्ञान की अवधारणा एवं संरचना पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
- शब्द' तथा रूप एवं 'अर्थ तत्व तथा संबंध तत्व का वाक्य संरचना में अवदान तो निरूपित कर ही सकेंगे, साथ ही इनके पारस्परिक अंतर को भी रेखांकित कर सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान में रूप एवं रूपिम विज्ञान के महत्त्व को प्रकाशित कर सकेंगे ।
- किसी भी भाषा के रूपिमों एवं संरूपों का निर्धारण कर सकेंगे ।

10.1 प्रस्तावना

'भाषा' के समग्र अध्ययन हेतु उसे विभिन्न विभागों में बाँटा गया । 1 स्वन एवं स्वनिम विज्ञान 2. रूप एवं रूपिम विज्ञान,. 3. वाक्य विज्ञान तथा 4. अर्थ विज्ञान भाषा के वे मूल विभक्त हैं, जिनसे भाषा की बाहय ओर आंतरिक संरचना के वैशिष्ट्य का पता चलता है ।

इसीलिए इन्हें भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण विभाग स्वीकार किया जाता है । वस्तुत: भाषा के दो पक्ष हैं- अनुभूति एवं अभिव्यक्ति अनुभूति पक्ष सीधे अर्थ से संबद्ध है । अत: भाषा विज्ञान की जिस शाखा में भाषाओं के अर्थ पक्ष का अध्ययन किया जाता है, वह अर्थ विज्ञान कहलाता है । इस शाखा का संबंध दर्शनशास्त्र ओर मनोविज्ञान से अधिक रहता है । किंतु भाषा विज्ञान की भी यह अनिवार्यता है ।

भाषा विज्ञान की उपर्युक्त प्रथम तीन शाखाओं का संबंध अभिव्यक्ति पक्ष से है । वस्तुत: भाषा और भाषा विज्ञान का जन्म ही स्वन एवं स्वनिम विज्ञान से होता है । यदि स्वन नहीं तो भाषा का अस्तित्व ही नहीं । स्वन भाषा की लघुतम इकाई है, इनमें अर्थ नहीं होता किंतु अर्थ परिवर्तन की क्षमता होती है । यथा - पल, चल, हल । यहाँ एक ही स्थिति में प्रयुक्त प, च, ह के परिवर्तन से तीनों शब्दों का अर्थ बदल जाता है । 'स्वन' के विपरीत 'रूप' (पद) एक अर्थवान इकाई है । अर्थात् इनके एक निश्चित शब्द कोशीय अर्थ होते है । किंतु शब्दों को सीधे कथन (वाक्य) में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता । हर भाषा के अपने व्याकरणिक नियम होते हैं और वाक्य में प्रयुक्त के लिए इन्हें व्याकरणिक नियमों के अनुरूप परिवर्तन करना होता है । यथा 'श्याम पुस्तक पढ । इनमें तीनों कोशीय शब्द हैं, इनका कोई अर्थ अभिप्रेत नहीं, इसी प्रकार रावण राम मारा' । यहाँ भी, यदि हम ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में न जाएं तो स्पष्ट नहीं हो पाता कि किसने किसको मारा । इन दोनों शब्द युग्मों को यदि लिखा या बोला जाए - 'श्याम ने पुस्तक पढ़ी, रावण को राम ने मारा' तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है, शब्दों की परस्पर संबद्धता भी स्पष्ट हो उठती है । यदि ध्यान से देखा जाए तो क्रमश: ने ई, को, ने, आ एवं वाक्य में पुस्तक का स्थान (कर्म) अपना अपना व्याकरणिक कार्य कर रहें हैं । वह ने, -ई, को, ने -आ एवं वाक्य ने कर्म का स्थान ही कोशीय शब्दों के स्वरूप का परिवर्तन कर नए रूप देने के साथ-साथ उसे नए अर्थ से सपूत। करता है । दूसरे शब्दों में वाक्य में प्रयुक्त योग्य बनाने की प्रक्रिया रूप निर्मित की प्रक्रिया है, और इस प्रक्रिया की पूर्णता ही 'रूप-संरचना' की पूर्णता है । किंतु कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि एक ही अर्थ की प्राप्ति हेतु विभिन्न रूप प्रयुक्त होते हैं । यथा- अंग्रेजी में बहुवचन बनाने के लिए कही 'स' (cats), कहीं 'ज' (Dogs) कहीं एन' (chidron) प्रयुक्त होता है, इसी प्रकार हिन्दी में भी घोड़े, घोड़ों दोनों बहुवचन रूप हैं।

भाषा विज्ञान वेत्ताओं ने इसके संश्लिष्ट अध्ययन हेतु 'रूपिम' (रूपग्रास) की संकल्पता की ओर एक अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए परिपूरक वितरण में प्रयुक्त रूपों को 'सरूप' स्वीकार कर उनका एक वर्ग बनाया और उसके प्रतिनिधि को 'रूपिम' कहा गया । ये रूप कभी लिंग, और कभी वचन कारक, पक्ष तथा वृत्ति के अनुसार बदलते रहते हैं ।

इसके विपरीत वाक्य 'रूपों' का समूह तो होता ही है, उसमें भी अर्थ अभिव्यक्ति/प्रेषण की क्षमता होती है । यह क्षमता वाक्य संरचना में नियत स्थान पर प्रयुक्त रूपों के कारण प्रतिभाषित होती है । हिन्दी वाक्य संरचना में क्रमश: कर्ता, कर्म एवं क्रिया का स्थान प्राय: निर्धारित है, इसके विपरीत अंग्रेजी में यह क्रम है - कर्ता, क्रिया, और कर्म । रावण को राम ने

मारा' । कर्ता के स्थान पर प्रयुक्त होकर भी 'रावण' 'को' से संयुक्त होने के कारण राम के कर्म को ही अभिव्यक्त कर रहा, कर्ता राम' है । वैसे वाक्य का क्रम होना चाहिए था राम' ने रावण को मारा । स्पष्टत: वाक्य केवल स्थान भेद के कारण रूपों के अर्थो को नया रूप देता है, किंतु 'रूप' मूलत: स्वनात्मक व्याकरणात्मक स्वरूप है, वह व्याकरणिक अर्थ देता है । वस्तुत: वाक्य की सांकेतिकता रूपों के सही व्याकरणिक स्वरूप निर्मित में स्थित है । अस्तु असली व्याकरणात्मक संरचना रूप है और भाषा विशेष के व्याकरण के अनुसार इनमें होने वाले परिवर्तन भाषिक परिवर्तन तथा अलगाव, दूसरी भाषा से पार्थक्य के द्योतक हैं- यथा संस्कृत में राम: पुस्तकम पठति जबकि हिन्दी में होगा राम(ने) पुस्तक (को) पढ़ता है यहाँ संबंध तत्त्व अलग हैं, जबकि संस्कृत में मूल के साथ संयुक्त ।

तात्पर्य यह कि रूप भाषा की एक महत्त्वपूर्ण व्याकरणात्मक संरचना पद्धति है और इसके अध्ययन के बिना किसी भाषा का ज्ञान संभव ही नही । इतना ही नहीं रूप संरचना मूलत: भाषा समाज की सामाजिक चेतना का भी दर्पण है । यथा-संस्कृत में तीन लिंग ओर तीन वचनों के स्थान पर हिन्दी में दो लिंग ओर दो वचन सामाजिक चेतना के परिवर्तन के दिग्दर्शक हैं । प्रकृति से अलग संबंध तत्त्वों (प्रत्यय) का प्रयोग भाषा परिवर्तन का नियामक बनता है । हिन्दी में पिता राजा आदि । शब्दों के साथ किया का बहुवचन में प्रयोग 'पिताजी आ रहे हैं राजा आ रहे हैं यह दर्शाता है कि हिन्दी का समाज बडे और छोटे में बंटा हुआ है । अंग्रेजी में सामाजिक विभेद नहीं "Father is coming son is comming. King is comming".

रूप और रूपिम संरचना की इस महत्ता को ध्यान में रखकर इस इकाई में रूप और रूपिम संरचना की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । इसी क्रम में इस इकाई में शब्द एवं पद तथा संबंध तत्व की व्याख्या के साथ रूपिम, सरूप आदि की परिभाषा उनके भेदों, परिवर्तन के कारणों एवं दिशाओं को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है ।

10.2 रूप संरचना. रूप की अवधारणा

10.2.1 रूप. स्वरूप एवं परिभाषा

क. शब्द तथा रूप (पद)

ऊपर चर्चा आई है कि शब्द' ही 'रूप' बनते हैं किन्तु 'शब्द' और 'रूप' दोनों का अलग-अलग अस्तित्व है । सामान्यत: बोलचाल में शब्द और 'रूप में अंतर नहीं किया जाता और दोनों के लिए 'शब्द' का व्यवहार किया जाता है; किंतु भाषा विज्ञान की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त अंतर है । संस्कृत वैयाकरणों ने सुवन्त एवं तिडन्त को पद कहा । इनके अनुसार शब्द की शुद्ध रूप प्रतिपादित कहलाता है । राम, नदी, पुस्तक आदि प्रतिपादिक है किन्तु जब हम इसके प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि के अनुसार एक वचन, द्विवचन, बहुवचन के इक्कीस रूप निर्मित करते हैं तो यह रूप(पद) हो जाता है । क्योंकि ये, मूल शब्दों के अंत में सुप्रत्यय जोड़कर बनते हैं और सुबन्त (अर्थातृ सुपृ_ प्रत्यय है अंत में जिनके) कहलाते हैं इसी प्रकार

संस्कृत के क्रिया-पद के मूल रूप को धातु कहा जाता है । पठ्' (पढ-हिन्दी), गम्' आदि धातु रूप हैं, जिनके अंत में 'तिड्' आदि प्रत्यय जोड़कर पठति पठत:, पठन्ति आदि रूप बनते हैं । अर्थात् क्रिया रूप तिड्न्त है और अन्य शब्द रूप सुंवन्त/संस्कृत वाक्यों में इन्हीं सुवन्त और तिडन्त रूपों का व्यवहार होता रहा है । हिन्दी अयोगात्मक और संयोगात्मक दोनों प्राकृतियाँ हैं । फलस्वरूप कहीं प्रत्ययों का प्रयोग संयोगात्मक रूप में होता हैं- आवश्यक = आवश्यकता (-ता प्रत्यय का संयोग अर्थ परिवर्तित कर देता है) । अर्थात यह एक नया 'रूप बना और कहीं अयोगात्मक प्रवृत्ति दिखाई देती है-राम ने, 'पढ़ रहा आदि ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत और हिन्दी भाषा में 'शब्द' तथा 'पद' पर्याप्त अंतर है । बिना पद (रूप) बनाए किसी भी मूल शब्द (प्रतिपदित या धातु का वाक्य में प्रयोग नहीं किया जा सकता । संस्कृत वैयाकरणों का तो' स्पष्ट निर्देश है-. नाविभक्तिं पदं प्रयुंजीत अर्थात् विभक्ति रहित पद का प्रयोग भाषा में नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार 'पापि केवल प्रकृति: पयोक्तव्या, नापि केवल: प्रत्यय' ' - पतंजलि । अर्थात् न तो केबल प्रकृति (मूल शब्द-प्रतिपादिक या धातु) का प्रयोग करना चाहिए न ही केवल प्रत्यय (सुप, तिड्) आदि का ।

कभी-कभी मूल शब्द और वाक्य प्रयुक्त शब्द में कोई रूपगत भेद नहीं दिखाई देता । इसका तात्पर्य यह है कि यदि शब्द वाक्य की आवश्यकतानुसार अपने रूप में- वाक्य में प्रस्तुत होता है तो वह पद' या 'रूप' कहलाएगा, शब्द नहीं । अर्थात् 'शब्द' वाक्य के बाहर ध्वनियों के सार्थक समूह की स्थिति है और रूप (पद) वाक्य के भीतर शब्द की सार्थक पुनर्संरचना है । अयोगात्मक या एकाक्षर परिवार की भाषाओं में मूल शब्द ही वाक्य में स्थान भेद से पद तत्त्व का स्थान ग्रहण कर लेता है । वही रूप निर्माण के लिए किसी अन्य तत्त्व विभक्ति, प्रत्यय या उपसर्ग का सहारा नहीं लिया जाता ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि " रूप भाषा की व्याकरणात्मक अभिव्यक्ति का लघुतम माध्यम है । "और ' यह स्वनिमों का ऐसा सार्थक युग्म है जो व्याकरण के अनुरूप परिवर्तित होकर कथन में व्यवृहत होता है । 'रूप ही 'पद' हैं ये दोनों पर्यायवाची हैं संस्कृत में 'पद' का प्रयोग प्रचलित था और आधुनिक भाषा वैज्ञानिक इसे 'रूप कहना पसंद करते हैं । अंग्रेजी में इसके लिए शब्द है -Morph'

ख. अर्थ तत्त्व एवं संबंध तत्त्व

स्पष्टत: मूलशब्द/प्रकृति, धातु या प्रतिपादिक तथा पद में अंतर यह है कि मूल शब्द (प्रकृति) में वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता नहीं होती तथा पद में संबंध तत्त्व जुड़ने के कारण यह योग्यता आ जाती है । मूलत: संबंध तत्त्व का कार्य है- वाक्य में प्रयुक्त हुए शब्दों में परस्पर संबद्धता के गुण का विकास इस गुण का विकास ही व्याकरणिक संरचना को स्वरूप देकर वाक्य को अर्थवान बनाता है । इस प्रकार कहा जा सकता है- मूल शब्द+ संबंध तत्व (पद) । भाषा विज्ञान में इस मूल शब्द को ही अर्थतत्त्व कहा जाता है । अर्थात् उसमें समाज स्वीकृत प्रयुक्त अर्थ हमेशा विद्यमान रहता है । यथा- 'गाय', 'अक्षय', 'चन्द्रमा'., 'पढ, 'जो',

रो', 'पी आदि । वस्तुत: इन शब्दों में अर्थ चिपका होता है, दूसरी तरफ संबंध तत्त्व का कार्य वाक्य में पदों का एक दूसरे से संबंध स्थापित करना होता है । यथा 'गाय ने दूध को बछड़े को' पिलाया' । यहाँ 'ने', 'को, 'को', ला+या=लाया वाक्य से पदों से सन्निहित संबंध अभिव्यक्त कर रहे हैं । दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि संबंध तत्त्व भाषा की वह प्रक्रिया है जो अर्थ तत्त्व (मूल शब्द) में पहले से विद्‌यमान अर्थ को प्रकाशित कर देती । एक और उदाहरण अपेक्षित है-

श्याम रमेश मार

यद्‌यपि यहाँ उपस्थित तीनों शब्द अर्थतत्त्व हैं, किंतु यह स्पष्ट नहीं है कि किसने किसको मारा । यदि इसे संबंध तत्त्वों से युक्त कर दें तो वाक्य होगा-

'श्याम ने रमेश को मारा'

'श्याम रमेश को मारेगा' आदि

यहाँ यह स्पष्ट हो गया है कि मारने की किया करने वाला श्याम है, एवं क्रिया से प्रभावित रमेश है । वाक्य(दो) में 'श्याम, रमेश कर्ता, कर्म के स्थान पर प्रयुक्त होने के कारण किया करने वाला तथा क्रिया से प्रभावित को अर्थ दे देते हैं हां, वाक्य (2) में अर्थ तत्त्व 'मार' के साथ संबंध तत्त्व 'एम' जुड़ा है जो भविष्यकाल का प्रत्यय (संबंध तत्त्व) है, जो भविष्य में होने वाली क्रिया का संकेत देता हैं यह (लग्न) संबंध तत्त्व भविष्यकालिक क्रिया का अर्थ देने वाला रूपिम है ऊपर यह दर्शाया जा चुका है कि मूल शब्द (अर्थ तत्त्व) या प्रतिपादिक में भाषा के व्याकरण की आवश्यकता के अनुसार ही संबंध तत्त्व संद्दक्त होता है-

मैं जाता हूँ ।

मैं जाती हूँ ।

वे जाते हैं ।

वे जाती है ।

उपर्युक्त चार वाक्यों में 'जाना' क्रिया के चार रूप मिलते हैं इनमें जुड़े चार संबंध तत्त्व हैं- आ, ई, ए. ई । 'आ पुल्लिंग एकवचन का बोधक है, तो ई' स्त्रीलिंग एकवचन का । 'ए' पुल्लिंग बहुवन का बोधक है तो :ई बहुवचन का ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हे कि शब्द ही अर्थतत्व है क्योंकि शब्द में हमेशा अर्थ चिपका रहता है, इसलिए उसे ' ब्रह्म भी माना गया है । ब्रह्म से तात्पर्य यह है कि उसकी हमेशा विद्‌यमानता रहती है, यह अलग बात है कि कभी-कभी वह प्रयोग च्युत होकर केवल कोश की शोभा बढ़ाता है । दूसरी बात यह भी है कि शब्द में अर्थ तो चिपका रहता है, किंतु उसमें परिवर्तन(विकास) भी होता है । बिना अर्थ के शब्द की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती, इसीलिए भाषा वैज्ञानिक शब्दावली में इसे अर्थ तत्व कहा गया ।

इसके विपरीत संबंध तत्व को व्याकरणिक अर्थ प्रदान करता है, और अर्थतत्व को वाक्य में प्रयुक्त योग्य बनाता है । रूप निर्माण प्रक्रिया में संबंध तत्त्व का स्वरूप दो तरह का स्पष्टत: दिखाई देता है- 1 एक तो ध्वन्यात्मक होता है अर्थात् बोलते समय किसी ध्वनि या

ध्वनिसमूह पर बल 7: आघात देकर कथानक अर्थ बदल जाता है । वक्रोक्ति इसी तरह का उदाहरण है । यथा-आप तो पंडित हैं । यहाँ 'पंडित पर बल देकर उसे मूर्ख कहना प्रतिपाद्य है । ध्वनि/शब्द पर बल के कारण होने वाले परिवर्तन के भी कई भेद हैं । इनमें प्रमुख हैं - स्वराघात और बालाघात तथा अपश्रुति (कुकर्म, कुकर्मी) । दूसरे प्रकार के संबंध तत्त्व प्रत्यय होते हैं जो काल, लिंग, वचन, पुरूष, कारक, पक्ष, वृत्ति आदि की अभिव्यक्ति -करते हैं । ये कभी अर्थतत्व से जुड़े होते हैं (पुरूषत्व) और कभी स्वतंत्र होते हैं(श्याम को) । हिन्दी में कारक संबंध तत्त्वों को छोडकर अधिकांश अर्थतत्व से जुड़े होते हैं ।

10.2.2 रूपिम एवं सरूप की परिभाषा

यदि किसी भाषा का उच्चारण केवल स्वनिमों की संरचना है तो उसे बोलने एवं सुनने की कोई उपयोगिता नहीं है । किंतु लोग बोलते एवं सुनते हैं और मौखिक उच्चारणों द्वारा सूचनाएँ और निर्देश संप्रेषित करते हैं तथा मानव की क्रियाओं को परस्पर सम्बद्ध करते है । ये उच्चारण केवल इसलिए दूसरे प्रकार का कार्य करते हैं क्योंकि उसमें स्वनिम के अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार की संरचना होती है । इसी संरचनाओं को 'रूपिम कहा जाता हैं यह संरचना अर्थ से भी जुड़ी हो सकती है । एक उदाहरण देखें 'द गे को प ल' । यह स्वनिमों का समूह है, किंतु इसका कोई अर्थ - हिन्दी में नहीं है, अर्थात् यह कारण प्रलाप है । यदि हिन्दी के मान्य क्रम में इन्हीं स्वनिमों को बोला या लिखा जाए - 'गेंद लपको तो दोनों स्वन समूह/स्वनिम संरचना रूपिम में परिवर्तित होकर अर्थवान इकाई बन जाते हैं ।

अतएव कहा जाता है कि 'रूपिम माया उच्चारण की लघुता अर्थवान इकाई है । वस्तुत: रूपिम स्वनिमों का ऐसा न्यूनतम अनुक्रम है जो व्याकरणिक दृष्टि से सार्थक होता है' ' । इसलिए रूपिम को अर्थवान इकाई कहा जा सकता है । यद्यपि रूपिम अर्थ की इकाई नहीं है । ही, सभी रूपिम ध्वनियों के अनुक्रम होते हैं किंतु इसके विपरीत स्वनिमों के सभी अनुक्रम रूपिम नहीं होते यथा- दगेंकोपल ।

सार्थक स्वनिमों के अनुक्रम को 'रूप नाम से अभिहित किया जाता है किंतु सभी 'रूप' 'रूपिम' नहीं कहे जा सकते । वस्तुतः: रूपों के आकार तथा अर्थ के आधार पर रूपिमों (माफीमि) एवं संख्यों (एलोमार्क) का निर्धारण किया जाता है ।

हिन्दी के स्त्रीलिंग एवं बहुवचन प्रत्यय उदाहरण स्वरूप लिए जा सकते हैं । हिन्दी के स्त्रीलिंग प्रत्यय हैं 'ई', कभी इस' तथा कभी - 'नी' ठीक इसी प्रकार बहुवचन प्रत्यय 'ए' ,-एँ, '-औं. एवं -याँ' होते हैं । एक ही अर्थ को रूपित करने के लिए यदि एक से अधिक रूप हो और उनके व्यवहृत होने के संदर्भ प्रवचनीय हों तो उन सबको एक ही रूपिम का संख्य माना जाता है । स्त्री प्रत्ययों में जहाँ- 'ई' होता है वहाँ - 'इन' या -नी' नहीं होता । अत: यह परिपूरक वितरण में है । इस वितरण के संबंध में इतना जानना आवश्यक है कि 'परिपूरक' का तात्पर्य है- एक ही कार्य को एक के स्थान पर दूसरे द्वारा किया जाना भाषा में रूपिमों के स्थान एवं उनकी प्रयोज्यता की परिस्थितियाँ अलग-अलग निर्धारित होती हैं इसीलिए जहाँ एक आएगा वहाँ दूसरा नहीं आएगा अस्तु परिपूरक वितरण में प्रयुक्त एक ही अर्थ कार्य के लिए प्रयुक्त सभी 'रूपों में

किसी एक को रूपिम मानकर उपरूपों (सरूपों) का निर्धारण किया जाता है । यथा- हिन्दी स्त्रीलिंग

रूपिम	सहरूप/संरूप
-ई'	-ई' (लड़की), -इन' (नाऊ-नाइन)
	-नी' (रानी)

अंग्रेजी भाषा में संज्ञारूपों के बहुवचन बनाने के लिए '-स' (s = Works), ज' (-S=Boys), एज', (es- horses), -एन' (en=oxen), '-रिन'(ren-children), तथा 'शून्य' (Sheep) रूपों का प्रयोग होता है । यहाँ भी-सं' (S) रूपिम है, शेष उसके संरूप/विभिन्न 'रूपों का समूह सरूप कहा जाता है, और उसका प्रतिनिधि रुपिम संरूपों का प्रतिनिधित्व करें"

10.2.3 रूपिम निर्धारण पद्धति

सरूप और 'रूपिम की अवधारणा 'रूपिम' निर्धारण पद्धति के विवेचन से और स्पष्ट होगी । भाषा प्रयोक्ता की भाषिक अभिव्यक्ति के समय भाषा वैज्ञानिक उस भाषा के रूपों और रूपग्रामों को तुरंत अलग नहीं कर पाते । यह स्थिति धारा प्रवाहता में और विकट हो जाती है । अस्तु ऐसी स्थिति में भाषा वैज्ञानिकों को वक्ता से अपने कथन को धीरे-धीरे दुहराने का निवेदन करना चाहिए । जब वह अपने कथन को धीरे-धीरे दुहराव तो वह कथन में कई स्थानों पर स्वभाविक रूप से विराम देगा दो विरामों के मध्य के अंग रूपिम होंगे । वे संयुक्त भी हो सकते हैं और अकेले भी । इन स्वाभाविक टुकड़ों का हम निम्नलिखित दो आधारों पर परीक्षण करेंगे:

1. क्या वह अंश अन्य उच्चारणों में लगभग उसी अर्थ में व्यवहृत होता है?
2. क्या वह अंश और अन्य छोटे रूपों में विभक्त हो सकता है, और विभक्त टुकड़े क्या अर्थवान हैं?

1. क्या वह अंश अन्य उच्चारणों में लगभग उसी अर्थ में व्यवहृत होता है? यदि इसका उत्तर नहीं में मिलता है तो निश्चय ही चुना हुआ अंश हमारे काम का नहीं है, और तब हम दूसरे अंश के साथ यही प्रयास करेंगे । यदि उत्तर ही में मिलता है तो यह अंश लगभग व्याकरणिक रूप है किंतु अनिर्वायत: एक रूपिम नहीं ।

2. क्या वह 'रूप' अन्य छोटे रूपों में विभक्त हो सकता है, और छोटे रूप लगभग उसी अर्थ में अन्य उच्चारण में व्यवहृत होते हैं? और इस पद्धति से छोटे रूपों का अर्थ समग्र रूप में उस बडे रूप के अर्थ को अभिव्यक्त करता है? यदि उत्तर ही में है तो यह रूप एक रूपिम से बड़ा है । अर्थात संयुक्त रूप है और फिर हम हर टुकड़ों का उपर्युक्त दो आधारों पर परीक्षण करेंगे । यदि उत्तर नहीं में मिलता है तो वह रूप एवं रूपिम है ।

तात्पर्य यह कि प्रत्येक चुना हुआ प्रथम परीक्षण के आधार पर या तो अनावश्य अंश हो सकता है या व्याकरणात्मक रूप हो सकता है या एक रूपिम । इस प्रक्रिया द्वारा हम उच्चारणों के सभी रूपिमों की खोज कर सकते हैं ।

निम्नलिखित कथन (उच्चार) की उपर्युक्त दोनों आधारों पर परीक्षा से बात स्पष्ट हो जाएगी-

'वह अपने बड़े भाई के साथ अच्छा व्यवहार करता है ।" धीरे-धीरे उच्चरित किये जाने पर इसके स्वाभाविक टुकड़े होंगे-

वह /, /अपने /, / बडे /, / भाई /, / के /, / साथ /, / अच्छा' /,/ व्यवहार /,/ करता /,/ है ।

प्रस्तुत वाक्य की निर्मित में सहायक रूपिमों की खोज के लिए हम किसी अंश को लेकर उपर्युक्त प्रश्नों के आधार पर उस अंश की परीक्षा करेंगे-

/वह/

(1) / वह जाता है/

/वह पढ़ती है ।

/वह खेलता है ।

स्पष्ट है कि /वह/ अन्य उच्चारों में भी उसी रूप में और उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है । चुने उच्चार के /वह / एवं इन उच्चारों के 7वह/ अर्थ में समानता है । यह हिन्दी का सर्वनाम रूप है जो अन्य पुरूष में स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग दोनों में प्रयुक्त होता है । यही इसका अर्थ है ।

(2) /'वह/ के संभावित टुकड़े हो सकते हैं-

/व/, /ह/

/ वहाँ / वह / , /वापस/ में टुकड़े व्यवहृत तो होते हैं परन्तु उसी अर्थ में नहीं यहाँ वह के /व/', या /ह/ टुकड़ों में उपयुक्त अर्थ द्योतित नहीं है । अपितु ये दूसरे अर्थ के जनक हैं । अस्तु ये निरर्थक हैं । निष्कर्षत: /वह/ के और सार्थक टुकड़े नहीं किये जा सकते, इसलिए '/वह/ एक रूपिम है ।

(2) /अपने/

/मैं अपने घर जा रहा हूँ/

/वह अपने गुरूजनों का सम्मान करता है/

/वह अपने पिता के साथ भोजन कर रहा है/

इन उच्चारों में /अपने/ लगभग उसी अर्थ में प्रयुक्त है । अत: यह एक रूपिम है ।

(2) /अपने/ के निम्नलिखित टुकड़े किये जा सकते हैं-

(क) '/आ/,/ने/

(ख) /अ/, /'पन/'

(ग) /अपन/, /ए/

प्रथम दोनों टुकड़े यद्यपि हिन्दी भाषा में अन्य उच्चारों में प्रयुक्त होते है किंतु उपर्युक्त अर्थ में नहीं अस्तु ये दोनों टुकड़े हमारे काम के नहीं । (ग) टुकड़ा समान अर्थो में हिन्दी भाषा के अन्य उच्चारों में भी प्रयुक्त होता है । /ए/ पुल्लिंग बहुवचन बोधक प्रत्यय के रूप में /अपने/ /और/ बड़े/ में प्रयुक्त है/ अत: अपने संयुक्त रूपिम है- '/अपन/+/-ए/ एवं सरूप ।

'उपर्युक्त आधारों के अतिरिक्त रूपिम निर्धारण में निम्नलिखित आधारों की भी सहायता ली जाती है-

1. स्वनिमिक आधार भिन्न होने पर भी अर्थ की समानता के आधार पर रूपिमों का निर्धारण होता है । अंग्रेजी के बहुवचन के दो प्रत्यय /स/ (s) तथा /ज/(-Z) हैं । इनमें /ज/ का प्रयोग सघोष व्यंजनों के बाद तथा /स/ का प्रयोग अघोष व्यंजनों के बाद होता है । वस्तुत: ये '/-ज/ /तथा/ /स/ एक ही रूपिम के सरूप हैं' जिनका वितरण परिपूरक है ।

2. भूतकाल बनाने के लिए अंग्रेजी में /-ed/ लगता है किंतु put एवं cut में भूतकाल बनातेस मय इस प्रत्ययों का प्रयोग नहीं होता । ढाँचे की एकरूपता के लिए भूतकाल में इन धातुओं में शून्य प्रत्यय का व्यवहार किया जाता है । यह: शून्य उपरूप कुछ'ध्वन्यात्मक कारणों से व्यवहृत नहीं होता । यह उपरूप व्याकरणिक दृष्टि के महत्त्वपूर्ण है,।

3. किसी संरचना श्रेणी (structural series) का प्रकार आधार में द एक स्वतंत्र रूपिम बन सकता है । जबकि यह प्रकट आकार भेद तथा बाद वाला शून्य से रचनात्मक रूप मिलकर रूप और अर्थ की भिन्नता की व्याख्या करते है । यथा Foot, Feet (you-I) संरचना श्रेणी का आकार-भेद हैं जिसके अंत में बहुवचन सूचक कोई प्रत्यय नहीं लगता । इस स्थिति में संरचनात्मक श्रेणी का आकार भेद (you-I) एक रूपिम का निर्माण करते हैं हिन्दी में /मैं/, /वह/, /तुम/ तथा अरबी में /किताब/ /कुतुब/ /कातिब/ आदि में भी यह सिद्धांत कार्यरत है।

4. सर्वथा भिन्न अर्थवाची समध्वन्यात्मक रूप दो भिन्न 'रूपिम' माने जाते हैं । यथा हिन्दी का /कनक/ दो रूपिम है । एक का अर्थ 'स्वर्ण' हैं, दूसरे का धतूरा ।

ऐसे समध्वन्यात्मक रूप जो अनेकार्थी हैं तथा उनके अर्थ संदर्भो से स्पष्ट हो जाएँ तो वे एक ही रूपिम के सरूप होंगे । यथा 'मुझे मार', तथा 'मुझे मार पड़ी' में 'मार' शब्द क्रमश: क्रिया और संज्ञा हैं तथा संदर्भगत स्पष्टता हैं । किंतु उसके विपरीत वे रूप जो अनेकार्थी हैं पर संदर्भरहित हैं अलग रूपिम होंगे । यथा- ऊपर का उदाहरण -`कनक'/'कनक अच्छा नहीं होता । इस कथन में संदर्भगत स्पष्टता नहीं है अत: अलग रूपिम होगा ।

10.2.4 रूपियों तथा संख्यों का अंकन. पद्धति

भाषा-विश्लेषण के अंतर्गत भाषिक रूपों के अंकन का बड़ा महत्त्व है । रूपिमों तथा संरूपों के अंकन के लिए क्रमश: {} तथा // कोष्ठकों का उपयोग किया जाता है । जैसे {शत} [रातें] {रात} {-एँ} शून्य सरूप /0/

10.2.5 रूपिम के भेद

रूपिमों के प्रमुखत: चार भेद होते हैं -

(क) **मुक्त रूपिम :** वह रूपिम जो एकाकी' प्रयोग में आता है मुक्त रूपिम कहा जाता है । अंग्रेजी का form (से) अपादान रूपिम इसका श्रेष्ठ उदाहरण है । हिन्दी के राम, गाय, पशु, आदि शब्द भी मुक्त रूपिम हैं ।

(ख) **बद्ध रूपिम** : वह रूपिम जो सदैव अन्य रूपिमों के साथ प्रयुक्त होता है, बद्ध रूपिम कहलाता है । स्त्रीलिंग, काल और वचन के प्रत्यय इसी प्रकार रूपिम है । यथा 'लड़का-लड़की' के लड़की में 'ई' स्त्रीलिंग प्रत्यय है किंतु यह अलग मुक्त रूपिम के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकता । यही स्थिति हिन्दी के अधिकांश काल तथा वचन के प्रत्ययों के साथ भी है ।

(ग) **मुक्त-बद्ध रूपिम** : वह रूपिम जो कभी मुक्त रहता हो और कभी वह मुक्त बद्ध रूपिम है । वस्तुत: इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है हिन्दी (संस्कृत भी) की समास व्यवस्था । यथा- राजपुरूष । इसके दोनों रूपिम राज' और पुरूष मुक्त रूप में भी प्रयुक्त हो सकते हैं और बद्ध रूप में भी ।

(घ) **संयुक्त रूपिम** यदि किसी पद में एक से अधिक रूपिम संयुक्त हों, किंतु उनमें केवल एक ही अर्थ तत्त्व हो तो उसे संयुक्त रूपिम कहते हैं । घरों, नगरों, बालक:, बालको, पंकज, नीरज आदि इसके उदाहरण हैं ।

10.2.6 रूपिम के प्रकार्य : आधार, व्याकरणिक कोटियाँ

यह स्पष्ट हो चुका है कि रूपिम एक महत्त्वपूर्ण व्याकरणात्मक संरचना है वहीं, भाषा की एक सार्थक इकाई भी है और वाक्यात्मक संरचना का आधार भी है । व्याकरणिक संरचना होने के कारण इसके प्रकार्य को व्याकरणात्मक कोटियों के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा ।

यह उल्लेख किया जा चुका है कि संबंध तत्व के द्वारा अर्थ तत्व के लिंग, वचन, पुरूष, कारक, काल या पक्ष (Aspects), तथा वृत्तियाँ या अर्थ (Mood) आदि की अभिव्यक्ति की जाती है । इन्हें ही व्याकरणिक कोटियाँ कहते हैं । सभी भाषाओं में इनकी संख्या समान नहीं होती । किसी शब्द में जिस व्याकरणिक कोटि के संयोजन में अलग स्वनिम जोड़ना पड़े उसे विभक्ति परक या रूपयित कोटि कहते हैं तथा जहाँ प्रतिपादिमक अपने अपरविर्तित रूप में व्याकरणिक कोटि के सहित होते हैं उसे चयनात्मक कोटि (selective category)कहते हैं । हिन्दी के संदर्भ में इन कोटियों के साथ रूपिम के प्रकार्य का विवेचन प्रस्तुत है ।

(क) **लिंग** : संज्ञा रूपों में लिंग रूपिम सक्रिय होते हैं । हिन्दी में ह रूपायित एवं चयनात्मक कोटि का मिलता है । रूपायित/लडक्-/+ -ई/= लड़की,/घोड़-/+/-ई/घोड़ी/चयनात्मक/दिन/(पु)/रात (स्त्री) यहाँ स्पष्ट है कि कुछ संज्ञा रूपों के स्वतंत्र स्त्रीलिंग बनाया जाता है जो 'रूपिम' कहलाता है । इसका कार्य स्त्रीलिंग का अर्थ प्रदान करना होता है ।

(ख) **वचन.** स्त्रीलिंग की भांति बहुवचन की निर्मिति प्रक्रिया में भी प्रत्यय लगाकर एक वचन को बहुवचन बनाया जाता है । यथा - ' लड़की-/+/-इयाँ/लड़कियाँ ।

(ग) **पुरूष :** पुरूष रूपिमों सर्वनामों के रूप परिवर्तन के कारक हैं, जिसका अनुवर्तन क्रिया को करना होता है । हिन्दी में तीन पुरूष हैं - उत्तम पुरूष- मैं, हम; मध्यम पुरूष- तू तुम; अन्य पुरूष वह, वे, आप यहाँ स्पष्ट है कि यदि उत्तम पुरूष में प्रयोग करना है तो रूपिम होगा मैं (एकवचन), हम(बहुवचन), मध्यम पुरूष में यही रूपिम परिवर्तित

होकर, तू, तुम, तुम्हारे हो जाता है । इसी तरह अन्य पुरूष में वह वे आप स्पष्ट है कि रूपिम ही किस वाक्यात्मक संरचना के निम्न पुरूषों का बोध कराता है ।

(घ) **कारक :** हिन्दी में इस कोटि के रूपिम का संबंध संज्ञा और सर्वनाम रूपों से कारकों से किसके आधार पर लगाया जाए यह कारक रूपिम ही द्योतित करता है । इतना ही नहीं, यह रूपिक में वाक्यात्मक संरचनात्मक में यह रूपिम कर्ता, कर्म क्रिया को परस्पर सम्बद्ध करता है ।

(ङ) **काल :** किया रूपों का काल (वर्तमान, भूत, भविष्य) के अनुसार परिवर्तित कर प्रयुक्त होने योग्य काल परक रूपिम ही बनाता है । यथा 'मैं जाता हूँ, 'मैं जाऊँगा । ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि मूल क्रिया रूप 'जा वर्तमान में '-त्ता', संवृत्त है । भूत में इसका रूप पूर्णता बदल जाता हैं, और भविष्य में -ऊँगा ', संस्कृत ही व्यवसाय और विषय में 'ऊंगा संयुक्त होता है । यह संवृत्तता ही काल परक रूपिम है जो वाक्य को विभिन्न कालों का अर्थ प्रदान करता है । रूपिम (भूतकाल) के संदर्भ में यह बता देना आवश्यक है कि इसमें अर्थतत्व और संबंध तत्त्व इस प्रकार मिल गया है कि दोनों के अस्तित्व का पता नहीं चलता ।

(च) **पक्ष या प्रकार :** इस तरह के रूपिम का भी संबंध क्रिया से है । यह क्रिया 'द्वार सूचित कार्य की पूर्णता, अपूर्णता तथा बारम्बारता का संकेतक है । यथा - वह गया, वह जाता है, वह जा रहा है ।

(छ) **वृत्ति या अर्थ :** यह भी क्रिया के निश्चयार्थ, संभावनार्थ, संदेहार्थ, अज्ञार्थ और संकेतार्थ का संकेतक है । अनेक अर्थो वाले शब्द जब परस्पर मिलकर एक शब्द के रूप लेते हैं और किस विशेष अर्थ को प्रकाशित करते हैं तो इस प्रक्रिया को वृत्ति कहा जाता हैं यथा - पंकज, कुंभज आदि इसी प्रकार के रूपिम है ।

(ज) **वाच्य :** इस प्रकार के रूपिम से पता चलाता है कि कार्य संपादन का दायित्व कर्ता पर है या वह उससे प्रभावित होता है । सामान्यत: दो वाच्य मान्य है- कर्तृवाच्य एवं - कर्मवाच्य । यथा - कर्तृवाच्य काटना, तारना, मिराना तथा कर्मवाच्य में यह रूपिम बदल कर-कटना, तरना, गिराना बनेंगे और कर्मवाच्य का अर्थ प्रदान करेंगे ।

10.2.7 रूप परिवर्तन की दिशाएँ तथा कारण

क. दिशाएं

रूप परिवर्तन का क्षेत्र ध्वनि परिवर्तन की अपेक्षा संकुचित होता है । ध्वनि परिवर्तन के बाद पुरानी ध्वनियों का प्रचलन समाप्त हो जाता है क्योंकि पुरानी ध्वनि को समाप्त करके ही नयी ध्वनि बनती है जबकि रूप परिवर्तन होने के बाद नए रूपों के साथ पुराने रूप भी चलते रहते हैं । यही कारण है कि कभी-कभी भाषा में एक अर्थ देने वाले अनेक रूप साथ-साथ मिल जाते हैं । पतंजलि ने भी अपने महाभाष्य में इस तथ्य को स्वीकार किया है।

रूप परिवर्तन की दिशाएं अनेक गिनाई गई हैं । यथा- पुराने रूपों का लोप तथा नए का प्रयोग, (2) सादृश्य के कारण नए रूप की निर्मित, (3) अतिरिक्त प्रत्यय प्रयोग, (4) अतिरिक्त शब्द

प्रयोग, (5) गलत प्रत्यय प्रयोग, (6) नए प्रत्यय की निर्मित, (7) आधा पुराना, आधा नया प्रत्यय, (8) मूल में परिवर्तन, (9) मूल और प्रत्यय दोनों का परिवर्तन आदि । किंतु आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक केवल दो दिशाएँ ही स्वीकार करते हैं- (i) नए रूपों की उत्पत्ति एवं (ii) पुराने रूपों का नाश ।

(i) नये रूपों की उत्पत्ति - रूपों में जब अधिक एकरूपता आ जाती है तो रूपों के प्रयोग में भ्रम होने लगता है तथा अर्थ में भी अनिश्चितता तथा संदेह उत्पन्न हो जाता है तब रूपों की एकरूपता समाप्त करके उनमें अनेक रूपा लाने के प्रयास की ओर मनुष्य का मन उन्मुख होने लगता है । नवीनता का आकर्षण भी इसमें सहायक होता है । हिन्दी परसर्गो का विकास इस प्रक्रिया का परिणाम है ।

(ii) पुराने रूपों का नाश - किसी एक अर्थ हेतु पुराने एवं नये रूपों के एक साथ चलने पर वक्ता पुराने रूपों का प्रयोग भार समझने लगता है । परिणामस्वरूप वह प्रयोग च्युत हो जाता है । किंतु कला, द्वारा भविष्य में ये रूप फिर कभी व्यवहृत हो सकते हैं अर्थात् यहाँ 'नाश' से केवल इतना तात्पर्य है कि वे रूप कुछ काल के लिए उस भाषा के प्रयोग से लुप्त हो जाते हैं संस्कृत के आठ कारक रूपों के स्थान पर हिन्दी में केवल तीन प्रकार के ही कारक मिलते हैं । संस्कृत के तीन वचन के विपरीत हिन्दी में दो ही वचन होते हैं । शेष कारकों एवं वचन रूपों का हिन्दी में लोप हो गया है ।

रूप परिवर्तन की ये दिशाएँ न तो बहुत स्पष्ट हैं और न ही स्वतंत्र दिशा में कार्य करती हैं, अपितु वे पीछे मुड़कर प्राचीन रूपों को भी ग्रहण कर सकती हैं और आगे बढ़कर नए रूपों का भी निर्माण कर सकती हैं ।

ख. कारण

रूप परिवर्तन के प्रमुख कारण हैं -

1. **सरलता की मनोवृत्ति** - कठिन से सरल की ओर उन्मुखता मानवीय प्रवृत्ति है । यह मनोवृत्ति रूप परिवर्तन को भी प्रभावित करती है । हिन्दी में कारक एवं वचन तथा लिंग के रूपों की संख्या में कमी इसी मनोवृत्ति का परिणाम है । पहले इनके रूपों में जहाँ आधिक्य के कारण क्लिष्टता थी वहीं इनकी संख्या कम करके सरलता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति है संस्कृत में एक शब्द के इक्कीस रूप थे, हिन्दी में यह केवल छः रह गये ।

2. **नवीनता -** नित नवीन बनने एवं बनाने की मानव-प्रवृति होती है । जब परंपरागत शब्द-रूपों का प्रयोग करते-करते मन ऊब जाता है, तो वह नए रूपों की खोज में प्रवृत होता है । यथा- सुन्दरता का सौंदर्य प्रचुरता का प्राचुर्य आदि । इसी प्रकार वस्तु के लिए विषय-वस्तु, व्यंजना के लिए अभिव्यंजना रूपों का निर्माण भी हमारे नवीनता के प्रति आकर्षण का प्रतीक है ।

3. **स्पष्टता -** शब्द रूपों की अत्यधिक समानता से भाषा में अस्पष्टता आ जाती है । इस अस्पष्टता को दूर करने क लिए पुन: भाषा के समान रूपों में भेद उत्पन्न किया जाता है । साथ ही खास अर्थो की अभिव्यक्ति के लिए खास प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता

है । यथा- पालि में तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियों के रूप समान हो जाने पर षष्ठी विभक्ति के लिए केरक तथा सप्तमी के लिए मज्झे' आदि । सहायक शब्द रूपों का प्रयोग भाषा में चल पड़ा । फलस्वरूप षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति के अर्थ में स्पष्टता आ गयी ।

4. **सादृश्य** - रूप-रचना की विविधता में सादृश्य एक महत्त्वपूर्ण कारक है । संस्कृत - करिणा से हरिणा की निर्मिति इसका उदाहरण है । संस्कृत अकारांत शब्द रूपों में सादृश्य पर आगे चलकर पालि में इकारांत, उकारांत शब्दों के रूप भी अकारांत हो गए । तीन से तीनों के सादृश्य पर दो से दोनों, द्वादश के सादृश्य पर एकादश, आस (संस्कृत-आशा) के सादृश्य पर साँस (सं. श्वास पु.) को स्त्रीलिंग रूप सादृश्य का ही उदाहरण है ।
5. **अज्ञानता** - श्रेष्ठ के साथ-साथ श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम, उपर्युक्त के स्थान पर उपरोक्त आदि रूप अज्ञानता के उदाहरण हैं ।
6. **बल -** बल देने के लिए भी भाषा रूपों में परिवर्तन हो जाता है । यथा - खालिस खिलाफ का क्रमश: निखालिस, के खिलाफ यहाँ 'नि' एवं वे बल देने के लिए प्रयुक्त हैं।

10.2.8 रूप स्वनिम विज्ञान

यह रूपिम विज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत उन स्वनात्मक परिवर्तनों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है जो दो या दो से अधिक रूपों या रूपिमों से बने होते हैं । यथा - जगत + जगज्जननी में त् का च हो गया है । परवर्ती घोष ध्वनि के कारण यह परिवर्तन हुआ है । दूसरे शब्दों में हम इसे संस्कृत की संधि कह सकते हैं ।

रूप स्वनिम विज्ञान में आगम, समीकरण, विषमीकरण तालव्यीकरण एवं मूर्धन्यीकरण आदि स्वन (ध्वनि) परिवर्तन भी आते हैं ।

वस्तुत: रूप स्वनिम, रूपिम एवं संयपों में होने वाले स्वनात्मक परिवर्तनों को स्पष्ट करके इनके पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डालता है । भाषा के वैज्ञानिक विवेचन में भाषा विज्ञान की इस शाखा से काफी सहायता मिलती है ।

10.3 विचार संदर्भ शब्दावली

1.	कोशीय	:	शब्द कोश से संबंधित
2.	धारा प्रवाह	:	लगातार, बिना रूके
3.	निर्मिति	:	बनावट, संरचना
4.	परिपूरक	:	किसी के साथ जुड़ कर उसे पूरा करने वाला
5.	प्राचुर्य	:	अधिकता
6.	बद्ध रूपिम	:	वह रूपिम जो सदा अन्य रूपिमों के साथ प्रयोग में आता हो ।
7.	मुक्त रूपिम	:	वह रूपिम जो एकाकी प्रयोग में आता हो ।
8.	मुक्त बद्ध रूपिम	:	वह रूपिम जो कभी मुक्त रहता है तो कभी बद्ध ।

9.	रूप स्वनिम विज्ञान	:	दो या दो से अधिक रूपों या रूपिमों से बने शब्दों के रचनात्मक परिवर्तन का अध्ययन विश्लेषण करने वाला विज्ञान ।
10.	प्रवचनीय	:	परिभाषित करने योग्य
11.	'कोरा प्रलाप	:	निरी बकवास
12.	संयुक्त रूपिम	:	यदि किसी पद में एक से अधिक रूपिम संयुक्त हों लेकिन उसमें से केवल एक ही अर्थतत्व तो इसे संयुक्त रूपिम कहते हैं ।
13.	प्रतिपाद्य	:	विषिय मूल कथ्य
14.	आधार भूत	:	बुनियादी, प्राथमिक और जरूरी
15.	प्रयोगच्युत	:	प्रयोग में न आने वाले, अप्रचलित
16.	वृत्ति	:	क्रिया के निश्चार्थ, संकेतार्थ संभावनार्थ, संदेहार्थ, आज्ञार्थ का बोध कराती है ।
17.	विभक्ति परक	:	विभक्तियों वाले शब्द
18.	पक्ष	:	यह रूपिम क्रिया द्वारा सूचित कार्य की पूर्णता अपूर्णता या बारंबारता का संकेतक है ।
19.	चयनात्मक कोटि	:	चुनने लायक वर्ग

10.4 सारांश

रूप संरचना स्वयं में एक जटिल व्याकरणिक प्रक्रिया हैं यह भी देखने में आता है कि संसार की समस्त भाषाओं की यह संरचना-प्रक्रिया दूसरी भाषा से आना अलगाव प्रदर्शित करती हैं । सभी के 'रूप अलग हैं, उनकी निर्मित प्रक्रिया भी अलग है ।

यही संरचनागत प्रक्रिया का अलगाव संसार की भाषाओं को अलग करता है । वस्तुत: यह संरचना प्रक्रिया मानवीय प्रवृत्ति की प्रतिकृति है; साथ ही उसके सामाजिक स्वरूप की भी परिचायक है । यही कारण है कि रूप संरचना के बदलाव की स्थितियाँ अधिसंख्य भाषाओं में समान रूप से मिलती हैं ।

'शब्द' और 'रूप' भिन्न इकाई हैं । एक में अर्थ चिपका रहता है दूसरे में अपेक्षित व्याकरणात्मक संरचना के अनुरूप इस चिपके हुए अर्थ के प्रकाशन की क्षमता आ जाती है । वाक्यात्मक संरचना की महत्त्वपूर्ण या आधारभूत इकाई रूपिम है यह 'रूपिम' भाषा की लघुतम सार्थक इकाई तो है ही साथ ही संरूपों के समूह का प्रतिनिधि भी रूपिम की अवधारणा अर्थतत्व और संबंध तत्त्व के विभेद परक ज्ञान द्वारा ही हो पाती है । रूप में होने वाले परिवर्तन मनुष्य की सरलतागामी प्रवृत्ति के परिचायक हैं । उसकी परिवर्तन परक दिशाएँ बहुत स्पष्ट नहीं है किंतु यह सर्वमान्य तथ्य है कि 'रूप' तथा 'रूपिम' को ज्ञान की भाषा को समझ पाने की क्षमता प्रदान करता है और कथन के धरातल पर स्वन तथा वाक्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण संरचना है - 'रूपिम इसलिए भाषा विज्ञान में इसका महत्त्व सर्वाधिक है ।

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. कप, सरूप' तथा रुपिम' को सोदाहरण परिभाषित कीजिए ।
2. 'अर्थतत्व एवं संबंध तत्व का उदाहरण सहित अंतर स्पष्ट कीजिए ।
3. रूपिम निर्धारण पद्धति का परिचय दीजिए ।
4. रूप परिवर्तन की दिशाएँ और कारणों का सोदाहरण विवेचन कीजिए ।
5. रूपिम के प्रकार्य स्पष्ट कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. रूपिम और सरूप का अन्तर बताइए ।
2. अर्थतत्व और संबंधतत्व के मौलिक अंतर को स्पष्ट कीजिए ।
3. मुक्त बद्ध और बद्धमुक्त रूपिमों में आप क्या फर्क पाते हैं?
4. रूप परिवर्तन के कोई दो कारण लिखिए ।
5. रूप स्वनिम विज्ञान किसे कहते हैं?

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. शब्द और रूप दोनों का अलग अलग .... है।
2. स्वनिमों के सभी अनुक्रम .... नहीं होते।
3. राम......................रावण.................................तीर......................... मारा।
4. लोग मौखिक उच्चारणों द्‌वारा .... संप्रेषित करते हैं ।
5. संस्कृत के आश शब्द के .... पर साँस शब्द बना है ।

घ. सही/गलत चिह्नित कीजिए

1. रूपिम भाषा उच्चार की लघुतम अर्थवान इकाई है । सही/गलत
2. किसी संरचना श्रेणी का प्रकट आकार भेद एक स्वतंत्र रूपिम बन सकता है । सही/गलत
3. वह रूपिम जो सदैव अन्य रूपिमों के साथ प्रयुक्त होता है, मुक्त रूपिम कहलाता है । सही/गलत
4. घरों, नगरों, संयुक्त रूपिम के उदाहरण हैं । सही/गलत
5. सर्वथा भिन्न, अर्थवाची सध्वन्यात्मक रूप दो भिन्न रूपिम माने जाते हैं । सही/गलत

10.6 संदर्भ ग्रंथ

1. प्रो. राजमणि शर्मा; आधुनिक भाषा विज्ञान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली-S

2. डॉ. उदयनारायण तिवारी; अभिनव भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद
3. C.F. Hocket; A cwise in modern lingwistics, oxford and I. B. H. Publishing Co. New Delhi.
4. Jr. H.A. Gleanon; An introduction to descriptive linguistics, I.B.H Publishing Co. New Delhi.

इकाई- 11 वाक्य संरचना

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 वाक्य विज्ञान

11.3 वाक्य की अवधारणा

11.3.1 वाक्यों के भेद

11.3.2 वाक्य परिवर्तन

11.3.3 वाक्य परिवर्तन के कारण

11.4 वाक्य संरचना

11.4.1 वाक्य संरचना के विविध स्तर

11.5 वाक्य विश्लेषण और उसके स्तर

11.6 आधुनिक भाषा विज्ञान : सस्यूर और चॉम्स्की की मान्यताओं का सामान्य परिचय

11.7 विचार संदर्भ शब्दावली

11.8 सारांश

11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.10 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- वाक्य विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्रों को चिह्नित कर उन्हें पहचान सकेंगे ।
- वाक्य की अवधारणा को स्पष्टत: समझ सकेंगे और भाषा संरचना में वाक्य के स्थान एवं।. महत्त्व को समझ सकेंगे ।
- संरचना अर्थ एवं संदर्भ की दृष्टि से वाक्य के स्वरूप के अलग अलग आयामों को समझ सकेंगे ।
- वाक्य में पदक्रम एवं कारक संबंधों को समझ सकेंगे ।
- वाक्य विश्लेषण के विविध स्तरों को समझ कर स्वयं वाक्य विश्लेषण करने की क्षमता अर्जित कर सकेंगे ।
- गहन संरचना और बाहय संरचना के सूक्ष्म अंतर को समझ सकेंगे ।
- सस्यूर और चॉम्स्की के भाषा संबंधी विचारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों के आपने हिन्दी की ध्वनियों रूप, पद तथा शब्द एवं पदों से संरचित पदबंधी का अध्ययन किया । व्याकरणिक संरचना के एक अन्य पक्ष पदबंधों से वाक्यों की रचना की चर्चा इस इकाई में की जाएगी । रूप, पद तथा शब्द तीनों के सम्मेलन से बने वाक्य

विज्ञान जिसे अंग्रेजी में सिन्टेक्स (Syntax) कहते हैं भाषा का मुख्य और महत्त्वपूर्ण पहलू है । यह विस्तृत के साथ संश्लिष्ट भी है । आपके अध्ययन के लिए वाक्य विज्ञान के अनिवार्य पहलुओं की जानकारी इस इकाई में प्रस्तुत की जा रही है ।

11.2 वाक्य विज्ञान

जिस प्रकार ध्वनि संरचना में ध्वनि तथा रूप संरचना में शब्द और रूप की व्यापकता तथा विश्लेषण किया जाता है(जैसा कि आप अब तक पढ़ चुके है) वाक्य विज्ञान भाषा की उस प्रक्रिया और नियमन व्यवस्था का अध्ययन करता है जिनके द्वारा शब्द पारस्परिक संयोग से वाक्य रचते हैं । दूसरे शब्दों में वाक्य विज्ञान वाक्य संरचना के विभिन्न घटकों के मध्य के संबंधों का अध्ययन करता है । भोलानाथ तिवारी के शब्दों में ' 'वाक्य विज्ञान में वाक्य-गठन या पद से वाक्य बनाने की प्रक्रिया का वर्णनात्मक तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन होता है । वर्णात्मक वाक्य विज्ञान में किसी भाषा में किसी एक काल में प्रचलित वाक्य-गठन का अध्ययन किया जाता है । तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी में दो या अधिक भाषाओं का वाक्य गठन की दृष्टि से किये गये अध्ययन की तुलना करके साम्य और वैषम्य देखा जाता है । ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान में एक भाषा के विभिन्न कालों का अध्ययन कर वाक्य-गठन की दृष्टि से उसका इतिहास प्रस्तुत किया जाता है ।

वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य के विविध घटकों के संबंधों का अध्ययन दो स्तरों पर किया जाता है (पहला स्तर वाक्य वैन्यासिक संबंध और दूसरा रूपावली संबंध है । पहले में वाक्य के विभिन्न घटकों के मध्य पाये जाने वाले क्रमिक व्याकरणिक संबंध का अध्ययन किया जाता है जिससे किसी खास भाषा के वाक्य की कोटियों की संख्या और स्वरूप के निर्धारण में मदद मिलती है । इन्हीं वाक्य कोटियों से भाषा के सारे वाक्यों का प्रजनन(व्यूत्पत्ति) होता है । दूसरे अर्थात् रूपावली संबंध में वाक्य के किसी विशेष घटक का उसके अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से क्या संबंध है यह विश्लेषित किया जाता है । अर्थात् एक ही वर्ग के एक से अधिक शब्दों या पदबंधों के बीच के संबंध को रूपावली संबंध कहते हैं ।

11.3 वाक्य की अवधारणा

भाषा विचारों को वहन करती है और विचारों को वाक्यों के माध्यम से मूर्त करती है । इस प्रकार भाषा विज्ञान में वाक्य का स्थान सबसे ऊपर है । वाक्य के स्वरूप को लेकर भाषाविदों में काफी मतभेद हैं । कुछ इसे पदों का समूह कहते हैं तो कुछ पदों को वाक्य के कृत्रिम खंड की संज्ञा देते हैं । इन विचारों की तुलना समाज परक और व्यक्तिपरक सोच से की जा सकती है । समाजपरक सोच व्यक्ति की तुलना में समाज को अधिक महत्त्व देती है क्योंकि व्यक्ति समाज की एक इकाई मात्र है जबकि व्यक्तिवादी सोच, व्यक्ति की सत्ता को सबसे ऊपर स्वीकार करती है क्योंकि यह सोच समाज को व्यक्तियों का समूह मात्र ठहराती है । भारतीय दर्शन में वाक्य और पद के महत्त्व को लेकर अत्यंत प्राचीन काल से विवाद चला आ रहा है । मीमांसक कुमारिल जिनका मत अभिहितान्वयवाद कहलाता है कि मान्यता है शब्द या पद ही वस्तुत: अर्थ के वाचक होते हैं और एक खास क्रम में वाक्य का स्वरूप ग्रहण करते हैं । कुमारिल के शिष्य प्रभाकर जिनका: मत 'अन्विताविधानवाद के रूप में प्रसिद्ध है का मानना है

कि भाषा में वाक्य की सत्ता ही वास्तविक होती है क्योंकि वाक्य ही अर्थ बोध का कारण बनते हैं । पहले पदों का अन्वय होता है फिर अन्वित शब्द अर्थ की प्रतीति कराते हैं ।

आधुनिक भाषा विज्ञान वाक्य को ही भाषा की 'पूर्ण इकाई मानता है । मनुष्य का सोचना समझना और कुछ कहना वाक्यों के जरिए ही होता है । यहाँ तक कि भावावेग में कहा गया एक शब्द भी पूर्ण वाक्य का अर्थ देता है । जंगल में हठात बाघ को देख किसी का बाघ-बाघ चिल्लाना ही पूर्ण अर्थ की प्रतीति करा देता है । मसलन, कोई हो तो उसे बचाये, यहाँ बाघ जैसा हिंसक जन्तु है आदि । चिल्लाना भी एक पूर्ण वाक्य है जिसका शेष हिस्सा 'अध्याहत होता है । आधुनिक शिक्षा शास्त्री इसी तथ्य के आधार पर भाषा का पहला पाठ वाक्य के माध्यम से शुरू करने की सलाह देते हैं जैसे- नल पर चल, कलम पकड वाक्यों की पढ़ बच्चे न, ल, प, र, च, ल, क ल, म, प, क q आदि वर्णों को पहचानना सीखते हैं । 'वाक्यवाद की इस अवधारणा को भर्तृहरि ने बहुत पहले स्पष्ट कर दिया था:

“पदे न वर्णा: विद्यन्ते, वर्णोष्ययवा: च न ।

वाक्यात् पदानाम अत्यन्त प्रविवेको न कश्चन । "'

(अर्थात् पद में वर्ण और वर्णों में अवयव नहीं होते वाक्य से पृथक पदों की कोई निजी पहचान नहीं होती ।)

वाक्य और पद के महत्त्व को लेकर चले आ रहे इस विवाद से वाक्य की परिभाषा भी प्रभावित हुई है' । प्राचीन व्याकरण पतंजलि और यूनानी दार्शनिक डॉ. थ्रैक्स ने वाक्य की परिभाषा देते हुए कहा है 'पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द समूह वाक्य कहते हैं । यह अत्यन्त विस्मयजनक है कि दो भिन्न देशों और दो भिन्न कालों के इन दोनों विचारकों के मतों में इतनी अद्भुत समानता है ।

वाक्य की सबसे चर्चित परिभाषा कविराज विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ 'साहित्य दर्पण' में दी है । वे योग्यता, आकांक्षा और निकटता से युक्त पद समूह को ही वाक्य मानते हैं । इस परिभाषा के अनुसार वाक्य की आकांक्षा, योग्यता तथा आसक्ति तीन अनिवार्य शर्त हैं । आकांक्षा से आशय शब्दों की परस्पर पूरकता से है । जैसे नवीन खाना खाता है । इस वाक्य में तीन पद है - 'नवीन', 'खाना' और 'खाता' है । व्याकरणिक दृष्टि से तीनों परस्पर एक दूसरे की आकांक्षा रखते हैं । नवीन कर्ता है जिसे खाना क्रिया की आकांक्षा है । 'खाता है क्रिया है जिसे एक कर्म की आकांक्षा है । 'खाना' कर्म है जिसे एक कर्ता और एक क्रिया की आकांक्षा है । इस प्रकार ये पद मिलकर एक वाक्य की संरचना करते हैं । इसके स्थान पर यदि कोई व्यक्ति कलम, सागर, भोजन और फूल शब्दों का उच्चारण करे तो सभी पद मिलकर भी वाक्य नहीं कहलायेंगें ये शब्द सूची मात्र है क्योंकि यहाँ किसी शब्द को किसी अन्य की आकांक्षा नहीं हैं ।

'योग्यता का आशय अभिव्यक्ति है । वाक्य में आये शब्द यदि असंगत अर्थ अभिव्यक्त करें तो व्याकरणिक दृष्टि से परस्पर संबद्ध होते हुए भी वाक्य नहीं कहलायेंगे । जैसे वह खाना खाता है- वाक्य है लेकिन वह आग खाता है वाक्य नहीं है । हवाई जहाँज उड़ता है वाक्य है लेकिन नदी उड़ती है वाक्य नहीं है । क्योंकि यहाँ शब्दों के मध्य पारस्परिक अर्थ बोध की योग्यता नहीं है ।

'आसक्ति का अर्थ समीप होना है । वाक्य की तीसरी शर्त पदों की निकटता है । यदि कोई व्यक्ति सुबह पुस्तक और शाम को पढ़ो कहे तो यह वाक्य नहीं कहलायेगा वक्ता के द्वारा उच्चरित पदों में सातत्य का होना आवश्यक है । लिखित भाषा पर भी-यही बात लागू होती है । जहाँ लिखित शब्दों में वाक्य के अर्थ बोध के लिये लम्बे अंतराल का न होना आवश्यक है ।

भाषा का काम भावों और विचारों की अभिव्यक्ति है इसलिये मनुष्य अपनी भाषा उतने ही शब्दों को संप्रेषित करता है । जितने से भाव संप्रेषित हो जाये । कई शब्द वाक्य में आये बिना ही वाक्य अर्थ को व्यक्त कर देते हैं । नाटकों, उपन्यासों, कहानियों और' वार्तालाप में ऐसे प्रयोगों की अधिकता होती है । वाक्य में अप्रयुक्त शब्दों का अर्थ जब पूर्वापर प्रसंगों से व्यक्त होता है तब अध्याहार कहलाता है । हिन्दी में प्राय: सभी कारकों के अध्याहार के उदाहरण मिलते हैं । उदाहरण के लिये -

1. कहाँ जा- रहे हो ?(तुम)
2. तुम्हारी क्यों सुनूँ (बात कर्म)
3. मैंने उसे बाहर निकाल दिया । (कमरे से अपादन)

आधुनिक भाषाविद् वाक्य की अवधारणा पर विविध आयामों से विचार करते रहे हैं । क्या वाक्य को अर्थ की एक इकाई माना जाये या संरचना की एक इकाई ? उसे मानसिक इकाई के रूप में वाक्य की अवधारणा संबंधी कुछ विचारों को नीचे दिया जा रहा है-

वाक्य अर्थ पालन इकाई के रूप में प्राचीनकाल से भाषाविदों ने वाक्य को अर्थ की एक इकाई मानते हुए वाक्य को एक अपेक्षाकृत पूर्ण और स्वतंत्र मानव उक्ति कहा जो अकेले प्रयुक्त होने या हो सकने के कारण पूर्णता और स्वतंत्रता से युक्त है । कामता प्रसाद गुरू ने भी वाक्य को एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द समूह कहा है । नीचे दिये गये दोनों उदाहरणों को ध्यान से देखें । पहला वाक्य' है क्योंकि इसके शब्द समूह संगठित रूप में एक अर्थ व्यक्त करते हैं । जबकि दूसरा वाक्य नहीं है क्योंकि इसके 'शब्दों मे परस्पर छुटकर कोई अर्थ अभिव्यक्त करने की क्षमता नहीं है ।

1. मेरी सहेली कल मुमासे मिलने आ रही. है ।
2. मेरा नदी, घर, आकाश

वाक्य व्याकरणिक इकाई के रूप में

वाक्य के अलग-अलग घटकों की वाक्य में सुनिश्चित व्याकरणिक भूमिका होती है । सभी घटक किसी न किसी व्याकरणिक प्रयोजन को पूरा करते हैं । इस दृष्टि से वाक्य व्याकरण की ऐसी संरचना है जिसमें न्यूनतम दो अंगों उद्देश्य और विधेय का होना अनिवार्य है।

उद्देश्य वाक्य का वह हिस्सा है और विधेय वह हिस्सा है जो उद्देश्य के बारे में कुछ बताता है । निम्नलिखित उदाहरणों पर ध्यान दीजिये.

उद्देश्य	विधेय
सीता की बड़ी बेटी कमला	परसों जा रही है अस्पताल में भर्ती है ।

वाक्य में उद्देश्य और विधेय का विशेषताओं के प्रयोग से या अन्य घटकों के सहयोग से विस्तार किया जा सकता है । जैसे -

क. सीता की बड़ी बेटी परसों हवाई जहाँज से दिल्ली जा रही है ।

ख. कमला बीमारी के कारण अस्पताल में भर्ती है ।

ग. संरचना परक. इकाई के रूप में कई भाषा वैज्ञानिक अर्थ या विचार की पूर्णता को सापेक्षिक मानते हैं । एक ही विचार को एक वाक्य में भी व्यक्त किया जा सकता है । एकाधिक में भी । संरचनावादी भाषाविद् वाक्य को कुछ घटकों के मेल से बनी एक रचना मानते हैं । इस मत के प्रवक्ता ब्लूमफील्ड कहते हैं वाक्य एक ऐसी रचना है जो किसी उक्ति विशेष में अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं बन सकती । इस मत के अनुसार वाक्य भाषा को सबसे बडी इकाई जैसे - ध्वनि स्वयं से बड़ी रचना शब्द का अंग है, शब्द पद बन्ध उपवाक्य का किंतु वाक्य खुद से बडी किसी रचना का अंग नहीं हो सकता । नीचे दिये गये उदाहरणों पर ध्यान दीजिये ।

ध्वनियाँ	-	ब/ए ट ई	(शब्द बेटी)
शब्द	-	मेरी/बड़ी बेटी	
पदबन्ध	-	मेरी बड़ी बेटी ' परसों जा रही है । (उपवाक्य: मेरी बडी बेटी परसों जा रही है)	

उपवाक्य - मैने सरला को बताया कि मेरी बेटी परसों जा रही है । वाक्य: मैंने सरला को बताया कि मेरी बड़ी बेटी परसों जा रही है ।

ऊपर दिये गये उदाहरणों से आप स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि कैसे ध्वनियाँ शब्द का, शब्द पदबंध का, पदबंध उपवाक्य का अंग है । किंतु सबके मेल से बना वाक्य सबसे बडी इकाई है जो अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं हो सकता ।

वाक्य मनोवैज्ञानिक इकाई के रूप में

संरचनावादी भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार वाक्य एक सूत्र तथा विश्लेषणयुक्त रचना था किन्तु रूपांतर निष्पादक व्याकरण के प्रवर्तक चॉम्स्की की दृष्टि में वाक्य मानव मस्तिष्क में अवस्थित एक अमूर्त संकल्पना है जिसका व्यक्ति या व्यावहारिक स्वरूप उक्ति है । अपने अव्यक्त मानसिक रूप में वाक्य एक आदर्श वाक्य होता है जिसे हर दृष्टि से पूर्ण और सही माना जाता है । बाहय संरचना के जरिये प्रकट होने वाला उसका रूप मानसिक रूप से भिन्न भी हो सकता है । इस रूप में वाक्य की दो प्रकार की संरचनाओं की कल्पना की गई है- बाहय संरचना (Surface) और आतंरिक या गहन संरचना (Deep Surface) । आज आधुनिक भाषा विज्ञान की शब्दावली में आतंरिक या गहन संरचना को अंतर्निहित स्वरूप कहते हैं क्योंकि यह उसी अर्थ में संरचना नहीं है जिस अर्थ में बाह्य संरचना होती है । इन दोनों संरचनाओं में सूक्ष्म अंतर है । आंतरिक या गहन संरचना वक्ता के अंतर्मन में निहित होती है जबकि बाहय संरचना ध्वनियों या लिपि के माध्यम से स्पष्ट उजागर हो जाती हैं । जब कोई बोलता या लिखता है तो हाथ में पकड़ी कलम के कागज पर कुछ अंकित करने या मुख से उच्चरित करने के साथ उसके मन में भी एक संरचना तैयार होती रहती है । आंतरिक संरचना की सत्ता केवल मानसिक है जबकि बाहय संरचना की भौतिक । आंतरिक संरचना में आर्थिक और व्याकरणिक घटक अपने अमूर्त रूप में होते हैं जबकि बाह्य में वे मूर्त रूप धारण एक रचना बन कर उपस्थित हो जाते हैं ।

इस प्रकार ऊपर से एक दिखाई देने वाले एक जैसे वाक्य में एक या अधिक आंतरिक वाक्य निहित हो सकते है । इन आंतरिक वाक्यों को आधारित वाक्य कहते हैं । जिस वाक्य में आधारित वाक्य छिपा होता है उसे आधात्री वाक्य कहा जाता है । उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं-

बाहय संरचना : शिक्षिका ने छात्रों को कक्षा से बाहर निकलते देखा ।

आंतरिक संरचना: क. शिक्षिका ने छात्रों को देखा (आधात्री वाक्य)

ख. छात्र कक्षा से बाहर निकल रहे थे (आधारित वाक्य)

मनोवैज्ञानिक भाषाविद् वाक्य को एक गुँथी हुई माला मानते हैं जो रेखीय क्रम में बुनी गई न होकर उचचाधिक क्रम में बुनी हुई है । जिसके एक से अधिक स्तर हैं ।

जहाँ संरचनावादी भाषा वैज्ञानिकों का मानना था कि अर्थ का विश्लेषण नहीं किया जा सकता वहीं चॉम्स्की ने अर्थ बोध को अपने विश्लेषण में एक घटक के रूप में स्वीकार किया । इसी घटक के कारण बाहय स्तर पर समान दिखाई पड़ने वाले किंतु आंतरिक स्तर पर भिन्न वाक्यों में अंतर स्थापित करना संभव हो पाता है । जैसे कमला ने सीता को हंसते हुए देखा ।

क. कमला हँस रही थी । (वाक्य एक)

ख. सीता हँस रही थी । (वाक्य दो)

संदर्भपरक इकाई के रूप में

भाषा विज्ञान के विकास में समाज भाषा विज्ञान और संकेत प्रयोग विज्ञान ने एक नया आयाम जोड़ा जिससे वाक्य की संकल्पना में बड़ा बदलाव दिखाई पड़ा । वाक्य अब केवल संरचना के रूप में नहीं" अपितु एक सामाजिक घटना या कार्यवृत के घटक के रूप में परिलक्षित किया जाने लगा । वाक्य का सम्बन्ध संवाद के पूरे परिवेश से जोड़ते हुये इसे मूल इकाई नहीं अपितु संदेश संप्रेषण की एक इकाई माना गया संदेश संप्रेषण की दृष्टि से भाषा की मूल इकाई वाक्य को न मान प्रोक्ति को माना गया । प्रोक्ति वह वाक्य या वाक्य समूह है जो वक्ता के पूरे मंतव्य या विचार बिन्दु को अभिव्यक्त करे । प्रसंगानुसार प्रोक्ति एक शब्द से लेकर एक या एकाधिक वाक्य एक अनुच्छेद एक पूरे अध्याय की हो सकती है ।

ऊपर के विवेचन से आप यह समझ गये होंगे कि वाक्य के स्वरूप की परिभाषा भाषा वैज्ञानिक विचारधाराओं के विकास और परिवर्तन से बदलती रही है ।

11.3.1 वाक्यों के भेद

वाक्य संरचना की दृष्टि से वाक्य का गठन उद्देश्य और विधेय दो रूपों में विभाजित किया गया है । वाक्य में प्रतिपादित विषय उद्देश्य और उसके लिये जो विधान किया जाए वह विधेय कहलाता है । वाक्य का एक और भेद कृर्तवाच्य कर्मवाच्य और भाववाच्य है जो रूप प्रकरण के विवेच्य है । नीचे हम वाक्यों के वर्गीकरण के आधार और तदनुसार वाक्य के विविध भेदों का परिचय दे रहे हैं ।

वाक्यों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है:-

1. भाषा की आकृति
2. व्याकरणिक रचना
3. क्रियार्थ

4. अध्याहार

5. शैली

1. **भाषा की आकृति** - भाषा की आकृति के आधार पर विश्व में दो प्रकार की भाषाएँ हैं- 1 योगात्मक और 2. अयोगात्मक जिनके आधार पर वाक्यों के भी दो प्रकार हैं:-

   (i) योगात्मक वाक्य और

   (ii) अयोगात्मक वाक्य

(i) योगात्मक में शब्दों के साथ प्रत्यय या विभक्तियां जुड़ी रहती हैं ।

   (अ) कृष्ण ने कंसम् अवधीत् (संस्कृत)

   (ब) कृष्ण ने कंस को मारा ।

(ii) अयोगात्मक वाक्यों में शब्दों में संबंध तत्त्व नहीं जुड़ता । चीनी भाषा एक ऐसी ही भाषा है- किम

   ताड़ चाय - किम चाय को मारता है ।

   न्गो त नि' - मैं तुम्हें मारता हूँ ।

2. **व्याकरणिक रचना -** व्याकरणिक रचना की दृष्टि से वाक्य के तीन भेद हैं । साधारण वाक्य, संयुक्त वाक्य, और मिश्रित वाक्य (वाक्य के इन भेदों के बारे में वाक्य संरचना के स्तरों पर विचार करते हुए बताया जा चुका है ।

3. **क्रियार्थ** - क्रियार्थ की दृष्टि से वाक्यों के अनेक भेद किये जा सकते हैं । उदाहरण के लिये -

   (i) विधान (कथन)
   सरला कमीज सिलती है ।

   (ii) आज्ञा
   तुम बाजार जाओ ।

   (iii) प्रार्थना
   कृपया हमारी मदद कीजिए ।

   (iv) संभावना
   शायद आज शाम तक पारित हो ।'

   (v) संदेह
   तुम कहीं बारिश से भीग न जाओ ।

   (vi) संकेत
   यदि बरसात होती तो गर्मी से राहत मिलती ।

   (vii) प्रश्न
   आप इन दिनों कहीं रहते हैं?

   (viii) विस्मयादि
   अरे वाह! आप आ गये । '

(ix) आग्रह

शांति से बैठिये न ।

(x) निषेध

शोर मत मचाइये ।

(xi) इच्छार्थक

जिससे इच्छा का बोध हो-तुम चिरायु हो ।

इसके अतिरिक्त यथा प्रसंग में भी भेद हो सकते हैं ।

4. **अध्याहार-** इस दृष्टि से कई भाषा शास्त्री वाक्य के दो भेद मानते हैं । क्रिया युक्त वाक्य और क्रियाहीन वाक्य । क्रियायुक्त वाक्यों में असामान्य वाक्य आते हैं जिनमें क्रिया मौजूद रहती है । जैसे वह जा रहा है । सरला जायेगी । क्रियाहीन वाक्यों में प्रत्यय रूप में मौजूद न हो अध्याहत रहती है । संस्कृत में इनका यचेष्ट प्रचलन था । हिन्दी में भी ऐसे वाक्यों का प्रयोग अखबारों की सुर्खियों (ग्रामीण इलाकों में मलेरिया का प्रकोप), लोकोक्तियों(जैसा देश, वैसा भेस)

संभाषणों (फिर वही बकवास) तथा विज्ञापनों में (मोबाइल के साथ एक सिम कार्ड फ्री) आदि में क्रियाहीन वाक्य देखे जा सकते है ।

5. शैली - शैली दृष्टि से वाक्यों के अनेक भेद उपलब्ध हो सकते हैं । जिनमें मुख्य हैं-

(i) अलंकृत वाक्य

(ii) अनलंकृत वाक्य

(iii) समांतरित वाक्य

(iv) आवृत्थात्मक वाक्य तथा

(v) शृंखलित वाक्य

(i) **अलंकृत वाक्य -** इस कोटि के वाक्य अलंकारों से सुव्यवस्थित होते हैं । और साहित्यिक भाषा में इनका प्राचुर्य होता है ।

(ii) **अनलंकृत वाक्य -** सामान्य और बिना सजावट वाले वाक्य जो सहज गद्य में मिलते हैं । जैसे- नदी के किनारे एक घर था ।

(iii) **समांतरित वाक्य -** समानतरित शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता है जिसमे दो कथनों में भावों और शब्दों का समान्तर प्रयोग किया जाता है । एक और आज था, साहस का तो दूसरी ओर कार्यरत और विपन्नता ।

(iv) **आवृत्यात्मक वाक्य -** जहाँ मुख्य कथन से पहले कौतूहल से भरे अवयवों की आवृति होती है और अंत में वाचन को पूरी ताकत के साथ हथियार की तरह चला दिया जाता है । उत्तेजनात्मक भाषाणों में प्राय: ऐसे वाक्यों का प्रयोग होता है ।

(v) **शृंखलित वाक्य** - ग्रामीण लोग बातचीत करते हुए प्राय: छोटे-छोटे वाक्यों का उनके पहले वाक्य का अंतिम अंश (विधेय) अगले वाक्य का उद्देश्य बन जाता है और वाक्यों की एक शृंखला सी बनती है जाती है । जैसे एक मजदूर जंगल

में लकड़ी काटने गया । लकडी काटने गया तो राह भूल गया । राह भूलकर एक झोंपड़ी के सामने जा पहुँचा ।

आधारभूत वाक्य

स्वरूप और लक्षण - किसी भी भाषा के मूल वाक्यों का निर्धारण किये बिना उस भाषा की वाक्यव्यवस्था को समझना मुश्किल है । भाषा में वाक्य कई स्वरूप ग्रहण कर प्रयुक्त होते हैं । इनका आकार प्रकार छोटी भी हो सकता है और बड़ा भी, इनमें कभी एक उपवाक्य हो सकता है तो कभी एकाधिक । कुछ वाक्य पूर्णांग हो सकते हैं तो कुछ अल्पांग(मेरा नाम संख्या है । आपका ?) संज्ञापद बंध आदि के रूप में संकुचित होकर एक ही वाक्य में दूसरा वाक्य अपना स्थान बना ले सकता है उदाहरणार्थ (मैं फिर से दिल्ली लौटने की बात सोच रहा हूँ । उपर के उदाहरणों पर गौर करें तो पाएँगे हर वाक्य में एक आधारभूत वाक्य की सत्ता अवश्य मौजूद रहती हे । यह बीज वाक्य भी कहलाता है क्योंकि इसी से भाषा के अनेक वास्तविक वाक्य प्रजनित होते हैं । गौर कीजिए वास्तविक वाक्य इस कक्षा की सभी बालिकाएँ नियमित रूप से होमवर्क' करती हैं ।

आधारभूत वाक्य. बालिकाएँ 'होमवर्क' करती हैं । वाक्यों के सभी घटक अनिवार्य होते हैं । प्रत्येक भाषा के आधारभूत वाक्यों का स्वरूप और उनकी संख्या भिन्न-भिन्न हो सकती है । उनके निर्धारण के लिए अलग अलग मानक तय किये जा सकते हैं फिर भी सार्वभौम रूप में इनके निर्धारण के लिए कुछ लक्षण महत्त्वपूर्ण हैं ।

(क) **अनिवार्य घटक** - आधारभूत वाक्यों में केवल अनिवार्य घटक ही महत्त्वपूर्ण होते हैं । ऐच्छिक घटक नहीं । उदाहरण के लिए नीता दूध पीती है को आधार वाक्य कहेंगे क्योंकि इसके सारे घटक अनिवार्य है जबकि नीता कभी-कभी दूध पीती है । मैं कभी-कभी एक ऐच्छिक घटक है क्योंकि इसके बिना भी वाक्य व्याकरण और मूल अर्थ की दृष्टि से पूर्ण है । इसलिए यह ऐच्छिक घटक आधारभूत वाक्य का अंग नहीं हो सकता।

(ख) **कथानात्मक वाक्य -** आधारभूत वाक्य सरल कथानात्मक वाक्यों से बनते हैं । संयुक्त मिश्र या अल्पांग वाक्य आधारभूत वाक्य के अंतर्गत नहीं रखे जा सकते । इसी तरह प्रश्नवाचक, निषेधवाचक आज्ञार्थक आदि संदर्भ-विशिष्ट वाक्य भी आधारभूत वाक्यों की कोटि में नही आते क्योंकि इन सबको आधारभूत वाक्यों से रूपांतरित किया जा सकता है ।

(ग) **नियंत्रक तत्व क्रिया -** आधारभूत वाक्यों में क्रिया ही नियंत्रक शक्ति है । क्रिया की प्रकृति और माँग के अनुसार ही वाक्य रचना का निर्धारण किया जाता है और वाक्य में आने वाले घटकों (कर्ता, कर्म) की संख्या भी क्रिया ही निर्धारित करती है । उदाहरण के लिए रोना क्रिया (आकर्षक) एक घटक (कर्ता) की अपेक्षा करती है । यानी क्रिया (सकर्मक) दो घटकों (कर्ता तथा कर्म) की ओर 'लेना' क्रिया (द्विकर्मक) तीन घटकों (कर्ता, कर्म और संप्रदान) की । हर भाषा में आधारभूत वाक्यों की संख्या अलग अलग हो सकती है । हिन्दी में 4 से 21 तक संख्या बताई गई है. ।

11.3.2 वाक्य परिवर्तन

परिवर्तन किसी भी भाषा का सहज गुण है और यह वाक्य रचना में भी अपवाद नहीं है । यद्यपि भाषा में सबसे कम बदलाव वाक्य रचना के क्षेत्र में ही देखा जाता है । हिन्दी वाक्य रचना के क्षेत्र में ही देखा जाता है । हिन्दी की वाक्य रचना प्राय: संस्कृत काल जैसी ही है फिर भी कुछ प्रत्यक्ष-परोक्ष परिवर्तन लक्षित किये जाते हैं । वाक्य परिवर्तन की कुछ दिशाएँ नीचे स्पष्ट की जा रही हैं :-

1. **अयोगात्मकता -** भाषाएँ प्राय: योगात्मकता से अयोगात्मकता की ओर अग्रसर होती हैं । संस्कृत में 'सुप्' विभक्तियों के संयोग से संज्ञा सर्वनाम और विशेषण शब्दों के रूप निर्मित होते थे । प्राकृतों तक आते आते विभक्तियाँ लुप्त हो चली परसर्गों का प्रचलन शुरू हुआ । आज हिन्दी में कर्ता और कर्म प्राय: अयोगात्मक हो गये हैं । कर्त्ता का ने परसर्ग केवल भूतकाल में लगता है वह भी मात्र सकर्मक क्रियाओं में । सरला पढ़ती है, सरला परसर्ग नहीं लगता । 'को परसर्ग का प्रयोग भी केवल कुछ प्राणवान संज्ञाओं में होता है जैसे तोते को उड़ा दो, बिल्ली को दूध पिला दो । प्राणहीन कर्म बिना को के ही रहता है जैसे वह पुस्तक पढ़ता है, राम कलम पकड़ता है ।

   विशेषण के रूप संस्कृत में विशेष्य का अनुसरण करते थे जैसे राम: कृष्ण सर्पम् अपश्यत या निर्धनता राजाय धन देहि लेकिन हिन्दी में अकारांत पुलिंग विशेषणों को(स परसर्ग विशेष्यों के संयोग की स्थिति) छोडकर - (उदाहरण बड़ी बहन को) विशेषता हमेशा अविकृत रहते हैं ।

2. **पदक्रम में परिवर्तन** - कभी कभी विविध कारणों से पदक्रम में भी परिवर्तन होता दीख पड़ता है । हिन्दी के संबंध कारक के रूप संबद्ध संज्ञा के पूर्व रहते हैं जैसे हमारी गाड़ी, संख्या की गुड़िया लेकिन इन दिनों रचनात्मक साहित्य और दृश्य साहित्य के शीर्षकों का क्रम उलटा दिखाई पड़ता है 'कहानी एक पारो की मोती जो टपकी ओस बन, हत्या एक संगीत की और उर्दू शैली के प्रयोग से शामे गजल शामे मुशयरा जैसे प्रयोग प्रचलन में बढ़ रहे हैं ।

3. **अनावश्यक विभक्ति या परसर्ग का प्रयोग** बहुधा अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग करते समय लोग अनावश्यक विभक्ति या परसर्ग जोड़ देते हैं । उर्दू के दरअसल की जगह दरअसल के दौरान की जगह, दौरान में, फजूल में की जगह बेफजूल में, कृपया करके या आपका भवदीय ऐसे ही प्रयोग है ।

4. **उपवाक्य विन्यास** - हिन्दी के मिरित वाक्यों में उपवाक्यों को तोड़ कर लिखने का प्रचलन बढ़ रहा है जैसे उसके बड़े भाई, जो शायद लंदन में रहते हैं, इन दिनों भारत दौरे पर हैं । यह वाक्य हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप न हो अंग्रेजी की वाक्य रचना से प्रभावित है ।

11.3.3 वाक्य परिवर्तन के कारण

वाक्य परिवर्तन के निम्नलिखित कारण पाए जाते हैं-

1. **अज्ञान -** भाषिक बदलावों का एक सशक्त कारण अज्ञान है । इसके चलते कोई व्यक्ति अपूर्ण या गलत अनुकरण कर वाक्य परिवर्तन का कारण बनता है । कृपया करके मेरी बात सुनें या मैं केवल पांच रूपये मात्र लेकर बस में चढ़ गया जैसे वाक्यों में कृपया के साथ करके और एक ही वाक्य में केवल और मात्र शब्दों (जो समावर्ती है) का प्रयोग अज्ञान का ही प्रमाण है ।
2. **अन्य भाषा का प्रमाण -** दो भाषाओं के पारस्परिक सम्पर्क में आने के कारण भी वाक्यों में परिवर्तन होता है । क्योंकि एक भाषा की वाक्य संरचना दूसरी को कहीं न कहीं प्रभावित करती है । हिन्दी में अप्रत्यक्ष कथन की प्रवृति अंग्रेजी के प्रभाव से आई है जैसे हिन्दी की प्रकृति के अनुसार जो वाक्य सरला ने कहा है कि मैं बीमार हूँ है वहीं अंग्रेजी के प्रभाव से सरला ने कहा है कि यह बीमार है बन जाता है ।
3. प्रयत्न लाघव - सरलता के प्रति आग्रह भी वाक्य रचना पर प्रभाव डालता है । हिन्दी के वाक्यों में मेरे को मेरे से, तेरे से, तेरे को, तेरे से जैसे सर्वनाम इसी कारण आए हैं । इनकी प्रबलता से मुझ, मुझे, तुझ, तुझे, प्रयोग घटते जा रहे हैं ।
4. **स्पष्टता के प्रति आग्रह** - स्पष्टता के प्रति आग्रह के कारण भी वाक्य में पदक्रम का व्याकरणिक महत्त्व बढ़ जाता हैं विभक्तियों के लोप के बाद परसर्गो ने उनका स्थान ले लिया और पदक्रम को व्याकरणिक महत्त्व प्राप्त हो गया । हिन्दी की यह स्थिति आयोगात्मकता की ओर अग्रसर होने की है ।
5. **किसी भाषा के सीमित दायरे** से निकल विस्तृत क्षेत्र में प्रसरित होने से उसकी वाक्य रचना पर गंभीर प्रभाव पड़ता है । उसकी संरचना में शैथिल्य आ जाता है । हिन्दी आज राष्ट्र भाषा और संपर्क भाषा के रूप में देशभर में फैल गई है । फलत: उसकी संरचना में स्थानीयता ने स्थान बना लिया है । कलकत्ते की हिन्दी में लिंग संबंधी गड़बडियां एवं मुंबई की हिन्दी में सर्वनाम संबंधी शिथिलता आमतौर पर सुनी और देखी जा सकती है ।

11.4 वाक्य संरचना

भाषिक संरचना में वाक्य की स्थिति - भाषिकसंरचना के तीन प्रमुख अवयवों ध्वनि, व्याकरण और अर्थ में से व्याकरण के पुन: दो अंग हैं वाक्य और शब्द । आप पढ़ चुके हैं कि व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से वाक्य के भाषा की सबसे बड़ी इकाई होने के बावजूद आधुनिक भाषा विज्ञान में संदेश के संप्रेषक की दृष्टि से प्रेषित को वाक्य से भी बड़ा माना गया है क्योंकि यह वक्ता के पूर्ण आशय को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है ।

11.4.1 वाक्य संरचना के विविध स्तर

वाक्य संरचना के स्तर उपवाक्य पदबंद-

(क) **उपवाक्य** - उपवाक्य से छोटा होता हैं किसी भी वाक्य में एक या एकाधिक उपवाक्य हो सकते हैं । यदि वाक्य में एक ही उपवाक्य हो तो उसे स्वतंत्र उपवाक्य और पूरे वाक्य को सरल वाक्य कहा जाता ' है । सरल वाक्यों में वाक्य और उपवाक्य में कोई

अंतर नहीं होता । नीचे दो उदाहरण दिये जा रहे हैं पहले में एक स्वतंत्र उपवाक्य है दूसरे में एक स्वतंत्र + एक अस्वतंत्र लेकिन दोनों सरलवाक्य की कोटि में आते हैं:

1. सरला ने एक पुस्तक खरीदी - (एक स्वतंत्र उपवाक्य = वाक्य)

2. सरला ने जो पुस्तक खरीदी उसमें आठ सौ पृष्ठ हैं । (स्वतंत्र उपवाक्य + अस्वतंत्र उपवाक्य=वाक्य वाक्य के स्वतंत्र उपवाक्यों को अनाश्रित और अस्वतंत्र को (आश्रित) कहते हैं ।

अन्य उपवाक्यों पर आश्रित उपवाक्य आश्रित तथा अन्य उपवाक्यों पर आश्रित नहीं होने वाले स्वतंत्र या उपवाक्य होते हैं । नीचे दिये गये उदाहरणों को देखिए-

1. माँ ने आलमारी से कपड़े निकाले और बेटी को दिये ।
   (दोनों उपवाक्य स्वतंत्र हैं),
2. बेटी ने वही कपड़े पहने जिन्हें उसे माँ ने दिया था ।
   (पहला उपवाक्य स्वतंत्र या मुख्य दूसरा आश्रित)

जो उपवाक्य दो स्वतंत्र उपवाक्यों वाले होते हैं उन्हें संयुक्त वाक्य कहते हैं और जिन वाक्यों में एक उपवाक्य स्वतंत्र या मुख्य और दूसरे आश्रित रहता है, उन्हें मिश्रित वाक्य कहते हैं । ऊपर दिये गये उदाहरणों में पहला संयुक्त वाक्य है दूसरा मिश्र वाक्य।

(ख) **पदबन्ध -** उपवाक्य पदबन्धों को मिलाकर बनता है । यह उपवाक्य से छोटा घटक है । वाक्य में व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी करने वाली इकाईयाँ पदबन्ध कहलाती है । इनका अस्तित्व वाक्य के भीतर ही संभव है, बाहर नहीं । इस प्रकार प्रत्येक वाक्य में कर्ता, कर्म, पूरक किया विशेषण और कर्ता आदि का एक निश्चित प्रयोग स्थान आदि होता है जहाँ प्रयुक्त होकर संज्ञा, विशेषण, किया-विशेषण, क्रिया आदि शब्द वाक्य में सुनिश्चित भूमिकाओं को निभाते हुए वाक्य में निर्धारित प्रयोजन को पूरा करते हैं । वाक्य के स्थान विशेष को प्रकार्य स्थान कहते हैं और वहाँ जो शब्द या शब्द समूह प्रयुक्त होते हैं उन्हें पदबन्ध कहते हैं । पदबन्ध एक अथवा एकाधिक शब्दों का हो सकता है ।

	कर्ता पदबन्ध	कर्म पदबन्ध	क्रिया पदबन्ध
1.	माली	पौधा	लगा रहा है ।
2.	मेरा माली	दो पौधे	लगा रहा है
3.	मेरा नया माली	कई तरह के पौधे	लगा रहा है ।

उपर दिये गये उदाहरणों में पहले में तीन पदबन्ध हैं जो कर्त्ता, कर्म और क्रिया के प्रकार्य स्थान पर प्रयुक्त है । दूसरे में पदबन्धों का विस्तार किया गया है, तीसरे में भी यही स्थिति है । तीनों पदबन्धों में शीर्ष है माली । इस प्रकार पदबन्ध के विस्तार के लिए शीर्ष के साथ जितने भी विशेषण सूचक शब्द प्रयुक्त होंगे, वे सभी उसके अंग होते चले जायेंगे । पदबन्धों का विसतार प्रमुखत: चार प्रकार से संभव होता है । शीर्ष (संज्ञा आदि) में विशेषण जोड़कर दो या अधिक शीर्षों का प्रयोग कर, दो या अधिक

शीर्षों का समानाधिकरण संबंधों में जोड़कर एवं परसर्गों आदि के प्रयोग से पदबन्ध से छोटी इकाई शब्द है । शब्दों के योग से ही पदबन्ध की रचना छोटी हैं । वाक्य बिखरे हुये शब्दों का समूह मात्र नहीं है । किसी भी वाक्य को ध्यान से देखे तो इसके घटकों के मध्य एक शिलशिला पाया जाता है । इसी शिलशिले या क्रमबद्धता को पदक्रम कहते हैं । इन घटकों के बीच एक तरह का व्याकरणिक संबंध भी पाया जाता है जो शब्दों या घटकों के प्रयोग स्थान द्वारा या फिर विभिन्न विभक्तियों के द्वारा व्यक्त होता है । व्याकरण की भाषा में यह कारक संबंध कहलाता है । वाक्य के जो घटक अन्य घटकों के रूपों को वचन, लिंग, पुरूष की दृष्टि से प्रभावित करते हैं, उसे अन्वितति कहते हैं । यह भी देखा जाता है कि समान संरचनातमक कोटि का शब्द होते हुए भी उसके स्थान पर दूसरे किसी शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता । शब्दों के अर्थ में एक प्रकार की संगति होती है जिससे शब्द सही वाक्य का निर्माण करतें हैं वाक्य का यह लक्षण अर्थ संगति या योग्यता कहलाता है ।

11.5 वाक्य विश्लेषण और उसके स्तर

वाक्य विश्लेषण के स्तर - वाक्य की बनावट और संरचना को लेकर यथेष्ट अध्ययन किया गया है । भाषाविदों ने अपने विमर्श में स्पष्ट किया वाक्य में एक नहीं कई पते हैं और उन सभी के साथ संयोजित होकर ही वाक्य अपना इच्छित अर्थ प्रकट करने में सफलता प्राप्त करता है । सामान्य बोलचाल में वाक्य का अभीष्ट संदेश संप्रेषण हे । संप्रेषण के स्तर पर वाक्य की अभिव्यक्ति केवल ध्वनियों, व्याकरणिक संरचनाओं तथा भावों का सम्मिश्र रूप ही नहीं है । सम्मिश्र वाक्य की पृष्ठभूमि में प्राय: एक सामाजिक व्याकरण छिपा रहता है । जिसके निर्देशानुसार वाक्य या अभिव्यक्ति का प्रयोग संदर्भ को दृष्टि में रख लिया जाता है । इसके अतिरिक्त वाक्य में कई बार वक्ता का व्यक्तिगत मन्तव्य या दृष्टिकोण भी निहित होता है । वाक्य की संप्रेषणीयता पूरी तरह परिवेश पर निर्भर करती है ।

वाक्य संरचना पर संरचनापरक व्याकरणगत, अर्थगत और संदर्भगत प्रतिबंध रहते है । वाक्य की बाहरी ' बनावट के पीछे अर्थ संरचना की बुनावट जाल की तरह फैली होती है इसलिए वाक्य के वास्तविक आशय को उपलब्ध करने के लक्ष्य से वाक्य का विश्लेषण कई स्तरों पर किये जाने की जरूरत होती है । किसी भी वाक्य का विश्लेषण कम से कम चार स्तरों पर हो सकता है ।

इन चार स्तरों को संरचनापरक प्रकार्यपरक लौकिक अर्थपरक ओर सूचनापरक संज्ञा दी जाती है ।

संरचनापरक - इस स्तर पर वाक्य के अलग अलग घटकों की संरचनात्मक कोटियों को निर्धारित किया जाता है । इसमें संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, किया विशेषण आदि का निर्धारण करते हैं । एक उदाहरण पर ध्यान दीजिये-

राजदीप अभी-अभी विद्यालय से घर लौटा है । उपरोक्त वाक्य में संरचनात्मक कोटियाँ निम्न रूप में निर्धारित की जाएंगी :

राजदीप	:	संज्ञा
विद्यालय	:	संज्ञा
से	:	परसर्ग
अभी-अभी	:	क्रिया विशेषण
लौटा	:	क्रिया
है	:	सहायक क्रिया
घर	:	संज्ञा

प्रकार्य परक - इस स्तर पर वाक्य के घटकों का निर्धारण वाक्य में उनकी व्याकरणिक भूमिकाओं को देखते हुए किया जाता है । ये एक तरह की कारक कोटियाँ हैं जो केवल वाक्य के अंतर्गत निहित होती हैं जैसे कर्ता, कर्म, पूरक, किया, विशेषण, क्रिया आदि । संरचनात्मक कोटियां(संज्ञा, विशेषण) आदि का अस्तित्व वाक्य से बाहर केवल शब्दों के स्तर पर भी संभव है जो प्रकार्य परक में नहीं निर्धारित की जाती उदाहरण के लिये जनता ने राजदीप को विधायक चुना की प्रकार्यत्मक कोटियाँ निम्नलिखित रूप में होंगी:

जनता ने	:	कर्ता
राजदीप को	:	कर्म
विधायक	:	पूरक
चुना	:	क्रिया

लौकिक अर्थ परक - इस स्तर के वाक्य के घटकों का निर्धारण लौकिक या यावहारिक लोक में उनकी भूमिकाओं को दृष्टि में रखकर किया जाता है जैसे अभिकर्ता (सक्रियकर्ता) अनुभवकर्ता, भौक्ता लक्ष्य (कर्म), परिवेश(क्रिया विशेषण) आदि । उदाहरणार्थ लड़की को प्यास लगी वाक्य की लौकिक अर्थ कोटियाँ इस प्रकार होंगी:

लड़की को	:	अनुभवकर्ता
प्यास लगी	:	क्रिया

इसी तरह

रमा अमरूद खा रही है में वाक्य की निम्नलिखित कोटियाँ होंगी -

रमा	:	अभिकर्ता
अमरूद	:	लक्ष्य
खा रही है	:	क्रिया

सूचनापरक - भाषा की मूल इकाई वाक्य को न मान प्रकरण को मानने वाले भाषाविदों का कहना है चूँकि वक्ता अपने संदेश को संप्रेषित करने के लिए जिन विकल्पों को चुनता है वे विशेष प्रकरण या प्रसंग के अनुकूल होते हैं और वाक्य को सूचना भी संदेश के रूप में गठित करते हैं । इसलिए वे कभी वाक्य के किसी घटक को शुरू में कभी बीच में तो कभी अंत में ले आते हैं । कभी-कभी तो वाक्य के सहजक्रम में भी बदलाव या बलाघात लाया जाता है । इस तरह स्पष्ट होता है कि जिस, प्रकार वाक्य की व्याकरणिक संरचना होती है । उसी प्रकार

सूचना की भी अपनी संरचना होती है । सूचना के स्तर पर ज्ञात सूचना और नई सूचना दो घटकों की स्थिति मानी जाती है । सूचना का जो अंश श्रोता को पहले- से मालूम होता है वह ज्ञात या विद्यमान सूचना और जिसकी जानकारी देना वक्ता का लक्ष्य है वह नई सूचना कहलाती है । उदाहरण के लिए शीला आज पढने नहीं आएगी वाक्य की सूचना- संरचना निम्नानुसार है:

शीला : ज्ञात सूचना

आज पढने नहीं आएगी : नई सूचना

सूचना संयोजन को दृष्टि में रख वाक्य के दो खंड किये जाते है थीम और रीम । थीम वाक्य के शुरू में प्रयुक्त होने वाला और रीम अंत में प्रयुक्त होने वाला घटक है । यथा

थीम	रीम
सरला खाना	खा रही है ।
दूर कहीं	बादल बरस रहें हैं ।

11.6 आधुनिक भाषा विज्ञान : सस्यूर और चॉम्स्की की मान्यताओं का सामान्य परिचय

आधुनिक भाषा विज्ञान की शुरुआत स्विस विद्वान् सस्यूर (1857- 1913) की मान्यताओं से मानी जाती हैं उन्होंने भाषा वैज्ञानिक चिंतन को आधुनिक संदर्भ दिया, संरचनावाद और प्रतीक विज्ञान की बुनियाद रखी । इसी प्रकार आधुनिक भाषा विज्ञान की अधिकांश मूलभूत संकल्पनाओं के बीज भी इनकी चिंतन धारा में ही प्राप्त होते हैं । सस्यूर के भाषा संबंधी चिंतन की प्रमुख विशेषता उनकी वह समग्र दृष्टि है जो हमें भाषा की संश्लिष्ट प्रकृति को उसके द्वंद्वात्मक आधार पर समझने का संदर्भ देती है । यह वही दृष्टि है जिसके आधारपर हम भाषा के दो पक्षों भाषा व्यवस्था (लांग) ओर भाषाव्यवहार(पेरोल) - को समझने में आज सक्षम हुए हैं ।

सस्यूर ने भाषा के जिस रूप की संकल्पना की वह एक ओर सामाजिक वस्तु है दूसरी ओर वैयक्तिक व्यवहार वस्तु है दूसरी ओर वैयक्तिक व्यवहार । उनके मतानुसार भाषा व्यवहार समूह गत अनुबंधन का परिणाम होती है । वह भाषिक प्रतीकों की उस संहिता (कोड) से जुड़ी होती है जो उसके प्रयोक्ता की निजी इच्छा या प्रतीकों के अपने माध्यम (उच्चारण या लेखन पद्धति) से नियंत्रित नहीं होती । व्यक्तिभेद और माध्यम विकास से मुक्त होने के कारण भाषा व्यवस्था अपनी प्रकृति में समरूपी होती है । भाषा व्यवहार इसी भाषा व्यवस्था का व्यक्त रूप है । व्यक्त रूप होने के कारण इसका संबंध एक ओर व्यक्ति के क्रियाकलाप(कोडीकरण और विकोडीकरण) से रहता है और दूसरी ओर उसके अभिव्यक्ति माध्यम (मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति) के साथ । वैयक्तिक संबंधों से जुड़े होने के कारण यह भाषा का व्यष्टि रूप है ।

भाषा के जीवंत स्वरूप के संदर्भ में सस्यूर ने भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार दोनों ही पक्षों का होना जरूरी माना इन दोनों पक्षों की प्रकृति को उन्होंने द्वंद्वात्मक कहा, लेकिन भाषा वैज्ञानिक अध्ययन वस्तु के अपने लक्ष्य के तहत उन्होंने भाषा व्यवस्था को ही मूलत:

विश्लेषण वस्तु के रूप में स्वीकार किया । इसी भाषा व्यवस्था की सही प्रकृति को समझने समझाने के लिए सस्यूर ने भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली को वस्तुनिष्ठ और तर्क संगत बनाने पर बल दिया । प्रणालीगत अध्ययन की भूमिका के रूप में उन्होंने पारिभाषिक शब्दावली के जो सार्थक युग्म दिये उनमें से जो आज भी मान्य हैं उनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है-

1. भाषा-व्यवस्था (लांग) और भाषा व्यवहार
2. संकेतार्थ और संकेतक
3. उपादान (सब्सटेन्स) और रूप (फॉर्म)
4. विन्यासक्रमी (सिंटेगयेटिक) और सहचारकर्मी (एसोसिएटिम) संबंध
5. एककलिक (सिनक्रनिक) और कालक्रमिक(डाय क्रनिक) संबंध

भाषा - व्यवस्था का संबंध भाषिक इकाईयों की संरचनात्मक व्यवस्था से है । इन भाषिक इकाईयों जैसे शब्द वाक्य आदि को भाषिक प्रतीक के रूप में देखा जाना संभव हैं वैसे तो भाषिक प्रतीक संकेतार्थ (वाच्य) और संकेतक (वाचक) के अंतरंग सहसंबंध के परिणाम होते हैं लेकिन भाषा व्यवस्था के संदर्भ में उनकी प्रकृति मूल्यपरक होती है । शतरंज के खेल में प्रयुक्त होने वाले मोहरे जिस तरह एक मूल्य के रूप में पहचाने जाते हैं (जैसे प्यादे के एक घर चलना ओर फर्जी बनने पर तिरछे काटना, घोडे का ढाई घर फाँद कर भी आगे बढ़ना आदि ।) न कि अपनी आकृति और उपादान (लकड़ी, प्लास्टिक, कागज या किसी धातु से निर्मित) द्वारा उसी प्रकार भाषिक इकाईयाँ भी अपने संकेतन प्रकार्य (मूल्य) द्वारा पहचानी जाती है । मूल्य परक (प्रकार्य जन्य) होने के कारण ही भाषाव्यवस्था को शुद्ध रूप (फार्म) के रूप में ग्रहण किया जाता है । यह रूपात्मक व्यवस्था ही है जो हिन्दी के लिए कर्ता + कर्म + क्रिया' और अंग्रेजी के लिए 'कर्ता + क्रिया + कर्म' का वाक्यात्मक विधान देती है ।

सस्यूर ने माना कि संरचनात्मक रूप भाषिक प्रतीकों के विन्यासक्रमी और सहचरक्रमी संबंधों के आधार पर बनता है । विन्यासक्रमी संबंध भाषिक प्रतीकों को एक सुश्रृंखल कड़ी के रूप में देखने का आग्रह करता है । भाषा केवल प्रतीकों की भीड़ नहीं वह उनके एक निर्धारित क्रम का परिणाम भी है । किस इकाई के पूर्व या पर किस इकाई को आना है, इसका आधार इकाईयों का विन्यासक्रमी संबंध होता है । इस व्यवस्था की जानकारी के कारण हिन्दी भाषा का प्रयोक्ता रमा ने सरला को पत्र लिख दिया था को तो समझना और स्वीकार कर लेता है लेकिन 'था लिख ने रमा पत्र को दिया सरला' को भाषा सम्मत वाक्य नहीं मानता, जबकि दोनों वाक्यों की इकाईयों की संख्या समान है । सहचारक्रमी संबंध, भाषिक इकाईयों के मध्य स्थित उस संबंध की ओर हमारा ध्यानाकर्षण कराता है जो किसी संदर्भ या वातावरण विशेष में मौजूद होने के कारण दो भाषिक प्रतीकों में नजर आता है । काम और खान में 'क' और 'ख' के बीच सहचार संबंध है क्योंकि ये आदि स्थान पर आए हैं और दोनों की परवर्ती ध्वनियाँ समान हैं । इसी तरह सरला ने फल तोड़ा और सरला ने फल खाया में 'सरला' और 'तरला' वाक्य संरचना के एक ही प्रकार्यत्मक खाने में प्रयुक्त हुए हैं ।

भाषा अध्ययन के एक भाषिक संदर्भ द्वारा किसी स्थिति विशेष में भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था का काल निरपेक्ष विवरण प्रस्तुत किया जाता है । इसके विपरीत भाषा का

कालक्रमिक अध्ययन भाषा के काल सापेक्ष विकास का विवरण देता है । इसे ऐतिहासिक भाषा विज्ञान भी कहा जाता है । यद्यपि सस्यूर ने भाषा की एककालिक संरचनात्मक व्यवस्था और भाषा परिवर्तन की ऐतिहासिक भूमिका-दोनों को पहचाना, पर भाषा व्यवस्था (लांग) के अध्ययन के संदर्भ में उन्होंने एक कालिक प्रणाली पर ही बल दिया । उनका तर्क था कि भाषा वैज्ञानिक अध्ययन का लक्ष्य भाषिक प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था का अध्ययन है और भाषिक परिवर्तन हमेशा इस व्यवस्था के बाहर की वस्तु है । सस्यूर के अनुसार भाषा परिवर्तन न तो सहेतुक होता है और न ही व्यवस्था से प्रेरित । इस विद्वान के सिद्धांत आधुनिक भाषा विज्ञान के मान्य सिद्धांत हैं जिनके बिना बीसवीं से इक्कीसवीं शताब्दी की किसी भी प्रचलित भाषा वैज्ञानिक अवधारणा को न तो हम समझ सकते हैं न ही उनका सही मूल्यांकन कर सकते हैं ।

अमेरिकी भाषा वैज्ञानिक नोम चॉम्स्की ने भाषा वैज्ञानिक चिंतन के जगत में अपनी पुस्तक 'सिमटैक्टिकल स्ट्रक्चर' के द्वारा क्रांतिकारी परिवर्तन घटित किया । उन्होंने भाषा विषयक सोच की एक नई दिशा दी । उनके सिद्धांत रचनान्तरण प्रजनक व्याकरण ने मील के पत्थर का काम किया । इन्होंने रूपांतरणशीलता के सिद्धांत को स्थापित किया । रूपांतरण का अर्थ है किसी एक रचना का दूसरी रचना में अंतरण या परिवर्तन । उदाहरण के लिये 1 सरला एक सुन्दर बालिका है । 2. सरला एक सुन्दर बालिका नहीं है ।

ऊपर दिये गये उदाहरणों में पहला वाक्य सकारात्मक है दूसरा नकारात्मक । इन दोनों वाक्यों में क्या अंतर है । इसे पाठक या श्रोता अपने विवेक से समझ लेता हैं वह बड़ी ही सहजता से इस बात को समझ पाता है कि पहले वाक्य से ही दूसरा वाक्य अंतरित हुआ है । चॉम्स्की के सिद्धांत ने वाक्य से रूपिम तक पूरी व्याकरणिक संरचना को वाक्य विन्यास का हिस्सा ठहराया । वाक्य के अलग-अलग घटकों के पारस्परिक संबंधों में अंतर करना जरूरी नहीं समझा । चॉम्स्की के सिद्धांत की परिभाषा देते हुए समालोचक जॉन लियोन्स ने लिखा ' कोई भी व्याकरण जो प्रत्येक वाक्य की पृष्ठ संरचना और गहन संरचना का विश्लेषण करता है तथा उन दोनों विश्लेषणों के मध्य प्रणालीबद्ध संबंध स्थापित करता है उसे रचनान्तरीय व्याकरण की संज्ञा दी जा सकती है । प्रजनन शब्द को गणित की पारिभाषिक शब्दावली से ग्रहण किया गया है । जिसका आशय है गिनना, नापना, पहचानना अथवा आरेख खींचना । रचनान्तरीय व्याकरण न शब्दों को उत्पन्न करता है, न भाषायी तत्त्वों की अपितु भाषा के शब्द समुच्चय के तत्त्वों की योजना से_ संरचना सूत्रों का प्रयोग अन्वित करके नये-नये वाक्यों की रचना करता है । इसमें उन रूपों को पूर्व कथित किया जाता है जिन्हें उस भाषा के वाक्यों को उत्पादित किये जाने पर प्राप्त किया जायेगा । "

वाक्य-विन्यास के अध्ययन का विषय मूल वक्ता की वह शुद्ध भाषा है जो उसके मस्तिष्क में अमूर्त रूप में मौजूद हैं समाज के हर मनुष्य का भाषिक व्यवहार खासियत लिये हुए होता है । इस खासियत के बावजूद एक ही भाषा-समाज के लोग बड़ी सहजता से एक दूसरे को समझ लेते हैं । इस प्रक्रिया का कारण हर वक्ता के मस्तिष्क में भाषायी शक्ति के रूप में अवस्थित वह अवधारणा तथा चेतना है जो भाषा के एक सामाजिक सामान्य रूप से जुड़ी है । किसी भी भाषा का व्याकरण मनुष्य की इसी बौद्धिक क्षमता को दृष्टि में रखकर रचा जाता है । मानसिक क्षमता को दृष्टि में रखकर रचा जाता है । मानसिक दृष्टि से स्वस्थ्य मनुष्य के

दिमाग में जो संरचना सूत्र विद्‌यमान रहते है उन्हीं के सहारे वह नये से नये वाक्यों का प्रजनन करता है । इन्हीं सूत्रों को अन्वित कर अंतिम शृंखला को उपलब्ध किया जाता है । जो वस्तुत: पद रूपों की ही शृंखला है । गणित के जरिये इन संबंधों को समझाना इनका विश्लेषण और परिगणन करना संभव भी है और सहज भी । कोश्ठन या घटक संरचना को व्याकरण में शामिल कराने का प्रमुख लक्ष्य व्याकरणिक अस्पष्टताओं का बोध कराना है । चॉम्स्की की मान्यता है कि सफल व्याकरण किसी भाषा के समस्त संभावित व्याकरणिक वाक्यों को प्रजनित करके उनका वर्णन करता है । इसमें व्याकरणिक ग्रहण योग्य वाक्यों के पूर्वानुमान और स्पष्टीकरण पर जोर दिया गया है । उसमें केवल कथित उक्तियों का ही वर्णन नहीं होता अपितु उन उक्तियों को भी समाहित किया जाता है जो संभाव्य है । अव्याकरणिक वाक्य जैसे 'पढ़ती है वह किताब' को यहाँ महत्त्व नहीं मिलता है, यहाँ इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है कि मातृभाषी को स्वीकार्य न होने वाले वाक्यों के प्रजनन को उचित न माना जाए । वाक्यों की संरचना में व्याकरणिक और अव्याकरणिक अंतर को समझने तथा निरीक्षण करने की उपयुक्ता होना चाहिए । व्याकरण को मातृभाषियों की भाषिक चेतना का ज्ञान होना चाहिए । जिससे निरीक्षणीय आँकडों के संदर्भ में वर्णात्मक औचित्य रह सके । सस्यूर द्‌वारा जिसे लांग और पेरोल कहा गया है उसे ही चॉम्स्की क्रमश: 'भाषिक भाषिक और प्रयोग की संज्ञा देते हैं । भाषिक दक्षता के दो भेद हैं - व्याकरणिक और संकेतपरक । चॉल्की ने भाषिक सार्वभौम को भी स्वीकार किया है । उनका मानना है कि संसार की हर भाषा में कुछ सार्वभौम तत्त्व उपलव्य होते है । जैसे व्याकरण अर्थ निश्चित मानवीय ध्वनियां और संरचनात्मक द्‌वैतता आदि । भाषा विज्ञान का उद्देश्य भाषा को परिभाषित करने वाले सार्वभौम तत्त्व का निरूपण करना है । चॉच्छी दो सार्वभौम तत्त्वों को रेखांकित करते हैं- सत्वपरक सार्वभौम और रूपात्मक सार्वभौम सत्वपरक या संज्ञापरक सार्वभौम तत्त्व उन संकल्पनाओं को माना है जो भाषिक वर्णन में विशिष्ट प्रकथन के निर्माण में सहायक होते हैं । इसके अंतर्गत वाक्यीय कोटियां स्वन प्रक्रिया के भेदक लक्षण और शब्दार्थ चिन्हक आदि आते हैं । रूपात्मक सार्वभौम विभिन्न : वाक्यों को जोड़ने वाले वाक्यातर नियम है जो अपेक्षाकृत अमूर्त होते हैं । चॉम्स्की के प्रजनक व्याकरण के चार भाग है- मूल सूत्रा शब्द संवर्ग, रचनान्तरण सूत्र, स्वन प्रक्रियात्मक सूत्र और अर्थात्मक विवेचन । मूल सूत्र को पुन: दो भागों में बांटा गया है । पहला है-मूल वाक्य के संरचना सूत्र जिन्हें पदबन्ध संरचना सूत्र या निर्माण सूत्र भी कहते हैं और दूसरा है - विशेष प्रकार की संयोजित शब्दावली का समुच्चय जो बताता है किसी भी भाषा में वाक्य दो प्रकार के होते हैं पहला आधार वाक्य या बीज वाक्य, रचनान्तरण के द्‌वारा इसी वाक्य को प्रश्नवाचक, निषेधवाचक मिश्र वाक्य आदि रूपों में प्रजनित किया जाता हैं । मूल वाक्य की संरचना जिन घटकों से होती है उन्हें पदबन्ध कहते हैं ।

संक्षेप में आपको चॉम्स्की के रूपांतरण प्रजनक व्याकरण को समझने की अध्ययन सामग्री दी गई । स्थान, स्थान पर जो वाक्य वैज्ञानिक अध्ययन आपके सामने रखा गया, उसमें चॉक्स्की के सिद्धांतों को व्यवहार रूप में भी अपनाया गया है ।

11.7 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.	सातत्य	:	लगातार, क्रमबद्धता
2.	परसर्ग	:	विभक्तियाँ
3.	अन्विति	:	बनावट, संरचना
4.	हिस्र	:	जगली भयानक, हिंसक
5.	पूर्वापर:	:	आगे पीछे, अगला और पिछला
6.	मूर्त	:	साकार
7.	शैथिल्य	:	ढीलापन, शिथिलता
8.	अभीप्सित	:	इच्छित
9.	प्रजनक	:	उत्पादक, जन्म देने वाला
10.	अध्याहार	:	तर्क वितर्क, भाषा विज्ञान में गोपन अर्थ में प्रयुक्त
11.	अध्याद्वत अर्थ में	:	तर्क किया हुआ भाषा विज्ञान में गोपन या निहित प्रयुक्त
12.	आसक्ति अर्थ में प्रयुक्त	:	लगाव, भाषा विज्ञान में समीप होने या निकटता के
13.	योग्यता	:	काबलियत, कुछ कर सकने की क्षमता, भाषा विज्ञान में अभिव्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त
14.	असंगत	:	अनुचित, संदर्भहीन
15.	आकांक्षा	:	इच्छा, उन्कट अभिलाषा, भाषा विज्ञान में शब्दों की परस्पर पूरकता के - अर्थ में प्रयुक्त
16.	क्रियार्थ	:	क्रिया के लिए या क्रिया के अर्थ में
17.	पदबंध	:	वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रयोजनों को पूरी करने वाली इकाईयाँ
18.	आधारभूत	:	मूल, बुनियादी
19.	उच्चाधिक्रम	:	नीचे से ऊपर के क्रम में
20.	निष्पादक	:	निष्पन्न करने वाला, पैदा करनेवाला

11.8 सारांश

वाक्य विज्ञान भाषा की उस प्रक्रिया और नियमन व्यवस्था के अध्ययन से संबद्ध है जिनके द्वारा शब्द परस्पर जुड़कर वाक्य की रचना करते हैं । वाक्य के विविध घटकों के बीच में वाक्यात्मक संबंध दो तरह के होते हैं जो वाक्य वैन्यासिक और रूपावली संबंध के रूप में जाने जाते है । व्याकरणिक स्तर पर वाक्य ही भाषा की मूल इकाई है लेकिन संदेश-संप्रेषण के स्तर पर प्रोक्ति को भाषा की मूल इकाई माना जाता है । व्याकरणिक दृष्टि से वाक्य में दो अंगों उद्देश्य तथा विधेय का होना अनिवार्य हैं उपवाक्य वाक्य से छोटा घटक है जिसके दो भेद आश्रित और स्वतंत्र हो सकते हैं । दो स्वतंत्र उपवाक्यों वाले वाक्य संयुक्त तथा एक उपवाक्य

के स्वतंत्र शेष के आश्रित होने पर वाक्य मिश्र कहलाते हैं । पदबंध वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी करने वाली इकाईयां हैं इनका अस्तित्व वाक्य से बाहर संभव नहीं होता । वाक्य का विश्लेषण संरचना, प्रकार्य, लौकिक, अर्थ और सूचना के स्तरों पर किया जा सकता है । वाक्य वैन्यासिक अध्ययन में सस्यूर और चॉम्स्की का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । सस्यूर ने भाषिक चिंतन में संरचनात्मक और नोम चॉम्स्की ने भाषा चिंतन को रचनात्मक प्रजनन व्याकरण द्वारा नई दिशा देने का प्रयास किया ।

11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न '

1. वाक्य विज्ञान की परिभाषा लिखते हुए वाक्य की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ।
2. वाक्य संरचना के विविध स्तरों का सौदाहरण परिचय दीजिए ।
3. वाक्य के वर्गीकरण के आधारों को दृष्टि में रखते हुए नाम वाक्य के भेदों को स्पष्ट कीजिए ।
4. वाक्य की परिभाषा लिखते हुए वाक्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए ।
5. वाक्य विश्लेषण के स्तरों को सोदाहरण समझाइए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. अध्याहार से क्या तात्पर्य है?
2. बाहय संरचना और गहन संरचना में क्या अंतर है 7.
3. नोम चॉम्सकी के विचारों पर टिप्पणी लिखिए ।
4. सस्यूर की प्रमुख मान्यताएँ क्या हैं?
5. अर्थसंगति का आशय स्पष्ट कीजिए ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. पदबंधों का अध्ययन... के अंतर्गत होता है ।
2. .... एक ऐसी रचना है जो अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं बन सकता ।
3. संदेश-संप्रेषण की दृष्टि से............................... भाषा की मूल इकाई है ।
4. वाचन, लिंग, पुरूष भाषा की....................................... कोटियाँ हैं ।
5. वाक्य के किसी घटक विशेष के प्रभाव से रूप परिवर्तन की प्रक्रिया......................... कहलाती है ।

घ सही गलत पर निशान लगाइए

1. प्रोक्ति हमेशा एक से अधिक वाक्यों की होती है । सही/गलत
2. संरचना की दृष्टि से वाक्य भाषा की लघुतम इकाई है । सही/गलत
3. संयुक्त वाक्यों में कोई भी आश्रित उपवाक्य नहीं होता । सही/गलत
4. पदक्रम का विधान हर भाषा में एक समान होता है । सही गलत
5. हिन्दी में कर्ता तथा क्रिया वाक्य के अनिवार्य घटक हैं । सही/गलत

11.10 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. राम किशोर शर्मा; भाषा चिंतन के नए आयाम, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद'
2. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव एवं रामनाथ सहाय; (संपा.) हिन्दी का सामाजिक संदर्भ, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी; हिन्दी भाषा की संरचना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. तेजपाल चौधरी; भाषा और भाषा विज्ञान, विकास प्रकाशन, कानपुर
5. भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा, एम.एच डी. 7, हिन्दी संरचना, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
6. नोअम चॉम्स्की; Aspect of the Theory of Syntax
7. रामनाथ सहाय; अनुवादक, वाक्य विन्यास का सैद्धांतिक पक्ष
8. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव; अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान सिद्धांत एवं प्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

इकाई-12 अर्थ संरचना

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 अर्थ विज्ञान
12.3 शब्द की अवधारणा
12.4 शब्द और अर्थ का संबंध
12.5 अर्थ बोध के साधन
12.5.1 भारतीय
12.5.2 पाश्चात्य
12.6 अर्थ परिवर्तन
12.7 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ
12.7.1 अर्थ विस्तार
12.7.2 अर्थ संकोच
12.7.3 अर्थादेश
12.8 अर्थ परिवर्तन के कारण
12.9 विचार संदर्भ शब्दावली
12.10 सारांश
12.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
12.12 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :-

- अर्थ क्या है? भाषा में अर्थ का क्या महत्व है? शब्द और अर्थ में क्या सम्बन्ध है? अर्थ बोध कैसे होता है?अर्थ परिवर्तन किन रूपों में होता है और क्यों होता है? आदि तथ्यों से परिचित हो सकेंगे ।
- वस्तुत: शब्द अर्थ के सम्बन्ध का अध्ययन जातीय जीवन की मानसिक प्रक्रिया से सम्बद्ध होता हूँ । फलस्वरूप इस अध्ययन द्वारा आप किसी भई विशेष समुदाय की संस्कृति का परिचय प्राप्त कर 'सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

भाषा विज्ञान के अन्तर्गत पिछली इकाइयों में आप ध्वनि विज्ञान, रूप एवं वाक्य विज्ञान आदि के बारे में पढ़ चुके हैं । प्रस्तुत इकाई में आप अर्थ विज्ञान के विषय में पढ़ेंगे ।

इसमें अर्थ की अवधारणा, अर्थ बोध के साधन, अर्थ परिवर्तन की दिशाएं और अर्थ परिवर्तन के कारणों ।' के बारे में विस्तार से चर्चा की जाएगी ।

12.2 अर्थ विज्ञान

अर्थ विज्ञान, अर्थ का विज्ञान है । इसमें भाषा के अर्थ पक्ष का वैज्ञानिक अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है । भाषा के दो पक्ष होते हैं-शारीरिक या यांत्रिक, मनोवैज्ञानिक या अयांत्रिक । ध्वनि प्रक्रिया तथा रूप संरचना भाषा के शरीर पक्ष से संबद्ध है तथा अर्थ विज्ञान भाषा के मनोवैज्ञानिक पक्ष से । शब्द के रूपगत परिवर्तनों का आधार बाह्येन्द्रियाँ हैं और अर्थगत परिवर्तनों का सीधा सम्बन्ध भाषा के बोलने वालों के मानस जगत से होता है । अर्थ शब्द की आत्मा है । अर्थ विज्ञान में शब्दार्थ के आन्तरिक पक्ष का विवेचन विश्लेषण किया जाता है । अर्थ क्या है? अर्थ का ज्ञान कैसे होता है? शब्द और अर्थ में क्या सम्बन्ध है? संकेत ग्रहण कैसे होता है? मन में बिम्ब निर्माण कैसे होता है? बिम्ब से अर्थ बोध की प्रक्रिया आदि भाषा के आन्तरिक पक्ष है । अर्थ विज्ञान की सरलतम परिभाषा- शब्द तथा वाक्य के स्तर पर घटित या निहित अर्थ का विवेचन । अंग्रेजी में इसे सीमेन्टिक्स (semantics) कहते हैं । हिन्दी में इसके लिए अर्थ विचार, शब्दार्थ विचार, शब्दार्थ विज्ञान आदि नाम भी प्रचलित रहे है । आज अर्थ विज्ञान नाम ही सर्वप्रिय है ।

भारतीय भाषा चिंतन में अर्थ पर बड़ी गहराई तथा सूक्ष्मता से विचार किया गया है । यास्क कृत 'निरूक्त' अर्थ विज्ञान का सर्व प्रथम भारतीय गन्ध है । इसके पश्चात पतंजलि कृत 'महाभाष्य' ओर भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय इस विषय के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । अर्थ विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वाले पाश्चात्य विद्वान हैं - फ्रेंच विद्वान मिशेल ब्रेआल, जर्मन विद्वान पाल, के. रीजिंग ए.बेनरी, पोस्टगेट, ब्रगमान, स्वीट आदि ।

12.3 शब्द की अवधारणा

शब्द समूह किसी भी भाषा की अक्षुण्ण संपदा होता है । शब्द के बाह्य तथा आभ्यंतरिक दो पक्ष होते है । एक को 'नाम की संज्ञा दी जाती है, दूसरे को 'भाव' की । नाम और भाव अथवा पदार्थ के बीच का संबंध ही अर्थ है । वाणी से जो उच्चरित होता है वह तो केवल ध्वनि है । इन ध्वनियों के साथ भाव या पदार्थ विशेष का जो सम्बन्ध जुड़ा है, वही अर्थ है । भाषा विज्ञान कोष के अनुसार अर्थ वह तत्व है जो किसी शब्द या अभिव्यक्ति की आत्मा के रूप में उसमें निहित होता है । मनोवैज्ञानिक स्तर पर अर्थ वह बिम्ब है, जो पाठक के मस्तिष्क में शब्द आदि पढ़ कर या श्रोता के मस्तिष्क में शब्द सुनकर बनता हैं । संक्षेप में कहा जा सकता है कि किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय(प्रमुखत कान, आँख)ए से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है ।

इस प्रकार अर्थ का ज्ञान प्रत्यय या प्रतीति के रूप में होता है । यह प्रतीति अनुभव से होती है । यह अनुभव दो प्रकार का है- 1 आत्म-अनुभव 2. पर-अनुभव

1. **आत्म-अनुभव:** आत्म अनुभव का अर्थ है स्वयं किसी वस्तु आदि को अपनी आँखों आदि से देखना या अनुभव करना । जैसे- मनुष्य, स्त्री, गाय, अश्व, पक्षी आदि को

देखकर स्वयं ज्ञान प्राप्त करना । चीनी मीठी होती है में मीठी के अर्थ की प्रतीति स्वयं चीनी चखने से हो जाती है । पानी, गर्मी, धूप के अर्थ की प्रतीति भी इसी प्रकार हो सकती है । यह आत्म-अनुभव है । आत्म अनुभव स्पष्ट, अधिक प्रामाणिक और स्थायी होता है आत्म अनुभव के भी दो भेद है- (क) बाहृय इन्द्रिय-जन्य (ख) अन्तर्रिन्द्रिय-जन्य ।

(क) बाहृय इन्द्रिय-जन्य आख, कान, नाक, त्वचा और जिहवा हमारी बाहृय इन्द्रियाँ हैं । आँख से देखी हुई वस्तु, कान से सुना हुआ शब्द, नाक से सूची हुई गंध, त्वचा से छुआ हुआ पदार्थ और जीभ से चखा हुआ स्वाद-बाहृय इन्द्रियजन्य ज्ञान या अनुभव है । इनका ज्ञान और इनकी प्रामाणिकता इन्द्रियों ने स्वये प्रत्यक्ष की है ।

(ख) अन्तर्रिन्द्रिय-जन्य : अन्तरिन्द्रिय या अन्तःकरण मन है । इन्द्रियाँ स्थूल वस्तुओं का ज्ञान ही कर पाती हैं, सूक्ष्म चीजों का ज्ञान वे नहीं कर पाती । उनका ज्ञान मन करता है । जैसे सुख-दुःख, शोक, क्रोध, घृणा, अपमान, भूख-प्यास आदि का अनुभव । शोक, दुःख, अपमान, हर्ष, क्षोभ आदि का अनुभव व्यक्ति स्वयं मन से करता है । यह अन्तरिन्द्रिय जन्य आत्म-अनुभव है अन्तरिन्द्रिय से होने वाला अनुभव सूक्ष्म होने के कारण कम स्पष्ट और कुछ अंश तक अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय होता है ।

2. **पर अनुभव** पर अनुभव का अर्थ है जिसे 'पर' या 'दूसरे' ने देखा है । अनेक क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहां हमारी पहुंच नहीं होती । उस क्षेत्र से संबद्ध शब्दादि के अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों के अनुभव या ज्ञान पर निर्भर रहना पडता है । उदाहरण के लिए, हममे से अनेक लोगों ने 'जहर' नहीं देखा होगा, किन्तु दूसरों से ऐसा सुन रखा है कि जहर जीव को मार डालने वाला होता है । अत: जहर' शब्द के अर्थ की प्रतीति का मूलाधार आत्म अनुभव न होकर पर अनुभव है । ऐसे ही आत्मा, परमात्मा, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, मोक्ष आदि अन्य भी अनेक प्रकार के शब्द हो सकते हैं ।

12.4 शब्द और अर्थ का संबंध

भाषा किसी समाज के समग्र इतिहास का प्रतिफल होती है । भाषा की प्रकृति का वास्तविक परीक्षण और निर्धारण नाम तथा भाव अथवा शब्द और अर्थ के सम्बन्ध के अध्ययन के आधार पर ही किया जाता सकता है । शब्द और अर्थ में क्या संबंध है? यह प्रश्न भाषा में अनादि काल से उठता रहा है । क्यों पानी कहने से पानी का बोध होता है? क्या पानी शब्द और पानी द्रव्य का कोई संबंध है? भाषा को 'यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था कहा गया है । इसका अर्थ यह है कि भाषा के शब्द प्रतीक हैं । कौन सा शब्द किस अर्थ का बोध कराता है, यह संकेतग्रहण पर निर्भर है । प्रत्येक भाषा में कोई शब्द किसी अर्थ को संकेतित करता है । प्रत्येक भाषा में इस शब्द का यह अर्थ होगा, यह संकेतित है । यह संकेत सामान्यतया स्वेच्छा-जन्य या यादृच्छिक होता है । प्रारंभ मे कोई व्यक्ति किसी विशेष अर्थ में किसी शब्द का प्रयोग करता है । बाद में वह शब्द उस समाज या उस भाषा में लोकप्रिय हो जाता है । वही

उस शब्द का संकेतित अर्थ माना जाता है । किसी शब्द से किसी अर्थ का सम्बन्ध स्थापित करना संकेत ग्रह है । यह संकेतग्रह लोक-व्यवहार एवं अनुशासन से होता है ।

शब्द और अर्थ के संबंध पर विचार करते हुए यास्क अपने 'निरूक्त' में कहते है कि जिस प्रकार बिना अग्नि के शुष्क ईधन प्रज्वलित नहीं होता, उसी तरह अर्थ बोध के बिना शब्द को दोहराने मात्र से अभीप्सित विषय को प्रकाशित नहीं किया जा सकता ।

यद् गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते ।

अनग्नाविव शुष्केधे न तज्जवलति कर्हिचित् । ।

शब्द से अर्थ का बोध होता है । इसमें शब्द बोधक है और अर्थ बोध्य । शब्द अर्थ का बोध करा कर निवृत्त हो जाता है । इसीलिये भाषा में महत्व अर्थ का है ।शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को वाच्य-वाचक या बोध्य-बोधक सम्बन्ध कहते है । शब्द वाचक या बोधक है, अर्थ वाक्य या बोध्य ।

अर्थ की दृष्टि से शब्दों के दो वर्गो को पहचाना गया है एकार्थी और अनेकार्थी ।

संस्कृत के काव्य-शास्त्रियों ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में गहन मनन-चिंतन किया है । इस विवेचन को 'शब्द-शक्ति' या वृत्ति-निरूपण' नाम से प्रस्तुत किया गया है । शब्दों से होने वाले अर्थ तीन प्रकार के है- वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य । इसी आधार पर शब्द भी तीन प्रकार के होते हैं-वाचक, लक्षक और व्यंजक । इन तीनों में विद्यमान शक्ति या वृत्ति को अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहते हैं ।

12.5 अर्थ बोध के साधन

12.5.1 भारतीय

भारतीय परंपरा में अर्थ बोध के आठ साधन माने गये हैं- व्यवहार, उपमान, प्रकरण, व्याख्या, प्रसिद्ध पद का सान्निध्य, व्याकरण, कोश, आप्त वाक्य ।

1. **व्यवहार-** यह अर्थ बोध का सबसे प्रमुख साधन है । व्यवहार का अभिप्राय है- लोक-व्यवहार बालक से लेकर वृद्ध तक लोक-व्यवहार से ही सबसे अधिक अर्थ-ज्ञान या संकेत-ग्रह करते हैं । संसार की सभी वस्तुओं के नाम हम लोक-व्यवहार से ही जानते हैं । माता-पिता, गुरू, साथी, मित्र, आदि के व्यवहार से ही संबंधियों के नाम पशु-पक्षियों के नाम, बाजार की सभी वस्तुओं के नाम आदि का बोध होता है ।
2. **उपमान-** उपमान का अर्थ है सादृश्य । एक वस्तु के सादृश्य पर दूसरी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना । जैसे घोड़ा, दरियाई घोड़ा का शान पहले से है और उसी से मिलते जुलते जानवर के लिए जो जमीन के ऊपर नहीं, बल्कि जल के भीतर रहता है, एक अर्थ बोधक शब्द है दरियाई घोड़ा । इसी प्रकार गधे या घोड़े से खच्चर, कुत्ते से भेड़िया, गाय से नील गाय आदि का अर्थ ज्ञात हो जाता है ।
3. **प्रकरण**- एक ही शब्द के जब विभिन्न अर्थ (अनेकार्थी शब्द) होते हैं, तब विधि से अर्थ ग्रहण होता है । रस शब्द के कई अर्थ हैं, जैसे काव्य रस, गन्ने का रस, वेदना निग्रह

रस । जब कोई व्यक्ति किसी वाक्य में विशेष शब्द का व्यवहार करता है, तब वह उसे अनेक अर्थ के होते हुए भी केवल एक अर्थ में लाता है और प्राय: श्रोता भी उसे उसी अर्थ में ग्रहण करता हैं रसोई में बैठा हुआ रसोइया जब कहार से सैन्धवमानय' कहता तो कहार नमक ही लाकर देता था, घोड़ा नही । और यदि राजदरबार में जाने के लिये तैयार सरदार सईस से सैन्धवमानय' कहता था, तो साईस घोड़ा ही लाता था, नमक नहीं । प्रकरण ही इस प्रकार के शब्द के अर्थ का निर्णायक है । एक समय में एक ही अर्थ उपस्थित रहता है । उस समय अन्य अर्थ गायब से रहते हैं, यद्यपि वे अन्तःकरण में सुप्तावस्था में' पड़े रहते हैं ही, साहित्यकार जहां अपनी कला के प्रदर्शन के लिए वक्रोक्ति आदि में श्लेष का प्रयोग करते हैं, वहां दूसरी बात है । पर वह सब कृत्रिम है, भाषा का स्वाभाविक अंग नही ।

4. **व्याख्या-** इस प्रकार 'धातु' का व्याकरण में एक अर्थ है, किन्तु सामान्य जीवन में धातु में सोना, चांदी, तांबा आदि का बोध होता है । गोली एक प्रकरण में 'बन्दूक की गोली है तो दूसरे प्रकरण में 'दवा की गोली ओर तीसरे प्रकरण में बच्चों के खेलने की गोली'।
5. **प्रसिद्ध पद का सान्निध्य** - कुछ शब्दों का अर्थ पूर्व ज्ञात प्रसिद्ध शब्दों के सान्निध्य से खुलता हैं जैसे एक वाक्य लें - 'इस बार गेंहूँ जौ, चना, मटर, मक्का आदि की फसल अच्छी हुई मान लीजिए इसमें मटर का अर्थ ज्ञात नहीं है तो उसका गेंहूँ जौ के साथ, उसके बडे वर्ग के सदस्य के रूप में प्रयोग से समझा जा सकता है कि यह भी अनाज ही हैं । इसी तरह ' 'बासमती चावल तिलक चंदन से अच्छा होता है । - तिलक चंदन से अनजान इस वाक्य का पाठक बासमती और चावल के सान्निध्य से समझ जाएगा कि तिलक चंदन किसी चावल का नाम है ।
6. **व्याकरण** - कोशगत शब्दों का कालगत, वचनगत या इसी तरह के अन्य रूपान्तरण का ज्ञान व्याकरण के द्वारा होता है । ' पढ़ना' क्रिया 'पढ़ा' क्यों बन गई, इसका क्या तात्पर्य है, इसका संकेत व्याकरण में ही मिल सकता है । वर्तमान काल की किया भूतकाल में परिवर्तित होकर 'पढ़ना से 'पढ़ा बन जाती है । इसी तरह लड़का शब्द अनेक के अर्थ में बहुवचन हो जाता है और इसका रूपान्तरण लड़के हो जाता है ।
7. **कोश -** बहुत से शब्दों का अर्थ शब्द कोश के माध्यम से जाना जाता है ।
8. **आप्तवाक्य-** महान, विद्वान, प्रसिद्ध, सिद्ध या पहुंचे हुए लोगों के वाक्य कभी कभी अर्थ बोध कराते है । व्यावहारिक जगत में बहुत सी चीजें ऐसी होती हैं जिनमें हमारा प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं होता । ऐसी वस्तुओं का अर्थात्मक ग्रहण आप्त वाक्य से हो जाता है । आस्थावान लोगों का ईश्वर, स्वर्ग, नरक, आत्मा, पुनर्जन्म जेसे शब्दों का अर्थबोध मुख्यत: आप्त वाक्य पर अवधारित है ।

12.5.2 पाश्चात्य

पाश्चात्य विद्वानों ने अर्थ बोध के तीन साधनों का उल्लेख किया है:-

1. निदर्शन

2. विवरण

3. अनुवाद

1. **निदर्शन:** किसी वस्तु को दिखाकर विशेष का अर्थ बोध कराने की पद्धति निदर्शन है । जैसे- आम, अमरूद, सेव, पेंसिल, कलम, पुस्तक आदि को दिखाकर इनसे संबद्ध शब्द का उच्चारण करना । भाषा ज्ञान की यह प्रारंभिक प्रक्रिया है । बच्चे को एक वस्तु की ओर संकेत करके भाषा ज्ञान कराया जाता है।

2. **विवरण :** किसी वस्तु विशेष में विस्तार से कथन करना जैसे कहा जाए कि गाय एक चौपाया दुधारू जानवर हैं उसके दो सींग, एक पूँछ होती है आदि । निदर्शनात्मक परिभाषा भाववाचक शब्दों को समझाने में समर्थ नहीं हो पाती जस - सत्य, ईमानदारी, सुन्दरता आदि । ऐसे शब्दों का अर्थ समझाने के लिए विवरण या लम्बी परिभाषाओं का सहारा लेना पडता है ।

3. **अनुवाद.** यदि जिज्ञासु की मूलभाषा भिन्न है तो जिस भाषा को वह सीखना चाहता है, उसको उसकी मूल भाषा में प्रयुक्त संकेत(शब्दों) में परिवर्तित (अनुदित) कर दिया जाए तो वह अर्थ ग्रहण कर लेगा । अंग्रेजी सीखने वाले हिन्दी भाषी छात्र को अनुवाद के माध्यम से अर्थ ज्ञान करवाया जाता है ।

12.6 अर्थ परिवर्तन

संसार परिवर्तनशील है । यहां की सभी वस्तुएं परिवर्तित होती रहती हैं । भाषा भी परिवर्तनशील है । जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थो में भी परिवर्तन होता रहता है । किसी शब्द का अर्थ सर्वथा एक नहीं रहता । मनुष्य की मन: स्थिति में परिवर्तन के फलस्वरूप उसके विचार एक से नहीं रह पाते । भाषा विचारों की वाहिका है । अत: उसे भी विचारों का साथ देना पडता है । इस साथ देने के प्रयास में ही उसके शब्दों में अर्थ परिवर्तन आ जाता है । उदाहरण के लिए 'गंवार' शब्द संस्कृत ग्रामदारक' से विकसित है जिसका मूल अर्थ है गांव का रहने वाला, गांव का लड़का अथवा गांव वाला । अब इसका अर्थ परिवर्तित होकर 'असंस्कृत' या असभ्य हो गया है । इसी प्रकार तेल शब्द संस्कृत के तैल' से विकसित है । जिसका मूलार्थ है । 'तिल का सार' । आरंभ में तिल के रस को तैल कहते रहे होंगे । पर आज तो इसका अर्थ इतना परिवर्तित हो गया है कि सरसों, नारियल, अलसी, मूंगफली, सूरजमुखी के फूल के तेल को ही नहीं मिट्टी, सांप और मछली के तेल को भी तेल कहते है । संस्कृत में 'विहार' शब्द का अर्थ विचरण करना टहलना आदि था । पालि भाषा में वही निवास स्थान के बाहु ल्य में बराबर प्रयोग में आया है ओर आज किसी प्रांत में बौद्ध विहारों के कारण ही शायद उसका नाम ही बिहार हो गया । हिन्दी में बाडी, बारी शब्द प्राय: संस्कृत के वाटिका शब्द अर्थ में आज भी प्रयुक्त होता हैं पर बंगला में उसका अर्थ घर हो गया ।

स्टीफेन उलमान के अनुसार नाम और भाव के मौलिक सम्बन्ध में ज्यों ही अन्तर पडता है कि अर्थ में परिवर्तन आ जाता है । यह परिवर्तन मुख्यत: दो रूपों में होता है । कभी

कोई नया भाव पुराने नाम के साथ जुड़ जाता है अथवा कभी पुराने भाव नये नाम के साथ जुड़ जाते हैं इस प्रकार अर्थ परिवर्तन का चक्र बराबर चलता ही रहता है । विद्वान यह मानते है कि भाषा कभी गतिहीन नहीं होती । कभी-कभी देखने में भाषा की गतिशीलता का एकदम पता नहीं चलता किन्तु वास्तव में ध्वनि-गठन, व्याकरणात्मक तत्व, शब्द रूप और शब्द अर्थ-ये अभी समान रूप में निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं ।

संसार के भाषा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि शब्द के रूपगत परिवर्तनों का आधार बाह्येन्द्रियां है और अर्थगत परिवर्तनों का सीधा सम्बन्ध उस भाषा के बोलने वालों के मानस जगत से होता है । इस प्रकार शब्द अर्थ के सम्बन्ध का अध्ययन जातीय जीवन की मानसिक प्रक्रिया से संबद्ध होता है । जो मुख्यत: भाषा शास्त्रीय, ऐतिहासिक और सामाजिक स्थितियों के विश्लेषण पर आधारित होता है ।

यह सिद्ध हो चुका है कि अर्थ परिवर्तन का अध्ययन व्यक्ति, समाज या जातीय संस्कृति का उद्घाटन करता है । आधुनिक भाषाविदों की यह स्थापना है कि पहले की तुलना में आज अर्थात् आधुनिक समाज में अर्थ परिवर्तन अधिक घटित होता है क्योंकि आज का जीवन अपेक्षाकृत अधिक कोलाहलपूर्ण और अस्थिर है । अत: यह माना जाने लगा है कि मानव जीवन और मानव समाज के अध्ययन की दिशा में ध्वनि परिवर्तन के अध्ययन की अपेक्षा अर्थ परिवर्तन का अध्ययन अधिक सहायक है ।

12.7 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

प्राचीन काल से आधुनिक युग तक इस बात का पता लगाने के लिए अनेक प्रयत्न हुए कि किस स्थिति विशेष में किस शब्द का अर्थ किस दिशा में विकसित हो सकता है । परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी तक अर्थ विकास का कोई क्रमिक आधार प्रस्तुत नहीं किया जा सका । बीसवीं शताब्दी में. इस अध्ययन को वैज्ञानिक रूप देने का यत्न किया गया । सर्वप्रथम फ्रेंच भाषा वैज्ञानिक ब्रेआल ने अर्थ विज्ञान को भाषा अध्ययन में स्वतंत्र अध्ययन का रूप दिया । अर्थ परिवर्तन को उन्होंने एक तार्किक आधार दिया और यह सिद्ध किया कि अर्थ विकास (परिवर्तन) की दिशाओं की संभावनायें तीन ही हो सकती हैं । अर्थ विकास या अर्थ परिवर्तन की ये तीन दिशाएँ हैं:-

12.7.1 अर्थ विस्तार

12.7.2 अर्थ संकोच

12.7.3 अर्थादेश

12.7.1 अर्थ विस्तार

जब शब्द का अर्थ विशेष से सामान्य की ओर प्रवृत्त होता है तो उसे अर्थ विस्तार कहा जाता है । तात्पर्य यह कि सामान्यीकरण के कारण शब्दों का प्रयोग प्रसंगाग्रह द्वारा व्यापक अर्थ में होने लगता है । प्रारम्भ में गढ़े जाते समय शब्दों के अर्थ स्थिर, स्पष्ट तथा सीमित हुआ करते हैं जो कालक्रम से धीरे-धीरे व्यापकता की ओर प्रवृत्त होते हैं । बाद में वे ही शब्द इतने सामान्य हो उठते है कि उन शब्दों से कोई विशेष अर्थ लक्षित नहीं किया जा सकता । अर्थ

विकास की इस प्रवृत्तित को 'अर्थ-विस्तार' की संज्ञा दी गई है । अंग्रेजी में इसे जेनरलाइजेशन एक्सपेंशन, वाइडेनिंग, एक्सटेन्शन इनमीनिंग आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया हैं । उदाहरण-

प्रवीण - प्रवीण का व्युत्पत्तितपरक तथा आरंभिक अर्थ है वीणा वादन में निपुण । यह शब्द वीणा वादन की निपुणता को छोडकर केवल 'निपुण' या दक्ष(चतुर) अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है । कूदने में प्रवीण, कृषि कर्म में प्रवीण कला में प्रवीण, चोरी करने में प्रवीण आदि रूपों में इसका प्रयोग होता है ।

गवेषणा - मूल अर्थ गौ की 'एषणा अर्थात् गाय की इच्छा या गाय की खोज है । अब तो किसी भी प्रकार की खोज गवेषणा' है ।

कुशल - कुश लाने में चतुर व्यक्ति के लिए 'कुशल' शब्द प्रयुक्त होता था । किन्तु धीरे धीरे इसका अर्थ विस्तार हो गया । किसी भी कार्य को ठीक तरह से करने वाले को कुशल कहा जाता है ।

दारूण - विशेषण पद रूप में कठोर निर्दय, भयंकर, तीव्र, आदि मूल अर्थ में हिन्दी में प्रयुक्त है, जैसे दारूण, दुःख, दारूण विपत्ति, दारूण घटना । किन्तु बंगला में यह शब्द अतिशय कठोर असह्य निष्ठुर आदि अर्थो में खूब व्यवृहत होता है । जैसे-दारूण सुधा(अतिशय भूख), दारूण वृष्टि, दारूण स्वभाव(निष्ठुर स्वभाव), दारूण भालो(बहुत अच्छा) आदि । हिन्दी की तुलना में बंगला में अधिक अर्थ संप्रसारण हुआ है । इस शब्द में निहित प्रचण्डता का भाव वहां लुप्त हो गया है और बच रहा है केवल अतिशयता का भाव ।

कन्या - आभा से दीप्ति सम्पन्न अवस्था में आई हुई लड़की को अर्थात् दस वर्ष की अवस्था से मंडित लड़की को कन्या कहा जाता था । पर हिन्दी में यह शब्द उस की सीमा रेखा में बंधा नहीं है । पुत्री, बेटी, लड़की के सामान्य अर्थ में कन्या शब्द का प्रयोग होता हैं जैसे- 'मुझे तीन कन्याएँ तथा दो पुत्र है भले ही इन: तीन लडकियों में कोई छः साल की या बच्चों वाली विवाहिता ही क्यों न हो । तात्पर्य - कन्या शब्द के पीछे जो अविवाहित या विवाह योग्य का एक विशेष अर्थ था, वह हिन्दी में सामान्य हो गया है ।

12.7.2 अर्थ संकोच

जब शब्द का सामान्य तथा विस्मृत अर्थ विशिष्टता की ओर प्रवृत्त होता है, तब उसे अर्थ-संकोच कहा जाता है । तात्पर्य यह कि विशेषीकरण के कारण शब्द के अर्थ की व्यापकता क्रमश: संकुचित होती जाती है । किसी भी विकासशील भाषा में विशेषीकरण की प्रवृत्तित पायी जाती है ओर तब यह कहा जाता है कि इन परिवर्तनों के मूल में अर्थ-संकोच का नियम स्थित हैं । अंग्रेजी में इसे रेस्ट्रिक्शन, स्पेशलाइजेशन, कॉन्ट्रैक्शन आदि नामों से अभिहित किया गया है ।

अर्थ-परिवर्तन की विभिन्न प्रवृत्तितयों में अर्थ-संकोच को सर्वाधिक आकर्षक तथा महत्वपूर्ण माना जाता है । इसके महत्व को स्वीकार करते हुए डॉ. श्याम सुन्दर दास का कहना है, 'इस संकोच की सविस्तार कथा लिखी जाये तो अर्थ विचार का बड़ा मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद

अंग तैयार हो जाए । ब्रेआल महोदय ने तो यहां तक संकेत किया है कि जो राष्ट्र सभ्यता की दृष्टि से जितना अधिक उन्नत होता है उसमें अर्थ संकोच की प्रवृत्तित उतनी ही समृद्ध होती है । अर्थ संकोच के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है-

प्रियतम- मूल अर्थ है सर्वाधिक प्रिय । किसी भी प्रिय व्यक्ति के लिए प्रियतम शब्द का प्रयोग होता था । हिन्दी में इस शब्द का प्रयोग सीमित संदर्भ में होता है । इस शब्द के व्यवहार करने का अधिकार केवल पत्नी अथवा प्रियतम को अपने पति या प्रेमी के लिए है ।

कुटिल - इसका मौलिक अर्थ है टेढ़ा, वक्र । टेढ़ापन अथवा वक्रता स्थूल पदार्थो की अपेक्षा कदाचित मन के सूख्म व्यापार में अधिक होती है । अत: संस्कृत में कुटिल का प्रयोग शत, छली, बेईमान आदि अर्थो में भी पाया जाता हैं इस प्रकार संस्कृत में अर्थ की स्पष्ट दो धारायें हैं- एक स्थूल प्रत्यक्ष पदार्थो की वक्रता को व्यक्त करती है, तो दूसरी मन, वृत्ति जैसे सूक्ष्म पदार्थो की वक्रता को अभिव्यक्ति देती है-क्रोश कुटिला नदी तथा कुटिल स्वभाव, कुटिल आशय ।

हिन्दी ने संस्कृत के सूक्ष्म पदार्थो की वक्रता को अभिव्यक्त करने वाले- शठ, छली, बेईमान अर्थ को ग्रहण किया । हिन्दी में इस शब्द का प्रयोग मन, स्वभाव या वृत्तियों के संदर्भ तक ही सीमित है । अर्थात् यहां इस शब्द का मानसिक पक्ष से ही सम्बन्ध है । वैसे ब्रज भाषा काव्य में 'कुटिल अलक' जैसा प्रयोग मिल जाता है, परन्तु मानक हिन्दी में ऐसे प्रयोग उपलब्ध नहीं है ।

दण्ड - संस्कृत में दण्ड का प्रयोग डंडा के अर्थ में मिलता है । चूंकि दण्ड सजा देने के प्रमुख साधनों में से एक था । इसलिये यह शब्द कालान्तर में सजा का अर्थ बोधक बन गया । हिन्दी शब्द कोश में दण्ड शब्द के दोनों अर्थ दिये गये है, तथापि प्रयोग की मान्यता की दृष्टि से मानक हिन्दी में यह शब्द सजा अर्थ ही देता है । जलज - जलज का मूल अर्थ है जल से पैदा होने वाला - काई, घोंघा, बादल, कमल आदि । किन्तु इसका अर्थ कमल तक ही सीमित हो गया है ।

गौ - गौ शब्द का निर्माण गम् धातु से हुआ है, जिसका अर्थ था चलने वाला । अर्थ-संकोच के कारण यह मात्र गाय' का सूचक हो गया ।

मृग - मृग शब्द पशु - मात्र के लिए था, अर्थात् सभी जंगली जानवरों का सूचक था । अब केवल हिरन अर्थ रह गया है । अंग्रेजी का Deer भी पशु मात्र वाचक था, अब हिरन अर्थ रह गया है ।

मंदिर - मूल अर्थ भवन था । यह देव मंदिर अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है ।

समास, विशेषण, प्रत्यय, पारिभाषिकता आदि के द्वारा अर्थ की 'वाचकता को अभिप्रेत विशिष्ट शब्द अर्थ की उपलब्धि के लिए संकुचित कर दिया जाता है । धनश्याम(घन की तरह श्याम) तो कोई भी हो सकता है किन्तु यह कृष्ण के लिए रूढ़ हो गया है । दशानन(रावण) पीताम्बर(कृष्ण), नीलाम्बर(बलराम), गजवदन(गणेश), आदि शब्द भी इसी तरह के हैं । यह भी अर्थ-संकोचन की ही प्रक्रिया है । विशेषण लगाने से भी शब्द का अर्थ ग्रहण क्षेत्र सीमित हो

जाता है । जैसे जल व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है, परन्तु इसके पूर्व विश्लेषण मीठा अथवा खारा युक्त हो जाने पर अर्थ संकुचित हो जाता है- मीठा जल, खारा जल । जब हम किसी शब्द को विशिष्ट पारिभाषिकता प्रदान कर देते हैं, तो भी उसका अर्थ सीमित हो जाता है । जैसे - काव्य के संदर्भ में रस' अन्य अर्थो को छोड़ देता है । व्याकरण के संदर्भ में इसी तरह के शब्द हैं- गुण, धातु, आदेश, वृद्धि आदि ।

12.7.3 अर्थादेश

आदेश का अर्थ होता है- एक को हटाकर दूसरे का आना । अर्थादेश का अर्थ है, एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना । इसमें शब्द का प्राचीन अर्थ लुप्त हो जाता है और नया अर्थ आ जाता है । जब शब्द का व्यवहार प्रचलित प्रसंगों में समाप्त हो जाता है और किसी अन्य नवीन प्रसंग में चल पडता है तो अर्थ विकास की इस अवस्था को अर्थादेश की संज्ञा दी जाती है । तात्पर्य यह कि मौलिक अर्थ से सम्बन्ध न रखने वाला कोई बाहय भाव अनजाने में कभी कभी उस अर्थ के साथ संबद्ध हो जाता है और क्रमश: वही उस शब्द का मुख्यार्थ बन कर मौलिक अर्थ से एकदम भिन्न रूप में प्रचलित हो जाया करता है । हिन्दी के भाषा वैज्ञानिकों ने अर्थ-परिवर्तन की इस प्रवृत्तित को अर्थादेश, 'अर्थान्तरण, 'अर्थारोप, की संज्ञाएँ दी हैं अंग्रेजी में इसे ट्रान्सफरेन्स कहा गया है । उदाहरण-

सूर- इस शब्द का मूल अर्थ था- सूर्य, बुद्धिमान पण्डित । परन्तु अब यह शब्द नेत्र ज्योति विहीन लोगों के लिये प्रयुक्त होता है ।

असुर- मूल अर्थ असु+र=प्राणशक्तिसंपन्न देवता था । बाद में सुर(देवता) का उल्टा अ+सुर = राक्षस अर्थ हो गया । मौन- मूल अर्थ 'मुनि-कर्म' या मुनियों का आचरण था । अब 'चुप रहना अर्थ रह गया है ।

वर- मूल अर्थ श्रेष्ठ था । अब केवल दूल्हा रह गया है ।

अंर्थादेश के कई भेद-उपभेद किये जा सकते हैं । इन भेद उपभेदों के मुख्यत: दो आधार हैं-

1. सूक्ष्मता-स्थूलता के आधार पर 2. उत्कर्ष - अपकर्ष के आधार पर

1. **सूक्ष्मता-स्थूलता के आधार पर -** शब्दों का अर्थ परिवर्तन कभी तो स्थूल से सूक्ष्म हो जाता है ओर कभी सूक्ष्म से स्थूल । इस आधार पर अर्थादेश के दो प्रकार हैं-

   (क) **सूक्ष्मीकरण** : कुर्सी=पद, पानी=इज्जत, पर्दा=दुराव-छिपाव, रोटी=आजीविका, जहर=बुरा, आँख की किरकिरी=खटकने वाला, बुरा लगने वाला । मीठी बात, कडुई बात, टेढ़ा आदमी, सीधा आदमी भी इसी तरह के उदाहरण है ।

   (ख) **स्थूलीकरण** : देवता(मूलत: देवत्व)=देव, सामग्री(मूलत संचय)=चीजें-वस्तुएँ, पुराण(मूलत: प्राचीन)=पुराण ग्रन्थ, उपनिषद (मूलत: गुरू के चरणों के पास ज्ञान प्राप्ति के लिये बैठना)=ग्रन्थ विशेष ।

2. **उत्कर्ष-अपकर्ष के आधार पर -** शब्दों का अर्थ परिवर्तित होते-होते सामाजिक दृष्टि आदि से कभी तो ऊपर उठ जाता है, कभी ज्यों का त्यों रहता है, तथा कभी नीचे गिर जाता है । इस आधार पर अर्थादेश के तीन भेद हैं ।

(क) **अर्थोत्कर्ष -** यदि किसी शब्द का अर्थ आरंभ में बुरा हो बाद में अच्छा हो जाये । अर्थ का पहले से अधिक उन्नत हो जाना अर्थात् श्रेष्ठ हो जाना ही अर्थोत्कर्ष है । उदाहरण -

साहस - साहस का प्राचीन अर्थ चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि था । अब इसका 'उत्साहपूर्ण कार्य' अर्थ में प्रयोग होता है ।

मुग्ध - मूल अर्थ था मूर्ख । इसका अर्थ हो गया है मोहित होना ।

कर्पट-कपड़ा - संस्कृत में फटे पुराने कपड़े का अर्थ देता था । अब 'कपड़ा' का प्रयोग अच्छे वस्त्र के लिए होता है ।

गोष्ठ-गोष्ठी - गोष्ठ गोशाला के लिए प्रयुक्त होता था । उसी से बना 'गोष्ठी सभ्य समाज की सभा के लिए है ।

(ख) **ज्यों का त्यों** - इसमें अर्थ परिवर्तन समान स्तर पर रहता है । बदला हुआ अर्थ न उन्नत होता है न अवनत ।

वाटिका- वाटिका का मूल अर्थ है बगीचा, इसी से विकसित 'बाडी' बंगला में घर के अर्थ में प्रयुक्त होता संदेश - मूल अर्थ है वध करना, आघात करना, कष्ट देना, नुकसान पहुंचाना । बंगला में ईर्ष्या-विद्वेष के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।

(ग) **अर्थापकर्ष** - अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होने वाला शब्द कुछ कारणों से बुरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है । उसकी अर्थगत अवनति हो जाती है । उदाहरण-

पाखण्ड-यह मूलतः सन्यासियों के एक संप्रदाय का नाम था । अब पाखंड का अर्थ ढोंग दिखावा रह गया है ।

पुंगव-पोंगा- पुंगव का मूल अर्थ श्रेष्ठ था । अब इसी से विकसित पोंगा शब्द का अर्थ है मूर्ख ।

बौद्ध-बुद्ध - बौद्ध का मूल अर्थ है बुद्ध का अनुयायी । 'बौद्ध' शब्द से विकसित बुद्ध का अर्थ होता है मूर्ख ।

वज्रवटुक - मूल अर्थ पूर्ण ब्रह्चारी । इसी से विकसित बजरबट्टू का अर्थ है महामूर्ख ।

भद्र-भद्दा- भ्रद शब्द सुशील के अर्थ में प्रयुक्त होता था । उसका विकसित रूप 'भद्दा का अर्थ है कुरूप, गन्दा-बुरा ।

चतुर्वेदी-चौबे- चतुर्वेदी चारों वेदों के ज्ञाता के लिए था । उसका विकसित रूप 'चौबे' केवल 'अधिक खाने वाला' अर्थ रह गया ।

12.8 अर्थ परिवर्तन के कारण

अर्थ-परिवर्तन के अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किये गये हैं और अर्थ परिवर्तन के कारणों का विवेचन किया गया है । परन्तु यहां ध्यान में रखना होगा कि अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया मानव मस्तिष्क से सम्बद्ध होने के कारण अभी तक कोई गणेषणा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी है । फिर भी फ्रेंच भाषाविद् एन्टोनी मिलेत द्वारा प्रस्तुत किया गया विवेचन अधिक स्पष्ट,

सरल तथा संक्षिप्त है । मिलते ने यह दर्शाया कि अर्थ-परिवर्तन की पृष्ठभूमि में मुख्यत: तीन कारण निहित होते हैं-

1. भाषाशास्त्रीय
2. ऐतिहासिक
3. सामाजिक

(1) **भाषाशास्त्रीय :** प्राचीन तथा आधुनिक सभी भाषाविद् मानते हैं कि स्वयं भाषा की प्रकृति में परिवर्तन के कारण निहित रहते हैं । ब्रेआल का मत है कि शब्द तथा शब्द द्वारा बोध्य वस्तु के बीच किसी न किसी तरह का निरन्तर अभाव रहता है, जिसके कारण अभिव्यक्ति में कभी अधिक विस्तार आ जाता है और कभी अधिक संकोच । विचारकों की राय में उपमाओं, रूपकों आदि का आविष्कार शब्द और बोध्य वस्तु के अभाव की दूरी मिटाने के लिए होता है, क्योंकि स्वयं शब्दों में अर्थ की अनिश्चितता रहती है ।

(2) **ऐतिहासिक** : देश, काल तथा पात्र के अनुकूल शासन, शिक्षा, व्यापार आदि के रूपों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है । भाषा इस निरन्तर परिवर्तनशीलता के पीछे-पीछे चलती हैं भावों के परिवर्तन से नामों में तो परिवर्तन नहीं आता, लेकिन अर्थ में परिवर्तन आता रहता है ।

(3) **सामाजिक.** जिस तरह किसी खास पेशे का शब्द सामाजिकों में प्रतिष्ठित हो जाता है या फैशनवर्ष कोई विशेष सामान्य हो जाता है अथवा पारिभाषिक शब्द साधारण जीवन का अंग बन जाता है, उसी तरह नये अर्थ भी एक समूह या वर्ग से दूसरे वर्ग या समूह तक विस्तार पाते हैं । विशेष वातावरण एकदम ताजे ओर अत्यन्त पारिभाषिक भावों को पुराने शब्दों के साथ जोड़ दिया करते हैं । इन शब्दों के साथ पारिभाषिक भाव संलग्न हो जाया करते हैं । जब साधारण से विशेष किसी कार्य के संदर्भ में शब्द का प्रयोग होता है तो उसका प्रयोग सीमित होता है । कभी-कभी इन कारणों से अर्थ सर्वथा परिवर्तित हो जाया करता है ।

निश्चित ही मिलते द्वारा निर्देशित कारणों की उपर्युक्त विवेचना पूर्ण नहीं मानी जा सकती । अर्थ-परिवर्तन के अनेक मनोवैज्ञानिक कारण अव्याख्येय हैं । अर्थ-बोध की जटिल प्रक्रिया को सामने रखकर समय-समय पर अनेक विवेचनाएं प्रस्तुत की गई, ताकि इस विवेचना की सीमाएं दूर हो सकें । डॉ. तारापोरवाला ने अपनी पुस्तक 'Element of the Science of Language में प्रो. टकर के अनुसार अर्थ परिवर्तन के बारह कारण माने हैं । अन्य अनुसंधानों को भी समन्वित करते हुए अर्थ परिवर्तन के निम्नलिखित कारण सुझाए गये हैं-

(1) **लाक्षणिक प्रयोग** - अर्थ परिवर्तन का यह सर्वप्रमुख कारण है । भावों और अनुभूतियों की सरल सुन्दर और कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये लक्षणा शक्ति का आश्रय लिया जाता है । भाषा एक सृजनात्मक प्रक्रिया है । प्रत्येक भाषा अपने व्याकरण के अनुरूप नए-नए शब्दों, प्रयोगों का सृजन करती रहती है । प्रत्येक वक्ता

का यह प्रयत्न होता है कि उसकी भाषा उसके भावों ओर विचारों को बड़ी सूक्ष्मता ओर कलात्मकता से अभिव्यक्त करे । उसे बार बार ऐसा अनुभव होता रहता है कि सुविदित तथा रूढ़ प्रतीकों से युक्त शब्द उसकी आवश्यकता को प्रभावर्षाली ढंग से पूर्ण नहीं कर पा रहे हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि लगातार प्रयोग में आते-आते शब्दों की व्यंजकता और प्रभावोत्पादकता क्षीण हो जाती है । अत: उनमें अर्थव्यंजना की शक्ति पैदा करने के लिये प्रयोक्ता उनके प्रयोग में कुछ परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है । फलत: वह शब्द की अर्थ सीमा को बढ़ाता या घटाता है । निर्जीव की विशेषता या गुण-धर्म को सजीव के लिए ओर सजीव के गुण धर्म को निर्जीव के लिए प्रयुक्त करना अर्थ की नई भंगिमा की आकांक्षा का परिणाम है । गुणग्राही को हंस कहना, डरपोक को गीदड़ कहना, मूर्ख को गधा कहना, गन्दे व्यक्ति को सुअर कहना, खुशामदी को कुत्ता कहना, भोले को गाय कहना, कपटी और अपकारी को सांप कहना- इसी तरह के प्रयोग हैं । कटुता, मधुरता, सुन्दरता, सरसता, नीरसता, मिठास आदि शब्दों को मूल अर्थ से विस्तृत करके प्रयोग में लाया जाता है । जैसे- कटु, सत्य, मधुर लय, सुन्दर, कल्पना, सरस साहित्य, नीरस वक्तृता, मीठी मुस्कान आदि ।

भाषा के अर्थ-विकास में रूपकत्व की भी महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है । इसमें मनुष्य के अंगों को अनेक ढंग से आरोपित किया गया है । जैसे-सुराही की गर्दन, घडे का मुँह, पर्वत की चोटी, नारियल की आँख, आरी के दाँत, चारपाई के पैर, छन्द के चरण, गुफा का पेट आदि ।

(2) **परिवेश-परिवर्तन**. परिवेश या वातावरण में अन्तर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थो में परिवर्तन हो जाता है यह परिवेश-भेद अनेक प्रकार का हो सकता है-

(क) भौगोलिक परिवेश भेद- भाषा का प्रयोग जिस क्षेत्र में होता रहता है उसके बदलाव के साथ बहुत से शब्दों दें अर्थ में बदलाव आ जाता है । वेद में 'उष्ट्र' शब्द का प्रयोग आरम्भ में भैंसे के लिए हुआ है, बाद में उसका अर्थ ऊँट हो गया । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आर्य जाति आरंभ में जहां थी, वहां ऊँट नहीं थे, भैंसे मुख्य रूप से थे । बाद में स्थानान्तरित होकर जहां पहुंचे वहां ऊँट अधिक थे । फलत: वे 'उष्ट्र' का प्रयोग दूसरे प्रकार के जानवर के लिए करने लगे । इसी प्रकार 'कार्न' शब्द के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अर्थ हैं-इंग्लैण्ड में गेंहूँ स्कॉटलैण्ड में बाजरा और अमेरिका में मक्का । 'ठाकुर' शब्द का प्रयोग उत्तर प्रदेश में क्षत्रिय के लिए, बिहार में नाई के लिए और बंगाल में खाना बनाने वाले के लिए होता है । अवध क्षेत्र, बिहार ओर बंगाल में पके हुए चावल को भात कहते है । किन्तु खड़ी बोली में 'चावल' कच्चे और पके दोनों प्रकार के चावल का बोधक है ।

(ख) सामाजिक परिवेश भेद- समाज में परिवेश के भेद से अर्थ में भेद हो जाता है । अंग्रेजी के मदर और 'सिस्टर' शब्द का अर्थ साधारणत: कुछ और है, गिरजाघरों में कुछ और है तथा अस्पतालों में कुछ और है । इसी प्रकार सभा में व्याख्यान देने वाले

के भाई और बहन शब्द कुछ दूसरे अर्थ रखते हैं और घर में भाई-बहन का प्रयोग कुछ दूसरा अर्थ रखता है । सामाजिक परिवेश भेद के कारण ही एकार्थक होने पर भी परमात्मा को हिन्दू - 'ईश्वर', ईसाई 'गॉड', और मुसलमान 'अल्लाह कहता है ।

(ग) धार्मिक परिवेश भेद- धार्मिक परंपराओं के भेद से शब्दों के अर्थो में अंतर हो जाता हैं प्राचीन परंपरा के अनुसार 'दो वेद जानने वाला 'द्विवेदी', तीन वेद जानने वाला 'त्रिवेदी, और चार वेद जानने वाला 'चतुर्वेदी' कहलाता था, परन्तु ये शब्द अब ब्राह्मणों की जाति विशेष के वाचक रह गये हैं । 'यजमान' यज्ञ करने वाले के लिये प्रयुक्त होता था । यजमान यज्ञ कराने वाले को कुछ देता था, अत: आज जो भी ब्राह्मण या नाई-धोबी को नियमित रूप से देता है, यजमान कहलाता है ।

(घ) भौतिक परिवेश भेद-भौतिक परिवेश में अन्तर आने पर भी शब्दों के अर्थ परिवर्तन हो जाते हैं । कभी-कभी तो किसी अर्थ विशेष का वाचक पुराना शब्द लुप्त भी हो जाता है । पानी पीने के पात्र के रूप में आज 'ग्लास' का प्रयोग होता है, जो इस तथ्य का सूचक है कि वह शुरू में काँच से बनता रहा होगा । धीरे-धीरे सभी धातुओं में बने इस तरह के पात्र को ग्लास कहा जाने लगा । ग्लास जैसे पात्र के लिये पहले क्या शब्द था, इसका पता लगाना ही मुश्किल हो गया । 'पेन' शब्द का भी ऐसा ही इतिहास है । पक्षी के पंख को पेन कहते हैं । पहले कलम पक्षी के पंख से बनती थी, अत: उसे 'पेन' कहा गया । अब पेन, फाउन्टेन पेन, डॉट पेन, आदि किसी भी धातु से बने हो सकते हैं ।

(3) सामाजिक शिष्टाचार तथा विनय प्रदर्शन - भाषा संस्कृति की संवाहिका हैं । शिष्टाचार तथा नम्रतावर्ष शब्दों का प्रयोग ऐसे अर्थ में कर दिया जाता है जो उस शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं होता । राजा-महाराजा का आदर देने के लिए पृथ्वीनरेश, प्रजावत्सल आदि शब्दों से संज्ञोधित किया जाता है । यह न कहकर कि 'मेरे यहां आइए, यह कहना कि 'मेरी कुटिया को पवित्र कीजिए', या किसी विशेष मित्र के आ जाने पर यह कहना 'आज कैसे इतनी कृपा हो गई' या 'इधर' कैसे रास्ता भूल पडे' आदि विनम्रता प्रदर्शन हेतु सामान्य अर्थ से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त उक्तियाँ हैं ।

(4) सुश्रव्यता- इसे श्रवण सुखदता भी कहते हैं । अशुभ, अमंगलसूचक, घृणित और व्रीड़ाजनक शब्द सुनने में अप्रिय होते हैं । अत: उन अर्थो के लिये शुभ एवं सुन्दर शब्दों का प्रयोग सभ्यता तथा शिष्टता का सूचक माना जाता है । जैसे मृत्यु के लिए पंचत्व, देहावसान, स्वर्गवास आदि, 'लाश के लिए शव, मिट्टी आदि, वैधव्य के लिए चूड़ी फूटना, सिहर धुलना आदि । अंधे को सूरदास, प्रज्ञाचक्षु कहना भी अशुभ परिहार है ।!'

(5) विपरीत लक्षणा या व्यंग्य - किसी के ऊपर व्यंग्य करने के लिए कभी-कभी शब्दों को उनके प्रचलित संकेत से विपरीत अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है । जैसे कुरूप को कामदेव, मूर्ख को वृहस्पति, झूठे को युधिष्ठिर, कृपण को कर्ण, डरपोक को सिंह

आदि । 'आँख का अंधा नाम नयनसुख', 'नाच न जाने आंगन टेढा' आदि मुहावरे भी व्यंग्यमूलक हैं ।

(6) भावात्मक बल - किसी शब्द के प्रचलित अर्थ को खूब बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त करने की भावना से कभी-कभी उसके साथ विचित्र तरह का विशेषण जोड़ दिया जाता है । जैसे कपड़ों में 'भयंकर छूट', भीषण सुन्दरता, प्रचंड मूर्ख आदि । आश्चर्य की स्थिति में हे राम, अरे राम, राम-राम का उच्चारण भगवान के नाम स्मरण के लिए नहीं होता, धिककार का विस्मय सूचक होता है ।

(7) सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग - कभी-कभी सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग प्रचलित हो जाता है । किसी विशिष्ट अर्थ को बताने वाला शब्द सामान्य रूप से उस वर्ग का बोध कराता है जैसे सब्ज का अर्थ है हरा और सब्जी का अर्थ है हरी तरकारी । पर अब सभी प्रकार की तरकारी को सब्जी कहा जाता है, चाहे वह हरी हो या सूखी । स्याही शब्द काले का बोधक है, परन्तु अब सभी प्रकार की स्याही के लिए इसका प्रयोग होता है-नीली स्याही, हरी स्याही, लाल स्याही, काली स्याही । कुछ जातिवाचक शब्द एक ही लिंग में प्रयुक्त होते हैं और पुलिंग-स्त्रीलिंग दोनों का बोध कराते है । जैसे तोता, कौआ, कोकिल, बारहसिंगा, चीता, गीदड़, आदि में पुलिंग का प्रयोग दोनों लिंगों के लिए होता है ।

(8) भ्रांतिमूलक अवधारणा - भाषा का ज्ञान समाज में अनुकरण के द्वारा होता है । अज्ञान का भ्रांत धारणा के कारण बहुत से शब्दों का अशुद्ध प्रयोग होने लगता हैं जैसे लेबर का अर्थ है परिश्रम, लेबर का अर्थ है मजदूर । किंतु ध्वनि संकोचन के कारण लेबर का अर्थ मजदूर हो गया । इसी तरह फिजूल के अर्थ में 'बेफिजूल', खालिस के अर्थ में निखलिस आदि शब्दों का प्रयोग होता है, जबकि इनका अर्थ वे, नि, आदि निषेधवाची उपसर्गों के प्रयोग से विपरीत हो जाता है ।

(9) अर्थपरक अनिश्चितता - भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनका अर्थ पूर्णतया स्पष्ट और निश्चित नहीं होता । इस कोटि में मुख्य रूप से अमूर्त भावों के बोधक शब्द हैं । अनुकंपा, दया, कृपा आदि शब्दों का अर्थ भेद इतना सूक्ष्म है कि बिना विशेष ज्ञान के इनका अंतर समझना कठिन है । सामान्य भाषा प्रयोक्ता इन्हें एक दूसरे के स्थान पर प्राय: प्रयुक्त करता है । अभ्युदय-उन्नति, पावन-पवित्र, विकास-प्रगति इसी तरह के शब्द युग्म है ।

(10) अवधारणात्मक अन्तर - भाषा व्यवहार की एक सांस्कृतिक सीमा भी होती है । व्यक्ति विशेष की सांस्कृतिकता तथा वैयक्तिक क्षमता भी अर्थ ग्रहण को प्रभावित करती है । सांस्कृतिकता तथा वैयक्तिक क्षमता के भेद के कारण अर्थ भेद पैदा होता हैं धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य आदि ऐसे ही शब्द हैं जिनका अलग-अलग संस्कृतियों तथा संप्रदायों में अवधारणात्मक अर्थ भेद मिलता है ।

(11) साहचर्यजनित गौण अर्थ की प्रमुखता - किसी वस्तु विशेष का उत्पादन या अन्य सम्बन्धों के आधार पर नामकरण करके नये अर्थ को निहित कर दिया जाता है

। सिन्धु में पैदा होने वाले नमक को सैन्धव इसी आधार पर कहा गया । शक्कर की किस्म विशेष 'चीनी' का नामकरण चीन से इसकी सम्बद्धता के कारण है । इसी प्रकार लंका से आयातित होने के कारण बंगला मिर्च को लंका कहा जाता है।

(12) शब्दों के विविध रूपों में नये अर्थ का समावेश - भाषाओं के विकास के कारण एक शब्द के अनेक रूप प्रचलित हो जाते हैं । तत्सम शब्द प्राय: प्राचीन मूल अर्थ को बताता है । तद्भव शब्द उससे संबद्ध निकृष्ट अर्थ या अन्य अर्थ को बताता हैं जैसे- गर्भिणी(स्त्री के लिए), गाभिन(गाय भैंस के लिए), स्तन-थन, साधु-साहू श्रेष्ठ-सेठ, खाद्य-खाद(उर्वरक), वार्ता-बात आदि ।

(13) **व्याकरणिक कारण -** व्याकरण के कारण भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है । हार' शब्द में उप, वि, आ, सं आदि उपसर्गों के संयोजन से अर्थ बदला जाता है । जैसे उपहार, विहार, आहार, संहार । इसी प्रकार कार शब्द में उपसर्गों के जुडने से नये अर्थवान शब्द बनते हैं- आकार, विकार संस्कार । प्रयत्यों के युक्त होने से भी अर्थ परिवर्तन होता है । जैसे कल-कली, मीठा-मिठाई समास के द्वारा भी: अर्थभेद लाया जाता है । जैसे पतिगृह (ससुराल), गृहपति(गृहस्वामी), कविराज(वैद्य), राजा का कवि) आदि ।

12.9 विचार संदर्भ शब्दावली

1.	अवधारणा	-	समझ, अंग्रेजी में concept के अर्थ में
2.	अर्थ संकोच	-	जब शब्द का सामान्य अर्थ विशिष्टता की और प्रवृत्त होता है, विशेषीकरण के कारण शब्द के अर्थ की व्यापकता क्रमश: संकुचित हो जाती है यथा जलज का अर्थ संकोच द्वारा 'कमल' का अर्थ देना ।
3.	अर्थादेश	-	एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना । प्रचलित प्रसंग से हट कर नए प्रसंग के अर्थ का ढलना
4.	वज्रवटुक	-	ब्रहमचारी
5.	अर्थापकर्ष	-	अच्छे कार्य में प्रयुक्त होने वाले शब्द का कुछ कारणों से बुरे अर्थ में प्रयोग अर्थगत अवनति
6.	अक्षुण्ण	-	शाश्वत, अमर
7.	अभीप्सित	-	इच्छित
8.	प्रतीति	-	विश्वास
9.	आप्तवाक्य	-	महान विद्वान, ऋषियों आदि का प्रभावर्षाली कथन
10.	निदर्शन	-	किसी वस्तु को दिखाकर शब्द विशेषका अर्थ बोध कराने की पद्धति
11.	रूपांतरण	-	रूप परिवर्तन
12.	सान्निध्य	-	साहचर्य, साथ रहने की प्रक्रिया

13. प्रकरण - प्रसंग

14. अन्तर्रिन्द्रिय - मन, चेतना

15. अनिर्वचनीय, - जिसे वाणी द्‌वारा प्रकट न किया जा सके

12.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने भाषा में अर्थ संरचना जिसे सामान्यत: अर्थ-विज्ञान की संज्ञा दी जाती है, में अर्थ के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया और समझा कि किस प्रकार अर्थ के महत्व को प्राचीन तथा आधुनिक सभी विद्‌वानों ने एकमत से स्वीकार किया । ध्वनि, पद और वाक्य को हम यदि भाषा का शरीर माने तो निःसंदेह अर्थ उसकी आत्मा है । निरूक्त में यास्क ने कहा है 'जिस तरह ईधन कितना ही सूखा क्यों न हो वह अग्नि के बिना प्रकाश नहीं दे सकता, उसी प्रकार अर्थज्ञान के बिना यदि शब्दों का उच्चारण किया जाए तो वह अभीप्सित प्रयोजन सिद्ध नहीं करते । "

इस इकाई में अर्थ संरचना के अन्तर्गत अर्थ की अवधारणा को स्पष्ट किया गया । आप समझ गये होंगे कि किसी भी भाषिक इकाई, वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि को किसी भी इन्द्रिय(मुख्यत कान, आख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है वही अर्थ है । इस प्रकार अर्थ का ज्ञान प्रत्यय या प्रतीति के रूप से होता है और प्रत्यय या प्रतीति अनुभव से होती हैं । अनुभव आत्म एवं पर होते हैं शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंध को समझते हुए आपने देखा कि निरूक्त के अर्थ बोध के भारतीय साधनों में व्यवहार, उपमान, प्रकरण, विवरण एवं अनुवाद से आप परिचित हुए । इसी संदर्भ में अर्थ परिवर्तन एवं उसके दिशा बोध का ज्ञान प्राप्त किया । अर्थ संरचना में अर्थादेश का विशेष महत्व है जिसमें एक अर्थ के स्थान पर दूसरा प्रतिष्ठित हो जाता है । इसके विविध दृष्टांतों के माध्यम से समझ गये होंगे कि किन परिस्थितियों में अर्थ संकोच परिलक्षित होता है । अर्थ परिवर्तन के कारण पढ़ते हुए आपने इन परिवर्तनों के पीछे कार्यरत भाषाशास्त्रीय सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को भी समझा होगा ओर व्यावहारिक स्तर पर एक समझ बना पाए होंगे ।

12.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न-

1. अर्थ विज्ञान क्या है? भाषा विज्ञान में इसके महत्व पर विचार कीजिये ।
2. अर्थ की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए शब्द और अर्थ के सम्बन्ध पर विचार कीजिये ।
3. अर्थ बोध के साधनों का परिचय दीजिये ।
4. अर्थ-परिवर्तन के अध्ययन की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये ।
5. अर्थ-परिवर्तन की दिशाओं का वर्णन कीजिये ।
6. अर्थ विस्तार एवं अर्थ संकोच में क्या अंतर है? उदाहरण सहित उल्लेख कीजिये ।
7. अर्थ परिवर्तन के कारणों का विवेचन कीजिये ।

ख. लघुत्तरीय प्रश्न-

1. अर्थ विज्ञान के अध्ययन का क्या उद्देश्य है?
2. अर्थ की अवधारणा कुछ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिये ।
3. अनुभव कितने प्रकार के होते हैं?
4. अर्थ बोध के प्रकरण साधन पर टिप्पणी लिखें ।
5. पाश्चात्य विद्वानों ने अर्थ बोध के कौन-कौन से साधन माने हैं ।

ग. सही'गलत कथन चिह्नित करें-

1. भाषा में अर्थगत परिवर्तनों का कारण विद्वानों के व्याख्यान हैं सही/गलत
2. किसी शब्द से किसी अर्थ का संबंध स्थापित करना संकेत ग्रह है । सही/गलत
3. उपमान का अर्थ है असमता । सही/गलत
4. कुछ शब्दों का अर्थ पूर्व ज्ञात प्रसिद्ध शब्दों के सान्निध्य से खुलता है । सही/गलत
5. नाम और भाव के मौलिक संबंध में ज्यों ज्यों अंतर बढ़ता है, अर्थ में परिवर्तन आ जाता है । सही/गलत

घ. रिक्तांस्थान पूर्ण कीजिये-

1. शब्द के रूपगत परिवर्तनों का आधार
2. .... है ।
3. कुश लाने में चतुर व्यक्ति के लिए .... शब्द का प्रयोग होता था ।
4. जब शब्द का सामान्य अर्थ विशिष्टता की ओर प्रवृत्त होता है तब उसे ....कहते हैं ।
5. .... का अर्थ है, एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना ।
6. अर्थादेश को .... भी कहते हैं ।

12.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. बाबूराम सक्सेना; अर्थ विज्ञान, पटना विश्वविद्यालय, पटना
2. डॉ भोलानाथ तिवारी; शब्दों का जीवन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी; आधुनिक भाषा विज्ञान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. डॉ. कपिल देव द्विवेदी; अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
5. डॉ. कपिल देव द्विवेदी; भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

6. प्रो. रामकिशोर शर्मा; आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धांत, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद

इकाई-13 लिपि का उद्भव एवं विकास और नागरी लिपि

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 लिपि का इतिहास, लिपि का विकास

13.3 लिपि के विकास के चरण

13.3.1 चित्र लिपि

13.3.2 सूत्र लिपि

13.3.3 प्रतीकात्मक लिपि

13.3.4 भाव लिपि

13.3.5 भाव-ध्वनिमूलक लिपि

13.3.6 ध्वनि लिपि

13.3.6.1 अक्षरात्मक लिपि

13.3.6.2 वर्णात्मक लिपि

13.4 भाषा और लिपि का पारस्परिक संबंध

13.5 लिपि विज्ञान का उद्भव और विकास

13.6 देवनागरी लिपि: उद्भव और विकास

13.6.1 सिन्धु घाटी की लिपि

13.6.2 ब्राह्मी लिपि

13.6.3 खरोष्ठी लिपि

13.6.4 देवनागरी लिपि का विकास

13.6.5 देवनागरी लिपि का स्वरूप

13.7 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

13.7.1 देवनागरी लिपि के गुण

13.7.2 देवनागरी लिपि के दोष

13.8 देवनागरी' लिपि में सुधार

13.9 मानक देवनागरी लिपि

13.10 मानक हिन्दी वर्तनी

13.11 देवनागरी लिपि और ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन

13.12 विचार संदर्भ/शब्दावली

13.13 सारांश '

13.14 अभ्यासार्थ, प्रश्न

13.15 संदर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप:-

- भाषा के एक अपरिहार्य अंग लिपि से परिचित हो पाऐंगे और लिपि तथा भाषा के संबंध को रेखांकित कर पाऐंगे । लिपि और भाषा का संबंध यह है कि भाषा अपने मूल रूप में ध्वनियों पर आधारित है, लिपि में उन ध्वनियों(या कुछ भाषाओं में शब्दों) को रेखाओं द्वारा व्यक्त करते हैं अर्थात् दोनो के माध्यम का अंतर समझ सकेंगे ।
- लिपि के इतिहास और उसके विकास के विविध चरणों से अवगत हो सकेंगे ।
- विश्व की कुछ चर्चित लिपियों का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- देवनागरी लिपि के उद्भव और विकास को समझ सकेंगे ।
- देवनागरी लिपि की विशेषताएं-उसके गुण दोष एवं उसमें सुधार के सोपानों को जान सकेंगे ।
- मानक देवनागरी लिपि एवं मानक हिन्दी वर्तनी के सिद्धांतों को समझ कर वर्तनी की गलतियों से अपनी भाषा को बचा पाएंगे ।
- लिपि के संदर्भ में ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की उपादेयता से परिचित हो सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

आदिम मनुष्य ने लिखावट अथवा लिपि की प्रेरणा अपने चारों ओर नैसर्गिक परिवेश से प्राप्त की होगी । आकाश में समय-समय पर उगते-डूबते चांद-सूरज और रात भर टिमटिमाते नक्षत्रों से उसने मूक संदेश प्राप्त किया होगा । उसके मन में इच्छा जागी होगी कि वह भी अपने मन में उठते गिरते भावों को किसी संकेत द्वारा अभिव्यक्त करे । संभवत: चित्रांकन के पीछे यही चाह बलवती रही होगी । इस तथ्य के कुछ प्रमाण भी प्राप्त हो जाते हैं ।

पेरू प्रदेश में कुइपुँ (QUIPU) नाम की डोरियों का जिक्र मिलता है जिनमें रंग-बिरंगे धागों की गांठे तथा गांठों को बाँधने के तरीकों से विविध भावों का बोधन कराया जाता था । उत्तरी अमरीका में चमडे में मोती-मूँगे आदि को पिरोकर भावों को सुरक्षित रखने की परंपरा मिलती है, जिसे वैम्पम (WAMPAUM) कहते हैं । भारत की विभिन्न भाषाओं में किसी बात को स्मरण रखने के लिए गांठ बांध लेना अर्थ का मुहावरा मिलता हैं चित्रों द्वारा अर्थाभिव्यक्ति की परंपरा अत्यंत प्राचीन. है । कई देशों में धटनावलियो को चित्रों के माध्यम से स्थायी बनाने के उदाहरण मिलते है ।

लिपि का आविष्कार मनुष्य की मेधा की सर्वोत्तम उपलब्धियों में से एक है । लिपि के माध्यम से ही संसार के श्रेष्ठ साहित्यकारों की कालजयी रचनाओं को पढ़ उनका रसास्वादन कर सकते हैं । लिपि के, माध्यम से अपना संदेश दूर दूरांतर के देशों तक संप्रेषित कर सकते हैं । यद्यपि उच्चारित भाषा ही अभिव्यक्ति का सहज तम माध्यम है, परन्तु उसकी सीमा है । वह जहां और जब बोली जाती है केवल वहां और उसी समय सुनी जा सकती है । ध्वनि-मुद्रण ओर दूर संचार माध्यम के अत्याधुनिक उपकरणों ने इस सीमा को तोडा जरूर है किंतु सबकी अपनी सीमाएं हैं । एक ओर तो ये सर्व सुलभ नहीं, दूसरी ओर व्यय साध्य और श्रम साध्य हैं । ऐसी

स्थिति में भाषा' को सहजता से संप्रेषित और सुरक्षित रखने में लिपि ही सबसे उत्तम साधन है । अध्ययन-अध्यापन से लेकर सरकारी' कामकाज, निजी पत्राचार, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन तक में सर्वत्र लिपि आधुनिक जीवन से जुड़ी है ।

13.2 लिपि का इतिहास, लिपि का विकास

लिपि की उत्पत्ति को लेकर विविध मत लिते हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं ' 'भाषा की उत्पत्ति की भांति ही लिपि की उत्पत्ति के विषय में भी पुराने लोगों का विचार था कि ईश्वर या किसी देवता द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ । भारतीय पंडित ब्राहमी लिपि को ब्रहमा के द्वारा बनाया हुआ मानते हैं और इसके लिये उनके पास सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि लिपि का नाम ब्राहमी है । इसी प्रकार मिली लोग अपनी लिपिकर्त्ता थॉथ (THOTH) या आइसिस (ISIS) को, बेबिलोनिया के लोग नेबो (NEBO) को पुराने लोग जो मोजेज (MOSIS) को तथा यूनानी लोग हर्मेस (Hermes) या पैलमीडस, प्रोमेथ्यूस, आफ्र्यूस तथा निलोज आदि अन्य पैराणिक व्यक्तियों को मानते हैं, पर भाषा की भाँति ही लिपि के संबंध में भी इस प्रकार के मत अंधविश्वास मात्र हैं । तथ्य यह है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार लिपि को स्वयं जन्म दिया । आरम्भ में मनुष्य ने इस दिशा में जो कुछ भी किया, वह इस दृष्टि से नहीं किया गया था कि उससे लिपि विकसित हो, बल्कि जादू-टोने के लिए कुछ रेखाएं खींची गई या धार्मिक दृष्टि से किसी देवता का प्रतीक या चित्र बनाया गया या पहचान के लिए अपने अपने घड़े या अन्य चीजों पर कुछ चिन्ह बनाये गये, ताकि बहुतों की ये चीजें जब एक स्थान पर रखी जाएं तो लोग सरलता से अपनी चीजें पहचान सकें या सुन्दरता के लिए कंदराओं की दीवारों पर आसपास के जीव-जन्तुओं या वनस्पतियों को देखकर उनके टेढ़े-मेढ़े चित्र बनाये गये या स्मरण के लिए किसी रस्सी या पेड़ की छाल आदि में गांठे लगाई गई और बाद में इन्हीं साधनों का प्रयोग अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए किया गया और वह धीरे-धीरे विकसित होकर लिपि बन गई ।

13.3 लिपि के विकास के चरण

लिपि का विकास धीरे-धीरे कई चरणों में हुआ । नीचे लिपि के विकास के चरण दिये जा रहे हैं जिन्हें पढ़कर आप लिपि के विकास की एक समझ बना सकेंगे-

13.3.1 चित्र लिपि

लिखने की कला का आरंभ चित्रलिपि से ही हुआ है, इसके द्वारा किसी वस्तु का बोध करने के लिए उसका चित्र बनाया जाता था । किसी आख्यान या कहानी को भी अनेक चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया जाता था । इन चित्रों को देखकर ही लोग इस आख्यान अथवा कहानी को समझ जाते थे । वे प्रारंभिक चित्र केवल लेखन के इतिहास की पहली सीढ़ी के प्रतीक नहीं है बल्कि इन चित्रों से चित्रकला और लेखन-कला दोनों का आरंभ होता है । इस प्रकार के पुराने चित्र दक्षिण फ्रांस, स्पेन, मैसोपोटामिया, पुर्तगाल, इटली, यूनान, साइबेरिया, सीरिया, मिस. ब्रिटेन, ब्राजील, कैलिफोर्निया तथा आस्ट्रेलिया आदि कई देशों में मिले हैं । ये चित्र गुफाओं की

दीवार, पत्थर, जानवर की खान, मिट्टी के बर्तन, पेड़ों की छाल, हाथी-दाँत, काठ, हड्डी आदि पर बनाए जाते थे ।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार ' 'प्राचीन काल में चित्रलिपि बहुत ही व्यापक रही होगी, क्योंकि इसके आधार पर किसी भी वस्तु का चित्र बनाकर उसे व्यक्त कर सकते होंगे । इसे एक अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय लिपि भी माना जा सकता है क्योंकि किसी भी वस्तु या जीव का चित्र सर्वत्र प्राय: एकसा ही रहेगा और उसे देखकर विश्व का कोई भी व्यक्ति जो उस वस्तु या जीव से परिचित होगा, उसे पढ लेगा । पर यह तभी संभव रहा होगा जब तक चित्र मूल रूप में रहे हों ।

चित्र लिपि की कई सीमाएं थी-

1. व्यक्तिवाचक संज्ञाओं जैसे सीता, कमला, राधा, आदि को चित्रों के माध्यम से दर्शाना संभव नहीं है ।
2. स्थूल चीजों के अलावा अर्थात् भावों और विचारों का चित्रांकन असंभव था ।
3. चित्रों को बनाने में समय लगता था । जल्दी में चित्र बनाकर कोई भी अभिव्यक्ति मुश्किल थी ।
4. काल, समय आदि के भावों को प्रकट करने के साधन इस लिपि में नहीं के बराबर थे । चित्र लिपि विकसित होते-होते प्रतीकात्मक बन गई ।

13.3.2 सूत्रलिपि

सुदूर इतिहास में सूत्रलिपि के भी उदाहरण मिलते हैं । इसमें सूत्रों में गांठ देकर भावों को अभिव्यक्त किया जाता था । विभिन्न लंबाइयों, रंगों और चौड़ाई की रस्सी या जानवरों की खाल लेकर उनमें गांठ या मोती. मनके, घोंघे, मूँगे आदि बांधकर सूत्रलिपि का विकास किया गया । चीन तथा तिब्बत में प्राचीन काल में सूत्रलिपि के व्यवहार के प्रमाण मिलते हैं ।

13.3.3 प्रतीकात्मक लिपि

विभिन्न देशों में अति प्राचीन काल से प्रतीकों द्वारा संदेश भेजने की रीति का प्रचलन रहा । तिब्बती-चीनी सीमा पर जब किसी के पास मुर्गी का कलेजा, उसकी चर्बी के तीन टुकड़े एवं एक मिर्च लाल कागज में लपेटकर भेजे जाते हैं तो उसका अर्थ होता है कि युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि महाराज शिवाजी को उनके गुरू समर्थ रामदास ने आशीर्वाद के रूप में उनके पास घोड़े की लीद और कतिपय पत्थर के टुकड़े भेजे थे जिनका तात्पर्य है कि तुम्हारे घोड़े और दुर्ग सुरक्षित रहें, जिससे तुम युद्ध में निरंतर विजय प्राप्त करते रहो ।

13.3.4 भाव लिपि

धीरे-धीरे मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए स्थूल वस्तुओं के चित्रों को माध्यम अपनाया गया । जैसे गर्मी की अभिव्यक्ति के लिए सूरज, दुख के लिए आँसू आदि । वस्तुत: भाव लिपि चित्र लिपि की ही विकसित अवस्था है ।

यद्यपि भाव लिपि चित्र लिपि तथा सूत्र लिपि से अधिक उन्नत थी परन्तु मानव के असंख्य भावों के लिए असंख्य चित्रों को बनाना एवं स्मरण रखना कठिन कार्य सिद्ध हुआ । अत: उन्नति के सोपान पर चढ़ते हुए मानव ने भाव-ध्वनिमूलक लिपि और फिर ध्वनिमूलक लिपि का विकास किया ।

13.3.5 भाव-ध्वनिमूलक लिपि

मैसोपोटामियन, हित्ती तथा मिस्री लिपि कुछ सीमा तक भाव ध्वनिमूलक लिपि है क्योंकि ये लिपियां कुछ बातों में भावमूलक हैं और कुछ बातों में ध्वनिमूलक हैं । अर्थात् इन लिपियों के कुछ चिन्ह चित्रात्मक और भावमूलक होते हैं और कुछ ध्वनिमूलक और दोनों ही का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है ।

13.3.6 ध्वनि लिपि

ध्वनि लिपि के संकेत भाषा ध्वनियों को प्रकट करते हैं । यदि हम 'किताब' लिखना चाहते हैं तो निर्धारित संकेतों 'कि + ता + ब' को चित्रित करते हैं । चित्रलिपि और ध्वनिलिपि के भेद को ट्रैफिक सिग्नल की भाषा के उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है । सड़क के किनारे लगी तख्ती पर बस्ता लेकर दौड़ते हुए बच्चे का चित्र बना होता है और उसके नीचे School ahead (आगे स्कूल है) लिखा रहता है । बच्चे के चित्र के माध्यम से यह चित्रलिपि का उदाहरण है वहीं School ahead त का अंग्रेजी में अर्थ होता है 'आगे स्कूल है' और यह ध्वनि लिपि का उदाहरण है । ध्वनिमूलक लिपि के दो भेद हैं:-

1. अक्षरात्मक लिपि
2. वर्णात्मक लिपि

13.3.6.1 अक्षरात्मक लिपि

अक्षरों को व्यक्त करने वाले चिन्ह अक्षरात्मक लिपि के आधार हैं । अक्षर वह इकाई है जिसमें कोई स्वर अकेला या आश्रित व्यंजन के साथ उच्चारित होता है । देवनागरी आक्षरिक लिपि है । इसकी वर्णमाला में स्वर और व्यंजन दो प्रकार के अक्षर हैं ।

13.3.6.2 वर्णात्मक लिपि

वर्णात्मक लिपि के ध्वनि संकेत वर्णों को व्यक्त करने में सक्षम है । वर्णात्मक लिपि में स्वर और व्यंजन के लिए स्वतंत्र लिपि संकेत होते हैं । अंग्रेजी की रोमन लिपि वर्णात्मक लिपि का उदाहरण है । आक्षरिक लिपि की तुलना में वर्णात्मक लिपि अधिक वैज्ञानिक एवं सुविधाजनक है ।

इस प्रकार लिपि के विकास क्रम में जहां चित्र लिपि प्रथम सीढ़ी है वहीं ध्वनि लिपि वर्तमान समय में अंतिम सीढ़ी है । संसार की लिपियों को प्रमुखत: दो वर्गो में बांटा जा सकता है जिनमें प्रथम वर्ग में वे लिपियों आती है जिनमें अक्षर या वर्ण नहीं होते हैं एवं दूसरे वर्ग में वे लिपियां आती हैं जिनमें अक्षर या वर्ण होते है । प्रथम वर्ग की प्रधान लिपियाँ निम्नलिखित हैं:

1. क्यूनीफार्म	2. हीरोग्लाफिक	3. क्रीट की लिपि(या लिपियाँ)
4. सिंधु घाटी की लिपि	5. हिट्टाइट लिपि	6. चीनी लिपि

7. प्राचीन मध्य अमरीका तथा मैक्सिको की लिपियाँ

दूसरे वर्ग की प्रधान लिपियाँ

1. दक्षिणी सामी लिपि	2. फोनेशियन लिपि	3. खरोष्ठी लिपि
4. हिब्रू लिपि	5. अरबी लिपि	6. आर्मेइक लिपि
7. ग्रीक लिपि	8. भारतीय लिपि	9. लैटिन लिपि

13.4 भाषा और लिपि का पारस्परिक संबंध

उपर्युक्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भाषा और लिपि अन्योन्याश्रित हैं । भाषा के बिना लिपि का कोई अस्तित्व नहीं है और लिपि के बिना भाषा का अस्तित्व भी खतरें में पड़ सकता है क्योंकि मनुष्य की स्मृति की एक सीमा होती है उदाहरणार्थ प्राचीन भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे प्राचीन साहित्य एवं ज्ञान राशि को लिपिबद्ध न कर केवल गुरू-शिष्य परंपरा के माध्यम से आगे बढ़ाने की प्रथा चलती थी परन्तु इस प्रथा के माध्यम से साहित्य और ज्ञान के विर्षाल भंडार को सुरक्षित रूप से हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है । अत: भाषा को लिपिबद्ध करना अनिवार्य है इस प्रकार लिपि मानव सभ्यता के इतिहास को जानने का माध्यम है । वर्तमान युग में मनुष्य के समस्त क्रियाकलाप भाषा और लिपि से जुड़े हुए हैं एवं लिपि के माध्यम से ही हम भविष्य में आने वाली पीढ़ी को अपना पारंपरिक अवदान दे सकते हैं ।

वर्तमान युग में मीडिया एवं तकनीक की जो अभूतपूर्व उन्नति हुई है उसके आधार पर इसकी नींव में भी भाषा एवं लिपि के गहरे संबंध को परिलक्षित किया जा सकता है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा एवं लिपि का संबंध अत्यंत गहन एवं महत्वपूर्ण है ।

13.5 लिपि विज्ञान का उद्भव और विकास

आधुनिक युग में भाषा विज्ञान के विकास में लिपि विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है । लिपि शास्त्र के अंतर्गत किसी भाषा के ध्वनि प्रतीकों के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति से उस भाषा के लिए एक सुव्यवस्थित लिपि का निर्माण किया जाता है । भाषा विज्ञान की इस शाखा को विकसित करने में अमरीकी विद्वानों का महत्वपूर्ण स्थान है । अमरीकी भाषा वैज्ञानिक कैनेथ एल. पाइक का लिपि शास्त्र के क्षेत्र में सराहनीय योगदान है । इस दिशा में उनकी पुस्तक फोनेमिक्स एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

सभी लिपियों को व्यावहारिक दृष्टि से एक वर्णमाला का चयन करना पड़ता है । लिपिशास्त्र की सहायता से किसी भाषा विशेष की अनेकानेक ध्वनियों में से कुछ निश्चित नियमों के आधार पर एक प्रतिनिधि ध्वनि समूह को छांट लेते हैं, और केवल इन्हीं ध्वनियों को अंकित करने के लिए लिपि चिन्हों का निर्माण करते हैं ।

जर्मनी के वैयाकरणों ने लिपिशास्त्र के संबंध में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत यह दिया है कि यह शास्त्र जीवित बोलियों को लिपिबद्ध करने की व्यवस्थित प्रणाली देने के साथ-साथ प्राचीन लिखित भाषाओं को लिपिबद्ध करने के लिए भी निश्चित सुझाव देता है ।

लिपिशास्त्र की प्रवृति गणित के समान है । लिपिशास्त्र का अध्येता गणित के अध्येता की तरह अभ्यास करता है ।

13.6 देवनागरी लिपि: उद्भव और विकास

देवनागरी लिपि के उद्भव के विषय में विचार करने के लिए हमें भारतीय लिपियों के विषय में जानना होगा । प्राचीन काल में, भारत में ब्राह्मी, खरोष्ठी, तथा सिंधु घाटी की लिपियाँ प्रचलित थी ।

13.6.1 सिन्धु घाटी की लिपि

हडप्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई में सिंधु घाटी की लिपि के नमूने मिले हैं । यह लिपि मोहरों (ठप्पों) पर खुदी हुई मिली है । यह लिपि कुछ अंशों में भावात्मक और कुछ अंशों में ध्वन्यात्मक है और इसमें निर्णायक चिन्ह भी हैं । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार ने सिंधु घाटी की लिपियों का अध्ययन करते हुए अपनी निर्देशिका तैयार की थी ।

13.6.2 ब्राह्मीलिपि

यह भारत की प्राचीनतम लिपि है । नेपाल के पिपरावा कोट और अजमेर जिले में बडली नामक स्थलों में इसके नमूने मिले हैं । विद्वानों ने इन शिलालेखों का समय 500 ई.पू से 350 ई.पू.माना है । चूंकि इन शिलालेखों में इस लिपि का काफी विकसित रूप दृष्टिगत होता है अत: इससे अनुमान लगाया जाता है कि इस लिपि की उत्पत्ति शताब्दियों पहले हुई होगी ।

ब्राह्मी लिपि के संबंध में विद्वानों के तर्क-वितर्क से यह प्रमाणित हो चुका है कि यह लिपि पूर्णत: भारतीय है । ब्राह्मी लिपि की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:-

क. क ब्राह्मी एक अक्षरात्मक लिपि है जिसमें स्वर स्वतंत्र लेकिन व्यंजन अ के संयोग के साथ लिखे जाते थे ।

ख. हस्व और दीर्घ स्वरों के लिये प्रयुक्त लिपि चिन्ह स्वतंत्र थे ।
इसमें मात्राओं की व्यवस्था थी । हस्व और दीर्घ स्वरों की भिन्न भिन्न मात्राएं थीं तथा अनुस्वार और विसर्ग के भी चिन्ह थे । निःसंदेह यह एक वैज्ञानिक लिपि थी ।

13.6.3 खरोष्ठी लिपि

यह भारत की दूसरी प्राचीन लिपि मानी जाती है । शहबाजगढ़ी और मानसेरा में इसके कुछ प्राचीन शिलालेख मिले हैं । विद्वानों के अनुसार इस लिपि का प्रचलन पश्चिमोत्तर भारत में रहा होगा । डॉ. भंडारकर के अनुसार इस लिपि का विकास अरमाइक लिपि से ज्ञात हुआ है

। हखमानी साम्राज्य की अरमाइक लिपि से खरोष्ठी लिपि के ग्यारह चिन्ह मिलते जुलते हैं । इस लिपि की ' निम्नलिखित विशेषताएँ है-

1. यह लिपि दाँए से बाएँ लिखी जाती थी ।
2. यह एक अक्षरात्मक लिपि थी, जिसमें 37 लिपि संकेत थे ।

हस्व और दीर्घ स्वरों में अंतर न होने एवं मात्राओं और संयुक्ताक्षर के अभाव में यह एक आधी-अधूरी अवैज्ञानिक लिपि मानी जाएगी ।

13.6.4 देवनागरी लिपि का विकास

विद्वानों के मतानुसार देवनागरी लिपि का विकास ब्राहमी लिपि से हुआ । ब्राहमी के विकास के तीन सोपान माने जाते हैं-

1. प्रागैतिहासिक काल (600 ई.पू से पूर्व) - वैदिक भाषा काल में ही ब्राहमी लिपि का विकास हो गया था । वेद, उपनिषद, ब्राहमण ग्रंथ, आरण्यक आदि साहित्य की व्यापकता इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि इस काल में आर्यों ने लिपि का विकास कर लिया था जिसके माध्यम से वे अपने साहित्य को सुरक्षित रखते थे परन्तु भोजपत्र और खाल आदि पर लिखे जाने के कारण यह साहित्य काल के गर्भ में समा गया तथा इस काल की लिपि का कोई नमूना नहीं मिलता है ।
2. बौद्धकाल (800 ई.पू से 350 ई.पू तक) - पिपरावा और बडली क्षेत्र से बौद्ध कालीन ब्राहमी लिपि के नमूने मिलते हैं । सम्राट दण्डी, दुर्ग राजा रूद्रदामन ओर खारवेल के लेख इस युग की लिपि के प्रमाण हैं ।
3. गुपाकाल(350 ई.पू से 600 ई.पू तक) - इस काल में ब्राहमी लिपि के दो भेद हो गये जिन्हें उत्तरी और दक्षिणी शैली के नाम से अभिहित किया जाता है । इस युग में गुप्त लिपि, सिद्धऋमात्रिका, कुटिल लिपि, अर्धनागरी नन्दिनागरी आदि लिपियाँ विकसित हुई ।

नागरी लिपि का क्षेत्र

यद्यपि यह मध्यदेश देश की लिपि है पर इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है । हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, मराठी और नेपाली भाषाएं भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं । दसवीं शताब्दी के आसपास इसके अक्षर सुगढ़ होने लगे थे ओर इसका वर्तमान रूप ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में बन गया ।

देवनागरी का नामकरण

नागरी या देवनागरी नामकरण के विषय में प्राय: भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि इस लिपि का मूल नाम नागरी था जो देववाणी संस्कृत के अनुकरण पर देवनागरी बन गया । ललित विस्तार में 64 लिपियों का जिक्र मिलता है जिनमें से एक नागलिपि है । नागरी इसी लिपि का एक और नाम है । कुछ विद्वानों के मतानुसार गुजरात के नागर ब्राहमणों की लिपि होने के कारण इसका नाम नागरी' पडा । कुछ विद्वानों ने इसे देवनागर (काशी) की लिपि होने के कारण देवनागरी माना । कुछ विद्वान पाटलिपुत्र से इसका संबंध जोड़ते हुए कहते हैं ।

चन्द्रगुप्त द्‌वितीय को देव संज्ञोधन दिया गया था । अत: देव नगर से तात्पर्य था पाटलिपुत्र और वहां की लिपि देवनागरी कहलाई ।

13.8.5 देवनागरी लिपि का स्वरूप

यह एक अक्षरात्मक लिपि है । देवनागरी में 14 स्वर और 33 व्यंजन है ।

स्वर - अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ, ऋ, ए, ऐ,ओ, औ, अं, अ: ।

इनके अतिरिक्त संस्कृत में प्रयुक्त 'तृ' 1 5वाँ स्वर है ।

व्यंजन - क्, ख,ग, घ, ड च, छ, ज, झ,ञ ट, ढ, ड, ठ, ण
त्, थ, द, ध, न्, प, फ, ब, भ म, य, र, ल, व, श ष, स, ह

उत्क्षिप्त ड़, ढ़ नीचे बिन्दु लगाकर लिखे जाते हैं ।

संयुक्त व्यंजन - वर्णमाला में क्ष, त्र, ज्ञ, का संयुक्त व्यंजन के रूप में समावेश किया गया है।

मात्राएँ - व्यंजनों और स्वरों के संयोग के लिए मात्राओं की व्यवस्था है । जिसका स्वरूप इस प्रकार है ।

स्वर : अ आ,इ, ई, उ ऊ, ऋ, ऋ, ए,ऐ,ओ, औ अं, अत:

मात्राएँ(क् के साथ)- क, का, कि, की, कु, कृ, $क_e$, के, कैं, को, की, कं, क: ।

13.7 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

देवनागरी लिपि के विकास का इतिहास पिछले हजार वर्षो में पड़ावों को पार कर आया है । इस दौरान भारत की भूमि पर कई विदेशी भाषा-भाषी आए जिनका यथेष्ट प्रभाव देवनागरी पर पड़ा । वर्तमान युग में मीडिया, तकनीक एवं वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप भी देवनागरी लिपि में कई परिवर्तन हुए ।

नागरी लिपि में मुक्त या अधोबिन्दु का प्रयोग फारसी लिपि का प्रभाव है । फारसी प्रधानत: बिन्दु प्रधान लिपि है । देवनागरी में भी फारसी के प्रभाव से कई वर्णों मं अब अनिवार्य रूप से अधोबिन्दु का प्रयोग किया जाता है जो गुजराती लिपि का प्रभाव माना जाता है । मराठी से कुछ वर्ण अब देवनागरी लिपि परिवार के सदस्य बन गए हैं ।

अंग्रेजी के भारत में व्यापक प्रचार से देवनागरी में 'ऑ अर्थात् अर्धचन्द्र का प्रयोग होने लगा । साथ ही अंग्रेजी भाषा से अधिकांश विराम चिन्ह अब देवनागरी में अपना लिये गये हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि समय समय पर नागरी में परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे हैं । आज जो नागरी लिपि विकसित हुई है उसके गुण-दोष निम्नलिखित हैं-

13.7.1 वनागरी लिपि के गुण

1. देवनागरी विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है । कुछ परिवर्तनों के सहारे इसे विश्वलिपि के रूप में अपनाया जा सकता है । विद्‌वानों के मतानुसार इसमें कुछ ऐसे गुण हैं जो विश्व की किसी भी लिपि में नहीं हैं । देवनागरी की वर्णमाला में पहले स्वर

आते हैं फिर व्यंजन । स्वरों में भी पहले समान स्वर और बाद में संयुक्त स्वर आते हैं अर्थात् उनमें भी एक आंतरिक क्रम है । समान स्वरों में भी पहले ह्स्व ओर बाद में दीर्घ का क्रम रहता है । व्यंजनों में पहले स्पर्श आते हैं, फिर अंतस्थ और इसके बाद उष्म । प्रत्येक वर्ग में अघोष अल्पप्राण, अघोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण, घोष महाप्राण और नासिक्य व्यंजनों का क्रम रहता है । अत: देवनागरी की वर्णमाला में अत्यंत वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रूप में वर्गो का क्रम आता है, जिसका अन्य किसी भाषा की वर्णमाला में प्राय: अभाव देखने को मिलता है ।

इसे यदि विस्तारपूर्वक समझाना हो तो यों कहे कि देवनागरी के व्यंजनों को उच्चारण स्थान के अनुरूप सजाया गया है । अर्थात् क वर्ग - कंठ ध्वनियाँ, च वर्ग - तालव्य, ट वर्ग - मूर्धन्य, त वर्ग-दंत्य, प वर्ग-ओष्ठ्य । प्रत्येक वर्ग की अंतिम ध्वनि नासिक्य ध्वनि हे जैसे ड. *, ण, न्, म् ।

प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा वर्ण महाप्राण और पहला, तीसरा और पाँचवा वर्ण अल्पप्राण ध्वनि हैं उसी प्रकार प्रत्येक वर्ग के पहले दो वर्ण अघोष और शेष तीन वर्ण घोष ध्वनियाँ है । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह क्रम देवनागरी लिपि में इतने व्यवस्थित रूप से देखने को मिलता है जो विश्व की किसी अन्य लिपि में दुर्लभ है ।

अल्पप्राण	- क्, ग, ड, च, अ, ज,ञ,ट, ड़,ण,त, द्, न्, प, ब, म्, य, र, बू, ड।
महाप्राण	- ख, घ, छ, झ ठ, ढ, थ, ध, न्ह, फ, म्ह, ल्ह, ढ ।
अघोष	- क्, ख, च, छ, ट, ठ, त्, थ, प, फ, स, श ।
घोष	- ग, घ, ड, ज,झ, * ड,ढ,ण,द,ध,ण,ब,भ,म,य,र,ल,व,ह,ड,ढ ।

रोमन लिपि की वर्णमाला में यह व्यवस्था एवं एकरूपता दृष्टिगत नहीं होती है । जैसे A स्वर है, B व्यंजन, C और D व्यंजनों के बाद फिर E स्वर । उर्दू के अलिफ, बे, पे, में भी यही अव्यवस्था है ।

2. देवनागरी में लिपि चिन्हों के नाम उसके उच्चारण के निकट है जेसे अ आ, इ ई, क ख, ग आदि । रोमन में छ का उच्चारण है पर नाम 'बी' है, 'S' का उच्चारण 'स' है पर नाम 'एस' है यही अवैज्ञानिकता उर्दू के अलिफ, वे, पे, ढाल आदि में भी मिलती है।

3. देवनागरी की एक विशेषता यह भी है कि इसमें एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिन्ह है, जैसे क के लिए क, ख, के लिए ख और ग के लिए ग आदि । इसके विपरीत रोमन में एक ध्वनि के लिए कई लिपि चिह्न प्रयुक्त किये जाते हैं जैसे 'क' के लिए K(King), C-Calcutta, और Q(Queen) तीन वर्ण हैं यहां तक कि Cheristry, Choose आदि शब्दों में 'क' ध्वनि के लिए Ch दो वर्णो का भी प्रयोग किया जाता है । अरबी लिपि(उर्दू) में भी ‘स' के लिए से, सीन, स्वाद, सोय आदि कई लिपि चिन्हों का प्रयोग होता

4. ठीक इसके उल्टे क्रम में देवनागरी लिपि में एक लिपि चिह्न एक ही ध्वनि के लिए प्रयुक्त होता है । अर्थात् 'क' के लिए क 'ख' के लिए ख, आदि इसके विपरीत रोमन लिपि में 'C' 'क' और 'स' के लिए, 'G' ग और ज, 'S' स और ज के लिये प्रयुक्त होते हैं । स्वरों में और भी अनियमितता है जैसे I के लिये आई और इ दो उच्चारण मिलते हैं उदाहरणार्थ Fine, Pin

5. देवनागरी में अक्षरों का स्वरूप हमेशा एक सा रहता है जबकि रोमन में (बड़ी) Capital (A,B,C) और Small (छोटी) (a,b,c) का भी अंतर है ।

13.7.2 देवनागरी लिपि के दोष

वर्षो पूर्व जब वैदिक और लौकिक संस्कृत के लिए ब्राह्मी लिपि का निर्माण हुआ, तब उस भाषा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह लिपि पूर्णतया समर्थ थी । परन्तु इतिहास का रथ आगे बढ़ता गया और विभिन्न भाषाओं के प्रभाव, परिवर्तन और परिवर्द्धन के फलस्वरूप जिस हिन्दी का जन्म हुआ एवं आज प्रयोग में लाई जा रही है, उसकी देवनागरी लिपि कुछ दिशाओं में पिछड़ी हुई है । इसका एक कारण विज्ञान संबंधी एवं तकनीकी विकास भी है । भारत में मुद्रण और मीडिया के विकास के अनुरूप देवनागरी लिपि में परिवर्तन नहीं किये गये, फलस्वरूप आज हमें देवनागरी लिपि में निम्नलिखित दोष दिखाई पड़ते हैं-

1. अक्षरों की द्‌वैधता - देवनागरी का प्रयोग भारत के कई सुदूर स्थित प्रांतों में होता है इसलिए कुछ अक्षरों को दो रूपों में लिखा जाता है जैसे त्र्प्र, ऋ, ऋ, झ, झ, ल, ल क्त, क्त आदि ।

2. संदिग्धता - कुछ वर्णों में इतना अधिक साम्य है कि वे दूसरे वर्ण की तरह प्रतीत होते हैं जैसे ख-ख, घ-ध, व-ब, म-भ, ड-ड, आदि ।

3. कई संयुक्ताक्षरों की बहुलता - देवनागरी में संयुक्ताक्षरों के लिए स्वतंत्र लिपि संकेत है जो मुद्रण की दृष्टि से असुविधाजनक प्रतीत होते हैं जैसे क्ष(क्षय), श्र(श्रम), ज्ञ(ज्ञान), त्र(त्रिशूल), द्य(विद्या), ह्म(ब्राह्मी) आदि ।

4. संयुक्ताक्षर ऊपर-नीचे लिखे जाते हैं जो मुद्रण में बाधा साबित होते हैं और अधिक स्थान लेते हैं जैसे ड्ड(अड्डा), द्द(गद्दा), द्व(द्‌वार), ट्ट(खट्टा) आदि ।

5. र के संयोग की तीन स्थितियाँ बनती हैं जो लिपि, को अधिक जटिल बना देती हैं । अर्थात् अगले व्यंजन के ऊपर (वर्ण), व्यंजन के नीचे(क्रम, प्रकार), ट वर्ण के नीचे (ट्राम, ड्रम) आदि ।

6. अनुस्वार ओर नासिक्य वर्णों का वैकल्पिक प्रयोग लेखन और मुद्रण में द्‌वैधता और असंमजस लाते हैं जैसे चंदन-चन्दन, खंडन-खण्डन, आलंबन-आलम्बन, घंटा-घण्टा आदि ।

7. मात्राएँ - देवनागरी अक्षरात्मक लिपि है । इसमें स्वर व्यंजन के संयोग के लिए मात्राओं का प्रयोग किया जाता है । ये मात्राएं ऊपर नीचे, बाएँ, दाएँ चारों तरफ लगाई जाती हैं जो मुद्रण में अधिक स्थान घेरती है

जैसे-. ऊपर-केशव, मौर्य

नीचे-गुरू, मृत, पूरा

बाँए-दाँए - बिना, मीना, किसान

इसके अलावा अनुस्वार, अनुनासिक और विसर्ग भी मात्रा की तरह प्रयुक्त होते हैं जैसे-

अनुस्वार - गंदा, कंठ

अनुनासिक - दाँत, आँख

विसर्ग - प्राय:, अत:

जब दो मात्राएँ एक ही स्थान पर एक ही वर्ण के साथ लगाई जाती है तब असुविधा और संदिग्धता और बढ़ जाती है । जैसे पोंछना, अशीर्वाद सर्दी आदि ।

वस्तुत: उपर्युक्त सारे दोषों का मूल कारण यांत्रिक उपकरणों के अनुरूप देवनागरी लिपि का तालमेल न बैठना प्रतीत होता है । परन्तु धीरे-धीरे कम्प्यूटर के लिए नवीन और अधिक प्रभावर्षाली सॉफ्टवेयर विकसित किये जा रहे हैं जिनमें देवनागरी लिपि की समस्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जा रहा है । इसके साथ ही देवनागरी लिपि के सुधार के लिए जो सुझाव दिये गये हैं उन्हें आत्मसात कर लेने से देवनागरी लिपि के सारे दोष दूर किये जा सकते हैं और उसे एक पूर्ण वैज्ञानिक लिपि का स्थान दिया जा सकता है ।

13.8 देवनागरी लिपि में सुधार

देवनागरी लिपि में सुधार का इतिहास मराठी पत्र, केसरी के माध्यम से लोकमान्य तिलक के नाम से जुड़ा है जिन्होंने केसरी में देवनागरी के टाइपों की छँटाई कर 190 टाइपों का एक फॉन्ट तैयार किया जिसे तिलक टाइप कहते हैं । महाराष्ट्र में रानाडे, सावरकर आदि, ने देवनागरी लिपि को सरल बनाने के लिए कई सुझाव दिये जिनमें 'अ' की बारहखडी तैयार करने की बात थी । इसके परिणामस्वरूप देवनागरी के स्वरों की संख्या कम हो गई और यह साक्षरता के प्रसार के लिए अच्छा प्रयास था । सार्वजनिक स्तर पर यह लिपि सुधार सन् 1935 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन से प्रारंभ हुआ । इस सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए गांधीजी ने एक समिति गठित की जिसने अपने सुझाव प्रस्तुत किये । इन्हीं सुझावों के आधार पर सम्मेलन ने 14 सूत्री संशोधनों का सुझाव 1941 में दिया जो इस प्रकार है-

1. अक्षरों में शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है, परन्तु मुद्रण में शिरोरेखा का प्रचलन चालू रहे ।
2. अनुस्वार और अनुनासिक के लिए क्रमश: ० और (.) का प्रयोग किया जाए । पंचम अक्षरों के हलन्त के साथ प्रयोग के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया जाए जैसे चञ्चलके स्थान पर चंचल ।
3. द्वैध अक्षरों में से अ झ, ण, ल और श को ही स्वीकार किया जाए ।

4. 'ख' को नीचे से मिलाकर लिखा जाए ।
5. रेफ को दोनों व्यंजनों के बीच में लगाया जाए जैसे धर्म, ध ' म, का ' य ।
6. क्ष, त्र, ज्ञ, में से क्ष को क्ष, त्र को त लिखा जाए । पर ज्ञ को यथापूर्व लिखा जाए ।
7. संयुक्ताक्षरों में क और क के संयोग को पूर्ववत रखा जाए जैसे क्या और शेष खड़ी पाई वाले व्यंजनों की पाई हटाकर दूसरे व्यंजन से जोड़ा जाए । जैसे ख्याति, प्यादा, त्याग आदि । बिना पाई वाले व्यंजनों के नीचे हलन्त चिन्ह लगाकर आगे के व्यंजनों से जोड़ने का सुझाव दिया गया । जैसे विद्वान, अड्डा, विद्या आदि ।
8. स्वरों की जगह अ की बारहखड़ी का प्रयोग किया जाए ।
9. इ की मात्रा को पूर्ववत रखा जाए ।

सन् 1947 में उत्तरप्रदेश सरकार ने एक समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देव थे ।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, मंगलदेव शास्त्री आदि सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिकों की इस समिति ने लगभग दो वर्षो के अध्ययन और आठ-नौ बैठकों के बाद जो सुझाव दिये उनका सारांश निम्नलिखित है-

1. ऊ की बारहखड़ी को स्वीकार न किया जाए ।
2. संयुक्ताक्षरों के लिए स्वतंत्र लिपि संकेतों की आवश्यकता नहीं है ।
3. स्पष्टता के लिए ध और भ को उपर घुंडी लगाकर लिखा जाए ।
4. मात्राएँ थोड़ी दूर पर लगाई जाएँ जैसे द' श ।
5. ह और र का परम्परागत रूप स्वीकार किया जाए ।
6. मराठी वर्ण ल को देवनागरी वर्णमाला में स्वीकार किया जाए ।
7. द्वैध वर्णों में अ, झ, ण ओर श को स्वीकार किया जाए ।
8. पंचम वर्गो के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग हो जिसका चिन्ह 0 हो ।
9. हस्व इ की मात्रा भी दाँयी ओर लगाई जाए और दीर्घ मात्रा से उसे भिन्न दिखाने के लिए पाई को तनिक छोटा रखा जाए ।

1953 में सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक अखिल भारतीय समिति का गठन किया गया जिसने लखनऊ में आयोजित सभा में कुछ संशोधनों के साथ नरेन्द्र देव समिति की सिफारिशों को स्वीकृत कर लिया पर हस्व इ की मात्रा दाँई ओर लगाए जाने के प्रस्ताव का व्यापक विरोध होने के कारण 1957 में उसे पूर्ववत कर दिया गया ।

13.9 मानक देवनागरी लिपि

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली ने देवनागरी वर्णमाला का निम्नलिखित मानक रूप स्वीकार किया है ।

स्वर - अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ औ ।

मात्राएँ (क पर आधारित) - क का, कि, की, कु, कू कृ, के, कै, को, कौ ।

अनुस्वार - कं

अनुनासिक - कँ

विसर्ग - कः

व्यंजन - क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व
श ष स ह

स्वीकृत संयुक्ताक्षर - क्ष, त्र, ज्ञ, श्र

हलन्त चिन्ह - क्

विदेशी भाषाओं से ग्रहण किये गये शब्दों के लिए 'ऑ (जैसे कॉलेज डॉक्टर) ओर ख, ज़, फ (फना, जरा) आदि को मान्यता दी गई ।

संयुक्त व्यंजनों को लिखने की चार शैलियों की मान्यता दी गई ।

1. खड़ी पाई वाले व्यंजन -.... .... न्याय, ग्यारह
2. बिना पाई वाले व्यंजन -......................... गड्ढा, मड्डा
3. क और फ का प्रयोग - वक्त, दफ्तर

4.	(क) भ्रम, प्रेम	
	(ख) कार्य, भार्या	
	(ग) क्रेता, ग्रहण	

इसी तरह के कई सुझावों को अपनाते हुए देवनागरी लिपि का मानक रूप स्थिर किया गया जिसका प्रयोग आज तक किया जा रहा है । इन सुझावों के साथ नागरी लिपि की एकरूपता, स्पष्टता और सरलता के गुणों को बनाए रखते हुए उसे और अधिक वैज्ञानिक बनाया गया ।

13.10 मानक हिन्दी वर्तनी

किसी भाषा की संरचना में उसकी लिपि और वर्तनी का गहरा संबंध होता है । भाषा की सुव्यवस्था के लिए एक मानक लिपि के समान एक मानक वर्तनी (standard Spelling) को होना अनिवार्य है । भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने हिन्दी की वर्तनी के मानकीकरण के संबंध में निम्नलिखित 14 नियम तय किये हैं ।

1. संयुक्त व्यंजन - संयुक्त व्यंजन के नियम मानक देवनागरी लिपि के अंतर्गत दिये गये है।
2. विभक्ति चिन्ह - हिन्दी में सभी विभक्ति चिन्ह संज्ञा से पृथक लिखे जाएँ जेसे राम ने, सचिव को आदि किन्तु सर्वनाम के मामले में यदि एक विभक्ति चिन्ह हो तो उसे सर्वनाम के साथ मिलाकर ओर यदि दो विभक्ति चिन्ह हो तो पहला मिलाकर और दूसरा पृथक लिखें ।

   उदाहरण - एक विभक्ति चिन्ह तुमने, मैने, दो विभक्ति चिन्ह-उसके लिए इसमें से
3. क्रियापद - संयुक्त क्रियापदों में सभी क्रियाएँ अलग-अलग लिखी जाएँ । उदाहरण - सही लिखा करता था, कर सकता था(लिखाकरताथा, करसकताथा - गलत है)
4. हाइफन - शब्दों में स्पष्टता के लिए हाइफन का विधान किया गया है ।

(क) द्वन्द समास के पदों के बीच हाइफन रखा जाए । उदाहरण माता-पिता

(ख) सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफन का प्रयोग उदाहरण तुम-सा

(ग) तत्पुरूष समास में सामान्यतया हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है केवल कुछ विशिष्ट प्रयोगों को छोडकर । उदाहरण - तत्पुरूष समास-प्रधानमंत्री, महासचिव आदि विशिष्ट प्रयोग उदाहरण- भू-तल

(घ) कठिन संधियों के स्थान पर हाइफन का प्रयोग किया जाए । उदाहरण द्वि-अर्थक

5. अव्यय-हिन्दी में कहाँ, जहाँ, चाहे, लेकिन जैसे कई अव्ययों का प्रयोग किया जाता है ।

(क) अव्यय सदा पृथक लिखे जाएँ । उदाहरण कहाँ जाओगे, पत्र के पीछे आदि ।

(ख) सम्मानार्थक 'श्री', 'जी' भी अलग लिखे जाएँ उदाहरण - श्री सिंह जी

(ग) समस्त पदों में प्रति, यथा आदि अव्यय पृथक् न लिखे जाएँ उदाहरण प्रतिदिन, यथासमय

6. श्रुतिमूलक -हिन्दी में 'य' और 'व' को श्रुतिमूलक माना गया है और इसके प्रयोग के संबंध में यह नियम है कि जहाँ 'य' और 'व' शब्द का ही मूल तत्व हों एवं मात्र श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न हों, वहाँ उनका उसी रूप में प्रयोग हो जैसे - स्थायी, वास्तव आदि ।

जबकि जहाँ श्रुतिमूलक 'य' और 'व' का प्रयोग विकल्प से हो वहाँ उनका प्रयोग न किया जाए जैसे किये, जाये, आवे, हुवा के स्थान पर किए, जाए, आए, हुआ का प्रयोग किया जाए ।

7. अनुस्वार तथा चंद्रबिन्दु - मानक हिन्दी में अनुस्वार और चंद्रबिन्दु दोनों ही चिन्ह प्रचलित रहेंगे । यदि पंचमाक्षर के बाद अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए अथवा वही पंचमाक्षर आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा । जैसे- सम्मति, उन्मुख आदि मान्य है । इसके स्थान पर संमति, उंमुख का प्रयोग न किया जाए । चंद्रबिन्दु ओर अनुस्वार के बिना अर्थ का भ्रम रहता है अत: इनका प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जाना चाहिए । उदाहरणार्थ 'हंस' और 'हँस' में अनुस्वार अन्तर से अर्थ में परिवर्तन लक्षित होता है ।

8. हल चिन्ह - संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी में संस्कृत रूप रखा जाना चाहिए पर जिन शब्दों के प्रयोग में हिन्दी हल् चिन्ह का लोप हो चुका है उन्हें फिर से लगाने का प्रयास नहीं करना चाहिए जैसे महान, विद्वान आदि ।

9. संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों को ज्यों का त्यों ग्रहण किया जाना चाहिए जैसे ब्रह्मा चिन्ह आदि को ब्रहमा चिह्न लिखना सर्वथा गलत माना जाएगा । जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति हो वहां यदि द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है तो उसे न लिखें, तो ऐसा प्रयोग मान्य हो सकता है । उदाहरण अर्द्ध या तत्व के स्थान पर अर्ध या तत्व मान्य है ।

10. विसर्ग- संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है यदि वे तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है और यदि वे तदभव रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का लोप किया जा सकता है । उदाहरण तत्सम प्रयोग - दु: खानुभूति तद्भव प्रयोग सुख-दुख

11. ऐ. औ का प्रयोग - 'ऐ' और 'औ' की मात्रा का प्रयोग उचित रूप में किया जाए जैसे गवैया, कौआ, गौर आदि के स्थान पर क्रमश: गव्वया, कव्वा, गऔर आदि का प्रयोग गलत है ।

12. विराम चिन्ह - पूर्ण विराम (।) को छोड़कर हिन्दी में उन सभी विराम चिन्हों का प्रयोग किया किया जाना चाहिए जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं जैसे ;, ?, -, :-, आदि ।

13. पूर्वकालिक प्रत्यय- पूर्वकालिक प्रत्यय को सदा शब्द के साथ मिलाकर लिखें जैसे मिलाकर, जाकर, खाकर आदि ।

14. शिरोरेखा - यद्‌यपि देवनागरी लिपि में शिरोरेखा के संबंध में काफी विवाद रहा है परन्तु फिलहाल शिरोरेखा का प्रचलन जारी रहेगा ।

इन्हीं चौदह नियमों के आधार पर हिन्दी की वर्तनी का मानकीकरण किया गया ।

13.11 देवनागरी लिपि और ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन

लिपि के संदर्भ में ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के प्रश्न पर विचार करना समीचीन है । अत: आपकी लिपि संबंधी अवधारणा को और स्पष्ट करने के लिए इस प्रसंग पर यहाँ रोशनी डाली जा रही है । आप पढ़ चुके हैं कि भाषा निरंतर बदलाव के दौर से गुजरती रहती है । लेकिन यह बदलाव लिखित भाषा में अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है फलस्वरूप कई बार किसी भाषा में किसी शब्द का उच्चारित (मौखिक) रूप उसके लिखित रूप से बहु त आगे निकल जाता है यहाँ तक कि पुराने अर्थ और पुराने उच्चारण वाला लिखित रूप मौखिक से भिन्न प्रतीत होने लगता है । उल्लेख है कि परम्परावादी जातियों में लिखित और उच्चारित भाषा से भिन्नता की मात्रा कुछ अधिक ही होती है । इसी कारण अंग्रेजी में अनुच्चरित W(wrap, writ, wrinkle) अनुच्चरित K(knowledge, talk, knife, balm) के यथेष्ट उदाहरण अंग्रेजी भाषा में मिलते हैं । shift, bright, right जैसे शब्दों में gh अर्थात् दो ध्वनियां तथा though में ugh अर्थात् तीन ध्वनियां अनुच्चरित या silent रहती हैं । Rought और Tought जैसे शब्दों में gh का उच्चारण 'फ' होता है, स्वरों के क्षेत्र में तो यह गड़बड़ी और भी उल्लेखनीय है । अंग्रेजी में Look (लुक) Poor (पुअर) और Boom (बूम) में oo क्रमश: उ, उव और ऊ के लिए व्यवहृत होता है u के उच्चारण में भी यह अनियमता देखी जाती हैं । U कही अ के रूप में उच्चरित होता है जैसे Shun (शन) Run (रन) तो कहीं उ के रूप में जैसे Put (पुट) Human (ह्यूमन) यद्‌यपि हिन्दी में उच्चरित और लिखित भाषा में खास अन्तर नहीं मिलता प्राय: जो लिखा जाता है उसे उसी ध्वनि में उच्चारित किया जाता है, फिर भी उसमें ऋषि (उच्चारित रूप रिशि) ज्ञात (उच्चारित रूप ग्यात) बहु त (उच्चरित रूप बहोत) जैसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहां यह एक रूपता नहीं दिखाई पड़ती ।

उपर्युक्त उदाहराणों पर गौर करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि परंपरागत प्रतिलेखन उच्चारित भाषा को यथावत लिपिबद्ध करने में समर्थ नहीं होता और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए ऐसे प्रतिलेखन की जरूरत होती है जो यथासंभव शब्दों को उसी रूप में लिख पाये जिस रूप में उनका उच्चारण किया जाता है । इस उच्चारण के अनुसार लिखने को ही 'ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन' कहा जाता है ।

ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन और उसका उपयोग

इस प्रसंग में एक प्रश्न का उठना और उस पर विचार करना स्वाभाविक है । वह यह कि जब कोई भाषा-समाज और व्याकरण परंपरागत प्रतिलेखन को ही स्वीकार करता और उसे पूरी मान्यता देता हे और तदनुसार लिखित शब्दों के उच्चारण में एकरूपता भी मिल जाती है तो ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की क्या आवश्यकता हैं? वस्तुत: सामान्य स्थितियों में इसकी कोई आवश्यकता नहीं होती । लेकिन आज विभिन्न कारणों से अन्य भाषाओं के शब्दों को भी अपनी लिपि में बदलाव करने की जरूरत पड़ जाती है अगर कोई लिपि इस कार्य को करने में अक्षम हो तो अनेक व्यावहारिक मुश्किलें खड़ी हो जाती हैं । इस प्रकार की मुश्किलें भारतीय भाषाओं को ठीक न लिख पाने के कारण अंग्रेजी के सामने भी आयी इसी के कारण कविगुरू ठाकुर 'टैगोर' ललिता 'लोलिटा' और धनराज 'ठेनराज' के रूप में लिपिबद्ध हुए और इसी रूप में प्रसिद्ध हो गये । यह ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की उपयोगिता का व्यावहारिक पक्ष है । सही अर्थ में इसका उपयोग ध्वनियों के उच्चारण के वैज्ञानिक अध्ययन में किया जाता है । इस प्रकार किसी दूसरी भाषा में लिपिबद्ध करने की चेष्टा में ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की आवश्यकता पड़ती है । अपनी भाषा में भी परंपरागत प्रतिलेखन में केवल स्वनिमों को लिखा जा सकता है सहस्वनिमों के लिए ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की मदद की जरूरत होती है । शब्द कोश निर्माण में ध्वन्यात्मक लेखन काफी मददगार सिद्ध होता है । अंग्रेजी जैसी भाषाओं में जहां शब्दों के उच्चरित और लिखित रूपों में यथेष्ट अंतर होता है वहां ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की मदद से ही सही लिखा जा सकता है । उदाहरण के लिए अंग्रेजी के तीन शब्दों culprit, disown, fete और freak को ध्यान से देखिए अंग्रेजी में ऐसे शब्दकोश में इनका उच्चारण क्रमश: कल्प्रिट, डिओन, फेट और फ्रीक लिखा है । ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के निर्देश के अभाव में भारतीय अध्येता इसे कुलप्रिट, डिसाउन, फेटे और फ्रेक पढने की गलतियां कर सकता था ।

इस प्रकार कहा जा सकता है ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के दो मुख्य उपयोग है । व्यावहारिक और शास्त्रीय । इन्हें नजर में रखते हुए भाषाविदों ने ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के 2 भेद किये हैं पहला स्थूल प्रतिलेखन और दूसरा सूक्ष्म प्रतिलेखन । पहले का प्रयोग व्यावहारिक जीवन में किया जाता है । देवनागरी लिपि के सामान्य रूप को स्थूल प्रतिलेखन की संज्ञा दी जा सकती है जिसमें अंग्रेजी और अरबी, फारसी के शब्दों को उच्चारण के निकटतम लेजाकर लिखने की वैज्ञानिकता है । आप देवनागरी लिपि की विशेषता इसी इकाई के आरंभ में पढ़ चुके है इसलिए यह जानते हैं कि केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा कुछ नए चिह्नों के साथ देवनागरी को सूक्ष्म प्रतिलेखन के अनुकूल एक नवीन रूप प्रदान किया गया है जिसका प्रयोग अन्य भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए किया जाता है । इस लिपि में सिन्धी के अन्त:स्फोटात्मक ड-ब जैसे सह-स्वनिमों के लिए भी लिपि संकेत निर्मित किये गये हैं ।

ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन और नागरी लिपि

देवनागरी लिपि को संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि माना जाता है । ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के लिए उसका निर्मूल प्रयोग हो सकता है । आमतौर पर हमारी परिचित भाषाओं में से किसी में ऐसी एक भी ध्वनि नहीं है जिसे देवनागरी में लिखा न जा सके । स्थूल प्रतिलेखन के लिए तो यह सर्वोत्कृष्ट है ही, इसे विश्व स्तरीय सूक्ष्म ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के लिए भी उपयोगी बनाया जा सकता है । जरूरत है कुछ एक नए चिह्नों की व्यवस्था करने की ।

देवनागरी लिपि के कुछ वैशिष्ट्य जेसे प्रत्येक भाषिक ध्वनि के लिए लिपि संकेत एक ही स्वनिम के लिए एक ही लिपि संकेत, इसे सर्वोत्तम बनाने का श्रेय प्रदत्त करते हैं । देवनागरी में जो है उतने वैज्ञानिक लिपि संकेत अन्तर्राष्ट्रीय मानक लिपि में 'भी नहीं है । उसमें महाप्राण व्यंजनों के लिए स्वतंत्र वर्ण नहीं हैं इसलिए उसमें लगातार अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण बनाया जाता है, जबकि देवनागरी में ख, छ, ठ, थ, फ, घ, झ, ढ और भ महाप्राण वर्ण है । संघर्षी व्यंजनों को मुक्त लगाकर लिखा जा सकता है ।

देवनागरी का प्रत्येक वर्ण केवल एक स्वनिम के लिए प्रयुक्त होता है क के लिए ।क । ख के लिए ।ख । जबकि रोमन लिपि में c (स) और (क) दोनों के लिए G (ज) और ग दोनों के लिए camel में c क है जबकि cycle में c स है । देवनागरी में एक स्वनिम के लिए एक ही लिपि संकेत (वर्ण) का प्रयोग होता है । जेसे च के लिए ।च । छ के लिए ।छ । ज के लिए ।ज । लेकिन रोमन में ।क । के लिए c है जैसे cat, crow calm में तो कहीं k जैसे king kolkata तो कहीं Q जैसे Queen, Quilt में । इसी तरह व के लिए कभी V(van) का तो कभी W(work) लिखे जाते हैं । वैसे तो देवनागरी लिपि की भी अपनी सीमाएँ हैं क्योंकि यह आक्षरिक लिपि है और इसमें व्यंजन + स्वर संयोग के लिए मात्राएं प्रयुक्त होती हैं । ये मात्राएं उपर (के, कै) नीचे (कु, कू कृ) दाएँ (का) बाएँ (कि) तथा दायें और ऊपर (की, को, कौ) लगती हैं । ये लिपि की वैज्ञानिकता को आघात पहुंचाते हैं । फिर भी आप पढ़ चुके हैं अपनी कुछ विशेषताओं के कारण यह दुनियां की सर्वोत्तम लिपि है जिसमें किसी भी भाषा की ध्वनियों के प्रतिलेखन की क्षमता है ।

ध्वन्यात्मक देवनागरी का स्वरूप-

1.	संवृत अग्र स्वर	-	ई ई (विशिष्ट स्वर)
	संवृत मध्य स्वर	-	ई, ऊ (विशिष्ट स्वर)
	संवृत पश्च स्वर	-	ऊ, ऊं (विशिष्ट स्वर)
2.	अर्ध संवृत अग्रस्वर	-	ए, ए. (विशिष्ट स्वर)
	अर्ध संवृत मध्यस्वर	-	अं (विशिष्ट स्वर)
	अर्ध संवृत पश्च स्वर	-	ओ ओ (विशिष्ट स्वर)
3.	अर्ध विवृत अग्र स्वर	-	एँ, एँ. (विशिष्ट स्वर)
	अर्ध विवृत मध्य स्वर	-	ऐ
	अर्ध विवृत पश्च स्वर	-	अ ओ
4.	विवृत अग्र स्वर	-	आ

विवृत मध्य स्वर - अ ऽ

विवृत पश्च स्वर - आ, आ (विशिष्ट स्वर)

इस ध्वन्यात्मक लिपि में विशिष्ट स्वरों के लिए वर्गो में कुछ परिवर्तन किये गये अंग्रेजी के अॅ और ऑ को ऊपर चन्द्र का चिन्ह लगाकर एँ और ऑ बनाया गया है ।

व्यंजन

1. स्पर्श

कोमल तालव्य - क ख ग घ ङ

मूर्धन्य - ट त ड ढ ण

तालव्य - च घ ज झ

वत्स्र्य

दन्त्य - त थ द ध

ओष्ठय - प फ व भ म

2. अर्ध स्वर

तालव्य - य

दन्तौष्ठ्य - व

3. उत्क्षिप्त

मूर्धन्य - ड़, ढ़

4. लुंठित

5. पार्श्विक

वत्स्र्य र वत्स्र्य ल

6. संघर्षी

तालव्य श

मूर्धन्य ष

दंत्य स

7. स्वर यंत्र मुखी महाप्राण - ह

8. तालव्य वर्ग स्पर्श संघर्षी है ।

1. काकल्य ध्वनियों के लिए नीचे मुक्ता लगाया जाता है । जैसे स्पर्श क़, ग़ संघर्षी ख़, ग़ । कुछ भाषाओं में काकल्य र भी मिलता है उसके लिए र० वर्ण प्रयुक्त होता है । काकल्य नासिक्य ङ के लिए भी ङ० विशिष्ट लिपि चिन्ह है ।

2. तालव्य कवर्ग के नीचे छोटी रेखा लगाई जाती है जैसे क़ ग घ

3. वत्स्र्य च-ज के लिए भी इसी प्रकार की रेखा का प्रयोग होता है जैसे च ज

4. वत्स्र्य त्स, टश, डज और डझ को भी अधोरेखा से. चिंहित किया जाता है ।

5. संघर्षी ओष्ठ्य प, फ, ब, तथा संघर्षी तालव्य ज नीचे भी मुक्ता लगाया जाता है जैसे प, फ़, ब, ज़, । इस प्रकार कुछ छोटे छोटे परिवर्द्धनों से तैयार की गयी देवनागरी एक वैज्ञानिक ध्वनात्मक लिपि बन गई है ।

13.12 विचार संदर्भ/शब्दावली

1. मेधा - बुद्धि, मस्तिष्क
2. शिरोरेखा - शब्द या वर्ण के ऊपर दी गई रेखा
3. द्वैधता - जिसके दो रूप हों
4. मुद्रण - छपाई
5. परिवर्द्धन - किसी रचना में कुछ जोड़ कर उसे बढ़ाना या बदलना
6. अधोबिन्दु - वर्ण के नीचे लगाया जाने वाला बिन्दु
7. सूत्रलिपि - सूने या धागे में गाँठ-बॉध कर भावों को अभिव्यक्त की जाने वाली लिपि
8. आख्यान - किस्सा, कहानी
9. तख्ती - लकड़ी की पटिया या पटरी
10. आक्षरिक - अक्षरों से युक्त
11. मानक - जिस रूप का प्राधिकृत किया गया हो
12. हस्तांतरित - एक हाथ से दूसरे में देना या जाना
13. संदिग्धता - जिसमें संदेह या संशय हो
14. अन्योन्याश्रित- एक दूसरे पर आश्रित
15. ध्वन्यात्मक - ध्वनि संबंधी

13.13 सारांश

इस इकाई को पढने के बाद आप समझ गए होंगे कि लिखने की कला का आविष्कार मानव सभ्यता की एक महत्वपूर्ण घटना है । इस इकाई में इनमे लिपि के बारे में विस्तार से चर्चा की है । विद्वानों के मतानुसार लेखन-कला की उत्पत्ति भाषा की उत्पत्ति के बहुत बाद में हुई । कई शताब्दियों तक मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता रहा पर उसके संरक्षण के लिए उसके पास कोई साधन न था । परिणामस्वरूप इस जगत में कई जातियों की भाषाएं जन्मी और विलीन हो गई पर उनके बारे में किसी को कोई ज्ञान नहीं है । जब भाषा के साथ लेखन का माध्यम जुड़ा तब एक नवीन सृष्टि का आरंभ हुआ । वास्तव में भाषा और लेखन कला मनुष्य की सभ्यता और उन्नति के मानदण्ड हैं जो उसे अन्य प्राणियों से पृथक् करते हैं ।

भाषा की सहायता से मनुष्य निकटवर्ती लोगों के पास अपने मनोभावों को व्यक्त करने में समर्थ हुआ पर सभ्यता के विकास के साथ जब मनुष्य जाति का पृथ्वी के विभिन्न अंशों में प्रसार होने लगा तब सुदूर स्थित लोगों के पास मनोभाव व्यक्त करने के लिए उसमें एक व्यग्रता उत्पन्न हुई जिसके परिणामस्वरूप सैकड़ों वर्षों के प्रयास के बाद उसे यह ज्ञात हुआ कि भूमि पर रेखाएं खींचकर भावों को अभिव्यक्त किया जा सकता है । मनुष्य ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए लिपि का आविष्कार तो किया ही इसे निरंतर विकसित भी किया । यहां लिपि के वर्ष इतिहास को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया । भारत की प्राचीन लिपियों यथा ब्राह्मी, खरोष्ठी और सिंधु घाटी की लिपि का भी वर्णन किया गया । देवनागरी के नामकरण व क्षेत्र के

विषय में विद्वानों के मतों को समाविष्ट किया गया देवनागरी में ऐसे गुण हैं जो विश्व की किसी भी लिपि में नहीं है वहीं कुछ त्रुटियों के कारण देवनागरी संसार की अन्य लिपियों की तुलना में कम्प्यूटर और मुद्रण के क्षेत्र में पिछड़ चुकी है । इन त्रुटियों के निवारण संबंधी सुधारों और मानक देवनागरी के नियमों की व्याख्या की गई है । हिन्दी की मानक वर्तनी का हिन्दी के विकास एवं प्रसार में महत्वपूर्ण स्थान हे । अत: हिन्दी की मानक वर्तनी संबंधी नियमों का उल्लेख किया गया हे ।

अन्त में ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन की देवनागरी लिपि में उपादेयता की चर्चा की गई हें ।

13.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. लिपि का इतिहास बताते हुए प्राचीन लिपियों के प्रकारों की जानकारी दें ।
2. देवनागरी लिपि के गुणों की चर्चा करें ।
3. देवनागरी लिपि के दोषों की चर्चा करते हुए विभिन्न समितियों द्वारा उसके सुधार संबंधी सुझावों की चर्चा करें ।
4. देवनागरी लिपि के नामकरण पर प्रकाश डालते हुए उसकी विशेषताएं लिखिए ।
5. देवनागरी लिपि और ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन पर टिप्पणी लिखिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. मानक हिन्दी वर्तनी के नियमों की संक्षिप्त जानकारी दें ।
2. देवनागरी लिपि के स्वरूप को स्पष्ट करें ।
3. चित्रलिपि और भावमूलक लिपि की चर्चा करें ।
4. ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन का आशय स्पष्ट करें ।
5. भारत की प्राचीन लिपियों की जानकारी दें ।

ग. हाँ या ना में उत्तर दें

1. देवनागरी में नुक्ते का प्रयोग फरसी के प्रभाव से आया है ।हाँ/ना
2. देवनागरी लिपि में 12 स्वर हैं ।हाँ/ना
3. देवनागरी लिपि वर्णात्मक लिपि है ।हाँ/ना
4. देवनागरी लिपि का विकास खरोष्ठी लिपि से हुआ है ।हाँ/ना
5. हिन्दी में ज और क को श्रुतिमूलक माना गया है ।हाँ/ना

घ **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

1. उर्दू एक .... प्रधान लिपि है ।
2. .... ध्वनि हिन्दी में रोमन से आई है ।
3. सिंधु घाटी की लिपि के नमूने .... की खुदाई से मिले है ।
4. देवनागरी में लिपि चिन्हों के नाम उसके .... के निकट है ।
5. सन् 1947 में .... की अध्यक्षता में लिपि को मानक रूप देने के लिये एक समिति गठित हुई ।

13.15 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. महावीर सरन जैन; भाषा और विज्ञान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी; हिन्दी भाषा और नागरी लिपि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
3. डॉ. भागीरथ मिश्र एवं डॉ शुभकार कपूर; हिन्दी भाषादर्श, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. डॉ. राजबली पाण्डेय; भारतीय पुरालिपि लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. तेजपाल चौधरी; भाषा और भाषा विज्ञान, विकास प्रकाशन, कानपुर
6. डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल; भाषा विज्ञान और हिन्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7. डॉ. भोलानाथ तिवारी; मानक हिन्दी का स्वरूप, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. बाबूराम सक्सेना; सामान्य भाषा विज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
9. नलिनी मोहन सान्याल; भाषा विज्ञान, रामनारायण लाल पब्लिशर एण्ड बुकसेलर, इलाहाबाद
10. देवेन्द्रनाथ शर्मा; पाश्चात्य काव्यशास्त्र, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 1998

इकाई-14 हिन्दी की शब्द संपदा

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 हिन्दी की शब्द संपदा के रूप
14.2.1 प्रेमचंद
14.2.2 मंजूर एहतेशाम
14.2.3 उदय प्रकाश
14.3 हिन्दी की शब्द संपदा के स्रोत
14.3.1 तत्सम
14.3.2 तद्भव
14.3.3 देशज
14.3.4 विदेशज
14.4 संकर शब्द
14.4.1 हिंदी फारसी संकर शब्दावली
14.4.2 हिंदी अरबी संकर शब्दावली
14.4.3 फारसी अरबी संकर शब्दावली
14.5 शब्द व्युत्पत्ति
14.5.1 उपसर्ग
14.5.2 प्रत्यय
14.5.3 समास
14.6 विचार संदर्भ/शब्दावली
14.7 सारांश
14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.9 संदर्भ ग्रंथ

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में हिंदी की शब्द-संपदा का परिचय दिया गया है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

1. हिन्दी की शब्द-संपदा का महत्त्व समझ सकेंगे ।
2. हिन्दी के शब्द-भंडार से परिचित हो सकेंगे ।
3. हिन्दी की शब्द संपदा के विभिन्न स्रोतों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
4. हिन्दी शब्दों की संरचना से परिचित हो सकेंगे ।
5. हिन्दी शब्दों की व्याकरणिक विशेषताएँ बता सकेंगे ।
6. हिन्दी भाषा के विकास में शब्द-भंडार के अवदान का वर्णन कर सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी है । वेदों की रचना जिस भाषा में हुई उसे वैदिक संस्कृत कहा जाता है । ईसा पूर्व 500 तक का समय वैदिक संस्कृत का काल है । लेकिन संस्कृत को संस्कृत के नाम से जाना जाता है । यह वैदिक संस्कृत का पारवर्ती रूप है । आप यह भी जानते है कि पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ । अपभ्रंश भाषा का समय 500ईस्वी से 1000 ईस्वी तक माना जाता है । यह सच है कि अपभ्रंश में साहित्य-सृजन 1000ईस्वी के बाद ही हुआ है । शौरसेनी, पैशाची, ब्राचड, महाराष्ट्री, मागधी और अर्धमागधी अपभ्रंश के विविध रूप हैं । अपनी हिंदी शौरसैनी अपभ्रंश का विकसित रूप है ।

हिन्दी के विकास अथवा उसके उद्‌गम पर अलग से एक इकाई प्रस्तुत की गई है । उसे आपने पढ़ लिया होगा तथा हिन्दी के उद्भव तथा विकास के संबंध में आपने एक स्पष्ट अवधारणा बना ली होगी ।यहाँ शब्द-संपदा के अध्ययन के पहले शब्द का अर्थ, महत्त्व आदि की सामान्य जानकारी हासिल करना अनावश्यक न होगा ।

ध्वनियों से शब्द बनते हैं परन्तु ध्वनियों का अपना कोई अर्थ नहीं होता । वे निरर्थक होती हैं । शब्द सार्थक होते हैं । इतना ही नहीं कई बार एक-एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं । अ प, क र आदि ध्वनियाँ हैं । इनका कोई अर्थ नहीं होता है । लेकिन 'कलम' शब्द कहने पर हमारे मन में एक वस्तु का बोध होता है । कलम शब्द में 'क', 'ल', और 'म' तीन ध्वनियाँ हैं इन तीनों ध्वनियों के मेल से बनने वाले शब्द का अर्थ किसी के लिए लेखनी है तो किसी के लिए 'स्तंभ' का द्‌योतक होता है । 'शब्द' भाषा के अर्थ का वाहक होता है । अर्थयुक्त होना शब्द की सबसे बड़ी विशेषता होती है । ऊपर जो शब्द आया था, वह था कलम । यदि हम पलम या पमल या लमप कहें तो क्या कोई अर्थ निकलता है । जिस वस्तु को हम कलम कहते हैं क्या उसके किन्हीं गुणों के साथ उक्त ध्वनियों का संबंध है? संभवत: नहीं । क्योंकि भाषाई समुदाय अपने ढंग से अर्थ ज्ञात करने के लिये शब्दों का व्यवहार करता है । कलम को कोई 'पेन' समझता है तो कोई लेखनी । संस्कृत में 'कुशल' शब्द का प्रयोग कुश बीनने की कला में पटु व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता था परन्तु आज किसी भी सफल व्यक्ति के संदर्भ में इसका प्रयोग होता है । ठीक इसी प्रकार 'प्रवीण' शब्द को भी लिया जा सकता है । 'वीणा' वादन में सिद्धहस्त व्यक्ति को ही प्रवीण कहा जाता था । परन्तु आज इसका अर्थ-विस्तार हुआ है । मतलब यह कि शब्द और अर्थ का संबंध ऐतिहासिक विकास के साथ परिवर्तित होता है ।

आपने देखा होगा कि नदी अपनी धार में बहुत सारी चीजें बहा कर ले जाती है । उन वस्तुओं को अपने प्रवाह में लेते हुए उन्हें माँजती है, परिष्कृत करती है, नया आकार व प्रकार देती हैं ठीक इसी तरह भाषा भी प्रवाहमयी होती हैं न जाने वह कितने स्रोतों से कितने शब्दों व शब्द रूपों को अपने प्रवाह में समेटती रहती है, उन्हें अपना रूप देती है । कुछ को अपरिवर्तित रख देती है तो थोड़ा-बहुत माँजकर नये रूप में कुछ शब्दों को अपने रंग-रूप में ढाल देती है । इससे भाषा संपन्न होती है, समृद्ध होती है । शब्द-भंडार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है भाषा विकसित

होती जाती है । रचनाकार अनायास ही विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करता है, कभी देशज तो कभी विदेशज । इससे भाषा की स्वाभाविकता बनी रहती है, भाषा जीवंत हो उठती हैं लेखक की भाषा अपनी विशेषताओं के चलते आसानी से पहचानी जाती है । कोई रचनाकार तत्सम प्रधान शब्दों से अपनी भाषा को सहेजता है तो कोई चालू मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करता हैं । कोई उर्दूमिश्रित हिन्दी लिखना पंसद करता है तो कोई काव्यिक भाषा का प्रयोग करता है । वास्तव में हिन्दी के विविध रूप हमारे सामने स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं । आगे हम इस बिन्दु पर चर्चा करेंगे ।

14.2 हिन्दी की शब्द संपदा के रूप

आप जानते हैं कि लोगों की रूचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं । यह रूचि केवल खान-पान, वेश-भूषा तक ही सीमित नहीं हैं लेखकीय अभिरूचि के अनुसार भाषा का स्वरूप भी बदलता है । इसके मूल में भी शब्द-भंडार या शब्द-संपदा की उल्लेखनीय देन होती है । हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध रचनाकारों की रचनाओं से कुछ अवतरण उद्धृत करके शब्द-संपदा से परिचित कराने का प्रयास किया जा रहा है:

14.2.1 प्रेमचंद

“रात हो गयी । चारों ओर निविड़ अंधकार छा गया । तोता न जाने पत्तों में कहाँ छिपा बैठा था । महादेव जानता था कि रात को तोता कहीं उड़कर नहीं जा सकता और न पिंजड़े ही में आ सकता है, फिर भी वह उस जगह से हिलने का नाम न लेता था । आज उसने दिन भर कुछ नहीं खाया । रात के भोजन का समय निकल गया, पानी की एक बूंद भी उसके कंठ में न गई, लेकिन उसे न भूख थी, न प्यास । तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता था । वह दिन-रात काम करता था, इसलिए कि यह उसकी अन्तःप्रेरणा थी, जीवन के और काम इसलिए करता था कि आदत थी इन कामों में उसे अपनी सजीवता का लेश-मात्र भी ज्ञान न होता था । तोता ही वह वस्तु था, जो उसे चेतना की याद दिलाता था । उसका हाथ से जाना जीव का देह-त्याग करना था ।"

('आत्माराम' शीर्षक कहानी से)

प्रेमचंद आम-जनता के रचनाकार हैं । उनकी रचना में भाषा का सहज प्रवाह देखते ही बनता हैं तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशज शब्द लेखक की रचनाधर्मिता में यूँ ही प्रयुक्त हुए हैं लेखक के भावों के साथ-साथ शब्द आते गये । उसने अनजाने ही शब्दों का, उनके विविध रूपों का सार्थक प्रयोग किया है । उपर्युक्त अवतरण का संरचनात्मक विश्लेषण किया जाए तो प्रेमचंद की 'आत्माराम' शीर्षक कहानी से अवतरित गद्य खंड की शब्द-संपदा से आप आसानी से परिचित हो सकते हैं ।

सबसे पहले हम उन शब्दों को उकृत करें जो हिन्दी में उसी रूप में प्रचलित हैं जैसे कि संस्कृत में थे । ऐसे शब्दों को तत्सम शब्द कहा जाता है । अवतरित अंश के तत्सम शब्द हैं- निविड़, अंधकार, निस्सार, शुष्क, अंतःप्रेरणा, ज्ञान आदि । संस्कृत के शुद्ध शब्दों से निकले

विकसित शब्दों को तद्भव कहते हैं । प्रेमचंद की 'आत्माराम शीर्षक कहानी के अवतरित अंश में प्रयुक्त तद्भव शब्दों की सूत्री निम्नवत् है-

रात < रात्रि, पत्ता < पत्र, आज < अद्य, भूख < बुभुक्षा, पिंजड़ा < पिंजर, सूना < शून्य, काम < कर्म, हाथ < हस्त, बूँद < बिंदु आदि तत्सम, तद्भव शब्दों के बाद उक्त अवतरण में प्रयुक्त। विदेशी शब्दों को भी ढूँढा जा सकता है । वास्तव में विदेश शब्द उसे कहते हैं जो अन्य भाषा के शब्द हों, खासकर विदेश की भाषा से आगत हो । अरबी भाषा का शब्द 'आदत और फारसी का 'याद' हिन्दी से बिल्कुल घुल मिल गये है । इतना ही नहीं यदि आलोच्य अवतरण की भाषिक संरचना पर ध्यान दें तो पाएँगे यहाँ उपसर्ग, प्रत्यय और समास आदि से अनेक शब्द निर्मित हुए हैं । रचनाकार अनायास लिखता जाता है । लिखने के क्रम में उसे व्याकरणिक विशेषताओं का ध्यान नही रहता । लेखन-कार्य के पश्चात उस लेखन का विश्लेषण हो तो अनेक भाषिक वैशिष्ट्य स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं कभी-कभी तो नये शब्द निर्मित भी हो जाते हैं । इस प्रक्रिया में शब्द-संपदा संपन्न होती है ।

14.2.2 मंजूर एहतेशाम

"-लेकिन अदालतों, स्कूल-कॉलेजों या चुनावों के बायकॉट से क्या किसी तरह की बेदारी का दावा किया जा सकता है? नौबत के लिए सोज से सहमत हो पाना संभव नहीं था । - या टैक्स अदा न करके आप कौन से शहीद हो जाऐंगे आज नहीं तो कल, देना तो वह आपको पड़ेगा ही । - बहुत सारी छोटी-छोटी और मामूली चीजें मिलकर ही शायद गैर मामूली को जन्म देती हैं । उनमें स्वदेशी भी उतना अहम है जितना स्वराज खिलाफत भी बस, उसी रूह को जगाने और अपनी खुद्दारी के तकाजे को महसूस करने की एक कड़ी है ।

- लेकिन कुछ बड़े लोग खुद इस मजहब और सियासत को आपस में मिलाने से नाखुश होकर कांग्रेस छोड़ चुके हैं जैसे मुहम्मद अली जिन्नाह और भी ऐसे कई सीनियर कांग्रेसी हैं जो इसे गलत समझते हैं, जैसे सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ।

(खामोशी के पेड पे बसेरा खोजती आवाजें)

उपर्युक्त अवतरण पढने के बाद तुरंत हमारे मन में लेखक द्वारा प्रयुक्त विदेशी शब्दों के प्रयोग का चित्र खिंच जाता है । बहुतायत अंगरेजी, अरबी-फारसी शब्दों से उपर्युक्त अवतरण भरपूर है । यह भी हिन्दी का एक स्वरूप है । । हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन के क्रम में आपने उन्नीसवीं सदी के पश्चात खड़ीबोली का विकास पढ़ा होगा । गिलक्राइस्ट की मान्यता भी थी कि हिन्दुस्तानी की तीन शैलियाँ है- दरबारी फारसी, उर्दू और हिन्देवी शैली । संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता वाली हिन्दी का प्रयोग काफी दिनों तक चला । राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, देवकीनंदन खत्री, राजा लक्ष्मणप्रसाद स्वामी दयानंद सरस्वती आदि के भाषा प्रयोग से हिन्दी की शब्द संपदा समृद्ध हुई है ।

उद्धृत अवतरण में आगत विदेशी शब्दों अंगरेजी अथवा अरबी-फारसी आदि से भाषा एवं भाव का सहज प्रवाह अप्रतिहत रहा है । एक ओर संस्कृत के उपसर्गो 'सम्', 'सह' से संभव तथा सहमत शब्द बनाये गये हैं तो दूसरी ओर 'गैर', 'ना' उपसर्गों से गैरमामूमली, नाखुश शब्द

प्रयुक्त हुए हैं । स्कूल-कॉलेज, बायकॉट, टैक्स, सीनियर आदि अंगरेजी शब्दों से भाषा सम्पन्न हुई है तो स्वदेशी, स्वराज जन्म जैसे तत्सम शब्दों से शब्द-संपदा विकसित हुई है । इतना ही नहीं, रूह, अदालत, सियासत, तकाजा, महसूस आदि विदेशी शब्दों से मंजूर एहतेशाम की भाषा समृद्ध हुई है ।

इसी क्रम में आगे बढ़ने के लिए समकालीन हिन्दी कहानी से प्रतिष्ठित रचनाकार उदय प्रकाश की बहुचर्चित कहानी तिरिछ का एक पैराग्राफ उद्धृत किया जा रहा है । इसे आप ध्यानपूर्वक पढ़िए एवं शब्द-संपदा की अभिवृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले कारकों, यानी तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज प्रत्यय, उपसर्ग आदि के मेल से बनने वाले शब्दों को सूचीबद्ध करने का प्रयास कीजिए:

14.2.3 उदय प्रकाश

बैंक के चपरासियों, दो चौकीदारों और दूसरे कर्मचारियों के अनुसार अचानक ही कैशियर की चीख और घंटी की आवाज से वे सब लोग चौंक गये और उस तरफ दौड़े । तब तक नेपाली चौकीदार थापा ने पिताजी को दबोच लिया था और मारता हुआ कॉमन रूम की तरफ ले जा रहा था । एक चपरासी रामकिशोर, जिसकी उम्र पैंतालीस के आसपास थी, ने कहा कि उसने समझा कि कोई शराबी दफ्तर में घुस आया है, या पागल और चूँकि उसकी ड्यूटी बैंक के मुख्य दरवाजे पर थी इसलिये ब्रांच मैनेजर उसे चार्जशीट कर सकता था । लेकिन हुआ यह कि जब पिताजी को मारा जा रहा था, तभी उन्होंने अंग्रेजी में कुछ बोलना शुरू कर दिया । इसी वजह से चपरासियों का शक बढ़ गया । इसी बीच शायद असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर मेहता ने यह कह दिया कि इस आदमी की अच्छी तरह से तलाशी ले लेना तभी बाहर निकलने देना । वैसे चपरासी रामकिशोर का कहना था कि पिताजी का चेहरा अजीब तरह से डरावना हो गया था । उस पर धूल जमा हो गयी थी और उल्टी की बास आ रही थी । बैंक के चपरासियों ने पिताजी से ज्यादा मारने-पीटने की बात से इंकार किया लेकिन बैंक के बाहर, ठीक दरवाजे के पास जो पान की दुकान है, उसमें बैठने वाले बुन्तु का कहना था कि जब साढ़े ग्यारह बजे के आस-पास पिताजी बैंक से बाहर आये तो उनके कपड़े फटे हुए थे और निचला होंठ कट गया था, जहाँ से खून निकल रहा था । आँखों के नीचे सूजन और कत्थई चकत्ते थे । ऐसे चकत्ते बाद में बैंगनी या नीले पड़ जाते हैं ।

(तिरिछ)

14.3 हिन्दी की शब्द संपदा के स्रोत

इस इकाई में एतद्पूर्व आपने शब्द-संपदा के विविध स्रोतों के बारे में सामान्य जानकारी हासिल कर ली है । अब हम उसके विभिन्न स्रोतों के बारे में सविस्तार अध्ययन करेंगे । स्रोत की दृष्टि से हिन्दी में चार प्रकार के शब्द मिलते हैं । अर्थात् हिन्दी शब्दों के चार प्रमुख वर्ग हैं- तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशज, ये स्रोत उसी प्रकार भाषा में घुल-मिल जाते हैं जैसे नदी के विभिन्न स्रोतों की जलधारा, विविध स्रोतों की जलधारा जब नदी की धारा में मिल जाती है

तो नदी की धारा के रूप में ही परिचित होती हे । इसी प्रकार विधि स्रोतों से आगत शब्दावली भाषा में ही एका. .... स्थापित कर लेती है ।

14.3.1 तत्सम

पहले बताया जा चुका है कि संस्कृत से मूल रूप में हिन्दी में लिये गये शब्द तत्सम कहलते हैं । कृष्ण, गृह, कर्म, धर्म, हस्त, सत्य, पुस्तक, विद्यार्थी, पिता, अग्नि, समुद्र, मित्र जैसे तमाम शब्दों को बिना किसी ध्वनिपरिवर्तन के हिन्दी सुविधा की दृष्टि से हिन्दी में तत्सम शब्दों के चार प्रकार माने जा सकते हैं-

(क) पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए आगत शब्द-अचल, काल, कुसुम, दण्ड, जंतु आदि ।

(ख) संस्कृत से सीधे आगत शब्द-सूर्य, चंद्र, वर्ष, सर्प, आम्र, मत्स्य, मृग, मद्य आदि ।

(ग) पारिभाषिक शब्द - इस वर्ग के शब्दों का निर्माण आवश्यक प्रतीत हुआ ताकि नई अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त माध्यम बन सके । साथ ही अभाव की पूर्ति हो सके । संस्कृत की धातुओं अथवा शब्दों के साथ उपसर्ग और प्रत्यय जोड़कर नये शब्द गढ़े गये । मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने इस क्षेत्र में उचित कदम उठाते हुए तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की । लाखों शब्दों के पारिभाषिक शब्द निर्मित हुए । मानविकी तथा विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नये शब्दों का निर्माण हुआ । प्रवक्ता, प्राध्यापक, प्रभाग, संगणक, निर्देशक, अभियंता, रसायन, भौतिकी आदि ढेरों शब्द तत्सम के अंतर्गत हैं ।

(घ) अन्य भारतीय भाषाओं से आगत शब्द-इस वर्ग में शब्दों की संख्या बहुत अधिक नहीं है ' । बंगला और मराठी भाषा के तत्सम शब्द हिन्दी में आते हैं । जैसे बंगला-ववतृता, उपन्यास, गल्प, अभिव्यक्ति, निर्भर, तत्त्वाधान, अभ्यर्थना, स्वप्निल, आपत्ति, उर्मिल, रोमिल आदि । आप को स्मरण होगा कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में बंगला भाषा की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी । मराठी के वाङ्मय प्रगति जैसे शब्द भी हिन्दी शब्द-भंडार को समृद्ध करते हैं ।

ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा आदि भाषा वैज्ञानिकों ने अर्ध-तत्सम नाम का भी एक भेद स्वीकार किया है । इस वर्ग के अंतर्गत वे शब्द माने गये हैं जिन्हें हिन्दी ने अपनी प्रकृति के अनुसार साँचे में बदल दिया है । मध्यकालीन साहित्य की भाषाओं-बृजभाषा, अवधी - में अर्द्ध-तत्सम शब्दों का खूब प्रचलन हुआ था । जैसे कृष्ण के लिए कान्ह, कान्हा, कन्हैया, तद्भव माने जा सकते हैं परन्तु किशन-शब्द अर्द्ध-तत्सम है । वृथा के लिए विरथा अमृत के लिए अमरित, जनम के लिए जनम, मूर्ख के लिए मूरख आदि अनेकानेक शब्द मध्ययुगीन साहित्य में विद्यमान हैं ।

14.3.2 तद्भव

तद्भब में 'तत्' का अर्थ है वह यानी संस्कृत और 'भव' का अर्थ है उत्पन्न । आशय यह है कि संस्कृत से उत्पन्न शब्द तद्भव कहलाते हैं । ये शब्द तत्सम आने के लिए वे पालि,

प्राकृत, या अपभ्रंश से होकर हिन्दी में हैं इसे समझने के लिए आप निम्नलिखित रूप को देख सकते हैं:-

संस्कृत	पालि, प्राकृत, अपभ्रंश	हिन्दी
अक्षि	अक्खि	आँख
सत्य	सत्त-सच्च	सच
धर्म	धम्म	धर्म
कर्म	कम्म	काम
अश्रु	अस्सु	आँसू

हिन्दी में तद्भव शब्दों की सर्वाधिक संख्या है । घर(गृह), हाथ (हस्त), साँझ(संध्या), कपड़ा(कर्पट), मोर(मयूर), आम(आम्र), साँप(सर्प), घोड़ा(घोटक), चाँद(चंद्रमा), बरस(वर्ष), सूरज(सूर्य), दूध(दुग्ध), सात(सप्त), ईख(ईक्षु), जीभ(जिह्वा), बहरा(बधिर), धुआँ(धूम्र), आग(अग्नि), भाई(भ्रातृ), जमाई(जामातृ), अंगूठा(अंगुष्ठ), ऊँट(उष्ट्र), गधा(गर्दभ), रात(रात्रि), आज(अद्य), पीना(पा), हफ़्ता(सप्ताह), चमार(चर्मकार), सुनार(स्वर्णकार), तद्भव शब्दों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । तद्भव शब्दों ने हिन्दी को समृद्ध तथा संपन्न किया है ।

14.3.3 देशज शब्द

जो शब्द देश में ही जन्में हों उन्हें देशज कहा जाता है । यधपि देशज शब्दों के स्रोत के संबंध में विद्वानों में मतभेद है तथापि इतना कहा जा सकता है कि ये शब्द न संस्कृत मूल के हैं और न ही विदेशी भाषा के । इन शब्दों का प्रयोग उस भाषा-भाषी समाज में ही शुरू हुआ जहाँ से ये आगत हैं । ये भाषा के अपने शब्द हैं । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने देशज शब्दों को दो वर्गों में विभाजित किया है-

क. अज्ञात व्युत्पत्तिक

ख. अनुकरणात्मक

अज्ञातव्युत्पत्तिक का अर्थ जिसकी अज्ञात व्युत्पत्ति का पता न हो । ये तो देशी भाषाओं से ग्रहण किये गये शब्द हैं । इस प्रथम वर्ग के अंतर्गत टट्दू ,तेंदुआ, चूहा, ठेठ, टीस, घपला, चंपत, पेड़, भुर्ता आदि शब्द हैं जबकि हिन्दी काल में अनुकरण के आधार पर बनाए गये शब्दों को अनुकरणात्मक शब्द कहा जाता है । ये शब्द तत्सम, तद्भव अथवा विदेशी नहीं हैं । इस वर्ग में अधिकांश शब्द ध्वन्यात्मक होते हैं । जैसे हडहड, फडफड़, खड़खड़, भड़भड़, चटचट, फटफटिया, चकाचौंध, चिपचिपा, काँव-काँव, भोंपू, लिचलिचा आदि ।

ऊपर जो दो वर्ग बनाये गये हैं, इनके अलावा आर्येत्तर भारतीय भाषाओं से गृहीत शब्द एवं संस्कृतोत्तर काल में निर्मित शब्दों के वर्गीकरण को देशज के अंतर्गत रखा जा सकता है । पारिवारिक संबंधों के वाचक शब्द जैसे चाचा, काका, मामा, दादा, नाना आदि देशज शब्द के अंतर्गत रख सकते हैं । कभी-कभार तो एक-एक सार्थक-निरर्थक शब्द युग्म अध्ययन के लिए आवश्यक हो जाता है । इन शब्द युग्मों में एक सार्थक होता है तो दूसरा निरर्थक । इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ शब्द-युग्मों के उदाहरण दृष्टव्य हैं जैसे खाना-वाना,

चाय-वाय आदि । इस उदाहरण में खाना के साथ वाना और चाय के साथ वाय निरर्थक शब्द हैं।

14.3.4 विदेशज शब्द

आप जनते हैं कि सदियों तक भारत पराधीन रहा । शक, हूण, मंगोल, मुगल, अंग्रेज आदि ने यहाँ की सत्ता संभाली । भारतीय व्यापार-वाणिज्य के सिलसिले में विदेश आते जाते रहे । वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति के साथ-साथ भाषा-साहित्य से भी परिचित हुए । विदेशी भाषा और संस्कृति का व्यापक प्रभाव भारतीय भाषा एवं संस्कृत पर रहा । फलस्वरूप हिन्दी में अरबी, फारसी, तुर्की, पस्तो, पुर्तगाली, रूसी, फ्रांसीसी के हजारों शब्द ऐसे घुल-मिल गये हैं कि वे अपनी भाषा के ही लगते हैं । इन शब्दों के समानार्थी हिन्दी शब्द सोचने की जरूरत तक नहीं समझते हैं ।

यूरोपीय देशों के साथ भार का रिश्ता कई शताब्दियों का रहा है । इसी क्रम में भारतीयों ने यूरोपीय भाषाओं के शब्दों को धड़ल्ले से अपनाना शुरू कर दिया । हिन्दी के साथ भी ऐसा ही हुआ । केवल अंगरेजी से हमने खान-पान, वेशभूषा, खेलकूद, प्रशासन, विज्ञान-प्रौद्योगिकी संबंधी हजारों शब्द अपना लिये हैं । इस संदर्भ में भाषा-वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी की मान्यता है- ' 'हिन्दी ने तुर्की से लगभग 125, फारसी-अरबी के लगभग 7000, अंगरेजी से लगभग 3500 तथा पुर्तगाली से लगभग 80 शब्द लिये हैं । " (भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी, किताब महल, 2000, पृ. 387) विदेशी शब्दों से हिन्दी का शब्द-वैभव अलंकृत तथा विकसित हुआ है । विदेशज शब्दों की संक्षिप्त सूची नीचे प्रदत्त है । इस सूची को ध्यान से पढ़ने पर आप यह अनुभव कर सकेंगे कि जाने कितने शब्दों का हम प्रयोग कर लेते हैं परन्तु हमें यह पता तक नहीं चलता है कि वे किस स्रोत से आगत अथवा गृहीत हैं । उदाहरण के लिए हम एक फल का नाम ले सकते हैं-अनन्नास । हम इस फल से परिचित हैं और खाते भी हैं । यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह शब्द पुर्तगाली का है । इसी तरह हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में प्रस्तुत होने वाली कैंची तुर्की भाषा से गृहीत शब्द है ।

पश्तो : अफगानिस्तान में यह भाषा प्रचलित है । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने हिन्दी में लगभग व 100 शब्दों से अधिक पश्तो शब्दों का प्रचलन स्वीकार किया है । इनमें से कुछ हैं- अखरोट, अटकल, डंगर, डेरा, बाड़, गड़बड़, गँडेरी, चखचख, गुंडा, तड़ाक, डंगर, डेरा, बाड़, भड़ास, लुच्चा, पटाखा, पठान आदि ।

तुर्की : भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना और तुर्कों से संपर्क होने के फलस्वरूप हिन्दी में शताधिक तुर्की शब्द प्रचलित हैं । इस भाषा से आगत या गृहीत शब्दों के कुछ उदाहरण निम्नवत हैं- गनीमत, तोप, तोपची, बहादुर, उजबक, चाकू कैंची, काबू कुली, गलीचा, चकमक, चिक, तमगा, दारोगा, बावर्ची, बेगम, चम्मच, लाश, सौगात, बीबी, चेचक, बारूद, नागा, कुर्त्ता, खच्चर, सराय, चलो आदि ।

अरबी-फारसी: भारतीय भाषाओं और फारसी का अटूट संबंध रहा है । हिन्दी भाषा में अरबी-

फारसी के सात हजार से भी अधिक शब्द प्रचलित हैं । इतनी बड़ी संख्या में अरबी-फारसी के शब्दों का आयात होना, मामूली बात नहीं है । इसके पीछे कारण भी हैं । प्राचीन फारसी एवं संस्कृत दोनों एक ही भाषा परिवार के अंतर्गत हैं । मुसलमानी शासन-काल में फारसी भारतीय जन-जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी थी । अरबी के शब्द फारसी से होकर आये हैं । इसलिए अरबी-फारसी से आगत शब्दों को अलग-अलग रूप से न रखकर एक साथ सूचीबद्ध करना उचित तथा सहज प्रतीत होता है-

1. रोजा, मजहब, खुदा, हज, पैगंबर
2. मकान, दरवाजा, दीवार, बरामदा
3. सरकार, तहसीलदार, चपरासी, वकील, दीवान, मुंशी, हाकिम, मुकदमा, इंसाफ, खजांची, सिपाही, अदालत
4. बादाम, सेब, मेवा, अनार, अगर, नाशपाती, मुनक्का, किशमिश, शहतूत, शरीफा, पिस्ता, पुदीना
5. नब्ज, बदहज्मी, हैजा, लकवा, जुकाम, दवा, मरीज
6. बजाज, दर्जी, सर्राफ, दलाल, हलवाई, जिल्दसाज
7. फ़ौज, हौलदार, हमला, संगीन
8. देहात, कस्बा, जिला, तहसील, मुहल्ला, शहर
9. खत, लिफाफा, पता
10. बरफी, हलवा, जलेबी, कुल्फी, समोसा, बालुशाही, शक्करपारा
11. आइना शीशा, हजामत, साबुन, सुरमा, इत्र आदि ।

पुर्तगाली : पुर्तगाल की भाषा पुर्तगाली है । प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में पुर्तगाल के साथ व्यापार-वाणिज्य के संदर्भ में भारतीय भाषाओं में पुर्तगाली से अनेक शब्द गहीत हुए । शब्द हिन्दी में भी अपनाये गये । हिन्दी में आगत कतिपय पुर्तगाली शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं-

अनन्नास, अलमारी, आलपिन आया, इस्त्री, कप्तान, कर्नल, काफी, काजू, गमला, गोभी, गोदाम, चाबी, चाय, तौलिया, पपीता, नीलाम, फीता, बाल्टी, बोतल, मिस्त्री, संतरा आदि ।

अंग्रेजी : अंग्रेजों के साथ भी भारतीयों का प्रत्यक्ष संबंध लगभग तीन सौ सालों से अधिक रहा । हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का अधिकाधिक संख्या में प्रचलन हुआ है । हिन्दी में आकर कुछ अंग्रेजी शब्द हिन्दी के ढाँचे में ढल चुके हैं जैसे लालटेन (Lantern), अलमारी (Almirah), तिजोरी(Treasury), रपट (Report) आदि । अंग्रेजी के बहुप्रचलित शब्द हिन्दी में ज्यों के त्यों गृहीत हुए हैं । शिक्षित जनता इन्हें तद्नुरूप अपनाती है तो अशिक्षित लोग इन्हें किंचित रूप से ग्रहण कर लेते हैं । आज दुनिया तेजी से बढ़ती जा रही है । इसके साथ दुनिया इतनी सिमट चुकी है कि वह मुट्ठी में आ गई है ।

पाश्चात्य संस्कृति एवं जीवन शैली ने महानगरीय जीवन ही नहीं दूर-दराज के ग्राम्य-जीवन को भी प्रबल रूप से प्रभावित किया है । इसके दुष्परिणामों की संख्या बहुत अधिक हो सकती है परंतु इससे एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ है कि हिन्दी की शब्द-संपदा का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है । हिन्दी के शब्द-भंडार को संपन्न बनानेवाले कुछ अंगरेजी शब्दों की सूची अधोलिखित है-

1. पैंट, शर्ट, कोट, सूट, टाई, ओवरकोट, टीशर्ट, बूट, सैण्डल, स्लीपर, फ्रॉक, ब्लाउज, अंडरवेयर, पाकिट, कालर, स्वेटर ।
2. बिस्कुट, चाकलेट, आइसक्रीम, ब्रेड, डबलब्रेड, बटर, जेम, टॉफी, लेमन, सोडा, सूप, कोल्डड्रिंक्स बीयर, ब्रांडी. कॉकटेल ।
3. इंजन, मोटर, मशीन, मीटर, बस, लारी, टैक्सी, स्कूटर, साइकिल, ट्रेन, कार, ट्रेन, टेंकर, वेन, ट्रेक्टर, ट्यूबवेल, बुलडोजर ।
4. ड्राइवर, प्लम्बर, कंडक्टर, वेल्डर, वेटर, सर्वर, क्लर्क, अफसर, प्रोफेसर, प्रिंसिपल, टीचर, डॉक्टर, नर्स, सर्जन, लेक्चर, रीडर, चांसलर, स्कॉलर
5. स्कूल, कॉलेज, युनिवर्सिटी, डिग्री, क्लास, चाक, बोर्ड, बैंच, डस्टर, नोटिस बोर्ड, अस्पताल, पोस्ट ऑफिस, क्लब हाउस, ग्रीमरूम
6. बैट, बॉल, क्रिकेट, हाँकी, स्टंप, रन, गोल, डिफेंस, फुटबाल, रिकार्ड, गोल-पोस्ट
7. पेन, पैंसिल, रबर, पिन, पेपर, पेपर वेट, पैड, स्टेपलर, अंड, स्टेशनरी
8. हॉल, रूम, किचन, गैलरी, बालकनी, बाथरूम, बाथटब, गैलरी, गैराज, फ्लैट
9. सीनियर, जूनइयर, फाइन, सुपरफाइन, फैशनेबुल, स्टाइल
10. कोर्ट, हाईकोर्ट, सुप्रीम कोर्ट, इंस्पेक्टर, कलक्टर, मिनिस्टर, वारंट, समन, अपील
11. पोस्टकार्ड, मनीआर्डर, रजिस्ट्री, बुक पोस्ट, स्पीड पोस्ट, पार्सल, मेल
12. आर्ट, ब्रश, वाटर, कलर, आयल पेंट, स्केच, सीनरी फोटो, फिल्म
13. जेक्सन, ऑपरेशन, टेबल, कंपाउण्डर, थर्मामीटर, ड्रेसिंग
14. क्रीम, स्नो, वैसलीन, पाउडर, नेलपालिश लिपिस्टक
15. प्रेस, टाइप, कंपोजिटर, प्रूफरीडर, डिमाई
16. अल्युमिनियम, रोल्डगोल्ड टिन, निकल, प्लैटिनम, जिंक, सिल्वर आदि ।

आप अपने दैनंदिन जीवन में उपर्युक्त शब्दों के अलावा और भी प्रचलन मिलता है । परिवेश एवं पात्र के अनुसार रचनाकार अंग्रेजी शब्दों का बहुत प्रचलन मिलता है । परिवेश एवं पात्र के अनुसार रचनाकार अंग्रेजी शब्दों का अनायास प्रयोग करता है । और एक बात, अंग्रेजी भाषा के माध्यम से कुछ फ्रांसीसी एवं जापानी भाषा के शब्द भी हिन्दी में आये हैं क्योंकि हिन्दी भाषा क्षेत्र से इन भाषाओं के प्रत्यक्ष संपर्क का अभाव था । जो भी हो, इससे हिन्दी के

शब्द भंडार की श्रीवृद्धि हुई है । इसे अस्वीकारा नहीं जा सकता । 'रिक्शा' शब्द जापानी भाषा का है जो रेस्तरां', 'कूपन', 'कारतूस' आदि शब्द फ्रांसीसी के हैं ।

यह सर्वमान्य है कि दो भिन्न भाषा-भाषी प्रांत या क्षेत्र एक दूसरे के संपर्क में आते हैं तो दोनों ही एक दूसरे से कुछ न कुछ शब्द लेते हैं । विदेशी भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की यह प्रक्रिया सर्वदा चलती रहती है । इससे भाषा समृद्ध होती है । उसकी जीवंतता बनी रहती है । नवीन शब्दों के आगमन से शब्द संपदा समृद्ध होती है ।

14.4 संकर शब्द

दो भाषाओं या एक ही भाषा के दो रूपों के योग से बने हुए शब्द संकर शब्द के नाम से जाने जाते हैं । संकर शब्दों का प्रयोग आजकल काफी मात्रा में हो रहा है । दो भिन्न स्रोतों से आगत शब्दों को मिलाकर एक नया शब्द बना लिया जाता है तो उसे हम संकर शब्द के रूप से जानते हैं । उदाहरण के लिए 'रेलगाड़ी' और 'रेडियो तरंग' शब्दों की चर्चा की जा सकती है । 'रेल' अंग्रेजी भाषा का शब्द है और ''गाड़ी' हिन्दी भाषा का है । ठीक उसी प्रकार 'रेडियो' अंग्रेजी शब्द है जबकि 'तरंग' है संस्कृत शब्द । इन्हें हम निम्नवत सूत्रबद्ध कर सकते हैं-

अंग्रेजी + हिन्दी = रेल गाड़ी

अंग्रेजी + संस्कृत = रेडियो तरंग

कुछ और उदाहरण भी आपकी सुविधा एवं समझ के लिए दिये जा रहे हैं-

संस्कृत + अरबी-फारसी = कृषि मजदूर

संस्कृत + अंग्रेजी = योजना-कमीशन

अंग्रेजी + संस्कृत = रेल यात्री

हिन्दी + फारसी = काम-काज

अंग्रेजी + अरबी-फारसी = अफसरशाही

हिन्दी + संस्कृत = मांगपत्र

अरबी-फारसी + हिन्दी = किताबघर

हिन्दी + अरबी-फारसी = घड़ीसाज

बहुधा यह भी देखा जाता है कि हिन्दी के व्याकरणिक रूप - प्रत्यय उपसर्ग-लगाकर संकर शब्दों का निर्माण होता है । मूल शब्द विदेशी भाषा का होता है और उसमें हिन्दी के प्रत्यय उपसर्ग जोड़कर नये शब्द की रचना होती हे । जैसे 'पार्टीबाजी' शब्द में पार्टी + बाज +ई(प्रत्यय) है । इसी प्रकार 'पेंशनी' शब्द में 'पेंशन' अंग्रेजी शब्द है और इसमें 'ई' प्रत्यय का योग हुआ है जिसका आशय होता है सेवानिवृत होनेवाले कर्मचारी को पेंशन मिलेगी । अब संकर शब्दावली की तीन संक्षिप्त सूचियां आपके सामने प्रस्तुति की जा रही हैं-

14.4.1 हिंदी फ़ारसी संकर शब्दावली

तन-बदन, तिमाही, तेजी-मंदी, दाना-पानी, दरियाई घोड़ा, काम-धंधा, खाक-धूल, जादू-टोना, बाल-बच्चे, मुँहज़ोर, सीधा-साधा, नेकचलन, सब्जीमंडी, रंग-ढंग, दुःख-दर्द, गुलाब-जामुन,

चोर-बाजार, सवारीगाड़ी, चिड़ियाखाना, मोमबत्ती, गली-मुहल्ला, राजदरबार, भाईबंद चोर-दरवाजा, घुड़सवार आदि ।

14.4.2 हिंदी अरबी संकर शब्दावली

अजायबघर, इकतरफा, डिगरी, इमामबाड़ा, कफन-चोर, चोरमहल, ब्याही-निकाही, मालगाड़ी, हाट-हवेली, सफाचट, रीति-रिवाज, जेब-कतरा, जमापूँजी, दवा-दारू, मोतीमहल, हँसी-मजाक, हु क्का-पानी, बोल-कबूल ,उम्र-पहा, गंडा-ताबीज आदि ।

14.4.3 फारसी अरबी संकर शब्दावली

शीशमहल, रंगमहल, जेबखर्च, सफरखर्च, फिजूलखर्च, किराएदार, हवादार, हवलदार, तान्तुकेदार कानूनगो, कम-ज्यादह, सब्जकदम, फाकामस्त, फाकामस्ती, नमक हराम, नमक हलाल, दस्तखति, बै-मौत आदि ।

आपने ध्यान दिया होगा कि अनेक विदेशी शब्दों को हिन्दी ने क्रिया रूप में भी अपना लिया है । इनके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

फिल्माना, पास करना, फेल होना, किक मारना, स्टार्ट करना, शेव करना, हेयर कटिंग करना आदि ।

14.5 शब्द स्तुत्पत्ति

शब्दों की व्युत्पत्ति के बारे में जानने के पहले ' व्युत्पत्ति का सामान्य अर्थ जान लेना आवश्यक है । इसका आशय है शब्द का वह मूल रूप जिससे वह निकला या बना हो । अंग्रेजी में इसे डेरिवेशन के नाम से जाना जाता है । यदि हम 'अविश्वसनीय' शब्द की व्युत्पत्ति करना चाहेंगे तो सबसे पहले उसका मूल खोजेंगे । इस शब्द का मूल रूप है 'विश्वास' इसके पूर्व एवं पश्चात अक्षरया अक्षरों का समूह समावेशित है । अ एवं अनीय यथास्थान जुड़े हैं । शब्दों की व्युत्पत्ति में इन विषयों का अध्ययन अपेक्षित है । शब्दों की व्युत्पत्ति के संदर्भ में ऐसे भाषिक उपादानों का अध्ययन किया जाता है जो नये-नये शब्दों के निर्माण में सहायक होते हैं । उपसर्ग, प्रत्यय और समास ऐसे ही उपादन हैं ।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्दों के तीन भेद हैं । ये हैं-

1. रूढ़-विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त शब्द- घट, पट आदि ।
2. भौगिक-धातुओं रूढ शब्दों में उपसर्ग, प्रत्यय, या दोनों मिलाकर बनने वाले शब्द जैसे कृ', धातु से कार्य कर्त्तव्य, करणीय, कारण आदि ।
3. योगरूढ़-दो या अधिक घटकों के योग से बनने वाले शब्द-पंकज, जलद आदि ।

शब्दों के तीसरे भेद में उदाहरण के रूप में लिया गया 'जलद' शब्द की स्तुत्पति करें तो स्पष्ट होता है कि यह 'जल' और 'द' के मेल से बना है । पानी देने वाले के लिए अर्थात् कोई भी जनदान करें तो उसे जलद कहा जाना चाहिए । परंतु 'जलद' केवल बादल के अर्थ में रूढ़ हो गया है । इसीलिए इस प्रकार के शब्दों को 'योगरूढ़, कहा जाता है ।

आगे हम हिन्दी की शब्द-संपदा की अभिवृद्धि में उपसर्ग, प्रत्यय और समास की महत्ता को रेखांकित करेंगे ।

14.5.1 उपसर्ग

उपसर्ग वह उपशब्द है जो किसी शब्द के पहले लगकर उसमें किसी अर्थ की विशेषता लाता है । अर्थात उपसर्ग उस भाषिक इकाई का नाम है जो भाषा-विशेष में स्वतंत्र रूप से तो प्रयुक्त नहीं होता है लेकिन शब्दों के आरंभ में जुड़कर नये शब्द की रचना करता है । जैसे उप+योग=उपयोग । यहाँ 'उप' उपसर्ग है । पुन: अधि+ग्रहण=अधिग्रहण में है । परन्तु यह सर्वदा जरूरी नहीं है । जेसे प्र+यत्न=प्रयत्न में 'विशेष रूप से यत्न' अर्थ निहित है ।

हिन्दी में तीन प्रकार के उपसर्गो का प्रयोग होता है - तत्सम, तद्भव एवं विदेशी कुछ भाषा-वैज्ञानिक पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के उपसर्गो का भी उल्लेख करते हैं । परन्तु ऐसे उपसर्गो का बहु त प्रचलन नहीं है । अत: हम तत्सम, तद्भव एवं विदेशी उपसर्गो से आपका परिचय कराने जा रहे हैं ।

तत्सम उपसर्ग. तत्सम उपसर्ग का अन्य नाम संस्कत उपसर्ग '

अ - (नहीं, अभाव, हीनता, शून्य) - अभाव, अप्रतिष्ठा, अकूत, अटल, अचल, अमृत आदि।

अधि - (अधिक) - अधिपति, अधिकार, अध्यादेश, अध्यहार आदि ।

अनु - (पीछे, समान) - अनुरूप, अनुशासन, अनुवाद, अनुगामी आदि ।

अन् - (अभाव, हीनता, शून्यता)-अनंत, अनायास, अनदेखा, अनपढ़, अनति अनबलंब आदि।

अप - (बुरा) - अपकार, अपराध, अपहरण, अपशकुन, अपभ्रंश आदि ।

अव - (हीन, नीचे, दूर)-अभियान, अभियोग, अभिनव, अभिमत, अभियोग, अभिसार आदि।

अभि - (अतिरिक्त, और) - आगमन, आजन्म, आकर्षक, आजानु आमरण, आजीवन आदि ।

उत् - (ऊपर, ऊँचा) - उत्कुल्ल, उल्लंघन, उत्पीड़न, उल्लेप, उद्गम, उद्भव आदि ।

उप - (सहायक, गौण, छोटा, निकट) - उपमंत्री, उपभाषा, उपाध्यक्ष, उपराष्ट्रपति आदि ।

कु - (बुरा) - कुदृष्टि, कुपथ, कुख्यात, कुरूप, कुसंस्कार, कुरीति आदि ।

दुः - (बुरा, कठिन) - दुराचार, दुर्बल, दुर्गुण, दुर्जन, दुर्दिन, दुर्घटना, दुर्दैव आदि ।

नि - (नीचे, समूह, आदेश आदि) - निकुंज, निगूढ़, निदर्शन, निबंध, नियुक्त आदि ।

निः - (नहीं, रहित, दूर, बाहर) - निर्बल, निरपराध, निर्मल, निर्भय, निर्दोष, निर्गुण आदि ।

वि - (अभाव, विशेष, दूसरा) - विज्ञान, विस्मरण, विवाद, विदेश, विशेष, व्यवहार आदि ।

स - (सहित) - सफल, सजीव, सरस, सनाथ, सकुशल, सानंद, सकारण, सजल आदि ।

सु - (अच्छा, सरल, ज्यादा) - सुशिक्षित, सुगंध, सुगम, सुयोग्य, सुप्रसिद्ध, सुपुत्र आदि ।

प्र - (विशेष)-प्रचार, प्रमाण, प्रमोद, प्रकाश, प्रवास, प्रदान, प्रवेश, प्रधान, प्रदेश, प्रज्ञा आदि

प्रति - (विशेष और विपरीत) - प्रतिज्ञा, प्रतिभा, प्रतीक्षा, प्रतिष्ठा, प्रतिगामी, प्रतिकार आदि।

परा - (विपरीत) - पराजय, पराभाव परागमन आदि ।

उपर्युक्त सूची के अतिरिक्त तत्सम उपसर्ग में और भी उपसर्गों का प्रयोग होता है । कभी-कभी एकाधिक उपसर्गों का भी प्रयोग किया जाता है । जैसे व्याघात, व्याधि आदि शब्दों में 'वि' और 'आ दो उपसर्ग प्रयुक्त हुए हैं । ठीक इसी प्रकार दुष्परिणाम शब्द में 'दु: ' एवं 'परि' उपसर्ग हैं । नीचे कुछ और शब्द दिये जा रहे हैं । इन शब्दों में निहित एकाधिक उपसर्गों को पहचानने की कोशिश कीजिए:

दुराग्रह, दुष्प्रचार, निरपराध, निःसंदेह, निष्प्रयोजन,

अनुसंधान, समुन्नति, प्रारब्ध, प्रारंभ, प्राधिकरण,

प्राकार, उपनिवेश, स्वागत, अभ्यागत, प्रत्युपकार ।

तद्भव उपसर्ग : एतदपूर्व आपने पढ़ लिया है कि तत्सम शब्दों से तद्भव शब्दों का विकास हुआ है । इसी तरह तत्सम उपसर्गों से तद्भव उपसर्ग विकसित हुए है । ये हिन्दी के अपने उपसर्ग हैं शब्द-रचना के लिए इन उपसर्गों का प्रयोग होता है । उ उन और, क दु, नि, पर, स, आदि उपसर्ग तद्भव के अंतर्गत हैं ।

उ - उनींदा, उथला, उतरना, उभरना आदि में प्रयुक्त 'उ' उपसर्ग वास्तव में संस्कृति के 'उद्' से आगत है जिसका अर्थ होता है । ऊपर, ऊँचा आदि ।

उन - उन्नीस, उन्तीस, उनचास, उनसठ, उनहत्तर, उन्यासी आदि में प्रयुक्त 'उन' संस्कृत के उन' से आया हुआ है । इसका अर्थ है 'एक कम' ।

और - औगुन, औघट आदि में निहित 'औ' उपसर्ग संस्कृत में 'अव' का विकसित रूप हैं 'अव' का अर्थ हीन, नीचे आदि है ।

क - कपूत । संस्कृत के 'कु' उपसर्ग से हिन्दी का 'क' उपसर्ग आगत है ।

नि - निडर, निकम्मा, निहत्था आदि । संस्कृत के नि: या निर् से गृहीत उपसर्ग है । इसका अर्थ रहित है ।

पर - परपोता परदादा, परनाना आदि । यह उपसर्ग संस्कृत के 'प्र' से लिया गया है जो 'दूसरी पीढ़ी के' अर्थ में प्रयुक्त है ।

कुछ विद्वानों ने अधपका, बिनबुलाया भरपेट आदि शब्दों में प्रयुक्त 'अध', 'किन', 'भर' को तद्भव उपसर्गों के अंतर्गत माना है । परंतु ये समास के अंतर्गत होते हैं । अत: इन्हें तद्भव उपसर्गों के रूप में मानलेना अनुचित है ।

अरबी-फारसी के उपसर्ग

ना - नापसंद, नालायक, नाराज, नाबालिग, नाकाम, नादान आदि ।

बे - बेवजह, बेकसूर, बेहया, बेशर्म, बेचारा, बेमिसाल आदि ।

ब - बखूबी, बमुश्किल, बदस्तूर आदि ।

हम-हमउम्र, हमसफर, हमदर्द, हमशक्ल आदि ।

ला - लाचार, लापरवाह, लावारिस, लाइलाज, लाजवाब आदि ।

हर - हरदम, हरवक्त, हरसाल आदि ।

ध्यान देने की बात है कि वाइस चेयरमेन, वाइस प्रिंसिपल, सब-कमिटी, सब-स्टेशन आदि में 'वाइस' और 'सब' अंग्रेजी भाषा के उपसर्ग हैं जो आजकल हिन्दी में भी प्रयुक्त हैं ।

14.5.2 प्रत्यय

व्याकरण में वे अक्षर जो किसी धातु या मूल शब्द के अंत में लगकर उसके अर्थ में कोई विशेष अर्थ लाते हैं उन्हें प्रत्यय कहा जाता है । जैसे 'मधुरता में ता प्रत्यय है । प्रत्यय का अन्य नाम परसर्ग है । इसे अंग्रेजी में सफिक्स के नाम से जाना जाता है । शब्द-निर्माण की प्रक्रिया में प्रत्यय का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है । प्रत्यय शब्द-संपदा की श्रीवृद्धि करते हैं । प्रत्यय के स्रोतों को हम निम्नांकित रूपों में वर्गीकृत कर सकते हैं-

1. तत्सम प्रत्यय
2. तद्भव प्रत्यय
3. देशज प्रत्यय और
4. विदेशी प्रत्यय

हिन्दी में प्रत्यय के 'कृत' और तकित दो वर्ग बनाए -गये हैं जो संस्कृत का वर्गीकरण हैं । हिन्दी में संस्कृत का उक्त वर्गीकरण अनुचित प्रतीत होता है । क्योंकि कुछ प्रत्यय ऐसे हैं जो कृत और तद्धित दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं । जैसे 'आई', एक और धातु में जोड़ा जाता है तो दूसरी ओर शब्दों में भी उदाहरण के तौर पर धातु-पढ़ाई, चढ़ाई, लड़ाई आदि शब्द चतुराई, सफाई, कठिनाई आदि ।

हिन्दी के कुछ मुख्य प्रत्यय निम्नांकित हैं-

अंत - गढंत, रटंत, घूमंत

अंगड़ - बतंगड़

अक्कड़ - घुमक्कड़, पियक्कड़

आ - माननीया, आदरणीया, प्रिया, सुता, घोड़ा, लड़का, बड़ा

आई - पढ़ाई, लिखाई, कठिनाई, सफाई, चतुराई, पंडिताई

आऊ - टिकाऊ, बिकाऊ, पंडिताऊ

आलू/आलू-दयालू, कृपालू, श्रद्धालू ,झगड़ालू

आप/आया-पुजाया बुढ़ापा, अपनाया, मिलाप

आवट - बनावट, बुनावट, रूकावट, मिलावट

आर/आरी/आरा - कुम्हार, लुहार, पुजारी, भिखारी, चमार, घसियारा

आस - छपास, लिखास, प्यास

आहट - घबराहट, चिल्लाहट, गड़गड़ाहट, चिकनाहट

इक - भाषिक, दैनिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, वैदिक, नैतिक, भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक

इन - ठकुराइन, तेलिन पुजारिन, सुनारिन मछुआरिन

इया - कनौजिया, भोजपुरिया, चुहिया, डिबिया, चुटिया

ई - घोड़ी, लडकी, नानी, चाची, कटारी, तेली, टोकरी, कौड़ी

ईला - चमकीला, भड़कीला, शर्मीला, हठीला, पथरीला

एरा - लुटेरा, ममेरा, चचेरा, फुफेरा, बहुतेरा, सपेरा

पन - बचपन, छुटपन, बड़प्पन, पागलपन

वाला - खानेवाला, ऊपरवाला, जानेवाला, ताँगेवाला

आटा - खर्राटा, फर्राटा

खोर - सूदखोर, घूसखोर, रिश्वतखोर, हरामखोर

कार - सलाहकार, दस्तकार, काश्तकार

गर - बाजीगर, कारीगर, रफूगर

गार - मददगार, रोजगार, यादगार

इयत - इंसानियत, आदमियत, खैरियत, असलियत, अंग्रेजियत, सहुलियत

गाह - बंदरगाह, ईदगाह, चारागाह, आरामगाह

आना - जुर्माना, घराना, रोजाना, सालाना

ज़ाद - शाहजाद आदमजाद, रईसजाद

दाँ - कानूनदाँ, उम्रदाँ, कद्दूदाँ

दान - कलमदान, चायदान इत्रदान, पीकदान

दार - ईमानदार, दुकानदार, कर्जदार, मालदार, खुशबूदार, जमींदार, इज्जतदार

बाज़ - मुकदमेबाज़ धोखेबाज, चालबाज, पतंगबाज, नशेबाज, गप्पबाज

बान - बागबान, दरबान

मंद - अकलमंद, दौलतमंद, जरूरतमन्द

सार - खाकसार, शर्मसार

खाना - दौलतखाना, डाकखाना

बीन - तमाशबीन, दूरबीन

इज्म - कम्यूनिज्म बुद्धिज्म, सोशलिज्म, शैविज्म

इस्ट - सोशलिस्ट, मार्किस्ट बुद्धिसट ।

उपर्युक्त सूची से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि एक प्रत्यय के योग से शब्द-भंडार में शब्द बढ़ते जाते हैं । आपको यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज प्रत्यय कभी धातु में तो कभी शब्द में जुड़कर नये शब्दों का निर्माण करते हैं । यह भ्रम रहता है कि प्रत्यय का अर्थ नहीं होता है । परंतु प्रत्ययों का अर्थ होता है । इसमें संदेह नहीं हैं भले ही यह अर्थ व्याकरणिक क्यों न हो । कुछ प्रत्यय विशेषण के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तो कुछ क्रियाविशेषण के अर्थ में । प्रत्ययों की कुछ वैयाकरणिक कर्तासूचक, भाववाचक, विशेषणसूचक लघुतासूचक एवं लिगसूचक वर्गो के अंतर्गत रखते हैं । शब्द-निर्माण की प्रक्रिया में प्रत्यय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, इसे अस्वीकारा नहीं जा सकता है ।

अस्तु उपसर्ग एवं प्रत्यय की शब्द-निर्माण में भूमिका पर विचार करने के पश्चात् हम समास के योगदान की चर्चा कर रहे हैं । इससे आपके मन में यह अवधारणा स्पष्ट हो जाएगी कि नवीन शब्द-रचना के संदर्भ में समास का क्या योगदान है ।

14.5.3 समास

समास' का सामान्य अर्थ होता है 'संक्षेप', परंतु पारिभाषिक अर्थ में यह कहा जा सकता है कि दो अथवा उससे अधिक शब्दों को जोड़कर एक शब्द बनाने की प्रक्रिया समास है । हिन्दी में मोटे तौर पर पणिनि के व्याकरण के अनुसार समास के चार भेद माने गये हैं- अव्ययीभाव, तत्युरूष, बहुब्रीहि और द्वंद्, कर्मधारय और द्विगु की गणना भी समास के अंतर्गत होती है ।

अव्ययीभाव समास : इस समास में अव्यय अथवा उपसर्ग के साथ संज्ञा का योग होता है । उपसर्गो एवं अव्ययों के संयोग से निर्मित शब्द हैं-प्रतिदिन, प्रत्यक्ष, आजीवन, यथासमय, समक्ष, सकुशल, सोद्देश्य निरर्थक, निरूद्देश्य आदि ।

विदेशी उपसर्गो से बने सामासिक शब्द हैं- बेशरू, दरअसल, हरजगह, सरेआम, बखूबी आदि । उपसर्गो ओर अव्ययों से निर्मित सामासिक शब्दों के अलावा को समान शब्दों (पुनरूका शब्दों) से भी नये अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द अव्ययीभाव समास के अंतर्गत आते हैं ।

उदाहरणस्वरूप -

गाँव-गाँव	अर्थात् हर गाँव में या सभी गाँव में
पल-पल	अर्थात् हमेशा
रो-रोकर	अर्थात् बहुत रोकर
एका एक	अर्थात् अचानक

पुनरूक्त शब्दों को द्विरुक्त शब्द भी कहा जाता है ।

तत्पुरूष समास

इस समास में पहला शब्द प्राय: संज्ञा या विशेषण तथा दूसरा सर्वदा संज्ञा होता है । इसमें दूसरा शब्द प्रधान होता है । तत्युरूष समास में दो शब्दों के बीच में मिली कारक का संबंध छिपा होता है जैसे-

समास	विस्तृत पदबंध
राष्ट्रपिता	राष्ट्र के पिता
देवराज	देवों के राजा
देशप्रेम	देश के लिए प्रेम
गृहप्रवेश	गृह में प्रवेश
सत्तारूढ	सत्ता पर आरूढ़
रेल-यात्रा	रेल से यात्रा
पथभ्रष्ट	पथ से भ्रष्ट

नञ् समास : अभाव अर्थ के वाचक अ, अन् आदि शब्दों के साथ संज्ञा को नञ् समास कहा जाता है अन्याय, अस्थिर, अशांत, अनुचित, अनजाना, अनमोल, नासमझ, नालायक, नापसंद आदि नञ् समास के उदाहरण हैं ।

कर्मधारय समास : इस समास को भी तत्युरूष समास का ही एक भेद माना जाता है । विशेषण-विशेष्य, उपमेय-उपमान होनेवाले समास को कर्मधारय कहा जाता है । जैसे

विशेषण-विशेष्य - नीलकमल, सज्जन, महात्मा, महाभाष्य, नीलगाय, खुशबू आदि ।

उपमेय-उपमान - चरण-कमल, मृगनयन, चंद्रमुख, कमलनयन आदि ।

मध्यपदलोपी कर्मधारय - दहीबड़ा गोबरगणेश बैलगाड़ी आदि ।

तत्पुरूष समास का एक भेद और है जो द्विगु समास के अंतर्गत है । यदि पहला शब्द संख्यावाचक विशेषण हो और समस्त पद-समूह का बोध कराए तो उसे द्विगु समास कहा जाता है । जैसे चवन्नी, अठन्नी, दोपहर, पंचवटी, पंचतत्व, त्रिदेव, त्रिफला, चौराहा आदि ।

बहुद्रीहि समास बहुव्रीहि समास में न तो पूर्वपद का महत्त्व होता है और न ही उत्तरपद का दोनों मिलकर कोई अन्यपद अर्थ का केन्द्र होता हैं जैसे नीलकंठ-नीला है कंठ जिसका अर्थात् शिव, नीलांबर-नीला है कपड़ा जिसका आदि ।

वीणापाणि - वीणा + पाणि(हाथ) - वह व्यक्ति जिसके हाथ में वीणा हो ।

जितेन्द्रिय - जित + इंद्रियां - वह व्यक्ति जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो ।

चतुर्भुज - चार भुजाएँ हों जिसके वह अर्थात् विष्णु ।

द्वन्द्व समास : इस समास में उभय पद प्रधान होता हैं । इसमें दोनों पदों में 'और' अर्थ सन्निहित रहता है । जैसे

माता-पिता	-	माता और पिता
भोजन-वस्त्र	-	भोजन ओर वस्त्र
ऊँच-नीच	-	ऊँच और नीच
भूत-प्रेत	-	भूत और प्रेत
कंकड-पत्थर	-	कंकड और पत्थर आदि ।

समास से भाषा में संक्षिप्तता ही नहीं सौंदर्य भी आता है । शब्द-संपदा की वृद्धि होती है । इसी क्रम में हम कुछ अनुकरणात्मक शब्दों का भी उल्लेख करना चाहेंगे । इससे आपको यह पता चलेगा कि अनुकरणात्मक शब्द किस प्रकार शब्द भण्डार को समृद्ध करते हैं । 'खनक' शब्द की निर्मिति के बारे में जरा सोचिए । किसी सिक्के के गिरने से निकलने वाली आवाज 'खन खनाना' कहलाती है । अनुकरणात्मक ध्वनि से हिन्दी के शब्द-वैभव में विकास हुआ । कुछ अन्य उदाहरण दृष्टव्य हैं-

टपटप, टपटपाना, टपकना

चिपचिपा, चिपचिपाहट, चिपकना

धंड़धड़, धड़धड़ाह, धड़धड़ाना

खलबली, सुगबगाहट, सिम-झिम खटपट, तामझाम, झिलमिलाना आदि ।

14.6 विचार संदर्भ/शब्दावली

1.	अप्रतिहत	-	न रोका हुआ, अपराजित
2.	खिलाफत	-	विरोध करना
3.	खुद्दारी	-	आत्मसम्मान
4.	अज्ञात व्युत्पत्तिक	-	जिन शब्दों की व्युत्पत्ति के बारे में न जाना गया हो
5.	युग्म	-	जोड़ा
6.	श्रीवृद्धि	-	शोभा बढ़ना
7.	एतद्पूर्व	-	इससे पहले
8.	प्रारब्ध	-	भाग्य, नियति
9.	सौगात	-	उपहार
10.	निहत्था	-	खालीहाथ, बिना हथियार लिए
11.	आगत	-	आए हुए
12.	चिक	-	एक तरह का जालीदार परदा
13.	सियासत	-	राज्य, राजनीतिक, देश का शासन प्रबंध और व्यवस्था
14.	रूह	-	आत्मा
15.	मजहब	-	धर्म

14.7 सारांश

संपूर्ण इकाई पढ़ने के बाद आप समझ गये होंगे कि भाषा के विकास में शब्द-संपदा का कितना बड़ा महत्त्व हैं दरअसल जिस भाषा की शब्द-संपदा जितनी समृद्ध होती है वह भाषा उतनी ही संपन्न मानी जाती है । शब्दावली की निर्माण प्रक्रिया क्या है? शब्द के निर्माण के स्रोत कौन-से है? इनके बारे में भी आपने अध्ययन कर लिया होगा । कुछ शब्द भाषा के अपने होते हैं तो कुछ शब्द आवश्यकतानुसार गढ़ लिये जाते हैं । इस इकाई में हमने शब्द-संपदा के चार विभिन्न स्रोतों की भी चर्चा की हैं संकर शब्दों का उल्लेख किया गया है । धातु एवं प्रत्यय उपसर्गो आदि से भी आप परिचित हो गये होंगे तथा शब्द-निर्माण की प्रक्रिया से अवगत हो गये होंगे । समास की भूमिका को भी आपने अच्छी तरह से समझ लिया गया होगा । इसी संदर्भ में आपने यह भी देखा कि भाषा में गतिशीलता तब तक बनी रहती है जब तक वह विभिन्न स्रोतों से बहकर आनेवाले प्रयोगों को अपने में समाहित करती रहती है स्थिरता आ जाने से भाषा का विकास बाधित हो जाता है । शब्द-संपदा प्रतिदिन अपने को विस्तारित करती रहती हैं इससे भाषा की सजीवता एवं प्राणवंतता बनी रहती है ।

14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. हिन्दी की शब्द-संपदा से आप क्या समझते हैं?
2. हिन्दी की शब्द-संपदा के स्रोतों का परिचय दीजिए ।

3. हिन्दी के उपसर्गो प्रत्ययों एवं समासों पर एक टिप्पणी लिखिए ।
4. शब्द द्युत्पत्ति का आशय स्पष्ट कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. नीचे कुछ तत्सम शब्द दिये गये हैं । इनके तद्भव रूप लिखिए
   अग्नि, स्वर्ण, वृद्ध, दुग्ध, अश्रु, कर्म, अद्य, जामातृ घोटक
2. निम्नलिखित अवतरण को ध्यानपूर्वक पढ़िए एवं पूछे गये प्रश्नों के उत्तर लिखिए:
   बाहर क्लब के अहाते में अपनी कार तलाशते पैर राव को दूर से आती आवाज से परेशानी हुई । जब उन्होंने अपने घर पर पार्टियाँ दी थीं, तब इन्हीं स्वरों ने यही गाना उनके सम्मान में भी ' था । वे तेज कदम बढ़ाते हुए निकल गए । हमेशा की तरह अपनी जगह पर खड़ी उनकी .?.ं जैगुअर घुप अंधेरे में ठीक से दिखाई नहीं पड़ी वे उससे टकराए तो हाथ में हल्की सी चोट आ गई । अँधेरे को, कार से रंग को और आगे की सीट पर गहरी नींद ले रहे ड्राइवर को कोसते हुए, कार में बैठकर उन्होंने हॉर्न बजाया । ड्राइवर चौंककर उठ पड़ा । फिर सीट से मुडी-तुड़ी टोपी उठाकर उसने पहनी ओर गाड़ी चला दी ।
   अ) उपर्युक्त अवतरण में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों को पहचानिए ।
   ब) उपर्युक्त अवतरण में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्दों की सूची बनाइए ।
   स) अवतरण के तत्सम शब्द कौन-से हैं 7
   द) अवतरण में प्रयुक्त सामासिक पदों का उल्लेख कीजिए ।
   य) अवतरण में देशज शब्दों का प्रयोग कहीं मिलता है?
3. क) ब, बे, आम उपसर्गो का प्रयोग करते हुए तीन-तीन शब्द बनाइए ।
   ख) इक, इया, पन, आटा, सार, खाना प्रत्ययों से तीन-तीन शब्द बनाइए ।
   ग) भाषा में सामासिक पदों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।
   घ) संकर शब्दावली का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए अंग्रेजी-संस्कृत, संस्कृत-अरबी, रबी-हिन्दी, हिन्दी-फारसी शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत कीजिए ।

14.9 संदर्भ ग्रंथ

1. भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान
2. भोलानाथ तिवारी; हिन्दी भाषा की संरचना भोलानाथ तिवारी; हिन्दी शब्द सामर्थ्य
3. भोलानाथ तिवारी; हिन्दी भाषा
4. आचार्य रामचंद्र वर्मा; शब्दार्थ और भाषाविज्ञान तेजपाल चौधरी; भाषा और भाषाविज्ञान रामचंद्र वर्मा; अच्छी हिन्दी
5. धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी भाषा का इतिहास
6. जगन्नाथ वीरा.; प्रयोग और प्रयोग
7. कामताप्रसाद गुरू; हिन्दी व्याकरण

इकाई-15 विश्व के प्रमुख भाषा परिवार

इकाई की रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 विश्व के भाषा परिवार

15.3.1 भारोपीय परिवार

(1) ग्रीक उप परिवार

(2) इतालिक उप परिवार

(3) जर्मनिक उप परिवार

(4) केल्टिक उप परिवार

(5) तोखारी उप परिवार

(6) हित्ती उप परिवार

(7) बाल्लोक्लाविक उप परिवार

(8) आरमीनी उप परिवार

(9) अलबानी उप परिवार

(10) भारत ईरानी (आर्य) उप परिवार

15.3.2 द्रविड़ परिवार

15.3.3 बुरूशस्की परिवार

15.3.4 यूराल अल्टाई परिवार

15.3.5 काकेशी परिवार

15.3.6 चीनी परिवार

15.3.7 जापानी कोरियाई परिवार

15.3.8 हाइपरबोरी अत्युत्तरी परिवार

15.3.9 बास्क परिवार

15.3.10 सामी-हामी परिवार

15.3.11 सूद्रानी परिवार

15.3.12 बाँटू परिवार

15.3.13 होतेन्तोत बुशमैनी परिवार

15.3.14 मलय बहुद्वीपीय परिवार या मलय पालेनिशियन परिवार

15.3.15 पापुई परिवार

15.3.16 आस्ट्रेलियाई परिवार

15.3.17 दक्षिणपूर्व एशियाई परिवार

15.3.18 अमरीका के भाषा परिवार

इस परिवार में लगभग 100 परिवारों की कल्पना की गई है । अनेक परिवार की भाषाएँ अपने वैज्ञानिक अध्ययन की प्रतीक्षा में हैं ।

उपर्युक्त परिवारों की भाषाओं के अतिरिक्त संसार में अनेक भाषाएँ ऐसी हैं, जिनकी न खोज हो पाई है और न उनका भाषिक अध्ययन ।

15.4 विचार संदर्भ शब्दावली
15.5 सारांश
15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.7 संदर्भ ग्रंथ

15.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:-

- विश्व के भाषा परिवारों की संकल्पना तथा स्वरूप पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
- भाषा परिवारों के क्षेत्र, उनकी भाषाओं,उनके साहित्य तथा भाषा परिवारों के भाषिक को आय रेखांकित कर सकेंगे ।
- विश्व की भाषाओं में विभिन्न कारणों से आए बदलाव और उनके विकासात्मक स्वरूप को निरूपित कर सकेंगे ।
- हजारों मील की दूरी के बावजूद एक भाषा वंश वृक्ष (मूल स्त्रोत) से उत्पन्न भाषाओं की मूल भाषिक संपदा एवं संवेदना का तुलनात्मक रेखांकन कर सकेंगे ।

15.2 प्रस्तावना

मनुष्य की पहली खोज है - "आग" और दूसरी खोज है - "भाषा" । इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोज है - भाषा, जिसने मनुष्य को अन्य प्राणियों और जीव जंतुओं से विशिष्ट बनाया । भाषा मानव-अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रमुख और विलक्षण माध्यम है । भाषा ने ही मनुष्य को समूह में रहना सिखाया । भले ही प्रारंभिक स्थिति ' कबीलाई' ' रही हो । किंतु सामुदायिक भावना यहाँ भी विद्यमान थी । अर्थात् एक साथ एकजुट होकर रहने की आदत । एक दूसरे की सहायता की भावना । वस्तुत: भाषा की सहायता से ही मनुष्य ने संगठन की नींव रखी । ऐसा संगठन जो एक कबीले के विकास, सभ्यता के साथ बढता हुआ गॉव, नगर, प्रांत, देश आदि तमाम इकाईयों में इस धरती पर फैल गया । भाषा के कार्य और प्रयोग की सीमा भी बढ़ी । उसी ने वैचारिक, धार्मिक, जाति तथा देश और महाद्वीपों आदि के धरातल पर विश्व-मानव-समुदाय को बाँटा । इस बटवारे ने उसमें विभिन्न परिस्थितियों के घात-प्रतिघात द्वारा अनेक बदलाव पैदा किए । इसमें सहायक बनी जलवायु और भौगोलिक स्थिति भी । फलस्वरूप एक 'मूलभाषा' (Proto speech) से विकसित संसार की अधिसंख्य भाषाएँ आज एक दूसरे से बहुत दूर निकल गयीं है । किंतु वैभिल्य तथा असमानता के बावजूद संसार की प्रमुख भाषाओं में कहीं न कहीं परस्पर सम्बद्धता के सूत्र मिल ही जाते हैं । यही एक सूत्रता उनके विकास के एक 'मूल स्त्रोत' की धारणा को प्रबल करती है ।

आज! भाषा-विशेष, मानव-समुदाय-विशेष का प्रतिनिधित्व करती है । यह समुदाय छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी, सभ्य भी असभ्य भी । ऐसी स्थिति में संसार में अनेक भाषाओं की विद्यमानता स्वाभाविक है । अन्य विषयों की भाँति ही हमारे मन में संसार की भाषाओं के ज्ञान, उनके पारस्परिक संबंध एवं संख्या आदि के विषय में प्रश्न उभरते है । इन प्रश्नों के समाधान हेतु भाषाओं के वैशिष्ठय ज्ञान की आवश्यकता महसूस हुई, जो भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा संभव था । यह अध्ययन तभी संभव था, जब विश्व की जीवित भाषाओं की जानकारी हो । इस दिशा में पर्याप्त प्रयास हुए। किंतु यह अधूरी हैं । डॉ. राजमणि शर्मा को यह कहने में संकोच नहीं कि प्रमुख भाषाओं की खोज हुई, किंतु आज भी अनेक भाषाएँ भाषा-वैज्ञानिकों की पहुँच के बाहर हैं तथा वे अपने अध्ययन की प्रतीक्षा में हैं ।

अब तक खोजी जा चुकी तथा वैज्ञानिक अध्ययन का केन्द्र बनी विश्व की भाषाओं की विशेषताओं, परस्पर सम्बद्धता के ज्ञान तथा वैज्ञानिक अध्ययन का एकमात्र रास्ता था - "प्रोटोस्पीच" (मूल भाषा) से उत्पन्न विश्व की भाषाओं की परिकल्पना के आधार पर परिवारों में उनका वर्गीकरण ।

प्रश्न उठता है कि वर्गीकरण का आधार किसे बनाया जाए? महाद्वीप, देश धर्म, काल को आधार बनाकर किए गए वर्गीकरण वैज्ञानिक तो कत्तई नहीं हो सकते । अंतत: भाषा की प्रकृति की समानता-असमानता को वर्गीकरण का आधार बनाया गया । भाषाओं में मिलने वाली समानताएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती है । पहली समानता बाहय- संरचनात्मक होती है एंव दूसरी आतरिक अथवा प्रकृति-प्रधान । जब भाषाओं को उनकी आकृति अर्थात बाहय समानता के आधार पर अलग-अलग वर्गो में वर्गीकृत किया जाता है, तब उसे आकृति मूलक वर्गीकरण कहते हैं और जब भाषाओं को उनकी आतरिक-सरचना के आधार पर विभिन्न समूहों में बीटा जाता है, तब इस प्रकार के वर्गीकरण को 'पारिवारिक' या 'ऐतिहासिक वर्गीकरण' कहा जाता है । भाषाओं में आन्तरिक समानता से युक्त भाषा को एक ही परिवार का माना जाता है । इस पद्धति के अनुसार उन भाषाओं को एक ही वर्ग मे 'रखा जाता है, जिन भाषाओं में ऐतिहासिक संबन्ध रहता हैं । इसके विपरीत बाह्य-रचनागत समानता के आधार पर जिन भाषाओं को एक ही समूह या वर्ग में रखा जाता है, उनके मध्य कोई नाता-रिश्ता नहीं होता है। साथ ही रचनागत समानताएँ कभी नवनिर्मित होती हैं, कभी लुपा । यथा- आज की योगात्मक भाषाएँ कल अयोगात्मक हो सकती हैं और उज़ख हो सकती हैं । अस्तु! बाहय-सरंचना आधृत वर्गीकरण - आकृति मूलक - न तो स्थायी वर्गीकरण हो पाता है और न हो भाषाओं की परस्पर ऐतिहासिक संबद्धता का प्रमाण ही बन पाता है और वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य तो भाषाओं की परस्पर संबद्धता का इगन है । इस उद्देश्य की सिद्धि तो केवल 'पारिवारिक वर्गीकरण' द्वारा ही संभव हो पाती है, जो स्थायी भी होती है ।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि भाषा-परिवार की संकल्पना का आधार एकाधिक भाषाओं का एक मूल से विकास है । इसलिए भाषा परिवार की तुलना एक वृक्ष से की जा सकती है । जिस प्रकार किसी वृक्ष के एक तने से विभिन्न शाखा-प्रशाखाएँ विकसित होकर

भी एक होने का ही बोध कराती है । उसी प्रकार एक मूल भाषा से निष्पन्न अनेक भाषाएँ परस्पर संबद्ध होती हैं । जिस तरह एक पूर्वज से उत्पन्न सभी मनुष्य एक गोत्र के माने जाते हैं, उसी तरह एक भाषा से कालांतर में अनेक सगोत्र भाषाओं की उत्पत्ति होती है, जो एक परिवार में रखी जाती हैं और ऐसी भाषाएँ एक भाषा-वंश वृक्ष की शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं । यथा-संस्कृत, जर्मन, लातिन, फारसी, फ्रेंच, अंग्रेजी, हिन्दी के बीच हजारों मील की दूरी है, पर उनमें आश्चर्यजनक साम्य है । संस्कृत- पितृ, मातृ एंव भ्रातृ क्रमश: लातिन में, पातेर मातेर (फ्रातेर, मुत्तेर), ब्रदेर हो जाता है । निश्चय ही इतना साम्य आकस्मिक या अकारण नहीं हो सकता । इसका कारण है - इन भाषाओं का एक मूल से विकास । विश्व के भाषा परिवार निर्धारण हेतु भाषाओं की भौगोलिक स्थिति, स्थानीय समीपता, मूल शब्दावली में समानता, अर्थगत, व्याकरण गत तथा ध्वन्यात्मक समानता को भी आधार बनाया जाता है ।

अध्ययन की सुविधा हेतु विश्व के भाषा-परिवारों को चार भाषा खण्डों में विभक्त कर उनकी सूची यहाँ प्रस्तुत है-

(क) यूरेशिया (यूरोप एवं एशिया) - (1) भारोपीय परिवार, (2) द्रविड़ परिवार, (3) बुरूशस्की परिवार, (4) यूराल- अलाई परिवार, (5) काकेशी परिवार, (6) चीनी परिवार, (7) जापानी कोरियाई परिवार (8) हाइपर बोरी अत्युतरी परिवार, (9) बास्क परिवार, (10) सामी-हामी परिवार

(ख) अफ्रीका खण्ड - (11) सूडानी परिवार, (12) ब्रॉटू परिवार, (13) होतेन्तोत बुशमेनी परिवार ।

(ग) प्रशान्त महासागरीय खण्ड - (14) मलय बहुद्वीपीय परिवार/मलय पालेनिशियन परिवार (15) पापुई परिवार, (16) आस्ट्रेलियाई या आस्ट्रो एशियाटिक परिवार, (17) दक्षिण पूर्व एशियाई परिवार

(घ) अमेरिका खण्ड - (18) अमरीका के भाषा परिवार (इस परिवार में लगभग 100 भाषाओं की कल्पना की गई है) ।

15.3 विश्व के भाषा परिवार

15.3.1 भारोपीय परिवार

भारोपीय परिवार संसार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवार है । (1) यह संसार के बहुत बड़े भू-भाग में फैला हुआ है और हर कोने में इस परिवार की भाषाओं के प्रयोक्ता मिल जाएँगे । फलस्वरूप संसार में, अन्य परिवारों की तुलना में इसे बोलने वालों की संख्या कई गुनी अधिक है । (2) साहित्य की दृष्टि से यह सर्वाधिक प्राचीन परिवार है, अर्थात इस परिवार की एक नहीं अनेक भाषाओं में ईसा पूर्व हजारों वर्ष पहले ही साहित्य सृजन प्रारंभ हो चुका था; और इस साहित्य की विविधता तथा उत्कृष्टता के समक्ष भी अन्य परिवारों का साहित्य खड़ा नहीं हो पाता । (3) वस्तुत: भारोपीय परिवार का उत्कृष्ट तथा विविधता से पूर्ण साहित्य उसकी संस्कृति और सभ्यता का भी डंका पीटता है । (4) इस परिवार की संस्कृत, अरबी, जर्मन,

फ्रांसीसी, अंग्रेजी एंव रूसी भाषाओं में विद्यमान वैज्ञानिक साहित्य भी अप्रतिम है । विगत शताब्दियों में हुई वैज्ञानिक प्रगति का श्रेय भी अप्रतिम है । विगत शताब्दियों में हुई राजनीतिक प्रभुत्व एवं उपनिवेशवादी व्यवस्था के चलते इस परिवार की कई भाषाएँ अपने क्षेत्र से निकलकर दूसरे क्षेत्रों में फैली । अमेरिका, भारत, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया आदि में अंग्रेजी का वर्चस्व कथन का प्रमाण हैं । (6) भाषा विभाग की दृष्टि से भी यह परिवार सर्वाधिक उल्लेख्य है । इस परिवार की भाषाओं का जितना अधिक अध्ययन हुआ है, उतना अन्य परिवारों की भाषाओं का नहीं । सर्वमान्य तथ्य और सत्य है कि भाषा विज्ञान का आरंभ ही इस परिवार की भाषाओं के अध्ययन से हुआ । सन् 1886 में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाईटी के सम्मुख सर विलियम जोन्स ने पहली बार ग्रीक और लैटिन से संस्कृत के घनिष्ट संबंध की घोषणा की थी और उसी समय उन्होंने इन तीनों के एक मूल भाषा से विकसित होने की अवधारणा प्रस्तुत की थी । सर जोन्स के इस भाषण से तुलनात्मक भाषा विज्ञान का जन्म हुआ ।

अस्तु जनसंख्या, व्यापकता, साहित्य सम्याता संस्कृति, वैज्ञानिक प्रगति, राजनीतिक एंव भाषा वैज्ञानिक आदि सभी दृष्टियों से भारोपीय परिवार विश्व की भाषाओं में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है ।

भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की प्रचुरता एंव वैविध्य के कारण इस परिवार के नाम के संबंध में भी विवाद हुआ । जर्मन भाषा वैज्ञानिकों ने इसका नाम इण्डो जर्मनिक' दिया । अन्य ने इसे 'आर्य' नाम देना पंसद किया । इनमें पहले का आधार भौगोलिक और दूसरे का जाति विशेष था, ये दोनों नाम इस परिवार की समस्त भाषाओं का संकेत नहीं कर पाते । कालांतर में सेमेटिक-हैमेटिक की तर्ज पर 'जफेटिक' नाम सुझाया गया । इसे लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई ।

भारोपीय नाम भी अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से युक्त हैं; क्योंकि इस वर्ग की भाषाएँ न तो पूरे भारत और न ही पूरे यूरोप में बोली जाती हैं । दूसरी तरफ इन दोनों क्षेत्रों के बाहर अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड में भी ये भाषाएँ बोली जाती है । इसी परिवार की तोखारी इस सीमा से परे तुर्किस्तान में बोली जाती है । साथ ही यह नाम भी भौगोलिक स्थिति पर आधृत है । बावजूद इसके, यह नाम सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ और आज भी इसी नाम से इस परिवार की भाषाएँ जानी पहचानी जाती हैं ।

सन् 1893 में एशिया माइनर के बोगाज कोई नामक स्थान की पुरातात्विक खुदाई में कुछ कीलाक्षर मिले । चेक विद्वान दवेजनी ने इन्हें पढ़कर इस भाषा को 'हित्ताइत' नाम दिया । इससे यह सिद्ध हुआ कि हित्ताइत भारोपीय भाषा की परवर्ती विकसित भाषा न होकर उसकी समकालीन थी । इस तथ्य के कारण इसे भारोपीय भाषा की शाखा मानना उचित नहीं था । अस्तु इन विद्वानों ने इस परिवार का नाम 'भारत-हित्ती' दिया । इससे समस्या सुलझने के बजाय और उलझी । वस्तुतः भारत और हित्ती नाम क्रमशः देश और जाति के संकेतक हैं । इस नाम से इस भाषा परिवार के विस्तार का भी पता नहीं चलता । यधपि आज के विद्वान भारत-हित्ती नाम को अधिक सार्थक मानते है, किंतु लोकप्रियता के धरातल पर 'भारोपीय' से यह बहुत पीछे है ।

मूल 'भारोपीय' भाषा अथवा भारत-हित्ती की लिखित सामग्री उपलव्य नहीं । संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के प्राचीनतम रूप के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा मूल 'भारोपीय' भाषा की पुनर्संरचना का प्रयास किया गया । इस कल्पित पुनर्सरचित भाषा को ही भाषा वेघायानिक ने मूल भारोपीय भाषा कहा । किंतु संस्कृत, ग्रीक, लैटिन को देखने से यह प्रतीत होता है कि ये भाषाएँ किसी भाषा के विभिन्न रूपों से विकसित हैं न कि उस भाषा से सीधे । वस्तुतः साहित्य और शासन द्वारा पोषित भाषाओं के विपरीत लोक में विद्यमान बोली के विभिन्न रूपों से निर्मित होकर एक नई भाषा जन्म लेती है; जो कालांतार में पूर्व की साहित्यिक भाषा के रूढ़ होने पर उसे अपदस्थ कर उसका स्थान ग्रहण करती है । यह भाषा के विकास (परिवर्तन) की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है । संस्कृत से लौकिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत से पालि प्राकृत, फिर प्राकृत से अपभ्रंश के विकास की प्रक्रिया इसके प्रमाण हैं । ये सीधे, रूढ़ या परिनिष्ठित हुई भाषा से विकसित नहीं हुई, अपितु साहित्यिक या मानक भाषा के विरूद्ध समानांतर रूप में लोक की स्वाभाविक प्रवृत्ति से विकसित हुई और इन्होंने अपने स्परूप संगठन हेतु एक नहीं व्यापक परिक्षेत्र की बोलियों के रूपों को अपने में समाहित किया । अस्तु संस्कृत, ग्रीक परिकल्पित मूल भारोपीय से विकसित न होकर मूल भारोपीय भाषा के समानांतर लोक में प्रचलित बोलियों से विकसित हुई । यही कारण है कि इनमें एकाधिक बोलियों (भाषाओं) की विशेषताएँ मिलती हैं ।

भारोपीय भाषा के मूल स्थान के प्रश्न ने भावनात्मक विवाद को जन्म दिया । कोई इसे यूरोप का सिद्ध करता है तो कोई भारत का तथा कुछक लोग इसे एशिया का कोई स्थान मानते हैं । लोकमान्य तिलक इसके मूल स्थान को उत्तरी ध्रुव के निकट स्वीकार करते हैं । कुछ विद्वान मध्य एशिया में यूराल-अल्ताई के निकटवर्ती मैदान को इसका मूल स्थान स्वीकार करते हैं । फिलहाल डॉ. राजमणि शर्मा की दृष्टि में प्राचीन आर्यावर्त्त ही इस भाषा का मूल स्थान रहा है ।

'भारोपीय भाषा परिवार' के अध्येताओं ने यह तो स्वीकार किया कि इस परिवार की भाषाएँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, कुछ में अधिक निकटता है और कुछ में कम । समूचे विश्व में फैले इस भाषा परिवार के भाषाओं की निकटता और दूरी को ही लक्ष्य में रखकर भाषा वैज्ञानिक, सघन अध्ययन की सुविधा हेतु इसे दो परिवारों में बाँटते हैं - (1) केंतुम और (2) सतम् ।

वस्तुतः इन भाषाओं की ध्वनियों की तुलना के पश्चात् सन् 1870 ई. में अस्कोली नाम भाषा-वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मूल भारोपीय भाषा की कंठ्य क्, ख् आदि रह गई हैं तथा कुछ में संघर्षी स्, श्, ष्, ज् हो गई हैं । उदाहरण के लिए मूल भारोपीय भाषा का शब्द 'दक्' ग्रीक में 'दक' है किंतु संस्कृत में 'दश' । इस प्रवृत्ति की 'सौ' के वाचक शब्दों की सहायता से अपने निष्कर्ष को प्रमाणित किया । लातिन में 'सौ' को 'केतुम' कहते हैं और अवेस्ता में 'सतम्' । इसलिए उसने 'केंतुम्' और 'सतम्' वर्ग में समस्त भारोपीय भाषाओं को विभाजित किया । यह विभाजन निम्नलिखित है - -

केंतुम् वर्ग - ग्रीक, इतालिक केलिटिक जर्मनिक, तोखारी और हित्ताइत ।

सतमू वर्ग - बाल्टो स्वालिक आरमीनी अलबीनी भारत-ईरानी

यदि हित्ताइत को भारोपीय के समकक्ष रखा जाएगा तो हित्ताइत एक स्वंतत्र भाषा परिवार होगा और शेष भारोपीय वर्ग के उपर्युक्त दो वर्गों में होंगे । हित्ताइत आज लुपा भाषा है।

केंतुम वर्ग

(1) **ग्रीक (हेलेनिक)** केंतुम समुदाय की सर्वाधिक प्राचीन भाषा है । इसकी संस्कृति और साहित्य अत्यधिक पुराना है । ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व होमर ने 'इलियड' और 'ओडिसी' की रचना की । ग्रीक वर्णमाला से ही समस्त यूरोपीय लिपियों का विकास हुआ। प्लेटो और अरस्तु जैसे महान विचारक एवं सिकंदर जैसा विश्वविजेता ग्रीक की उप्लब्दी है । यह अलवानिया युगोस्लाविया, बुलगारिया तथा तुर्की, साइप्रस में बोली जाती है ।

(2) **इतालिक (लैटिन)** रोमन कैथोलिक संप्रदाय की धर्मभाषा एवं यूरोप की सांस्कृतिक भाषा है । यूरोप में इसका वही स्थान है, जो भारत में संस्कृत का । मध्यकालीन लैटिन से आधुनिक लैटिन का विकास हुआ । लातिन के अतिरिक्त फ्रांसीसी (फ्रांस), स्पेनी (स्पेन), पुर्तगाली (पुर्तगाल), एवं रूमानी (रूमानिया) इस उप परिवार की अन्य प्रसिद्ध भाषाएँ हैं । इन भाषाओं में ध्वन्यात्मक अंतर अधिक है । उपनिवेश विस्तार के कारण इस उप परिवार की भाषाओं का फैलाव कनाडा, मैक्सिको, दक्षिणी अमेरिका में भी है ।

(3) **जर्मनिक** भारोपीय परिवार का महत्वपूर्ण उप परिवार है । अंग्रेजी इसी उप वर्ग की भाषा है, जो प्रयोग की दृष्टि से आज संसार भर में छायी है । गाथिक इस उप परिवार की प्राचीनतम भाषा है । बाइबिल का अनुवाद (चौथी शती) गाथिक की सबसे प्राचीन रचना है । डच, जर्मन भी प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । साहित्य' दर्शन, ज्ञान की दृष्टि से अंग्रेजी पर्याप्त महत्वपूर्ण है । वैसे दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी से अधिक जर्मन समृद्ध मानी जाती है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी जर्मन एक महत्वपूर्ण भाषा है । इस उप परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं - आइसबैण्डी (आईसलैण्ड), डेनी (डेनमार्क), नार्वेई (नार्वे), स्वीडी (स्वीडेन), अंग्रेजी (इंग्लैण्ड), उच्च और निम्न जर्मन (जर्मनी), डच (हालैण्ड), पलेमी (बेल्लियम) । प्रारंभ में ये भाषाएँ योगात्मक थीं, किंतु आज इनमें अयोगात्मकता की प्रवृत्ति दिखायी देती है ।

(4) **केल्टिक** भाषाएँ दासोज़खी है । दो हजार वर्ष पूर्व केल्टिक परिवार की भाषाओं का प्रयोग यूरोप के बड़े भू-भाग - ब्रिटेन, फ्रांस, उत्तरी इटली से लेकर एशिया माइनर आधुनिक तुर्की तक था । किंतु कालांतर में रोमनों को प्रभुत्व और राज्य विस्तार के साथ-साथ केल्टिक जाति और भाषा का दास आरंभ हुआ। आज इनके प्रयोक्ताओं की संख्या बहुत कम है; राजनीतिक महत्व भी समाप्त है । आज उत्तरी पश्चिमी फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन, स्काटलैण्ड, आयर लैण्ड, वेल्स और कार्नवाल में केल्टिक बोली जाती है । आयरलैण्ड की आयरिश, वेल्सकी वेल्स इसकी प्रमुख भाषाएँ हैं । मन, स्काच, ब्रिटेनी और गाल भी इस उप परिवार की भाषाएँ हैं । भारोपीय भाषा परिवार में यह सर्वाधिक

कठिन और अस्पष्ट है । वस्तुत: इसके शब्दों में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि उन्हें पहचानना कठिन है और इनके आधार पर ध्वनि-परिवर्तन संबंधी नियमों की परिकल्पना टेढ़ी खीर है । वाक्य संरचना की दृष्टि से भी इस भाषा-शाखा की भाषाएँ अत्यंत जटिल है ।

(5) **तोखारी** का पता बीसवीं सदी में उस समय लगा, जब पूर्व तुर्किस्तान से प्राप्त कुछ पत्रों एवं ग्रंथों का अध्ययन किया गया । यह तोखार जाति की और भारोपीय परिवार की भाषा है । तोखारो का राज्य मध्य एशिया (तुरफान) में दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से 7 वीं शताब्दी ईसवी तक. था, जिसे हूणों ने विनष्ट किया । स्थान निकटता के कारण इस पर यूराल-अल्टाई भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट है । तोखारी में प्राप्त सामग्री ईसा की प्रथम शताब्दी से पूर्व की है ।

(6) **हित्ती या हित्ताइत** का पता 2०वी शताब्दी के आरंभ में एशिया माइनर के बोगाजकोई (तुर्की) में अंकारा से 9० मील पूर्व एक गाँव की खुदाई में प्राप्त सामग्री से लगा । ये मिट्टी की चौड़ी पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों से लिखे अभिलेख हैं, जिनका समय ईसा पूर्व 2000 के लगभग आँका गया । इनमें अनेक सुमेरी और अक्कदी भावलेख भी हैं, जिनके कारण प्रारंभ में हित्ती के परिवार का निर्धारण न हो पाया । यह भारोपीय की एक शाखा है, भारोपीय से हित्ती का वही संबंध है, जो ग्रीक या संस्कृत का । यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि तोखारी और हित्ती भारोपीय से सबसे पहले अलग हुई। हिंत्ती के कारक, सर्वनाम भारोपीय के समान हैं । लिंग दो - पुल्लिंग, नपुंसक एवं दो काल - वर्तमान और भूत (हित्ती) भारोपीय की कई शाखाओं में मिलते हैं ।

(7) **वाल्तो स्ताविक** की दो शाखाएँ हैं - बाल्टिक एवं स्ताविक । इसकी उपबोलियाँ हैं - लिथुआनी और लेती (लेटिश) । स्लाविक तीन वर्गो - पूर्वी (महारूसी, श्वेत रूसी, लघु रूसी (उक्रायनी)! पश्चिमी (पोली, चेक, स्लोवाक) एंव दक्षिणी (बुलग़री, सर्वोक्रोतो तथा क्लोवनी) - में विभक्त की जाती हैं । बाल्टिक शाखा की लिथुआनी भारोपीय परिवार की प्राचीनतम भाषा है । यह वैदिक संस्कृत के समान पूर्ण श्लिष्ट है । इस भाषा में साहित्य तो नहीं है, किंतु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है । पूर्वी स्ताविक की महारूसी या रूसी सोवियत संघ की राष्ट्र भाषा है । शासन, शिक्षा, प्राविधिक एंव वैज्ञानिक साहित्य में इसी का प्रयोग होता है । 18वीं सदी से प्रांरभ इस भाषा के साहित्यकारों - चिंतको में तुर्गनेव, दास्तायेव्स्की, चेखव, तालेस्तोय, गोर्की आदि प्रख्यात है ।

(8) ईरान से सटे आरमीनिया की भाषा आरमीनी है । इसके अनेक शब्द, प्रत्यय, उपसर्ग ईरानी हैं । यह बाल्तो स्लाविक और आर्य भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है ।

(9) अलबानी (इलीरी) के अध्ययन की सामग्री अत्यल्प है । साहित्य का अभाव है । सोहलवीं शताब्दी का बाइबिल का एक अनुवाद उपलब्ध है । इसके साहित्य में लोकगीतों की प्रधानता है । अलबानी आन्द्रियातिक सागर के पूर्व स्थित पहाड़ी प्रदेश की भाषा है । लिखित रूप में आने से पहले ही अलबानी में ध्वनि पद रचना की दृष्टि

से बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है । फलस्वरूप कुछ भाषा वैज्ञानिक इसे भारोपीय परिवार में स्थान देने में संकोच करते हैं । ग्रीक, तुर्की के अनेक शब्द इस भाषा में भरे पड़े है ।

(10) भारत-ईरानी (आर्य) दो उप भाषा परिवारों का समूह है । अर्थात भारतीय वर्ग और ईरानी वर्ग । भारतीय वर्ग की प्रमुख भाषा संस्कृत है और ईरान की ईरानी । ईरानी की दो शाखाएँ - (1) प्राचीन फारसी और (2) अवेस्ता हैं । ईरानी का प्रतिनिधि साहित्य पारसियों का धर्मग्रंथ अवेस्ता (जरथुष्ट) है । प्राचीन बैक्ट्रिया राज्य की यह राजभाषा थी । मध्यकालीन ईरानी प्राचीन फारसी का विकसत रूप है, इसे फारसी या पहलवी भी कहा जाता है । पहलवी के दो रूप - (1) हुज्वारेश, (2) पाजंद है । आधुनिक ईरानी अथवा आधुनिक फारसी में हिंदी की ही भांति वियोगात्मकता के लक्षण दिखाई देते हैं । इसका आरंभिक ग्रंथ महाकवि फिरदौसी (150 से 1020 ई) का 'शाहनामा' नामक राष्ट्रीय महाकाव्य है । आधुनिक फारसी की अनेक बोलियाँ हैं । असेटिक, कुर्दी या कुर्दीश, विलोची, पश्तो तथा देवारी इनमें प्रमुख हैं ।

ईरानी भाषा का सहित्य अत्यंत प्रचीन तो मान्य हे किंतु इन प्राचीन निधियों का कोई पता ठिकाना नहीं । इसलिए इसकी भाषाओं का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत कर पाना कठिन है । इसके प्राचीनतम साहित्य फारसी धर्मग्रंथ 'अवेस्ता' की भाषा ऋग्वेद से मिलती जुलती है । इसके अतिरिक्त हख्यानी बादशाहों के छठी सदी ई. पू के कुछ पुराने शिलालेख भी मिलते हैं ।

वस्तुतः भारत-ईरानी शाखा की प्रमुख भाषा है - संस्कृत । संस्कृत का प्राचीनतम रूप है - वैदिक संस्कृत । वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद के दूसरे से नवम मण्डल की भाषा में मिलता है । वेद केवल धर्मग्रंथ ही नहीं हैं, इनमें भारतीय दर्शन चिंतन का भण्डार है । विद्वानों का भी अभाव इस साहित्य में नहीं है । वैदिक भाषा विभिन्न समयों, विभिन्न स्थानों, विभिन्न ऋषियों की भाषा है । यह साहित्य और लोक भाषा का मिश्रित रूप है । वैदिक भाषा का दूसरा रूप परवर्ती रचना - ब्रादमण ग्रंथों और उपनिषदों में मिलता हैं । इसका काल ईपू 2500 से ई.पू. 1000 तक मान्य है । यह आर्यो की भाषा है । आर्यो की सत्ता की स्थापना के साथ ही इसके विभिन्न रूपों का, स्थानीय संयोग से, विकास हुआ । इस क्रमिक साहित्यिक भाषा का दूसरा रूप है - लौकिक संस्कृत । यह वैदिक काल में जन की बोलचाल की भाषा थी ।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की बढ़ती हुई भिन्नता से चिंतित होकर पाणिनि ने वैदिक भाषा का परिनिष्ठीकरण किया । यह परिनिष्ठीकरण उन्होंने अपने प्रसिद्ध व्याकरण 'अष्टाध्यायी' के माध्यम से किया । पतंजलि ने इसका महाभाष्य प्रस्तुत किया । पाणिनि के प्रयास से भाषा का एक स्थिर रूप हुआ, जिसका नाम - संस्कृत पड़ा । पाणिनि ने संस्कृत के उदीव्य (उत्तरी) रूप को आदर्श माना । वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, हर्ष, माघ, बाणभट्ट आदि इस के प्रख्यात रचनाकार हैं ।

वैदिक भाषा में मूल भारोपीय की अपेक्षा सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण 13 स्वर ध्वनियाँ हैं, 9 मूल और 4 सांध्य स्वर । व्यजनों के पाँच वर्ग बन चुके थे । संस्कृत शब्द भण्डार की दृष्टि से पर्याप्त संपन्न भाषा थी । उसमें नए शब्द निर्मित की अपूर्व क्षमता थी । मध्यकालीन एवं आधुनिक आर्य भाषाएँ साहित्यिक और भाषिक धरातल पर प्राचीन आर्य भाषा की अनेक विशेषताओं को अपने में संजोए हैं । मूल भारोपीय की भाषिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं - (1) मूल स्वर - पाँच और पाँच इन्हीं के दीर्घ रूप । आज ये हिन्दी में सुरक्षित है । - अ आ, इ ई, उ ऊ, ए, ऐ । (2) संयुक्त हस्व स्वरों की संख्या 16 है और संयुक्त दीर्घ स्वर 18 हैं । (3) उदासीन अतिहस्व है - अ अर्धस्वर - य्, व संस्कृत और हिन्दी में यथावत सुरक्षित हैं । चार स्वरवत् प्रयुक्त ध्वनियाँ और इनके हस्व और दीर्घ रूप भी हैं । (4) स्वरों में आनुनासिक का विधान नहीं था । (5) क वर्ग में तीन प्रकार की व्यंजन ध्वनियाँ थी । वर्ग एक की ध्वनियाँ - क्, ख्, ग्, घ् ; संस्कृत में स, श, ष, + ऊष्म ध्वनियों में विकसित हुई और वर्ग (2) की ध्वनियाँ क्य, ख्य, रय, ध्य; च वर्ग में तथा वर्ग तीन की ध्वनियाँ क्व, ख्य, गव, ध्व; क वर्ग में । यह विद्वानों की दूरारूढ़ कल्पना है । (6) अंतस्थ व्यंजन य्, र्, ल्, व, न, म् संस्कृत में सुरक्षित हैं । (7) 'ह' के संभवत: दो रूप थे - सघोष और अघोष । (8) संस्कृत ध्वन्यात्मक संरचना में स्वराघात का महत्व था, जो इस परिवार की भाषाओं में केवल संस्कृत में सुरक्षित है ।

भारोपीय भाषाओं की व्याकरणात्मक संरचना

मूल भारोपीय भाषाओं की प्रमुख व्याकरणात्मक संरचनागत विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत हैं - (1) भारोपीय भाषा श्लिष्ट एवं प्रश्लिष्ट योगात्मक के मध्य की थी, जिनमें अर्थतत्व एवं संबंध तत्व परस्पर घुले-मिले रहते थे । (2) प्रत्ययों की बहुलता थी । धातु में प्रत्यय जोड़कर पद रचना की जाती थी । पद रचना जटिल थी । मुख्यत: धातुओं से शब्द निष्पन्न होते थे । (3) व्याकरणात्मक शब्द, संइत, क्रिया एवं अव्यय अलग-अलग थे । कितु सर्वनाम एंव विशेषण संइग़ के ही अंश थे । सर्वनामों में विविधता थी । (4) शब्द रूपों में तीन पुरूष - प्रथम, मध्यम, उत्तम; तीन लिंग - स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसक लिंग; तीन वचन - एक वचन, द्विवचन, बहुबचन एवं संज्ञा की आठ विभक्तियाँ थीं । संभवत: इसी आधार पर संस्कृत में आठ कारकों का प्रयोग हुआ । (5) शब्दों की सामासिक रचना भी होती थी, जो इस भाषा की अन्यतम विशेषता है । (6) क्रिया के चार काल एवं पग़ँच भाव थे । क्रिया में काल की अपेक्षा कार्य की पूर्णता-अपूर्णता की स्थिति का महत्व था । (7) आत्मने पद एवं परस्मैपदीय क्रियाएँ अस्तित्व में थी । (8) व्याकरणात्मक संरचना में सुरों एवं स्वराघात का महत्व था । साथ ही शब्द के मध्य स्वर-परिवर्तन रचनात्मक महत्व रखता था । यह प्रवृत्ति हिन्दी में भी दिखाई देती है । यथा- पढ़ना = पढ़ाना । दोनों के अर्थ भिन्न हैं । (9) अनेक रूपों में धातु का अभ्यास द्वित्व हो जाया करता था, जैसे - पठ् एवं नद् के प्रथम व्यंजन का द्वित्त्व हो कर 'पपाठ', 'ननाद' । (10) स्वराघात प्रक्रिया इसकी प्रमुख विशेषता है । ग्रीक तथा वैदिक संस्कृत

में भारोपीय के स्वराघात ठीक रूप में मिलते हैं । कालांतर में सुर के साथ स्वराघात का प्राबल्य हो जाता हैं । यथा-सोन्ति = सै. सति, ग्रीक - एंति लै0 - सुन्त ।

ऐसा प्रतित होता है कि भारोपीय भाषा की व्याकरणात्मक तथा ध्वन्यात्मक संरचना का आधार संस्कृत भाषा है । वस्तुत: एकाध को छोड़कर शेष विशेषताएँ संस्कृत में ' यथावत मिलती हैं ।

15.3.2 द्रविड़ परिवार

द्रविड़ एक जाति-विशेष का नाम है । इस जाति द्‌वारा बोली जाने वाली समस्त भाषाओं का समूह "द्रविड" परिवार के नाम से जाना जाता है । वैसे तो 'द्रविड़' एवं तमिल एक ही शब्द के पर्याय हैं और सच यह है कि द्रविड़ शब्द ही विकसित होकर तमिल' बना । द्राविड़ > द्रविड़ > दमिल > तमिल । आज 'तमिल' इस परिवार की एक विशिष्ट भाषा है । इस परिवार के लोग मूलत: दक्षिणी भारत में बसे हैं, किंतु भारत के पूर्वी भागों - बिहार, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश में भी इस परिवार की कुछ भाषाएँ बोली जाती हें । भारत के अतिरिक्त लंका, लक्षद्‌वीप, पश्चिमोत्तर में बलुचिस्तान में भी इस परिवार के लोग रहते हैं ।

इस परिवार की तेरह भाषाओं में चार भाषाएँ ही प्रमुख हैं - तमिल (मद्रास), तेलुगु (आध्रप्रदेश), कन्नड (मैसूर), मलयालम (केरल) । अन्य हैं - तुलू (मुंबई की सीमा पर), तुर्ग (मैसूर में), दुडा (राजमहल बंगाल में), कुई या केधी (उड़ीसा में), कोलाभी (बरार के पश्चिमी भाग में), ओराँव (बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश में), गोडी (मध्य भारत में) एवं ब्राहुई (बलूचिस्तान में) ।

वस्तुत: द्रविड़ परिवार की आर्य भाषा परिवार के विरूद्ध स्वतंत्र संकल्पना उपनिवेशवादी ताकतों की देन है । सच यह है कि पूरे भारत में एक भाषा-परिवार की भाषा और मूल भारतीय संवेदना हमेशा विद्‌यमान रही । इतना ही नहीं, द्रविड़ परिवार की प्रमुख चार भाषाओं में केवल तमिल को छोड़कर शेष तीन - तेलुगु, मलयालम और कन्नड भाषाओं में संस्कृत की समस्त ध्वनियाँ विद्‌यमान हैं । शब्द-संपदा के धरातल पर भी इन तीनों भाषाओं में संस्कृत के तत्सम एंव हिन्दी में प्रयुक्त तद्भव शब्दों की संख्या सात प्रतिशत के आसपास है । तमिल में भी 16 वी शती में प्रारंभ शुद्धतावादी आंदोलन के पूर्व तक इनकी संख्या 70 प्रतिशत के आसपास थी । तमिल में संस्कृत की महाप्राण ध्वनियों का लेखन में तो अभाव है, किंतु बोलचाल में ये विद्‌यमान हैं । तमिल में जब प्रथम ध्वनि आनुनासिक के बाद दो स्वरों के बीच प्रयुता होती है' तब वह घोष में बदल जाती है, अर्थात् हिन्दी की तीसरी ध्वनि बन जाती है । हिन्दी की पंचम ध्वनि नासिक्य तमिल में उपस्थित है इसके अतिरिक्त हिन्दी की य, र्, ल्, व्, श्, ष सभी तमिल में विद्‌यमान है ।

द्रविड़ परिवार की वट्टलेंत (ग्रंथ) लिपि का विकास उसी बहमी लिपि से हुआ, जिससे देवनागरी का विकास हुआ । कन्नड, तेलुगु, मलयालम ध्वनि, शब्द और संरचना के धरातल पर संस्कृत और हिन्दी से क्रमश: प्रभावित हुई । हिन्दी के संयुक्त व्यंजन क्ष, त्र तथा ज्ञ भी

कन्नड में उपस्थित हैं । इसमें पंद्रह स्वर और सत्ताइस व्यंजन हैं । हिन्दी की भाँति ऋ, ॠ, ऌ, लु का इसमें भी अभाव है । तेलुगु के प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डॉ. चिकूटी नारायण राव ने तेलुगु को आर्य परिवार की भाषा सिद्ध करते हुए 'आंध्र भाषा -चरित्र' (तेलुगु भाषा का इतिहास) नामक वृहत् ग्रंथ प्रस्तुत किया है । वे तो व्याकरण, वर्णमाला दोनों के धरातल पर तेलुगु को संस्कृत एवं हिन्दी से प्रभावित मानते हैं । एक कारण और है - आध्रो के 'पूर्वज आर्य क्षत्रिय थे । इस भाषा की लिपि में 56 अक्षर हैं, और हिन्दी की समस्त ध्वनियाँ इसमें सम्मिलित हैं ।

ठीक यही स्थिति मलयालम की है । अधिकांश मलयालयी विद्वान इसका विकास संस्कृत से मानते है । कतिपय विद्वान इसे तमिल की बेटी मानते हैं और आठवीं शताब्दी में इसके अलगाव को स्वीकार करते हैं । जो वैज्ञानिक धरातल पर खरा नहीं उतरता । सच यह है कि मलयालम द्रविड़ भाषा से अलग होती गयी और संस्कृत के पूर्ण प्रभाव से इसका विकास हुआ ।

विशेषताएँ -

1 द्रविड़ परिवार की तमिल भाषा का साहित्य सातवीं सदी से भी पूर्व का हैं । चारों भाषाओं में समृद्ध साहित्य उपलब्ध है, किंतु अधिकांश साहित्य परवर्त्ती है ।

2 हिन्दी की भाँति इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट अन्तव योगात्मक हैं । इनमें प्रकृति प्रत्यय का स्पष्ट भेद रहता है । इस धरातल पर ये तुर्की सदृश हैं ।

3 शब्द प्राय: स्वरांत होते हैं ।

4 मूर्धन्य ध्वनियों की प्रधानता के कारण कतिपय विद्वान संस्कृत की मूर्धन्य ध्वनियों पर इस परिवार का प्रभाव स्वीकार करते हैं ।

5 सघोष ध्वनियाँ शब्दारंभ में प्रयुता नहीं होती; किंतु मध्यस्थितियों में इनका प्रयोग अपरिहार्य है, विशेषकर तमिल में ।

6 समस्वरता पर यूराल, अल्ताई परिवार का प्रभाव दिखाई देता है ।

7 ए, ओ दीर्घ भी है, ह्स्व एँ, आँ भी होते हैं ।

8 संज्ञाओं के चेतन एवं अचेतन भेद होते हैं ।

9 लिंग तीन हैं और वचन दो । लिंग का आधार प्राणित्त्व अप्राणित्त्व है ।

10 संज्ञा के अनुरूप विशेषण के रूप में पविर्तन नहीं होता ।

11 विभक्तियों का काम प्रत्ययों से लिया जाता है ।

12 क्रिया में तिडन्त से अधिक कृदन्त रूपों का प्रयोग होता है । पुरूष का बोध पुरूष वाचक सर्वनाम जोडकर कराया जाता है । कर्मवाव्य का अभाव होने से उसका कार्य सहायक क्रिया द्वारा लिया जाता है ।

13 काल अनिश्चय और निश्चय की भावना से निर्धारित होता है ।

14 भारतीय आर्य भाषाओं पर द्रविड़ भाषाओं एवं द्रविड़ भाषाओं पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव द्रष्टव्य है ।

15.3.3 बुरूशक्की परिवार (खजुआ या कुन्जुती परिवार)

यह उत्तर भारत के पश्चिमी छोर हुंजा, नागर, गिजिट घाटी तथा यासिन के एक भाग में बोली जाती है । बुरूशस्की का क्षेत्र तुर्की, तिबत्ती और भारत ईरानी परिवार की भाषाओं से घिरा है । कुछ भाषा वैज्ञानिक इसे द्रविड़ अथवा मुंडा से सम्बद्ध करते हैं, किंतु यह उनसे सर्वथा भिन्न हैं । आज तो इस परिवार का अस्तित्व लुप्त प्राय है, किंतु किसी समय यह भारत का महत्वपूर्ण भाषा परिवार था ।

15.3.4 यूराल अल्ताई परिवार

यूराल एवं अल्ताई पहाड़ों के बीच स्थित होने के कारण यहाँ के भाषा समूह का यह नाम प्रख्यात हुआ । कुछ इसे दो परिवार (1) यूराल एवं (2) अल्ताई मानते हैं और कुछेक इसमें से फिनिक्स और तुर्की भाषाओं को अलग कर इसे अलग - एक परिवार मानना पंसद करते हैं । यह परिवार टर्की, हंगरी, फिनलैंड तक फैला है, फिनलैंड की फिनिख हंगरी की मुनियार एवं टर्की की तुर्की इसकी प्रख्यात भाषाएँ हैं । इसके अतिरिक्त लापी (उत्तरी फिनलैंड एवं नार्वे), एन्तोनी (ऐस्तोनयों), सामवेद (साइबेरिया), किरगिज़ (किरगिज), अजर बैजान (अजर बैजान), उजवेक (उजबेकिस्तान), मंगोली (मंगोलिया), मंचूरी (मंन्चुरिया) तुगुजा (एनेसी से अखेत्स्क सागर तक) भाषाएँ भी इस परिवार के अंतर्गत आती है ।

विशेषताएँ

1 फिनिस मगियार एवं तुर्की तीनों में, विशेषकर तुर्की में साहित्य उपलब्ध है ।

2 तुर्की पर अरबी, फारसी का भी प्रभाव है, इसने स्वयं अरबी फारसी को प्रभावित किया है । तुर्की से शब्द धरातल पर हिन्दी भी प्रभावित है ।

3 फिनिक्स पर भारोपीय भाषा का अत्यधिक प्रभाव है ।

4 ये भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक हैं; धातु के पीछे प्रत्यय जोड़कर पदों की रचना की जाती है।

5 समस्वरता इस परिवार की एक और विशेषता है । समस्वरता से तात्पर्य है कि मूल शब्द में जैसा स्वर होगा प्रत्ययों में भी वैसा ही स्वर होगा । समस्वरता का प्रयोग उच्चारण सुविधा के लिए किया गया प्रतीत होता है ।

15.3.5 काकेशी परिवार

यह अनेक भाषाओं का ऐसा समूह है, जिनमें कुछ तो परस्पर समान है, किंतु कुछ एक - दूसरे से पूर्णतया भिन्न । इस परिवार की अनेक भाषाएँ अभी भी अपने सम्यक अध्ययन की प्रतीक्षा में हैं । अस्तु उनका परस्पर संबंध स्थापन और वैशिष्ठ्य रेखांकन एक कठिन कार्य है । नाम भी - काकेशी भौगोलिक है, भाषा-वैज्ञानिक नहीं । पहाड़ी क्षेत्र होने तथा परस्पर संपर्क की कमी के कारण बोलियों की संख्या अधिक है ।

काकेशस पर्वत माला काला सागर और कैस्पियन सागर के मध्य स्थित है । इसके प्रयोक्ता यहीं रहते है । इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ है - जार्जियन, मिग्रेली, स्वानी, सरकसी

चेचेन लेगी । आज इस क्षेत्र में रूसी भाषा का प्रचार अधिक है । जार्जी स्तालिन की मातृ भाषा थी । जार्जियन भाषा में ही कुछ साहित्य उपलब्ध है ।

विशेषताएँ -

(1) ये भाषाएँ अश्लिष्ट एवं श्लिष्ट के मध्य की हैं । (2) धातुओं में विभक्ति एवं प्रत्यय दोनों का प्रयोग होता है । (3) कुछ भाषाओं में 8 लिंग हैं । (4) काकेशस की उत्तरी शाखा में व्यंजनों की बहुलता और स्वरों की अल्पता है । 'अवर नामक भाषा में व्यंजनों की संख्या 43 हैं । (5) पद रचना अत्यंत जटिल है । (6)अनेक भाषाओं में सर्वनाम और क्रिया का योग हो जाता है, जो प्रश्लिष्टता का लक्षण है ।

15.3.6 चीनी तिब्बती (एकाक्षर) परिवार

इस परिवार की भाषाओं का क्षेत्र है - चीन एंव तिब्बती का भू-भाग । इस परिवार का 'एकाक्षर नाम उसकी आकृतिगत विशेषता के कारण पड़ा । इस परिवार की भाषाएँ - स्याम एवं बर्मा, भूटान तथा भारत के उत्तर क्षेत्र में भी प्रयुक्त होती है । थाई, तिब्बती, चीनी, बर्मी भाषाएँ इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं । उत्तरी-पूर्वी-भारत की नागा बोली भी इसी परिवार की हैं । चीनी भाषा का साहित्य सर्वाधिक पुराना है, जो ई.पू. तीन हजार वर्ष से मिलता है ।

विशेषताएँ -

(1) ये भाषाएँ अयोगात्मक है । फलस्वरूप वाक्य-रचना में शब्दों के स्थान की प्रधानता होती है । स्थान विशेष के कारण ही कोई शब्द संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि बनता है । स्थान परिवर्तन से अर्थ भी बदल जाता है । (2) शब्द प्राय: एकाक्षर एंव अपरिवर्तनीय होते हैं । अर्थात् इनमें विभक्ति, प्रत्यय आदि जैसा कोई तत्व नहीं होता । (3) विभिन्न प्रकार के स्वर या तानों (Tone) के प्रयोग से एक ही शब्द से कई अर्थ होते हैं, जिन्हें रिक्त (निपात) कहा जा सकता है । ये शब्द धारणात्मक अर्थ न देकर मात्र व्याकरणात्मक अर्थ देते है । (5) ध्वनि रचना में अनुनासिकता का अधिक प्रयोग होता है । (6) इस भाषा का कोई व्याकरण भी नहीं है।

15.3.7 जापानी-कोरियाई परिवार

जापानी और कोरियाई दो भाषाओं का परिवार है । इन भाषा-समूहों के संबंध में निश्चित ज्ञान का अभाव है । इसलिए लोग इसे अनिश्चित वर्ग में रखना पसंद करते हैं । कोई चीनी तिब्बती या कोई यूराल-अल्टाई परिवार में इनकी गिनती करता है । किंतु यह अलग वर्ग है । कोरिया एवं जापान देश की ये प्रमुख भाषाएँ है । जापानी एक संपन्न साहित्यिक भाषा हैं; इसमें वैज्ञानिक साहित्य भी प्रचुर है । इस भाषा का साहित्य सातवीं शती से मिलता है ।

विशेषताएँ -

(1) ये अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ है । (2) शब्द अनेकाक्षर होते है । (3) कुछ स्वर अनुच्चरित रहते है । (4) व्याकरणिक लिंग का अभाव होने से पुरूषत्व-स्त्रीत्व का बोध प्रकारांतर से कराया जाता है । यथा - ओ- इनु = कुत्ता, में-इनु = कुत्ती । (5) वचन की

धारणा भी अस्पष्ट है । प्रत्यय जोडकर बहुवचन का बोध कराया जा सकता है । को = बच्चा, दोनों = को - दोनों = बच्चे । (7) कारक संबंधों का बोध परसर्ग द्वारा कराया जाता है । यथा- वाताकुशि गा न् मैं, वाताकुशिनो द मेरा । (8) पदक्रम नियमित हैं । (9) संस्कृत के ही अनुसार संख्यावाचक का रूप बदलता है । (10) जापानी क्रिया में उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरूष का विभेद नहीं ।

15.3.8 अत्युत्तरी (हाइपरबोरी) परिवार

इसे पुरा एशियाई या पैलियो ऐशियाटिक भी नाम दिया जाता है । हाइपरबोरी का अर्थ है, अति उत्तरी । यह भौगोलिक परिवार अनेक छोटे-छोटे भाषा वर्गो में बँटा है, जिसका औत्पत्तिक संबंध अनिर्णीत है । एशिया के उत्तरी पूर्वी छोरों पर बसे अनेक द्वीपों, प्रायद्वीपों में यह बोली जाती है । अध्ययन के अभाव में इनके पारस्परिक संबंध और विशेषताएँ अभी तक अज्ञात है । प्रमुख भाषाएँ हैं - युकगिट, चुकची, कमचप्ल, कोरियक, गिलियक एंव अयन् ।

विशेषाताएँ -

(1) कारक अंत्य प्रत्यय द्वारा बनता है । (2) काल का निर्धारण सहायक क्रियाओं से होता है । (3) संख्याओं में दशमिक एंव विंशतिक प्रणालियों का मिश्रण हैं ।

15.3.9 बास्क (एडस्कर) परिवार

स्पेन एंव फ्रांस की सीमा पर पेरानीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बास्क भाषा बोली जाती है । यह चतुर्दिक आर्य भाषा से घिरी है । बोलने वालों की संख्या दो लाख से ऊपर है । पहाड़ी क्षेत्र एंव यातायात की सुविधा के अभाव में इसकी कई बोलियाँ विकसित हो गई हैं ।

विशेषाताएँ -

(1) यह अश्लिष्ट योगात्मक भाषा है । (2) उपपद, परसर्ग की भाँति बाद में लगता है । (3) क्रिया रूपों में जटिलता है । (4) सर्वनाम का क्रिया रूपों में संयोग होता है । (5) ग्रे के अनुासर वाक्य की बनावट जटिल एंव कठिन है । किंतु तारापोर वाला के अनुसार इसकी वाक्य रचना अत्यंत सरल है । (8) लिंग विचार केवल क्रिया में होता है । (7) शब्द भण्डार सीमित है । अपूर्व विचारों के बोधक शब्द विलुप्त नहीं है ।

15.3.10 सामी-हामी परिवार

सामी और हामी में समानता के बावजूद अनेक भेदक तत्वों की विद्यमानता के कारण भाषा-वैज्ञानिक इसे दो परिवार मानने के पक्षधर हैं । पर असमानता से अधिक इनमें समानताएँ हैं । साथ ही आज हामी परिवार की भाषाओं के लुप्त हो जाने के कारण इस क्षेत्र में भी सामी भाषाएँ प्रयुत[हो रहीं है । परिकल्पना के मूल आधार-हजरत 'नौह- के बड़े पुत्र सैम, छोटे पुत्र 'हैम' सगे भाई थे । इन्हीं के नाम पर क्रमश: सेमेटिक (सामी) हेमेटिक (हामी) नाम पड़ा । निश्चित ही दोनों एक ही परिवार के भाषा-भाषी रहे होंगे । अत: दोनों भाषाएँ एक ही स्त्रोत से विकसित हुई । अस्तु इन्हें अलग परिवार मानना उचित नहीं । सामी को सेमेटिक' और हामी को डेमेटिक परिवार भी कहा जाता हैं । सेमेटिक (सामी) की भाषाएँ अफ्रीका में मोरक्को से

स्वेज नहर तक फैली हैं, वैसे इसकी भाषाओं का अधिक प्रयोग एशिया में ही होता है । असीरियन, बैबीलियन मिनिशियन एंव अरमाइक इस परिवार की प्रमुख शाखाएँ हैं । बाइबिल की मूल भाषा प्राचीन हिब्रू एवं अरबी इसी परिवार की भाषा है । अरबी संसार की एक समृद्ध भाषा है, जिसने अनेक भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया है । कीलाक्षरों में लिखे असीरियन एवं बैबीलियन के उदाहरण ईसा से ढ़ाई-तीन हजार वर्ष पूर्व के माने जाते है ।

हामी या हैमेटिक परिवार की भाषाओं का मुख्य क्षेत्र उत्तरी अफ्रीका है । इस परिवार की बहुत कम भाषाएँ आज विद्यमान हैं, किंतु वे पूर्णतया दूसरी भाषाओं से इस कदर प्रभावित है कि उनका मूल रूप खोज पाना कठिन है । लीबीयन एवं इथोपियन इसकी मुख्य भाषाएँ हैं । प्राचीन मिसी भाषा हैमेटिक परिवार की मानी जाती है, जिसके उदाहरण ईसा पूर्व चार हजार वर्ष के मिलते है । ये भाषाएँ सेमेटिक की विशेषताओं से युक्त हैं ।

विशेषताएँ -

(1) सामी परिवार की मुख्य विशेषता त्रिव्यंजनात्मक धातु का हामी में अभाव है । (2) सामी के समान स्वर भेद से रूप भेद (क-त-ब से किताब, कुतुब, कासिब आदि) हामी में नहीं हैं । (3) सामी और हामी दोनों में क्रिया संबंधी काल धारणा से अधिक महत्व क्रिया की पूर्णता और अपूर्णता पर है । (4) दोनों में बहुवचन प्रत्यय समान स्त्रोत से त्युत्पन्न प्रतीत होते हैं । (5) त्' दोनों में स्त्रीलिंग प्रत्यय है । (6) दोनों में व्याकरणिक लिंग वर्तमान है । (7) सर्वनामों के स्रोत के धरातल पर भी दोनों शाखाओं में समानता दिखाई देती है । (8) ये भाषाएँ मुख्य रूप से श्लिष्ट योगात्मक हैं । (9) पद निष्पादक, स्वर, मात्रा, गुण, स्थान और वचन में भिन्न होते हैं । (10) आधुनिक अरबी श्लिष्ट से अश्लिष्ट की ओर उज़ख है ।

15.3.11 सूडानी परिवार

भूमध्य रेखा के उत्तर में पश्चिमी छोर से लेकर पूर्वी छोर तक इस परिवार की भाषाएँ बोली जाती है । यह भाषा परिवार उत्तर में सामी-हामी परिवार तथा दक्षिण में बाँटू परिवार की सीमा को छूता है । इस परिवार की भाषाओं की संख्या चार सौ से भी अधिक हैं । इनमें हउसा, वुले, मनफ, कनूरी आदि उल्लेख्य हैं । इनमें से कुछ ही भाषाएँ लिपिबद्ध हैं ।

विशेषताएँ -

(1) ये भाषाएँ मुख्यत: योगात्मक हैं । (2) धातुओं की एकाक्षरता और विभक्तियों के अभाव में पद एवं वाक्यों की रचना चीनी पद्धति पर होती है । (3) चीनी के समान ही अर्थ के अंतर को स्पष्ट करने के लिए स्वर एंव तान का प्रयोग होता है । (4) व्याकरणिक लिंग का अभाव है । शब्द की सहायता से स्त्री एवं पुल्लिंग का बोध कराया जाता है । अन्य पुरूष के सर्वनाम में एक ही लिंग का विधान है । (5) बहुवचन की धारणा अस्पष्ट है । 'ये', च्चे वाचक सर्वनामों अथवा 'लोग' के योग से बहुवचन का बोध होता है । पूर्वी सूडान की भाषाओं में ह्रस्व को दीर्घ बनाकर बहुवचन का बोध कराया जाता हैं । (6) उपसर्ग और निपात के अभाव के कारण संयुता या मिश्र वाक्य की सूचना नहीं है । (7) इस परिवार की भाषाओं में एक विशेष

प्रकार के शब्द होते हैं, जिन्हें ध्वनिचित्र, शब्द-चित्र अथवा वर्णनात्मक क्रिया विशेषण कहते है । इनके द्वारा द्वाणीगति के साथ- रूप, स्थिति, रंग, स्वाद तथा गंध की व्यंजना होती है । ये शब्द क्रिया विशेषण होते हैं तथा अपरिवर्तनीय भी ।

15.3.12 बान्टू परिवार

'बांटू- शब्द मनुष्य बोधक है । 'मनुष्य' के लिए बांटू में मिलते-जुलते शब्द ही इसके नाम बांटू के आधार हैं । इस परिवार की भाषाएँ मुख्यत: मध्य एवं दक्षिणी अफ्रीका में बोली जाती है । बांटू संपूर्ण अफ्रीका तट की संपर्क भाषा है । इस परिवार में लगभग डेढ़ सौ भाषाएँ हैं, जिनमें मुख्य हैं - काफिर, जूलू सेचुना । कांगो तथा जंजीवार द्वीप की प्रसिद्ध भाषा स्वाहिली है । स्वाहिली के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में साहित्य का अभाव है ।

विशेषताएँ

(1) अश्लिष्ट पूर्व योगात्मकता इस परिवार की प्रमुख प्रवृत्ति है । (2) शब्द प्राय: स्वरांत हैं, जिनसे संगीतात्मकता की प्रतीति होती है । ये भाषाएँ सुनने में मधुर एंव सरस हैं । (3) संयुत्त। व्यंजन नहीं हैं । (4) क्लिक ध्वनि की विद्यमानता इस परिवार का वैशिष्ट्य है । (5) पद की निर्मिति उपसर्ग जोड़कर की जाती है । (6) लिंग नहीं हैं । (7) स्वर भेद का कारक बनता है ।

15.3.13 होतेन्तोत-बुशमैनी (खोइम) परिवार

इस परिवार की भाषाएँ आरेंज नदी से लेकर नगामी झील तक के भाग तथा दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका में बोली जाती हैं । होतेन्तोत नामा, हमरा, सन्दवा, ऐकवे, ओकवे इस परिवार की मुख्य भाषाएँ हैं ।

विशेषाताएँ -

(1) इस परिवार की भाषाओं में अंत: स्फोटात्मक विलक्षण क्लिफ ध्वनियाँ होती हैं । ओष्ठय दंत्य, मूर्धन्य, तालव्य एवं पार्श्विक इस क्लिफ ध्वनि के भेद हैं । (2) लिंग व्यवस्था पुरूष-स्त्री बोध पर आधृत न होकर प्राणी-अप्राणी पर आधृत है । (3). बहुवचन बनाने के अनेक और अनियमित नियम हैं ।

15.3.14 मलय बहुद्वीपीय परिवार

मलय पोलिनेशियाई अथवा आस्ट्रोनेशियाई परिवार भी इसे कहा जाता है । पश्चिम में अफ्रीका के तटवर्ती मेडागास्कर से लेकर पूर्व में ईस्ट द्वीप तक और उत्तर में फारमोसा से लेकर दक्षिण में न्यूजीलैंड तक इस परिवार की भाषाओं का प्रयोग होता हैं । यह क्षेत्र छोटे-छोटे द्वीपों का समूह है, इनमें प्रमुख द्वीप हैं- मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, सिलीविज बाली, फिलीपीन, न्यूजीलैण्ड और प्रशांत महासागर के अनेक द्वीप । प्रमुख भाषाओं में मलय, फीजियन, जावनीज एवं मओरी की गणना होती है । ये द्वीप प्राय: पश्चिमी देशों के उपनिवेश रहे हैं, इसलिए इनकी मूल भाषाओं का विकास नहीं हो पाया । जो स्वतंत्र हुए, उनकी मूल

विकसित हो रही हैं । वस्तुत: इनमें से अधिकांश द्वीप वृहत्तर भारत के अंग थे; स्वभावत: इनकी भाषाओं पर भाषिक तथा भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ा, जिसे आज भी देखा जा सकता है ।

15.3.15 पापुई परिवार

न्यूगिनी, तेरनात सोलोमन द्वीप एंव न्यू ब्रिटेन के कुछ भागों में इस परिवार की भाषाएँ बोली जाती है । इन भाषाओं की संख्या 132 के आसपास मानी जाती है । आज तक इन भाषाओं का सम्यक अध्ययन नहीं हो पाया है, इसलिए इनकी विशेषताओं का निर्धारण कठिन है । न्यूगिनी की मफोर भाषा इसी परिवार की है । इसकी कुछ विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं - (1) इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट हैं । (2) उपसर्ग और प्रत्यय के योग से शब्द बनते हैं ।

15.3.16 आस्ट्रेलियाई परिवार

भौगोलिक नाम से अभिहित इस परिवार की भाषाएँ आस्ट्रेलिया के उत्तर और दक्षिण में बोली जाती हैं । इनकी संख्या 100 से ऊपर मानी जाती है । सत्य तो यह है कि आस्ट्रेलियाई आदिवासियों की समाप्ति के साथ-साथ उनकी भाषाएँ भी क्रमश: लुप्त होती जा रही हैं । तस्मानिया की भाषाओं का एक अलग परिवार माना जाता था, लेकिन आज उस परिवार की सभी भाषाएँ लुपा हो गयी । इसी तरह एक दिन ऐसा आएगा जब आस्ट्रेलियाई परिवार की भाषाएँ लुप्त हो जाएँगी ।

विशेषताएँ -

(1) यह अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ हैं । (2) अन्त में प्रत्यय जोड़कर शब्द बनाए जाते हैं । (3) कई भाषाओं में संख्यावाचक शब्द केवल एक, दो और तीन के लिए ही हैं, उन्हीं में कुछ और जोड़कर उच्चतर संख्याएँ बनाई जाती हैं । युगर बोली का उदाहरण द्रष्टव्य है - गुदल-गुदल द दो दो न्अर्थात् चार । (4) लिंग के अनुसार सर्वनामों में भी परिवर्तन होता है । (5) क्रियारूपों में पर्याप्त जटिलता है ।

15.3.17 दक्षिण-पूर्व-एशियाई (आस्ट्रिक) परिवार

इस परिवार का भाषा-क्षेत्र विस्तार बहुत व्यापक हैं, किंतु इसके विपरीत बोलने वालों की संख्या कम है । मानख्मेर (वर्मा, स्याम तथा निकोबार द्वीप समूह), मुण्डा (भारत के पूर्वी पहाड़ी भाग, बिहार, मध्यप्रदेश के कुछ भागों में, उड़ीसा, मद्रास तथा पश्चिमी बंगाल के हिस्सों में) तथा इस परिवार की मुख्य भाषाएँ हैं । मानख्मेर में ही साहित्य मिलता है, जन्मे दोनों बोलचाल की भाषाएँ हैं । वस्तुत: ये तीन परिवार हैं - मानख्मेर, मुंडा और संथाली ।

विशेषताएँ -

(1) ये योगात्मक भाषाएँ हैं । (2) ध्वनियाँ की दृष्टि से मुंडा- समूह की भाषाएँ समृद्ध हैं । इनमें स्वर, घोष, अघोष तथा अल्पप्राण, महाप्राण व्यंजन हैं । भारतीय क्षेत्र में बोली जाने

के कारण एक तरफ स्वयं आर्य भाषा परिवार की विशेषताओं से युक्त है और दूसरी तरफ आर्य भाषा परिवार की भाषाओं को प्रभावित करती हैं - (3) शब्द के अंत में संयुक्त व्यंजन का अभाव है । (4) चीनी भाषा-सदृश इसमें भी स्थान भेद से एक शब्द संइग़, सर्वनाम बन जाता है । अत: शब्द-व्याकरण ज्ञान प्रकरण से होता है । (5) पद-रचना के लिए उपसर्ग का प्रयोग मध्य या अंत में होता है - मंझि = मुखिया, मपंझि = मुखिए । (6) विभक्तियों का काम उपसर्गो से लिया जाता है । (7) लिंग-बोध के लिए शब्द में ही स्त्री या पुरूषवाचक शब्द जोड़ दिए जाते हैं । (8) वचन तीन होते हैं । (9) गणना बीस के क्रम में होती है । बीस का बोधक कोड़ी' शब्द मुंडा का ही है, जो हिन्दी और बंगला में प्रयुक्त होती है ।

15.3.18 अमरीकी परिवार

इस परिवार में उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के मूल निवासियों की लगभग 400 भाषाओं की गणना की जाती है । इस परिवार का नाम भाषा वैज्ञानिक न होकर भोगोलिक है । इसलिए इस नाम से परिवार की भाषाओं पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता । इनका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन भी नहीं हुआ है । निश्चय ही ये भाषाएँ एक नहीं अनेक परिवारों की होंगी । इनकी लिपि नहीं है, ये बोलचाल की भाषाएँ है । एकाध भाषा में साहित्य मिलता है, वह भी नाममात्र का । अस्तु जब तक इनका विधिवत अध्ययन न हो जाय, तब तक इनके संबंध में कुछ भी कहना संभव नहीं ।

15.4 विचार संदर्भ/शब्दावली

भाषा परिवार	-	आंतरिक समानता से युक्त भाषाओं को एक परिवार मान 'भाषा परिवार' बनता है ।
पारिवारिक वर्गीकरण	-	जन भाषाओं को उनकी आंतरिक संरचना के आधार पर विभिन्न समूहों के बांटा जाता है, इसे ऐतिहासिक वर्गीकरण भी कहते है ।
मूल भाषा	-	अंग्रेजी के Proto speech का हिन्दी रूप कल्पना की जाती है कि संसार की सभी भाषाओं का उद्गम है, मूल भाषा ।
केंतुम	-	लातिन भाषा में सौ की संख्या के लिए प्रयुक्त शब्द ।
सेंतुमू	-	अवेस्ता में सौ संख्या के लिए प्रयुक्त शब्द
हासोन्मुखी	-	पतन की ओर
अवेस्ता	-	ईरानी भाषा का प्राचीनतम साहित्य फारसी धर्मग्रंथ ।
आधृत	-	टिकी हुई ।
हाइपर बोरी	-	अति उत्तरी
औत्पत्तिक	-	उत्पत्ति से संबंधित
योगात्मक भाषाएं	-	योगात्मक भाषाओं में संबंध तत्व और अर्थ तत्व दोनों में योग हो जाता है अर्थात् वे मिले जुले रहते हैं, यथा - 'मेरे घर

आना' ।

लौकिक संस्कृत	-	अधिक परि निष्ठित और साहित्यिक संस्कृत जो वैदिक संस्कृत से भिन्न हो गई ।
कोड़ी	-	द्रविड़ भाषा कोड़ी शब्द कौड़ियों से बीस का समूह गिनने के लिए प्रयुक्त होता था । बंगला में आज भी बीस के अर्थ में प्रयुक्त ।
पूर्ण प्रश्लिष्ट योगात्मक	-	इन भाषाओं में संबंध तत्व और अर्थ तत्व का योग इतना पूर्ण होता है कि वाक्य करीब एक ही शब्द बन जाता है, जैसे मेरठ की बोली में उसने कहा का उन्नेका' बन जाना ।
अपदस्थ	-	पराजित करना

15.5 सारांश

मनुष्य के विकास की भाँति भाषा का विकास भी एक वंशवृक्ष के रूप में होता है । जिस प्रकार एक ही माता-पिता से जन्में दो भाई का कालांतर में दो परिवार के रूप में एक दूसरे से दूर होते हुए भी अपनी परंपरा, तथा संस्कृति के धरातल पर एक दूसरे के निकट होते हैं, उसी प्रकार एक मूल स्त्रोत/भाषा (प्रोटो स्पीच) से उत्पन्न भाषाएँ भी भौगोलिक, प्राकृतिक एंव प्रयोगगत कारणों से एक दूसरे से हजारों मील दूर होकर भी अपनी मूल भाषिक संपदा -ध्वनि, शब्द एवं वाक्य संरचना तथा विकासात्मक प्रवृत्ति आदि धरातलों पर और मूल संवेदना की संख्या में एक दूसरे के निकट होती हैं । यही नैकट्य मान उन्हें एक परिवार का सिद्ध करता है।

संसार में अनेक भाषाएँ हैं । इन भाषाओं का जन्म एकाधिक मूल स्त्रोत से माना गया है । इन्हीं मूल स्त्रोतों को दरिवार की संइग़ से अभिहित किया गया है । परिवार को आधार बनाकर और उसमें भाषाओं को बाँटकर, उनका विवेचन-विश्लेषण तथा क्षेत्र निर्धारण भाषा विज्ञान की प्राथमिक आवश्यकता है । यह पद्धति अध्ययन को संश्लिष्ट और वैज्ञानिक बनाती है । इस प्रक्रिया एवं पद्धति द्वारा भाषाओं के विकासात्मक पहलू का ज्ञान तो होता ही है, संसार के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित एवं प्रयुक्त भाषाओं से भी हम परिचित होते हैं । इस अध्ययन से यह पता चलता है कि संसार की अनेक भाषाएँ अपनी खोज और अध्ययन की प्रतीक्षा में हैं । यह भी स्पष्ट होता है कि भाषा-प्रयोग के मामले में मनुष्य कितना स्वंतत्र और परिवर्तनशील है तथा कैसे भौगोलिक, राजनीतिक एंव प्राकृतिक परिस्थितियाँ भाषा में, समाज में बदलाव की महत्वपूर्ण कूमइका निभाती हैं । काल-विशेष में साहित्य और मानव समाज में महत्वपूर्ण रहीं भाषाएँ दूसरे काल में लुपा या प्रयोग बहिष्कृत कैसे हो जाती हैं, कैसे दूसरी भाषाएँ उनका स्थान ले लेती हैं, यह रोचक जानकारी भी हमें मिलती है, भाषा परिवारों के अध्ययन द्वारा ।

15.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1 भाषाओं के परिवार निर्धारण के मूल सिद्धांतो तथा उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए ।

2 संसार के किन्हीं दो भाषा-परिवारों का परिचय देते हुए, उनकी भाषिक विशेषताएँ रेखांकित कीजिए ।

3 द्रविड़ परिवार की भाषाओं का संक्षिप्त परिचय एवं वैशिष्ट्य प्रस्तुत कीजिए ।

4 चीन में बोली जाने वाली भाषाओं की विशेषताएँ रेखांकित कीजिए ।

5 सामी-हामी परिवार की भाषाओं का परिचय देते हुए, उनकी विशेषताएं बताइए ।

(ख) लघूत्तरी प्रश्न

1 भाषा परिवार की संकल्पना का आधार क्या है? भाषा परिवार की तुलना किससे की जाती है?

2 विश्व के भाषा परिवारों को कितने भाषा खण्डों में बाँटा गया है? किसी एक खण्ड के परिवारों के नाम लिखिए ।

3 केल्टिक भाषाएं दासोज़खी क्यों कहीं जाती हैं?

4 जापानी-कोरियाई परिवार की भाषिक विशेषताएं संक्षेप में लिखिए ।

5 यूराल- अल्टाई परिवार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

(ग) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1 .... की लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं ।

2 भारत ईरानी...................................... वर्ग की भाषा है ।

3 संस्कृत का प्राचीनतम रूप.......................... है ।

4 चीनी-तिब्बती परिवार का.......................... नाम उसकी आकृतिगत विशेषता के कारण पड़ा ।

5 हाइपर बोरी का अर्थ है.. ।

(घ) सही/गलत वक्तव्य को चिह्नित कीजिए -

1 बाइबिल की मूल भाषा प्राचीन हिब्रू है । सही/गलत

2 दक्षिण पूर्व एशियाई (आस्ट्रिक) परिवार में भाषा क्षेत्र के साथ बोलने वालों की संख्या भी बहुत है । सही/गलत

3 आस्ट्रेलियाई परिवार की भाषाएं अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं है । सही/गलत

4 अवर नामक भाषा में 20 व्यंजन हैं । सही/गलत

5 सूडानी भाषा परिवार की खास विशेषता उसके ध्वनि और शब्द चित्रों का होना है। सही/गलत

15.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. रामविलास शर्मा; भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 1100021
2. डॉ. राजमणि शर्मा; आधुनिक भाषा विज्ञान, वाणी प्रकाशन, 21 ए, दरियागंज. नई दिल्ली-1100021

3. जार्ज अब्राहम; ग्रियर्सन; अनु. तिवारी; डॉ. उदयनारायण; भारत का भाषा सर्वेक्षण, उत्तर प्रदेश हिन्दी स्थान, लखनऊ, खण्ड 1, भाग 1,
4. लाख जे. (ले.); अनु. कृष्ण कुमार शर्मा; जयपुर, द्रविड़ भाषाओं की व्याकरणिक संरचना, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी ।
5. प्रो. जी. सुंदर रेड्डी; हिन्दी तथा द्रविड़ भाषाओं के समानरूपी मिन्नार्थी शब्द-राजपाल एण्ड सन्स,. कश्मीरी गेट, नई दिल्ली
6. IRCH Tarapore; Elements of Science of Language - Calcutta University, Calcutta, wolo Jahangir Soraliji
7. Bloomfield; Language - 1- chock, Varanasi.
   Leonard
   Motilal
   Banarsidas

इकाई-16 भारोपीय भाषा परिवार

इकाई की रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 भारोपीय भाषा परिवार

16.3.1 महत्व

16.3.2 नामकरण की समस्या

16.3.3 क्षेत्र

16.3.4 मूल भारोपीय भाषा; संरचना

16.3.5 भारोपीय भाषा परिवार का वर्गीकरण एवं विशेषताएं

16.3.6 भारोपीय भाषा परिवार के उप परिवार

(क) कैंतुम शाखा

1. ग्रीक उप परिवार

2. इतालिक उप परिवार

3. जर्मनिक उप परिवार

4. केल्टिक उप परिवार

5. तोखारी उप परिवार

6. द्वितीय हिट्टाइट उप परिवार

(ख) सेतुम् शाखा

7. बाल्लोक्लाविक उप परिवार

8. आरमीनी (इलीरी) उप परिवार

9. अलबीनी उप परिवार

10. भारत ईरानी उप परिवार

(अ) भारतीय आर्य भाषाएं

(आ) ईरानी भाषाएं

16.4 विचार संदर्भ/शब्दावली

16.5 सारांश

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.7 संदर्भ ग्रंथ

16.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- भारोपीय भाषा परिवार के महत्व, क्षेत्र विस्तार, नामकरण की समस्या तथा उसके वर्गीकरण आदि पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
- भारोपीय भाषा परिवार की भाषाओं के पारस्परिक संबन्ध और भाषिक वैशिष्ट्य को रेखांकित कर सकेंगे ।
- भारोपीय भाषा परिवार की भाषाओं के साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक महत्व का निरूपण कर पाएंगे ।

16.2 प्रस्तावना

विश्व भाषाओं का समुद्र है । अनगिनत भाषाएं इसके गर्भ में समा गयीं और अनेक इसकी लहरों सदृश आज भी उछाल मार रही हैं, गर्जना कर रही हैं । इन्हीं में एक भाषा परिवार है- भारोपीय/इसके प्राचीनतम स्वरूप का तो पता नहीं । ही! अनेक प्राचीन कहलाने वाली भाषाओं के उपलब्ध साहित्य उसकी जीवंतता, सभ्यता तथा संस्कृति के चरमोत्कर्ष की गाथा कहते हैं । संसार का एकमात्र यह भाषा परिवार है, जिसका सर्वाधिक भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन हुआ । इस अध्ययन से यह भी सिद्ध होता है कि इस भाषा का वर्चस्व समूचे विश्व पर रहा है, विश्व की अनेक, अन्य परिवारों की, भाषाएं इसके प्रभाव से अछूती नहीं है । यदि भारत का ही सन्दर्भ लें तो यह बात प्रमाणित हो जाती है कि भारत का द्रविड़ परिवार भारोपीय भाषा परिवार की सर्वाधिक प्राचीन, समृद्ध और सशक्त भाषा संस्कृत की शब्द-संवेदना, वाक्य संरचना, व्याकरिणक-संरचना तथा मूल संवेदना से अत्यधिक प्रभावित है । एक बात और, स्थानीय निकटता के कारण द्रविड़ भाषाओं ने भी संस्कृत तथा संस्कृत-निष्पन्न मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को शब्द संम्पदा के धरातल पर प्रभावित किया है । अस्तु, यह बात बहुत साफ है कि कोई भी भाषा अपनी पूर्ण विर्पुद्धता का बखान नहीं कर सकती, उसमें आदान-प्रदान होते रहते हैं । वर्चस्व की लड़ाई में जो भाषा जीतती है, वही दूसरों को सर्वाधिक प्रभावित करती है । भारोपीय भाषा परिवार की अनेक भाषाएं ऐसी ही हैं ।

मानव समुदाय के सामाजिक व्यवहार का माध्यम है भाषा । संभवत: मनुष्य की यह दूसरी खोज है, उसकी पहली खोज है- आग । मानव-समुदाय, विशेषकर मनुष्य आदिम काल से आज तक निरन्तर परिवर्तित होता रहा हैं, और उसका यह परिवर्तन उसकी अपनी खोज-भाषा को भी निरन्तर परिवर्तित करता रहता है । यह परिवर्तन एक निश्चित दिशा और प्रक्रिया के तहत होता है, जिस प्रकार कल का एक मानव परिवार कालांतर में कई परिवारों, गावों, नगरों में बँटकर पुराने परिवार से बिल्कुल अलग-अलग अपनी पहचान बना लेता है ठीक उसी तरह एक भाषा की विभिन्न बोलियां जौ. कल तक उसी भाषा की अंग रही हैं, कालांतर में अपने उपरूपों को विकसित कर स्वतंत्र अस्तित्व धारण कर भाषा बन जाती है । यह बनने बिगडने की प्रक्रिया सतत् चलती रहती है, और यही प्रक्रिया भाषिक परिवारों की रचना की निर्मात्री बनती है । भारोपीय भाषा परिवार के संदर्भ में यह संकल्पना की जाती है कि आज इस परिवार में सम्मिलित भाषाओं का कोई प्राचीन स्वरूप रहा होगा और इन भाषाओं के प्राचीनतम रूपों का विकास मूल भारोपीय भाषा से हुआ होगा ।

भाषा परिवार निर्धारण में पहली आवश्यकता है भाषाओं में अर्थतत्व एवं रचना की समानता । इस समानता का कारण भाषाओं के मध्य पाया जाने वाला ऐतिहासिक संबन्ध है । भाषा मानव-समुदायाविशेष का वैशिष्ट्य, और उसकी अपनी निजी पहचान है । अस्तु दो भाषाओं में समानता कम ही देखने को मिलती है, किन्तु इसके अपवाद भी मिलते हैं । कई बार यह देखने को मिलता है कि एकाधिक भाषाएं एक दूसरे के समान हैं । इसके कारण होते हैं- (ऊ) आकस्मिक, (ख) शिशु-शब्दावली, (ग) अनुकरणात्मक शब्दावली, घ) भावाभिव्यंजक शब्दावली, ङ) भाषायी आगत, और (च) समान उद्‌गम स्रोत ।

इन समानताओं को अलग करने पर भी यदि प्रभावशाली समानता दिखायी पड़े, और वह समानता भी कुछ सांस्कृतिक शब्दों तक ही सीमित न हो, उन भाषाओं की मूल शब्दावली के बहुत बड़े अंश के साथ-साथ भाषाओं की व्याकरणात्मक एवं धवन्यात्मक संरचना में भी दृष्टि गोचर हो तब ऐसी समानताओं से युक्त भाषाओं की-उत्पत्ति का स्त्रोत एक होने की संभावना बनती है । उपर्युक्त कसौटियों पर कंस कर खरा पाने पर ही भारोपीय भाषा परिवार की संकल्पना की गई है ।

16.3 भारोपीय भाषा परिवार

16.3.1 महत्व : यह भाषा परिवार निम्नलिखित दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ।

(1) क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से यह विश्व के बहुत बड़े भू-भाग में फैला हुआ है । विश्व के किसी भी कोने में इस परिवार की कोई-न-कोई भाषा मिल जाएगी । फलस्वरूप विश्व के अन्य भाषा परिवारों की तुलना में इसके प्रयोक्ताओं की संख्या अधिक है (2) साहित्यिक दृष्टि से जितना प्राचीन, विविध और उत्कृष्ट साहित्य इस परिवार में मिलता है, उतना अन्य किसी भाषा परिवार में नहीं मिलता । संस्कृत, ग्रीक, लेटिन जैसी साहित्यिक दृष्टि से संपन्न भाषाएं इसी परिवार में है । (3) सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में इस परिवार की भाषाएं दूसरे परिवार की भाषाओं के आगे मशाल लेकर चलने वाली हैं । संस्कृत, ग्रीक लेटिन और जर्मन अपने दार्शनिक चिंतन, आध्यात्म-दर्शन तथा साहित्य के क्षेत्र में अन्य भाषाओं की आदर्श हैं । (4) वैज्ञानिक ज्ञान-विज्ञान, उपलब्धियों के क्षेत्र में भी संस्कृत, हिन्दी, जर्मन, अंग्रेजी, फांसीसी एवं रूसी भाषाएं अप्रतिम है । सच तो यह है कि विगत तीन शताब्दियों में वैज्ञानिक प्रगति का समूचा क्षेत्र इसी परिवार की भाषाओं को प्राप्त है । (5) भारोपीय भाषा परिवार की भाषाएं विशेषकर अंग्रेजी, डच, फ्रांसीसी-राजनीतिक सशक्तता और उपनिवेशवाद विस्तार की प्रवृत्ति के चलते अपने क्षेत्र से निकलकर दूसरे क्षेत्रों में फैलीं । (6) इस परिवार के भाषा-भाषी, भाषाओं के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन क्षेत्र में अन्यों से बहुत आगे निकल गए हैं । भाषा वैज्ञानिकों ने अपनी भाषाओं के अध्ययन द्वारा उसे संसार में सर्वोत्तम एवं समृद्धवान सिद्ध किया । सच तो यह है कि भाषा विज्ञान के सिद्धांत ही इसी परिवार की भाषाओं को केन्द्र में रखकर बनाए गए, इनमें भी अंग्रेजी सबसे आगे है । वस्तुत: औपनिवेशिक काल में भारत आए विदेशी विद्वानों की दृष्टि संस्कृत के समृद्ध साहित्य की ओर गई । पहले तो इन्होंने इस भाषा को सीखा और फिर उसका

अपनी-अपनी भाषाओं - अंग्रेजी, जर्मन, फांसीसी आदि में अनुवाद किया । इस अनुवाद प्रक्रिया में उन्होंने पाया कि संस्कृत बाह्‌य तथा आतरिक संरचना के धशतल पर ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि के बहु त निकट है । सन् 1886 में रायल एशियाटिक सोसायटी में, दिये गए विलियम जोन्सन अपने भाषण में संस्कृत से ग्रीक और लैटिन के घनिष्ठ सम्बन्ध की घोषणा की । वही से तुलनात्मक भाषा विज्ञान का जन्म हु आ और भारोपीय भाषा परिवार का स्वरूप सामने आया ।

16.3.2 नामकरण की समस्या

भाषिक परिवारों का नामकरण भाषिक वैशिष्ट्य अथवा भाषा-वैज्ञानिक धरातल पर किया जाना चाहिए । किन्तु इस परिवार के नामकरण में इन आधारों की उपेक्षा की गयी । किसी ने सामी-हामी की तर्ज पर जफेटिक नाम सुझाया, किसी ने भारत और'जर्मन में बोली जाने के कारण भोगोलिक नाम- इण्डो जर्मनिक सुझाया । हिन्दी की खोज के पश्चात् कतिपय विद्वानों ने इसे भारत हित्ती नाम देना पसंद किया । (विस्तृत विवरण देखे-16.3.1, पृ. 7) । यह नाम भी देश आधृत था, साथ ही हिन्दी भाषा लुप्त हो चुकी है, इसके वंशवृक्ष का विकास भी नहीं हु आ । अस्तु इसका भारत-यूरोपीय अथवा भारोपीय भाषा परिवार ही नाम सर्वाधिक लोकप्रिय हु आ । वेसे यह नाम भौगोलिक सीमाओं का संकेतक है, साथ ही इस परिवार की भाषा यूरोप और भारत के बाहर भी अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्ड में बोली जाती है । तोखारी इसी परिवार की भाषा है जो भारोपीय सीमा से परे तुर्किस्तान में बोली जाती है । अंतत: लोकप्रियता याजन- स्वीकृति को आधार बनाकर इस परिवार का नाम 'भारोपीय भाषा परिवार' अब स्वीकार कर लिया गया है ।

16.3.3 क्षेत्र

भारोपीय भाषा के मूल स्थान के संबन्ध में भी उसके नाम की तरह ही विवाद है । कुछ लोग इसका मूल स्थान भारत मानते है, यूरोपीय विद्वान यूरोप का कोई क्षेत्र एवं एशियाई विद्वान एशिया का कोई क्षेत्र/स्थान इसका मूल स्थान स्वीकार करते हैं । लोकमान्य तिलक इसके मूल स्थान को उत्तरी ध्रुव के निकटवर्ती स्वीकार करते हैं । कुछ विद्वान आल-अल्टाई पर्वत के निकटवर्ती मैदान को इसका मूल स्थान मानते हैं । किन्तु ये. सभी मान्यताएं भावना की प्रधानता से युक्त हैं, तार्किकता का इनमें अभाव है । डॉ. राजमणि शर्मा की दृष्टि में प्राचीन आर्यावर्त, जिसकी सीमा ईरान के परे तक है, ही इस भाषा का मूल स्थान रहा है ।

16.3.4 मूल भारोपीय भाषा : संरचना

मूल भारोपीय भाषा अथवा भारत हित्ती की लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है । संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के प्राचीनतम रूप के तुलनात्मक अध्ययन द्‌वारा मूल भारोपीय भाषा की पुनर्सरचना का प्रयास किया गया है । इस कल्पित पुनर्सृजित भाषा को ही भाषा वैज्ञानिक ने मूल भारोपीय भाषा कहा हे-किन्तु संस्कृत ग्रीक एवं लैटिन को देखने से यह प्रतीत होता है कि

ये भाषाएं किसी भाषा के विभिन्न रूपों से विकसित हैं न कि उस भाषा से (कल्पित भारोपीय भाषा) सीधे ।

भाषा वैज्ञानिकों द्वारा कल्पित एवं निर्मित भारोपीय भाषा की ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणात्मक संरचना की रूपरेखा यहां संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है ।

(क) धन्यात्मक भाषा : संरचना

स्वर - मूल हस्य-अ, इ उ, ए, ओ मूल दीर्घ - आ, ई, ऊ, ऐ, ओ

संयुक्त हस्व - अइ, अड, अश, अन्त, अन, अम, एड, एउ, एऋ, एलृ,

- एन, एम, आई, आउ, आऋ, आय ओल्, आमे ।

संयुक्त दीर्घ - आइ, आउ, आम्ह आल्न्त, आन, आम, एइ, एउ, एलृ

- एन्ट, एम, ओइ ओउ, ओक्ट ओल, ओन, ओम ।

डदासीन अतिह्रव - अ

अर्धस्वर - य, व

स्वरवत् प्रयुक्त - ऋ, लृ, म्, न्, । इनके भी दस्व और दीर्घ रूप थे ।

स्वरों में आनुनासिकता का विधान नहीं था ।

व्यंजन

क वर्ग- इसमें तीन प्रकार की ध्वनियां थी -

(क) क ख, ग घ, कण्ठय अथवा पश्चात कण्ठ्य ध्वनि

(ख) क्व, ख्व. ग्य, ध्य, कण्ठ + तालव्य

(ग) क्य, एव, ग्व, ध्व : कष्ठौष्ठ्य

संस्कृत में वर्ग (क) की ध्वनियां स्, श्, ष्, उष्म ध्वनियों में विकसित हुई ।

वर्ग (ख) की ध्वनियां च्, छ्, ज्, झ् में विकसित हुई ।

वर्ग (ग) की ध्वनियां क्, ख्, ग्, घ् में विकसित हुई ।

तवर्ग - त्, थ्, द्, ध : दंत्य या वर्त्स

पवर्ग - प्, फ्, ब्, म्, : ओष्ठय्

उष्म - स्, (ज़्)

अंतस्थ व्यंजन: य्, र्, ल्, व्, न्, म्

'ह' के सम्भवत: दो रूप थे- सघोष एवं अघोष ।

संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग होता था ।

धवन्यात्मक संरचना में स्वराघात का महत्व था ।

(ख) व्याकरणात्मक संरचना

(1) भारोपीय भाषा श्लिष्ट एंव प्रश्लिष्ट योगात्मक के मध्य की थी, जिसमें अर्थतत्व एवं संबन्धतत्व परस्पर घुले-मिले रहते थे । (2) प्रत्ययों की बहुलता थी । धातु में प्रत्यय जोड़कर पद रचना की जाती थी । फलस्वरूप पद रचना जटिल थी । शब्द मुख्यत: धातुओं से निष्पन्न होते थे । (3) व्याकरणात्मक शब्द, संज्ञा क्रिया एवं अव्यय अलग-अलग थे, किन्तु सर्वनाम एवं

विशेषण संज्ञा के ही अंश थे । सर्वनामों में विविधता थी । (4) शब्द रूपों में तीन पुरूष-प्रथम, मध्यम, उत्तम, तीन लिंग- स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसक लिंग, तीन वचन - एक वचन, द्विवचन, बहु वचन एवं संज्ञा की आठ विभक्तियां थी । सम्भवत: इसी आधार पर संस्कृत में आठ कारकों का प्रयोग हु आ । (5) शब्दों की सामासिक रचना भी होती थी जो इस भाषा की अन्यतम विशेषता थी । (6) क्रिया के चार काल एवं पांच भाव थे । क्रिया में काल की अपेक्षा कार्य की पूर्णता-अपूर्णता की स्थिति का महत्व था । (7) क्रियाएँ दो प्रकार की थी आत्म प्रदीय और परस्मैपदीय । (8) व्याकरणात्मक संरचना में सुरों एवं स्वराघात का महत्व था । साथ ही शब्द के मध्य में स्वर परिवर्तन, रचनात्मक महत्व रखता था । (पढ़ना > पढ़ाना) (9) अनेक रूपों में धातु का अभ्यास द्वित्व हो जाया करता था, जैसे पत् एवं तद् के प्रथम व्यंजन का द्वित्व होने पर पपाठ, ननाद (10) स्वराघात प्रक्रिया उसकी प्रमुख विशेषता है । ग्रीक तथा संस्कृत में भारोपीय जैसे सोन्ति > सं. सन्ति ग्रीक एन्ति हैं सुना । स्वराघात के सही रूप मिलते हैं आगे चलकर सुर के साथ स्वराघात का प्राबल्य हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रधानत: संस्कृत को केन्द्र में रखकर भारोपीय भाषा परिवार के मूल भाषा की परिकल्पना की गई है । क्योंकि उपर्युक्त अधिसंख्य विशेषताएं संस्कृत, विशेषकर वैदिक संस्कृत में सुरक्षित है ।

16.3.5 भारोपीय भाषा परिवार का वर्गीकरण एवं विशेषताएं

(अ) वर्गीकरण इस परिवार की समस्त भाषाएं यधपि एक दूसरे से परस्पर सम्बद्ध हैं किन्तु कुछ में अधिक निकटता है, और कुछ में दूरी । इनके कारणों की खोज का विद्वानों ने प्रयास किया । सन् 1870 ई. में अस्कोली नामक भाषा वैज्ञानिक ने इस परिवार की व्यंजन ध्वनियों की तुलना करते हु ए पाया कि भारोपीय मूल भाषा की कण्ठ्य - क्, ख्, ग्, घ् आदि कुछ भाषाओं में सुरक्षित रह गयी हैं और कुछ में संघर्षो स, ष, श, में परिवर्तन हो गई है । उदाहरण के लिए मूल भारोपीय शब्द 'द्क' ग्रीक में 'दक' है किन्तु संस्कृत में 'दश' हो गया । उसने पाया कि यह विपरीत प्रवृत्ति अवेस्ता और लातिन में विद्यमान है । अस्तु उसने सौ' के वाचक शब्दों की सहायता से अपने निष्कर्ष प्रमाणित किए । लातिन में 'सौ' को 'कैंतुम' और अवेस्ता में 'संतम्' कहा जाता है । इसी आधार पर उसने भारोपीय परिवार को कैंतुभ और सतम् वर्ग में विभाजित किया :-

(क) कैंतुभ् वर्ग - (जिसमें कंठ्य ध्वनियां विद्यमान है)

(1) ग्रीक (2) इतालिक (3) केलिटिक (4) जर्मनिक, (5)तोखारी (6) हित्ताइत (हित्ती) ।

ख) सतम् वर्ग - जिनमें मूल भारोपीय भाषा की मूल कंठ्य धनिया संघर्षी बन गई ।

(7) बालो क्लाविक, (8) आरमीनी (9) अलबीनी (10) भारत ईरानी ।

भारत ईरानी उप परिवार को कालांतर में दो शाखाओं में बांटा गया

(1) भारतीय आर्य (2) ईरानी ।

हित्ती भारोपीय भाषा के एक उप परिवार के रूप में यहां प्रस्तुत है । यदि भारोपीय भाषा के समानान्तर हित्ती को स्वीकार किया जाएगा तो ऐसी स्थिति में यह वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में होगा:-

(क) हित्ती - हित्ती

(ख) भारोपीय - (1) कैंतुभ - ग्रीक, इतालिक केलिटिक जर्मनी, तोखारी ।

(2) सतम् - बाल्टो स्ताविक, आरमीनी अलबीनी,

भारत-ईरानी

(ब) विशेषताएं.

मूल भारोपीय भाषा से भारोपीय भाषा परिवार की उपर्युक्त भाषाएं अलगाव दर्शाती है । वस्तुत: विभिन्न बोली रूपों से विकसित इन भाषाओं में मूल भारोपीय के साथ कुछ नई विशेषताएं भी समाहित है । अस्तु भारोपीय भाषा की विशेषताएं यहां प्रस्तुत है: (1) यह श्लिष्ट योगात्मक भाषा है । (2) शब्दों की रचना उपसर्ग, घातु और प्रत्यय के योग से होती है । उपसर्ग प्रारम्भ में स्वतंत्र सार्थक शब्द थे । (3) वाक्य रचना पदों से होती है । विभक्ति से संयुक्त पद बनते हैं । (4) समास बनाने की प्रवृत्ति प्रधान थी । संस्कृत इसका उदाहरण है । स्वर परिवर्तन से अर्थ परिवर्तित हो जाता है । स्वर परिवर्तन शब्द रचना का अंग है । (5) इस परिवार में प्रत्ययों का बाहुल्य है ।

16.3.6 भारोपीय भाषा परिवार के उप परिवार

(क) कैंतुम शाखा

1. ग्रीक उप परिवार

कैंतुम समुदाय की प्राचीनतम भाषा के रूप में 'ग्रीक' की प्रतिष्ठा है । इस भाषा का साहित्य और संस्कृति अत्यंत प्राचीन है । इस भाषा के प्रख्यात कवि होमर ने इलियड' और 'ओडिसी' (1000 वर्ष ईसा पूर्व) नामक महाकाव्यों की रचना की वस्तुत समूचे यूरोप का साहित्य एवं संस्कृति ग्रीक साहित्य और संस्कृति से प्रभावित हुई। इसी भाषा की वर्णमाला से समस्त यूरोप की लिपियों का विकास हुआ। प्रख्यात दार्शनिक एवं चिंतक प्लेटों एवं अरसा तथा विश्व विजेता सिंकदर ग्रीक में ही पैदा हुए।

यह भाषा ईजियन द्वीप समूह, दक्षिणी अल बनिया एंव युगे। रलाविया, दक्षिणी पश्चिमी बुलग़रिया, तुर्की के कुछ भाग, साईप्रस और कीट द्वीप में बोली जाती है । आन्तिक दोरिक इयोनी और आए अलोली इस की प्रमुख बोलियां है । इनमें पर्याप्त भेद था । सामान्य जनों में भाषा के रूप में कोईन प्रचलित थी जो आन्तिक (एट्टिक) और दोरिक पर आधृत थी । होमर के दोनों काव्यों में भी विभिन्न बोलियों के रूप दिखाई देते हैं ।

विशेषताएं-

1. प्राचीन और आधुनिक ग्रीक में बहुत कम अंतर है ।
2. संस्कृत की भांति ग्रीक में भी मूल भारोपीय भाषा की विशेषताएं और संगीतात्मकता सुरक्षित हैं ।

3. कर्ता, कर्म, संप्रदान एवं संबन्ध इसके कारक हैं ।
4. ग्रीक में अव्ययो, उपसर्गो एवं क्रिया-विशेषणों की बाहुल्य है ।
5. संस्कृत की भांति ग्रीक में भी दोनों पदों परस्मै पद एवं आत्मन पद की क्रियाएं पाई जाती है ।
6. ग्रीक में समास भी हैं, किन्तु संस्कृत की भांति लम्बे नहीं ।
7. संस्कृत की ही भांति ग्रीक में भी तीन लिंग-पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग है ।
8. हिन्दी की भांति दो वचन एक वचन एवं बहुवचन है ।
9. मूल भारोपीय के स्वर तो सुरक्षित हैं किन्तु व्यंजनों में परिवर्तन हो गया है ।

2. इटालिक (रोमांस) उप परिवार -इस उप परिवार को इतालिक उप परिवार भी कहते हैं । इस परिवार की सबसे प्रसिद्ध भाषा लेटिन रोमन केथोलिक संप्रदाय की धर्मभाषा एंव यूरोप की सांस्कृतिक भाषा है । वस्तुतः यूरोप में इसका वही स्थान है जो भारत में संस्कृत का है । लैटिन का प्राचीनतम रूप 500 ई. पूर्व के आस-पास शिलालेखों में मिलता है । मध्यकाल में लेटिन का प्राचीनतम रूप विकसित होकर पूरे रोमन-साम्राज्य की राजभाषा के रूप प्रख्यात हुआ । आधुनिक लेटिन मध्यकालीन लैटिन का विकसित रूप है । इस परिवार की प्राचीनतम भाषाओं-ओस्कन एवं अस्टेवन का परवर्ती विकास नहीं मिलता । इस क्षेत्र में लैटिन के अतिरिक्त फ्रासीसी (फ्रांस), स्पेनी (स्पेन), पुर्तगाली (पुर्तगाल) एवं रूमानी (रूमानिया) का भी विकास हुआ ।

इन भाषाओं में रचनात्मकता से अधिक धवन्यात्मक अंतर दृष्टिगत होता है । पुर्तगाली, स्पेनी और इतालिक लिखित रूप में बहुत कुछ बोधगम्य हैं । धवन्यात्मक भेद की दृष्टि से फांसीसी इनसे अधिक निम्न है । रूमानी (इतालिक) संरचनात्मक दृष्टि से भिन्न हैं । साहित्यिक दृष्टि से लातिन के अतिरिक्त फासीसी, इतालिक स्पेनी और पुर्तगाली सम्पन्न भाषाएं हैं । उपनिवेश विस्तार के कारण इतालिक वर्ग की भाषाओं का फैलाव कनाडा (फ्रांसीसी, मैक्सिकों(स्पेनी) और दक्षिणी अमेरिका(स्पेनी) और पुर्तगाली में भी है ।

विशेषताएं -

1. भारतीय आर्य भाषाओं की भांति लातिन वर्ग की सभी भाषायें योगात्मकता से अयोगात्मकता की और उन्मुख है ।
2. लातिन में कारक विभक्तियों का प्रयोग होता था किन्तु शेष भाषाओं में विभक्तियों का कार्य उपसर्गो का निपातों से किया जाता है ।
3. लातिन में तीन लिंग थे, किन्तु अब इनमें केवल दो लिंग है- पुल्लिंग और स्त्री लिंग । नपुंसक लिंग संज्ञा या तो पुल्लिंग में प्रयुक्त होती है या स्त्रीलिंग में ।
4. वचन दो हैं -एकवचन और द्विवचन ।
5. विशेषण के लिंग और वचन संज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार चलते हैं । बहुत जटिल है ।
6. कालों और रूपों के बाहुल्य के कारण क्रिया रूपों की रचना बहुत जटिल है ।

7. एक स्रोत से विकसित होने के कारण रोमन भाषाओं के शब्द भण्डार तथा वाक्य रचना में एकरूपता है ।
8. लातिन के निश्चय वाचक सर्वनाम 'इल्ले' से विभिन्न रूपों में विकसित आर्टिकल का प्रयोग सभी भाषाओं में होता है । हां, इतालवी, फ्रांसीसी, स्पेनी, पुर्तगाली में इसका प्रयोग संज्ञा के पहले और रोमानी में संज्ञा के बाद होता है ।
9. स्पष्टत: लातिन इस परिवार की प्राचीनतम भाषा है, जो कालान्तर में विकसित भाषाओं को प्रभावित करती है ।
10. अयोगात्मक होने से वाक्य में पद का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है ।

3. जर्मनिक (ट्यूटानिक) उप परिवार

आज संसार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषा अंग्रेजी - इस उप परिवार की ही भाषा है । गाथिक इस परिवार की प्राचीनतम भाषा है किन्तु आज यह लुपाप्राय है । चौथी शताब्दी का बाईबिल का अनुवाद गाथिक की सबसे प्राचीन रचना है । जर्मन और डच भाषाएं प्रचार-प्रसार और साहित्य, दर्शन तथा ज्ञान की दृष्टि से इस उप परिवार की उल्लेख भाषाएँ है, विशेषकर जर्मन । भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी जर्मन का महत्व बहुत अधिक हैं । इस उप परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं- आइसलैण्डी (आइसलैण्ड), डेनी '(डेनमार्क), नार्वेई (नार्वे), स्वीडी (स्वीडेन), अंग्रेजी (इंगलैण्ड), उच्च और निम्न जर्मन (जर्मनी), डच (हॉलेण्ड), पलेमी (बेल्लियम) ।

विशेषताएं-

1. प्रारम्भ में ये भाषाएं अयोगात्मक थीं, जर्मन आज की बहुत कुछ योगात्मक है, किन्तु आज इस परिवार की भाषाओं में अयोगात्मकता की प्रवृत्ति का बाहुल्य है ।
2. ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से जर्मनिक शाखा की भाषाएं उल्लेख्य हैं ।
   सबल और निर्बल क्रियाओं के दो वर्ग हैं । सबल क्रियाएं वे हैं जिनमें धातु के अंतर्वर्त्ती स्वर में ही परिवर्तन करके भूतकाल बना लिया जाता है । जैसे-कम-केम, सी-सा ईट-एट, ब्रेक-ब्रोक आदि । निर्बल क्रियाऐं वे हैं जिनमें प्रत्यय जोड़कर भूतकाल बताया जाता है- लव्ह-लव्हड, वाक्-वाक्ड ।
3. सभी भाषाओं में बल का प्रयोग होता है । केवल स्वीडी में स्वर का प्रयोग होता है ।
4. केल्टिक उप परिवार : लगभग दो हजार वर्ष पूर्व केल्टिक शाखा की भाषाओं का प्रयोग यूरोप के बड़े भूभाग-ब्रिटेन, फांस, उत्तरी इटली से लेकर एशिया माइनर, आधुनिक तुर्की तक होता था । इस भाषा के प्रयोक्ता अत्यंत साहसी और युद्ध-प्रिय थे । इस भू-भाग में उनके साम्राज्य का विस्तार था । कालांतर में रोमन साम्राज्य के प्रभुत्व और राज्य-विस्तार के साथ-साथ केल्टिक जाति और केल्टिक भाषा का दास आरम्भ हुआ । आज इस शाखा की भाषाओं को बोलने वालों की संख्या सीमित हो गई है । उनके राजनीतिक प्रभुत्व का भी दास हुआ ।
   इस शाखा की भाषाएं आज उत्तर पश्चिमी फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड, वेल्स तथा कार्नवाल में बोली जाती है । आयरलैण्ड की आइरिसिस और वेल्स की वेल्स

इस समय इस उप परिवार की मुख्य भाषाएं है । इसके अतिरिक्त मान, स्काच, ब्रिटेनी और गाल भी इसी उप परिवार की उप भाषाएं हैं ।

विशेषताएं-

1. भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भारोपीय परिवार मे केल्टिक सबसे कठिन और अस्प्ष्ठ भाषा हैं । परिवर्तन के कारण इनके मूल शब्दों को पहचानना कठिन है । इन परिवर्तनों के आधार पर ध्वनि-प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों की परिकल्पना भी टेढ़ी खीर है ।
2. संज्ञा के रूप अंग्रेजी की तरह विश्लिष्ट हो गए हैं ।
3. वाक्यात्मक संरचना भी अत्यधिक जटिल हैं । इसलिए कुछ विद्वानों की कल्पना है कि इस शाखा की वाक्य रचना का आधार अभारोपीय है । वे बर्बर भाषा को केल्टिक की वाक्य रचना का आधार मानते हैं ।
4. भारोपीय की प ध्वनि केल्टिक की एक शाखा में विद्‌यमान है, दूसरी में 'ऊ' के रूप में परिवर्तन हो जाती है । इसी कारण कतिपय भाषा-वैज्ञानिक इस शाखा को 'क' वर्ग और 'प' वर्ग में बांटते हैं ।

   क- वर्ग में आइरिस, स्काच, माक्स एंव प वर्ग में वेल्स, कार्निश, ब्रिटिश, गाधिक भाषाएं आती हैं ।
5. तोखारी उप परिवार - इस उप परिवार का पता बीसवीं सदी में तब लगा, जब पूर्वी तुर्कीस्तान से प्राप्त कुछ पत्रों एवं ग्रंथों का अध्ययन किया गया । इस भाषा को बोलने वाली जाति-तोखार अथवा तोषार- के आधार पर तोखारी कहा गया । इसकी प्राप्त सामग्री ईसा की प्रथम शताब्दी से पूर्व की मानी जाती है । महाभारत में 'तुषार' शब्द से तोखारी का उल्लेख मिलता हैं । इनका राज्य मध्य एशिया में दूसरा सदी ईपू से 7 वीं सदी तक था । ऐसा माना जाता है कि हूणों ने इन पर अधिपत्य जमाया । इसका क्षेत्र मध्य एशिया (तुरफान) है । स्थान-नैकट्‌य के कारण तोखारी भाषा पर यूराल अल्ताई भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट हैं ।

विशेषताएं -

1. तोखारी में भारोपीय की स्वर ध्वनियां सरलता की ओर उन्मुख हैं, अस्तु स्वर मात्राएं उपेक्षित हुई । व्यंजनों की संख्या भी बहुत कम हैं । भारोपीय स्पर्श-व्यंजनों में भी केवल तीन- प, त्, क्, शेष हैं ।
2. कारक नौ हैं । कर्ता, कर्म और सम्बन्ध इनमें प्रधान हैं, जिनके एकवचन रूप भारोपीय के समान हैं । बहुवचन में केवल कर्ता और कर्म के रूप ही भारोपीय सदृश है । अन्य कारकों का बहुवचन अश्लिष्ट योगात्मक पद्धति से बनता है ।
3. इसमें द्‌विवचन भी मिलता है ।
4. सर्वनाम भारोपीय के ही हैं ।
5. संख्या वाचक शब्द भी भारोपीय के हैं । सौ के संख्या वाचक शब्द इसे केंतुम शाखा की भाषा सिद्ध करता हैं ।
6. क्रियारूपों में जटिलता है ।

7. हित्ती उप परिवार : हित्ती आज मृत भाषा है । किन्तु भाषा वैइग़निक दृष्टि से यह भारोपीय परिवार की भाषा या उसकी बहन सिद्ध होती है । इसीलिए बीसवीं सदी के आरम्भ में एशिया माइनर के बोगज कोई (तुर्की) में (अंकारा से 80 मील पूर्व) गांव की खुदाई से प्राप्त अभिलेख भारोपीय परिवार के प्राचीनतम लेख माने जाते हैं । वस्तुत: मिट्टी की चौड़ी पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों में लिखे ये अभिलेख ईसा पूर्व 2000 वर्ष पूर्व के सिद्ध होते हैं । सुमेरियन एवं अक्केडियन भाषाओं के प्रभाव के कारण इसे सेमेटिक परिवार की तथा सामी से उत्पन्न माना जाता था, किन्तु यह निश्चित रूप से भारोपीय परिवार की कैंतुम् वर्ग की भाषा है क्योंकि भारोपीय भाषा की कुछ खास विशेषताएं केवल हित्ती में ही दिखाई पड़ती है । भारोपीय का हित्ती से वही सम्बन्ध है जो ग्रीक या संस्कृत का इतालिक से । सर्वमान्य सिद्धांत है कि तोखारी और हित्ती सबसे पहले भारोपीय परिवार से अलग हुई इसलिए स्टर्टवेंट जैसे अनेक भाषा वैज्ञानिक भारोपीय परिवार को भारत हिन्दी परिवार कहने के पक्षपाती है ।

विशेषताएं -

1. हित्ती की संज्ञाओं, विशेषणों तथा सर्वनामों में केवल दो ही लिंग पाए जाते हैं - पुल्लिंग और नपुंसक लिंग । स्त्रीलिंग का अभाव है । यह विशेषता समूचे भारोपीय परिवार में केवल हिन्दी में ही मिलती है ।
2. भारोपीय कारकों में से हित्ती में केवल छः कारक है । अधिकरण उपेक्षित है ।
3. भारोपीय सर्वनामों में से हित्ती के सर्वनामों की अत्यधिक समानता है ।
4. प्राचीन भारोपीय की अपेक्षा हित्ती की क्रियाओं में सरलता है ।
5. काल दो हैं - वर्तमान और भूत ।

(ख) सतम् शाखा -

7. बाल्तो स्लाविक उप परिवार- यह परिवार दो उप शाखाओं बाल्तिक एंव स्लाविक में विभक्त है । बाल्तिक की उप बोलियां हैं- लिथुआनी एवं लेती (लेष्चि) । स्लाविक - पूर्वी; पश्चिमी एवं दक्षिणी-तीन वर्गो में विभक्त हो जाती है । पूर्वी में महारूसी, खेतरूसी, लघुरूसी (उक्रायनी), पश्चिमी में पोली चेक, स्लोवाक एवं दक्षिणी में बुलगाटी, सर्वोक्रोतों तथा स्लोवेनी बोलियां प्रयुक्त होती है । बुलग़रिया, पोलैण्ड और चेकोस्लाविया के क्षेत्रों में इस उप परिवार की भाषाओं की प्रयोगगत प्रधानता है ।

(क) **बाल्तिक -** बाल्तिक सागर के तट पर स्थित लिथुआनिया और लातविया नाम दो छोटे देशों की भाषाएं इस शाखा में शामिल हैं । महायुद्ध के पूर्व ये दोनों स्वतंत्र देश थे किन्तु बाद में सोवियत संघ के अंग बने । लिथुआनी पूर्णतया श्लिष्ट और वैदिक संस्कृत से मिलती-जुलती है । यह बादय-प्रभाव से पूर्णतया मुक्त है । इसमें लिथुआनियन भारोपीय परिवार की प्राचीनतम भाषा है । भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण तो हैं, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से नगण्य हैं ।

(ख) **स्लाविक -** पूर्वी स्लाविक की महारूसी या रूसी सोवियत संघ की राष्ट्रभाषा हैं । शासन, शिक्षा, तकनीकी एंव वैज्ञानिक साहित्य में उसी का प्रयोग होता है । इसका साहित्य 18 वीं सदी से आरम्भ होता है तब भी इसमें प्रभूत साहित्य उपलब्ध है । तुर्गनेक दास्ता वेक्की, चेखव, तालस्तोय, गोर्की आदि इसके प्रसिद्ध साहित्यकार है । यह बड़ी समर्थ और सबल भाषा है ।

'स्लोवाक' चेक भाषा का वैभाषिक रूप माना जाता है । दक्षिणी स्लाविक की सबसे प्राचीन भाषा बुलगारी है । स्लाविक शाखा का प्राचीनतम साहित्यिक अवशेष बाइबिल के एक अनुवाद (लगभग 8 वीं सदी का) को स्वीकार किया जाता है । नवीं से बाहरवीं सदी के बीच संत सिरिल और मेथोदिडस ने धार्मिक साहित्य की रचना की । रूसी भाषा के लिए वर्तमान में प्रयुक्त लिपि के निर्माण का श्रेय संत सिरिल को दिया जाता है । आधुनिक बुलगारी, प्राचीन बुलगारी ग्रीक, तुर्की, रूमानी एवं अलबानी भाषाओं के शब्दों की बहुलता हो गई है । दक्षिणी स्लाविक सर्वोक्रोतो युगोस्लाविया (दक्षिण) की भाषा हैं । इसकी अनेक बोलियां है । स्लाविक की इस महत्वपूर्ण भाषा का साहित्य बारहवीं सदी से उपलब्ध होता है । स्लोवेनी युगोस्लाविया के दक्षिण आद्रियातिक सागर के तट पर बोली जाती है । इसका साहित्य अनुपलब्ध है ॥

8. आरमीनी उप परिवार - आरमीनिया की भाषा आरमीनी है । यह क्षेत्र ईरान से सटा है, अस्तु इस पर ईरानी भाषा का प्रभाव है । अनेक शब्द, प्रत्यय, उपसर्ग ईरानी के हैं । इसका ढांचा अलग है । वस्तुतः यह बाल्लोस्ताविक और आर्य भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है । उपलव्य साहित्य 10- 12 वीं सदी का है । यह कुस्तुन्तुनिया और कृष्ण सागर के किनारे बोली जाती है।

9. अलबानी (इलीरी) उप परिवार - अलबानी, इलीरी नामक भाषा एक व्यापक शाखा का अवशेष है, जिसके अध्ययन की सामग्री अत्यल्प है केवल कुछ प्राचीन अभिलेख ही प्राप्त हैं । साहित्य का इसमें अभाव है । सोलहवीं सदी का बाइबिल का एक अनुवाद अवश्य उपलब्ध है । सत्रहवीं शताब्दी से इसमें साहित्य का प्रारम्भ माना जाता है, जिसमें लोकगीतों की प्रधानता है । अलबानी आद्रियातिक सागर के पूर्व स्थित पहाड़ी प्रदेश की भाषा है । लिखित रूप में आने के पहले अलबानी में ध्वनि और पद रचना की दृष्टि से इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि कुछ भाषा-वैज्ञानिक उसे भारत यूरोपीय परिवार में रखने के पक्षधर नहीं थे । ग्रीक का नेकट्य स्लाविका का प्रभाव एवं वेनिस तथा तुर्की के राजनीतिक प्रभुत्व के परिणामस्वरूप अलबानी में विदेशी शब्दों का बाहुल्य और निजी स्वरूप का अभाव है ।

10. भारत ईरानी (आर्य) उप परिवार- इसके दो वर्ग किए जाते हैं -

(क) भारतीय उप शाखा और (ख) ईरानी उप शाखा ।

(क) भारतीय उप शाखा - इसको भी तीन वर्गो में विभक्त किया गया है -

(1) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा - प्रारम्भ से 500 ई.पू. तक

(2) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा - ई.पू. 501 से 1000 ई. तक

(3) आधुनिक भारतीय आर्य भाषा 1000 ई. से आज तक ।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा न तो एक समय की भाषा है और न एक क्षेत्र की । यह पूरे भारत की, प्राचीन काल की भाषा है । इसका प्राचीनतम रूप वेदों में मिलता है, और उसी काल में जन साधारण के बीच व्यवहृत होने वाली भाषा कालांतर में लौकिक संस्कृत के रूप में साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करती है । अत: इसके दो रूप हैं (1) वैदिक संस्कृत एवं (2) लौकिक संस्कृत । वैदिक भाषा संसार की भाषाओं में उपलब्ध सर्वाधिक प्राचीन रूप में विख्यात है । इसमें भी ऋग्वेद के दूसरे से नवम मण्डल में इसका प्राचीनतम रूप सुरक्षित है । इस भाषा का परवर्ती रूप ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों, आरण्यक आदि ग्रंथों में मिलता है । इसका काल ई.पू. 2500 से ई.पू. 1000 तक माना जाता है । इस समय तक आर्यो की सत्ता मध्यदेश में स्थापित हो चुकी थी । लौकिक संस्कृत का काल यधपि ई.पू. 1000 से ई.पू. 500 तक माना जाता है किन्तु इसका प्रचार प्रसार प्रयोग आज तक होता रहा है । प्रभाव के धरातल पर मध्यकालीन और आधुनिक आर्य भाषाएं उल्लेख्य हैं पाणिनि ने इस भाषा का संस्कार किया उनकी अष्टाध्यायी आज भी भाषा विज्ञान का मूल स्त्रोत है । पंतजलि का 'महाभाष्य' भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है । 'निघण्टु' जैसा कोष संसार की अन्य भाषाओं में अनुलेख है । साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकि व्यास कालिदास, हाल, माघ एवं हर्ष आदि अनेक रचनाकारों के ग्रंथ संस्कृत को संसार की अन्य भाषाओं से ऊँचा स्थान दिलाते हैं ।

लौकिक संस्कृत के समानांतर लोक की भाषा अपना स्वरूप प्राप्त करती रही, जिसे 'प्राकृत' कहा गया । प्राकृत के तीन स्तर तीन कालों के परिचायक हैं । प्रथम प्राकृत अर्थात 'पालि' की अवधि ईपू 501 से प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ तक, प्रथम शताब्दी से 501 ई. तक की अवधि द्वितीय प्राकृत अर्थ्रत शुद्ध 'प्राकृत' तथा 501 ई.से. व 1000 ई. तक तृतीय प्राकृत अर्थात् 'अपभ्रंश' का काल स्वीकार किया जाता है । ई. सन 1000 से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं अलग-अलग क्षेत्रों में भाषिक स्वरूप ग्रहण करती है । इनमें प्रमुख हैं हिन्दी, बंगला उडिया असमिया, मराठी. गुजराती, आदि । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया । साहित्यिक सम्पन्नता और बहु प्रचार की दृष्टि से हिन्दी के पश्चात् बंगला एवं मराठी अत्यधिक सम्पन्न भाषाएं है ।

वस्तुत: पूरे भारत की भाषाओं को ही नहीं, अनेक विदेशी भाषाओं को भी संस्कृत ने बहुत गहरे तक प्रभावित किया और आज आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के नाम से अभिहित की जानी वाली भाषाओं की ध्वनियां, संरचना प्रणाली एवं शब्द संपदा आदि संस्कृत की ही देन हैं । हां मानव की बदलती प्रवृत्ति एवं बदलती परिस्थिति के अनुरूप ही आज की भाषाओं का स्वरूप बदला, साहित्य के धरातल पर गद्यात्मक विधाओं ने भी जन्म लिया । सरलीकरण की प्रवृति तो पालि काल से ही प्रारम्भ हुई जो आज और आगे बढ़ी । फलस्वरूप हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं (भा.आ.भा.) का व्याकरण भी बदला । किन्तु तत्सम (संस्कृत शब्द) शब्दावली की बहुलता आज की हिन्दी की प्राणधारा है । यही स्थिति बंगला, मराठी और गुजराती की भी है । द्रविड़ परिवार की भाषाएं विशेषकर मलयालम, तेलगु और कन्नड की भी यही स्थिति है । संस्कृत ध्वनियां आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कुछ लुप्त हुई यथा ऋ, लृ, द, -ह् में से

प्रथम तीन तो पालिकाल में ही लुपा हुई शेष आगे चलकर सच तो यह है कि वैदिक और लौकिक संस्कृत ध्वनियों में पालिकाल में प्रारम्भ परिवर्तन अपभ्रंश तक पहुंचते- पहुंचते पूर्णता प्राप्त करता है जो सिद्ध करता है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं संस्कृत का ही विकासात्मक स्वरूप हैं । अंग्रेजी आदि की भांति आज आभा. आर्य भाषाऐं शिलष्ट से अश्लिष्ट, योगात्मकता से अयोगात्मकता की ओर उज़ख हैं । संस्कृत वाक्य रचना में पद स्थान प्रमुख था, किन्तु आज यह गौण हो गया । कारकों का विकास भी हुआ । वचन और लिंग तीन के स्थान पर दो रह गए केवल गुजराती, मराठी में तीन लिंग हैं देशज शब्दों के भी नए विकास हुए । अनेक विदेशी शब्द भी आभा. आर्य भाषाओं की शब्दावली के अंग बने जिनमें अंग्रेजी, अरबी, तमिल, तेलगु, मलयालम तथा फारसी के भी शब्द हैं । द्वित्व व्यंजन का लोप कर बने शब्दों को तद्भव की संज्ञा दी गई कर्म > कम्म > काम > धर्म > धम्म > धाम ।

(ख) ईरानी शाखा - कहा जाता है कि ईरानी भाषा का साहित्य अत्यंत प्राचीन है, किन्तु उन प्राचीनतम ग्रंथों का कोई पता ठिकाना नहीं । फलस्वरूप इस उप परिवार की भाषाओं का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत कर पाना कठिन है । इसका कारण है सिकन्दर ई.पू. 323 एवं अरब विजेताओं (ई. सन् 651) का आक्रमण आज वहां का प्राचीनतम साहित्य फारसी धर्मग्रंथ 'अवेस्ता' ही है । इसकी भाषा च्चवेद से मिलती-जुलती है । इसके अतिरिक्त हरमानी बादशाहों के छठी सदी ईपू के कुछ पुराने शिलालेख भी मिलते हैं । इरानी भाषाओं की दो शाखाएं पूर्वी और पश्चिमी मान्य है । पूर्वी शाखा की एक भाषा अवेस्ता है । अवेस्ता का अर्थ है शास्त्र । अवेस्ता भाषा का विकास किस रूप में आगे हुआ, इसकी जानकारी नहीं मिल पाती । पूर्वी शाखा की दूसरी भाषा सोग्दियन है इसका पता 18 वीं सदी में लगा । इस भाषा में ईसाई और बौद्ध धर्म की कुछ पुस्तकें मिलती हैं । यह सग्दियाना की भाषा थी कभी जिसका विस्तार मंचूरिया तक था । पामीरो आदि बोलियों को इसी की बेटी माना जाता है । काश्मीरी हिन्दूकुश पइंत एवं पामीर को तराई में बोली जाती है इसकी प्रसिद्ध बोली गलचा है प्राचीन ईरान के पश्चिमी क्षेत्र में दो भाषाएं मीडियन एवं प्राचीन फारसी प्रयुक्त होती थी मीडियन भाषा के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं मिल पाती । वैसे यह अनुमान किया जाता है कि यह पश्चिमी ईरान में प्रचलित थी । प्राचीन ईरान के पश्चिमी हिस्से को फारस कहा जाता था । इस क्षेत्र की भाषा प्राचीन फारसी थी । कतिपय विद्वान इसे अवेस्ता से विकसित मानते हैं अवेस्ता का प्रतिनिधि साहित्य फारसीयों का धर्मग्रंथ अवेस्ता है जिसके रचयिता जरथुष्ट हैं । यह वैक्ट्रिया राज्य की राजभाषा थी । इसलिए फारसी को अवेस्ता से विकसित मानना उचित नहीं हो यह तो अवेस्ता से विकसित हुई अथवा कुछ काल बाद ही इसका विकास हुआ । डेरियस प्रथम आदि के ई.पू. 512-485 के खुदाई कीलाक्षर अभिलेखों में इसका स्वरूप सुरक्षित है । इसका अलग साहित्य नहीं मिलता । यधपि यह अवेस्ता और संस्कृत के अत्यधिक निकट हैं ।

मध्यमकालीन ईरानी फारसी का ही विकसित रूप है । इसे पहलवी भी कहा जाता है । इसका प्राचीनतम रूप तीसरी सदी ईपू के कुछ सिक्कों में मिलता है पहलवी का साहित्य तीसरी सदी से नियमित रूप में मिलने लगता है । पहलवी के दो रूप (1) हुज्वारेष, एवं (2) पांजद थे । हुज्वारेष में सेमेटिक शब्दों की बहुलता थी । व्याकरण पर सेमेटिक का प्रभाव है । सेमेटिक से प्रभावित इसकी लिपि अवैज्ञानिक है । अवेस्ता के कुछ अनुकद एवं पारसियों का धार्मिक

साहित्य इस भाषा की साहित्यिक निधि है । पहलवी का दूसरा रूप पाजेद या फारसी है यह सेमेटिक प्रभाव से मुक्त हैं इसका प्रचार-प्रसार पूर्वी प्रदेशों में था । भारतीय पारसियों की भाषा यही हैं. जिसका प्रभाव गुजराती पर पड़ा है ।

आधुनिक फारसी में हिन्दी की ही भांति वियोगात्मकता के लक्षण दिखाई देते हैं इसका आरम्भिक ग्रंथ महाकवि फिरदौसी (840 से 1020 ई.) का शाहनामा नामक राष्ट्रीय महाकाव्यात्मक ग्रंथ है । यह मध्यकालीन की अपेक्षा माधुर्य युक्त, एवं सरस हैं । इसकी भाषा में अरबी के शब्द कम हैं किन्तु परवर्ती फारसी अरबी के प्रभाव से बोझिल ही उठी है । किन्तु राष्ट्रप्रेम, अपनी संस्कृति तथा भाषा प्रेम से प्रेरित आंदोलन के परिणाम स्वरूप अरबी शब्दों को निकाल बाहर कर अद्‌यतन फारसी अपने मूल वैशिष्ठ्य को प्राप्त कर एक सम्पन्न भाषा बन गई हां, फ्रांसीसी शब्दों की घुसपैठ इधर कुछ हुई है, जिसका कारण तेल कम्पनियों का प्रभुत्व है । आधुनिक फारसी की बोलियों के निर्धारण में विद्‌वान एकमत नहीं । इसका कारण है, यह न स्पष्ट हो पाना कि किसका विकास अवेस्ता से हुआ और किसका फारसी से । टकर की मान्यता है कि आधुनिक फारसी एवं पहलवी भी संदिग्ध हैं उनके अनुसार अवेस्ता और प्राचीन फारसी के बाद सभी ईरानी भाषाएं एवं बोलियां तद्‌युगीन बोलियों से विकसित हुई ।

असेटिक (काकेशस के एक छोटे से प्रदेश में प्रयुक्त), कुर्दी या कुर्दिश, बिलोची (बिलोचिस्तान) इसकी प्रमुख बोलियां है असेटिक की ध्वनियां जार्जियन से प्रभावित है । पास-पड़ोस की अन्य अनार्य भाषाओं से भी यह प्रभावित है । कुर्दिश आधुनिक फारसी के समीप है । इसकी सर्व प्रमुख विशेषता इसके छोटे शब्द रूप हैं । बिलोची भी आधुनिक फारसी के निकट हैं । यह अभी तक कुछ संयोगात्मक है । साहित्य के नाम पर कुछ ग्राम कथाऐं ही उपलब्ध है । संघर्षी वर्ण, स्पर्श में परिवर्तन हो गए । पश्तो भारतीय आर्यभाषा की ध्वन्यात्मका एंव वाक्यात्मक संरचना तथा बलाघात से प्रभावित है आज यह भारतीय एवं ईरानी की मध्यवर्ती भाषा सी बन गई है । 16 वीं सदी के बाद से पश्तों में कुछ साहित्य रचना हुई । इसमें लोक साहित्य भी काफी है ।

16.4 विचार सन्दर्भ/शब्दावली

1. आयोगात्मक भाषाएं - आकृति या रूप की छवि से वर्गीकृत भाषा समूह । इस वर्ग की भाषाओं में योग नहीं रहता अर्थात शब्दों में उपसर्ग या प्रत्यय आदि जोड़कर अन्य शब्द या वाक्य में प्रयुक्त होने लायक रूप नहीं बनाए जाते । इनमें अर्थ तत्व और सम्बन्ध तत्व में योग नहीं होता ।
2. योगात्मक भाषाएं - इनमें सम्बन्ध तत्व और अर्थ तत्व में योग हो जाता है अर्थात् वे मिलेजुले रहते हैं ।
3. प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं - इनके सम्बन्ध तत्व और अर्थ तत्व -का योग इतना घुला मिला होता है कि इन्हें न तो अलग-अलग पहचाना जा सकता है न एक को दूसरे से अलग ही किया जा सकता है ।
4. भारोपीय - भारत और योरोपीय
5. अंतत - आखिरकार, अन्त में

6. पुन:सृजित - फिर से बनाई गई
7. बहु लता अधिकता
8. लप्तप्राय - खोने के करीब
9. टेढ़ी खीर - मुश्किल के अर्थ में प्रयुक्त मुहावरा
10. वर्चस्व - प्रभुत्व
11. नैकट्य - समीपता
12. पक्षधर - पक्ष लेने वाले, समर्थक
13. वैभाषिक - किसी भाषा की उपभाषा में प्रयुक्त शब्द
14. कीलाक्षर - छोटी-छोटी कीलें ठोककर काठ की पट्टी पर अंकित अक्षर
15. बोध गम्य - समझ में आने लायक

16.5 सारांश

जनसंख्या, व्यापकता, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, वैज्ञानिक प्रगति, राजनीतिक प्रभुत्व एवं भाषा - वैज्ञानिक उपलव्यियों आदि सभी दृष्टियों से भारोपीय परिवार संसार की भाषाओं में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी ठहरता है । यह सच है कि मूल भारोपीय भाषा क्या थी? उसका मूल स्थान कहां था? आदि सभी प्रश्न अनुत्तरित है किन्तु पुनःनिर्माण भाषा-शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार निर्मित मूल भारोपीय भाषा को पूर्णतया खारिज नहीं किया जा सकता । साथ ही भाषा के मूल-स्थान संम्बन्धी प्रश्न के उत्तर की खोज में समय और श्रम की बर्बादी भी व्यर्थ है । इसी प्रकार इस भाषा परिवार के 'नाम' की समस्या को भी विवाद में घसीटना अनावश्यक है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस भाषा-परिवार की भाषाएं विश्व के कोने-कोने में फैली हैं, जो इन भाषाओं के शक्ति सामर्थ्य, सीखने में सहजता, सरलता, साहित्यिक वर्चस्व की कहानी कहती हैं । सभ्यता और सांस्कृतिक समृद्धि ही इन भाषाओं के प्रसार-फैलाव के कारक है । आज का मानव समुदाय वह चाहे जिस देश-क्षेत्र का निवासी हो इस भाषा परिवार की सभ्यता और संस्कृति का अनुगमन कर स्वयं अपनी सभ्यता और संस्कृति को समृद्ध करने की आकांक्षा से प्रेरित है ।

भाषिक धरातल पर विश्व की अनेक भाषाओं को इस भाषा परिवार की भाषाओं ने प्रभावित तो किया ही है, साथ ही अन्य भाषा परिवारों को यह भाषा परिवार भाषा-विवेचन के सिद्धांतों के अतिरिक्त अपनी भाषाओं को समृद्ध बनाने की प्रेरणा भी देता है । इस प्रकार इस परिवार की भाषाएं अन्य भाषाओं के विकास, उनकी संरक्षा में सहायक सिद्ध हो रही है । ठीक इसी तरह ये अन्य भाषाओं के साहित्यक विकास का मार्गदर्शक बन रही है ।

16.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) दीर्घोतरी प्रश्न

1. भारोपीय भाषा परिवार के महत्व, क्षेत्र विस्तार तथा नामकरण पर प्रकाश डालिए ।

2. भारोपीय भाषा परिवार के वर्गीकरण पर विचार करते हुए किसी एक उप वर्ग की दो भाषाओं का परिचय दीजिए और विशेषताएं बताइए ।

3. भारत ईरानी परिवार की भाषाओं का तुलनात्मक विवेचन कीजिए ।

4. भारोपीय भाषा परिवार में भारतीय आर्य शाखा का साहित्यिक और भाषिक महत्व रेखांकित कीजिए ।

5. भारोपीय भाषा परिवार की पुनर्सृजित भाषा के संरचनात्मक वैशिष्ठय पर प्रकाश डालिए।

(ख) लघूतरी प्रश्न

1. इतालिक उप परिवार की भाषाओं की विशेषताएं संक्षेप में लिखिए ।
2. हित्ती उप परिवार की भाषाओं की जानकारी कैसे मिली? इस उप परिवार की चार भाषिक विशेषताएं लिखिए ।
3. केंतुम शाखा से क्या तात्पर्य है इसमें संसार की कौन-कौन सी भाषाएं आती है ।
4. भारोपीय भाषाओं का क्षेत्र निर्धारित कीजिए ।
5. तोखारी उप परिवार की भाषाओं का पता कब और कैसे लगा?

(ग) रिक्त स्थानों को पूर्ण कीजिए -

1. आरमीनिया की भाषा.. है ।
2. स्लोवाक.. भाषा का वैभाषिक रूप माना जाता है ।
3. भारोपीय भाषा में...................................... की बहुलता थी ।
4. .... समुदाय की प्राचीनतम भाषा ग्रीक है ।
5. अंग्रेजी..................................... उप परिवार की भाषा है ।

(घ) सही/गलत चिह्नित कीजिए-

1. मनुष्य की पहली खोज भाषा है । सही/गलत
2. मूल भारोपीय भाषा अथवा भारत हित्ती की लिखित सामग्री उपलख नहीं है । सही/गलत
3. भारोपीय परिवार में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से केल्टिक सबसे सुस्पष्ट और सरल भाषा है। सही/गलत
4. इतालिक उप परिवार की सर्वप्रसिद्ध भाषा लेटिन है । सही/गलत
5. चेखव, गोर्की और टाल्सटॉय ने रूसी भाषा में लिखा । सही/गलत

16.7 संदर्भ ग्रंथ

1. डा. राजमणि शर्मा; आधुनिक भाषा विज्ञान, वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज नई दिल्ली- 110002
2. वही - हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप वहीं
3. RACH Taraporewala Jahangir Soralegi - Elemente ed. of Science of language - Calcutta University, Calcutta.

इकाई-17 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं

इकाई की रूपरेखा

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं

17.3.1 प्राचीन भारतीय भाषाएं

(क) वैदिक संस्कृत व लौकिक संस्कृत

17.3.2 मध्यकालीन भारतीय भाषाएं

(क) पालि. परिचय एवं व्याकरणात्मक विशेषताएं

(ख) प्राकृत. परिचय एवं व्याकरणात्मक विशेषताएं

(ग) अपभ्रंश परिचय एवं व्याकरणात्मक विशेषताएं

17.4 विचार संदर्भाशब्दावली

17.5 सारांश

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.7 संदर्भ ग्रंथ

17.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :-

- विश्व की भाषाओं में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (वैदिक एवं लौकिक संस्कृत) के महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे ।
- प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के व्याकरणात्मक वैशिष्ट्य का रेखांकन कर सकेंगे ।
- प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के साहित्यिक एवं भाषा वैज्ञानिक अवदान का निरूपण कर सकेंगे ।

17.2 प्रस्तावना

"आर्य" शब्द जाति सूचक माना जाता है । कालांतर में यह धर्म से भी संपृक्त हुआ तथा सभ्यता संस्कृति से भी जुडा । आर्य संस्कृति, आर्य सभ्यता से भी जुड़ी । वस्तुत: आर्य एक संघर्षशील अपराजेय जाति रही, जिसने अपनी सत्ता, भाषा, संस्कृति और सभ्यता का विकास कर उसे विश्व के कोने-कोने में फैलाया । प्राचीनतम भारतीय आर्य-भाषा, सभ्यता और संस्कृति विश्व की सर्वोत्तम और प्राचीन निधि है जो उसके साहित्य में सुरक्षित है । संस्कृत का विकास और समृद्धि आर्यो की देन है । संस्कृत में आर्य जाति के गौरव का आदिम ग्रंथ है । संस्कृत के दो रूप हैं (1) वैदिक (2) लौकिक संस्कृत । वैदिक संस्कृत का स्वरूप वेदों में सुरक्षित है । वेदों में ऋग्वेद के द्वितीय से आठवें मण्डल तक की भाषा का काल ईपू 5000 वर्ष आज मान्य हो चुका है और चारों वेद एक तरफ साहित्य हैं, दूसरी तरफ आध्यात्म दर्शन

तथा चिंतन के निष्कर्ष । ऐसे निष्कर्ष जो विश्व में अतुलनीय हैं । अद्यतन भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से सिद्ध हो चुका है कि ग्रीक, लैटिन, जर्मन, अवेस्ता आदि यूरोपीय भाषाएँ संस्कृत की परवर्ती और उससे प्रभावित है । आज तो भारोपीय भाषा की पुनर्सृजित भाषा भी अमान्य हो गयी है । संस्कृत उसके समानांतर जा पहुँची है ।

संस्कृत काल या यों कहें 'वैदिक संस्कृत' के साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करते ही जन-सामान्य में प्रयुक्त भाषा समानांतर रूप से विकसित होकर कभी लौकिक संस्कृत, कभी पालि, कभी प्राकृत और कभी अपभ्रंश के रूप में पूर्व साहित्यिक भाषा को अपदस्थ कर साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हुई । यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के जहाँ दो रूप (1) वैदिक संस्कृत एंव (2) लौकिक संस्कृत थे, वहीं मध्यकालीन आर्य भाषा के तीन रूप (1) पालि भाषा (2) प्राकृत भाषा एवं (3) अपभ्रंश हैं । सच यह है कि ये पाँचों रूप आर्य भाषा जाति के विकास के पाँच सोपान हैं । छठा सोपान है, आधुनिक आर्य भाषाएँ । वस्तुत: भाषा-वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुरूप भी एक ही भाषा हमेशा-हमेशा अपने मूल रूप में विद्यमान नहीं रह पाती । उसमें हमेशा सुषुपा रूप में परिवर्तन की प्रक्रिया सक्रिय रहती है; और एक लंबे काल बाद भाषा का स्वरूप पूर्णतया बदल जाता है । इस बदलाव के कारक हैं - परिस्थिति, क्षेत्र परिवर्तन, अन्य भाषाओं से संपर्क, राजनीतिक प्रभुता और जलवायु । संस्कृत (वैदिक या लौकिक) के ग्रंथ अपने-अपने क्षेत्र में "आदि" ग्रंथ माने गए हैं । संस्कृत में व्याकरण ग्रंथ भी लिखे गए, जो आज इस क्षेत्र में अपने मानदण्ड के लिए विख्यात और तुलनात्मक भाषा विज्ञान को जन्म देने वाले भी है ।

"पालि" एक भाषा ही नहीं एक आदोलन है । यह आदोलन जहाँ सामाजिक संरचना को बदल डालने का प्रयास हैं, वहीं यह जनता से सपूत। होकर जनता की बोली को साहित्यिक-भाषा के रूप में संपृक्त करने का प्रयास भी है । पहली बार, इस भाषा के द्वारा धर्मगत रूढ़ियों, सामंतवादी या साम्राज्यवादी प्रवृत्ति पर प्रहार हुआ ।

'प्राकृत ' की उपस्थिति तो संस्कृत काल से ही मानी जाती है, यहाँ तक कि लोक-भाषा पालि प्राकृत की प्रथम अवस्था है । स्पष्ट है कि 'प्राकृत' या द्वितीय प्राकृत भी जन-बोली का रूप होगी । प्राकृत के ढेर सारे उदाहरण शिलालेखों में मिलते हैं । प्राकृत, ग्रीक, जर्मन, अवेस्ता के समानांतर आर्यो की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई । वस्तुत: इसने भी, संस्कृत की ही भाँति विदेशी भाषाओं को प्रभावित किया । इस अवस्था तक भारतीय आर्य भाषाओं पर विदेशी भाषा का प्रभाव नहीं दिखायी देता है । ही, अपभ्रंश में कुछ इतर परिवारों की भाषाओं के 'शब्द मिल जाते हैं । यदि पालि बौद्ध धर्म को आधार बनाकर पुष्पित-पल्लवित हुई तो अपभ्रंश को जैन धर्मावलंबियों का करावलंब मिला और संस्कृत के पश्चात् अपभ्रंश ही ऐसी भाषा है, जिसमें प्रबंधात्मक रचनाओं ने स्वरूप पाया । उच्च वर्ग के विपरीत सामान्य वर्ग की पीड़ा, व्यथा, संत्रास के ज्ञान को इस भाषा ने लक्ष्य बनाया । कथानक और काव्यात्मक रूढ़ियों को नया रूप दिया । काव्य-विधाओं का विस्तार किया । पालि से प्रारंभ सरलीकरण की प्रवृत्ति पूर्ण हुई और आधुनिक भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ ।

भारतीय आर्य भाषा के उपर्युक्त चरणों के अध्ययन से जहाँ धर्म, जाति, समाज एंव मानव विकास समाज सम्बन्धी जानकारियाँ मिलती हैं, वहीं यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि भाषा धर्म और जाति से जुड़े बिना विकसित नहीं हो पाती । यह भी पता चलता है कि भाषा का प्रयोग धर्म प्रचार के लिए एक औजार के रूप में होता रहा है और यह भी प्रत्यक्ष हो जाता है कि मनुष्य प्रवृत्ति सरलीकरण की है वह अपनी इस प्रवृत्ति के कारण भाषा में बदलाव करता रहता है । तीसरी बात! यह भारत और विशेषकर भारतीय आर्य भाषा का दुर्भाग्य है कि हर काल में इसके अलग नाम दिए गए, जबकि वैदिक संस्कृत के सरलीकरण से भाषा-बदलाव की प्रवृत्ति प्रारंभ होती है । विश्व की अन्य भाषाओं में प्राचीन, मध्यकालीन और गधनिक विभाजन ही किए गए हैं । यह प्रवृत्ति प्रारंभ से आर्यन संस्कृति में लोकतांत्रिक व्यवस्था के पोषण का प्रभाव है ।

स्पष्टत: प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ, विशेषकर संस्कृत (दोनों रूप) और प्राकृत विश्व की भाषाओं के दिशा-निर्देशक हैं । ब्रिटिश उपनिवेशवाद के कारण भारतीय आर्य भाषा का महत्व नकारा गया, किन्तु अब भाषा वैज्ञानिक खोजों और सिद्धान्तों ने यह प्रमाणित कर दिया कि वैदिक संस्कृत या तो मूल भारोपीय भाषा है, अथवा उसके समकक्ष है । यह सभी तथ्य प्रमाणित होंगे, प्रस्तुत विवेचन में ।

17.3 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ

17.3.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का काल 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक अब मान्य हो चुका है । इस काल में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के दो रूप मिलते हैं. (1) वैदिक संस्कृत और (2) लौकिक संस्कृत । इन दोनों के बीच सीमा-रेखा का निर्धारण कठिन कार्य है, कारण यह है कि वैदिक संस्कृत के समानांतर लोक-बोलियों को आधार बनाकर लौकिक संस्कृत साहित्यिक भाषा का रूप वैदिक संस्कृत के साहित्यिक भाषा बनते समय से ही ले रही थी; जिसमें वैदिक संस्कृत के भाषिक तत्वों का समावेश, स्वाभाविक प्रक्रिया के तहत होता रहा; साथ में यह भी तथ्य ध्यान देने योग्य है कि वैदिक संस्कृत न तो एक काल की भाषा है, और न ही एक स्थान की । अस्तु उसमें भी विभिन्न स्थानीय तत्वों और काल के थपेड़ों में बदलते भाषिक रूपों का समावेश स्वाभाविक है । वैदिक और लौकिक संस्कृत की अत्यधिक समानता के बावक्छ्र उनमें विभेदक तत्व भी हैं । लौकिक संस्कृत अपनी अधिक लोक-सापेक्षता के कारण सरलीकरण की और अधिक उज़ख है, साथ ही उसमें लोक-तत्वों के अधिक समावेश से भाषिक विमृंखलन भी दिखायी देता है । उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर वैदिक संस्कृत का काल जहाँ ई.पू. 5000 से ई.पू. 2500 निर्धारित होता है, वहीं लौकिक संस्कृत का काल ई.पू. 2500 से ई.पू. 500 तक मान्य है ।

वैदिक संस्कृत के संदर्भ में यह तथ्य भी उजागर हो चुका है कि इसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद के दूसरे से लेकर आठवें मण्डल की भाषा का है और वेद एक काल, एक स्थान तथा

एक लेखक की रचना न होकर, विभिन्न कालों, विभिन्न स्थानों तथा विभिन्न ऋषियों के सूक्तों के संग्रह हैं ।.

जहाँ तक स्थान की बात है, च्छग्वेद के प्राचीनतम रूप की भाषा सप्त सिंधु या पंजाब के आसपास की है । कुरू, पांचाल तक पहुँचे आर्यो की भाषा के प्रमाण सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में सुरक्षित है । अस्तु इस काल की भाषा का केन्द्र बिन्दु पंजाब क्षेत्र की भाषा रहीं । इसके पश्चात् आर्य आगे बढ़े और अंत में मध्यप्रदेश उनका केन्द्र हुआ । यहाँ के स्थानीय तत्व भी आर्य भाषा में समाहित हुए और संभवत: इसी काल में ब्राहमणों, उपनिषदों की रचना हुई । कतिपय अपवादों के अलावा इन ग्रंथों की भाषा वेद के बाद के भाषा-स्वरूप का प्रमाण है । इनमें गद्य भाग भी है, जिसकी भाषा बोलचाल के बहुत निकट है । यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते भाषिक जटिलता और रूपाधिक्य कम हुआ । यह अलग बात है कि यह भाषा, पूर्ववर्ती वेद-भाषा जितनी व्याकरण सम्मत नहीं थी । यह स्थिति ई.पू. 2500 के आसपास की है । ई.पू. 1000 के आसपास भाषा का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है

स्पष्टत: चारों वेदों के काल तक की भाषा वैदिक संस्कृत भाषा तथा ब्राहमणों, उपनिषदों आदि की भाषा लौकिक संस्कृत भाषा है । वैदिक संस्कृत की अपेक्षा लौकिक संस्कृत की भाषा में व्याकरणिक नियमों की अपेक्षा, बोलचाल की प्रधानता दिखायी देती है ।

मध्यप्रदेश तक आर्यो के विकास की स्थिति, उनमें भाषिक विभिन्नता भी उजागर करती है । यह वैभिच्च दुरूह बनी वैदिक संहिताओं को सामान्य जनों के लिए बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से बने पद-पाठ, पद-पाठों से संहिता बनाने के नियम और इन नियमों के निर्देशन के लिए रचित प्रातिशाख्यों में दिखायी पड़ती है । अर्थात इसी प्रक्रिया की परिणति है, लौकिक संस्कृत का जन्म, जो वैदिक संस्कृत के समानांतर होता है, जिसमें लोक प्रमुखता है, रूप वैविध्य है और कालांतर में वैदिक संस्कृत को अपदस्थ कर लौकिक संस्कृत भाषा बन जाती है।

भाषा के धरातल पर व्याकरण की अशुद्धता, अव्यवस्था को पाणिनि ने लक्ष्य किया । ईपू पाँचवीं शती में पाणिनि ने अपने व्याकरण में उदीव्य (पंजाब) में प्रयुक्त संस्कृत के रूप से अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठित एवं पंडितों में मान्य रूप को नियमबद्ध किया, जो लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत का आदर्श बना । पाणिनि के अष्टाध्यायी का प्रभाव आज तक की संस्कृत पर देखा जा सकता है । यह अलग बात है कि हर युग के बोलचाल की भाषा का प्रभाव संस्कृत में निरंतर समाहित होता रहा ।

वैदिक संस्कृत, भाषा और साहित्य, विज्ञान, आध्यात्म-दर्शन आदि धरातलों पर विश्व की भाषाओं का मानदण्ड तो रहीं है, संस्कृत तो एक कदम और आगे बढ़कर नेतृत्व की बागडोर संभालती है । रामायण (ई.पू. 4000 वर्ष) महाभारत, पुराणों, कालिदास, माघ, श्री हर्ष प्रमृति अनेक कवियों की भाषा और उनका साहित्य पुष्पित-पल्लवित होता रहा । यह पल्लवन पालि, प्राकृत और अपभ्रंश काल (मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल) में भी नहीं रूका ।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अतिरिक्त 'शिक्षासूत्र, 'गणपाठ', 'धातुपाठ' और 'लिंगानुशासन' आदि पुस्तकें भी लिखीं । पतंजलि ने 'अष्टाध्यायी' को आधार बनाकर 'महाभाष्य' लिखा ।

पाणिनि के ही सहाध्यायी थे, वररूचि जिन्होंने अनेक व्याकरण और काव्य ग्रंथ लिखे । यास्क ने वैदिक शब्दकोष के रूप में निघण्टु निरूक्त की रचना की । स्पष्टत: वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत हर दृष्टि से भारोपीय परिवार तथा भारत ईरानी परिवार की प्राचीनतम और श्रेष्ठतम भाषा है । भारत इसका मूल स्थान था । ही, आज के भारत और उस समय ई.पू. 5000 वर्ष पूर्व के भारत की सीमाओं में अंतर था, उस समय इसका नाम आर्यावर्त था, जो कालांतर में "भारत" कहलाया । वैदिक संस्कृत अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन, जर्मन आदि अन्य ईरानी या भारोपीय परिवार की भाषाओं को किस धरातल पर प्रभावित करती हैं, इसका संकेत प्रस्तावना में दिया जा चुका है । वस्तुत: आर्य इन भाषा प्रदेशों में एकाधिकार कर गए और अपनी भाषा- वैदिक संस्कृत का प्रभाव उनकी भाषा पर छोड़ आए ।

कुछ भाषाविदों का मानना है कि अंग्रेरनों के उपनिवेश के कारण, उस काल में यूरोपीय विद्‌वानों द्‌वारा, विशेषकर अंग्रेजों द्‌वारा किए गए भाषिक-अध्ययन में वैदिक संस्कृत को अपनी भाषाओं की परवर्ती सिद्ध करने के प्रयास हुए; जबकि सच यह है कि वैदिक संस्कृत के ग्रंथों की उपलअता से भारोपीय परिवार की संकल्पना सामने आई; और भाषाओं की परस्पर सम्बद्धता सिद्ध हुई । परवर्ती भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन से भी यह सिद्ध हो गया कि परिकल्पित मूल भारोपीय भाषा (Proto speach) का पूर्ण आधार है - वैदिक संस्कृत । भारोपीय मूल भाषाओं में बदलाव, छोड़ने -ग्रहण करने की प्रक्रिया यूरोपीय भाषाओं में मिलती है, न कि वैदिक संस्कृत में । सत्य तो यह है कि वैदिक संस्कृत की अधिसंख्य ध्वनियाँ परिकल्पित भाषा में स्थान पाती हैं, कुछेक ही ग्रीक, लैटिन की हैं, जिनका समावेश जानबूझकर किया गया है ।

संस्कृत व्याकरण, विशेषकर पाणिनि के अष्टाध्यायी के संदर्भ में ब्लूमफील्ड ने स्पष्ट कहा है कि "भारोपीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण की शुरूआत पाणिनि के व्याकरण से तब होती है, जब यूरोप को इस ग्रंथ की जानकारी होती है । " इसी ग्रंथ की पृष्ठ संख्या 270 पर वे यह भी कहते हैं कि भारोपीय भाषाओं में पाणिनि के व्याकरण में ही भाषाओं का पूर्ण विश्लेषण है । यधपि ग्रीक और लेटिन में भी व्याकरण ग्रंथ लिखे गए, किंतु इस दृष्टि से वे अपूर्ण और अव्यवस्थित हैं । यह सर्वमान्य तथ्य है कि भाषा का व्याकरण तभी पूर्ण और व्यस्थित रूप में लिखा जा सकता है, जब भाषा पूर्णतया विकसित और हर दृष्टि से संपन्न हो चुकी होती है । स्तुमफील्ड का उपर्युत। मंतव्य "पाणिनि" के संसार का पहला और सफल वैयाकरण सिद्ध करता है और उनकी रचना को भाषा वैज्ञानिक धरातल पर पहला और श्रेष्ठतम तुलनात्मक ग्रंथ स्वीकार करता है । यह मत ही संस्कृत भाषा-वैदिक और लौकिक की प्राचीनता और महत्ता का प्रतिपादक है ।

विशेषताएँ

(अ) ध्वनियाँ

(1) स्वर:

मूल स्वर या समानाक्षर. अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ल,

संयुक्त स्वर या संध्याक्षर गुण स्वर - ए, ओ वृद्धि स्वर - ऐ, औ

(क) **स्वरों का विकास** :- अ = ह्स्व स्वर । भारोपीय अँ, हूस्व ओ के स्थान पर । यह मूल ह्स्व एवं दीर्घ अर्द्ध व्यंजन न् (n), म् (m) का और 'अन्' और 'अम्' का भी स्थानापन्न है । आ- दीर्घ मूल स्वर । दीर्घ अ ए, ओ का स्थानापन्न । इ न् हूस्व मूल स्वर । ए, य की कमजोर श्रेणी का भी संकेतक ई-दीर्घ मूल स्वर । 'य' की निम्न श्रेणी इसमें शामिल है । उ = ह्स्व मूल स्वर । ओ y की निम्न श्रेणी का समावेश । अ = मूल स्वर । औ और व की निम्न श्रेणी का प्रतिनिधि । ऋ = र को ही स्वर रूप । कृत > कर । ॠ = अरन्त शब्दों के पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के द्वितीया और शष्टी बहुवचन में प्राप्त होता है । यथा - पितृणामू । लृ = ल् का स्वर रूप । यथा - क्तृप, कल्प । ए = आ + इ गुण संधि के कारण ए होता है । द्, ध्, ह्. का पूर्ववर्ती ए = अज से । औ = आ + उ गुण संधि के कारण । ओ = मूल अज से य, व से पूर्ववर्ती के कारण । ऐ = आ + इ से वृद्धि संधि के कारण । औ = आ + उ, से वृद्धि संधि के कारण ।

(ख) **स्वराघात :-** वैदिक संस्कृत की यह महत्वपूर्ण विशेषता है । प्रारंभ में वैदिक संस्कृत में स्वराघात की दो ही स्थितियाँ थी - उदात्त और स्वरित । आगे चलकर अनुपात का भी विकास हुआ - उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । प्रधान स्वरयुक्त स्वर ध्वनि की उदात्त, स्वरहीन अक्षर की अनुदात्त तथा उदात्त स्वर की अव्यवहित परवर्ती निम्नगामी स्वूर ध्वनि अक्षर एवं उदात्त में उठकर स्वर में डुलने वाले अक्षर की स्वरित संज्ञा है । वैदिक ग्रंथों को छंदो बिना स्वराघात पढ़ना, अशुद्ध माना जाता है । स्वराघात से शब्दों के अर्थ भी बदलते है । यथा - इन्द्रशत्रु: = जिसका शत्रु इन्द्र है (बहुव्रीहि), इन्द्र शत्रु = इन्द्र का शत्रु (तत्पुरूष) । स्वराघात परिवर्तन से कभी-कभी लिंग परिवर्तन भी होता है ।

(ग) **अपश्रुति :-** स्वर एवं अक्षर के परस्पर परिवर्तन के कारण पद की प्रकृति अथवा प्रत्यय या विभक्ति में होने वाले पविर्तन को ही अपश्रुति कहा जाता है । इसके पाँच भेद है - (1) स्वर युक्त प्रकृत स्वर । यथा- आप्तोमि (मैं प्राप्त करता हूँ, आजुम: (हम प्राप्त करते है) । (2) स्वर युक्त प्रकृत संप्रसारण - जग्राह (मैनें पकड़ा), जग्रहु: (उन्होने पकडा) । (3) हस्वीभूत क्रम में आ का लोप । यथा - हन्ति (मारता है), हनिन्ति (मारते है), गाथ (गान), गीत (गाया हुआ) । (4) हस्वी भूत क्रम में ऐ > ई । (5) गायीते (गाता है) समास में द्वित्व की अवस्था में तथा संज्ञोधन में ई, ऊ, ईर, ऊर का परिवर्तन इ उ ऋ में हो जाता है ।

(घ) **स्वर भक्ति :-** ऋक् संहिता में छंद की लय को ठीक करने के लिए 'र' से संयुक्त व्यंजन के बीच अति दस्व रबर ध्वनि. का सन्निवेश आवश्यक होता है । इस स्वर - सन्निवेश को ही स्वर भक्ति कहते हैं - इन्द्र > इन्दुअर ।

(2) **त्यंजन**

(क) क वर्ग (कंठ्य), च वर्ग (तालव्य), त वर्ग (दैत्य), प वर्ग (ओष्ठ्य) के अतिरिक्त मूर्धन्य (ट्, ठ्, ड्, ढ़, ण, ल (!) तथा लह् (lh), अर्ध स्वर (य, र, ल, व), उष्म स्वर (श्, ष्, स्), महाप्राण (ह), आनुनासिक (m), अघोष विसृजनीय - ह (h), अघोष जिद्ववामूलीय - ह (h), अघोष उपआनीय - ह् (h) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की व्यंजन ध्वनियाँ है ।

(ख) कंठ्य स्पर्श ध्वनियाँ भारोपीय भाषा की पश्च कंठ्य (क आदि) की प्रतिनिधि है।

(ग) पाश्चात्य विद्वान् ट वर्ग का सन्निवेश द्रविड़ भाषा परिवार के प्रभाव का परिणाम मानते हैं, किन्तु संहिता में आन्य व्यंजन केवल पद के मध्य अथवा अंत में ही आए है । वस्तुत: ये मूर्धन्य ष् (मूल स्, श्, ज्, ह्) अथवा 'र्' से अनुगमित दंत्य व्यंजनों के फलस्वरूप प्रकट हुए - दुष्टर- अजेय (= दुस्तर), वंष्टि (= वर्ष-ति) ।

(घ) अर्थ स्वर - 'र्' भारोपीय 'र्' तथा 'ल्' के स्थान में प्रयुक्त हुआ है ।

(ङ) ऊष्म व्यंजन अल्पप्राण हैं । समीकरण में ये एक दूसरे का स्थान ले लेते है ।

(च) तालव्य श स्पर्श - संघर्षी का और मूर्धन्य 'ष्' मूल दंत्य ऊष्म का प्रतिनिधि है।

(छ) य्, र्, व स्वर और व्यंजन के बीच आने के कारण अंतस्थ कहलाते हैं ।

(ज) महाप्राण ध्वनि 'ह् मूल कंठ्य तालव्य महाप्राण के उत्तरार्ध में दंत्य 'ध' और ओष्ठय 'म' का स्थानापन्न है - गार्ध > गाह, ग्रम > ग्रह ।

(ब) रूप रचना

(क) **शब्द रचना -** (1) प्रा. भा. आ. भाषा में दो प्रकार के शब्द - अजन्त (स्वरांत) एंव हलंत (व्यंजनांत) थे । अजंत शब्दों में दस्व तथा दीर्घ 'अ, इ, उ, ऋ' से अंत होने वाले शब्द आते हैं । 'हलंत शब्द अंत्य प्रकृत अथवा प्रत्यांत व्यंजन के अनुसार कई प्रकार के हैं । (2) लिंग तीन है - पुल्लिंग, स्त्री लिंग एवं नपुंसुक लिंग । (3) वचन तीन हैं - एक, द्वि और बहुवचन । (4) आठ कारक हैं - कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण तथा संज्ञोधन । प्रत्येक शब्द के आठों कारकों, तीनों वचनों तथा तीनों लिंगों के रूप सुप्' प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं । (5) कर्ता तथा कर्म कारक के एकवचन एंव द्विवचन में तथा कर्ता के बहुवचन में व्यंजन्संत रूप रचना में एक प्रातिपदिक का साधारण रूप रहता है, अन्यत्र इस्वी भूत रूप मिलता है । यथा - कर्ता- राजा, सजानी, राजानः, कर्म- राजानम रानौ, राज्ञः । संस्कृत वैयाकरणों ने इन पॉचों रूपों को 'सर्वनाम स्थान, दिया है, आधुनिक भाषा शास्त्री इसे दस्वीभूत रूप मानते है । (क) अति हस्वीभूत (व) सामान्य द्वस्वीभूत (6) वैदिक, यही तक कि लौकिक संस्कृत में भी मध्य व्यंजनागम की प्रवृत्ति सक्रिय है ।

यथा- फलानि, आस्यानि (अंत्य इ के पूर्व) । (7) प्रा. भा. आर्य भाषा में उपसर्ग और प्रत्यय के संयोग से नए अर्थ का द्योतन होता है । (8) विशेषण एवं संख्यावाचक विशेषण के रूप भी संज्ञा की भाँति सुप प्रत्यय के संयोग से बनते हैं । (9) सर्वनामों में लिंग तथा वचन भेद कमजोर है । (10) वैदिक के सर्वनाम रूप संस्कृत में बदल जाते हैं - यथा - अस्मद - वे - कर्ता द्विवचन वा, सं. - आवाम ।

(ख) **क्रिया रूप - रचना** - (1) क्रिया पद के दो रूप - आत्मने तथा परस्मै पद मिलते हैं । (2) काल तथा भाव के आधार पर इन पदों के रूपों में और भिन्नता आती थी । काल सूचक छः तथा भाव सूचक पाँच लकार हैं । काल सूचक लकारों में लुट् एंव लृट् का प्रयोग वैदिक संस्कृत में नहीं मिलता, यह संस्कृत में ही मिलता है । इसी प्रकार वैदिक काल में भाव - सूचक लकार लड नदारद है । (3) धातु से पूर्व 'अ' के आगम का प्रयोग लङ्, लुङ् तथा लृङ् में होता है । न्, य, व, र से आरभ धातुओं में यह 'आ' हो जाता है । इ, उ, ऋ के साथ इसकी वृद्धि हो जाती है - ऐच्छत (ईष् 'चाहना' का असंपन्न भूत) प्राय: यह आगम लुप्त भी हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि निपात रूप में यह एक् स्वंतत्र आगम रहा है । (4) लट् में किन्हीं धातुओं में लिट्, लुङ् सन्नत, षडन्त प्रक्रियाओं के कारण धातु के प्रारंभिक अक्षर का द्वित्व हो जाता है । इसकी छः स्थितियॉ है । (5) विकरण की भिन्नता के अनुसार धातुओं को दस गणों में बाँटा गया है । ये हैं - श्वादिगण, सधादिगण अदादिगण, जुहोत्यादिगण दिवादिगण स्वादिगण तुदादिगण तनादिगण क्रयादिगण, चुरादिगण । इनके भी दो भेद हैं । इन्हें व्यूह कहा गया । विकरण प्रत्यय केवल वर्तमान तथा इसके भावों एंव असंपन्न में प्रयुत। होते हैं । अन्य काल में धातु से लिंग प्रत्यय सीधे जुड़ जाते हैं वैदिक भाषा की धातुओं के असम्पन्न सम्पन्न एवं सामान्य रूपों में कालगत भेद नहीं, इनमें केवल प्रक्रिया भेद है ।

वैदिक में संधि नियमों का पालन नहीं है, किंतु स्वर एवं व्यंजन संधियों के स्वरूप का आभास अवश्य मिलता है । इसकी अपेक्षा लौकिक संस्कृत में संधियों की नियमबद्धता अधिक परिलक्षित -होती हैं । संहिताओं में दो समान स्वरों के मेल से सवर्ण संधि हुई हैं - इन्द्र+आ = इन्द्रा । आरंभिक वैदिक भाषा में ऋ का अर् होने के उदाहरण बहुत कम मिलते है, जबकि संस्कृत में यह परिवर्तन अनिवार्य है ।

समास रचना - वैदिक संस्कृत में केवल समास चार थे - तत्पुरूष, कर्मधारय, बहुब्रीहि एवं द्वन्द्व । शेष दो समास लौकिक संस्कृत में बाद में विकसित हुए।

17.3.2 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ

(क) पालि : परिचय एवं व्याकरणात्मक विशेषताएँ :

'पालि' भाषा को प्रथम प्राकृत भी कहा जाता है । ई.पू. 500 एक ऐसा बिन्दु है, जहाँ भाषा परिवर्तन को स्पष्ट रूप से इंगित किया जा सकता है । वस्तुत: इस समय तक प्राभा आर्य भाषा की ऋ, लृ ध्वनियाँ लुपा हो गई और अनेक ने अपना औच्चारणिक तथा व्याकरणिक स्वरूप बदला । वस्तुत: ध्वनि एंव शब्द रचना के धरातल पर सरलीकरण की प्रवृत्ति ने भाषा को बदलाव के लिए विवर्ष किया । यह समय था, गौतम बुद्ध के जन्म का । कहा जाता है कि 'पालि' वह भाषा है, जिसमें गौतम बुद्ध के वचनों को सुरक्षित रखा गया । पालि भाषा के विकास एंव विश्लेषण की सामग्री 'पालि साहित्य' तथा 'अशोक' के शिलालेखों' में प्राप्त होती है । साहित्य रूप में बुद्ध के उपदेशों का संग्रह "त्रिपिटक" है । अट्टकथा (अर्धकथा) विशुद्धि भगा, दीपवंस एवं मिलिन्दपल्हों जैसे बौद्ध धर्म संबन्धी ग्रंथों का भी प्रणयन हुआ । बौद्ध धर्म के विकास के साथ-साथ उसकी भाषा "पालि" का भी विकास और प्रसार हुआ । भारत के अलावा लंका, बर्मा, स्याम, चीन और जापान आदि देशों में इस भाषा का प्रसार हुआ । इन देशों में पालि भाषा में ग्रंथ भी लिखे गए किंतु इसकी लिपि स्थानीय ही रही ।

(1) पालि : त्युत्पत्ति एवं अर्थ - "पालि" शब्द की खुत्पत्ति पर अनेक विद्वानों ने विचार किया, तदनुरूप अर्थ भी लगाए गए; किंतु इनसे सहमत हो पाना कठिन है । कुछ प्रमुख मत यही प्रस्तुत हैं - (1) पंक्ति > पन्ति > पत्ति > पट्टि > पल्लि > पालि (पं. विधुशेखर भट्टाचार्य) । बौद्ध साहित्य में भी "पालि" का अर्थ 'पंक्ति' किया गया है । अभिधानडीपिका के तंतिबुद्ध वचनं पन्ति पालि' के उद्धरण से भी पालि का पंक्ति अर्थ स्पष्ट होता है । यधपि यह ध्वनि परिवर्तन प्राचीन और म. भा. आर्य भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप नहीं है । पंक्ति के लिए लिखित साहित्य अनिवार्य है, जबकि "त्रिपिटक" ई.पू. पहली सदी के पहले लिखा ही नहीं गया । "पालि" शब्द यदि पंक्ति-वाचक होता तो अट्टकथाओं में कहीं न कहीं बहुवचन में प्रयुक्त होता । किंतु ऐसा हुआ नहीं । (2) कुछ विद्वान "पल्लि" शब्द से इसका विकास मानते है । पल्लि अर्थात् गाँव की बोली भाषा । किंतु ल का लोप, पूर्व स्वर का दीर्घ हो जाना म.भा. आर्य भाषा की प्रारंभिक अवस्था के अनुरूप नहीं और 'पालि' के आविर्भाव काल में अंतिम स्वर का ह्रस्वीकरण भी संभव नहीं । मैक्स बालेसर ने 'पालि' की कुत्पत्ति पाटलीपुत्र से मानी है । मैक्स बालेसर की इस परिकल्पना का आधार है - ग्रीक में पाटलीपुत्र के लिए लिखित रूप में प्रयुत "पालिव्रोथ" शब्द । इसमें, प्रारंभिक अवस्था में ही, ट् या ड् का लोप संभव नहीं । डॉ. उदयनारायण तिवारी की दृष्टि में 'ट्' का उच्चारण संभवत: क्षीण रहा होगा, इसलिए किसी विदेशी श्रोता को उसकी विद्यमानता नजर न आई हो । (4) भण्डार कर प्राकृत से पालि की व्युत्पत्ति सिद्ध करते हैं - प्राकृत > पाअतु >पाअल > पालि । ध्वनि - परिवतन की यह असाधारण और अस्वाभाविक प्रक्रिया है । वस्तुत:

"पालि" शब्द "पा" धातु में 'णिच्' प्रत्यय 'लि' के योग से बना है । "पा" धातु का अर्थ है - रक्षा करना । अर्थो या वचनों की रक्षा करती है, इसलिए पालि ("अंत्थानं पाति रक्खतौति तस्मा पालि") । इससे "पालि साहित्य" के संकलन एवं लिपिबद्ध किए जाने के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है । यही पालि शब्द की सही ष्णुत्पति और अर्थ है ।

(2) पालि की मूल बोली :- त्युत्पत्ति की ही भीति यह भी विवादास्पद है कि "पालि" कहीं की किस बोली पर आधृत है । वस्तुत: "मागधी" तथा "शौरसेनी" की भांति "पालि" शब्द न तो स्थान वाचक है और न ही जाति वाचक । लंका के बौद्धों की मान्यता है कि पालि मगध की भाषा थी और बुद्ध के वचन हूबहू उसी रूप में इस भाषा में संगहीत है । मागधी, पालि से पर्याप्त भिन्न है, साथ ही वह परवर्त्ती काल की भाषा भी है । डॉ. ओल्डनबर्ग को कलिंग में खारवेल के खंडगिरि अभिलेख की भाषा पालि के समान प्रतीत हुई । उनके अनुसार कलिंग से ही लंका में बौद्ध धर्म फैला । खारवेल एक तो द्रविड़ भाषा-भाषी था, दूसरे उसकी भाषा जनभाषा नहीं थी । इतना तो स्पष्ट है कि पालि जनभाषा से विकसित भाषा है । इसलिए ओल्डनवर्ग का मत स्वीकार्य नहीं । अशोक के गिरनार (गुजरात) अभिलेख की भाषा पालि से बहुत समानता रखती है और राजकुमार महेन्द्र का जन्म स्थान उज्जैन रहने के कारण उनकी मातृभाषा भी उज्जैन की बोली रही होगी । इसी में उन्होंने लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया होगा, इसी में वह त्रिपिटक ले गया होगा । इन धारणाओं के परिपेक्ष्य में वेस्टर गार्ड तथा ई कुहल का मत है कि पालि उज्जैन की बोली रही होगी । उत्तर भारत की समस्त जन भाषाओं की तुलना करके आरओ. फ्रैंक और स्टेनकोनो ने विंध्य प्रदेश की भाषा को पालि का आधार बताया है । इसका आधार है- पालि में मिलने वाले पैशाची के कतिपय लक्षण । वे यह भी मानते है कि विंध्य क्षेत्र पैशाची का केन्द्र रहा । डॉ. ग्रियर्सन पैशाची को उत्तर-पश्चिमी सीमांत की भाषा स्वीकार करते है । यह मत अधिक संगत है । ग्रियर्सन की दृष्टि में पालि मूलत: मगध की भाषा है और मगध से ही तक्षशिला के विद्यापीठों में पहुंची जहां उस पर पेशाची का प्रभाव पड़ा किन्तु तक्षशिला महायान संप्रदाय का केन्द्र था, महायान का त्रिपिटक संस्कृत में था, जबकि पालि में हीनयान संप्रदाय का त्रिपिटक था । मगध साम्राज्य की राष्ट्रीय भाषा और बुद्ध के कोसल क्षत्रिय होने के आधार पर टीनडेविड्स कोसल की बोली को पालि भाषा का आधार मानते हैं । विडिश और गायनर ने ऐसी भाषा को पालि माना जो समस्त जनपदों में समझी जाती थी और विभिन्न जनपदों के स्थानीय उच्चारण आदि विशेषताओं से संयुक्त थी ।

समूचे विवाद का कारण पालि त्रिपिटक में मागधी के शब्दों/रूपों की उपस्थिति है । सिला लेवी तथा लूडर्स इसका मुख्य कारण अनुवाद में हुई असावधानी को मानते हैं । इनके अनुसार असावधानी अथवा छंद निर्वाह के कारण संस्कृत त्रिपिटक और पालि त्रिपिटक में मागधी रूप रह गए । वस्तुत: त्रिपिटक का मूल रूप मागधी में रहा होगा और बाद में अन्य जनपदों की बोलियों में इसका अनुवाद हुआ होगा । "शं" की उपस्थिति के संदर्भ में भी यह कहा जाता है कि "श" कार मागधी की अपनी विशेषता

थी और यह साधारण जनता में भी रही होगी । राजकीय भाषा में यह बहिष्कृत रहा होगा । यह भाषा काशी, कोसल, विदेह और मगध में लोक व्यवहार की भाषा थी । अत: कुछ ने इसी लोक भाषा में अपने उपदेश दिए होंगे । बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उनके वचनों के संग्रह के लिए हुई बौद्ध सभा में भाग लेने वाले भिक्षुओं में "महाकश्यप" प्रमुख थे । ये मध्यप्रदेश के निवासी थे । संभावना यह है कि इन्होंने मध्यप्रदेश की भाषा (प्राचीन शौरसेनी जो मथुरा से उज्जैन तक फैली थी) में भी बुद्ध वचनों को अनूदित किया हो । अत: मध्यप्रदेश की भाषा ही "पालि" का आधार है । इस आधार के पीछे मध्य एशिया में प्राप्त अश्वघोष के नाटकों के वे अंश भी है, जिनमें प्रयुक्त - प्राचीन शौरसेनी (मध्यप्रदेश की भाषा) पालि से बहुत समानताएँ रखती हैं । जैन आचार्यो (ईसवी सन के प्रारंभ तथा बाद में एक दो शताब्दी तक) की भाषा भी पालि रही, जिसका प्रमाण कलिंग शासक खाखेल के हाथी गुका अभिलेख से भी मिलता है । पालि के साहित्यक भाषा बनते ही उसमें पैशाची आदि अन्य जनपदों की भाषा के तत्व आ जुटे । इसमें काशी, कोसल, शूरसेन के तत्वों के साथ पंजाबी के भी तत्व मिल गए ।

अत: "पालि" किसी क्षेत्र की भाषा/बोली न होकर समस्त संस्कृत क्षेत्र में जनसाधारण में प्रचलित, भाषिक रूप से निष्पन्न भाषा थी, जो सबके लिए बोधगम्य थी और सबकी थी । हाँ ! ई.पू. 500 आसपास इस भाषा का कोई नाम नहीं था, जनपदों की बोलियाँ अलग-अलग थी । "पालि" नामकरण गौतम बुद्ध के पश्चात् हुआ और लंका से प्रभावित होकर इसने साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण किया ।

(3) विशेषताएँ :-

वैदिक भाषा परिवर्तन की प्रक्रिया के तहत संस्कृत द्‌वारा उपेक्षित ध्वनियों, उच्चारण तत्वों एंव रूपों को 'पालि' ने पुन: ग्रहण किया, संस्कृत के अनेक तत्व पालि में लुपा भी हुए । मुख-सुख और औच्चारणिक सुविधा की दृष्टी से कतिपय ध्वनियॉ परिवर्तित भी हुई । परिवर्तन की यह प्रक्रिया लौकिक संस्कृत में ही प्रारंभ हुई थी, जो सामान्य भाषिस्थ्यबदलाव की प्रक्रिया भी है ।

(अ) **ध्वन्यात्मक** - 'पालि" के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन पालि में 41 ध्वनियों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, जबकि दूसरे वैयाकरण मोग्गलान 43 ध्वनियों का अस्तित्व मानते हैं । स्वर - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ए, ओं, ओ । (1) इनमें एँ, ऑ ह्स्व स्वर है । इनका नया विकास हुआ है । (2) ऋ, लृ का लोप हुआ । विसर्ग भी लुप्त हुआ । ऋ, अर्, इर, उर् और एर् के रूप में विकसित हुआ - वृश्चिक > विच्छिक, पृच्छति > पुच्छति । लृ > ड बना । क्लृप > कृत । (3) प्रा.भा.आ. भाषा का सान्ध्यक्षर - ऐ, औ या तो लुप्त हुआ या इनका स्थान ए, ओ ने ले लिया - शैल > से ल, गौतम > गोतम । (4) संस्कृत को संयुक्त व्यंजन के पूर्व का 'अ' पालि में कहीं-कहीं ह्स्व 'ए' हो गया- शय्या > सेय्या । (5) संयुत्ग़ व्यजन की ऐ > इ तथा

औ > उ में परिवर्तित हुई - ऐश्वर्या > इस्सरिय, औत्सुक्य > उस्तुक । (6) संधि के कारण प्रा.भा.आ. भाषा का - 'अय', 'अव' क्रमश: ए, ओ हो जाता है - जपति > जेति, अवधि > ओधि । (8) समीकरण और विषमीकरण की प्रवृत्ति पालि में भी संस्कृत की ही भांति सक्रिय है - इषु > उसु, इक्षु > उक्खु (पूववर्ती स्वर का परवर्ती स्वर के अनुरूप होना-समीकरण) । परवर्ती स्वर के अनुरूप पूर्ववर्ती स्वर का रूप ग्रहण करने की भी प्रवृत्ति विद्यमान है । विषमीकरण - मति > मुति, मज्जा > मिज्जा (असमान बनाने की प्रवृति) । (9) च, व का पूर्ण स्वर में रूपांतरण भी दिखाई देता है - श्वान > सून, क्लान > थान । (10) निकटस्थ स्वर के उच्चारण का प्रभाव आदि अंत्य स्वरों के साथ आदि और मध्य पर भी पडता है । (11) पालि में स्वरों की निर्मिति की दो प्रवत्ति विकसित हुई - अ) दस्वीकरण और (ब) दीर्घीकरण । हृस्वीकरण में स्वराघात के परिणाम स्वरूप दीर्घ स्वर दस्व बने उताहो उ उदाहु । पालि में दीर्घ स्वर केवल असंयुक्त व्यंजनों के पूर्व ही आ सकता है । अत: ऐसी स्थिति में प्रा. भा. आ. भाषा में प्रयुत। दीर्घ स्वर पालि में दस्य बने । स्वराघात जब शब्द की प्रथम स्वर ध्वनि पर आता है, तो वह दीर्घ हो जाती है - अजिर > आजिर । करण एवं अधिकरण कारक में इकरांत औ उकारात के इ तथा उ दीर्घ हुए - मुनिभि > मुनीहि । (12) स्वराघात पालि में लुपा हुआ । फलस्वरूप बलाघात का उपयोग हुआ, जिससे स्वरों का या तो लोप हुआ या दस्वीकरण हुआ - अलंकार > लकार (अ का लोप) । (13) संयुता व्यंजनों की स्वर प्रस्तुति प्रक्रिया (स्वर भक्ति) पालि में भी सक्रिय है- मर्यादा > मरियादा । यह स्वर भक्ति वैदिक की आधी या चौथाई की अपेक्षा अधिक मात्रा बोध का पर्याय है । विद्वानों ने इसे विप्रकर्ष' कहा है । पालि में छंद एवं समास के कारण कहीं-कहीं स्वरों का मात्राकाल परिवर्तित हुआ है । (14) संयुक्त व्यंजन के एक व्यंजन का लोप कर पूर्व इस्व स्वर के स्थान पर सानुनासिक हस्व स्वर का प्रयोग पालि की विशेषता है - मत्कुण > मँकुण, शर्वरी > संवरी । (15) च, या के स्थान पर ई एवं इ तथा वा > उ एंव व > ऊ हो गया । इसें संप्रसारण या अक्षर संकोच कहा जाता है । (16) स्वराघात के प्रभाव से पालि में अ, इ, उ में परिवर्तित हुआ - चरम > चरिम, नवति > नवुति, उपक > ओक । ग्रियर्सन पालि में केवल बलात्मक स्वराघात स्वीकार करते हैं, जबकि टर्नर संगीतात्मक और बलात्मक दोनों । जूल ब्लॉक 'पालि' में स्वराघात की प्रवृत्ति को नकारते हैं । (17) संस्कृत की अपेक्षा पालि में संधि के नियम भिन्न और उदार हैं । स्वर के बाद स्वर आने पर एक स्वर के लोप का विधान है, इसके अपवाद भी मिलते हैं । सद्धा+इन्द्रियम= सद्धिन्द्रियं (पूर्व स्वर का लोप), सो + अपि = सोपि (परिवर्ती स्वर का लोप) और लता + इव = लताइव (अलोप) ।

व्यंजन - क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग के अतरिक्त य, र, ल, व, ण, लह, स, ह, अं (:) व्यंजन ध्वनियाँ पालि में विद्यमान हैं । (1) वैदिक क्, लह् पालि में ड्,

ढ़ के स्थान पर प्रयुक्त हैं । (2) विसर्ग, जिदवामूलीय उपआनीय व्यंजन ध्वनियों का लोप हुआ है । (3) वैदिक श् ष्, स के स्थान पर पालि में केवल 'स्' है । (4) अनुस्वार पालि में स्वंतत्र ध्वनि है, जिसे निग्गहीत नाम दिया गया है । (5) घोषत्व के कारण अघोष > सघोष और सघोष > अघोष हुई । अर्थात् घोषीकरण और अघोषीकरण दोनों की प्रवृत्ति विद्यमान है । (6) ठीक इसी तरह प्रणात्व, समीकरण की प्रवृत्ति भी उपस्थित है । वस्तुत: घोषत्व, प्राणत्व तथा समीकरण (संस्कृत के संयुक्त्त व्यंजन में) की प्रवृत्ति संस्कृत शब्दों की ध्वनियों में सक्रिय है । यथा - उताहो > उदाहो (सघोष), अगुरू > अकलु (अघोष), भगिनी > वहिणी (अल्प प्रणीकरण), कील > खील (महाप्राणीकरण), तथा सर्व > सब, मार्ग > मग्ग, धर्म > धम्म आदि । (7) तद्युगीन बोलियों के प्रभाव से पालि में व्यंजनों के उच्चारण स्थानों में परिवर्तन एवं वैविध्य एक बडी विशेषता है । कण्ठ्य > तालव्य (कुन्द > चुण्ड), तालव्य > दंत्य (चिकित्सति > तिकिच्छ), मूर्धन्य, दैत्य (डिण्डिम > देण्डिम), दंत्य > मूर्धन्य (इत > हर, प्रथम > पठम) । (8) न्,ल्, र् स्वर में परिवर्तित हुए । (9) य, व भी परिवर्तित हुए तथा द > र हो गया । (10) त वर्गीय ध्वनियों का 'च' के संयोग से तालव्यीकरण हो गया - त्य > च्च, ध्य > च्छ, द्य > ज्ज, ध्य > ज्य, न्य > व्य ।

(ब) शब्द रूप

पालि में शब्द-रूप निर्मिति प्रक्रिया की दो विशेषताएँ उल्लेख्य हैं- (क) सरलीकरण की प्रक्रिया और (ख) वैदिक भाषा - सदृश शब्दों की अनेक रूपता ।

(क) सरलीकरण की प्रवृत्ति -

इस प्रवृत्ति के कारण (1) हलंत (व्यंजनांत) प्रातिपदिक लुप्त हुए । इनका स्थन 'अ ने लिया - सुमेधस् > सुमेध, कहीं-कहीं उ (विद्युत > विज्जु > विज्जुता) या आ भी हुआ । (2) विभिन्न कारकों एंव वचनों में इनके रूप स्वरांत प्रातिपदिक के समान निष्पन्न हुए । (3) कुछ व्यंजनांत प्रातिपदिक रूप पालि में बचे हैं - वाचात् ए. व. वाच । (4) मिथ्या सादृश्य के कारण इकारांत एवं उकारांत प्रातिपदिकों के संप्रदान - संबंध कारक के रूप अकारांत प्रातिपदिकों के समान बने । अँग्गिस्स अग्गिनों भी संप्रदान संबंध से नपुंसक लिंग के मिथ्या सादृश्य पर बना । (5) अधिकरण के रूप सर्वनामों के समान बने - अग्गिसि > अग्गिम्हि । (8) नपुंसक लिंग शब्दों के अनेक रूप पुल्लिंग के समान बनने लगे - निरतो, तपो, सुखो । (7) संप्रदान और संबंध कारक के रूप एक जैसे हो गए और करण एंव अपादान के बहुवचन रूपों में प्राय: समानता आ गई । (8) द्विवचन का लोप हो गया । द्विवचन बहुवचन में ही समाहित हुआ । पालि में 'द्वे-दुबे तथा दुभो द्विवचन रूप बचे हैं । (9) लिंग तो तीन ही रहे, किंतु अपभ्रंश में लोप की पूर्णता पाया नपुंसक लिंग कहीं-कहीं पुल्लिंग में समाहित होता नजर आता है । स्पष्टत: पालि के परवर्ती काल में दो लिंग की परिकल्पना प्रारंभ हो चुकी थी ।

(ख) वैदिक भाषा के समान अनेक रूपता -

पालि लोक की, जन की भाषा है । लौकिक संस्कृत काल में वैदिक संस्कृत के अनेक शब्द-रूप प्रयोग स्तुत हुए, किंतु वे लोक में जन-मन में सुरक्षित थे, फलस्वरूप उनका नव-प्रयोग पालिकाल में प्रारंभ हुआ । ये रूप-विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में उच्चरित होते थे । पालि' ने इन्हें विभिन्न जनपदों की बोलियों से तद्वत ले लिया । फलत: एक ही शब्द के अनेक रूप पालि भाषा के गुण और अवगुण दोनों बने । एकाध उदाहरण देखें - कर्ता कारक बहुवचन में 'देवा' के साथ-साथ देवा से, करण कारक बहुवचन में 'देवेहि' रूप पालि में चले । अन्य विशेषताएँ है - (1) विशेषण शब्दों के रूप संस्कृत सदृश हैं । संख्यावाचक विशेषणों में ध्वन्यात्मक परिवर्तन हुआ - सत्त, अद्ध, आदि । (2) सर्वनामों के रूप यथोचित ध्वनि परिवर्तन सहित संस्कृत के समान निष्पन्न हुए, जो हिन्दी के निकट हैं - सब्ब (सब), सब्बे (सभी), को, के, कस्स (किस), मयं (मैं), सो, तुवँ, तुम्ह आदि । (3) अव्यय के विभिन्न रूप भी पालि में विद्यमान हैं - अज्ज (काल बोधक), अत्त (स्थान बोधक), अवस्सं (निश्चय बोधक), अप्पेव (संदेह बोधक), कथं (प्रकार बोधक), उद् (संयोजक), मोरे, वे (विस्मादि बोधक) । (4) विभक्तियाँ आठ हैं । इनके एकवचन और बहुवचन रूप बनाने के लिए प्रत्यय अलग-अलग हैं । इनके विकल्प भी मिलते हैं । (5) क्रिया रूप पालि में भिन्न कालों एवं अनुज्ञा आदि भावों में प्रयुक्त होने वाली विभक्तियाँ भी अलग-अलग है । परस्मै पद और आत्मने पद के आधार पर भी भेद है । क्रिया-रूपों का अलग वैशिष्ठय है । (6) क्रिया रूगों में भी द्विवचन का लोप होता है । (7) सरलीकरण की प्रवृत्ति यही भी सक्रिय है । संस्कृत के दस की अपेक्षा पालि में छ लकार हैं । (9) पालि में तीन कालों - पन्दुप्पन काल (वर्तमान), भूतकाल और. भविष्यकाल (कच्चायन के अनुसार अनागत) के अतरिक्त क्रियातिपति को भी काल के रूप में प्रयुक्त किया गया है । एक वाक्य की क्रिया दूसरे वाक्य की क्रिया के बिना यदि असिद्ध और निष्पन्न होती है तो इसे क्रियातिपत्ति कहते हैं । हेतु हेतु- मट्हा भी यही है । (10) भाव चार हैं - निर्देश, अनुइप्त, सम्भाव्य, अभिप्राय । (11) लिट् और लोट् के रूप अलग हैं, पर अर्थ एक है । (12) आत्मने पद प्राय: लुप्त है । कर्मवाच्य में भी पालि में परस्मैपदीय प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं । (13) पालि में सात गण ही बचे है । मणोलायन 9 गण मानते हैं, उन्होंने अदादि को भवादि में माना हैं । (14) क्रिया रूपों में भी वैकल्पिक प्रयोंगों का बाहुल्य है । (15) णे, णय, प्याम, णापष्य आदि पालि में प्रेरणार्थक प्रत्यय के रूप में जोड़े जाते हैं । (16) संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि से इच्छार्थक उपमानार्थक आचारार्थक क्रियाएँ बनाने की प्रवृत्ति पालि में विद्यमान हैं । (17) पालि में 'तद्धित' और 'कृत' प्रत्यय लगाकर रूप बनते हैं । तद्धित-ल = देव+ल् = देवल आदि । कृत प्रत्यय का प्रयोग धातु, वाक्य, व्यापार और कल की विभिन्न अवस्थाओं को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है ।

(ख) प्राकृत : परिचय एवं व्याकरणात्मक विशेषताएँ

ई. सन् के प्रारंभ के लगभग दो सौ वर्ष पूर्व जनपदों की भाषाओं की दूरी एक दूसरे से बढ़ने लगी थी । फलस्वरूप संपर्क भाषा के रूप में इस काल में संस्कृत का प्रभाव बढ़ा । संरूहृत एक तरफ जनपदीय भाषाओं के भाषिक तत्वों को प्रभावित करती रही, दूसरी तरफ अपना स्वतंत्र विकास भी । पालि में प्रति प्रतिक्रिया और जनभाषाओं के बढते दबाव के कारण एक नयी भाषा अस्तित्व में आयी, यह थी - प्राकृत । वस्तुत: जनपदीय भाषाओं की एक दूसरे से दूरी का कारण वही क्षेत्रीय भाषाएँ थी - जो प्राकृत की प्रारंभिक अवस्था का आभास देती हैं । ई.पू. 200 से ई.सन् 200 वर्षो तक का काल यदि साहित्यिक भाषा के पद से पालि के हटने की प्रक्रिया का काल है तो संस्कृत के नए रूप पुनर्जन्म एवं प्राकृत के जन्म और विकास का भी काल है । वस्तुत: मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा आर्यभाषा का यह संक्रांति काल माना जाता है ।

"प्राकृत" का अर्थ है जो अपने प्रकृत रूप में हो । अर्थात् जिसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता न हो । संभवत: यह शब्द वैदिक संस्कृत और संस्कृत के समानांतर चला । एक संस्कार संपन्न दूसरी सहज - प्रकृत भाषा । इस प्रकार जन साधारण के बीच अपने स्वाभाविक रूप में विद्यमान भाषा प्राकृत कहलायी । इस अर्थ में पालि भी प्राकृत ही है, किन्तु "पालि" नाम इस भाषा के लिए रूढ़ हु आ । वैसे यह नामकरण पालि' के ह्रासकाल में किया गया, केवल भाषिक अलगाव को इंगित करने के लिए, जिसकी आवश्यकता नहीं थी । दूसरी से पाँचवी शती में जनसाधारण के बीच विद्यमान बोली - प्राकृत - साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी । यधपि प्रा. भा. आर्य भाषा के काल से ही प्राकृत भाषा के साहित्यिक प्रयोग मिलते हैं, पालि में तो इसकी भरमार है, किंतु ईपूर्व दूसरी शती से दूसरी ईसवीं तक के बीच इसका प्रयोग और बढ़ा । इस काल की भाषा में छिटपुट साहित्य भी मिलता है । परन्तु समग्र रूप में मध्यकालीन भाषा रूप की प्रभावी भूमिका निभाने वाली विद्यमान प्राकृत के वल दूसरी से छठी शती तक ही साहित्यिक भाषा का स्थान पा सकी । फलस्वरूप अलंकार शास्त्रियों और वैयाकरणों द्वारा उल्लिखित और काव्य और नाटकों में प्रयुता प्राकृत भाषा के लिए 'प्राकृत' शब्द रूढ़ हो गया । प्राकृत के अंतर्गत जैन आगमों की प्राकृत, साहित्यिक एवं नाटकीय प्राकृतें (अश्वघोष के नाटक, अशोक के शिलालेख, प्राकृत धम्मपद, निय प्राकृत सहित्य) सम्मिलित की जाती हैं ।

व्युत्पत्ति - प्राकृत की त्युत्पत्ति प्रकृति से मानी जाती है । प्रकृति के अर्थ के संदर्भ में प्राकृत वैयाकरणों में मतभेद है । हेमचन्द्र, मार्कण्डेय, धनिक, सिंहदेव गणी आदि वैयाकरण प्राकृत की प्रकृति संस्कृत मानते हैं । हेमचन्द्र के अनुसार प्रकृति संस्कृत है, उससे उत्पन्न या आगत भाषा प्राकृत है । संस्कृत के पश्चात् प्राकृत का प्रभाव आरंभ होता है । (प्रकृषि : संस्कृतम, तत्रभवं, तत्र आगतम वा प्राकृत.....) प्राकृत में तद्भव दो हैं - सिद्ध और साध्यभाव (प्राकृतस्यानुशासन् सिद्ध साध्यामन भेद..........) । अनुशासन में इन दोनों प्रकार के शब्दों का प्रतिपादन है । 'प्रकृति: संस्कृतम् तत्रभवं प्राकृतमुव्यते' द्वारा मार्कण्डेय भी हेमचन्द्र के उपर्युक्त मत की पुष्टि करते हैं और दशरूपक के

टीकाकार धनिक के इस कथन 'प्रकृते आगतम् प्राकृतम्, । प्रकृतिः संस्कृतम्' से भी यही प्रतिभासित होता है ।

उपर्युक्त कथनों से यह बात साफ हो जाती है कि संस्कृत के प्रकृति प्रत्यय के साम्य-वैषम्य के आधार पर प्राकृत की ध्वनि- व्यवस्था, शब्द रचना, रूप-रचना आदि - व्याकरणिक स्थितियों का बोध होता है । अस्तु संस्कृत और प्राकृत में माँ बेटी का रिश्ता न मानकर क्रमिक विकास माना जाना चाहिए, जो भाषा-विकास की स्थिति का सही परिचायक होता है । एल्फ्रेड सी. वुलनर और डॉ. मिशेल की मान्यता भी ऐसी ही है । मिशेल प्राकृत भाषाओं की जड़ें जनता की बोलियों के भीतर मानते हैं, और इनके मुख्य तत्व आदिकाल में जीती जागती और बोली जाने वाली भाषा से लिए गए हैं! किंतु बोल चाल की वे भाषाएँ जो बाद में साहित्यिक भाषाओं के पद पर प्रतिष्ठित हुई, उन्हें सुगठित रूप से प्रस्तुत करने के लिए संस्कृत की भाँति बहुत ठोंका-पीटा गया ।

उपर्युक्त मान्यता के विरूद्ध 'नमि साधु' के अनुसार सकल जगत के जीव-जंतुओं के व्याकरण आदि संस्कारों से रहित सहज वचन व्यापार को प्रकृति कहते हैं । उससे उत्पन्न अथवा वहीं प्राकृत है । प्राक्कृत अर्थ तत्व से उसका निर्माण हुआ जिसका अर्थ है, पहले बना हुआ । इस मत को स्वीकार करने में सबसे बड़ा संकट है - प्राकृत के स्वरूप का निर्धारण और साहित्यिक भाषा प्राकृत का काल निर्धारण । निश्चय ही नभिसाधु का मत अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त तो है ही भाषा वैज्ञानिक निकष पर भी खरा नहीं उतरता ।

प्राकृत के भेद और आधार (नाट्य प्राकृत) :- 'प्राकृत' का भेद-निरूपण संस्कृत नाटकों में प्राप्त प्राकृत भाषा के स्वरूप के आधार पर किया गया । भरत ने नाट्य-शास्त्र में भाषा प्रयोग नीति का खुलासा करते हुए लिखा है कि उत्तम पात्र यदि ऐश्वर्य से प्रमत्त और दरिद्र हो जायँ तो संस्कृत के बदले प्राकृत का प्रयोग करें, तपस्वियों भिक्षुओं स्त्रियों, बालत्हों और संत आदि के लिए प्राकृत प्रयोग का विधान है । भरत ने सात देशी भाषाओं - मागधी, अवन्ती, प्राच्य, शौरसेनी, अर्धमागधी, बादलीका और दक्षिणात्या- का उल्लेख करते हुए जाति, कर्म आदि के आधार पर इनके प्रयोग का विधान किया है । भरत की समसामयिक या पूर्ववर्ती अश्वघोष के नाटकों में प्राकृत प्रयोग मिलते हैं । आज कालिदास के नाटकों में नियमानुकूल प्राकृतों का प्रयोग हुआ है । गद्य शौरसेनी तथा पद्य महाराष्ट्री में है । अभिज्ञान शाकुतलम् में मछुआरा मागधी बोलता है । शूद्रकरचित 'मृच्छकटिक' प्राकृत के वैचिव्यपूर्ण प्रयोग का श्रेष्ठ उदाहरण है । मिशेल की मान्यता है कि यहनाटक प्राकृत के विभिन्न उदाहरणों को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखा गया है । ग्याहरवीं (कुछ की दृष्टि में बाहरवीं) शती तक के संस्कृत नाटकों में प्राकृत का प्रयोग स्वाभाविक रीति से चला ।

प्राकृत-भेद निरूपण में विद्वान एक मत नहीं है । वररुचि महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी को ही प्राकृत का भेद मानते हैं । हेमचन्द्र (12 वीं शती) ने 'आर्यो' (अर्धमागधी) एवं शूलिका पैशाची पर भी विचार किया । प्राकृत की अन्य अनेक शाखाएँ

रहीं होंगी, किंतु उनके लिखित साहित्य न मिलने के कारण उनका विवेचन संभव नहीं । आज प्राकृत के पाँच भेद मान्य हैं-(I) शौरसेनी, (2) मागधी, (3) अर्धमागधी, (4) महाराष्ट्री और (5) पैशाची ।

शौरसेनी प्राकृत, शूरसेन प्रदेश (मथुरा के आसपास) की भाषा रही है । संस्कृत नाटकों में गद्य भाषा के रूप में स्त्री और विदूषक पात्रों द्वारा यह व्यवहृत हुई । मध्यप्रदेश की भाषा होने के कारण यह संस्कृत के अधिक निकट रही । मागधी - प्राच्य देश (मगध) की जन-साधारण (लोक) की भाषा होने के कारण अन्य प्राकृतों की अपेक्षा इसके रूपों मे अधिक परिवर्तन हुआ है । संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा व्यवहृत किए जाने का विधान था । कालांतर में पालि को इसने सर्वाधिक प्रभावित किया । अर्धमागधी - कोसल प्रदेश की भाषा थी । जैन आचार्यो ने शास्त्रों की रचना के लिए इसी भाषा को चुना । वे इसे 'आर्षी कहते थे और आदि भाषा मानते थे । मध्य एशिया से प्राप्त अश्वघोष के नाटक शारिपुत्र प्रकरणं में अर्ध-मागधी का प्रयोग संस्कृत नाटकों में इस भाषा के प्रयोग का प्रमाण है । जैन ग्रंथों में तो यह उल्लिखित है कि भगवान महावीर के उपदेशों की भाषा अर्द्ध मागधी थी, किंतु इसका प्रमाण उपलब्द नहीं है । श्वेताम्बर आगम ग्रंथों की अर्ध-मागधी का रूप नवीं शती का प्रतीत होता है, किंतु गद्य की तुलना में पद्य की भाषा अधिक पुरानी प्रतीत होती है । अर्ध-मागधी में 18 देशी भाषाओं का मिश्रण माना जाता है । इस पर मुण्डा का- प्रभाव इस बात का प्रमाण है कि अदा-मागधी इस क्षेत्र की भाषा रहीं । वस्तुत: बौद्ध काल में यह भाषा समूचे उत्तर भारत की संपर्क भाषा थी, फलस्वरूप आवश्यकतानुसार इसने अन्य भाषा के भाविक रूपों को आत्मसात किया । अर्ध मागधी पूर्व और पश्चिम की भाषा को एक रूप को एक कड़ी के रूप में जोडने का काम करती है । इसलिए यदि इस पर पूर्वी (मागधी) और पश्चिमी (शौरसेनी) के रूप गठन का प्रभाव है तो दूसरी तरफ पूर्वी पश्चिमी भी इससे प्रभावित हैं ।

महाराष्ट्री प्राकृत को प्राकृत वैयाकरणों ने आदर्श प्राकृत की संज्ञा से विग्लइषत किया है । यह सत्य है कि साहित्यिक प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत सर्वाधिक विकसित और संपन्न भाषा है । संस्कृत नाटकों में आए पद्य अंश इसी प्राकृत में हैं । इसमें महाकाव्य और खण्डकाव्य भी मिलते है । 'सेतुबंधु' तथा 'गड्बहो', हाल की 'गाहा सप्तसती' तथ 'वज्जालग्ग' जैसी श्रेष्ठ काव्यात्मक रचनाओं की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत ही है । यह महाराष्ट्र की जन भाषा थी । कुछेक विद्वान इसे मराठी का पूर्व रूप मानते हैं । कुछ और विद्वान इसे शौरसेनी का परिवर्ती रूप मानते हैं । शौरसेनी से अलग होकर महाराष्ट्री ने दक्षिण में पहुँचकर स्थानीय लोक भाषा के प्रभावों को आत्मसात् किया । दक्षिण से यह भाषा पुन: उत्तर की ओर काव्यभाषा के रूप में आई । उज्जैन तक फैली पुरानी कोसली ने भी इसे प्रभावित किया, स्वयं भी प्रभावित हुई । हिन्दी के विकास में इस प्राकृत का महत्वपूर्ण अवदान है ।

स्वर मध्यग स्पर्श व्यंजनों का लोप इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है । यथा- लोक > लोक, सागर > सायर । तात्पर्य यह कि क्, त्, य्, ग्, द्, व् पूर्णतया लुप्त हुए और ख्, फ्, घ्, ध्, भ् के स्थान पर कवल प्राणधनि 'ह्' बची । साधु > साहु, नाथ > नाह । शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख भिन्नता का आधार यही ध्वन्यात्मक परिवर्तन है, अन्यथा शौरसेनी महाराष्ट्री प्राकृत के अत्यधिक निकट है ।

पैशाची का प्राचीनतम स्थान पश्चिमोत्तर पंजाब, अफगानिस्तान मान्य है (ग्रियर्सन) । कुछ लोग इसकी उत्पत्ति कैकेय प्रदेश में मानते हैं । चीनी, तुर्किस्तान के शिलालेखों तथा कुबलयमाल में प्राप्त रूपों के आधार पर इसे प्राकृतों में प्राचीनतम माना गया है । बांणभट्ट इसे भूत भाषा मानते है । इसकी कोई साहित्यिक रचना आज उपलव्य नहीं है । ही, कुछ लोगों की मान्यता है कि गुणाढ्य की बड्डकहा (बृहत्कथा) मूलत: पैशाची में लिखी गयी थी ।

प्राकृत की विशेषताएँ - (1) प्रा. भा. आ. भाप की ह्स्व 'ए' और 'ओ' तथा 'ण', 'लह् पालि की भाँति प्राकृत में भी प्रयुक्त हुई । ऐ, औ, ऋ, लृ का प्रयोग प्राकृत में नहीं मिलता । (2) साहित्यिक प्राकृतों में मुख-सुख की दृष्टि से पालि की ही भाँति स्वरों के स्थानों में पर्याप्त परिवर्तन हुए । (3) पालि की ही भाँति संयुत्त। व्यंजन के पूर्व ह्स्व स्वर तथा असंयुक्त व्यंजन के पूर्व दीर्घ स्वर का विधान प्राय: सभी प्राकृतों में है । (4) असंयुता ऊष्म श्, ष्, स् के स्थान पर 'स्' प्रयुक्त हुआ । प्रारंभ में ये तीनों ऊष्म विद्यमान थे, किंतु बाद में मागधी में श सुरक्षित रहा । अन्य प्राकृतों में इन तीनों के स्थान पर 'स' का प्रयोग हुआ । (5) पालि की भाँति शब्दांत के व्यंजन लुपा हुए । (6) न > ण हुआ । यह प्रवृत्ति शौरसेनी की थी, किंतु प्रभाव अन्य प्राकृतों पर भी पड़ा । यधपि पैशाची तथा धम्म पद में 'न्' सुरक्षित है । (7) दो स्वरों के बीच आने पर वर्ग के प्रथम और तृतीय व्यंजन का लोप हुआ - मुकुल > मउल । (8) मध्यग महाप्राण में केवल 'ह' बचा, छ, ढ़, फ, ब सुरक्षित है । य् शब्दारंभ में 'ज्' बना । (9) 'र्' प्राय: सुरक्षित है । मागधी में यह 'ल्' हो गया । (11) व > अ हो जाता हैं । (12) 'ह' प्राय: सुरक्षित है । (13) क्ष > क्ख, च्छ, झ हो गया । ज्ञ > प्ज हो गया । (14) संयुक्त व्यंजनों के प्रथम व्यंजन का लोप और दूसरे के द्वित्व हो जाने की प्रवृत्ति प्राकृत का वैशिष्ठय है । (15) प्राकृत में संधि नियम अत्यंत स्पष्ट है । कुछ शब्दों में संस्कृत गुण संधि का प्रभाव दिखायी देता है । कई शब्दों में पूर्व प्रचलित संधि नियमों का उल्लंघन भी है ।

पद रचना - (1) सरलीकरण और एकीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण प्राकृतों में पुल्लिंग शब्दों में अकारांत का इकारांत तथा स्त्रीलिंग शब्दों का आकारांत, ईकारांत और अकारांत ही रूप में भेद रह गया । (2) चतुर्थी के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग भी इसकी एक विशेषता है । (317 एक वचन का प्रयोग बहुबचन् के लिए भी होने लगा । (4) सादृश्य के आधार पर रूपों की विविधता समाप्त होने की ओर उन्मुख थी । (5)

स्त्रीलिंग शब्दों में प्रथमा एकवचन का रूप यथावत है । (6) तृतीया, चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी एकवचन के रूपों में अनेक विकल्प मिलते है । (7) पुल्लिंग, स्त्रीलिंग के साथ नपुंसक लिंग के शब्द भी विद्‌यमान है । (8) वचन दो हैं - एकवचन एवं बहु वचन ।

ध्वनि परिवर्तन और सादृश्य की प्रक्रिया सर्वनाम रूपों को भी एकरूपता और सरलीकरण की ओर उज़ख करती है । सर्वनामों के अनेक प्रयोग लोक में प्रचलित थे । संस्कृत के समान प्राकृतों में भी संइत तथा सर्वनाम की रूप रचना में समान प्रत्ययों का प्रयोग होता है ।

क्रिया रूप - आत्मने पद का दास, कर्तृ और कर्म वाचक के एकीकरण का प्रयास तथा सादृश्य के चलते क्रिया रूपों में परिवर्तन प्राकृत का वैशिष्ट्‌य है । क्रिया पदों के अधिकांश गणों की रूप रचना श्वादिगण के सादृश्य पर की गयी । काल रचना अनियंत्रित सी है । वर्तमान काल का सभी कालों के लिए प्रयोग तथा विधिलिड का सभी वाव्यों और कालों पर प्रभाव अनियंत्रण का प्रभाव है । भूतकाल में तिडतीय रूप समाप्त प्राय हैं । कृदंत रूपों का प्रयोग बढ़ा । भूतकाल में कृदन्तीय प्रयोग प्रधान है । प्राकृत में लङ्, लृङ, ल्युट, आशीलिड, लिट्, लुङ आदि लकार समाप्त प्राय हैं । प्राकृत में पूर्व कालिक क्रिया के प्रत्ययों में - दूण, दाणि, ऊण, त्ता, त्ताणं, उअ आदि प्रधान हैं । प्रेरणार्थक क्रियाएँ इ, अं (हसि अं), वि अं (हसवि अं), उं (हसे उं) प्रत्यांत है । संज्ञार्थक क्रिया हसिदुं, गमिदुं, करिन्दु हैं ।

(ग) अपभ्रंश : परिचय एवं व्याकरणात्मक विशेषताएँ

ईसा पूर्व 150 वर्ष पूर्व पतंजलि के महाभाष्य में 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग शब्दों के भेद या परिचय के लिए प्रयुक्त हुआ हैं - 'एकैमस्य हिशब्दस्य बहवोडयभ्रंशा:" यहाँ 'एकैकस्य शब्द' का अर्थ पाणिनीय व्याकरण से सिद्ध शब्दों से है और 'बहवोडयभ्रंशा' बोलियों और विभाषाओं में प्रयुत पाणिनीय सिद्ध शब्दों के रूपान्तर से है । यथा- सिद्ध शब्द है 'गो और बोलियों विभाषाओं में इसका रूपांतर है - गावी गोणी, गोता, गोपातलिका इत्यादि । वस्तुत: ये शब्द सिद्ध शब्दों के ध्वन्यात्मक रूपांतरण भाषा-विकास (परिवर्तन) की कथा के गायक हैं । ऐसे अपाणिनीय प्रयोग श्वेतांबर जैन ग्रंथों की अर्ध-मागधी में मिल जाते हैं । प्राकृत वैयाकरण चण्ड और हेमचंद्र ने कुछ शब्दों को महाराष्ट्री की देन माना है । इस विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि शब्द के धरातल पर अपभ्रंश की उपस्थिति पालि काल से स्वीकार्य है, जो सतत् पालि, प्राकृत से चलकर अपभ्रंश की भाषा का बाना पहनती है । तीसरी सदी के भरत के नाट्‌य शास्त्र में भी अपभ्रंश के उदाहरण मिल जाते हैं । यह उकार बहुला थी । भरत ने इसे आमीरोक्ति कहा । संभवत: सर्व प्रथम छठी शती के प्रा ईकृत वैयाकरण चण्ड ने अपने ग्रंथ 'प्राकृत लक्षणम्' में इस शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में किया । वसुदेव हिंडी (589 ई.) में भी अपभ्रंश के पुराने ।रूप का संधान हैं । आचार्य भामह का कथन - "संस्कृत प्राकृत चायमभ्रंश इति त्रिधा" (काव्यालंकार 1-26) - अपभ्रंश को, संस्कृत, प्राकृत के पश्चात् की भाषिक स्थिति की स्वीकृति प्रदान करती है । अस्तु छठी से सातवीं शती के बीच संस्कृत और प्राकृत से अलग अपभ्रंश ने अपनी सत्ता और साख

साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित कर ली थी । दण्डी (सातवीं शताब्दी) ने भी आमीरादिगिर: काव्येश्वपभ्रंशा: इति स्मृता' कहकर अपभ्रंश की काव्यात्मक प्रतिष्ठा दर्शायी । कुवलयमाला में उद्योतन सूरि ने भी संस्कृत के साथ-साथ अपभ्रंश को भी साहित्यिक भाषा की मान्यता दी । नवीं शती में रूद्रट ने संस्कृत-प्राकृत के साथ अपभ्रंश का उल्लेख करते हुए देश भेद से इसके अनेक भेद कहे हैं, जिससे अपभ्रंश के विस्तार का पता चलता है । राजशेखर ने भी इसका उल्लेख किया (10 वीं शती) । 11 वीं शती में प्राकृत वैयाकरण पुरूषोत्तम ने अपभ्रंश को शिष्ट वर्ग की भाषा स्वीकार किया । 12 वीं शती में आचार्य हमचन्द्र ने अपभ्रंश का व्याकरण लिखा।

शब्द से भाषा के रूप में अपभ्रंश के विकास की कथा, जितनी रोचक है, उतनी ही रोचक इसके नामकरण की कथा है । नामकरण की कथा लोक भावनाओं, स्वीकृतियों को नकारने, उपेक्षित करने की भी दास्तान हैं । यह

नामकरण संकेत करता है कि उच्च, सम्मान्य - वर्ग से इसे बहिष्कृत करने का प्रयास किया गया और समाज में एक वर्ग उपेक्षित हुआ । फिलहाल यह उपेक्षित वर्ग हमेशा उपेक्षित नहीं रह सकता, वह तो नई-नई भाषा को एकदम नई अर्थवत्ता से संपृक्त करता है । अस्तु जिसको भाषा रूप में ई.पू. दूसरी शती में मान्यता मिल जानी चाहिए थी, वह आठ सौ वर्षो बाद साहित्यिक भाषा बनती है।

"प्राचीन और मध्यकालीन भाषाओं में अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है, जिसे न तो छांदस, न पाणिनि का संस्कार मिला न ही गौतम बुद्ध जैसे महान तपस्वी का वरदहस्त । फिर भी यह जन साधारण की अपराजेय शक्ति से संवलित होकर संस्कृत के पश्चात् सबरने लंबे काल तक साहित्य की भाषा ही नहीं बनी अपितु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जन्मदात्री भी बनी । यह इसकी लोकतांत्रिकता का परिचायक है । तभी तो आचार्य पतंजलि ने सबसे पहले यह अनुभव किया था कि इस भाषा के विकास को रोक पाना कठिन है ।" (प्रो. राजमणि शर्मा - हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप, प्र. 60) ।

अपभ्रंश साहित्यिक दृष्टि से संस्कृत के पश्चात् सर्वाधिक संपन्न और विस्तृत क्षेत्र की भाषा छठी शती तक साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी और इसमें उच्च स्तरीय काव्य रचनाएँ प्रारंभ हो चुकी थी । यह कम पंद्रहवी सोलहवीं शती तक चला ।

अपभ्रंश को किसी ने अभीरों की बोली कहा, किसी ने देशी वचन की संइग़ दी । फिलहाल अभीसे का उल्लेख महाभारत में एक दुर्धर्ष जाति के रूप में आया है । यह ईस्वी सन् के आसपास पश्चिमोत्तर भारत में बस चुकी थी । कालातार में इनका फैलाव मध्यप्रदेश में भी हुआ । यहाँ तक कि आज के उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में ये बहुसंख्यक हैं । तभी तो वाराणसी के पास अहिरौरा कभी अभीरों की राजधानी बसा । पादलिप्ताचार्य (5 वीं शती) ने इसे देसिवचण घोषित किया । कालांतर में विद्यापति ने भी अपभ्रंश से मिलते जुलते परवर्त्ती रूप को 'अवहट्ट' कहा । स्वयंभू भी इस भाषा में काव्य रचना को रचनात्मक उपलखि स्वीकार करते हैं । (पउम चरिउ) । वे जिसक रड्डबद्द काव्य रचने की अपनी संकल्पना दोहराते हैं, वही आगे चलकर अपभ्रंश की अपनी विशेषता बनी ।

सच यह है कि एक समय ऐसा आया जब अपभ्रंश पश्चिम से पूर्व, उत्तर से दक्षिण तक समूचे भारत की साहित्यिक भाषा बन बैठी । जैन धर्म की यह भाषा बनी । इसमें रामकाव्य, कृष्ण काव्य तो लिखे ही गये (स्वयंभू का पउम चरिउ तथा पुष्पदंत का महापुराण), लोक जीवन प्रबंधात्मक काव्य के अंग बने (धनपाल का भविसपत्तकहा) । नीतिपरक तथा धर्म-जीवन दर्शन संबंधी रचनाएँ भी प्रभूत मात्रा में उपलव्य हैं (रामसिंह का पाहुड दोह मुनि जिन विजय आदि की मुक्तक रचनाएँ) । वीर और शृंगार परक रचनाओं का अभाव नहीं ।

अपभ्रंश के भेद को लेकर भी पर्याप्त विवाद है । मार्कण्डेय ने इसके 27 भेद गिनाए, किंतु केवल तीन - नागर, उपनागर एवं ब्राचड में, वे इसे समाहित करते हैं । नागर गुजरात की, उपनागर राजस्थान की तथा ब्राचड, सिंध की बोली थी । याकोबी चार भेद - पूर्वी, पश्चिमी, उत्तर तथा दक्षिणी स्वीकार करते हैं । तगारे याकोबी के उत्तरी भेद को स्वीकार करते हैं । अस्तु वे तीन भेद मानते हैं - (1) पूर्वी अपभ्रंश - सरह तथा कण्हपा और बौद्ध सिद्धों के दोहा कोश तथा चर्या पदों की भाषा । (2) दक्षिणी अपभ्रंश - स्वयं भू पुष्पदंत रचित महापुराण, णय कुमार चरिड, जसहर चरिड तथा मुनि कनकामर के करकण्ड चरिउ की भाषा । (3) पश्चिमी अपभ्रंश - शौर सेनी प्राकृत का परवर्ती रूप जिसमें राजस्थान की बोलियों का मिश्रण है । कालिदास, जोइंदु (सावयधम्म दोहा), रामसिंह (पाहुड़ दोहा), धनपाल (मविसयत्त कहा) और हेम व्याकरण में उद्धृत अपभ्रंश के दोहों आदि में इस भाषा का रूप प्राप्त होता है । डॉ. नामवर सिंह केवल दो भेद स्वीकार करते हैं - पश्चिमी और पूर्वी । पश्चिमी अपभ्रंश को परिनिष्ठित मानते हैं तथा पूर्वी अपभ्रंश को पश्चिमी अपभ्रंश की विभाषा । इनका आधार है - पश्चिमी और दक्षिणी अपभ्रंश की (भाषागत समानता) । डॉ. सिंह के पूर्व आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपभ्रंश के दो भेद - पूर्वी और पश्चिमी ही स्वीकार किए थे । आचार्य द्विवेदी के भेद का आधार काव्य वस्तु और प्रवृत्ति है । उनके अनुसार अपभ्रंश में भिन्न - भिन्न जातियों की दो चीजें विकसित हुई - (1) पश्चिमी अपभ्रंश में राजस्तुति ऐहिकता मूलक शृंगारी काव्य, नीति विषयक, फुटकल रचनाएँ और लोकप्रिय कथानक । पूर्वी अपभ्रंश से निर्गुणियाँ संतो की शास्त्र निरपेक्ष उग्र विचारधारा, झाड-फटकार, अक्खड़पन, सहजशून्य की साधना, योग पद्धति और भक्ति मूलक रचनाएँ ।

अपभ्रंश की अशेषताएँ

अपभ्रंश में वियोगात्मक प्रवृत्ति मुखर है । (2) अपभ्रंश में प्राकृत की स्वर और व्यंजन सभी ध्वनियाँ विद्यमान है । (3) ए,ओ, ह्स्व ध्वनियों के लिए अपभ्रंश में नवीन लेखन चिह्न न बनाकर प्राकृत और संस्कृत की अनुलेखन पद्धति का अनुगमन किया गया । उत्तर भारत के लेखक ह्स्व ए, ओ के लिए इ, उ का व्यवहार करते रहे । (4) 'अ' के संवृत्त एंव विवृत्त भेदों की भिन्नता प्रदर्शन हेतु भी कोई चिह्न नहीं है । (5) संस्कृत और प्राकृत की अपेक्षा 'अ' का उच्चारण भिन्न था । (6)लुप्त मध्यग व्यंजन के स्थान पर कहीं 'अ' मिलता है और कहीं 'य' श्रुति का समावेश है ।

यधपि प्राकृत वैयाकरणों ने अपभ्रंश में स्वर परिवर्तन को अनियमित माना है, किंतु स्वरागम (भक्ति) (आर्य > आरिय, वर्ष > वरिस), स्वर लोप (उपविष्ट > बइट्ठ), दीर्घीकरण (कस्स > कासु, (प्रिया > पिअ, गंभीर > गहिर), सानुनासिकता तथा निरनुनासिकता (पक्षिन > पखि, वक्र > बक, सिंह > सीह, विंशति > बीस), समीकरण अथवा विषमीकरण (खदिर > खदर, मध्यम > मज्जिम), आदि स्वर की सुरक्षा (जघन > जहन, कस्प > कासु, (मात्रा परिवर्तन) अरण्य > रण्य), स्वर संधि (सहकार > सहआर, स्वर्णकार > सुण्णआर) श्रुति - (अ उ > य व) (अमृत > आमिउ, कंचुक कंचुव) तथा ऋ का अ, इ, उ, ए, अर, र में परिवर्तन (मृत > मुअ, कृष्ण > कण्ह, कृपाण > कियाण, गहस्थ > गेहत्थ, भ्रातृ > भायर, पितृ > पियर, ऋण > रिण, ऋद्धि > रिद्धि) परिवर्तन जैसी स्वर विकार की दिशाएँ स्पष्ट हैं ।

व्यंजन

एक अनुस्वार सहित अपभ्रंश में तीस व्यंजन ध्वनियाँ है - क वर्ग, च वर्ग, त वर्ग, प वर्ग के अतिरिक्त य्, र्, ल्, व्, स्, ह्, अनुस्वार (-) उपस्थित हैं ।

(1) उपर्युक्त व्यंजन ध्वनियाँ प्रा. भा. आ. भाषा का प्रतिनिधित्व तो करती हैं, किंतु इनमें कई देशी ध्वनियाँ सम्मिलित हैं । (2) कई संयुक्त ध्वनियाँ अपभ्रंश में अपना अतिस्तित्व खो बैठीं (क्रंदति S कैद, किय उ किअ) । (3) उच्चारण स्थान में भी परिवर्तन हुआ है । क वर्ग में स्पर्श व्यंजन है, च वर्ग स्पर्श संघर्षी, च वर्ग मूर्धन्य, त वर्ग दंत्य, प वर्ग ओष्ठ्य है । (4) प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो अघोष, शेष घोष, पहली और तीसरी अल्पप्राण, शेष महाप्राण ध्वनियाँ है । (5) ण्, न्, म् सानुनासिक शेष निरनुनोसिक हैं । (6) य्, र्, ल्, व् अंतस्थ व्यंजन हैं । ये सभी सघोष अल्पप्राण हैं । च् तालु, र् मूर्धा या वर्त्स, ल् वर्त्स, व दंत्य से उच्चरित ध्वनियाँ हैं । (7) प्रयत्न के आधार पर र को लुंठित या उस्तिप्त माना जाता है । (8) l दंत्य अघोष महाप्राण ध्वनि है । इसने श य को भी अपने में समाहित कर लिया । (9) अपभ्रंश में 'ह ध्वनि का सर्वाधिक प्रसार हुआ। यह कंठ्य सघोष महाप्राण है ।

व्यंजन विकार की स्थितियाँ प्राकृत सदृश ही हैं । (1) न्, प्, श्, ष के अतिरिक्त अपभ्रंश में आदि व्यंजन सुरक्षित हैं, किंतु कहीं महाप्राणीकरण अथवा अल्पप्रणीकरण के उदाहरण मिल जाते हैं (साव्य उ ठड्ढ) । (2) न > ण, य > ज़ और श ष > स् हुआ। (3) प्राकृत-सदृश अपभ्रंश में भी अंत्य व्यंजन लुपा हुए (कृत > किय) । (4) प्राकृत के समान ही मध्यग क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प् के लोप का विधान है । ही, इसके स्थान पर अपभ्रंश में मइ श्रुति का विशेष प्रयोग हुआ (युगल > जुपल, लोचन > लोयण) । (5) प्राकृत के समान मध्यग महाप्राण व्यंजन ख्, ध्, थ्, ध, फ्, भ् के स्थान पर 'ह्' हो गया । (सखि > सहि दीर्घ > दीह) । (6) कहा तो यह जाता है कि मध्यग व्यंजन लोप की प्रवृत्ति अपभ्रंश का वैशिष्ट्य है, पर वैकल्पिक रूप में इन्हें कहीं-कहीं सघोष भी किया गया है (आगत: > आगदो दीप > दीव) । (7) मध्यग 'म' अपभ्रंश में सुरक्षित है ।

पालि प्राकृत की व्यंजन परिवर्तन की दिशाएँ अपभ्रंश में भी क्रियाशील हैं । (1) बलाघात के कारण आस-पास आदि, मध्य या अंत की ध्वनि लुप्त हुई । (2) उच्चारण सुविधा

के लिए पहले से अनुपस्थित किसी नयी ध्वनि का आगम हुआ। (3) वर्ण-विपर्यय के उदाहरण भी मिल जाते हैं (ब्राहमण > बाम्हन) । (4) समीकरण-विषमीकरण एंव द्वित्वीकरण की स्थिति भी है । प्राय: यह संयुता व्यंजनों में हुई। (चक्र > चक्क, मार्ग > मजा) । (5) घोषीकरण - क्, ख्, त्, थ्, प्, फ् आदि मध्यग अघोष अपने वर्ग की सघोष बन जाती हैं । (6) महाप्राणीकरण - अल्पप्राण ध्वनियों को महाप्राण करने की प्रवृत्ति भी अपभ्रंश में दिखाई देती है । (पुस्तक > पोत्थय, पश्चिम > पच्छिम) ।

रूप रचना -

इस दृष्टि से अन्य म. भा. आर्य भाषाओं से अपभ्रंश का अलग वैशिष्ट्य है । इसमें जहाँ पालि, प्राकृत की सरलीकरण और एकीकरण की प्रवृति विद्यमान हैं, वहीं इसमें आ.भा. आर्य भाषा की प्रवृत्तियाँ भी मुखर हैं । वियोगात्मकता की ओर उऱखता ने इसे अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं से दूर खड़ा किया है ।

संज्ञा रूप

(1) स्वरांत प्रातिपादेप : अपभ्रंश में विविधता से एक रूपता की ओर अग्रसर हुए। अंतिम दीर्घ स्वर को हूस्व करने की प्रवृत्ति ने इसमें पर्याप्त सहायता की । फलस्वरूप दीर्घ स्वरांत प्रातिपादिक अपभ्रंश में लुप्त प्राय हैं - (पूजा > पुज्ज) । इस प्रकार अपभ्रंश में अ, इ, उ कारात प्रातिपादिक ही शेष बचे । (2) अपभ्रंश में अंतिम व्यंजन का या तो लोप हुआ या वह अकार युक्त हो गया (आत्मन् > अथ्यण), सभी प्रतिपदिकों को स्वरांत बना दिया गया । प्रातिपदिकों की विविधता से मुति) पाकर अपभ्रंश सरलतम भाषा बन गयी । (3) अ, इ, उ में भी अकारांत की ही प्रधानता है ।

अपभ्रंश में दो ही लिंग रह गए । यधपि प्रा. भा. आ. भा. के नपुंसक लिंग लोप से अपभ्रंश की लिंग व्यवस्था अनियंत्रित हो गर्यो, फिर भी हिन्दी इससे प्रभावित हुई। अपभ्रंश में पुल्लिंग की प्रधानता है, नपुंसक लिंग का तो लोप हुआ ही, स्त्रीलिंग के रूप भी कम हैं ।

वचन दो रह गये - एक वचन, बहुवचन। द्विवचन के संकेत के लिए द्वि शब्द की सहायता ली गयी ।

अपभ्रंश में प्रा. एंव अन्य म. भा. आ. भा. के स्थान पर केवल तीन कारक समूह है - (1) कर्ता-कर्म- संडग़ेधन, (2) करण-अधिकरण एंव (3) संप्रदान-संबन्ध और अपादान ।

अपभ्रंश प्रयोक्ताओं की प्रवृत्ति तो सरलीकरण की थी, किंतु लुपा विभक्तिक पदों के कारण अर्थ-निष्पादन अस्पष्ट और दुरूह हो उठा, इस समस्या के निदान के लिए अनुसर्गो या परसर्गो का प्रयोग अपभ्रंश में बढ़ा परसर्गो का विकास अपभ्रंश में स्वतंत्र शब्द रूप में भी हुआ। परसगौ के विकास में संज्ञा रूपों की अपेक्षा सर्वनामों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है । अपभ्रंश की परसर्गीय शब्दावली का आदान संस्कृत से हुआ (सहुँ < सह, सम) यह करण करिक का है ।

क्रिया रूप

क्रिया रूप की निर्मिति में अपभ्रंश प्रा. या अन्य म. भा. आ. भा. से अलग अपना वैशिष्ट्य स्थापित करती है । साहित्यिक प्रयोग - ज्युत, किंतु, लोक प्रचलित अनेक क्रियाओं क:ए

अपभ्रंश में महत्व (,मेलता है (बोल्ल, धोह, लुक्क, चव, छोल्ल, उल्ह, झूर, छल्लि) तो शब्दानुकरणात्मक धातुओं की निर्मिति प्रक्रिया भी अपभ्रंश की देन है । इन दो प्रक्रियाओं के अतिरिक्त नाम से धातु बनाने की पुरानी परंपरा चलती रही । प्रा. भा. आ. भा. की अपभ्रंश में चलती रहीं । इनमें काल, अर्थ, वाच्य, पुरूष और वचन के अनुसार विभिन्न प्रत्यय संपृक्त हुए । सरलीकरण के लिए गणों के निर्माण का अंतर समाप्त कर कतिपय निपातों का सहारा लिया गया । अव्यय और क्रिया-विशेषण के नए रूपों की निर्मिति का वैशिष्ठय है ।

17.4 विचार संदर्भ/शब्दावली

1.	प्रा. भा. आ.	=	प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएं जिसमें वैदिक और लौकिक संस्कृत आती हैं ।
2.	म. भा. आ.	=	मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं जिसमें मुख्यत: पालि प्राकृत अपभ्रंश (अब तक) के विविध रूप आते है ।
3.	सोपान	=	सीढी, चरण
4.	निकष	=	कसौटी
5.	परवर्ती	=	बाद की, बाद में आने वाली
6.	विदूषक	=	मसखरा, हँसाने वाला
7.	सेतुबंध	=	पुल बाँधना, पुल बनाना, जोड़ने के अर्थ में
8.	अपश्रुति	=	ध्वनि परिवर्तन के कारण उत्पन्न स्थिति/ स्वरों में परिवर्तन के कारण अर्थ बदल जाना । कभी-कभी आरंभ या अंत में कुछ और अंश भी जुड़ जाता है जैसे भारद्वाज से भारद्वज
9.	गुम्फा	=	गुफा, कन्दरा, पहाड़ की खोह
10.	यथावत	=	ज्यों की त्यों, बिना बदले
11.	विषमीकरण	=	समीकरण का उलटा, इसमें दो एक सी ध्वनियों में एक ध्वनि किसी समान ध्वनि के प्रभाव से अपना स्वरूप छोड़ कर दूसरी बन जाती है । इसका प्रमुख कारण श्रोता की ध्वनि पहचानने की सुविधा का होना है । जैसे वालंटियर को भोटियर सुनना और वहीं बोलना ।
12.	त्रिपिटक	=	बौद्धों का प्रमुख धर्म ग्रंथ जिसमें गौतम बुद्ध के उपदेशों का संग्रह उनके शिष्यों द्वारा किया गया है ।
13.	ऐहिकता मूलक	=	लौकिक, संसार की भावनाओं से संबंधित
14.	अभिलेख	=	लेख प्रमाण, सरकारी लेखे जोखे के कागज पत्र
15.	बलाघात	=	एक शब्द की सभी ध्वनियों पर बराबर बल या आघात उच्चारण के समय नहीं पड़ता । शब्द जब एकाधिक अक्षरों का होता है तो जिस अक्षर पर अधिक बल पड़ता है, उस पर बलाघात देखा जाता है ।

17.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रा.ओर म. भा. आ. भाषाओं का विकास एक सुनिश्चित नियम के तहत हुआ। वैदिक भाषा की उपस्थिति जहाँ 5000 वर्ष ई.पू. से भी पहले की मान्य है, वहीं यह भी स्वीकार्य तथ्य है कि वैदिक भाषा और इसके भाषा भाषी ईरान एवं यूरोप के देशों तक एकाधिक बार पहुँचे तथा वहाँ की भाषाओं को प्रभावित किया । यह तभी संभव है जब भाषा विशेष की संस्कृति और सभ्यता तथा साहित्य पूर्णतया सम्पन्न हो । इस दृष्टि से वैदिक संस्कृत की संपन्नता का बखान बेमानी है, क्योंकि विश्व की अनेक भाषाओं में वैदिक संस्कृत के शताधिक शब्दों की उपस्थिति, व्याकरणिक नियमों का प्रभाव एवं साहित्यिक अवदान स्वयं इसकी कथा कहता है । यह प्रमाणित तथ्य है कि वैदिक भाषा के पश्चात् भी लौकि क संस्कृत और प्राकृत से विश्व की अनेक भाषाओं ने शब्दों, ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणात्मक संरचरना के नियमों का आदान किया । यह तथ्य इस बात को भी पुष्ट करता है कि प्राचीन और मध्यकालीन आर्य भाषाओं के भारतीय प्रयोक्ता दुर्धर्ष और संघर्षशील थे । उनकी सभ्यता और संस्कृति भी अन्यतम तथा अनुकरणीय थी।

वैदिक संस्कृत स्वयं में श्लिष्ट थी, किंतु स्वाभाविक भाषा बदलाव की प्रक्रिया के तहत अपभ्रंश तक पहुँचते-पहुँचते भाषा वियोगात्मक बन गयी । इसके कारण थे - सरलीकरण तथा एक रूपता देने का प्रयास इनमें प्रमुख था । एक कारक और महत्वपूर्ण है - वह है - लोक । सबसे पहले यह 'लोक' लौकिक संस्कृत को जन्म देता है, फिर पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश को । यदि ध्यान से देखा जाए तो ये तीनों भाषिक रूप लोक की देन हैं, जैसे-जैसे लोक/जनसाधारण की दखलंदाजी बढ़ी वैसे-वैसे भाषा का रूप भी बदला । अस्तु लोक की भाषा-सरलीकरण या लोकानुरूप भाषा की निर्मिति प्रक्रिया अपभ्रंश में आकर पूरी होती है ।

लौकिक संस्कृत के संदर्भ में व्याकरण सम्मत भाषा या साहित्यिक समृद्धि की चर्चा यहाँ अनावश्यक है । किंतु परवर्ती तीनों भाषाओं में व्याकरण भी लिखे गए, साहित्यिक रचनाएँ भी हुईं, विशेषकर अपभ्रंश तो इस दृष्टि से सर्वाधिक संपन्न भाषा है । एक बात और, ये भाषाएँ जन-मन एवं उनकी आकांक्षाओं की भी प्रतिनिधि बनीं ।

अंततः! यह गर्व के साथ कहा जा सकता है कि प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ सभ्यता, संस्कृति, दर्शन/चिंतन/अध्यात्म एंव भाषा वैज्ञानिक-सिद्धान्तों के निर्मिति की दृष्टि से समूचे विश्व में अद्वितीय है ।

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घो त्तरी प्रश्न

1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के विभिन्न भाषिक स्वरूपों का परिचय देते हुए उनके नामकरण पर विचार कीजिए ।

2 प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के दोनों रूपों के भाषिक अंतर निरूपित कीजिए ।

3 वैदिक और लौकिक संस्कृत के साहित्यिक महत्व का रेखांकन कीजिए ।

4 पालि भाषा के नामकरण, क्षेत्र निर्धारण पर विचार करते हुए उसकी भाषिक विशेषताओं का विवेचन कीजिए ।

5 "प्राकृत" का शाब्दिक अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताएँ बताइए ।

ब. लघूत्तरी प्र श्न

1 पालि और प्राकृत का तात्विक अंतर बताइए ।

2 अपभ्रंश का अर्थ बताते हुए इसके कोई दो ध्वन्यात्मक वैशिष्ठय बताइए ।

3 पूर्वी और दक्षिणी अपभ्रंश की कुछ रचनाओं के नाम लिखिए

4 मै वैदिक और लौकिक संस्कृत में क्या मूल अंतर था?

5 म. भा. आ. में कौन-कौन सी भाषाएं आती है? सबकी एक-एक रूपगत विशेषता लिखिए ।

स. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1 बुद्ध के उपदेशों का संग्रह.. है ।

2 पालि की लिपि..................................... रही है ।

3 प्राकृत की व्युत्पत्ति.................................. से मानी जाती है ।

4 वैयाकरण... ने अपभ्रंश को शिष्ट वर्ग की भाषा माना ।

5 मूल भारोपीय भाषा का मूल आधार है.. ।

द. सही/गलत पर निशान लगाइए -

1 आर्य शब्द जाति सूचक माना जाता है । सही/गलत

2 पालि जनसाधारण के लिए बहुत कठिन और जटिल भाषा थी । सरल/कठिन

3 कच्चायन संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरणाचार्य थे । सही/गलत

4 अपभ्रंश में उच्च स्तरीय काव्य रचनाएं उपलव्य है । सही/गलत

5 पालि प्राकृत की व्यंजन परिवर्तन की दिशाएं अपभ्रंश में भी क्रियाशील हैं । सरल/गलत

17.7 संदर्भ ग्रन्ध

1 डा. राजमणि शर्मा; हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप, वाणी प्रकाशन 21 P दरियागंज, दिल्ली

2 ब्लूमफील्ड - लैंग्वेज वोज्यूम P 1929 लंदन पृ. 267-276

3 डा. भोला नाथ तिवारी; भाषा विज्ञान किताब महल, इलाहाबाद

4 डा. राजमणि शर्मा; भाषा चिंतन, भाषा विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

इकाई-18 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय

इकाई की रूपरेखा

18.1 उद्देश्य

18.2 प्रस्तावना

18.3 आधुनिक भारतीय भाषाएँ

18.3.1 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

18.3.2 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ. संकल्पना एवं वर्ग विभाजन

18.4 विचार संदर्भ7शब्दावली

18.5 सारांश

18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

18.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:-

- आधुनिक भारतीय आर्य भाषा की संकल्पना, स्वस्थ तथा वर्गीकरण पर प्रकाश डाल सकेंगे ।
- विभिन्न आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के क्षेत्र 'तथा उसकी विशेषताओं से आप परिचित हो सकेंगे ।
- एक ही मूल से उत्पन्न परस्पर संबद्ध इन भाषाओं की सामासिक संस्कृति के विकास के राष्ट्रीय महत्त्व को आप रेखांकित कर सकेंगे ।

18.2 प्रस्तावना

दसवीं शती के आसपास भाषिक-चेतना में एक और बदलाव परिलक्षित होता है । मध्यकाल की अंतिम कड़ी अपभ्रंश से विभिन्न क्षेत्रों की बोलियों के रूप अपना अलगाव प्रदर्शित करने लगे । यह प्रक्रिया चलती रही चौदहवीं शती तक अनेक बोलियों ने मादा का रूप ग्रहण कर लिया । यधपि दसवीं से चौदहवीं शती तक की रचनाओं में अपभ्रंश की प्रवृत्ति विद्‌यमान है और भाषाओं के विकास की भी, इसलिए इसे संक्रमण काल या अवहट्ट काल कहा जाता है । विद्‌यापति के कीर्तिलता की भाषा यही अवहट्ट है- 'देसिल बयना सब जन मिट्टा तं तैसहो जंपहो अवहट्टा । ' संदेश रासक, प्राकृत पैंगलम पुरातन प्रबंध संग्रह, उक्ति व्यक्ति, प्रकरण, वर्ण रत्नाकर, ढोला मारू रा दूहा और पृथ्वीराज रासो इस काल की प्रमुख रचनाएँ हैं ।

ईस्वी सन् 1000 के पश्चात् और ई. सन् 1400 के पूर्व-भाषा रूप में विकसित प्रमुख आधुनिक भाषाएँ हैं- हिंदी, बंगला, असमिया, उडिया, गुजराती, सिंधी, पंजाबी, मराठी और पहाड़ी । ये भाषाएँ पूर्णतया अयोगात्मक हो गयीं । लिपि और उच्चारण में अंतर आ गया ।वस्तुत: ध्वनियाँ परिवर्तित हो गयीं । अनेक विदेशी ध्वनियों और शब्दों का प्रयोग होने लगा । शब्द रूपों और धातु रूपों की संख्या कम हो गई । गुजराती, मराठी को छोड़कर शेष भाषाओं में

केवल दो लिंग रह गए । वचन भी दो ही रह गए । निष्कर्ष रूप में आमा.अपभ्रंश की अपेक्षा और सरलीकरण की ओर उज़ख हुई ।

18.3 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

18.3.1 आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

आधुनिक भाषाओं से उन भाषाओं को इंगित किया जाता है जिनका बीजवपन तो प्राकृत काल में ही हुआ था, किंतु उन्हें विकास का अवसर अपभ्रंश के साहित्यिक पद से स्तुत होने के बाद मिला. । विभिन्न प्राकृतों के कोड से अंकुरित ये भाषाएँ अपभ्रंश काल में भाषिक स्वरूप प्राप्त कर लेती हैं । अपभ्रंश तक दक्षिण को छोडकर शेष भारत में भाषिक ऐक्य की स्थिति थी । यह वह क्षेत्र था, जिसमें कमी संस्कृत तथा कमी पालि या कभी अपभ्रंश संप्रेषण का मध्यम थी । भाषिक एकरूपता शासन-सज्ञा के एकीकरण या समन्वय का भी प्रमाण है । अपभ्रंश के हास के साथ-साथ प्रांतीयता और क्षेत्रीयता का विकास हुआ और हर प्रांत या क्षेत्र की भाषा स्वतंत्र रूप से विकसित हुई । इन पर पूर्ववर्ती भाषाओं का भी प्रभाव है और समकालीन बोलियों का भी । फलस्वरूप स्वतंत्र रूप से विकसित ये भाषाएँ एक दूसरे के बहुत निकट हैं । भाषाओं का यह विकास लोकतांत्रिक भावना का भी परिचायक है । तात्पर्य यह कि संस्कृत, पालि, प्राकृत या अपभ्रंश क्षेत्र की वे बोलियाँ जो अपभ्रंश के हास के पश्चात् भाषा रूप में उठ खडी होती है, वे आधुनिक भारतीय भाषाएँ कहलाई । निश्चय ही साहित्य के इतिहास या इतिहास के आधुनिक काल की अपेक्षा भारत के संदर्भ में यह भाषाओं का आधुनिक काल हैं ।

विलियम जोन्स ने सबसे पहले भारत की भाषाओं का अध्ययन और हिन्दी के महत्त्व को रेखांकित किया । कैरे ने भारत में 33 भाषाओं की खोज थी । मैक्समूलर ने मुंडा भाषा तथा फाल्डवेल ने द्रविड़ भाषाओं की खोज की । वीम्स ने इस देश की सभी भाषाओं का विवरण प्रस्तुत किया ।

(ख) वर्ग -विभाजन

हार्न ने सबसे पहले आर्यो के पूर्व और पश्च आगमन के सिद्धांत के आधार पर मादाओं का वर्गीकरण किया । पहले खेवे में आने वाले आर्यो को बहिरंग आर्य कहा तथा दूसरे खेवे के आर्यो को इन्होंने अंतरंग सता से अभिहित किया । अंतरंग और बहिरंग आर्यो की भाषा में स्थान, काल भेद के कारण ध्वनिगत और रूपगत अंतर उपस्थित हो गया । अंतरंग और बहिरंग भाषाओं के वर्ग-निर्धारण के अलावा उन्होंने भाषाओं को चार वर्गो में विभक्त किया,

1. पूर्वी गौडियन-पूर्वी हिन्दी बिहारी के साथ, बंगला, असमी और उडिया
2. पश्चिमी गौडियन - पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, सिंधी, पंजाबी
3. उत्तरी गौडियन - गढ़वाली, नेपाली पहाड़ी सहित
4. दक्षिणी गौडियन - मराठी

हार्नले के उपर्युका सिद्धांत-अंतरंग और बहिरंग वर्ग को ध्यान में रखकर अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' में डॉ. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने पहला वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया -

1. बाहरी उपशाखा	-	(अ) पश्चिमोत्तरी समुदाय (लँहदा, सिंधी)
		(ब) दक्षिणी समुदाय (मराठी)
		(स) पूर्वी समुदाय-उडिया, बंगाली, असमी, बिहारी ।
2. मध्यवर्ती उपशाखा		(अ) मध्यवर्ती समुदाय (पूर्वी हिन्दी) ।
3. भीतरी उपशाखा		(अ) केन्द्रीय समुदाय (पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भीली खानदेशी)
		(ब) पहाड़ी समुदाय (पूर्वी, मध्यवर्ती, पश्चिमी) ।

कालांतर में इन्होंने इस वर्गीकरण की त्रुटियों में सुधार करते हुए दूसरा वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया -

1. मध्यदेशी - पश्चिमी हिन्दी
2. अंतवर्ती - पश्चिमी हिन्दी में विशेष सन्निकट-पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पूर्वी, पश्चिमी एवं मध्य पहाडी । पूर्वी हिन्दी (बहिरंग से सम्बद्ध)
3. बहिरंग - पश्चिमोत्तरी (लँहदा, सिंधी), दक्षिणी (मराठी), पूर्वी (बिहारी, उडिया असमी, बंगाली) ।

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण के ध्वनिगत, व्याकरणगत आधारों का खंडन करते हुए उनके वर्गीकरण को अवैज्ञानिक सिद्ध किया :-

1. बहिरंग में रकाल या ड प्रयोग मिलता है । (ग्रिर्यसन) । अवधी, ब्रज, खड़ी बोली अर्थात् मध्यदेशी और अंतवर्ती में भी ये प्रयोग मिलते हैं - जर से लल, भीड़-भीर, किवाड़-किदार (चटर्जी) ।
2. बाहरी का द-द्व बना । (ग्रिर्यसन) । हिन्दी (मध्यवर्ती) में भी यह परिवर्तन हुआ है- दोलिका-डोली दंड-डंड (चटर्जी) ।
3. बाहरी में तथा संस्कृत भीतरी में म्ब-म हुआ । (ग्रिर्यसन) । भीतरी में भी इसके उदाहरण हैं निम्ब- नीम । और बँगला जो बाहरी वर्ग की मायामें निंबुक केलिए नेबू तथा लेबू दोनों प्रयोग मिलते है । ग्रिर्यसन के सिद्धांत के विपरीत यह परिवर्तन हुआ है । (चटर्जी)
4. अल्पप्राणीकरण की प्रक्रिया बाहरी भाषाओं में घटित हुई (ग्रिर्यसन),किंतु भीतरी वर्ग की हिन्दी में भगिनी का बहन हो जाना, इस तथ्य को खारिज करता है । (चटर्जी)
5. बाहरी वर्ग में 'र' का लोप हुआ (ग्रिर्यसन) । भीतरी वर्ग में 'और, के लिए औ 'पर' के लिए 'पै' का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि यहाँ भी रै' के लोप की प्रवृत्ति है ।
6. बाहरी वर्ग में संस्कृत स - ह बना (ग्रियर्सन) । भीतरी वर्ग की पश्चिमी हिन्दी में 'केसरी' के लिए 'केहरी' या 'केहरी' का प्रयोग भी इस तथ्य को खारिज करता है । (चटर्जी)
7. बाहरी वर्ग को डॉ. ग्रिर्यसन संयोगात्मक प्रवृत्ति की भाषा मानते हैं - बंगला-रामेर बोई हाम की किताब) । डॉ. चटर्जी के अनुसार भीतरी वर्ग वर्ग में भी सयोगात्मकता

अवशिष्ट है जैसे - ब्रज- पूतहिं (कर्म), भौनहिं (अधिकरण) । डॉ. ग्रियर्सन स्त्री प्रत्यय - 'ई' को बाहरी वर्ग की विशेषता मानते हैं । डॉ. चटर्जी भीतरी वर्ग में भी 'ई सभी प्रत्यय खोज निकालते हैं । स्पष्टत: डॉ. चटर्जी ने बारी भीतरी वर्गीकरण के डॉ. ग्रियर्सन के समस्त आधारों को खारिज कर दिया वे एक नया वर्गीकरण भी पेश करते हैं -

1. उदीव्य - सिंधी, लँहदी, पंजाबी ।
2. प्रतीव्य - गुजराती, राजस्थानी ।
3. मध्यदेशीय-पश्चिमी हिन्दी ।
4. प्राव्य - पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, असमिया, बंगला ।
5. दक्षिणात्य-मराठी ।

निश्चय ही डॉ. चटर्जी का यह वर्गीकरण बहुत मौलिक नहीं । इसमें हिन्दी के विविध रूपों को अलग भाषा मानकर दूसरे-दूसरे वर्गो में रखा गया है । भारतीय संविधान, लोक-व्यवहार, भाषा की प्रकृति, साहित्यिक भाषाओं के क्रमिक विकास तथा उसकी बोधगम्यता को देखते हुए यह वर्गीकरण समीचीन नहीं प्रतीत होता ।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने डॉ. चटर्जी के प्रतीव्य वर्ग से राजस्थानी को तथा प्राच्य वर्ग से पूर्वी हिन्दी एवं बिहारी को हटाकर मध्यदेशीय में पश्चिमी हिन्दी को साथ रख कर चटर्जी के वर्गीकरण का संशोधन प्रस्तुत किया । डॉ. हरदेव बाहरी ने दो वर्ग बनाए - (1) हिन्दी वर्ग मध्य पहाड़ी, राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी (ये सभी हिन्दी की उपभाषाएँ हैं) । (2) हिन्दीतर 'वर्ग - उत्तरी (नेपाली), पश्चिमी (पंजाबी, सिंधी, गुजराती), दक्षिणी (सिंहली, मराठी), पूर्वी (उड़िया, बंगला, असमिया) ।

उपर्युक्त वर्गीकरणों में अधिकांशत: क्षेत्रीयता को प्रमुख आधार माना गया है, जबकि मूल उद्गम तथा स्थानीय संपर्क भाषाओं का प्रभाव ही किसी भाषा की प्रवृत्ति को निश्चित करते हैं । बिहारी को हिन्दी वर्ग में माना जाता है जबकि वह बंगला से भी प्रवृत्तिगत साम्य रखती है । किंतु भाषिक विकास के दौरान बिहारी भाषा हिन्दी के अधिक समीप आती गयी हैं, अत: इसे हिन्दी के साथ रखना अनुचित नहीं हैं ।

डॉ. राजभरिप के अनुसार सर्वमान्य वर्गीकरण का स्वरूप निम्नलिखित होगा -

1. हिन्दी - पश्चिमी, पूर्वी, बिहारी ।
2. हिन्दी के निकट-पहाड़ी, राजस्थानी ।
3. हिन्दी से दूर होती पर हिन्दी के साक्षिक वैशिष्ट्य से संयुक्त - गुजराती, मराठी ।
4. हिन्दी से पूर्ण अलगाव प्रदर्शित करती भाषाएँ- लहँदा, पंजाबी, सिंधी, असमिया, बंगला, उड़िया नेपाली, सिंहली ।

18.3.2 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ : संकल्पना एवं वर्ग विभाजन

1. **लँहदा -** 'लँहदा' शब्द का अर्थ है, उतरता' या जलता हुआ। यह पश्चिम का संकेतक है क्योंकि सूर्य पश्चिम में ढलता है । पंजाब के पश्चिमी (वर्तमान पाकिस्तान) क्षेत्र में बोली जाने के कारण इसका नाम लहँदा पड़ा । इसे पश्चिमी पंजाबी भी कहा जाता है । इसका परिनिष्ठित रूप शाहपुर जिले में मिलता है । डेरा गाजी खाँ की मुल्लानी इसकी मुख्य उपभाषाएँ है । पोहवारी अवाणकारी पुछी, चिमाली आदि इसकी बोलियाँ हैं । कुछ विद्वान पंजाबी से समानता के कारण इसे पंजाबी की उपभाषा स्वीकार करते हैं पर यह स्वतंत्र भाषा है । इस भाषा पर सिंधी और कश्मीरी का भी पर्याप्त प्रभाव है । लहँदा में अरबी फारसी के शब्दों की बहुतायत है । बलात्मक स्वराघात तथा उच्चावरों ही सुर औच्चारणिक वैशिष्ट्य हैं । सिंधी की तरह क्रिया में सार्वनामिक प्रत्ययों का प्रयोग होता है । इसकी लिपि, फारसी भी है, गुरूमुखी भी । गुरूनानक, संत फरीद, वारिसशाह की रचनाएँ लहँदा में ही है इसमें 14 वीं शती से साहित्य मिलने लगता है । उदाहरण- 'हिक्क जणे दे दे पुत्तर आहे ।.... .... उस बेले उसद बड्डा पुत्तर जिम्मी चे आहा । मैं उठके अपणे पिड कोल वैंदाँ ते उसनूँ आखसाँ ।

2. **सिंधी -** सिंध प्रदेश की भाषा सिंधी है । इसका विकास ब्राचड अपभ्रंश से हुआ मान्य है । 'सिंध का संबंध संस्कृत 'सिंधु' शब्द से है, जिससे हिन्द हिन्दू हिन्दी शब्द बने । विभाजन के पूर्व यह मुख्य रूप से सिध प्रदेश की भाषा की परंतु आज यह क्षेत्र पाकिस्तान का अंग है । विभाजन के पश्चात इस जाति के कोण भारत के विभिन्न भागों मैं आकर बस गये और उन्होंने अपने साथ इस भाषा को भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैलाया । परन्तु यह भाषा केवल जाति विशेष से जुड़कर उनके घरों की भाषा रह गयी । न तो उसका साहित्य विकसित हुआ और न तो दूसरी जाति के संपर्क का माध्यम ही वह बन पायी । इसकी छः उपभाषाएं मानी जाती है - सिदाकी विचोली, लाडी, थरेली लासी और कच्छी । विचोली इसकी परिनिष्ठित उपभाषा हैं । अंत: स्फोटक (Implosive) ध्वनियाँ (ब्, ज्, ड्, ग) सिंधी की ध्वन्यात्मक संरचना की मुख्य विशेषता है ।

   सभी शब्द स्वरांत है । प्राकृत तथा अपभ्रंश के प्रभाव के कारण इसकी पुल्लिंग संइग़एँ अकारांत तथा ओकारांत हैं । लिंग और वचन दो हैं । सर्वनाम में हिदीं से भिन्नता है । 'मैं' केलिए 'माँ', आऊँ, तथा अपने के लिए पँहाजे' का प्रयोग होता है । अवधी की भाँति क्रिया के साथ सार्वनामिक प्रत्यय का प्रयोग होता है । यथा- मारि आइनि =उसने मुझको मारा । संज्ञा में भी ऐसे प्रयोग हैं- 'भाई'=उसका भाई, पुटडॅ= हमारा बेटा ।

   सिंधी में अरबी फारसी के बहुत से शब्द है । पहले अरबी की ही एक लिपि का प्रयोग सिंधी के लेखन हेतु होता था कितु देवनागरी, गुरूमुखी लिपि में भी लिखी जा रही है । इसके प्रमुख कवि हैं - शाह अब्दुल लतीफ सचल, सामी, दलपत वेवसि अजीज । कलीच बेग, भेरूमल, लालचन्द, अमर डिनोमल जेठामल इसके उल्लेख गद्य लेखक है । सिंधी सूफियों के दोहे प्रसिद्ध है ।

उदाहरण - हेकिड माण्हु खे, व पुट हुआ।............ तड्ढण उन्हें जो वड्डो पुट मनि में ही ।

3. **पंजाबी** - यह पूर्वी पंजाब (भारत) तथा पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) की भाषा है । इस क्षेत्र में पाँच नदियाँ- रावी, सतलज, व्यास, चेनाब और झेलम है । इसीलिए पंजाब कहा जाता है - पंच (पाँच), आव (नदियाँ) । इसकी डोगरी आदि कुछ उपभाषाएँ जम्मु क्षेत्र तक फैली है । माझी, डोगरी, मालबाई पोबाधी, राठी, मट्टियानी इसकी प्रमुख बोलियाँ है । पंजाबी की लिपि गुरूमुखी तथा डोगरी की टाकरी है । पंजाबी बोलने वाले सिक्सों की प्रधानता के कारण इसे 'सिक्खी' भी कहा जाता है । इस भाषा का निखरा रूप अमृतसर के आसपास मिलता है । 13 वीं शती से इसका साहित्य मिलता है । गुरूनानक, एवं गुरूओं तथा संतों की वाणी का संग्रह 'गुरू ग्रंथ साहिब' पंजाबी का प्रसिद्ध एवं प्राचीन धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथ हैं । पंजाबी की लोक साहित्य परंपरा पर्याप्त समृद्ध है । नानक, वारिसशाह, मोहनसिंह, अमृता प्रीतम इसके प्रमुख साहित्यकार है ।

संयुक्त स्वरों को स्वर भक्ति लगाकर बोलने की प्रवृत्ति पंजाबी की प्रमुख विशेषता है - स्टेशन - सटेशन, मित्र - मित्तर । द्वित्त्व शब्दों का भी प्रयोग मिलता है - सत्त, अट्ट, अक्स, पुत्तर । स्त्रीलिंग बहुवचन में संज्ञा के साथ आँ (दाती, रायणाँ) का प्रयोग होता है । तिर्यक बहुवचन के साथ यह प्रवृत्ति स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में भी दिखाई देती है - घरॉ, जुआँ । हिन्दी में इस स्थिति में ओ का प्रयोग होता है । पंजाबी के कई परसर्ग हिन्दी से भिन्नता दर्शाते हैं । यथा-हिन्दी कर्म तथा करण में क्रमश: को, से प्रयुक्त होता है जबकि पंजाबी में क्रमश: नूँ थों का । हिन्दी संबंध-का, के, की पंजाबी में क्रमश: दा, दे, दी हो गए हैं । पंजाबी स्त्रीलिंग विशेषणों का आवश्यकतानुसार वचन परिवर्तित हो जाता है । सर्वनाम रचना भी हिन्दी से अलग है । यथा हिन्दी हम, तुम, तुम्हारा, पंजाबी में क्रमशः-अस्सी, तुस्सी, असाड़ा तुसाड़ा । हिन्दी का वर्तमानकालिक कृदंत रूप-ता, ते, ती पंजाबी में क्रमश: दा, दे, दी हो जाता है । स्त्रीलिंग सूचक क्रिया को बहुवचन बनाने के लिए पंजाबी में मुख्य तथा सहायक क्रिया दोनों में परिवर्तित किया जाता है । जबकि हिन्दी में केवल सहायक क्रिया प्रभावित होती है यथा-करती थीककरदीयाँ सन ।

4. **गुजराती** : गुजरात की भाषा होने के कारण इसे गुजराती नाम से अभिहित किया गया । गुजरात क्षेत्र में 'गुर्जर जाति का प्रभुत्व था । गुर्जर से ही गुजरात और इससे गुजराती बना । पहले तो यह महाराष्ट्र गुजरात के सम्मिलित रूप बाचई की भाषा थी, वाद में महाराष्ट्र और गुजरात के रूप में बम्बई के विभाजन के पश्चात गुजरात के राजकाज की भाषा बनी । यही कारण है कि मुंबई या महाराष्ट्र में गुजराती बोलने वालों की पर्याप्त संख्या है । इसकी प्रमुख उपभाषाएँ है- कालवाडी, सोरठी, गोहिलावाड़ी एवं काठियावाड़ी । किंतु इनमें विभेद अधिक नहीं है । अहमदाबाद के आसपास की गुजराती

परिनिष्ठत एवं साहित्यिक गुजराती है । नागरी, बम्बईयाँ, गासडिया ,सुरती, अनावला पाटीदारी बडोदरी, पट्टनी, काठियावाड़ी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं ।

12 वीं शती के आसपास से गुजराती साहित्य मिलना प्रारंभ होता है । हेमचन्द के व्याकरण में भी प्राचीन गुजराती के उदाहरण मिलते हैं । नरसी मेहता, प्रेमानंद, सामल भट्ट, रेवाशंकर आदि गुजराती के प्राचीन साहित्यकार हैं गोवर्धनराम त्रिपाठी, नानालाल, उमाशंकर माणिक लालमुंशी रमणलाल देसाई, काका कालेलकर, उमाशंकर जोशी, आदि प्रमुख आधुनिक साहित्यकार हैं । गुजराती की अपनी लिपि है, जो देवनागरी से पर्याप्त समानता रखती है । यह लिपि कैथी लिपि से भी मिलती जुलती है ।

नागर अपभ्रंश से विकसित गुजराती में हिन्दी के समान ही मध्यकालीन भाषा के संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर पूर्व स्वर भी क्षतिपूर्ति के लिए दीर्घीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है- पृष्ठ-धीठा । बोलचाल में क्, ख,

ग ध्वनियाँ च्, छ्, ज् में बदल जाती है । यथा-लाग्यो-लाज्यो । सू-ह (सूरज-हूरज) । दंत्य और मर्धन्य ध्वनियाँ आपस में बदल जाती हैं । यथा-दीढ़ो-डीढ़ो । वचन दो और लिंग तीन हैं । हिन्दी परसर्ग 'का', 'के', 'की' और 'लिए' गुजराती में क्रमशः 'नौ', 'तो', 'नी' और 'मारे' रूप में मिलते हैं । सर्वनामों में हिन्दी और गुजराती में पर्याप्त समानता है । यथा-हिन्दी-हूँ (मैं), गुजराती-आम, अमें (हम), हिन्दी-तूँ (तू, गुजराती-तमे, ते (वह) आदि । वर्तमान सहायक क्रिया के रूप में हूँ छे और भूत सहायक क्रिया में हतो हती का प्रयोग होता है ।

5. **मराठी :** मराठी वर्तमान महाराष्ट्र प्रांत की भाषा है । इसमें विदर्भ, मराठवाड़ा, कोंकण आदि प्रदेश आ जाते हैं । बम्बई, पूना और नागपुर मराठी के प्रसिद्ध केन्द्र हैं । यधपि मराठी की कई बोलियाँ हैं. किंतु पूना के पास बोली जाने वाली मराठी परिनिष्ठित मराठी है । कोकड़ी बोली द्रविड़ भाषाओं से प्रभावित है, जो कोंकड़ में बोली जाती है । मराठी की मूल लिपि, 'मोड़ी' है, जिसका प्रयोग कम पढ़े लिखे लोगों द्वारा आज भी दैनिक कार्यो से होता है परंतु साहित्य और वर्तमान में राजकाज में प्रयुक्त मराठी के लेखन हेतु देवनागरी लिपि ही मान्य है ।

मराठी का विकास महाराष्ट्री प्राकृत से मान्य है, किंतु यह मान्यता विवादास्पद है । वस्तुतः महाराष्ट्री प्राकृत शौरसेनी की परवर्त्ती मध्यक्षेत्र की परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा थी । यह दक्षिण से होकर उत्तरी क्षेत्र में आई ।

मराठी के अभिलेख 9 वीं - 10 वीं शताब्दी से मिलते हैं और साहित्य 12 वीं शती उत्तरार्द्ध से उपलब्ध है । मुकुन्द राय इसके आदि कवि हैं । नामदेव एवं ज्ञानदेव इसके प्रसिद्ध प्राचीनकालीन साहित्यकार हैं । इसके पश्चात तुकाराम, रामदास, श्रीधर, एकनाथ, राम जोशी जैसे साहित्यकार हुए हैं । आधुनिक कालीन रचनाकारों में अत्रे, खण्डेकर, फड़के, हरिनारायण आप्टे एवं विजय तेदुलकर आदि प्रसिद्ध है । दलित साहित्य का जन्म ही मराठी में हुआ । ज्योतिबा फुले, दया पंवार, शरण कुमार लिम्बाले, शांताबाई

काम्बले, बेबी काम्बले, कुमुद पावण आदि ने इसे समृद्ध किया । आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं, नाटक, कविता, समीक्षा, कहानी, आत्मकथा आदि का पर्याप्त विकास मराठी में हुआ जिसका प्रभाव अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं पर भी पड़ा ।

मराठी एवं गुजराती की संरचना में पर्याप्त समानता है । मराठी में तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तद् च द्रविड़ एवं फारसी शब्दों की संख्या भी पर्याप्त है । क्' ध्वनि मराठी में सुरक्षित है । ग-स, ण हो गया । इसमें दो वचन और तीन लिंग का विधान हैं । हिन्दी और मराठी के परसर्गो में विषमता लक्षित होती है । यथा - करण-ने शी, संप्रदान लाद ते, अपादान - अन न् इन । सर्वनाम रूपों में भी भिन्नता विद्‌यमान है । यथा हिन्दी - मैं, हम, मुझ, तुम, वह मराठी में क्रमश: मी, अम्हि मज, तू तो, हो मं बदल जाते हैं । हिन्दी की भाँति मराठी में भी वर्तमान कालिक ट और भूतकालिक क्रिया का - ल रूप मिल जाता है । क्रियार्थक संज्ञा एकरांत है जबकि हिन्दी में अकारांत है- करना-करणें ।

6. **बंगला** - बंगला' मागधी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से विकसित है । बंगला अविभाजित बंगाल की भाषा है । इसके दो रूप हैं - (1) पूर्वी और (2) पश्चिमी । पूर्वी का केन्द्र ढाका है जो बांग्लादेश की राजधानी है और पश्चिमी का कलकत्ता । बंगला के मौखिक और लिखित रूपों में ही नहीं नागर और ग्रामीण रूपों में भी अंतर पाया जाता है । यह प्राचीन देवनागरी से विकसित बंगला लिपि में लिखी जाती है । साहित्य- समृद्धि की दृष्टि से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में बंगला महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है । पश्चिमी साहित्य के संपर्क में सबसे पहले बंगला भाषा ही आई, फलस्वरूप अनेक नवीन साहित्यिक विधाओं का बंगला से ही हुआ । और बंगला से होकर अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में उनका विकास हुआ । भक्त - कवि चंडीदास एवं चैतन्य महाप्रभु बंगला के प्राचीन साहित्यकार हैं । आधुनिक काल के प्रसिद्ध साहित्यकारों में राजा राममोहन राय, माइकेल मधुसुदन, ईश्वरचन्द्र विद्‌यासागर, बंकिमचन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विजेन्द्रलाल राय, शरतचन्द्र, तारा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी बंगला साहित्य का प्रारंभ 950 ई. से मानते हैं ।

साहित्यिक बंगला संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी पड़ी है । बंगला में अ-ओ (जल-जोल, कवि-कोवि), आ-ओ (मलो-मालो), व-ब (एक-वक), य-ज (यड़ा-जड़ा, योग-जोग), स-श (सखर- शखर) हो जाता है ।

संयुक्त व्यंजनों का तद्भवीकरण हुआ है - विद्‌या - विज्जा, परीक्षा - पोरिक्सा । इस संदर्भ में उल्लेख है कि यह पालि और प्राकृत की प्रकृति के आत्मसात किए प्रतीत होती है ।

क्रिया में लिंग परिवर्तन नहीं होता है- हिन्दी मैं चलूँगी के लिए बंगला में आमि चालिबो । वचन दो हैं । बंगला हिन्दी की अपेक्षा अधिक योगात्मक भाषा है । अवधी सदृश विशेषण आकारांत है । किंतु उच्चारणगत भिन्नता उनमें दूरी का बोध कराती है । भूत का लिंक क्रिया का - 'ल', रूप भोजपुरी तथा भविष्य - च रूप एवं वर्तमान - त' रूप

अवधी से समानता रखता है । किंतु वाक्यात्मक संरचना में क्रिया संरचना भोजपुरी और अवधी से भिन्न है ।

7. **असमी :** 'असमी' (असमिया) असम प्रदेश की भाषा है । यह मागधी प्राकृत के पूर्व रूप से विकसित हुई हैं । यही कारण है कि यह बंगला से पर्याप्त समानता रखती है । किंतु संरचनात्मक दृष्टि से 'असमिया बंगला से पर्याप्त भिन्न है । सच यह है कि असम में भी बंगला साहित्य का बहुत दिनों तक प्रभुत्व रहा, इसका परिणाम यह हुआ कि असमी साहित्य का विकास अवरूद्ध हुआ । इसलिए असमी अधिक उल्लेखनीय साहित्य का अभाव है । इधर सांस्कृतिक चेतना और जनजागृति के परिणाम स्वरूप असम में असमी के प्रचार-प्रसार के लिए आन्दोलन ने जोर पकड़ा । फलस्वरूप नव लेखन का प्रचार-प्रसार बढ़ा । साहित्य की भाँति इसका भाषागत अध्ययन भी सीमित है । अतएव उसकी बोलियों का उल्लेख कठिन हैं । असमी पर चीनी, तिब्बती, परिवार कुछ भाषाओं का भी प्रभाव है । 13 वीं शती से असमी का साहित्य मिलने लगता है । हेम सरस्वती को असमी का कवि माना जाता है । असमी के गद्य तथा सुव्यवस्थित इतिहास की परंपरा काफी पुरानी है । असमी की अपनी लिपि है । किंतु व बंगला से बहुत मेल खाती है । वीरेन्द्र भट्टाचार्य तथा इंदिरा गोस्वामी असमी के आधुनिक उल्लेखनीय रचनाकार हैं ।

असमी में 'च्', 'छ्' के स्थान पर 'ष्', और 'स्' के स्थान 'ह', अथवा 'ख', हो जाता है । य-ज और व-ब् का परिवर्तन हिन्दी और बंगला के समान है । ड़, ढ़, र, रह् के रूप में उच्चरित होता है । कर्म-क, करण-ए, ऐर, संप्रदान-लै, लैके, संबंध-अर, ओर, अधिकरण-अत, अते असमी के परसर्ग है । क्रिया के साथ लिंग और वचन का भेद असमी में नदारत है । सभी के लिए एकरूपता है । यथा- तुमि या तो मालो के खइशा (जू खाता, तुम खाते हो, तुम खाती हो के लिए) प्रयुक्त होता है । भूतकालिक क्रिया का ल रूप और भविष्यकालिक 'व' रूप बंगला के समान हैं ।

8. **उड़िया :** उड़ीसाप्राप्त की भाषा उड़िया है । मागधी के दक्षिणी रूप से विकसित उड़िया, बंगला भाषा के काफी निकट है । इसका कारण यह है कि कभी यह क्षेत्र बंगालियों से बहुत अधिक प्रभावित था । पुराने शिलालेख ही उड़िया के प्राचीन रूप के परिचायक है । उड़िया भाषा की सीमाएँ द्रविड़ (तमिल) एवं मराठी भाषा की सीमा से जुड़ी होने के कारण इसमें तमिल एवं मराठी के पर्याप्त शब्द हैं । यह प्रसिद्ध है कि कलिंग शासक खारवेल द्रविड़ भाषा-भाषी था । अशोक के आक्रमण के पश्चात् इस क्षेत्र की भाषा ने पुन: अपने मूलरूप को प्राप्त किया ।

यदपि उड़िया में स्थानीय भाषागत भेद विद्यमान है तथापि उड़िया की बोलियों का स्पष्ट रूप परिलक्षित नहीं होता । वैसे इसका एक कारण है इस भाषा का भाषा वैइग़निक-अध्ययन का अभाव । इस स्थिति में इसकी उपबोलियों का उल्लेख कर पाना कठिन हैं । उड़िया का प्राचीन साहित्य मुख्य रूप से कृष्ण भक्ति का साहित्य है । बलरामदास, जगन्नाथ, पं चसखा, दीनकृष्ण, गोपालकृष्ण आदि मध्यकाल के प्रख्यात

कवि है । फकीर मोहन गंगाधर, गोपालचन्द्र नंदकिशोर, कुंतनकुमारी नीलकण्ठदास, आधुनिक कवि हैं । गोपीनाथ महन्ति एवं दीप्तिरंजन पटनायक गद्य के लेखक हैं । इसकी एक स्वतंत्र लिपि है, जो प्राचीन देवनागरी एवं बंगला के अत्यंत निकट है ।

उड़िया में हिन्दी की ही भाँति य्, व्, क्रमश: ज्, ब् में परिवर्तित हो गया । श, ष् का उच्चारण स् जैसा है । यही प्रवृत्ति बंगला और हिन्दी की भी है । यह मराठी रूप हो गया । मन, लोक, गण बहुवचन सूचक शब्द है, जिनका प्रयोग बहुवचन रूप निर्मित में होता है । पूर्वी हिन्दी के समान संज्ञा के साथ इवा तथा उवा प्रत्ययों का प्रयोग होता. है । कर्म एवं संप्रदान कु, अपादान में रू, संबंध में न, अधिकरण में 'र्' विशिष्ट पर सर्गीय प्रयोग है । सर्वनामों की रूप रचना सरल है । भूतकाल में 'ल' भविष्य में 'ब' वर्तमान में इड का प्रयोग होता है । यथा-करिलि करिबी, करई ।

9. **नेपाली :** यह पहाड़ी का पूर्वी रूप है । वस्तुत: यह नेपाल की राजभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है । थरूहरी और डोटाल इसकी दो प्रमुख बोलियाँ हैं । इसके उच्चारण में आनुनासिकता अधिक है । लिंग भेद की विचित्रता के लिए यह प्रसिद्ध है । स्त्रियों के लिए स्त्रीलिंग शेष केलिए पुल्लिंग का व्यवहार होता है । बहुवचन बनाने के लिए हरू शब्द का योग होता है । पुल्लिंग एकवचन ओकरात तथा बहुवचन आकारांत होता है । कर्ता में - ले, कर्म एवं संप्रदान में - ताई, करण अपादान में वार, संबंध में-को, का, की और अधिकरण में मा, माँ परसर्गीय प्रयोग प्रसिद्ध हैं । सर्वनाम में स (मै), तं (छ, तिमि आयु (स्वयं) उल्लेख है । 'ल' भविष्य का सूचक है, जबकि पूर्वी भाषाओं में यह भूतकालिक क्रिया का सूचक है ।

10. **सिंघली** : इस भाषा का प्रमुख क्षेत्र दक्षिणी लंका है । यह ज्ञात तो नहीं कि भारत के किस क्षेत्र के लोग पाँचवी सदी ईसा पूर्व विजय राजा के साथ लंका पहुँचे पर कुछ भारतीय अवश्य गए और यहीं के बनकर रह गये । इन्हीं के साथ यह भाषा लंका गयी।

11. **मैथिली :** संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हिन्दी की बोली मैथिली भारतीय आर्य भाषाओं में एक प्रमुख भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है । इस भाषा की कुछ विशेषताएँ निम्नोक्त हैं-

बिहारी हिन्दी की बोलियों में एकमात्र साहित्य संपन्न भाषा है मैथिली । विद्यापति की पदावली मैथिली की कालजयी रचना है । इस भाषा में आज श्रेष्ठ साहित्य रचा जा रहा है । मैथिली पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

मैथिली की अधिकतर ध्वनियाँ भोजपुरी से मिलती हैं लेकिन कहीं कही अ भी ओ की तरह उच्चरित होता है जैसे बोबन (वन) इ तथा उ अति हस्व रूप में उच्चरित होते हैं । P और ओ के भी हस्व तथा दीर्घ दो दो रूप मिलते हैं । शब्द के बीच में आई श प और स ध्वनियाँ ह में बदल जाती है जैसे पुष्य से पुहुप, मास्टर से महाटर ।

संज्ञा शब्दों के 'वा' तथा 'उवा' प्रत्यय लगाने की प्रवृत्ति मिलती है जैसा बेटा से बेटवा, छोरा से छोरवा आदि इकारानत संज्ञाओं में भी इया - और ईवा प्रत्यय लगते हैं जैसे धोबी, धोबिया-धोबिवा आदि ।

अन प्रत्यय लगा कर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है- बात से वातन, लागे से लागन आदि । परसर्गो में कर्म का 'के' करण और अपादान के सो, संबंध के 'कर' फेर तथा अधिकरण के 'मे' भोजपुरी से मिलते है । केवल अधिकरण का 'मो' मिला है ।

सर्वनामों में तो (तू तोहनी(तुम), तोरा (तुम्हारा), ओ(वह) जोड़ा जाता है । सर्वनामों के कुछ रूप काफी भिन्न है जैसे मोरा, तुकरा हुनका । छै (है), छिएनी (हो), छी, हू छतीनी मानक हिन्दी से काफी दूर हैं, कियाकलापो में जटिलता भी है । सामान्य भू ऊ' लगाकर बनता है तथा भविष्यत काल राई' ओर उमहर लगाकर बनता है । अव्ययों में अनूठाम(यहाँ) ओष्ठाम (वहाँ), इमहर-उमहर(इधर-उधर), और विशेप्ल उल्लेखनीय है ।

12. हिन्दी और उसकी उपभाषाएँ : हिन्दी कहीं एक स्थल की भाषा नहीं, वह एक मण्डल की उपभाषाओं, बोलियों से प्रसूत है । इस मण्डल के अंतर्गत, पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी के दोनों रूपों के अतिरिक्त राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी बोलियों के क्षेत्र में आते हैं । पंजाबी भी इस क्षेत्र का अंग है, फलस्वरूप पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में बिहार, उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट तक हिन्दी का फैलाव है । और इन सब क्षेत्रों की उपभाषाओं, बोलियों के सम्मिलित रूप एवं विकसित रूप का नाम हिन्दी है, ठीक वैसे जैसे अपभ्रंश, प्राकृत और पालि (यह इसलिए भी, क्योंकि आज भी हिन्दी इन क्षेत्रों में बोधगम्य है, और भाषिक प्रयोग का माध्यम है । स्थानीय ध्वन्यात्मक भिन्नता भले हो । एक बात और, आज राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के रूप में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के क्षेत्र में ही नहीं समूचे देश में यह संपर्क भाषा रूप में सक्रिय है ।

हिन्दी कें नामकरण के संदर्भ में यह मत पूर्णतया मान्य नहीं कि यह नाम मुसलमानों द्वारा फारसी में स-ह होने के कारण सिंधु - हिन्दु या हिन्द बनने के कारण दिया गया । स-ह परिवर्तन पालि काल में भी हुआ है, प्राकृत में भी यह परिवर्तन दृश्य है । अपभ्रंश की तो बात ही नहीं है ।

हिन्दी का विकास अपभ्रंश के अवसान के साथ ही प्रारंभ हुआ । यहाँ तक कि अपभ्रंश के परवर्ती स्वरूप अवरूद्ध को पुरानी हिन्दी कहा गया ।

हिन्दी प्रदेश पर्याप्त विस्तृत है । आधुनिक भाषाओं के विकास के पूर्व इस प्रदेश में प्रमुखतः पाँच प्राकृतें थी । उपनागर अपभ्रंश से राजस्थानी, शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी, अर्धमागधी से पूर्वी हिन्दी, मागधी से बिहारी, हिन्दी, खस से पहाडी हिन्दी का विकास हुआ । इस प्रकार हिन्दी की पाँच उपभाषाएँ हुई - (1) राजस्थानी हिन्दी (2) पश्चिमी हिन्दी (3) पूर्वी हिन्दी (4) बिहारी हिन्दी (5) पहाडी हिन्दी ।

इन उपभाषाओं की अपनी खास साहित्यिक परंपरा है । इनकी बोलियाँ और उप बोलियाँ हैं । इनमें से किसी एक की कोई बोली साहित्यिक स्तर को प्राप्त करके समूचे मध्य देश की साहित्यिक भाषा बनती रही । राजस्थानी की डिंगल भाषा, पश्चिमी हिन्दी की वजभाषा, पूर्वी हिन्दी की अवधी और पुन: पश्चिमी हिन्दी की खडी बोली को क्रमश: यह गौरव प्राप्त हुआ । इन भाषाओं का विस्तार समय-समय पर मध्यदेश के बाहर संपूर्ण भारत में भी होता रहा ।

(क) राजस्थानी हिन्दी - राजस्थान प्रदेश की भाषा का नाम राजस्थानी है । इसके अतिरिक्त सिंध और ' मध्यप्रदेश के भी कुछ भागों में यह बोली जाती है । ग्रियर्सन ने राजक्यान के भाषा रूपों के लिए इसे एक सामूहिक नाम के रूप में प्रयुक्त किया है । राजस्थानी का प्राचीन रूप डिंगल व्यापक रूप से साहित्यिक व्यवहार की भाषा थी । रासो ग्रंथो, ढोला मारू रा दूहा, किसन रूक्मिणी री बेलि आदि में इसी भाषा का प्रयोग हुआ है । राजस्थानी कवयित्री मीरा, संत कवि दादूदयाल, चरणदास, हरिदास आदि की वाणियाँ प्रसिद्ध हैं । राजस्थानी में गद्य की परंपरा मिलती हैं । राजस्थानी की अनेक बोलियाँ और उप बोलियाँ हैं जिनमें प्रमुख हैं- मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी ।

मारवाड़ी का क्षेत्र जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, मेवाड़, सिरोही, पालनपुर, जैसलमेर, अमरकोट, बीकानेर, जयपुर तक फैला है । विशुद्ध मारवाड़ी जोधपुर तथा उसके आसपास की बोली है । जयपुरी जयपुर नगर की बोली है । बूँदी और कोटा में भी इस बोली से सम्बद्ध उपबोली प्रचलित है । जयपुरी का ही दूसरा नाम द्वॉडी है । मेवाती-मेओ जाति से संबंधित स्थान मेवाती और बोली मेवाती कहलायी । यह अलवर, भरतपुर के उत्तरी पश्चिमी भाग तथा गुडगाँव प्रांत की बोली है । शुद्ध मालवी का क्षेत्र उज्जैन, इन्दौर और देवास है ।

विशेषताएँ -

(1) इस उपभाषा में टवर्गीय ध्वनियों की प्रधानता है ।

(2) स्वर के साथ और अंत में ल ध्वनि प्राय: क ध्वनि में बदल जाती है ।

(3) ऋ और स लेखन में प्रचलित हैं किंतु औच्चारणिक विशुद्धता सुरक्षित नहीं है ।

(4) ण, ड का प्रयोग अधिक होता है ।

(5) उत्तरी पश्चिमी तथा दक्षिणी क्षेत्र की बोलियों में च का स्, ज् का ज़ और झ का ज्य, स् का ह उच्चारण किया जाता है ।

(6) महाप्राणी करण से कंत से कैथ, अल्पप्राणीकरण समाधि से समादि के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

(7) एकवचन से बहुवचन बनने के लिए सामान्य हिन्दी ओं के स्थान पर आँ का प्रयोग सर्वाधिक प्रचलित है- खेत-खेती, रात-राती ।

(8) ओकारांत एकवचन को बहुवचन बनने के लिए आकारांत कर दिया जाता है । यथा तारों-तारा, घोड़ो-घोड़ा ।

(9) राजस्थानी में सयोगात्मकता के तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक हैं ।

(10) हिन्दी की ही भांति इसमें 'भी परसर्ग प्रयुक्त होते है । कर्त्ता ने (मालवी तथा मेवाती में प्रयुक्त) कर्म-को, कूँ ने, ने, ना, रैताई, रहई, प्रति; करण, ती, ते, थी, से-हंत, नइ, करि ऊँ, सम्प्रदान-कूँ को, ने में काजि बेइ मोट, अपादान - ताइ, सड, थड, हुत, पासर, संबंध- रा, ३, री, का की, के, केर, केरा-अधिकरण-में, मधि माह, पर उपरि, सिरि आदि परसर्गो का प्रयोग होता है । इनमें से अधिकांश शुद्ध हिन्दी में यथावत प्रयुक्त होते हैं । सर्वनामों का प्ररूप हिन्दी के समान ही है किंतु परसर्गो की विविधता उन्हें विविध रूप में ढाल देती है । यथा - कर्म में मैं का बहुवचन म्हांन, करण में म्हांती, संप्रदान में म्हांजे, अयादान म्हांती, संबंध अम्हीणी विशिष्ट प्रतीत होते हैं । वर्तमान सहायक क्रिया-हूँ भूत-थयो, हुईभविष्य-स अथवा ल रूप हैं- देखसी, बूड़ेला ।

(ख) पश्चिमी हिन्दी - इस उपभाषा का क्षेत्र पश्चिमी में पंजाबी और राजस्थानी की सीमा से आरंभ होकर पूर्व में अवधी, बघेली की सीमा, उत्तर में पहाडी, दक्षिण में मराठी की सीमा तक विस्तृत है । इसकी पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं - खड़ी, बाँगरू, ब्रज, कन्नौजी और बूदेली ।

बम्बई, मद्रास, हैदराबाद के मुसलमान घरों में प्रयुक्त दक्यिनी हिन्दी इसी उपभाषा वर्ग की है । इस प्रकार छः बोलियों में तीन-खडी, बाँगरू और दक्यिनी आकार बहुला तथा अन्य-ब्रज, कन्नौजी,

बूदेली बोलियां हैं । इनमें खड़ी और ब्रज ही प्रमुख है शेष इन्हीं बोलियों की उपबोलियाँ है ।

विशेषताएँ -

(1) पश्चिमी हिन्दी में अ विवृत्त ध्वनि है ।

(2) ऐ, औ मूल स्वर हैं ।

(3) य, व का उच्चारण सुरक्षित है ।

(4) ण, श का भी स्पष्ट उच्चारण किया जाता है ।

(5) कुछेक बोलियों में ल ध्वनि भी मिलती है ।

(6) आकार बहुला बोलियों में 'ड' की तुलना में तु, न की तुलना में ण, ओकार बहुला बोलियों में ण, ड, श की तुलना में क्रमशः न, र, स अधिक बोला जाता है ।

(7) उच्चारण में महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण हो जाती हैं । '

आकरांत तथा ओकारांत पुल्लिंग शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करते समय एकारांत कर दिया जाता है । बहुवचन में आ को ओ तथा ओ को अस कर दिया जाता है ।

पश्चिमी हिन्दी के परसर्ग हैं - कर्त्ता - ने, नें, ने, कर्म-को, कस को, करण-अपादान - तें, सेती, से, सबंध-का,के,की,को अधिकरण - में, मै । पर, तैं । सर्वनाम में - मैं, ही, हमारा, हमारी, म्हारो, तुम, तिहारो आदि उल्लेख्य है ।

वर्तमान सहायक क्रिया है- हैं, ही, हो, भूत- था, थे, हतो, हो आदि, भविष्य- ग, गे, गी रूप जैसे-चलेगा, चलेगा आदि ।

(ग) पूर्वी हिन्दी - इसका क्षेत्र काफी विस्तृत है । कानपुर से मिर्जापुर, लखीमपुर नेपाल सीमा से दुर्ग-बस्तर की सीमा तक पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र फैला हुआ है । अवधी, बघेली, छत्तीसगढी इसकी तीन प्रमुख बोलियाँ है । इन बोलियों में पारस्परिक साम्य अन्य उपभाषा की बोलियों से अधिक है । इन बोलियों में साहित्यिक महत्ता सिर्फ अवधी की है, जो मध्यकाल में साहित्यिक भाषा भी रही है । अवधी की उपस्थिति पालि काल में भी रही है । आज भी इसमें उल्लेखनीय साहित्य सृजित हो रहा है ।

इस उपभाषा में ग् ध्वनि के स्थान पर न्, ल के स्थान पर र तथा श, ष के स्थान पर स् बोला जाता है । य, व को क्रमश ए, उ अथवा ज, ए बोलते हैं । यथा - युवा - जुवा, यश - जस, वकील - उकील । शब्दों के मध्य तथा अंत में ड ध्वनि नहीं आती । ऐ, औ मूल स्वर न होकर संयुक्त स्वर है । ऐ का उच्चारण अइ और औ का उच्चारण अड होता है । यथा - पैसा - पइसा औरत - अडरत् । 'अ' पश्चिमी हिन्दी की अपेक्षा संवृत तथा वृत्ताकार है । पश्चिमी की 'र' बन गयी । तुलना में इ ड का उच्चारण अधिक हस्व है । पश्चिमी हिन्दी की ड, ढ ल ध्वनियाँ पूर्वी में र बन गयी । सूंता शब्दों का एकवचन, तिर्यक एकवचन, सामान्य बहुवचन एक समान रहते हैं । कर्ता कारक में 'ने' परसर्ग का प्रयोग नहीं किया जाता । शेष में परसर्ग है - कर्म - संप्रदान - क का, मैं ह, जू के, को कइ । संप्रदान - कहूयाँ, बरे, बदे, बाढ़े । करण - अपादान - से, से न, सती, सन, लग, भइ, हुत, में, वे । संबंध - के, कर, केर, का, की कारे, अधिकरण - माँ, में, माँहि माँझ, मझारी पर, प, मइहाँ ।

क्रिया की रूप रचना इस उपशाखा में जटिल है । यह जटिलता तिडतीय रूपों के अवशेष तथा सार्वनामिक प्रत्ययों से उत्पन्न होती है । यथा - मैं आता हूँ की इस उपभाषा में आइत-ई बोलते हैं । खात नाहीं (तुम खाते क्यों नहीं), कहिस का अर्थ है- उसने कहीं भविष्य में हू, ब का प्रयोग किया जाता है । अहै, आटे, बाटे आदि वर्तमान सहायक क्रियाएँ हैं ।

(घ) बिहारी हिन्दी - बिहारी हिन्दी का क्षेत्र वर्तमान बिहार प्रांत है । बिहारी की एक प्रमुख बोली भोजपुरी का अधिकांश क्षेत्र पूर्वी उत्तरप्रदेश में पड़ता है । ऐसी स्थिति में बिहारी नाम समीचीन नहीं रह जाता । बिहारी के अंतर्गत दो प्रमुख अन्य बोलियाँ मैथिली और मगही है । इन बोलियों में इतनी विषमता है कि डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी जैसे श्रेष्ठ भाषा वैज्ञानिक इन्हें एक वर्ग में रखना उचित नहीं समझते । मैथिली में साहित्यिक रचनाओं की परंपरा मिलती है ।

बिहारी उपभाषा पूर्वी हिन्दी की भाँति आकार बहुला है, अर्थात् शब्दों का अंत अ से अधिक होता है । पूर्वी हिन्दी में अब 'अ' का उच्चारण प्राय: नहीं किया जाता, इसलिए उच्चारण में शब्द व्यंजनांत होते जा रहे हैं । बिहारी में अ का स्पष्ट उच्चारण होता है,जैसे रामड, कसडला । शेष ध्वनियों में बिहारी और पूर्वी हिन्दी में समरूपता है । पूर्वी हिन्दी की तरह बिहारी में भी संज्ञा के दो-तीन रूप प्रचलित हैं, जैसे सोनार, सोनखा सोनरऊ । तृतीया (करण कारक) में परसर्गो के अलावा विभक्तियतमा भी अवशिष्ट है, जैसे- रघुएँ (रघु से) ।

पूर्वी हिन्दी की ही भाँति कर्ता का परसर्ग 'ने' यहाँ भी अनुपस्थित है । अन्य परसर्ग हैं- कर्म- संप्रदान-के, कें, लाग, वास्ते, लेल, खातिर, करण अपादान-से, सें, सज, सेती, सती, करते,

सम्बंध- क के, केर, कैं, केरा. अधिकरण-में, मो, मैं, परि, पर । स्पष्टत: कर्म-संप्रदान को छोड़कर बिहारी हिन्दी के अधिसंख्य परसर्ग, पूर्वी हिन्दी के ही हैं ।

सर्वनामों में तोहनी तोहरनी हमनी, हमरनी, विशिष्ट प्रयोग हैं । पूर्वी हिन्दी में- तोहार, हमार, हमन प्रयुक्त होता है । बहुवचन बनाने के लिए सभ, लोकानि लोगानि लोगन या लोकानि । यह प्रवृत्ति मूलत: अवधी है । मैथिली में सहायक क्रिया- छै, छह, अह, छल, भोजपुरी में बाटे, रहल, मगही में है, हल । मैथिली में आदर अनादर आदि के ध्यान से क्रिया के के अनेक रूप विकसित हो गए ।

पहाडी हिन्दी - पहाड़ी क्षेत्रों की बोली होने के कारण इसे इसे पहाडी हिन्दी कहा गया । नेपाली, कुमायूँनी, तथा गढ़वाली इस क्षेत्र की प्रमुख बोलियाँ हैं । साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से क्रमश: नेपाली तथा गढ़वाली महत्त्वपूर्ण हैं । गढ़वाली और कुमाऊँनी का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन भी हुआ है । कुमाउँनी में भी छिटपुट साहित्य इधर देखने में आ रहा है । प्राचीन काल में यहाँ अनार्य जातियाँ निवास करती थी । किंतु इस क्षेत्र में ऋषियों-मुनियों के साधना केन्द्र स्थापित हो जाने से आर्य भाषाओं का प्रभाव बढ़ता रहा ।

पहाडी ध्वनि व्यवस्था प्राय: हिन्दी के समान है । आ का उच्चारण कहीं कहीं अधिक 'विवृत्त ही । ए, ऐ का उच्चारण तत्सम शब्दों के साथ अइ, अड या आइ, आड करने का प्रयत्न किया जाता है । स्पष्टत: ये दोनों परिवर्तन पूर्वी हिन्दी से प्रभावित हैं । व्यंजन ध्वनियों में क ड, ड, न्ह, म्ह, रह, लह भी प्रयुक्त होते हैं । स्वरों में सानुनासिक स्वरों का आधिक्य है।

पुल्लिंग संज्ञाएँ ओ । आकारांत हैं । बहुवचन न और अँ रूप हैं । स्त्रीलिंग संज्ञाएँ तिर्यक रूप में यथावत बनी रहती है ।

परसर्गो में कर्ता-करण ले, ल कर्म-संप्रदान-कन, कैं, कहँ, कणि, हुयि, अपादान-ऐ, हे, बटे, ले, थैं, थे, सम्बन्ध-को, का, की, कृ, आ, ए, अधिकरण-में, मँ, पर, मो, लो उल्लेखनीय हैं।

भूतक्रिया-छियो, छिया, छिय से संपन्न होती है-मैं गोछियो (मैं गया था) । वर्तमान काल की रचना हिन्दी से अधिक भिन्न है - मैं जानूँ या मैं हिटनूँ (मैं जाता हूँ । भविष्यत में लू रूप चलता है-मैं जला जालै । जालों । क्रिया विशेषणों में इतके (यहाँ), उतके (वहाँ), तल्ली (नीचे), मल्ली (ऊपर) पछिन (पीछे) उल्लेखनीय है ।

18.4 विचार संदर्भ/शब्दावली

1.	वर्चस्व	-	प्रभुत्व, दबदबा
2.	'देसिल बयना	-	'जन बोली' इस शब्द का प्रयोग कवि विद्यापति ने अपनी भाषा मैथिली के लिए किया ।
3.	बोधगम्य	-	सरल, आसानी से समझ में आने लायक
4.	तलहटी	-	तराई
5.	अवशेष	-	बचा हुआ, वह जो बाकी रहे ।

6.	पुत्तर	-	पुत्र, बेटा (पंजाबी भाषा का शब्द)
7.	उदीच्च	-	उत्तरी
8.	प्रतीच्य	-	पश्चिम संबंधी
9.	खेवे	-	पारी
10.	मूर्धन्य ध्वनियाँ	-	मूर्द्धा से उच्चरित होने वाले ध्वनियाँ ट, ल, ड और ढ, ब
11.	अल्पप्राणीकरण	-	कम श्वास प्रयत्न से उच्चारित व्यंजन- अल्प?प्राण कहलाते हैं । महाप्राण व्यंजन के अल्पप्राण उच्चारण को अल्पप्राणी करण कहते हैं जैसे खीला से कीला ।
12.	महाप्राणीकरण	-	व्याकरण के अनुसार कुछ ध्वनियाँ (वर्ण) जिनके उच्चारण में प्राणवायु का विशेष व्यवहार करना पड़ता है महाप्राण कहलाती है, ध्वनि को महाप्राण बनाने की प्रक्रिया है यहाँ जैसे कीला से खीला ।
13.	परसर्ग	-	कारक के चिन्ह
14.	अनुनासिकता	-	मुँह और नाक से उच्चारण करने की प्रक्रिया ।
15.	प्रसूत	-	निकली हुई, बनी हुई ।

18.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं अपभ्रंश के हास, अवहट की शुरूआत से अलग होकर अपना स्वरूप निर्मित करती हैं । अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से विकसित होने के कारण इनमें परस्पर संबद्धता के सूत्र भी मिलते हैं, दूसरी तरफ अलगाव के कारक भी मुखर होते हैं । शब्द संपदा के धरातल पर संस्कृत की तत्सम अपभ्रंश और हिन्दी की तद्भव शब्दावली का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है । हॉ, ध्वन्यात्मक परिवर्तन या संरचनात्मक प्रक्रिया के कारण इनमें अंतर भी दिखाई देता है । लेकिन यह अंतर बोधगम्य और सहज है । यही कारण है कि इस समूचे क्षेत्र में हिन्दी बोधगम्य बनी है ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं की लिपियाँ भी देवनागरी से विकसित है । इनकी संवेदना और संस्कृति एक दूसरे को प्रभावित करती है । फलस्वरूप साहित्यिक धरातल पर यह समानता देखी जा सकती है । एक का साहित्यिक विकास दूसरे को प्रभावित करता है ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का यह अध्ययन भाषा-परिवर्तन की सहज प्रक्रिया और उसके कारणों तथा मानवीय प्रवृत्ति का भी परिचायक है । वस्तुत: भाषा रूप में विभिन्न प्राकृतों से विकसित ये भाषाएँ मानव-समुदाय की भावनाओं वर्चस्व स्थायन, स्वतंत्रता आदि की भी कहानी कहती हैं ।

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा की संकल्पना स्पष्ट करते हुए इनका वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए ।

2. किन्हीं दो आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय देते हुए उनका भाषिक एवं रचनात्मक वैशिष्ट्य रेखांकित कीजिए ।

3. पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी का अंतर स्पष्ट कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. बंगला भाषा की ध्वन्यात्मक विशेषता लिखिए?
2. मैथिली भाषा के सर्वनाम, क्रियापद एवं अव्यय का उल्लेख कीजिए?
3. पूर्वी हिन्दी की क्रिया संरचना स्पष्ट कीजिए?
4. दसवीं सदी के आसपास भाषा में क्या बदलाव परिलक्षित हुआ?
5. डॉ. हरदेव बाहरी ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को कितने वर्गों में बाँटा और किस वर्ग में कौनसी भाषा शामिल की?

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. जयपुरी का ही दूसरा नाम.. है ।
2. .... का प्राचीन साहित्य कृष्ण भक्ति का साहित्य है ।
3. संरचना की दृष्टि से................................... बंगला से काफी भिन्न है । -
4. .... भाषा का प्रमुख क्षेत्र दक्षिणी लंका है ।
5. .... ने सबसे पहले भारत की भाषाओं का अध्ययन किया ।

घ. सही/गलत चिह्नित कीजिए

1. असमिया महाराष्ट्री प्राकृत से विकसित हुई है । सही/गलत
2. साहित्यिक बंगला में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है । सही/गलत
3. मैथिली की क्रिया रूप रचना अत्यंत सरल है । सही/गलत
4. नेपाली पहाड़ी भाषा का पूर्वी रूप है । सही/गलत
5. गुजराती नागर अपभ्रंश से विकसित हुई हैं । सही/गलत
6. बंगला, असमिया और उड़िया का परस्पर साम्य-वैषम्य स्पष्ट कीजिए ।
7. मराठी और गुजराती का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

18.7 संदर्भ ग्रंथ

डॉ. राजमणि शर्मा; हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज दिल्ली

डॉ. हरदेव बाहरी; हिन्दी. उद्भव, विकास और रूप, किताब महल प्रा. लि. इलाहाबाद

डॉ. उदयनारायण तिवारी; हिन्दी भाषा का उद्‌गम और. विकास साहित्य भवन, इलाहाबाद

इकाई-19 हिन्दी का उद्भव तथा विकास - हिन्दी की उपभाषाएँ/बोलियाँ

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 हिन्दी का भौगोलिक विस्तार
19.3 पश्चिमी हिन्दी
19.3.1 खड़ी बोली
19.3.2 ब्रजभाषा
19.3.3 हरियाणवी/हरियाणी
19.3.4 बुन्देलखण्डी
19.3.5 कन्नौजी
19.3.6 दक्खिनी हिन्दी
19.4 पूर्वी हिन्दी
19.4.1 अवधी
19.4.2 बघेली
19.4.3 छत्तीसगढ़ी
19.5 बिहारी हिन्दी
19.5.1 भोजपुरी
19.5.2 मगही
19.6 राजस्थानी हिन्दी
19.6.1 मारवाड़ी
19.6.2 जयपुरी
19.6.3 मेवाती
19.6.4 मालवी
19.7 पहाड़ी हिन्दी
19.7.1 कुमायूँनी
19.7.2 गढ़वाली
19.8 विचार संदर्भ शब्दावली
19.9 सारांश
19.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
19.11 संदर्भ ग्रन्थ

19.0 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप :

- प्रत्येक प्रांत में बदलती हुई हिन्दी की बोलियों का साहित्यिक और व्याकरणिक अध्ययन कर सकेंगे ।
- पड़ौसी प्रांतीय भाषाओं से हिन्दी की विविध बोलियों के प्रभावित होने की प्रक्रिया के विषय में जानेंगे ।
- समय के साथ-साथ हिन्दी की विभिन्न बोलियों के विकास के सोपानों का अध्ययन करेंगे ।

19.1 प्रस्तावना

जिस प्रकार साहित्य भाषा का महत्वपूर्ण परिचायक है ठीक उसी प्रकार इस भाषा की व्याकरणिक विशेषताएँ, विविध रूप और प्रांतीय सीमाओं का अध्ययन भी उसकी महत्वपूर्ण पहचान है । विविध प्रान्तों और प्रदेशों में फैली हिन्दी उसके साहित्य और व्याकरण दोनों को प्रभावित करती है । साथ ही सीमाओं पर बोली जाने वाली हिन्दी का दूसरी आर्य व अनार्य भाषाओं को प्रभावित करना व स्वयं प्रभावित होना भी हमारी राष्ट्रीय एकता का एक महत्वपूर्ण लक्षण है । प्रस्तुत इकाई में हिन्दी की विभिन्न बोलियों, उनके प्रांतीय विस्तार, व्याकरणिक विशेषताएँ, साहित्यिक विकास, ऐतिहासिक व राजनीतिक महत्त्व, अद्यतन परिस्थिति आदि का विर्षद अध्ययन किया गया है । इस अध्ययन के माध्यम से मानक हिन्दी को प्रभावित करने वाली प्रांतीय विशेषताओं के विषय में अध्येता को सटीक ज्ञान हो सकता है । हिन्दी की इन बोलियों का अध्ययन हिन्दी के अध्ययन का महत्वपूर्ण पक्ष है ।

19.2 हिन्दी का भौगोलिक विस्तार

डॉ. दंगल झाल्टे ने अपनी पुस्तक 'प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धांत और प्रयोग' में विश्व के 12 भाषा परिवारों का नामोल्लेख किया है जिनमें भारतीय परिवार की भारतीय आर्यभाषा शाखा से आधुनिक युग(1000ई) आधुनिक आर्य भाषाओं (यथा सिंधी, लहँदा, गुजराती, पंजाबी, हिन्दी, मराठी, बिहारी, असमी, राजस्थानी, उड़िया, बंगला आदि ।) का विकास हुआ ।

1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक भारत. भूखण्ड में वेदिक और लौकिक संस्कृत का प्रसार था जिसे भारतीय आर्य भाषाओं का प्राचीनकाल कहा जाता है । 500 ई. पूर्व से 1 सदी तक पालि और 1 सदी से 500 ई. तक प्राकृत भाषा का विकास हुआ । 500 ई. से 1000 इ तक अपभ्रंश भाषा का विकास हुआ । इसी दौरान अपभ्रंश भाषा की विभिन्न बोलियों का विकास हुआ जिनसे आधुनिक भाषाओं का जन्म हुआ जिसकी सूची निम्नलिखित है -

अपभ्रंश बोलियाँ	उससे निकलने वाली आधुनिक भाषाएँ
1. शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी
2. पैशाची अपभ्रंश	पंजाबी, लहंदा

3.	ब्राचड अपभ्रंश	सिंधी
4.	महाराष्ट्री अपभ्रंश	मराठी
5.	अर्धमागधी अपभ्रंश	पूर्वी हिन्दी
6.	मागधी अपभ्रंश	बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया ।

हिन्दी भाषा के भारत के विर्षाल भू-भाग की भाषा है । विस्तृत तौर पर यह भाषा हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, झारखण्ड, बिहार में बोली जाती है । भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इसे पाँच उपभाषाओं में विभक्त किया जाता है । वे हैं - पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी । प्रत्येक उपभाषा की अपनी बोलियाँ हैं एवं उनकी अपनी पदात्मक और ध्वन्यात्मक विशेषताएँ हैं ।

19.3 पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी का उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश से तथा शौरसेनी अपभ्रंश का विकास शौरसेनी प्राकृत से हुआ है । इसका क्षेत्र वस्तुत: प्राचीन मध्यदेश है अर्थात् पश्चिम से सरस्वती में लेकर प्रयाग तक इसकी सीमा है । बोलचाल की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग, दिल्ली, पंजाब के पूर्वी भाग, पूर्वी राजस्थान, ग्वालियर, बुन्देलखण्ड तथा मध्यप्रदेश के उत्तरी-पश्चिमी भाग में बोली जाती है । पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ निम्नलिखित हैं -

19.3.1 खड़ी बोली

यह कुरू प्रदेश की बोली है । अत: इसका दूसरा नाम कौरवी है । खड़ी बोली प्रमुख रूप से गंगा-जमुना के दोआब वाले क्षेत्र में बोली जाती है । देहरादून के मैदानी क्षेत्र, सहारनपुर, मुजफ्फरपुर, मेरठ, पानीपत, गाजियाबाद, दिल्ली आदि खड़ीबोली का क्षेत्र है । साथ ही बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, हरियाणा के अम्बाला और कुरूक्षेत्र आदि क्षेत्रों तक खड़ी बोली बोली जाती है।

पंजाबी के प्रभाव से खड़ी बोली में द्‌वित्व का प्रयोग जैसे धोत्ती, बेट्टा आदि पाया जाता है । राजस्थानी की तरह णत्व की प्रवृति भी व्यापक है जैसे कौण; (कौन), अपणा (अपना) आदि । श य और स में से केवल दंत्य स' विद्‌यमान है, जैसे सरीफ (शरीफ), सहर (शहर) आदि ।

रूपों में बहुवचन के ओं (बालकों) के स्थान पर ऊँ (बालकूँ) का प्रयोग होता है । परसर्गो (विभक्तियों) में कूँ ('को' के स्थान पर), तें (से के स्थान पर) और पै (पर के स्थान पर) का प्रयोग किया जाता है । राजस्थानी के प्रभाव के कारण सर्वनामों में म्हारा (हमारा), थारा (तुम्हारा) का प्रयोग किया जाता है । क्रिया रूपों में वर्तमानकाल में चलता है, देखता है के साथ चलै, दिखै आदि तिडन्त रूप भी प्रयोग में लाए जाते हैं । कहीं-कहीं पर 'है' सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होती है । अव्ययों में इब (अब), जिव (जब), कद (कब), इधै (इधर), उंधै (उधर), कै (या तो), क्यूँ (क्यों) आदि का प्रयोग देखने को मिलता है ।

लोक-साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली काफी विकसित है । पवाड़ा, नाटक, लोककथा, लोकगीत आदि का समृद्ध साहित्य इस बोली में रचा गया है जिनमें से अधिकांश प्रकाशित रूप में उपलब्ध है ।

19.3.2 ब्रजभाषा

ब्रजभाषा पश्चिमी हिन्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बोली है । इसका क्षेत्र आगरा, मथुरा, बुलन्दशहर, ग्वालियर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, धौलपुर, भरतपुर, गुडगाँव आदि तक है । ब्रज का पुराना अर्थ, 'पशुओं या गायों का समूह अथवा 'चरागाह है । इस क्षेत्र का प्रमुख कार्य पशुपालन होने के कारण कदाचित् इसका नाम ब्रज पड़ा और यहाँ की बोली ब्रजभाषा या बजी कहलाई । इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यरूप से हुआ है । इसकी मुख्य उपबोलियाँ भरतपुरी, डोंगी और माधुरी है । डॉ० ग्रियर्सन ने ब्रज के लिए 'अन्तर्वेदी' नाम का भी प्रयोग किया है क्योंकि वह गंगा-जमुना के बीच के प्रदेश की भाषा है ।

मध्यकाल में अपने साहित्यिक महत्व और व्यापकता के कारण बोली के रूप में उठकर यह भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई । ब्रजभाषा के साहित्य का इतिहास 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अष्टछाप के भक्त कवियों द्वारा गोवर्धन के मंदिर में आयोजित कीर्तनगान से आरंभ होता है । इनमें सूरदास, नंददास, चतुर्भुजदास, कुंभनदास, गोविंददास, छीतस्वामी, कृष्णदास अधिकारी आदि भक्त कवि थे । मीराबाई और तुलसीदास ने भी सहर्ष रूप में ब्रजभाषा का कुछ अंशों में प्रयोग किया । रीतिकालीन प्रमुख कवियों में केशव, रसखान, सेनापति, रहीम, बिहारी, देव, मतिराम,, भूषण, घनानंद, भिखारीदास, पद्माकर आदि ने भी ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में चुना । यहाँ तक कि आधुनिक काल में भी भारतेन्दु युग के अधिकतर महत्वपूर्ण कवियों ने ब्रजभाषा में अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया ।

डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार ध्वनि संबंधी विशेषताओं में ब्रजभाषा पश्चिमी हिन्दी का सही मायने में प्रतिनिधित्व करती है । ब्रजभाषा में ओकर की बहुलता है । खड़ीबोली और मानक हिन्दी की आकारान्त संज्ञाओं, सर्वनाम, विशेषण और क्रियाओं का प्रयोग ब्रजभाषा में ओकारान्त रूप में होता है । उदाहरणार्थ - छोरो (लड़का), बड़ो (बड़ा), आयो (आया) आदि । ब्रजभाषा में अधिकांश ध्वनियाँ मानक हिन्दी से मिलती-जुलती है जैसे ब्रजभाषा के ए-ओ अधिक विवृत्त हैं जो समान स्वर ऐ-ओ के समान सुनाई पड़ते है उदाहरणार्थ करैगो (करेगा), आयौ (आया) आदि । ब्रजभाषा में ड की जगह र, ण के स्थान न का प्रयोग मिलता है श और ष स की तरह बोला जाता है । उदाहरणार्थ - गिर परो, खुस, सरबत बान आदि ।

रूपों में मानक हिन्दी से ब्रजभाषा में काफी भिन्नता है, जैसे संज्ञा शब्दों का स परसर्ग बहुवचन कहीं मानक हिन्दी की तरह ओ लगकर बनता है, जैसे 'घरों में' तो कहीं पूर्वी हिन्दी की तरह 'अन' लगकर उदाहरणार्थ लरिकन कूँ (लड़को को) । स्त्रीलिंग शब्दों में "अन' प्रत्यय का अधिक प्रयोग होता है जैसे गलियन में (गलियों में), सखियन सों (सखियों से) ।

परसगों में कूँ कैं (को), ते, तें (से), माँह माँझ (में), लौं (तक), नाई (की तरह), के काज (के लिए(आदि का प्रयोग किया जाता है । ब्रजभाषा के सर्वनाम खड़ीबोली से भिन्न है ।

उत्तमपुरूष में हौं (मैं), मो (मुझ), हमारो (हमारा), तथा मध्यम पुरूष के तूँ (तू, तैं (तू, तो (तुझ) और तिहारो (तुम्हारा) आदि प्रयुक्त होते हैं । अन्य सर्वनामों में वो (वह), वा (उस), यो (यह), या (इस), कौ (कौन), का (किस), जा (जिस) आदि का प्रयोग मानक?- हिन्दी से भिन्न है ।

क्रिया के रूपों में हुतो (था), हुते (थे), हुती (थी), भयो (हुआ), भये (हुए), भई (हुई) का प्रयोग होता है । क्रियार्थक संज्ञा के देखनो चलनो के साथ देखिबो, चलिबो जैसे रूप मिलते है ।

अव्ययों में इत (यहाँ), उन(वहाँ), जित(जहाँ), कत(कहॉ), जिमि(जैसे), किमि(कैसे), मनहुँ(मानो), अजहुँ(अभी), तेकु(तनिक), जनि(नहीं) आदि का प्रयोग किया जाता है ।

दक्षिणी भरतपुर, करौली तथा पूर्वी-जयपुर की गूज़र जातियाँ भी ब्रजभाषा बोलती है । इनकी ब्रजभाषा में अनेक स्थानीय विशेषताएँ देखने को मिलती है । विशेषकर यहाँ की ब्रजभाषा में राजस्थानी का मिश्रण लक्ष्य किया जा सकता है ।

ब्रजभाषा में कभी-कभी नपुंसक लिंग का भी प्रयोग मिलता है । उत्तर भारत की अधिकांश बोलियों में यह लिंग लुक हो चुका है, पर ब्रजभाषा में इसका प्रयोग इस भाषा की प्राचीनता का द्योतक है । साहित्यिक ब्रजभाषा की अपेक्षा ग्रामीण ब्रजभाषा में नपुंसक लिंग का अधिक प्रयोग देखने को मिलता है उदाहरण्ग़ार्थ सोने' का नपुसंक रूप' 'सोनी' या सोनों ग्रामीण ब्रजभाषा में प्रचलित है ।

ब्रजभाषा में हिन्दी 'आ' प्रत्यय के स्थान पर ओ प्रत्यय का प्रयोग होता है । पूर्व में कन्नौजी के प्रभाव से ब्रजभाषा में औ का ओ उच्चारण किया जाता है । दोआब और रूहेलखंड की ब्रजभाषा में औ के स्थान पर 'आ' का ही प्रयोग होता है जैसे इसमें घोड़ा' रूप ही चलता है, घोडौ नहीं ।

ब्रजभाषा में भविष्यत काल के रूप, साधारण-वर्तमान के रूपों में 'गौ' संयुक्ता करने से सम्पन्न होते हैं जैसे मारी गौ (गाऊँगा) । ब्रजभाषा के अनुसर्ग निम्नलिखित हैं -

कर्त्ता - नें, नैं

कर्म - सम्प्रदान - कुँ, कूँ कौं, कैं, के ।

करण-अपादान - सों, सूँ ते, ते ।

संबंध - कौ, तिर्यक (पुल्लिंग), के (स्त्रीलिंग) की ।

अधिकरण - में, मैं, पै, लौं ।

19.3.3 हरियाणी या हरियाणवी

हरियाणा शब्द के विषय में विद्वानों में काफी मत-वैभिन्नय है । जैसे 'हरि + यान' (कृष्ण का यान इधर से द्वारका गया था), 'हरि + अरण्य (हरा + वन), 'अहीर + आना' (राजपूताना की तरह) आदि । हरियाणी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है । इस बोली के चारों ओर खडी बोली, अहीरवाटी, मारवाड़ी, पंजाबी आदि बोली जाती है । कुछ विद्वानों इसे पंजाबी भाषा से प्रभावित खडी बोली का रूप मानते है । ग्रियर्सन ने इसे

बांगरू नाम से अभिहित किया । हरियाणी में बाँगर का अर्थ है हरा-भूरा उपजाऊ प्रदेश । हरियाणा वास्तव में भारत का हरा-भरा प्रदेश है । अत: बाँगर प्रदेश की बोली होने के कारण इसे 'बाँगरू' कहा गया ।

यह दक्षिणी-पूर्वी पटियाला, पूर्वी हिसार, रोहतक, नाभा, दिल्ली के कुछ अंश में बोली जाती है । बाँगरू के कई स्थानीय नाम है जैसे हरियाणा के पडौस में इसे हरियानी देसवाली या देसडी, रोहतक और दिल्ली के आसपास जाटों की अधिक आबादी के कारण जाटू और दिल्ली में चमखा कहलाती है ।

बाँगरू में लोक साहित्य की प्रचुर मात्रा में रचना हुई हैं । सांग (स्वांग) हरियाणा का प्रसिद्ध लोकनाट्य है जो खुले मंच पर खेला जाता है । होली और आल्हा भी यहाँ लोकप्रिय हैं । इस लोक साहित्य का कुछ अंश प्रकाशित हो चुका है ।

बाँगरू की ध्वनियाँ खड़ी बोली से मिलती जुलती है । वैदिक काल की 'क' ध्वनि बाँगरू में है । णत्व की प्रकृति इससे पाई जाती है जैसे वण (वन) बासण (बर्तन), पाणी (पानी) आदि । द्वित्व का प्राचुर्य है जैसे गाड्डी (गाड़ी), भुक्या (भूखा) आदि । स परसर्ग बहुवचन के ओ की जगह 'आँ' का प्रयोग किया जाता है । उदाहरणस्वरूप बलहदाँ ने (बैलों को), छोरा सूँ (लड़को से) आदि । परसर्गा में 'को' के बदले 'ने' की, लियाँ (के लिए), की खात्तर (की खातिर), सूँ (सो), माँह या माँहि (में) का प्रयोग किया' जाता है । 'होना क्रिया के रूप सै (है), सैं (हैं), सो (हो), और सूँ (हूँ का प्रयोग होता है । इसमें अनुसर्गो का प्रयोग अनिश्चित है क्योंकि एक ही अनुसर्ग कई कारकों में प्रयुक्त होता है । संबंध का अनुसर्ग खड़ी बोली की तरह 'का' है । पुल्लिंग के विभिन्न रूपों के साथ के-कै अनुसर्ग प्रयुक्त होता है । कर्म और सम्प्रदान कारक में वे-नै अनुसर्ग का प्रयोग किया जाता है उदाहारणार्थ - परदेश को (खड़ी बोली), परदेश को (हरियाणी) । ती, ते, तै अनुसर्ग कर्म, सम्प्रदान और अपादान में व्यवहृत होते हैं यथा - मैं ने छोरे ती मारया (मैंने छोरे (लड़के) को मारा । करण कारक में सिते और अपादान में कानी-ती अनुसर्ग प्रयुक्त होते हैं यथा जिवारियाँ सिने (जेंवरी, रस्सी से) ।

19.3.4 बुंदेलखंडी

बुंदेला राजपूतों की भूमि बुदेलखण्ड कहलाती है । बुंदेली या बुदेलखण्डी बुंदेलखण्ड की प्रधान जाति बुंदेलों की बोली मानी जाती है । इसका विस्तार जालौन, हमीरपुर, झाँसी, बाँदा, ग्वालियर, ओरछा, सागर, दमोह, नरसिंहपुर, सिवनी, जबलपुर तथा होशंगाबाद तक हैं । बांदा जिले की भाषा में बुंदेली, बघेली और बैसवाडी (अवधी) का सम्मिश्रण है । इस विस्तृत क्षेत्र को एक सूत्र में बाँधने वाली सामाजिक एकता के अभाव के कारण इस बोली में कई प्रभेद है जिसका एक मुख्य कारण यातायात साधनों का अभाव है । स्थानीय विशेषताओं पर ध्यान देते हुए ग्रियर्सन ने बुदेली के पँवारी, खटोला, राठौरी और लुधाँती आदि कई उपभेद माने हैं ।

ठेठ बुंदेली की साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं है पर वहाँ के विद्वान ऐसा मानने से इंकार करते हैं । वे रीतिकालीन कवि बिहारी को बुंदेली कवि मानते है । ईसुरी धर्मदास, गंगाधर ने बुंदेली में अपनी रचनाएँ की हैं । केशव, तुलसी, पद्माकर, ठाकुर और गोरेलाल आदि कवियों

द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा में बुंदेली का यथेष्ट प्रभाव देखने को मिलता है । जगनिक की प्रसिद्ध रचना 'आल्हाखंड' के विषय में कुछ विद्वानों का यह मत है कि यह बनाफरी भाषा में रचित ग्रंथ है जो महोबा के आसपास बोली जाने वाली बुंदेली की उपबोली है । कवि ईसुरी के 'फाग' और गंगाधर की शृंगारिक रचनाएँ बुंदेली की अनमोल निधि है ।

बुंदेली में ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है जिनका प्रयोग हिन्दी में नहीं किया जाता है । ऐसे शब्दों की संक्षिप्त सूची निम्नलिखित हैं -

बाबा, बड़े बाबा - पितामह

दाई, दादी - पितामही

दादा, भाई, बापू भैया - पिता

दीदी, अइया, माई - माता

दादू - चाचा

कहिही - चाची

दुल्हन, लुगाई, मेहरिया, बसही, जरूआ, गोटानी-पत्नी

बिटिया, बुईया, धौनी - पुत्री

लाला, दादू छौना, बूआ - पुत्र

पाहुन, नात - दामाद

फवा, बुश - मौसी

गंगल - मिट्टी का घड़ा

करहिया - कड़ाती

कोपरी - परात

चम्बू - पीतल का कटोरा

सनर्सी - सँडसी

व्याकरण - जब ए तथा ओ हस्व रूप में उच्चरित होते हैं तो वे क्रमशः 'ह' तथा 'उ' में परिणत हो जाते हैं जैसे बेटी - बिटिा, घोरो - घुरवा आदि । व्यंजनों में ड़ का उच्चारण 'र' में परिर्णित हो जाता है यथा - पड़ो - परो, घुड़वा - घुरवा । आरंभ में स्थित 'थ', 'ज़', में 'व' 'ब' में परिणत हो जाता है । यथा - यह - जो, वह - बो । बुदेली में संज्ञा के गुरू अथवा दीर्घान्त रूपों का प्राय प्रयोग होता है । ऐसे पुल्लिंग शब्दों के अंत में 'वा' और स्त्रीलिंग के अंत में आ आता है जैसे घुरवा, घोड़ा बेटी, बिटिया । हिन्दी के पुल्लिंग ओकारांत शब्द बुंदेली में ओकारान्त हो जाते है जैसे हिन्दी - घोड़ा - बुंदेली घोरों । बुंदेली में कारक और अनुसगों का क्रम निम्नलिखित है ।

कर्ता कारक - ने (हिन्दी ने)

कर्म कारक - खां, खौं (को)

करण-अपादान - सैं (से)

सम्प्रदान - के लानैं, के नानैं (के लिए)

संबंध	-	कौ, की, के, खी, खी, खे (का, की, के)
अधिकारण	-	मैं, पै, पर (में, पर)

जिस प्रकार हिन्दी की अन्य बोलियाँ ओकारान्त बहुला है ठीक वैसे ही बुंदेली भी ओकारान्त बहुला भाषा है अर्थात् हिन्दी, संज्ञा, सर्वनाम, कृदन्त के रूपों में जहाँ अत्त्य 'आ' ध्वनि मिलती है, वहाँ बुंदेली में 'ओं' मिलता है जैसे - गला (हिन्दी) - गरो (बुंदेली), बुरा (हि) - बुरओ (सु आदि ।

संज्ञा के मूल तथा विकृत एकवचन और बहुवचन के रूप ब्रजभाषा के ही समान है जैसे - मौड़ा मौडन (लड़का), गोड़ो गोड़न (पैर) आदि ।

सर्वनाम रूप भी ब्रजभाषा के समान है केवल निम्नांकित अंतर है - उत्तम पुरूष संबंध कारक रूप रो (ब्रज) - ओ (बुंदेली) - हमाओ (हमारा) मध्यम पुरूष संबंध कारक रूप - रौ (ब्रज) - ओ (तुम्हाओ) तुम्हारा सहायक क्रिया के संबंध में उल्लेखनीय बातें निम्नांकित हैं -

वर्तमानकाल	बुंदेली	हिन्दी
	आय	है
	ऑय	हैं
	आँव	हौं
	आततू,	है
	आव	हौ
भूतकाल	तो	था
	ते	थे

भविष्यत काल के रूपों की रचना ब्रजभाषा की भाँति - 'ह' के रूपांतरों को लगाकर होती है । उदाहरणार्थ हिन्दी जाना क्रिया के रूप बुंदेली में इस प्रकार है -

मैं जैहों (मैं जाऊँगा)	हम जैहन (हम जाएँगे)
तैं जैहत (तू जाएगा)	तुम जैहो (तुम जाओगे)
वी जैहे (वह जाएगा)	वै जैहैं (वे जाएँगे)

19.3.5 कन्नौजी

कन्नौजी का नामकरण कन्नौज नगर के आधार पर हुआ । यह नगर वर्तमान समय में गंगा के तट पर फर्रुखाबाद जिलें में स्थित है । कनौजी शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है । वास्तव में कन्नौज शब्द कान्यकुब्ज का विकसित रूप है । प्राचीनकाल में यह एक समृद्ध और वैभवर्षाली नगर था । आजकल शुद्ध कन्नौजी इटावा, फर्रुखाबाद एवं गंगा के उत्तर, शाहजहाँपुर जिले, कानपुर, हरदोई, पीलीभीत जिलें में बोली जाती है । कन्नौजी के पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम में ब्रजभाषा और दक्षिण में बुंदेली का क्षेत्र है । चूंकि कन्नौजी का क्षेत्र ब्रज और अवधी के बीच में पड़ता है इसलिए इसमें ब्रज और अवधी दोनों की विशेषताएँ दृष्टिगत होती है ।

कन्नौजी का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है और सीमावर्ती इलाकों में यह पड़ौस की बोलियों से पर्याप्त रूप में प्रभावित है । कन्नौजी में भिन्नताएँ भी कम है ।

गंगा के उत्तर तथा कानपुर की कन्नौजी में व्यंजनांत पदों में एक 'इ' जोड़ दी जाती है जैसे देत को देति और बाद को बादि कहा जाता है । हरदोई के पूर्वी भाग में बोली जाने वाली कन्नौजी में इतना अधिक सम्मिश्रण है कि यह तय करना कठिन हो जाता है कि यह कन्नौजी है या ब्रज । कन्नौजी में लोकसाहित्य मिलता है जिसका कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है । उस क्षेत्र के अधिकांश प्रसिद्ध कवियों जैसे चिंतामणि, मतिराम आदि ने ब्रज को ही अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया ।

व्याकरणिक दृष्टि से कन्नौजी और ब्रजभाषा में अधिक अंतर नहीं है । कन्नौजी ओकारान्त प्रधान भाषा है । उदाहरण के लिए

हिन्दी	कन्नौजी
छोटा	छोटो
बडा	बड़ो
दिया	दयो
लिया	लयो

सहायक क्रिया के रूप निम्नलिखित है -

(क) वर्तमानकालिक रूपों में - 'न ध्वनि का योग होता है । यथा - हैगो (है), हैं (है) ।

(ख) भूतकालिक रूप कृदन्त ही हैं परंतु स्थानगत अंतर मिलता है ।

कन्नौजी	हिन्दी
थो, थे, थी	था, थे, थी
हतो, हते, हती	रहो रहे, रही

(ग) भविष्यतकाल के रूपों में भी - गो-गी-गे रूप जुड़ते हैं ।

ब्रजभाषा में जहाँ आयी, गयौ जैसे उच्चारण मिलते हैं, वीं कन्नौजी में आयो, गयो जैसे उच्चारण किए जाते हैं । यहाँ 'य' श्रुति के अभाव में 'गयो का उच्चारण 'गओ जैसा होता है । कन्नौजी में ऐ-औ पूर्ण रूप से संयुक्त स्वर के भाव में प्रयुक्त होते है और अइ, अउ बोले जाते हैं यथा - पइर (पैर), कउन (कौन) । अवधी की भाँति 'व' का उच्चारण ऊं जैसा होता है जैसे साउन माँ (सावन में) । कन्नौजी में दो स्वरों के बीच के हं का लोप हो जाता है यथा कहिहौ - कैहयौं । हिन्दी के संकेत अथवा उल्लेख वाचक सर्वनाम वह तथा 'यह के लिए क्रमशः वह, बौ और यहु जौ रूप मिलते हैं । कारक और अनुसर्गो का क्रम निम्नलिखित हैं -

कर्ता	-	ने
कर्म, संप्रदान	-	को, की
करण, अपादान	-	से, सेती, सन्, तें, ते, करि, कर-के ।
संबंध को	-	(तिर्यक, के) स्त्री,, लि. की
अधिकरण	-	में, मैं, माँ, मो, पर, लो ।

19.3.6 दक्खिनी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में दक्खिनी हिन्दी को भी शामिल किया जा सकता है । इसे महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश और कर्नाटक के विस्तृत भू भाग में बसे उत्तर भारतीय, मुस्लिम परिवार के लोग बोलते हैं । चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती में जो मुस्लिम शासक उत्तर से दक्षिण गये उनके सिपाही और अन्य कर्मचारी दक्षिण के ही निवासी बनकर रह गये । बीजापुर गुलबर्गा और गोलकुण्डा जैसी रियासतों में ये बड़ी संख्या में थें अठारहवीं शताब्दी में निजाम राज्य की स्थापना के पश्चात दक्खिनी हिन्दी को राज्य संरक्षण मिला और इसके प्राचीन साहित्य को नष्ट होने से बचाया जा सका । ख्वाजा बन्दानवज, गेसूदराज मुहम्मद हुसैनी मुल्ला वजही, गवासी निजामी, कुलली, गुतुबशाह आदि ने दक्खिनी में प्रेम काव्य लिखे ।

दक्खिनी हिन्दी को खडी बोली का ही एक रूप माना जाता है । इसमें ह्र के अलावा खडी बोली की समस्त ध्वनियाँ मिलती हैं जिनका प्रयोग कातिल, खबर गुलाम, जिन्दगी और फायदा जैसे अरबी फारसी के शब्दों में देखा जा सकता है । द्‌वित्व व्यंजनों का प्रयोग भी बहुलता पूर्वक होता है- डल्ली (डली), चुन्ना(चूना) आदि ।

खडी बोली में न पाई जाने वाली - दंत्येकरण दक्खिनी का निजी वैशिष्ठय है जैसे लूटना टूटना), थंडा (ठंडा), तेढा(टेढा) हात(हाथ), मूक(भूख), आदि । न्द और न्ध संयुक्त व्यंजन ध्वनियां न और न्ह में बदल जाती हैं जैसे बान्धना (बन्धना) चाँदनी (चाननी) आदि ।

दक्खिनी में स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन 'ऑ प्रत्यय के योग से बनाया जाता है जैसे औरत से आरती ओर बात से बीता आदि । परसर्गो में खड़ी बोली से कर्म का 'कूँ ब्रजभाषा से करण का लूँ अवधी से संबंध का 'कैरा' दक्खिनी हिन्दी में लिए गये लगते हैं । सम्प्रदान में 'के तई' का प्रयोग नया है । सर्वनामों में तुजे, मुजे आदि में, अन्य महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति उल्लेख है । 'हमन' या हमना 'तुमन' या तुमना खास प्रयोग हैं ।

क्रियारूपों में विशेष नवीनता नहीं दिखाई पड़ती । भूतकाल के रूप चल्या देख्या आदि खड़ी बोली की तरह ही हैं । चलैं, करैं, आवै-जावै आदि । तिडन्त रूप भी खड़ी बोली से मिलते हैं ।

19.4 पूर्वी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी और बिहारी हिन्दी के बीच पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र है । पूर्वी हिन्दी के अंतर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी नामक तीन बोलियाँ हैं । ये पाँच प्रान्तों यथा उत्तरप्रदेश, बघेलखण्ड, बुंदेलखण्ड के उत्तर-पश्चिम, मिर्जापुर जिले, सोननदी के दक्षिण के कुछ भाग, चंद्रभकार सरगुजा, कोरिया, जशपुर के कुछ भाग तथा छोटा नागपुर में भी पूर्वी हिन्दी बोली जाती है । मध्यप्रदेश के जबलपुर, मण्डला तथा छत्तीसगढ़ के जिले भी पूर्वी हिन्दी की भौगोलिक सीमा में आते हैं ।

पूर्वी हिन्दी की उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश से हुई है । इसमें शौरसेनी और मागधी दोनों अपभ्रंश के लक्षण विद्‌यमान है । पूर्वी हिन्दी के उत्तर में पहाड़ी भाषाएँ विशेषकर नेपाली बोली जाती है । इसके पश्चिम में पश्चिमी हिन्दी की दो बोलियाँ कन्नौजी और बुंदेली बोली

जाती है । पूर्वी सीमा पर नागपुरी और भोजपुरी तथा दक्षिण में मराठी का क्षेत्र है । पूर्वी हिन्दी की तीन बोलियों यथा अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी का विस्तृत विवरण निम्नलिखित हैं -

19.4.1 अवधी

पूर्वी हिन्दी की सबसे महत्वपूर्ण बोली अवधी है । 'अयोध्या' का ही विकसित रूप अवध है जिससे अवधी शब्द बना । इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्‌वानों में मतभेद है । कुछ के अनुसार इसका संबंध अर्धमागधी से है तो कुछ के अनुसार इसका संबंध पालि से है । अवधी पूर्वी हिन्दी की सबसे महत्वपूर्ण बोली है । भक्तिकाल में ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी का भी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रहा । तुलसी का 'रामचरितमानस' और सूफी कवियों का प्रेम-काव्य अवधी में रचा गया । अवधी, लखीमपुर, खीरी, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव, फतेहपुर, बहराइच, बाराबंकी, रायबरेली, फैजाबाद, सुलानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर और मिर्जापुर जिलों में बोली जाती है । इसके अन्य नाम पूर्वी तथा कोसली भी है । कोसली से कोशल प्रदेश की भाषा से तात्पर्य है । कभी-कभी अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं पर बैसवाड़ी अवधी के अंतर्गत उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली और फतेहपुर के सीमित अंशों में बोली जाती है ।

भारतीय इतिहास में इस क्षेत्र की भाषा का विशेष महत्व रहा है । प्राचीन काल में यह प्रदेश कौशल के नाम से प्रसिद्ध था और इसकी राजधानी साकेत (अयोध्या) थी । बौद्ध काल में इस जनपद का बड़ा महत्व था । महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन के अधिकांश भाग सावत्थी (गोंडा जिलें में, बलरामपुर के पास) तथा कौशल राज्य में बिताया था । गुप्त, मुगल और ब्रिटिश शासन काल में प्रयाग, अवध और इलाहाबाद का अत्यंत महत्व रहा । रामभक्त कवि तुलसीदास के प्रसिद्ध 'रामचरितमानस' के अलावा अन्य कई रचनाएँ अवधी में सम्पन्न हुई । आजकल अवधी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा हिन्दी है पर साधारण बोलचाल में लोग प्राय: अवधी का ही प्रयोग करते हैं । आधुनिक काल में रमई काका, वंशीधर शुक्ल आदि साहित्यकारों ने अवधी में रचना कर्म किया है ।

अवधी की ध्वन्यात्मक और पदात्मक विशेषताओं ने भाषा-वैज्ञानिकों का ध्यानाकर्षित किया है । इसकी ध्वनियाँ मानक हिन्दी से काफी भिन्न हैं । अवधी का 'अ' अर्धवर्तुल है और यह 'ह' से पहले भी अर्धवर्तुल ही रहता है । इ, उ मानक हिन्दी की तुलना में अति ह्रस्व है । यह ह्रस्वता गति, पशु, स्थिति आदि शब्दों के उच्चारण में स्पष्ट रूप से लक्षित होती है । ऐ-औ संयुक्त स्वर हैं और क्रमश: 'अइ', 'अउ' उच्चारित होते हैं । व्यंजनों में ण, व और ष क्रमश न, व और ख के रूप में उच्चरित होते हैं । यथा गुन (गुण), करूना (करूणा), विकास (विकास), हरख (हर्ष) आदि । शब्द के आदि में व हो तो उ उच्चारण किया जाता है यथा उकील-वकील ।

मानक हिन्दी की तुलना में य एवं व श्रुतियों का प्रयोग कम किया जाता है जैसे सिआर (सियार), गुआल (ग्वाल) । अकारान्त शब्दों के अच्च अ का अवधी में स्पष्ट उच्चारण होता है । रूप की दृष्टि से बहुवचन का औ अवधी में 'अन' या जपित 'इ' के साथ 'अनि' हो जाता है जैसे लरिकन का (लड़को का) । संज्ञा और विशेषण के लिंग संबंधी नियम अवधी में

थोड़े शिथिल है । व्यंजनान्त संज्ञापदों के कतर्ग एकवचन के रूपों में उ लगता है जैसे घरु, बनु आदि ।

परसर्गों में कर्ता कारक में 'ने' का अभाव है जो निश्चित रूप से अवधी की उल्लेखनीय विशेषता है । इस दृष्टि से अवधी और बिहारी में समानता है । कर्म का परसर्ग का, करण के उन, सेती संप्रदान के बरे, बदे, संबंध के कर और केर और अधिकरण का परसर्ग मा है ।

सर्वनामों में मोर (मेरा), तोर (तेरा), ऊ (वह), ओ (उस-), ई (यह), ए (इस-) जे (जो), के (कौन), काहे (क्यों) प्रयुक्त होते हैं । उत्तम पुरूष सर्वनाम का बहुत कम प्रयोग होता है । हम का प्रयोग एकवचन की तरह होता है । क्रिया के रूपों में 'होना क्रिया के लिए 'है, 'अहै' के अतिरिक्त 'आटे' और 'बाटे' रूप भी मिलते है । भूतकाल में भवा, भए, रहा, रहे का प्रयोग किया जाता है । भूतकाल में चला, के अतिरिक्त 'चलेउ' और स्त्रीलिंग में 'चलिउ' जैसे प्रयुक्त होते हैं । क्रियार्थक कृदन्त क्रिया 'व' प्रत्यय से बनते हैं जैसे देखब (देखना), करब (करना) ।

प्रत्ययों में बहोरि (फिर), की नाई (की तरह), अवसि (अवश्य), इमि (यों), जिमि (ज्यों), किमि (कैसे), बेगि (जल्दी), इहाँ (यहाँ), उहाँ (वहाँ), सौं (सऊँ) (सामने), जनि (नही) आदि प्रयुक्त होते है ।

डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार अवधी की पश्चिमी, केन्द्रीय और पूर्वी नामक तीन विभाषाएँ हैं । खीरी, (खीमपुर), सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव तथा फतेहपुर में पश्चिमी, बहराइच, बाराबंकी, रायबरेली में केन्द्रीय एवं गोंडा, फैजाबाद, सुल्लानपुर, इलाहाबाद, जौनपुर और मिर्जापुर में अवधी की पूर्वी विभाषा बोली जाती है ।

10.4.2 बघेली

बघेल पूर्वी हिन्दी क्षेत्र की एक और बोली है । यह बघेलखण्ड की बोली है । ध्वनि और रूप रचना की दृष्टि से अवधी से काफी समानता होने के कारण कुछ विद्वान इसे अवधी की मात्र एक उपबोली मानते हैं । परंतु इसका विस्तार इतने विषाल क्षेत्र में हुआ है कि इसे स्वतंत्र बोली के रूप में मान्यता मिलनी ही चाहिए । बघेली उत्तरप्रदेश की दक्षिणी सीमा से लेकर बालाघाट तक ओर पश्चिम में दमोह से लेकर बिलासपुर तक बोली जाती है । मध्यप्रदेश के पश्चिम में बुंदेलीखण्ड और पूर्व में बघेली का विस्तार है । बघेले राजपूतों के कारण इसका नाम बघेली पड़ा । रीवा बघेलखंड का मुख्य स्थान होने के कारण इसका एक और अन्य नाम रीवाई भी है । बघेली के उत्तर में अवधी और पश्चिमी भोजपुरी, पूर्व में छत्तीसगढ़ी, दक्षिण में मराठी और दक्षिण-पश्चिम में बुंदेलखंडी का क्षेत्र है ।

बघेली की ध्वनियाँ अवधी से साम्य रखती हैं पर त को 'व' बोलने की प्रवृत्ति अवधी से भी अधिक पाई जाती है यथा आबा-आवा(आया) कई अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण जैसे बोले जाते हैं यथा सन्दुख (सन्दूक) । 'न्ध' के स्थान पर दक्खिनी के समान 'न्ह' प्रयुक्त होता है यथा बान्हना (बांधना) । संज्ञा के रूप और परसर्ग अवधी के समान ही हैं । सर्वनामों के बहुवचन में 'सब' लगाने की सामान्य प्रवृत्ति देखी जाती है यथा हम सब, तुम सब कई विशेषणों में लिंग व्यजंक 'आ' या 'ई' नहीं लगता जैसे बड़ लरिका, बड़ लरिकी छोट लरिका,

छोट लरिकी । कहीं-कहीं 'हा' भी लगता है उदा-नीकहा क्रिया के रूपामें में भविष्यत काल में 'ह' वाले रूप अधिक प्रचलित है जैसे महँ चलि हऊँ (मै चलूँगा), तू-चलिहइँ । अव्यय शब्दों में एती (इधर), ओती (उधर), काहे कि (क्योंकि), अइसन (ऐसे), जइसन (जैसे) महत्वपूर्ण है ।

परसर्गो का क्रम निम्नलिखित है -

कर्ता में 'ने' परसर्ग का अभाव है और सबंध के परसर्ग में लिंग के अनुसार परिवर्तन नहीं होते । विशेषण के रूप भी स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में अपरिवर्तित ही रहते हैं ।

कर्म-सम्प्रदान	-	का, कहा ।
करण - अपादान	-	से, ते, तार ।
संबंध	-	कर ।
अधिकरण	-	में ।

19.4.3 छत्तीसगढ़ी

पूर्वी हिन्दी की तृतीय बोली छत्तीसगढ़ी है । यह सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ की बोली है । बिलासपुर, रायपुर, खैरागढ़, दुर्ग आदि क्षेत्रों में बोली जाती है । छत्तीसगढ़ी में केवल लोकसाहित्य ही है । इसकी मुख्य उपबोलियाँ- सुरगुजिया, सदरी, बैगानी, बिंसवाली आदि है । बालाघाट जिलें में बोली जाने वाली छत्तीसगढ़ी को खलोटी कहते हैं । इसका एक और नाम लरिया भी है । छत्तीसगढ़ी पडौस के राज्य उड़ीसा एवं बस्तर में भी बोली जाती है । बस्तर की भाषा यधपि हलवी है पर भाषा वैज्ञानिक सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार इसमें छत्तीसगढ़ी का काफी प्रभाव है ।

व्याकरणिक विशेषताएं -

संज्ञा, सर्वनाम में 'ऐ', औ ध्वनियों का क्रमश: अइ ओर उउ मिलता है । जैसे बैल-बइल, जौन-जउन, कौन-कउन आदि । शब्द के मध्य में 'ड़' ध्वनि का लोप हो जाता है उदा: - लड़िका-लरिका । संज्ञा के प्राचीन कप में 'अन' प्रत्यय तथा आधुनिक रूप में 'मन' प्रत्यय का प्रयोग होता है यथा - लडिकामन । उत्तमपुरूष "सर्वनाम एकवचन में - में, मैं, तिर्यक मो, मोर तथा बहुवचन हम, हममन आदि रूप प्रयुक्त होते हैं । क्रियाओं में वर्तमानकालिक 'हूँ' का उत्तम पुरूष एकवचन में हवउं, मध्यमपुरूष हव, एकवचन में 'हवैं' और बहुवचन में 'हवन', हवै आदि का प्रयोग किया जाता है । भूतकाल एचवचन में रहेऊँ, रहयौ, रहे, रहै और बहुवचन में रहेन, रहैय आदि प्रयुक्त होते हैं । वर्तमानकालिक कृदंत - 'अत' प्रत्यय (उदा-देखत), भूतकाल में 'ए' (उदा-देखे) क्रियार्थक संज्ञा के रूप देख, देखन, देखब आदि मिलते हैं ।

छत्तीसगढ़ी में व्यापक रूप से अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण रूप में उच्चरित किया जाता है जैसे कछेरी (कचहरी), झन (जन) आदि । 'स' का उच्चारण 'छ' जैसा होता है उदाहरणार्थ - छाँप (साँप), छब (सब) आदि । कुछ शब्दों में घोष को अघोष कर दिया जाता है । जैसे खराप (खराब) । परसगों का क्रम निम्नलिखित है -

कर्म सम्प्रदान	-	का, ला,, बर
करण - अपादान	-	ले, से

संबंध	-	के (यह लिंग के अनुसार परिवर्तित नहीं होता)
अधिकरण	-	माँ

अव्ययों में इहीं (यहाँ), उहाँ (वहाँ), एती (इधर), ओती (उधर), आजकल (आजकल), काहे के (क्योंकि) आदि का प्रचलन होता है । छत्तीसगढ़ी पर मराठी, उड़िया और तेलगू का काफी प्रभाव है । खासकर शब्द भण्डार की दृष्टि से छत्तीसगढ़ी पर इन तीनों भाषाओं का प्रभाव पड़ा है । आदिवासियों की घनी आबादी होने के कारण छत्तीसगढ़ी पर आदिवासियों की विभिन्न बोलियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है ।

19.5 बिहारी हिन्दी

डॉक्टर ग्रियर्सन ने पश्चिमी मागधी बोलियों का बिहारी नामकरण किया है जिसके अंतर्गत मगही, मैथिली ओर भोजपुरी - ये तीन बोलियाँ हैं । इनमें से मैथिली को सन् 2002 में भाषा का दर्जा मिल चुका है अत: मैथिली अब हिन्दी की बोली नहीं है बल्कि यह एक स्वतंत्र भाषा बन चुकी है जिसे भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान मिल चुका है ।

डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि से बौद्ध विहारों के आधार पर इस प्रांत का नाम बिहार पडा और प्राचीन बिहारी वस्तुत: बौद्धों और जैनों की भाषा रही है । यह भाषा समस्त बिहार प्रांत, उत्तरप्रदेश के गोरखपुर, बनारस, छोटानागपुर के पठार और हाल ही में जन्मे झारखंड राज्य में बोली जाती है । बिहारी का बंगला, उड़िया और असमिया से भी गहन संबंध है । बिहारी और बंगला संस्कृति में भी काफी एकता है । क्योंकि जिस प्रकार बंगाल शक्ति का उपासक है । उसी प्रकार बिहार भी प्रधान रूप से शाक्त है । बिहारी हिन्दी की उत्पत्ति मागधी प्राकृत और अपभ्रंश से हुई है । बिहारी हिन्दी की बोलियों का विवरण निम्नलिखित है ।

19.5.1 भोजपुरी

पश्चिमी बिहार की बोली है । उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में भी भोजपुरी बोली जाती है । बनारस, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ मिर्जापुर, जौनपुर, बस्ती, शाहबाद, छपरा जिलें तथा चम्पारन, राँची, पलामू की तहसीलें भोजपुरी बोली के क्षेत्र है । भोजपुरी को डॉ. तेजपाल चौधरी ने हिन्दी की सबसे बड़ी बोली कहा है । शाहबाद जिलें के उत्तर-पश्चिम में 'भोजपुर' परगने के आधार पर भोजपुरी का नामकरण हुआ है । वर्तमान समय में छोटका भोजपुर और बडका भोजपुर नामक गांव पाए जाते हैं । डॉ. ग्रियर्सन ने उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी, और नागपुरिया नामक भोजपुरी के रूप गिनाए है । जिनमे से शाहबाद, गाजीपुर, बलिया और सारन में बोली जाने वाली दक्षिणी भोजपुरी को ही शुद्ध या टकसाली भोजपुरी कहा है ।

भोजपुरी का गद्य साहित्य विकसित हो रहा है । राहुल सांकृत्यायन ने इसमें आठ नाटक लिखे जो प्रकाशित किए है । श्री अवधबिहारी सुमन भोजपुरी के प्रसिद्ध कहानीकार है । लोककथाओं का भी समृद्ध साहित्य इसमें उपलब्ध है । हिन्दी के कवियों जैसे बिहारी, धर्मदास, धरणीदास भीखा साहब आदि ने भोजपुरी का जहां तहां प्रयोग किया है डा. कृझा देव उपाध्याय

ने भोजपुरी लोकगीतों और डॉ. उदयनारायण तिवारी ने भोजपुरी के उद्गम और विकास पर गहन अध्ययन और विस्तृत कार्य किया है ।

व्याकरणिक विशेषताएँ - भोजपुरी में 'र' का लोप व्यापक रूप में देखा जाता है जैसे लइका (लरिका), न्द और न्ध क्रमश: 'न' और 'न्ह' रूप में उच्चरित होते है । जैसे चानन (चन्दन), नींन (नींद), बान्ह (बांध) आदि । इसी प्रकार 'म्ब' और 'म्भ' को क्रमश: 'म' ओर 'म्ह' रूप में उच्चरित किया जाता है । जैसे - तागा (ताम्बा), खम्हा (खंभा) आदि ।

भोजपुरी में अकारान्त पुल्लिंग शब्दों का आकरान्त रूप में उच्चारण किया जाता है यथा घोर (घोड़ा), बड़ (बड़ा), लाभ (लंबा) । कुछ शब्दों कें अंत में 'वा', 'वना' प्रत्यय लगाया जाता है जैसे घोड़, घोडवा घोडवना । विदेशी शब्दों में भी यह प्रथा प्रचलित है जैसे फोन, फोनवा फोनवना आदि । मानक हिन्दी के अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भोजपुरी में इकारान्त रूप में प्रयुक्त होते हैं । जैसे बहिनि (बहन), आगि (आग) । मूल बहुवचन में कई बार रूप अपरिवर्तित ही रहते हैं परंतु स्पष्टता के लिए 'लोग' शब्द को जोड़ दिया जाता है ।

परसगों में अवधी की भाँति कर्ता में 'ने' का अभाव रहता है । इसके अलावा -

कर्म	-	के, कहँ, ना
करण	-	से, सन, सेती
संबंध	-	कै कर केर प्रयुक्त होते है ।

भोजपुरी के सर्वनामों में विभिन्नता दृष्टिगत होती है यथा हमनीका (हम), तोहनीका (तुम), मोर (मेरा), तोर (तेरा), हमार (हमारा), तोहार (तुम्हारा), आदि । भोजपुरी में गुणवाचक विशेषणों और सार्वनामिक विशेषणों का लिंग अपरिवर्तित रहता है जैसे हमार बेटवा, हमर बिटिया, हमार गाँव, हमार खेत (बहुवचन) । किया के रूपों में आटे, बाटे (है). रहिल रहिले (था, थे) आदि का प्रयोग किया जाता है । क्रिया के रूप काफी संश्लिष्ट हैं जैसे भविष्यत् काल के रूप 'ह' औरे 'ब' लगकर बनते है यथा देखब,जाइब, रहब या देखिहै, देखिहै आदि । भोजपुरी के नागपुरी रूप में बंगला भाषा के प्रभाव से अकारान्त का ओकारान्त होता है यथा - कल-कोल । संज्ञा और विशेषण के तीन रूप माली, मलियाँ ओर मलियनवा आदि मिलते है ।

19.5.2 मगही

यह मगध प्रदेश में बोली जाती है । इसका केन्द्र पटना है । इसके अंतर्गत गया, हजारीबाग जिले ओर पलामू मुंगेर और भागलपुर की कुछ तहसीले आती है । मगही के एक ओर भोजपुरी और दूसरी और मैथिली है । अत: इन दोनों का मगही पर गहरा प्रभाव है । मगही के कुडमाली, खोण्टाली बोली रूप भी मिलते हैं । इसका कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं है ।

भोजपुरी के समान संज्ञा के तीन रूप घर, घरता, घरौना प्रयुक्त होते हैं । बहुवचन के रूप 'न' प्रत्यय और सब, लोग आदि के योग से बनते हैं जैसे घोरा-घोरन, घोरा सब, राजा लोग आदि । मगही की ध्वनियाँ भोजपुरी से साम्य रखती है । न्द और न्ध के स्थान पर न और न्ह

उच्चारित होते हैं । ड़ और ल की जगह शब्द के बीच में 'र' आ जाता है यथा - नींन (नींद), बान्ह (बाँध), घोर (घोड़ा), लरिका (लडका), पातर (पतला) । परसर्गो में कर्ता में 'न' परसर्ग का अभाव है । भोजपुरी के समान 'के', 'ला' (को, के लिए), महँ, परि (में, पर) का प्रयोग किया जाता है । परंतु संप्रदान में लागि या लगि प्रत्यय प्रयुक्त होता है । मैथिली के समीपवर्ती इलाकों में सम्प्रदान में 'लेव' ओर अधिकरण में 'मो' का प्रयोग होता है । क्रिया के रूपों में था, थे के लिए हल, हली का प्रयोग होता है । 'थे' के लिए हलखिन' और 'हलथिन' का भी प्रयोग होता है । अव्ययों में हिआँ (यहा), हु आँ (वहाँ), एहर (इधर), उहर (उधर) का प्रयोग किया जाता है ।

19.6 राजस्थानी हिन्दी

यह राजस्थान प्रदेश की भाषा है । इसके उत्तर में पंजाबी, दक्षिण में मराठी और पूर्व में ब्रज भाषा बोली जाती है । 'राजस्थान' शब्द भाषा के लिए समूहवाची रूप में प्रयुक्त हु आ है । इसके अंतर्गत राजस्थान के विस्तृत प्रांत में बोली जाने वाली विविध बोलियों यथा जयपुरी, जोधपुरी, मालवी और मेवाती की गणना की जाती है । डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने राजस्थानी का ऐतिहासिक और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया है । पुरानी राजस्थानी का साहित्य काफी समृद्ध है जिस पर पिंगल और ब्रज का प्रभाव है । राजस्थानी की बोलियों का विवरण निम्नलिखित हैं -

19.6.1 मारवाडी

राजस्थानी की केन्द्रीय बोली मारवाडी है । अत: गई विद्वान इसे राजस्थानी नाम से भी अभिहित करते हैं । यधपि इसका केन्द्र मारवाड़ प्रान्त है पर जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर आदि जिलों के अतिरिक्त यह भारत के हर प्रांत में बसे व्यापारियों द्वारा बोली जाती है । बीकानेरी, शेखावाटी, मेवाड़ी, बागड़ी आदि कई उपबोलियाँ इसके अंतर्गत आती हैं । मारवाड़ी में लोक-साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है । मीराबाई के पद इस बोली में है ।

मानक हिन्दी ध्वनियों के साथ ही मारवाड़ी में वैदिक भाषा की क ध्वनि भी विद्यमान है । 'व' को दो तरह से उच्चरित किया जाता है । जैसे एक दंतौष्ठय और दूसरा इव्यौष्ठ्य । 'श' ओर 'ष' का अभाव है केवल 'स' का प्रयोग होता है । कुछ उपबोलियों में 'कहना', 'रहना', आदि में 'ह' का उच्चारण बहु त क्षीण हो जाता है और रह्यो, कह्यो आदि का उच्चारण कयो, रयो जैसा होता है ।

अंतिम महाप्राण व्यंजनों में भी अल्पप्राणत्व दृष्टिगत होता है । अत: दुख, मूठ, सुख क्रमश: दुक, मूट, सुक रूप में बोले जाते हैं । 'च' और 'छ' को 'स' रूप में उच्चरित करना भी मारवाड़ी की एक विशेषता है । अत: चक्की को सक्की ओर छत को सत बोला जाता है । 'णत्व' मारवाड़ी की व्यापक प्रवृत्ति है ।

मारवाड़ी ओकार बहु ला होती है । मानक हिन्दी के आकारान्त पुल्लिंग शब्द मारवाड़ी में ओकारान्त हो जाते है । और उनके बहु वचन परसर्ग रूप आकारान्त होते हैं जैसे घोड़ो

(एकवचन), घोड़ा (बहुवचन) । मारवाड़ी में कर्म का परसर्ग ने है । संबंध कारक के लिए रो, रा, री का प्रयोग होता है । सर्वनामों में कूँ (मैं), आपाँ (हम), म्हारो (हमारा), थू (तू,, तमे या थें (तुम), थासे (तुम्हारा) का प्रयोग होता है ।

क्रिया के रूपों में वर्तमान के तिडन्त रूप चलै है, चलू हूँ चला ही, चलो हो का प्रयोग होता है । सामान्य भूतकाल में 'चल्यो' खड़ीबोली के 'चल्या' के करीब है । अव्ययों में जद या जदै (जब), कद या कदै (कब), अठी या अठै (यहाँ), उठी या उठै (वहां), जठै या जती (जहाँ), कठै या कठी (कहाँ) का प्रयोग होता है ।

19.6.2 जयपुरी

इसका परम्परागत नाम 'ढुढारी' है । यह जयपुर के आस-पास के इलाकों में बोली जाती लै । कोटा-बूँदी की हाड़ौती भी इसी की उपबोली मानी जाती है । जयपुर में केन्द्रीय राजस्थानी की सभी ध्वनियाँ सम्मिलित की गई हैं । अनेक शब्दों में 'इ' के स्थान पर 'अ' का प्रयोग होता है जैसे पडत (पंडित), कसान (किसान), दन (दिन) । मारवाड़ी की भाँति जयपुरी में भी 'ह' का लोप और व्यंजनों की क्षीण महाप्राणता की प्रवृत्ति देखने को मिलती है जैसे सैर (शहर), रैणो-सैणो (रहना-सहना), भूक (भूख) आदि । मारवाड़ी की तरह 'न' का 'ण' उच्चारण होता है जैसे घणा (अधिक), पाणी (पानी) आदि ।

परसर्गो में मारवाड़ी की तरह कर्म का परसर्ग 'ने' है । इसे अलावा 'कै', 'कै' का प्रयोग भी होता है । सपरसर्ग ओ के स्थान पर 'ओं' प्रयुक्त होता है यथा किताबी में, घराँ में । संबंध में को, का, की परसर्ग है । सर्वनामों में आपाँ (हम), मूँ (मुझ), म्हा (सपरसर्ग हम), म्हारो (हमारा), थे (तुम), थी (तुम, सपरसर्ग), थारो (तुम्हारा), वो (वह), वा (उस) वै (वे), वां (उन), यो (यह), ई (इस.....) का प्रयोग होता है । 'होना' क्रिया के 'छ' वाले रूप जयपुरी की विशेषता है यथा -छै (है), छो (हो), छूँ (हूँ) । उत्तम पुरूष बहुवचन में छी (हैं), था, थी, थे के लिए छो, छी, छा रूप प्रचलित है ।

सामान्य वर्तमान काल में चलै (चलता है,), चली (चलते हैं), चलो (चलते हो) रूप प्रचलित है । अन्य पुरूष बहुवचन में चले एकवचन जैसे रूप) और उत्तम पुरूष में चली का प्रयोग होता है । शौरसेनी अपभ्रंश के उपनगर रूप से विकसित इस बोली में केवल लोक-साहित्य ही उपलब्ध है । तोरावाही काठैड़ी चौरासी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं ।

19.6.3 मेवाती

यह बोली उत्तर-पूर्व राजस्थान में मेव लोगों द्वारा बोली जाती है । अलवर इसका केन्द्र है । इसके अतिरिक्त भरतपुर और गुड़गाँव के क्षेत्र में मेवाती का विस्तार है । इस बोली पर खड़ी बोली और ब्रजभाषा का व्यापक प्रभाव है । इसकी एक मिश्रित बोली अहीरवाटी है । राठी, नहेर कठेर, गुजरी आदि इसकी उपबोलियाँ है । शौरसेनी अपभ्रंश के उपनगर रूप से विकसित मेवाती बोली में केवल लोक-साहित्य उपलब्ध है ।

ध्वनियों की दृष्टि से मेवाती और जयपुरी में काफी साम्य है । अन्तिम व्यंजनों में अल्पप्राणता जैसे हात (हाथ), जीव (जीभ), और विधान (बहण-बहन, थण-थन) मिलता है । च वर्ग में 'च' का आगम देखने को मिलता है जैसे च्यार (चार), पच्यास (पचास) । बाँगरू के समान कर्ता और कर्म दोनों कारकों के लिए 'ने' परसर्ग करण -अपादान के लिए ते, तें संबंध के लिए को, का, की का प्रयोग होता है ।

सर्वनामों में, मुझ ....हम, मेरो, म्हारो, तू तुझ, तम, तेरो थारो वो, वे, बी (उस....) यो, ये, एको (इसका) का प्रयोग होता है । 'होना' क्रिया के रूप है, हैं, हो, हूँ मानक हिन्दी के समान है परंतु उत्तम पुरूष बहुवचन में 'ही' का प्रयोग होता है । अन्य रूप जयपुरी से साम्य रखते है जैसे वर्तमान काल चले, चलूँ चलो, भूतकाल चल्यों, चल्या, चली और भविष्यत काल - चलैगो चलाँगा आदि ।

19.6.4 मालवी

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थानी बोलियों में मालवी का विशेष महत्व है । इसके एक छोर पर बुदेलखण्डी बोली जाती है तो दूसरे छोर पर गुजराती और खानदेशी बोलने वाली आबादी बसती है । इसकी प्रमुख उपबोलियाँ, रतलामी, मन्दसौरी देसवाली और नेमाडी हैं ।

मालवी की ध्वनियाँ केन्द्रीय राजस्थान से साम्य रखती है । इ, उ के स्थानन पर मालवी में 'अ' का प्रयोग दृष्टिगत होता है जिससे दिन, हरिण, ठाकुर को क्रमश: दन, हरण और ठाकर के रूप में उच्चरित किया जाता है । 'ह' का अल्पप्राणीकरण हो जाता है यथा सोयनलाल (सोहनलाल) । यधपि णत्व की प्रवृत्ति कम है पर अन्त अल्पप्राणीकरण के उदाहरण मिलते है । मालवी के शब्द भण्डार पर मराठी भाषा का व्यापक प्रभाव है । जैसे संख्यात्मक शब्द न्यारा, बारा, पंदरा, इकवीस, बावीस तेवीस आदि मराठी से साम्य रखते है । परसगाँ में कर्म-सम्प्रदान के के, 'खे', करण का 'से', 'सूँ', संबंध रो, रा, री और अपादान का 'ऊँ' का प्रयोग होता है । बहुवचन और क्रिया के अधिकांश रूप मारवाडी के समान है परंतु कभी-कभी 'होर' होन, आदि शब्द जोड़कर भी बहुवचन बनाया जाता है । सार्वनामिक विशेषणों में 'ऐ' की जगह 'ए' उच्चरित होता है उदाहरणार्थ एसो, वेसो, केसो आदि । अव्ययों में अठे (यहाँ), वते (वहाँ), जठे (जहाँ) कठे (कहीं), के साथयाँ, वीं, जी, की भी बोले जाते है । इधर-उधर के लिए अइँ, वइँ का प्रयोग होता है । शौरसेनी अपभ्रंश के उपनगर रूप से इस बोली का विकास हुआ है । इस बोली में पर्याप्त लोकसाहित्य उपलब्ध है ।

19.7 पहाड़ी हिन्दी

हिमालय की उपत्यका में हिन्दी की ध्वनि एवं व्याकरण संबंधी कुछ समानता रखने वाली बोलियाँ नेपाली, गढवाली, और कुँमाउनी हैं । डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इन बोलियों का विकास खस-अपभ्रंश से माना है तथा वे शौरसेनी और गुर्जर अपभ्रंश से प्रभावित है ।

19.7.1 कुमायूँनी

यह कुमायूँ की बोली है नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, चमोली, और उत्तर काशी जिलें इसके क्षेत्र में आते है । इस प्रदेश का प्राचीन नाम कूर्मांचल है । इसके स्रोत के संबंध में विद्वान एकमत नहीं है । पैशाची, खस, दरद आदि भाषाओं से इसकी उत्पत्ति मानी गई है । इसकी एक बोली 'खसपरजिया' है जिसे इसकी उत्पत्ति खस भाषा से होने की संभावना बढ़ जाती है । परंतु दूसरी ओर राजस्थानी से भी कुमायूँनी में काफी साम्य है । कुमाँयूनी की ध्वनियाँ भी राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं । अल्पप्राणीकरण (हात-हाथ, जीव-जीभ), णत्व विधान (बैणी-बहन), (पाणी-पानी), ध्वनि का समावेश (बादक-बादल, काला-काला), अदि प्रवृत्तियाँ राजस्थानी से साम्य रखती है । कुमायूँनी में 'स' को 'श' रूप में उच्चरित किया जाता है जो इसकी विशेषता है यथा - शाला (साला), शशुर (ससुर), शव (सब) आदि । ए-ओ की जगह क्रमश: या-वा का उच्चारण किया जाता है जैसे च्यालो (चेलो), क्वाआ (कौआ) आदि ।

राजस्थानी और ब्रजभाषा की भाँति कुमायूँनी भी ओकारान्त भाषा है । अत: आकारान्त पुल्लिंग, संज्ञाएँ, सर्वनाम, विशेषण, कृदन्त क्रियाएँ ओकारान्त रूप में उच्चरित होते है । जैसे लड़को (लड़का), रागो (राम), कालो (काला) आदि । परसर्गों का क्रम निम्नलिखित है ।

कर्ता	-	ले
कर्म-संप्रदान	-	ले
करण	-	थे, थै
संबंध	-	को, का की
अधिकरण	-	मैं, मो ।

सर्वनामों में मै !' हम, मेरो, हमारो, तू, तुमरो, तुम, तेरो, वी, उ (वह), बूँ-ऊँ (उन) का प्रयोग दृष्टिगत होता है । 'होना' क्रिया के वर्तमान काल के रूप में छे (है), छन (हैं), छो (हो), छूँ (हूँ), और भूतकाल के रूप में छियो (था), छिन (थे), छी (थी) का प्रयोग होता है । क्रिया के रूप जटिल है । उदहारणार्थ सामान्य वर्तमान काल में मैं जानू, भूतकाल में 'मैं गयूँ और भविष्यतकाल में 'मैं जूल' का प्रयोग होता है । अव्ययों में इनकै (यहाँ), उनकै (वहीं), जिनके (जहाँ), किनकै (कहीं), अयल (अब), अयलीं (अभी), कथली (कभी) आदि शब्दों का प्रयोग होता है । सानवाचक अव्ययों में याँ, वां, जाँ, कां का प्रयोग किया जाता है ।

जिया, कुमैयाँ मंगोला आदि कुमायूँनी की उपबोलियो है ।

19.7.2 गढ़वाली

गढ़वाली बोली उत्तरप्रदेश ओर उत्तराखंड राज्य के मैदानी भागों के साथ-साथ पहाड़ी भागों में बोली जाती है । यह बोली गढ़वाल और टिहरी जिले, उत्तरकाशी के दक्षिणी भागों, देहरादून, नैनीताल, बिजनौर, जिलों की उत्तरी बस्तियों में प्रयुक्त होती है । जहाँ मैदानी भागों में खड़ी बोली ने इसे प्रभावित किया हैं वहीं पहाडी क्षेत्रों में पहाड़ी जनजातियों की स्थानीय बोलियों का प्रभाव भी लक्षित होता है । इसमें लोक साहित्य का प्रकाशित रूप उपलब्ध है ।

खडी बोली और गढ़वाली की ध्वनियों में काफी समानता है । मराठी वत्स्य चवर्ग से गढ़वाली के च, ज में साम्य है । मानक हिन्दी की तुलना में ये ध्वनियाँ अधिक संघर्षी है । पंजाबी और खडीबोली के समान अल्पप्राणीकरण और अघोषीकरण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है यथा - क्हेत (खेत), च्हत (छत), खूपसूरत (खूबसूरत), अंताज (अंदाज) । रूपों का क्रम काफी जटिल है । परसर्गों के दस से भी ज्यादा वैकल्पिक प्रयोग मिलते है । उदा - करण- अपादान के लिए - सी, नै, ले, ल, विटे, वटी, ते, न, मान, ऐइ, आऊ आदि ।

अव्ययों में कालवाचक अब, जब, कब, के अतिरिक्त अबेर, जबेर, कबेर, तबेर का भी प्रचलन है । स्थानवाचक शब्दों में दो प्रकार के प्रयोग दृष्टिगत होते हैं यथा -

थ - यथ, जथ, कथ, तथ

ख - यख, जख, तख, कख ।

बैहर (बाहर), भित्र (भीतर), आदि प्रयोग गढवाली की अपनी विशेषता है । इसकी प्रमुख उपबोलियाँ राठी, बघानी, सलानी टेहरी आदि है ।

19.8 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.	रू-बरू आमने	-	सामने, प्रत्यक्ष
2.	शाक्त	-	शक्ति या दुर्गा का उपासक
3.	आकारान्त	-	जिस शब्द के अंतिम वर्ण में 'आ' स्वर का योग हो
4.	उकारान्त	-	किस शब्द के अन्तिम वर्ण में ‘उ’ स्वर का योग हो
5.	वर्तुल	-	गोल
6.	परसर्ग	-	विभक्ति
7.	प्रत्यय	-	वह शब्दांश या वर्ण जो किसी शब्द के अन्त में जुड़ कर उसके अर्थ में अन्तर या विशेषत्व ला दे ।
8.	ध्वन्यात्मक	-	ध्वनि की दृष्टि से
9.	रूपात्मक	-	रूप ही दष्टि से
10.	मानक	-	जिसे मान्यता/सर्वस्वीकृति मिली हो
11.	णत्व	-	न ध्वनि को ‘ण’ के रूप में उच्चरित करने की चेष्टा या प्रवृत्ति
12.	द्वित्व	-	अक्षरों का संयुक्त रूप (एक ही वर्ण का जैसे पका से पक्का)
13.	सांग	-	हरियाणा का एक लोक नाट्य
14.	मिश्रित	-	मिलीजुली
15.	अल्पप्राणिकरण	-	महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण ध्वनियों में बदल जाना जैसे हाथा से हात, अंदाज से अनाज

19.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि हिंदी भाषा का मूल स्त्रोत प्राचीन आर्य भाषा है और वह आर्य भाषा परिवार से संबद्ध है । व्यूत्पत्ति की दृष्टि से हिंदी सम्पूर्ण देश की भाषाओं के लिये उपयुक्त संज्ञा मानी जा सकती है । प्राचीन भाषाओं के इतिहास पर नजर डालने से भी ज्ञात होता है कि जनसाधारण के बीच अधिक व्यापक होने के कारण इसी भाषा का विशेष महत्व रहा और इसी वजह से इसे उक्त संज्ञा से संज्ञोधित किया गया लेकिन आज उसका अर्थ केवल उत्तरप्रदेश तथा उसके आसपास के अन्य हिन्दी प्रदेशों की भाषाओं के लिए रूढ़ हो गया है । हिन्दी का जो रूप राष्ट्रीय भाषा एवं राजभाषा के रूप में गृहीत हुआ है वह रूप उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा की तलहटी तक और पूर्व में भागलपुर से लेकर पश्चिम में अमृतसर तक पठन पाठन से साहित्यिक और बोलियों से कार्यालयीन भाषा तक फैला है । इस विस्तृत भू भाग का हिन्दी दरअसल बोलियों का एक समुच्चय है जिसे ध्वनि-रूप-वाक्य और शब्द संसाधन गत संरचना की दृष्टि से पश्चिमी, पूर्वी बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी वर्गो में बांट कर उनका विश्लेषण किया गया है । रूप अंतर्गत रखा गया है जिसे पढ़कर आप हिन्दी के अर्थ में जितनी बोलियाँ समाहित है को अच्छी तरह समझ गए होंगे । भारत के विस्मृत भू-भाग में बोली जाने वाली हिन्दी की सभी बोलियों के भाषिक वैशिष्ट्य से अवगत हो गए होगें ।

इस अध्ययन से हिन्दी की समस्त बोलियाँ अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ पनपती हुई दिखाई पड़ी होगी । इन सभी के समस्त रूप एक-दूसरे के भाषा रूप तथा साहित्य को समझ के में सहायक सिद्ध हुए हैं और इस रूप में इनका एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध स्थापित हो रहा है एवं राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को अधिक पुष्ट करने में इनके सहयोग की पूरी संभावना है।

19.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) **दीर्घोत्तरी प्रश्न**

1. पश्चिमी हिन्दी के उद्भव और विकास की संक्षिप्त जानकारी देते हुए उसकी बोलियों का विस्तृत परिचय दे ।
2. बिहारी हिन्दी की विभिन्न बोलियों की व्याकरणिक विशेषताओं का विवेचन कीजिए ।
3. हिन्दी की पूर्वी-बोलियों के रूपगत वैशिष्ट्य पर विचार कीजिए ।
4. राजस्थानी हिन्दी की रूपरेखा की चर्चा करें ।
5. पहाड़ी - हिन्दी के अंतर्गत आने वाली बोलियों का परिचय दीजिए ।

(ख) लघूत्तरी प्रश्न

1. बंगारु की विशेषताएँ बताइये ।
2. ब्रजभाषा की साहित्यिक और व्याकरणिक विशेषताओं की जानकारी दें ।
3. पहाडी हिन्दी की बोलियों का संक्षेप में विवेचन करें ।
4. खड़ी बोली की व्याकरणिक विशेषताओं की जानकारी दें ।
5. दक्खिनी हिन्दी पर एक टिप्पणी लिखिए ।

(ग) हाँ या ना में उत्तर दीजिए

1. पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश से हुई है । हाँ/ना
2. बघेली बिहारी हिन्दी की बोली है । हाँ/ना
3. राजस्थानी में हिन्दी की चार प्रमुख बोलियाँ है । हाँ/ना
4. पूर्वी हिन्दी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है । हाँ/ना
5. खडी बोली मानक हिन्दी के बहुत निकट है । हाँ/ना

(घ) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

1. बिहारी हिन्दी की उत्पत्ति............................... अपभ्रंश से हुई है।
2. राजस्थानी हिन्दी की बोलियों में.............................. साहित्य की प्रधानता है।
3. बिहारी हिन्दी की.. बोली अब भाषा बन गई है ।
4. राजस्थानी हिन्दी की......................................बोली पर मराठी का व्यापक प्रभाव है।
5. हरियाणी बोली का दूसरा नाम..................................... है ।

19.11 संदर्भ ग्रंथ

1. तेजपाल चौधरी; भाषा और भाषा विज्ञान विकास प्रकाशन प्रथम सं. 2002 कानपुर
2. उदयनारायण तिवारी; हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, लोकभारती प्रकाशन 1998, इलाहाबाद भोलानाथ तिवारी; भाषा विज्ञान
3. भोलानाथ तिवारी; मानक हिन्दी का स्वरूप, प्रभात प्रकाशन 2004
4. राम प्रकाश; मानक हिन्दी, स्वरूप और संरचना
5. डी. झाल्टे दंगल; प्रयोजनमूलक हिन्दी : सिद्धांत ओर प्रयोग, वाणी प्रकाशन 2006 नई दिल्ली सरयूप्रसाद अग्रवाल; भाषा विज्ञान और हिन्दी लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. बाबूराम सक्सेना; सामान्य भाषा विज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग

इकाई-20 हिन्दी के विविध रूप और उनके प्रकार्य (राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा माध्यम भाषा व संचार भाषा)

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 हिन्दी के विविध रूप और उनके प्रकार्य

20.2.1 राजभाषा

20.2.2 राज्य भाषा

20.2.3 राजभाषा और सहराज भाषा

20.2.4 राष्ट्र भाषा

20.2.4.1 राजभाषा और राष्ट्रभाषा में अन्तर

20.2.5 संपर्क भाषा

20.3 भारत सरकार की भाषा नीति में त्रिभाषासूत्र की संकल्पना

20.4 माध्यम अथवा संचार भाषा हिन्दी

20.5 विचार संदर्भ/शब्दावली

20.6 सारांश

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

20.8 संदर्भ ग्रन्थ

20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ कर आप

- साहित्यिक हिन्दी से इतर हिन्दी के कुछ विशिष्ट रूपों से परिचित हो सकेंगे
- राजभाषा की अवधारणा और महत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- राजभाषा, राज्य भाषा और राष्ट्र भाषा का अन्तर समझते हुए उनके महत्त्व का आकलन कर सकेंगे ।
- सहराज भाषा की संकल्पना तथा भारत सरकार की भाषा नीति में 'त्रिभाषा सूत्र' के महत्त्व को जान सकेंगे ।
- हिन्दी के निरन्तर विकसित होते स्वरूप संपर्क भाषा का वैशिष्ट्य समझ सकेगें
- जन संचार माध्यमों की भाषा हिन्दी की लोकप्रियता एवं इसके भाषिक स्वरूप में बदलाव की प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे ।

20.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान द्वारा खड़ी बोली हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किए जाने के उपरान्त हिन्दी का पारंपरिक अर्थ, स्वरूप तथा व्यवहार क्षेत्र व्यापकतर हो गया । पहले हिन्दी भाषा के अध्ययन और अध्यापन का सीधा सादा अर्थ प्राय: भाषा शास्त्रीय अथवा व्याकरणिक विषयों और समस्याओं तक सीमित था और साहित्य का संबंध रसास्वादन रसान्वेषण एवं रसनिष्पत्ति तक । लेकिन जैसे ही हिन्दी राजभाषा की नवीन भूमिका में अवतरित हुई उसकी एक नए सिरे से पहचान शुरू हुई । वह अब मात्र कथा-कहानियों, कविता, ललित निबंधों और समीक्षापरक आलेखों में साहित्यिक अभिप्रायों को प्रकट करने का माध्यम न रह प्रशासन विधान, न्याय शिक्षा तथा पत्रकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रों की अभिव्यक्ति का भी माध्यम बन गई । अब हिन्दी केवल सौन्दर्य मूलक लक्ष्य की साधिका नहीं रही बल्कि रोटी रोजी का साधन अथवा सेवा माध्यम भी बन गई ।

राजभाषा के रूप में इसका प्रयोग मुख्यत: चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है- शासन, विधान, न्याय पालिका और कार्यपालिका । इस प्रकार आज हिन्दी का प्रयोग सामान्य भाषा शास्त्रीय तथा संवैधानिक तीन विभिन्न संदर्भो में हो रहा है । संविधान ने हिन्दी को केन्द्रीय राजभाषा, प्रादेशिक भाषा एवं सहराजभाषा (पंजाब, गुजरात तथा महाराष्ट्र प्रदेशों के लिए) के रूप में मान्यता दी है ।

राजभाषा का सामान्य अर्थ है- राजकाज की भाषा । दूसरे शब्दों में जिस भाषा के द्वारा राजकीय कार्य पूरे किये जाये । राजभाषा शब्द के दो भिन्न अर्थ है- एक राज्य की भाषा दूसरा राज्य की भाषा । इन दोनों अर्थो में अभिप्रेत प्रशासनिक तंत्र को संचालित रखने वाली भाषा ही 'राजभाषा' है । भारत जैसे संघीय जनतांत्रिक प्रणाली में दोहरी शासन पद्धति होती है- पहली पद्धति केन्द्र तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक सरोकारों की होती है । दूसरी प्रादेशिक राज्य प्रशासन की । इस कारण राजभाषा की स्थिति भी दो प्रकार की होती है- प्रथम केन्द्रीय तथा संघ की राजभाषा तथा द्वितीय राज्यों की राजभाषा जिसे समान रूप से राज्य भाषा कहा जाता है । स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में उभरी पर आजाद देश में इसका विरोध आरंभ हुआ । संविधान ने भले ही हिन्दी को राज्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया हो पर उसे राष्ट्रभाषा घोषित करने में कहीं न कहीं हिचक बनी हुई है । हिन्दी को राजभाषा घोषित करते हुए यह आश्वासन दिया गया था कि 1965 तक अंग्रेजी में भी काम होता रहेगा । फिर धीरे-धीरे यह स्थान हिन्दी स्वयं ले लेगी । लेकिन 1965 में जब हिन्दी को अंग्रेजी का स्थानापन्न करने की बात उठी तब राजनैतिक स्तर पर हिन्दीतर प्रदेशों में इसका खुलकर प्रतिवाद किया गया, आज स्थिति यह है कि हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रशासनिक काम किये जा रहे हैं । व्यवहारिक तौर पर अंग्रेजी का वर्चस्व आज भी कायम है और हिन्दी अनुवाद की भाषा बनकर रह गई है ।

किसी भी राष्ट्र के लिये एक संपर्क भाषा का होना जरूरी है । भारत जैसे बहुभाषी देश में तो यह जरूरत और भी बढ़ जाती है । संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी दिनों दिन अपने क्षेत्र को विस्तारित करती जा रही है । इस इकाई में हिन्दी के विविध स्वरूपों राज्य भाषा, राष्ट्र

भाषा, संपर्क भाषा और राजभाषा के स्वरूपों की चर्चा करते हुए उनके तात्त्विक अंतर को भी समझाया गया है । इकाई के अंत में हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय नित नये होते और भाषिक दृष्टि से बदलते रूप का विश्लेषण किया गया है जो है इसका माध्यम एवं संचार की भाषा का स्वरूप । संचार भाषा हिन्दी पूरे देश को एक सूत्र में बांधने में निरत है क्योंकि इसकी पहुँच विस्तृत जन समुदाय तक है ।

20.2 हिन्दी के विविध रूप और उनके प्रकार्य

प्रस्तावना को पढ़कर ही आप समझ गए होंगे कि आज हिन्दी का रूप कितना बहुआयामी हो गया है । इस शीर्षक के अन्तर्गत आप इन विविध रूपों को विस्तार से पढ़े और समझेंगे । जब कोई भाषा जो मानक हो उन्नत होते होते पूरे राष्ट्र की सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व करने लगती है, जिसके प्रति उस देश के रहने वालों का भावात्मक लगाव विकसित हो जाता है तथा जिसके प्रति वहाँ के लोग राष्ट्रगान और राष्ट्र ध्वज की तरह गौरव की भावना रखने लगते हैं उसे उस विशेष राष्ट्र की राष्ट्रभाषा कहते हैं । हमारे देश में आजादी के पहले हिन्दी का यही स्वरूप उभरा था लेकिन आज हिन्दी राष्ट्रीय भाषाओं में से एक और देश के सरकारी काम काज की भाषा अर्थात् राजभाषा है । दो भिन्न-भिन्न भाषाओं के बीच सम्पर्क सूत्र का काम करने वाली भाषा सम्पर्क भाषा कहलाती है । हमारे देश में हिन्दी राष्ट्रभाषा राजभाषा सम्पर्क भाषा तीनों की भूमिकाएँ यथा स्थान और यथा प्रयोजन निभाती है । अत: हम आपको तीनों के स्वरूप को स्पष्ट समझा देना चाहते हैं । आप समझ लें कि राष्ट्रभाषा का संबंध जहाँ भाषिक अस्थिरता और राष्ट्रीयता से है, वहाँ राजभाषा का संवैधानिक व्यवस्था से और संपर्क भाषा का आदान-प्रदान की निजी व्यवहारिकता से । माध्यम की भाषा के रूप में भी हिन्दी का महत्त्व बढ़ता जा रहा है । नीचे दिए गए उपशीर्षकों में आपको हिन्दी के इन प्रमुख रूपों से अवगत कराया जा रहा है ।

20.2.1 राजभाषा

आमतौर पर राज्य या प्रशासन की भाषा राजभाषा कहलाती है । इसे सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में संविधान द्वारा मान्यता दी जाती है । अंग्रेजी में इसका समानार्थी शब्द Official language है । भारतीय संविधान ने हिन्दी को राजभाषा घोषित किया है अत: संसद की कार्यवाही, सचिवालय का कामकाज तथा न्यायालय और प्रशासनिक इकाईयों की गतिविधियाँ हिन्दी द्वारा संचालित होती है । सामान्यतया किसी स्वतंत्र देश की राष्ट्रभाषा ही वहाँ की राजभाषा का गौरव भी प्राप्त करती है लेकिन हमारे देश में कुछ व्यावहारिक कठिनाईयों के चलते ऐसा नहीं किया जा सका । भारतीय संविधान द्वारा हिन्दी को राजभाषा पद पर आसीन किए जाने के बावजूद अंग्रेजी को सहभाषा का दर्जा दिया गया है ।

हमारा देश कठिन लड़ाई के बाद सन् 1947 में आजाद हुआ और 1950 में सार्वभौम सत्ता सम्पन्न गणतंत्र बना । 26 जनवरी 1950 को हमने अपने देश का संविधान लागू किया । हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाए जाने की जो चर्चा विविध रूपों में हुई उसे ही विस्तारपूर्वक आपकी जानकारी के लिए नीचे दिया जा रहा है ।

भारतीय संविधान सभा के अधिकांश सदस्यों का यह मत था कि राष्ट्रीय सुदृढ़ता की प्राप्ति के लिए संविधान का एक प्रमुख हिस्सा "राष्ट्र भाषा संबंधी व्यवस्था" पर होना चाहिए । अपने धर्म प्रचार के दौरान स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले ही हिन्दी को राष्ट्र भाषा का दर्जा दे चुके थे । भाषा के विकास और प्रसार के लिए पण्डित मदन मोहन मालवीय तथा श्री पुरूषोत्तम दास टंडन ने 10 अक्टूबर 1910० ई० को हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की । गुजरात के भड़ौच नामक स्थान पर आयोजित द्वितीय गुजरात शिक्षा अपने भाषण में स्पष्ट रूप से कहा कि केवल हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है, हिन्दी और उर्दू एक ही हैं केवल उनकी शैली में अन्तर है । सन् 1918 में जब गाँधीजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए ।

उन्होने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा कि जब तक हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर तथा प्रान्तीय भाषाओं को जनजीवन में उनका उचित स्थान प्रदान नहीं किया जाता, तब तक स्वराज्य की सारी बातें व्यर्थ हैं । उन्होंने हिन्दी का उल्लेख करते हुए यह भी कहा कि यह देवनागरी या उर्दू लिपि में हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों के द्वारा पढ़ी और बोली जाती है ।

गाँधी जी द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दिए जाने से देश में हिन्दी प्रसार आन्दोलन को ताकत मिली । सन् 1918 में गाँधीजी ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की । इस संस्था के प्रासंगिक मार्गदर्शक के लिए राजगोपाल पार्थ एवं मोट्टरी सत्यनारायण का नाम सदैव स्मरण किया जाएगा । सन् 1920 में गाँधीजी ने मद्रास प्रेसीडेन्सी की जनता से अपील की कि वह लोगों द्वारा हिन्दी सीखने की राष्ट्रीय जरूरत को स्वीकार कर लें । इसके पश्चात्, मुख्यतः हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्त्वावधान में कई गैर हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए संगठन बनाए गए ।

सन् 1925 में कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन में गाँधीजी की ही प्रेरणा से कांग्रेस की भाषानार्ति की घोषणा निम्नलिखित शब्दों में की गई। "यथा संभव कांग्रेस की कार्यवाही हिन्दुस्तान में की जाएगी यदि भाषण-कर्ता हिन्दुस्तानी बोलने में असमर्थ है या जब आवश्यक हो अंग्रेजी या अन्य प्रान्तीय भाषा का प्रयोग किया जा सकता है । प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों की कार्यवाहियाँ सामान्यतः संबंधित प्राप्त की भाषा में संचालित होगी, हिन्दुस्तानी का प्रयोग भी किया जा सकता है ।"

अप्रैल, सन् 1935 में गाँधीजी ने साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन की अध्यक्षता की और जो कहा वही 'हरिजन' की 16 मई 1936 के अंक में छपा । इस लेख में उन्होने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के प्रयोग का पक्ष लेते हुए लिखा "आज जो लक्ष्य है, वह एक नई भाषा का विकास करना नहीं है, बल्कि उस भाषा को ग्रहण करना है जो अन्तर्प्रान्तीय भाषा के नाम से जानी जाती है । मैं समझता हूँ कि इसमें प्रयुक्त भाषा के रूप का पक्ष लेकर श्री मुंशी ने ठीक किया । उदाहरण के लिए कह सकते हैं कि तमिल या तेलुगु से हिन्दी या हिन्दुस्तानी में रूपान्तर करते समय संस्कृत शब्दों के प्रयोग को छोड़ना उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार अरबी भाषा से हिन्दी या हिन्दुस्तानी में रूपान्तर करते समय अरबी भाषा के प्रयोग से बचना ।"

सन् 1936 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन के अवसर पर गाँधीजी ने भारतीय साहित्य परिषद के निर्माण का स्वागत किया । उन्होंने इसकी अध्यक्षता स्वीकार कर ली । क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यिक सम्मेलनों का एक संघ स्वरूप ही इस परिषद का उद्देश्य था । गाँधीजी की प्रेरणा से ही सर्व प्रथम उसके संविधान में 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' शब्द प्रकट हुए ।

गाँधीजी के लिए यह एक कठिन समय था क्योंकि हर आदमी की हर बात को संतुष्ट करने वाले सूत्रों को लेकर के विभिन्न दृष्टिकोणों को समेकित कर रहे थे । यह तर्क करना तो ऐसी स्थिति में सरल था कि हिन्दुस्तानी, राष्ट्रभाषा होने के नाते, हिन्दी भाषी तथा उर्दू भाषी जनता दोनों को मान्य होनी चाहिए क्योंकि बाजार स्तर पर भाषा एक ही थी, लेकिन जब वह विचार की उच्चतर अभिव्यक्ति का माध्यम हुई, तो हिन्दुस्तानी नाम की कोई चीज नहीं रह गई उसे या तो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी होना था ना फारसीनिष्ठ । एक ओर साम्प्रदायिक स्थिति सघन और तीव्र होती गई, दूसरी ओर गाँधीजी हिन्दी और उर्दू के बीच की खाई को पाटने के लिए प्रयत्न करते गये और समझौतों की सलाह देते गये जो अव्यवहारिक थी । मुसलमानों के लिये अस्वीकार्य की और हिन्दुओं के लिए नापसन्द । तथापि कांग्रेस की सभाओं में हिन्दी और उर्दू ने एक प्रकार के सहनशील सह अस्तितत्व का विकास कर लिया । संविधान सभा के प्रारंभिक काल में मूल अधिकार संबंधी उप समिति ने जो गाँधीजी द्वारा दर्शाये गये मार्ग पर चल रही थी निम्नलिखित सूत्र ग्रहण कर लिया-

"जनता के विकल्प पर देवनागरी या फारसी लिपि में लिखित हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा की भाँति संघ की प्रथम राजभाषा होगी । अंग्रेजी उस समय तक के लिये संघ की द्वितीय राजभाषा होगी । जो संघ विधि द्वारा निश्चित करें जब तक कि संघ विधि द्वारा अन्य व्यवस्था न दें, संघ के सभी सरकारी अभिलेख हिन्दुस्तानी में, दोनों लिपियों में, और अंग्रेजी में भी रखें जायेंगे ।"

यह सूत्र इस आशा के साथ रखा गया था कि यदि संविधान सभा में मुस्लिम लीग सम्मिलित हुई तो यह दोनों पक्षों को पूरी तरह स्वीकार्य सिद्ध होगा । डॉ० अम्बेडकर ने १9 अप्रैल 1947 को अपना विचार देते हुए कहा कि हिन्दुस्तानी को न केवल संघ की वरन् सभी इकाईयों की भाषा बना दिया जाना चाहिये । अम्बेडकर के शब्दों में- "यथास्थिति धारा 9 हिन्दुस्तानी को संघ की राजभाषा घोषित करती है । समिति द्वारा शब्दावली के विचार से यह स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी राज्य की, अर्थात् संघ की भाषा होगी और साथ ही इकाईयों की भी । यदि प्रत्येक इकाई को स्वतंत्रता दी जाती है जैसे कि अन्य धारा में दी गई है कि वह किसी भी भाषा को राजभाषा बनाये तो इससे न केवल भारत के लिये एक राष्ट्रभाषा का उद्देश्य पराभूत हो जायेगा वरन् भाषायी विभेदता के कारण भारत का प्रशासन भी असंभव हो जायेगा । अत: मेरा अभिमत है कि 'संघ' के स्थान पर 'राज्य' शब्द रख दिया जाये हो सकता है कि इकाईयाँ हिन्दुस्तानी को अपनी राजभाषा बनाने के लिये समय मांगे । इसके लिये उन्हें समय देने में कोई हानि नहीं है । किन्तु इस विषय पर कोई संदेह नहीं हो सकता कि प्रारंभ से ही ईकाईयों पर हिन्दुस्तानी को ग्रहण करने की वैधानिक अनिवार्यता या बाध्यता होगी । हिन्दुस्तानी को हिन्दू लेखकों द्वारा संस्कृतनिष्ठ और मुसलमान लेखकों द्वार अरबीनिष्ठ बनाये जाने से बड़ा भारी खतरा है । यदि ऐसा होता है तो हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा न रह पायेगी और एक राष्ट्रीय अकादमी के बिना

हिन्दुस्तानी भाषा इस संकट पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ होगी । अत: यह आवश्यक है कि फ्रांस के राष्ट्रीय अकादमी की तरह इस देश के संविधान में यह व्यवस्था की जाये ।

निःसंदेह समस्या का यह एक समाधान था और बहुत से लोग यह मानेंगे कि एक समरूप राष्ट्र के रूप में भारतीयों को संगठित करने के लिए यह एक सही विकल्प था । लेकिन यह व्यवहारिक नहीं था । उदाहरण के लिए माना कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी को अन्तर्प्रान्तीय संबंध के लिए संपर्क भाषा की जरूरत है जबकि क्षेत्रीय भाषाओं का प्राप्तों में प्रयोग किया जाना था । उन्हीं के निर्देश में कांग्रेस ने सन् 1920 में भाषायी प्रान्तों के संबंध में प्रस्ताव पारित किया था और अब कदम पीछे हटाना संभव नहीं था ।

डॉ0 अम्बेडकर की एक सिफारिश यह भी थी कि हिन्दी के प्रचलन के लिए कोई समय सीमा नहीं तय की जानी चाहिए । संभवत: यह एक सही सिफारिश थी किन्तु हिन्दी के नेता इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे तथा प्रान्तीय नेताओं से जैसा कि बिल्कुल स्वाभाविक था । आशा नहीं की जा सकती थी कि वे स्वयं किस तिथि के लिए वचनबद्ध होते । आरंभ में कांग्रेस दल राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर निम्नलिखित वर्गो में विभक्त था-

क एक छोटा वर्ग ऐसा था जो संविधान द्वारा राजभाषा का निर्धारण नहीं चाहता था ।

ख एक छोटा किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली वर्ग 'हिन्दुस्तानी' को चाहता था ।

ग एक छोटा वर्ग दक्षिण भारतीयों का था जो चाहता था कि अंग्रेजी पन्द्रह वर्षो के लिए राजभाषा बनी रहे और तब तक के लिए हिन्दी का प्रश्न ठंडे बस्ते में रहे ।

घ पुरूषोत्तम दास टंडन के नेतृत्व में सदस्यों का एक काफी बड़ा वर्ग चाहता था कि हिन्दी को तत्काल राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचलित कर दिया जाए ।

ङ एक बड़ा वर्ग कोई ऐसा सूत्र चाहता था जो कार्य योग्य समझौता दे सके और अंततः हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा बना सके ।

जुलाई 1949 में कुछ लोग अनौपचारिक रूप से मिले । हिन्दी को देश की राजभाषा और देवनागरी को राजलिपि तथा उसके साथ दस वर्षों के लिए अंग्रेजी को अतिरिक्त राजभाषा बनाने के लिए उन्होंने संविधान के अनुच्छेदों का प्रारूप तैयार किया ।

इसका अनुमोदन संविधान सभा के लगभग 80 सदस्यों ने किया जो कांग्रेस दल का सबसे बड़ा वर्ग था ।

संविधान में किसी भी राजभाषा का उल्लेख न चाहने वाला वर्ग अपनी स्थिति सुदृढ़ न रख सका और यही दशा उस वर्ग की भी हुई जो केवल अंग्रेजी को बनाए रखना चाहता था । संविधान सभा में राजभाषा विषयक बहस में तीन प्रकार के विचारक प्रकट हुए-

क हिन्दी के वे उत्साही जिनका अभिमत था कि हिन्दी न केवल संघ की राजभाषा बनाई जा सकती थी और बनाई जानी चाहिए थी वरन् सीधे उसका प्रचलन उच्च न्यायालयों में भी हो सकता था ।

ख वे जो, 1947 ई. के पूर्व की तरह अंग्रेजी को जारी रखना चाहते थे, हिन्दी को द्वितीय भाषा के रूप में अध्ययन के लिए छोड़ देना चाहते थे ।

ग वे जो सोचते थे कि संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी को धीरे-धीरे उन्नति करते हुए अंग्रेजी का स्थान उस समय ग्रहण कर लेना चाहिए जब वह अंग्रेजी द्वारा किए जाने वाले कार्य को कुछ सीमा तक करने में समर्थ हो जाए ।

इन्हीं संघर्षों के बीच से वह सूत्र तैयार हुआ जो पत्र-पत्रिकाओं में 'मुंशी-आयंगर' सूत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सूत्र में समस्या को अत्यन्त यथार्थ रूप में लेकर हल किया गया था । अत: इसे सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ । इसने अत्यन्त उचित रीति से हिन्दी की महत् शक्ति और मुख्यत: संस्कृत से ही इसकी शब्दावली के ग्रहण करने की आवश्यकता पर बल दिया । अन्त में यही सूत्र अनेक परिवर्तनों के साथ संविधान के, अनुच्छेद 343 तथा 344 का अंग हो गया । तदनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा घोषित हुई जिसकी लिपि देवनागरी रही । संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को रखा गया । हिन्दी को राजभाषा बनाते समय यूनेस्को की राजभाषा की परिभाषा को भी हरिकेन्द्र में रखा गया था जिसके अनुसार "राजभाषा उस भाषा को कहा जाता है जो सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में स्वीकार की गई हो और शासन तथा जनता के बीच आपसी संपर्क के काम आती हो ।"

राजभाषा का प्रयोग मुख्यत: चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है- शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका । इन चारों में जो भाषा प्रयुक्त हो वह राजभाषा कहलाएगी । अब तक यह काम अंग्रेजी करती थी अब इसकी जिम्मेदारी हिन्दी को दी गई है । इस कार्य से प्रादेशिक भाषाओं को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचेगी वरन् उनकी शक्ति भी बढ़ेगी क्योंकि हिन्दी उनका भी पोषण करेगी । इस खण्ड की परवर्ती इकाई में आप हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के बारे में पढ़ेंगे जिससे भारत सरकार की राजभाषा विषयक नीति के विषय में आप एक सामग्रिक समझ बना पाएंगे ।

20.2.2 राज्य भाषा

राज्य भाषा जिन दो शब्दों के सुमेल से बना शब्द है वे हैं राज्य और भाषा इस तरह इस पद का अर्थ शब्दत: राज्य की भाषा है । भारत के विविध राज्यों की अपनी प्रादेशिक भाषाएँ हैं । एक भाषा एकाधिक राज्यों में भी बोली जाती है । जैसे बंगाल और त्रिपुरा में बंगला तथा तमिलनाडु और पांडिचेरी में तमिल का व्यवहार होता है । प्रत्येक राज्य को यह आजादी संविधान द्वारा प्रदत्त की गई है कि वे प्रयोजनानुसार अपने राज्य की भाषा में सरकारी अथवा गैर सरकारी कामकाज करें । केन्द्र के साथ संपर्क बनाने या पत्राचार में वे राजभाषा अथवा सह राजभाषा (अंग्रेजी) का प्रयोग कर सकते हैं । दंगल माल्टे के शब्दों में "जो भाषा किसी विशिष्ट राज्य में प्रमुखतया प्रयुक्त होती है, उसे राज्य भाषा (State language) कहते हैं । संविधान की आठवीं अनुसूची के अनुसार भारत की क्षेत्रीय भाषाएँ (Regional Language) पन्द्रह (अब इनकी संख्या 22 है) मानी गई हैं जो भाषावार प्रान्त रचना के अनुसार अपने अपने राज्य में प्रमुख रूप से बोली जाती है (इनमें कुछ ऐसी भाषाएँ है जिनका प्रयोग सामान्यत: कम होता है- संस्कृत आदि) किसी विशिष्ट राज्य की प्रमुख राज्य भाषा उसकी राजभाषा भी हो सकती है; जैसे- महाराष्ट्र राज्य की राज्य भाषा मराठी है जो महाराष्ट्र की राजभाषा भी है । इस संदर्भ में

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ का मन्तव्य उल्लेख है- "आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के समान है, जिसका एक-एक दल एक-एक प्रान्तीय भाषा और उसकी साहित्य-संस्कृति है । किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी । हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रान्तीय बोलियां, जिनमें सुन्दर साहित्य सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में (प्रान्त में) रानी बन कर रहे, प्रान्त के जनगण की हार्दिक चिन्ता की प्रकाश भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिन्दी भारत भारती होकर विराजती रहे ।"

वस्तुत: यदि अब तक राज्यों की राज्य भाषाएँ यथोचित स्थान पर प्रतिष्ठित हो गई होती और उन भाषाओं द्वारा राज्य के कामकाज चलने लगे होते तो भाषा संबंधी-कुछ समस्याएं जो आजादी के 62 वर्षों बाद भी मौजूद दिखाई पड़ जाती है, स्वत: हल हो गई होती । यह संतोषप्रद है कि संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में संघ की राजभाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उपयुक्त सम्मान दिया जा रहा है । अगली इकाई संविधान में हिन्दी की स्थिति को पढ़ने के बाद राजभाषा, राज्य भाषा और राष्ट्रभाषा से संबंधित आपकी अवधारणा पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगी ।

20.2.3 राजभाषा और सह राजभाषा

आजादी की लड़ाई के दौरान किसी तरह गांधीजी एवं अन्य अनेक नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दी पर हम इकाई के आरंभ में चर्चा कर चुके हैं । आप इस बात से अवगत हो चुके हैं कि संविधान की आठवीं अनुसूची में अब तक 22 भाषाओं को शामिल किया जा चुका है । इन सभी भाषाओं के बीच संयोजक के रूप में किसी भाषा का होना जरूरी है । प्रशासन की सहूलियत और अखिल भारतीय स्तर पर संप्रेषण व्यवस्था के लिए एक संपर्क भाषा का प्रयोजन भी अपरिहार्य है । अत: हिन्दी को एकमेव राष्ट्रभाषा न स्वीकार करने वाले भी प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए उसे राजभाषा बनाने में सहमत रहे हैं । हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच के मधुर संबंधों को देखते हुए जहाँ राष्ट्रभाषा या राजभाषा की समस्या हल होती दिख पड़ती है वहीं एक वर्ग अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों, वैज्ञानिक उपलब्धियों और आर्थिक विकास की दृष्टि से समृद्ध और विकसित अंग्रेजी भाषा की पैरवी करता है । इस वर्ग की दलील है कि किसी देश की राजभाषा का उस देश की भाषा होना आवश्यक नहीं । हिन्दी को राजभाषा का सम्मान दिए जाने पर उच्च शिक्षा प्रशासन की धुरी बना अधिकारी वर्ग कहीं मन ही मन सुख भी है । शासन तंत्र की व्यवहारिक सुविधा के लिए मूलत: हिन्दी-अंग्रेजी की द्विभाषिक स्थिति संवैधानिक बाध्यता बनी है ।

भारतीय संविधान के भाषा विषयक अनुच्छेदों की विवेचना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं ने भाषायी तनावों को दूर करने का यथासमय प्रयास किया है तदनुसार प्राथमिक भाषा के रूप में हिन्दी और सहयोगी राजभाषा के रूप में 'अंग्रेजी' को स्वीकृति परिलक्षित की जा सकती है । अगली इकाई में भारत सरकार की राजभाषा नीति पर चर्चा करते हुए यह विषय विस्तारपूर्वक लिखा गया है । उसका अध्ययन करते हुए आप राजभाषा हिन्दी और सह राजभाषा अंग्रेजी का ठीक ठाक अवस्थान समझ पाएंगे ।

20.2.4 राष्ट्रभाषा

आमतौर पर जो भाषा समस्त राष्ट्र के अधिक से अधिक लोग पढ़ते, लिखते, समझते और दैनिक व्यवहार में बोलते हैं और जिस भाषा को हम राष्ट्र की आत्मा को सक्षमता से पहचान कर उसे अभिव्यक्त करते देखते हैं उसे राष्ट्रभाषा (National Language) कहते हैं । क्षेत्र विशेष की भाषा जब अत्यधिक उन्नत बन कर महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लेती है और उसका प्रयोग देश के सार्वजनिक कार्यों में प्रमुखता से किया जाने लगता है तब वह राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती है । भारत वर्ष में देश की समस्त इकाईयों को जोड़कर संपर्क के प्रमुख साधन के रूप में हिन्दी ने राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त कर लिया है किन्तु हमारे संविधान में कहीं भी राष्ट्रभाषा का उल्लेख नहीं पाया जाता । संविधान के लगभग सभी उपबंध और अनुच्छेद या तो राजभाषा के बारे में चर्चा करते हैं अथवा प्रादेशिक भाषाओं के बारे में । राष्ट्रभाषा समस्त राष्ट्र की वाणी होती है और उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत होता है । इस दृष्टि से हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा होने का सम्मान अर्जित करना था किन्तु संवैधानिक सच यह है कि भारत में आठवीं अनुसूची में शामिल सभी बाइस भाषाएँ राष्ट्र भाषा हैं और हिन्दी उनमें से एक है ।

जब संविधान पारित हुआ तब यह आशा और प्रत्याशा जागरूक थी कि भारतीय भाषाओं का विस्तार होगा, राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में द्रुत गति से प्रगति होगी और संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होगी । (विस्तृत विश्लेषण के लिए अगली इकाई हिन्दी की संवैधानिक स्थिति देखें) 13 सितम्बर 1949 के दिन संविधान सभा की बहस में हिस्सा लेते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यह रेखांकित किया या कि यधपि अंग्रेजी से हमारा बहुत हित साधन हुआ है और इसके द्वारा हमने बहुत कुछ सीखा है तथा उन्नति की है- "किसी विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र महान नहीं हो सकता ।" उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की सोच को आधारभूत मानकर कहा कि विदेशी भाषा के वर्चस्व से नागरिकों में दो श्रेणियां स्थापित हो जाती हैं- क्योंकि कोई भी विदेशी भाषा आम लोगों की भाषा नहीं हो सकती ।" नेहरूजी ने मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा- "भारत के हित में, भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के हित में ऐसा राष्ट्र बनाने के हित में जो अपनी आत्मा को पहचाने, जिसे आत्म विश्वास हो जो संसार के साथ सहयोग कर सके, हमें हिन्दी को अपनाना चाहिए ।" कागज पर तो बहुत सी बातें रही लेकिन 1949 से लेकर आज तक हम राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ में राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त की यह घोषणा भव्य है- भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी को साकार नहीं कर पाए । रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने खेत में ऐसी सुनहरी फसल फली है, वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही पड़ी रहे, तो भी उसकी स्वाभाविक उर्वरता नहीं मर सकती, वहाँ फिर खेती के सुदिन आयेंगे और पौष मास में नवान्न उत्सव होगा ।" सचमुच हिन्दी ही हमारी राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है । हिन्दी भारत के बहुमत की भाषा है, यह राष्ट्रीय भाषा होने का दावा कर सकती है और भविष्य में हिन्दी का भारत की राष्ट्रभाषा होना निश्चित है ।

20.2.4.1 राष्ट्र भाषा और राजभाषा में तात्विक अन्तर

हिन्दी इस देश की राष्ट्रभाषाओं में से एक और राजभाषा दोनों है । राष्ट्रभाषा लोक संवेदन तथा स्पंदन को लेकर चलती है जबकि राजभाषा अपनी अभिव्यक्ति में यांत्रिक संवेदनहीन और एक सीमा तक अनात्मीय होती है । यधपि इसमें कोई संदेह नही कि किसी देश की राष्ट्र भाषा ही प्राय: उस देश की राजभाषा हो जाती है और यह क्रम उलट भी जाता है । अर्थात् राजभाषा ही राष्ट्रभाषा बन जाती है । फिर भी दोनों के बीच तात्विक अन्तर के बिन्दु खोजे जा सकते हैं:-

1. राष्ट्रभाषा और राजभाषा के बीच पहला अंतर उनके प्रयोग क्षेत्र को लेकर है । जहाँ राजभाषा का प्रयोग क्षेत्र विधान, शासन, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका तक सीमित हैं, वही राष्ट्रभाषा का व्यवहार क्षेत्र असीम है । वह राजभाषा के क्षेत्र में संचरण करने के साथ-साथ देश की विपुल संख्यक जनता के सुख दुःख, विरह-मिलन संपर्क एवं व्यवहार की भाषा है ।
2. इन दोनों के बीच दूसरा महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि राष्ट्र भाषा सामान्य मनुष्य के भावोच्छवास को लिपिबद्ध करती है, वह किसी सम्राट के इशारे पर न चल, जनमानस के स्पंदनों में मुखर होती है जबकि राजभाषा का भाग्य शासक, प्रशासक के भाग्य से जुड़ा रहता है, उसे आसन पर बैठाया भी जा सकता है और आसन से च्युत भी किया जा सकता है ।
3. तीसरा अन्तर इनकी कार्यविधि से जुड़ा है । राजभाषा का संबंध प्रशासनिक कार्य प्रणाली के संचालन से होता है अत: उसका संपर्क बुद्धिजीवियों, प्रशासकों, सरकारी कर्मचारियों और प्राय: शिक्षित समाज से होता है जबकि राष्ट्रभाषा का सरोकार राष्ट्रीय लोक जीवन से रहता है, अत: शिक्षण-प्रशिक्षण का कोई अनिवार्य अनुबंध नहीं होता ।
4. चौथा अन्तर, दोनों में उठी समस्याओं के समाधान के मार्ग को लेकर है । राजभाषा जहाँ समस्याओं के समाधान के लिये बौद्धिक वर्ग की निष्पत्तियों पर निर्भर करती है, फाइलों-पुस्तकों की दुनिया से ऐतिहासिक संदर्भो को चुनती है और उनके परिप्रेक्ष्य में समस्याओं का निदान तलाशने की कोशिश करती है, वहीं राष्ट्र भाषा लोक भाषा बुद्धि और बल की तुलना में ह्रदय और भावनाओं के उद्‌बोधन के जरिये समस्याओं के रागात्मक काल्पनिक हल तलाशने की चेष्टा करती है । राष्ट्र भाषा जरूरत और प्रसंग के अनुसार जनाक्रोश और जनादेश तैयार करती है ताकि देश की समस्याओं के समाधान को सहज और व्यवहारिक तरीके से प्रस्तुत किया जा सके । राजभाषा प्राय: राजनीतिक रणनीति का सहारा ले समस्या को गोलमोल रूप में प्रस्तुत करती है जबकि राष्ट्र भाषा, सामाजिक-सांस्कृतिक बिन्दुओं के सहारे समाधान की सीधी-सरल रेखा खींचती है । आ. नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में राजभाषा और राष्ट्रभाषा का तात्त्विक अंतर इस प्रकार है- "राजभाषा उसे कहते हैं जो केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्‌वारा पत्र व्यवहार, राजकार्य और अन्य सरकारी लिखा पढ़ी के कार्य में लाई जाये । राष्ट्र

भाषा की कल्पना इससे भिन्न है । उसका पद और भी बड़ा है । उसी भाषा का गौरव सबसे अधिक हो सकता है और वही राष्ट्र भाषा कहला सकती है जिसको सब जनता समझती हो और जिसका अस्तितत्व सामाजिक ओर सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपरक हो ।" संक्षेप में राष्ट्र भाषा जहाँ राष्ट्रीय हितों एवं राष्ट्रीय जीवन के स्पंदनों, आदर्शों का अभिलेख बनकर रह जाती है, वहाँ राजभाषा राजनीति बोध से प्रेरित अंतर्राष्ट्रीय संपर्क से जुड़ी रहती है ।

20.2.5 संपर्क भाषा

जिस भाषा के माध्यम से एक-दूसरे से संपर्क किया जा सके उसे संपर्क भाषा (Contact Language) कहा जाता है । अनेक भाषाओं के अस्तित्व के बावजूद व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य तथा देश विदेश के बीच किसी एक या विशिष्ट भाषा द्वारा संपर्क स्थापित किया जाता है । यही संपर्क भाषा होती है । एक ही भाषा परिपूरक भाषा तथा संपर्क दोनों भी हो सकती है । भारत वर्ष की संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी प्रतिष्ठित होती जा रही है ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत होती है । प्राचीन काल में भारत में संस्कृत संपर्क भाषा थी लेकिन धीरे-धीरे वह स्थान हिन्दी ने ले लिया है । संचार माध्यमों में विस्फोट क्रांति के बाद तो परस्पर संवाद यहाँ तक कि रोटी-रोजी से भी जुड़कर हिन्दी संपर्क का सशक्त जरिया बन चुकी है । हिन्दी के प्रति एक समर्पित विदेशी विद्वान डॉ0 कामिल बुल्के ने हिन्दी की क्षमता का गुणगान करते हुए लिखा था-सन् 1918 ई. में भारतीय स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति महात्मा गाँधी इसी शर्त पर वाइसराय से मिलने के लिए राजी हुए कि वह हिन्दी में बातचीत करेंगे । भारत की भावी राजभाषा के बारे में उन्होने सुस्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि स्वराज्य केवल अंग्रेजी जानने वाले भारतीयों के लिए होगा तो निस्संदेह हिन्दी संपर्क भाषा हो सकेगी । उन्होने यह भी लिखा कि देश में जो एकता अंग्रेजी भाषा द्वारा दिखाई जाती है, वह उस वक्त तक ही चल सकती है जब तक थोड़े से लोग शिक्षा पाते हैं । जब देश स्वतंत्र होगा और हर बच्चा शिक्षा पाएगा तो वह पढ़ाई विदेशी भाषा में नहीं, बल्कि देश की विभिन्न भाषाओं में होगी । उन अलग-अलग भाषाओं को बोलने वालों को मिलाने के लिए उन्होने हिन्दी को चुना । देश के कुछ प्रदेशों में एक और कुछ प्रदेशों में दो प्रतिशत लोग कुछ अंग्रेजी जानते हैं, अत: अंग्रेजी के ज्ञान के आधार पर देश की भावात्मक एकता अधूरी रहेगी । अंग्रेजी भाषा प्रजातंत्रवादी भारत की राजभाषा रहने योग्य नहीं है ।”

आज इतने वर्षों बाद व्यावहारिक क्षेत्र में हम हिन्दी को उसकी संपर्क भाषा की भूमिका को बड़े दायित्वपूर्ण ढंग से निभाते देख सकते हैं । भारत जैसे बहुभाषी देश में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रयोग में लाई जाती है । कश्मीर से कन्या कुमारी, केरल से कारगिल, गौहाटी से चौपाटी, गुजरात से उत्तर पूर्व तक अनेक भाषाएँ और बोलियाँ बोलने वाले निवास करते हैं । ये लोग देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से की यात्रा शौकिया ही नहीं, व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रयोजनों से भी करते हैं । अत: ऐसी भाषा की जरूरत स्वाभाविक है जिसके मलयालम भाषी बंगला भाषी से और उडिया भाषी गुजराती बोलने वाले से तथा मराठी

बोलने वाला मैथिली भाषी से संवाद तथा वैचारिक आदान-प्रदान कर सके । हिन्दी इस प्रयोजन को पूरा करती है और भारत की संपर्क भाषा के रूप में दिनोंदिन जनप्रिय होती जा रही है ।

20.3 भारत सरकार की भाषा नीति में त्रि भाषा सूत्र की संकल्पना

हिन्दी के राजभाषा, राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा के बारे में आपको जानकारी दी गई । इसी प्रसंग में त्रि-भाषा सूत्र से भी आपको अवगत कराना जरूरी है । नीचे इसके बारे में सूचना प्रस्तुत है ।

भाषाई विविधता की दृष्टि से भारत विशाल बहुभाषी देश है । स्वतंत्रता के बाद भारत में संप्रेषण एवं प्रशासनिक कार्यों के लिए राष्ट्रभाषा का चयन सबसे बड़ी समस्या थी । भाषाई दृष्टि से अल्पसंख्यकों द्वारा लगातार प्रतिरोध किया जा रहा था । 50 के दशक में भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के कारण भाषा एक संवेदनशील मुद्दा बन गई । शिक्षा का माध्यम, विचारों की अभिव्यक्ति एवं क्षेत्रीय पहचान के संदर्भ में यह आज भी ज्वलन्त विषय है । भारत की भाषा नीति के साथ दो तथ्य जुड़े हुए हैं :-

क. सभी भाषाओं की रक्षा

ख. विभिन्न भाषाओं के मध्य संपर्क

राज्यों के पुनर्गठन में सभी भाषाओं के मध्य संपर्क के लिए हिन्दी को राष्ट्रीय भाषाओं में से एक की मान्यता (राजभाषा का पद) दी गई । इसी क्रम में भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन और एक राष्ट्र भाषा के सिद्धान्त से उपजी समस्या के समाधान के लिए बहुभाषी राष्ट्र में भारत सरकार ने 1961 में त्रिभाषा सूत्र नीति ग्रहण की । केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के अनुमोदन के बाद 1956 में सरकार इस सूत्र को स्वीकृत कर चुकी थी । इसे राष्ट्रीय समाधान नीति के तहत अपनाया गया और 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी शामिल किया गया । इसके अनुसार हिन्दी अंग्रेजी भाषाओं के साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं (जिनमें से एक भाषा दक्षिण भारत की अवश्य हो) का अध्यापन सुनिश्चित करवाना था । हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं के साथ क्षेत्रीय भाषाओं में से कोई एक भाषा अनिवार्य थी जबकि हिन्दीतर प्रदेशों में क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा का अध्ययन-अध्यापन अनिवार्य बना ।

स्कूली शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र नीति जिनमें दो बिन्दु हिन्दी से जुड़े हुए कहे जा सकते थे, इसके क्रियान्वयन के लिये शिक्षा आयोग ने छः सूत्रीय सिद्धान्त सुझाये हैं जिनमें से प्रमुख है :-

क. हिन्दी संघ की राजभाषा होगी और ऐसी अपेक्षा है कि निर्धारित समय-सीमा के भीतर यह समूचे देश की भाषा बन जायेगी । भाषा पाठ्यक्रम में मातृभाषा के बाद हिन्दी द्वितीय भाषा होगी,

ख. राज्य, जिसमें अंग्रेजी या हिन्दी का द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य शिक्षण करवाया जायेगा, इसमें शिक्षा का समय स्थानीय प्रोत्साहन और आवश्यकता पर निर्भर होगा । यह विषय पूरी तरह राज्य के विवेकाधीन होगा ।

त्रिभाषा सूत्र नीति के संदर्भ में आने वाले वर्षों में हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के लिये शिक्षा आयोग की रिपोर्ट केन्द्रित थी । गुजरात कमेटी ने पुन: अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी के प्रोत्साहन के लिये त्रिभाषा सूत्र का आधुनिकीकृत रूप प्रस्तुत किया जिसके प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं :-

क. क्षेत्रीय / प्रादेशिक भाषा

ख. उर्दू / क और ख छोड़कर अन्य आधुनिक भारतीय भाषा

ग. अंग्रेजी या अन्य आधुनिक यूरोपियन भाषा ।

सभी प्रकार के सुझावों एवं संस्तुतियों के बाद भी भारत में त्रिभाषा सूत्र नीति एवं संस्तुतियों के बाद भी भारत त्रिभाषा सूत्र नीति पूर्ण रूप से सफल नहीं हुई । इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिये भारत सरकार ने एक और प्रभावी योजना बनाई है जो इस प्रकार है-

- अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी अध्यापकों की नियुक्ति के लिये केन्द्र सरकार सहायता जारी रखेगी।
- राज्यों में हिन्दी शिक्षण संस्थानों की स्थापना ।
- त्रिभाषा नीति में हिन्दी के निगरानी की जिम्मेदारी केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा की होगी जो अनुसंधान और प्रशिक्षण की उपलब्धता को सुनिश्चित करेगा ।
- कम्प्यूटर आधारित भाषा-शिक्षण एवं अनुदेशन के लिए केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर को बी0बी0सी0 माइक्रो कम्प्यूटर उपलब्ध करवाये जायें ।

जैसा कि ऊपर आपको बताया जा चुका है । दक्षिण भारत में त्रिभाषा सूत्र को छोड़कर द्विभाषा सूत्र को ही अधिक व्यवहारिक मान कर उसे ही स्वीकार किया गया है । संघ की लोक सेवाओं के बारे में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों की रक्षा का सरकार का आश्वासन और संसद में पारित संकल्प की निम्नलिखित बातें भी सर्वथा उचित है:

1. उन सेवाओं और पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्त्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन के लिए केवल अंग्रेजी अथवा हिन्दी दोनों, जैसी कि स्थिति हो, का उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिन्दी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यत: अपेक्षित होगा ।
2. परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं सूची में शामिल सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी ।

ऊपर दिए गए संकल्पों से एक ओर जहाँ हिन्दी को उच्चतर स्थान दिया गया है वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी को बरकरार रखने का बढ़ावा भी । स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र में तथा सरकार की भाषा नीति में जब तक अपेक्षित परिवर्तन नहीं किए जाते तब तक अंग्रेजी के प्रयोग पर रोक लगाना असंभव रहेगा ।

20.4 माध्यम अथवा संचार भाषा हिन्दी

आज जन संचार माध्यम हमारे जीवन और राष्ट्रीय विकास का अविच्छिन्न अंग बन गया है । जन संचार के विभिन्न माध्यम सूचना, शिक्षा, मनोरंजन आदि के कार्यों से जुड़े हैं । जन संचार के इन माध्यमों की पहुँच विभिन्न श्रोता वर्ग तक होती है । उनकी अलग-अलग विशेषताएँ होती है जिनके कारण इसमें प्रयुक्त भाषा का स्वरूप भी बदलता रहता है । आज के दौर में सुबह से शाम तक यहाँ तक कि रात्रि की निस्तब्धता में भी जन संचार माध्यम मनुष्य के साथी होते हैं । अखबार, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, छोटे पर्दे के धारावाहिको, विज्ञापन एवं इन्टरनेट ने इस क्षेत्र में क्रांति ला दी है । माध्यमों ने हिन्दी के विकास के नए मोड़ पर ला खड़ा किया है और इसकी भाषा में नित नए प्रयोग परिलक्षित किए जा रहे हैं । आइए इन सबके बारे में आपको एक विस्तृत जानकारी दी जाए ।

हिन्दी मूलरूप में तो हमारी जन संपर्क की भाषा रही है । आदिकाल से अब तक के भाषिक परिवर्तनों में हिन्दी का सम्मान बढ़ा है । आध्यात्मिक गुरू हो या साहित्यकार सभी ने महसूस किया कि हिन्दी के बिना ज्ञान विचार और भावनाओं को जन-जन तक पहुँचाना मुश्किल है । भारत में होने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलनों तक की भाषा हिन्दी रही है और वर्तमान जन संचार माध्यमों को संदेश संप्रेषण के लिए हिन्दी की परम जरूरत है । वर्तमान परिदृश्य में संचार माध्यम नियंत्रक शक्ति के रूप में उभर रहे हैं । इनकी भूमिका अत्यधिक महत्चपूर्ण हो गई है । लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में अडिग रूप से स्थापित पत्रकारिता की विविध इकाइयाँ सरकारी गतिविधियों तक पर प्रत्यक्ष-परोक्ष नियंत्रण रखने में सक्षम है ।

वैश्वीकरण के इस दौर में व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने के संचार माध्यमों की भूमिका सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुई है । आज के युग में, इन माध्यमों की भाषा का भी 'ग्लोबलाइजेशन' हो रहा है । अब मीडिया की भाषा अपने पारंपरिक रूप की कैंचुली उतार परिवर्तन के संक्रमित दौर से गुजर रही है । संचार माध्यमों का मकसद जन-जन के मध्य संपर्क स्थापन है न कि भाषा का परिष्कार करना । साथ ही इनका प्रयोजन जन समुदाय, समाज एवं राष्ट्र का विकास करना, मनोरंजन करना एवं ज्ञानवर्द्धन करना भी है । तात्पर्य यह है कि जन संचार माध्यम ज्ञान-विज्ञान तथा व्यवहारिकता से संबंधित दैनिक घटनाओं का ब्यौरा प्रदान करते हैं । इन सभी लक्ष्यों को पूरा करने के लिए भाषा की जरूरत होती है । भाषा का सरोकार सदियों से शासकों और शासन से रहा हैं । अत्यन्त प्राचीनकाल से भाषा सत्य के गलियारे में खड़ी नजर आई है । जैसे-जैसे युग बदला, भाषा भी अपना स्वरूप बदलती गई । संचार माध्यमों की भाषा और सरकार की भाषा जन साधारण की भाषा से अधिक परिष्कृत रूप में प्रयुक्त होती रही है । सरकार का भाषिक दृष्टिकोण प्रशासनिक क्रियाकलापों के संदर्भ में परिष्करण करना है जबकि संचार माध्यमों की भाषा पर उत्पादकों और व्यापारियों ने बाजार और विज्ञापनों के जरिए कब्जा कर लिया है । उदाहरण के लिए यदि हम मुद्रित माध्यमों को ध्यान से देखें तो पाएंगे इनकी भाषा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है न कोई मानक ही तय हुआ है । अपनी और बाजार की जरूरत के अनुसार ये भाषा गढ़ लेते है, इसलिए इनकी भाषा

हिन्दीवन के स्थान पर 'भाषा की खिचड़ी' के रूप में प्रयुक्त होती है । आज के दौर में मुद्रित माध्यमों में भाषा का स्थान गौण होने लगा है । मीडिया का काम पाठक की रूचि और मुनाफे की दृष्टि में रखते हुए और मुख्यत: ग्राहक संख्या बढ़ाने के लिये चटपटी सामग्री प्रस्तुत करना है । इस कारण भाषा केवल पाठकों तक संप्रेषित हो सकने की चेष्टा करती है । मौजूदा दौर में माध्यमों की भाषा न ही शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी हो सकती है और न ही उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी । सूचना प्रौद्योगिकी के विकास और बाजारवाद के बढ़ते दायरे में हिन्दी भाषा ने नये विषय, नये संदर्भ, नये शब्द और नई भाषिक संस्कृति विकसित कर ली है । जहाँ पत्र-पत्रिकाओं के शैशवकाल में आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के जरिये हिन्दी को परिष्कृत करने का भरपूर प्रयास किया, वहीं आज की पत्रिकाएँ हिन्दी का स्वरूप और उसकी स्थिति बदल रही है । जैसे मुख्यमंत्री जी ने हाईटेक कम्प्यूटर लायब्रेरी का उद्घाटन किया । 'आज ऑन लाइन स्टेडी' से पढ़ाई आसान हो गई है । जैसे वाक्यों में न तो भाषा के परिष्कार की परवाह है और न उसके वाक्य-विन्यास की । शुद्धता पर दृष्टि हिन्दी भाषा का व्याकरणिक और लिप्यंतरित स्वरूप मीडिया द्वारा निरन्तर परिवर्तित किया जा रहा है । अब इन माध्यमों में मिश्रित शब्दावली जैसे सुपरहाइवे, मल्टीमीडिया, हाइपर टेक्सैट, सर्वर, कम्प्यूटर ऑन लाइन, ब्रान्ड के साथ-साथ खिलाफ, प्रावधान, सबक नाराज, कानून जैसे हजारों शब्दों का प्रयोग हिन्दी में बेधड़क किया जा रहा है।

श्रव्य माध्यमों में आकाशवाणी सबसे सशक्तम् माध्यम है जो प्रतिदिन देश की वर्तमान स्थिति की ताजा जानकारी प्रसारित करता है । राष्ट्रीय और प्रान्तीय केन्द्रों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं का अनुप्रयोग सहजतापूर्वक कर रहे हैं । रेडियो की भाषा जन सामान्य की भाषा है जिसे बड़ी संख्या में लोग समझ सकते हैं । रेडियों से प्रसारित हिन्दी कार्यक्रम दुनिया के कई देशों में लोकप्रिय है । श्रव्य माध्यम में हिन्दी की भाषिक स्थिति मुद्रित माध्यमों की भाँति मिश्रित शब्दावली युक्त बनती जा रही है क्योंकि इस पर भी बाजारवाद का गहरा प्रभाव है । दृश्य श्रव्य माध्यमों ने सस्ती लोकप्रियता बढ़ाने के उद्देश्य से जनता और बाजार की भाषा को अपना लिया है । कॉन्वेंट शिक्षित उद्घोषक कभी-कभी बिना सोचे समझे ही बोल पड़ता है- वी आर वैरी प्लीन्ड टू से दैट वी आर गोइंग टू सेलिब्रेट हिन्दी डे टुमाँरी- लेकिन ऐसे प्रयोगों से हिन्दी की स्थिति कमतर नहीं आंकी जा सकती । दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले अनेक धारावाहिकों ने हिन्दी को और मजबूत बनाया है । निरन्तर नई-नई संभावनाओं जरूरतों की खोज में भाषा का परिनिष्ठित स्वरूप बदला है । दूरदर्शन की हिन्दी अनुवाद की भाषा न होकर जन साधारण की भाषा है । दृश्य-श्रव्य माध्यमों में सिनेमा ऐसा शक्तिशाली माध्यम है जिसने हिन्दी को वैश्विक स्तर पर सम्मान दिलाया और भाषा के लिहाज से सम्पूर्ण भारत को एक भाषिक सूत्र से जोड़ा । सच कहें तो सिनेमा ने हिन्दी भाषा के मानक स्वरूप को छोड़ अंग्रेजी, उर्द, फारसी और प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों के शब्दों का समावेश करते हुए जिस तरह फिल्मों में संवाद और गीत लिखें, उससे संविधान की यह शर्त भी पूरी हुई लगती है कि हर जगह के शब्द लेते हुए हिन्दी देश की सामाजिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देगी ।

आज का युग विज्ञापन का युग है । ज्ञान के सूत्र वाक्य बने, विज्ञापन की भाषा भी मिश्रित है । विज्ञापनों की भाषा का मूल प्रयोजन भाषा का परिष्करण नहीं अपितु ग्राहक बटोरना है । इसलिये वह ग्राहक की भाषा को अपनाता है । उसका मकसद है-थोड़ा कहना, थोड़ा सुनना और ज्यादा समझना । तुकबंदी विज्ञापन के भाषा की खास प्रविधि है और हिन्दी इसके लिए फिट है । जैसे- "सौम्य सुहार्न रूप का राज, फेयरलवली बना रहा है आज" । अंग्रेजी की रोमन लिपि में तुकबंदी- 'संडे हो या मंडे रोज खाओ अण्डे' भी कम प्रभावशाली नहीं । जन संचार माध्यमों के बढ़ते प्रभाव से ऐसा प्रतीत होने लगा है कि आज संचार माध्यमों के बिना संसार नहीं चल सकता, विज्ञापन के बिना उत्पाद बिक नहीं सकता और हिन्दी के बिना विज्ञापन चल नहीं सकता ।

सूचना प्रौद्योगिकी के वर्तमान दौर में कम्प्यूटर की महत्ता को कौन अस्वीकार करेगा । कम्प्यूटर तार्किक शक्ति के भण्डार का एक ऐसा मशीनी यंत्र है जो संदेशों और सूचनाओं को सहजता से संग्रह एवं संप्रेषण कर सकता है । भारतीय बाजार में बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी उपभोक्ता है । इसलिये सॉफ्टवेयर कम्पनियों ने हिन्दी में सॉफ्टवेयर प्रोग्राम तैयार कर लिये हैं । कम्प्यूटर पर हिन्दी भाषा का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है । हिन्दी भाषा के किसी भी समाचार को वेबसाइट के जरिये कम्प्यूटर पर पढ़ा जा सकता है । सूचना तंत्र की बढ़ती गति से हिन्दी का प्रयोग भी गति पकड़ने लगा है । हिन्दी के प्रचार-प्रसार को देखते हुए लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, विज्ञापन, सिनेमा, कम्प्यूटर, इंटरनेट जैसे अत्याधुनिक विकसित जनसंचार माध्यमों पर हिन्दी भाषा का प्रचलन बढ़ जायेगा ।

सारांशत: संचार के सभी माध्यमों ने हिन्दी के विकास को गतिशीलता प्रदान की है । उसे राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर प्रतिष्ठा दिलाई है और उसे संचार की भाषाओं में तीसरे स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है । विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न भाषा-भाषियों तक हिन्दी को लोकप्रिय बनाने का महत्तम कार्य किया है । भारतीय दूरदर्शन और सिनेमा-धारावाहिकों ने । आदिवासी भू-भाग या दूरदराज के इलाकों में निरक्षर या अल्पशिक्षित लोगों में हिन्दी को रेडियों ने जनप्रिय बनाया है । पूरे भारतवर्ष में एफ०एम० चैनल सुनने वालों की संख्या करोड़ों में पहुँच गई है । दूरदर्शन, सिनेमा और रेडियो जन संचार के ऐसे माध्यम हैं जिन्होंने आजाद देश में अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व के संक्रमण काल में हिन्दी को प्रतिष्ठित भाषा का गौरव देने का साहसपूर्ण कदम उठाया है । समस्त विषमताओं के बावजूद दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों की हिन्दी अपने मार्ग पर अनवरत चलती रही है और सारे देश को भाषिक एकता की डोर में बांधने का दायित्व सहजता और निष्ठा से निभा रही है ।

20.5 विचार संदर्भ / शब्दावली

1. द्विभाषी नीति- भारत सरकार के कार्यालयों द्वारा जो भी दस्तावेज तैयार किए जाएंगे वे राजभाषा हिन्दी और सह राजभाषा अंग्रेजी दोनों में होंगे ।
2. त्रिभाषा सूत्र-हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषा के रूप में दक्षिण की एक भाषा को पढ़ाए जाने का संवैधानिक प्रावधान ।

3. आठवीं अनुसूची-संविधान की वह अनुसूची जिसमें शामिल सभी भाषाएँ (बाइस) राष्ट्रीय भाषाएँ है ।
4. प्रशासनिक प्रयोजन- शासन और केन्द्र के कामकाज को पूरा करने के लिए व्यवस्था की जाए ।
5. प्रारूपण- कार्यालयी कार्यविधि का महत्वपूर्ण अंग । सरकारी पत्रों का कच्चा या अंतिम प्रारूप तैयार करना ।
6. विधिक- कानून से संबंधित ।
7. आयंगर मुंशी फार्मूला- कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी और गोपाल स्वामी आयंगर की अध्यक्षता में यह फार्मूला बना जिसके तहत संघ की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी रखने पर सहमति बनी ।
8. कार्य साधन ज्ञान - जिन अधिकारियों / कर्मचारियों ने मैट्रिक या उसके समकक्ष स्तर का हिन्दी ज्ञान प्राप्त कर लिया है उन्हें कार्य साधक ज्ञान प्राप्त माना जाता है ।
9. सह राजभाषा- भारत सरकार की द्विभाषी नीति के अनुसार हिन्दी राजभाषा और अंग्रेजी सह राजभाषा होगी और समस्त दस्तावेज दोनों भाषाओं में रखे जाएंगे ।
10. धुरी-केन्द्र
11. कार्यविधि साहित्य - प्रशासनिक कार्य में इस्तेमाल की जाने वाली नियम पुस्तिकाएँ संहिताएँ और नियमावलियाँ ।
12. पैरवी-सिफारिश
13. आधारभूत-मौलिक
14. अंतर्राष्ट्रीय अंक- संविधान द्वारा अंग्रेजी के अंकों को अन्तर्राष्ट्रीय अंक माना गया है ।
15. विचाराधीन- जिस मामलें में कार्यवाही पूरी नहीं हुई ।

20.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप हिन्दी के साहित्यिक रूप से इधर उसके उन रूपों से परिचित हुए जो उसे एक सक्षम और समृद्ध भाषा के रूप में मान्यता दिलाते हैं । आप हिन्दी के राजभाषा, राज्य भाषा और संपर्क भाषा के साथ माध्यम भाषा के रूप में हिन्दी की दिनोंदिन बढ़ती लोकप्रियता से अवगत हो सके । यह समझ सके कि राज्य और प्रशासन की भाषा राजभाषा कहलाती है । भारतीय संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को माना गया है । संविधान में जो प्रावधान दिए गए हैं उनके अनुसार संविधान लाग होने के पन्द्रह वर्ष बाद तक की अवधि अर्थात 1965 तक हिन्दी को पूरी तरह राजभाषा बन जाना था लेकिन 1967 में किए गए संशोधन के अनुसार अंग्रेजी को सह राजभाषा के रूप में बरकरार रखने का प्रावधान किया गया । इसी संदर्भ में आप भारत सरकार की द्विभाषी नीति एवं त्रिभाषा सूत्र से परिचित हुए ।

आपने जाना कि राज्यों में प्रयुक्त भाषा राज्यभाषा कहलाती है । संविधान के अनुच्छेद 345 के अन्तर्गत राज्य का विधान मण्डल विधि के पारित उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों के लिए राज्य की एक अथवा एकाधिक अथवा हिन्दी को प्राधिकृत कर सकता है ।

राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय सम्मान को वहन करती है । आजादी की लड़ाई के दौरान पूरा देश हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान चुका था किन्तु आजाद भारत के संविधान ने उसे राजभाषा का पद दिया है । भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची के अन्तर्गत सभी बाइस भाषाएँ राष्ट्रभाषा है । हिन्दी भी इनमें से एक है ।

संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी आज पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुकी है । उसको यह सम्मान भारत की जनता ने दिया है ।

हिन्दी का यह रूप केवल बातचीत के स्तर तक ही सीमित न रहकर व्यवहार के सभी क्षेत्रों तक फैल गया है । अंत में आपने माध्यम भाषा के रूप में हिन्दी के लगातार उभरते नए-नए स्वरूपों की जानकारी प्राप्त की ।

20.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घो त्तरी प्रश्न

1. राजभाषा, राष्ट्रभाषा और राज्यभाषा के तात्विक अन्तर पर प्रकाश डालिए ।
2. भारतीय संविधान में राजभाषा की संकल्पना किस रूप में व्यंजित की गई है?
3. संपर्क भाषा किसे कहते हैं? संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी की भूमिका स्पष्ट कीजिए ।
4. राजभाषा और सह राजभाषा संबंधी संवैधानिक प्रावधान बताइए?
5. माध्यम भाषा से क्या तात्पर्य है? माध्यम भाषा के रूप में हिन्दी की स्थिति स्पष्ट कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. भारत सरकार की द्विभाषी नीति और त्रिभाषा सूत्र का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए?
2. राजभाषा और राष्ट्रभाषा का मौलिक अंतर बताइए ।
3. राजभाषा की परिभाषा एवं महत्त्व का परिचय दीजिए ।
4. संविधान के राज्यभाषा विषयक निर्देशों का परिचय दीजिए ।

ग. सही / गलत चिह्नित कीजिए ।

1. आपसी बोलचाल की भाषा को राजभाषा कहते हैं । सही/गलत
2. संविधान की आठवीं अनुसूची में पन्द्रह भाषाएँ है । सही/गलत
3. प्रदेशों के कामकाज की भाषा को संपर्क भाषा कहते हैं । सही/गलत
4. भारतीय संघ की राजभाषा अंग्रेजी है । सही/गलत
5. आज भारत सरकार का समस्त कामकाज हिन्दी में संचालित किया जा रहा है । सही/गलत

घ रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. भारत............................ में गणतंत्र बना ।
2. विचारों के आदान-प्रदान का प्रयोजन....................................... सिद्ध करती है ।

3. भारत की.................................. अंग्रेजी है ।

4. आजादी से पहले पूरा देश हिन्दी को.. कहता था ।

5. प्रादेशिक भाषाएँ........................... के कामकाज की भाषाएँ हैं ।

20.8 संदर्भ गन्थ

1. शंकर दयाल सिंह; हिन्दी राष्ट्रभाषा, राजभाषा जनभाषा किताबघर, नई दिल्ली
2. डॉ0 भोलानाथ तिवारी; राजभाषा 'हिन्दी'
3. डॉ0 दंगल झाल्टे; प्रयोजन मूलक हिन्दी, विद्या विहार, नई दिल्ली
4. कृष्ण कुमार गोस्वामी; प्रयोजन मूलक हिन्दी और कामकाजी हिन्दी हिन्दी-कलिंग प्रकाशन नई दिल्ली
5. विनोद गोदरे; प्रयोजन मूलक हिन्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

इकाई-21 हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 स्वातंत्र्योत्तर भारत में भाषा की संकल्पना
21.3 संविधान में हिन्दी की स्थिति
21.4 राजभाषा अधिनियम 1983 एवं 1987
21.5 राजभाषा नियम 1976
21.6 राजभाषा आयोग एवं राजभाषा समितियां
21.7 विचार संदर्भ / शब्दावली
21.8 सारांश
21.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
21.10 संदर्भ ग्रन्थ

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में भारत के संविधान में हिन्दी की स्थिति एवं राजभाषा अधिनियमों तथा नियमों से अवगत कराया जा रहा है । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास से परिचित हो सकेंगे ।
- भारतीय संविधान के किन-किन अनुच्छेदों में राजभाषा के रूप में हिन्दी संबंधी उपबंध किए गए हैं । इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- राजभाषा अधिनियम 1963 एवं 1987 में किए गए राजभाषा विषयक संशोधनों और तद्नुसार प्रावधानों को समझ सकेंगे ।
- राजभाषा नियम 1976 के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे जिसमें हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के प्रयासों की चर्चा की गई है ।
- राजभाषा आयोग के गठन, उसके कार्य एवं सिफारिशों के विषय में जान सकेंगे ।
- राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन के बारे में विचार करने के उद्देश्य से गठित विभिन्न समितियों की स्थापना और उनके उद्देश्यों को जान सकेंगे ।
- राजभाषा हिन्दी के विकास के संबंध में संघ सरकार के दायित्व तथा उसके निर्वाह को लेकर की गई कार्यवाहियों के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- पूरी इकाई के अध्ययन के उपरान्त भारत सरकार की भाषा नीति के बारे में एक समग्र समझ बना पाएंगे ।

21.1 प्रस्तावना

प्रयोजन मूलक हिन्दी और उसके स्वरूप के बारे में आप पहले ही पढ़ चुके हैं जिससे साहित्यिक हिन्दी और सामान्य हिन्दी के स्वरूप से प्रयोजन मूलक हिन्दी कहीं और किस प्रकार

भिन्न है यह भी आप के सामने स्पष्ट हो गया होगा । प्रयोजन मूलक भाषा किसी खास प्रयोजन के लिए व्यवहृत भाषा होती है । चूँकि इसका प्रयोग विभिन्न व्यवहार क्षेत्रों में किया जाता है परिणामत: इसकी विभिन्न प्रयुक्तियों का विकसित होना स्वाभाविक हो जाता है । हिन्दी के राजभाषा का पद ग्रहण कर लेने के बाद इसके अन्तर्गत कार्यालयीन-हिन्दी, बैंकिग हिन्दी, विधि, मीडिया आदि कई प्रयुक्तिया विकसित हो गई ।

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत एक प्राचीन देश है लेकिन राजनीतिक दृष्टि से एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में भारत का विकास एक नए सिरे से ब्रिटेन के शासनकाल में हुआ। स्वतंत्रता-संग्राम के साहचर्य में राष्ट्रीय स्वाभिमान और स्वतंत्रता संग्राम के चैतन्य की अनुगूँज घर-घर तक पहुंचायी, स्वदेश प्रेम और स्वदेशी-भाव की मानसिकता को सांस्कृतिक और राजनीतिक आयाम दिया, नवयुग के नवजागरण को राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय अभिव्यक्ति और राष्ट्रीय स्वशासन के साथ अंतरंग और अविच्छिन्न रूप से जोड़ दिया ।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही । ये भाषाएं भारतीय स्वाधीनता के अभियान और आन्दोलन को व्यापक जनाधार देते हुए लोकतंत्र की इस आधारभूत अवधारणा को संपुष्ट करती रही कि जब देश आजाद होगा तो लोक व्यवहार और राजकाज में भारतीय भाषाओं का प्रयोग होगा ।

आजादी मिली और हमने संविधान बनाने का उपक्रम शुरू किया । संविधान का प्रारूप अंग्रेजी में बना, संविधान की बहस अधिकांशत: अंग्रेजी में हुई । यह बहस 12 सितम्बर 1949 दोपहर से 14 सितम्बर 1949 शाम तक चली । प्रारंभ में संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने अंग्रेजी में एक संक्षिप्त भाषण दिया । उन्होने कहा कि भाषा के विषय में आवेश उत्पन्न करने या भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए कोई अपील नहीं होनी चाहिए और भाषा के प्रश्न पर संविधान सभा का विनिश्चय समूचे देश को मान्य होना चाहिए । उन्होंने बताया कि भाषा संबंधी अनुच्छेदों पर लगभग तीन सौ या उससे भी अधिक संशोधन प्रस्तुत किए गए ।

14 सितम्बर 1949 की शाम बहस के समापन के बाद जब भाषा संबंधी संविधान का तत्कालीन भाग 14 क और वर्तमान भाग 17 संविधान का हिस्सा बन गया तब डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने अपने भाषण में बधाई के कुछ शब्द कहे, जो थे, “आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जबकि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है, जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी ।" उन्होने कहा- “इस अपूर्व अध्याय का देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा । यह मानसिक दशा का भी प्रश्न है जिसका हमारे समस्त जीवन पर प्रभाव पड़ेगा । हम केन्द्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे उससे हम एक-दूसरे के निकटतर आते जाएँगे । आखिर अंग्रेजी से हम निकटतर आए हैं क्योंकि वह एक भाषा थी । अंग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है । इससे अवश्यमेव हमारे संबंध घनिष्टतर होंगे, विशेषत: इसलिए कि हमारी परम्पराएं एक ही हैं, हमारी संस्कृति एक ही है और हमारी सभ्यता में सब बातें एक ही है । अतएव यदि हम इस सूत्र को स्वीकार नहीं करते तो परिणाम यह होता कि या तो इस देश में बहुत सारी भाषाओं का प्रयोग होता या वे प्रान्त पृथक हो जाते जो बाध्य होकर किसी भाषा

विशेष को स्वीकार नहीं करना चाह रहे थे । हमने यथा संभव बुद्धिमानी का कार्य किया है और मुझे हर्ष है, मुझे प्रसन्नता है और मुझे आशा है कि भावी संतति इसके लिए हमारी सराहना करेगी ।”

21.2 स्वातंत्रोत्तर भारत में भाषा की संकल्पना

कालक्रमानुसार भाषा और साहित्य की विवेचना एक कठिन कार्य है । आज से आधी सदी पहले देश के एक मूर्धन्य भाषाशास्त्री डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी ने गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी के अनुसंधान और स्नातकोत्तर विभाग के आमंत्रण पर भारत में आर्य भाषाओं का विकास तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की उपयोगिता विषय पर चार ऐसे व्याख्यान दिए थे, जो आज भी अपने क्षेत्र में मानक माने जाते हैं । उनके अनुसार आर्य भाषाएं हमारी सबसे बड़ी विरासत है क्योंकि इसके आधार पर ही भारतीय संस्कृति निर्मित हुई जो अबाध गति से पिछले 4500 वर्षों से चली आ रही है ।

भाषा की चेतना प्रवहमान होती है । विनिमय तथा सम्मिश्रण इसके बहुत बड़े आधार हैं । भाषा की संरचना के विश्लेषण के लिए भाषिक सामग्री की जरूरत होती है । इसी के आधार पर हम शुद्ध और अशुद्ध दो कोटियों में इसका विभाजन करते हैं । भाषा की संकल्पना सामाजिक रूप में भी की जाती है और किसी जमाने में भारत में भी संस्कृत से अलग हट कर जब इसका निर्माण हो रहा था तब इसे अपभ्रंश नाम अपनाना पड़ा था । वह कबीलों और समूहों के आधार पर भी गढ़ी गई । दरअसल हिन्दी का विकास शुरू से ही भारत की एक सार्वजनिक भाषा के रूप में हुआ जिसका क्षेत्र विस्तार गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब से लेकर राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल तक रहा । बीच के दिनों में हैदराबाद को केन्द्र बनाकर दक्खिनी हिन्दी की चर्चा भी इसी क्रम में होती रही । इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी भाषा का विकास राष्ट्रव्यापी चेतना के रूप में प्रस्फुटित होता रहा है, जिसमें संतों, फकीरों, व्यापारियों, मुसाफिरों, सैनिकों और तीर्थयात्रियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है । लोकभाषाओं अथवा जनपदीय भाषाओं का योगदान भी हिन्दी भाषा के विकास में एक महत्वपूर्ण घटना है जिसे देशज कहा गया, उसकी भी भूमिका कुछ कम नहीं ।

वर्तमान हिन्दी का स्वरूप-निर्माण संस्कृत, प्राकृत, मागधी, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, अपभ्रंश और फारसी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के मेल से हुआ है । अवधी, ब्रज, मैथिली, बुंदेलखण्डी, राजस्थानी और निमाड़ी आदि का विपुल साहित्य इसके लिए सेतुबंध बना । आदिकाल भक्तिकाल रीतिकाल को पार करती हुई हिन्दी जब वर्तमान युग में पहुँची तो वह 'खड़ी' बन गई । यह एक विचित्र बात है कि अनेक भाषाओं के भंजन-मंथन के बाद जिस भाषा का निर्माण हुआ वह भाषा न कहला कर 'बोली' कहलाई । इस बात का श्रेय निस्संदेह डी० सुनीति कुमार चटर्जी को मिलना चाहिए कि उन्होंने हिन्दी को 'बोली' के रूप में न ले कर भाषा की संज्ञा दी ।

इस हिन्दी भाषा और साहित्य के मोटे तौर पर चार स्वरूप गिनाये हैं परन्तु बखान तीन का ही किया है, विचारणीय तथा संशोधीय है । स्वरूप दृष्टिगत होते हैं । एक वह जिसके माध्यम से भारत की साक्षर-निरक्षर जनता ने अपने भावों को प्रकट किया और दूसरा वह जो

उन भावों का अक्षरों के सहारे सुरक्षित रखने का माध्यम बनी, जिसमें विपुल साहित्य रचा गया । तीसरा रूप वह है जिसने सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय जागरण की भूमिका निभाई जिसके लिए हम दयानन्द सरस्वती से लेकर महात्मा गाँधी, राजा राम मोहन राय और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तक की चर्चा किया करते हैं । हिन्दी के उसी रूप को लोकमान्य तिलक, से लेकर सुब्रह्मण्यम भारती तक ने राष्ट्रभाषा कह कर पुकारा, के०एम० मुंशी से लेकर श्री मोरारजी भाई देसाई तक ने इसकी वकालत की और आजादी की लड़ाई में गाँधीजी ने सबसे बड़े हथियार के रूप में इसका उपयोग किया । लेकिन हिन्दी अथवा भाषा की लड़ाई और चर्चा वहाँ आकर संघर्ष और विवाद का रूप ग्रहण कर लेती है जिसे आजादी के बाद राजभाषा के तौर पर समादृत किया गया ।

आजादी के बाद या यों कहें आजादी के साथ ही जनभाषा हिन्दी का राज्याभिषेक लोकतंत्र की सबसे बड़ी प्रतिष्ठा कही जा सकती है । जनता के सामान्य बोलचाल की भाषा हिन्दी को जब राजभाषा का दर्जा दिया गया तो उस दिन निश्चय ही गाँधीजी का सपना पूरा हुआ होगा जिनका आक्रोश था कि “लाखों लोगों को अंग्रेजी का ज्ञान कराना उन्हें गुलाम बनाना है । मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी, उसने हम सबको गुलाम बना दिया ।” 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ, उसके एक महीने बाद 21 सितन्बर को गाँधी ने 'हरिजन सेवक' में लिखा - ‘मेरा कहना यह है कि जिस तरह हमारी आजादी को छीनने वाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया है, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी हमें यहाँ से निकाल देना चाहिए । हाँ-व्यापार और राजनीति की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के नाते अंग्रेजी का अपना स्वाभाविक स्थान हमेशा कायम रहेगा । गाँधीजी का सपना ठीक उसी रूप में पूरा नहीं हुआ जिस रूप में वे चाहते थे । लेकिन उनका स्वप्न पूरा अवश्य होगा, इसके लक्षण बहुत ही स्पष्ट हैं । गाँधीजी ने हिन्दी के बदले हिन्दुस्तानी चाही थी । जो भाषा आज राष्ट्रभाषा के रूप में प्रसारित हो रही है वह हिन्दुस्तानी के करीब है । गाँधीजी शासन क्षेत्र से अंग्रेजी हटाना चाहते थे, किन्तु उनकी कल्पना थी कि अंग्रेजी हटने से जो जगह खाली होगी उसका अधिकांश भाग क्षेत्रीय भाषाओं को मिलेगा, हिन्दी केवल उन्हीं स्थानों पर रहेगी, जो राष्ट्रीय वृत्त के भीतर पड़ते हैं ।”

पिछली इकाई में राजभाषा राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा के बारे में आपको बताया जा चुका है जिसे पढ़कर भी आपको स्वातंत्र्योत्तर भारत में भाषा की संकल्पना की, एक रूपरेखा समझ में आ गई होगी । भाषा के संदर्भ में ढुलमुल नीति, मूल धारा में संशोधन तथा संसद के भीतर और बाहर दिए गए आश्वासनों से सम्पूर्ण प्रयासों के बावजूद हिन्दी की प्रगति का मार्ग कहीं न कहीं अवरूद्ध हुआ है ।

संसद में हिन्दी को किस रूप में स्वीकार किया जाए उस पर गंभीर बहस के बाद 14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने बहस का समापन करते हुए जो भाषण दिया उसका एक अंश यथावत यहाँ दिया जा रहा है, जो स्वातंत्र्योत्तर भारत में भाषा की संकल्पना को समझने में सहायक होगा । “मेरे विचार में हमने अपने संविधान में एक अध्याय स्वीकार किया है जिसका देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा

। हमारे इतिहास में अब तक कभी भी एक भाषा को शासन और प्रशासन की भाषा के रूप में मान्यता नहीं मिली थी । हमारा धार्मिक साहित्य और प्रकाशन संस्कृत में सन्निहित था, निस्सन्देह उसका समस्त देश में अध्ययन किया जाता था, किन्तु वह भाषा भी कभी समूचे देश के प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त नहीं होती थी । आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जबकि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी और उस भाषा का विकास समय की परिस्थितियों के अनुसार ही करना होगा । हमारे संविधान में बहुत से विवाद उठ खड़े हुए हैं जिन पर गंभीर मतभेद थे, किन्तु हमने किसी न किसी प्रकार उनका निपटारा कर लिया । यह सबसे बड़ी खाई थी जिससे हम एक दूसरे से अलग हो सकते थे । हमें यह कल्पना करनी चाहिये कि यदि दक्षिण हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को स्वीकार नहीं करता तब क्या होता ? स्विट्जरलैंड जैसे छोटे से, नन्हें से देश में तीन भाषाएँ है जो मान्य हैं और सब कुछ काम उन तीन भाषाओं में होता है । क्या हम समझते हैं कि हम केन्द्रीय प्रशासकीय प्रयोजनों के लिए उन भाषाओं को रखने की सोचते जो भारत में प्रचलित है; तो क्या हम सब प्रान्तों को साथ रख सकते थे? सब में एकता कर सकते थे? प्रत्येक पृष्ठ को शायद पन्द्रह-बीस भाषाओं में मुद्रित करना पड़ता ।”

और यह केवल व्यय का प्रश्न नहीं है । यह मानसिक दशा का भी प्रश्न है जिसका हमारे समस्त जीवन पर प्रभाव पड़ेगा । हम केन्द्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे उससे हम एक दूसरे के निकटतर आएँगे । आखिर अंग्रेजी से हम निकटतर आये हैं, क्योंकि वह एक भाषा थी । अंग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है, इससे अवश्यमेव हमारे संबंध घनिष्टतर होंगे, विशेषत: इसलिए कि हमारी परम्पराएँ एक ही है, हमारी संस्कृति एक ही है और हमारी सभ्यता में सब बातें एक ही है । "स्वातंव्योत्तर भारत में भाषा की संकल्पना को कवि गुरू रविन्द्र नाथ की भाषा में स्पष्ट किया जा सकता है ।” आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के समान है, जिसका एक एक दल एक-एक प्रान्तीय भाषा और उसकी साहित्य एवं संस्कृति है । किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा ही नष्ट हो जाएगी । हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रान्तीय बोलियाँ, जिसमें सुन्दर साहित्य सृष्टि हुई है, अपने अपने घर में (प्रान्त में) रानी बन कर रहें, प्रान्त के जनगण की हार्दिक चिन्ता की प्रकाश भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिन्दी भारत-भारती होकर विराजती रहे ।

21.3 हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

जैसाकि आपको इस इकाई की प्रस्तावना में बताया गया भारत का संविधान पारित हुआ और यह आशा और -प्रत्याश जन-जन में जागृत हुई कि अब भारतीय भाषाओं का विस्तार होगा, राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में दूत गति से प्रगति होगी और संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होगी । संविधान के अनुच्छेद 350 में निर्दिष्ट है कि किसी शिकायत के निवारण के लिए प्रत्येक व्यक्ति का संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को संघ में या राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी भाषा में प्रतिवेदन देने का अधिकार होगा । 1956 में अनुच्छेद 350 क संविधान में अन्तःस्थापित हुआ और यह निर्दिष्ट हुआ कि

प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास किया जाए । अनुच्छेद 344 में राजभाषा के संबंध में आयोग और संसदीय समिति गठित करने का निर्देश दिया गया । प्रयोजन यह था कि संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग हो, संघ और राज्यों के बीच राजभाषा का प्रयोग बढ़े, संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को सीमित या समाप्त किया जाए । हिन्दी भाषा के विकास के लिए यह विशेष निर्देश अनुच्छेद 351 में दिया गया कि संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए इसका विकास करें, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके एवं इसका शब्द भण्डार समृद्ध और संवर्धित हो ।

इस प्रकार भारत के संविधान के 17वें भाग में राजभाषा विषयक व्यवस्था की गई । इस संबंध में अनुच्छेद 345 से 351 के अन्तर्गत संवैधानिक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिन्हें चार अध्यायों में विभाजित किया गया है । अध्याय में अनुच्छेद 343 और 344 के उपबंधों में संघ की राजभाषा के बारे में व्यवस्था की गई है । अध्याय 2 में अनुच्छेद 345 से 347 तक में प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में व्यवस्था की गई है । अध्याय 3 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की भाषा के संबंध में अनुच्छेद 348 एवं 349 में उपबंध दिए गए हैं तथा अध्याय 4 में अनुच्छेद 350 एवं 351 के अनुसार विशेष निर्देश दिए गए हैं । अब विस्तारपूर्वक इनके बारे में आपको जानकारी देने के लिए प्रत्येक अनुच्छेद पर पृथक चर्चा की जाएगी ।

अनुच्छेद 343 (1) के अन्तर्गत संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होने का निर्देश है । संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा । अनुच्छेद 343 (2) में यह व्यवस्था की गई कि संविधान के लागू होने के समय से पन्द्रह वर्ष की अवधि तक अर्थात 26 जनवरी 1965 तक संघ के सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग पूर्ववत होता रहेगा । लेकिन उक्त अवधि के दौरान राष्ट्रपति जी के आदेश द्वारा किसी काम के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी के प्रयोग की अनुमति भी प्राप्त की जा सकेगी । अनुच्छेद 343 (3) में संसद को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह 1965 के बाद भी सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग बनाए रखने की व्यवस्था कर सकती है ।

इस प्रकार अनुच्छेद 343 के दूसरे खण्ड में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति जी का 27 मई 1952 को पहला आदेश जारी किया गया जिसमें हिन्दी के प्रगामी कार्यान्वयन की दिशा का उल्लेख किया गया; इसमें:-

1. राज्यों के राज्यपालों
2. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों
3. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की अधिसूचना के लिए अंग्रेजी भाषा के अलावा हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के अतिरिक्त देवनागरी के अंकों को भी प्राधिकृत किया गया ।

राष्ट्रपति जी का दूसरा आदेश सन् 1955 में जारी किया गया जिसमें संघ के विभिन्न शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया । इन प्रयोजनों में जनता से पत्र व्यवहार, प्रशासनिक रिपोर्टों तथा संसद में पेश की जाने वाली रिपोर्टों, सरकारी संकल्पों तथा विधायी अधिनियमों हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने वाली राज्य सरकारों के बीच परस्पर पत्र व्यवहार, संधियों और करारों, अन्य देशों की सरकारों, उनके दूतावासों और अन्तराष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र व्यवहार आदि शामिल किए गए ।

इस अनुच्छेद की विवेचना से जो बात सामने आती है वह यह है कि भारत की भाषायी स्थिति पर गौर करते हुए पन्द्रह वर्ष की अवधि में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने की चेष्टा तो की जा सकती है लेकिन पन्द्रह वर्ष बीत जाने के बाद भी अंग्रेजी के प्रयोग को कायम रखने के परिणामस्वरूप हिन्दी को राजभाषा का जो सही स्थान प्राप्त करना था वह उसे नहीं मिल पाया । हिन्दी के विषय में लगता है संविधान के संकल्पों का निष्कर्ष कहीं खो सा गया । संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी की शक्ति, क्षमता और सामर्थ्य अकाट्य, अदम्य और अद्वितीय है, लेकिन यह प्रश्न सहज ही मन में उठता है कि हमने संविधान के सपने को साकार करने के लिए क्या किया? हमारे कार्यक्रम प्रभावी क्यों नहीं हुए? क्यों और कैसे अंग्रेजी भाषा की मानसिकता हमारी नई पीढ़ी पर इस कदर हावी हो गई कि हमारी अपनी भाषाओं की अस्मिता और भविष्य संकट में पड़ गए । शिक्षा, व्यापार और व्यवहार में, संसदीय, शासकीय और न्यायिक प्रक्रियाओं में हिन्दी को और प्रादेशिक भाषाओं को पांव रखने की जगह तो प्राप्त हुई, संख्या का आभास भी मिला किन्तु प्रभावी वर्चस्व नहीं मिल पाया ।

अनुच्छेद 344 (1) में राष्ट्रपति जी को यह अधिकार दिया गया है कि वे निर्धारित अवधि समाप्त होने के उपरान्त संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग के विषय में स्थिति का आकलन-अध्ययन कर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए राजभाषा आयोग का गठन कर सकते हैं । इस आयोग में संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं के प्रतिनिधि होंगे । आपकी जानकारी के लिए यहाँ बता देने की जरूरत है संविधान की आठवीं अनुसूची में भारत की उन सभी प्रमुख भाषाओं को शामिल किया गया है जो प्रदेशों की राजभाषाएँ है । ये सभी भाषाएँ 'राष्ट्रीय भाषा' कहलाने का गौरव प्राप्त करती हैं । आरंभ में इस सूची में असमिया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, कश्मीरी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु और उर्दू भाषाओं को सम्मिलित किया गया । सन् 1956 में संशोधन द्वारा सिंधी तथा 1992 में मणिपुरी, नेपाली और कोंकणी को भी शामिल कर लिया गया । 2002 में पुन: एक संशोधन करते हुए मैथिली, संथाली, बोडो और डोगरी को भी संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान दे दिया गया है । फिलहाल इस अनुसूची में कुल बाइस भाषाएँ सम्मिलित है ।

अनुच्छेद 344 (1) के ही अन्तर्गत दी गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति जी ने सन् 1955 के 7 जून को राजभाषा आयोग के गठन का आदेश दिया । तदनुसार श्री बी०जी० खेर की अध्यक्षता में निम्न लिखित विषयों पर सिफारिशें करने के लिए एक आयोग गठित हुआ-

क. संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा का अधिक प्रयोग,

ख. संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब अथवा किसी के अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधन,

ग. संविधान के अनुच्छेद 342 में वर्णित प्रयोजनों में सब अथवा किसी के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा,

घ. संघ के किसी एक अथवा अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिये प्रयोग किए जाने वाले अंकों का रूप,

ङ. संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा तथा प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति जी द्वारा आयोग से पूछे गए अन्य विषय ।

इस आयोग ने सन् 1956 में अपना प्रतिवेदन पेश कर दिया । आयोग द्वारा की गई सिफारिशों की जाँच के लिए संविधान के अनुच्छेद (344 खण्ड-4) के अनुसार 3 दिसम्बर 1957 को एक संसदीय समिति का गठन किया गया जिसमें कुल 30 सदस्य थे । 20 लोकसभा के और 10 राज्यसभा के । समिति ने विविध सरकारी उपक्रमों, मंत्रालयों के निरीक्षण और साक्ष्य कार्यक्रमों के आधार पर फरवरी 1959 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । इस रिपोर्ट में समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की-

क. भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाएँ अपने-अपने राज्यों में सरकारी कामकाज तथा शिक्षा का माध्यम बने ।

ख. संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए कोई एक भाषा काम में लाई जाए ।

ग. अंग्रेजी से हिन्दी में परिवर्तित होने की प्रक्रिया के बारे में अपनी राय देते हुए रिपोर्ट में कहा गया । इस परिवर्तन को धीरे-धीरे किया जाए ताकि किसी प्रकार की असुविधा न हो । भाषा परिवर्तन का काम एक साथ किया जाना असंभव है ।

घ. समिति के अनुसार किसी प्रजातांत्रिक देश और उसकी सरकार के लिए ऐसी एक भाषा में अनिश्चित अवधि तक राजकाज चलाना मुश्किल ही नहीं असंगत भी था जिसे कुछ लोग ही समझते हों । समिति ने 1965 तक अंग्रेजी को मुख्य राजभाषा और हिन्दी को सह राजभाषा बने रहने का सुझाव दिया और यह भी कहा कि सन् 1965 में हिन्दी संघ की मुख्य राजभाषा का स्थान ले लेगी लेकिन सह राजभाषा के रूप में अंग्रेजी चलती रहनी चाहिए ।

इस रिपोर्ट पर संसद के दोनों सदनों में चर्चा हुई । संविधान के अनुच्छेद 344 (6) के अनुपालन में राष्ट्रपतिजी द्वारा एक दीर्घ आदेश जारी किया गया । इस आदेश में शब्दावली निर्माण, प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद, सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी का प्रशिक्षण, हिन्दी का प्रचार, अखिल भारतीय सेवाओं और उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती, परीक्षा का माध्यम, अधिनियम की भाषा, उच्च एवं उच्चतम न्यायालय की भाषा और हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार करने के बारे में निर्देश जारी किए गए ।

राष्ट्रपतिजी के आदेश के परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रयास परिलक्षित हुए-

क. देश के आजाद होने के बाद सन् 1950-51 में ही भारत सरकार शब्दावली निर्माण के लिए वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड की स्थापना कर चुकी थी । इस बोर्ड को ही यह काम सौंपा गया कि वह एक समान वैज्ञानिक शब्दावली को विकसित करे जो देश की समस्त भाषाओं में व्यवहृत हो सके । कालान्तर में यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंप दिया गया । शब्दावली निर्माण के निर्देशक सिद्धान्त भी तय कर दिए गए ।

ख. केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए सेवाकालीन हिन्दी-प्रशिक्षण की व्यवस्था के लक्ष्य से हिन्दी शिक्षण योजना की स्थापना की गई जिसके जरिए सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी भाषा का निःशुल्क प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध किया गया ।

ग. सरकारी संहिताओं एवं कार्यविधि साहित्य का हिन्दी अनुवाद सुचारू रूप में हो, इसके लिए एक अभिकरण स्थापित करने की बात सोची गई । बाद में इसी उद्देश्य से केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो स्थापित किया गया । हिन्दी आशुलिपिकों / टंककों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था हुई ।

घ. हिन्दी टाइपराइटरों के कुंजीपटल को मानक रूप देने का काम आरंभ किया गया ।

ङ. हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं में आवश्यक प्रपत्र और विभागीय साहित्य मुहैया कराने की दिशा में काम शुरू किया गया ।

अनुच्छेद 345 राज्य की राजभाषा अथवा राजभाषाओं से संबंधित है । इस अनुच्छेद के अनुसार किसी राज्य का विधान मंडल उस राज्य में प्रयुक्त किसी भाषा या हिन्दी के प्रयोग को सरकारी प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा । जब तक विधान मंडल द्वारा विधि के जरिए कोई अन्य उपबंध जारी न किया जाए तब तक अंग्रेजी के प्रयोग को ही जारी रखा जाए ।

अनुच्छेद 346 किसी राज्य और संघ के अथवा एक राज्य से दूसरे के मध्य पत्राचार की भाषा तय करने से संबंधित है । इस अनुच्छेद के तहत यह व्यवस्था भी की गई कि यदि किन्हीं कारणों से संघ और राज्यों तथा एक राज्य और दूसरे राज्य के मध्य अंग्रेजी ही राजभाषा हो तो भी दो या अधिक राज्य आपसी करार के जरिए अपने अपने राज्य में पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी को राजभाषा मान सकते हैं । पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र संघ के साथ इसी अनुबंध के तहत हिन्दी में पत्राचार करना स्वीकार कर चुके हैं । यदि दो राज्यों की राजभाषा एक ही हो तो वे भी आपसी पत्राचार के लिए हिन्दी का व्यवहार कर सकते हैं । उदाहरण के लिए पांडिचेरी और तमिलनाडु की राजभाषा तमिल और त्रिपुरा तथा पश्चिम बंगाल की बंगला होने के बावजूद वे परस्पर सरकारी पत्राचार हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकते हैं ।

अनुच्छेद 347 में प्रावधान है कि किसी राज्य विशेष की जनसंख्या के किसी विशेष हिस्से द्वारा बोली जाने वाली भाषा के लिए विशेष उपबंध किए जा सकते हैं । आशय यह हुआ कि यदि किसी राज्य का एक बड़ा जन समुदाय यह चाहता हो कि उसकी भाषा को मान्यता दी जाए और राज के सरकारी प्रयोजन के लिए उस भाषा को अपनाया जाए तो राष्ट्रपति जी तद्विषयक निर्देश जारी कर सकेंगे । विस्तृत जन समुदाय की मांग पर बोडो, डोगरी और संथाली जैसी कई भाषाओं को मान्यता मिल चुकी है ।

अनुच्छेद 348 तथा 349 में उच्चतम और उच्च न्यायालयों की भाषा विषयक प्रावधान हैं । इसके अनुसार संसद द्वारा जब तक भाषा संबंधी कोई व्यवस्था नहीं की जाती तब तक उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के नियमों अधिनियमों और विधेयकों के लिए प्रयोग की भाषा अंग्रेजी ही रहेगी । इसके साथ राज्य के राज्यपाल के हाथ में यह अधिकार रहेगा कि वह राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से अपने राज्य के उच्च न्यायालय के लिए हिन्दी अथवा उस राज्य की राजभाषा को प्राधिकृत कर सके । लेकिन संसद तथा विधान मंडल जो भी विधेयक, अध्यादेश, अधिनियम, नियम, विनियम, जारी अथवा पारित करेंगे उनका अंग्रेजी पाठ ही प्राधिकृत माना जाएगा । अनुच्छेद 350 में भाषायी अल्पसंख्यकों पर पूरा ध्यान दिए जाने की व्यवस्था है । इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी शिकायतों को दूर करने के लिए लिखे गए प्रार्थना पत्र में संघ अथवा राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी भी भाषा का व्यवहार कर सकता है।

अनुच्छेद 350 (1) में प्रत्येक राज्य के अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा दिए जाने का प्रावधान है । 350 (2) के अन्तर्गत भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाने का प्रावधान है । यह अधिकारी संविधान के अधीन अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े विषयों का निरीक्षण परीक्षण करते हुए समय-समय पर अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति जी को सौंपता रहेगा । राष्ट्रपति जी के निर्देश से ये रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत की जाएगी और संबंधित राज्य सरकारों के पास भी समुचित कार्यवाही के निर्देश के साथ भेजी जाएगी ।

अनुच्छेद 351 संविधान के भाषाई उपबंधों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । इसमें हिन्दी भाषा के विकास से संबंधित निर्देश है । अनुच्छेद में कहा गया है "हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके । तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लेखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि को निश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा ।"

इस अनुच्छेद में हिन्दी को एक सार्वदेशिक भाषा के रूप में समृद्ध बनाने पर जोर दिया गया है, साथ ही इसे धर्म निरपेक्ष और सामाजिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की बात कही गई है । इस प्रकार हिन्दी की संवैधानिक स्थिति इस भाषा को राष्ट्रीय जीवन की अभिव्यक्ति की भाषा बनाने पर बल देती हुई इससे समन्वय भूमिका निर्वहन के प्रति आशा एवं विश्वास व्यक्त करती है ।

21.4 राजभाषा अधिनियम व 963 एवं 1967

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) में जो घोषणा की गई थी कि 26 जनवरी 1965 से हिन्दी संघ की राजभाषा हो जाएगी उसके अनुसार इस अवधि तक अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त हो जाना चाहिए था । राष्ट्रपति जी ने 1952 और 1955 में जो आदेश दिए थे उनके

परिपालन की चेष्टा में एक ओर जहाँ हिन्दी के प्रयोग में तेजी आ रही थी वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी के प्रभुत्व को बरकरार रखने का आन्दोलन जोर पकड़ रहा था । कुछ अंग्रेजी परस्त लोग जिनमें तमिलनाडु के लोग बड़ी संख्या में थे अनिश्चित काल तक अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखने के पक्षधर थे । राष्ट्रपति जी के निर्देश से गठित राजभाषा आयोग और तीस सदस्यीय संसदीय राजभाषा समिति ने भी इस विषय पर गहन विचार के बाद अपना मत दे दिया था कि सन् 1965 के बाद भी अंग्रेजी को बिल्कुल हटा देने का कार्य अत्यन्त कठिन होगा । इस दिशा में गैर हिन्दी भाषी प्रदेशों को आशंका थी कि हिन्दी उन पर जबर्दस्ती थोपी जा रही है को बेबुनियाद सिद्ध करने के लक्ष्य से संविधान के अनुच्छेद 343 (3) में दिए गए प्रावधानों में संशोधन कर 1965 के बाद भी अंग्रेजी के प्रयोग को यथावत बनाए रखने की व्यवस्था की गई । सन् 1963 में ही यह राजभाषा अधिनियम तत्कालीन गृहमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री द्वारा (11 अप्रेल 1963) संसद में प्रस्तुत किया गया । संसद में इस अधिनियम पर हुई चर्चा को आरंभ करते हुए शास्त्री जी ने कहा- 'हम अंग्रेजी की वर्तमान स्थिति कायम नहीं रख सकते और न ही इसे रहना चाहिए । जब तक कोई राष्ट्रीय औचित्य न हो तब तक अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी और देश की अन्य राष्ट्रीय भाषाओं को अपनाने में अनिश्चितता बनाए रखना भी उपयुक्त नहीं है । अनन्त काल तक अंग्रेजी की वर्तमान स्थिति नहीं चलने दी जा सकती । दीर्घ चर्चा के बाद 10 मई 1963 को राजभाषा अधिनियम 1963 पारित हुआ जिसके फलस्वरूप 28 जनवरी 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी के प्रयोग को सरकारी प्रयोजनों में बरकरार रखने को संभव बनाया गया । राजभाषा अधिनियम 1963 में महत्वपूर्ण उपबंध निम्नलिखित हैं -

इस अधिनियम की धारा (3) में सरकारी कार्यालयों से जारी होने वाले सभी दस्तावेजों को अनिवार्य रूप में द्विभाषी (हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में) होने का उपबंध रखा गया । परिभाषा स्वरूप सामान्य आदेश, नियम, अधिनियम, सूचना प्रशासनिक रिपोर्ट, प्रेस विज्ञाप्तियों, संविदाए, निविदाएं, करार लाईसेंस और संसद पटल पर रखे जाने वाले समस्त सरकारी पत्र आदि अनिवार्य रूप से द्विभाषी (अंग्रेजी और हिन्दी) रूप में जारी करने का प्रबंध किया गया । इससे राष्ट्रीय स्तर पर द्विभाषिकता की स्थिति उत्पन्न हो गई । धारा 4 के अनुसार प्रावधान किया गया कि इस वर्ष के बीतते ही संसद द्वारा राजभाषा संबंधी एक समिति गठित की जाएगी जो संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग की स्थिति की जांच पड़ताल करेगी और राष्ट्रपतिजी को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगी ।

इसी अधिनियम की धारा 5 (1) में कहा गया कि केन्द्रीय अधिनियमों-विनियमों आदि का राष्ट्रपतिजी के आदेश से प्रकाशित हिन्दी पाठ को उसका प्राधिकृत पाठ माना जाए । धारा 5 (2) के अन्तर्गत संसद में पेश किए जाने वाले अधिनियमों, संशोधनों आदि के अंग्रेजी पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में भी प्राधिकृत अनुवाद किए जाने का प्रावधान रखा गया । इसी अधिनियम की धारा 7 के अनुसार राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से किसी भी राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य के उच्च न्यायालय के निर्णयों डिग्रीयों आदि में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी के प्रयोग को भी प्राधिकृत किया जा सकता है ।

राजभाषा अधिनियम (1963) 26 जनवरी 1965 से लागू हुआ । इसी वर्ष हिन्दी सलाहकार का पद बनाया गया जिसे राजभाषानीति की निगरानी और कार्यान्वयन का दायित्व दिया गया । लेकिन इसके बाद भी संसद में हिन्दी के राजभाषा स्वरूप को लेकर बहसें होती ही रही । यही नहीं दक्षिण में भाषायी दंगे भी हुए । संसद में कई बार दिए गए तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरूजी के आश्वासनों कि 26 जनवरी 1965 के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता रहेगा । जब बात नहीं संभली तो आश्वासनों को अमली जामा पहना कर उन्हें संवैधानिक रूप देने के लक्ष्य से राजभाषा अधिनियम 1963 में संशोधन किया गया । यह संशोधन 16 दिसम्बर 1967 को पारित हुआ। इसे राजभाषा (संशोधित) अधिनियम 1967 कहा जाता है । इसकी मुख्य व्यवस्थाएं निम्नानुसार है-

1. अधिनियम की धारा 3 (1) के अनुसार (क) संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए जिनकी खातिर 26 जनवरी 1965 से तत्काल पूर्व अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था और (ख) संसद के कार्य निष्पादन के लिए 26 जनवरी 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जा सकेगा ।
2. केन्द्र सरकार और हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले किसी राज्य के बीच पत्राचार की भाषा अंग्रेजी होगी, बशर्ते उस राज्य ने इसके लिए हिन्दी का प्रयोग करना स्वीकार न किया हो । इसी प्रकार हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारें भी ऐसे राज्यों की सरकारों से अंग्रेजी में पत्राचार करेगी और यदि वे ऐसे राज्यों को कोई पत्र हिन्दी में भेजती है तो साथ में उनका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजेगी । पारस्परिक समझौते से यदि कोई भी दो राज्य आपसी पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग करें तो किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठेगी ।
3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों आदि के बीच पत्र व्यवहार के लिए हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जा सकता है । लेकिन जब तक संबंधित कार्यालयों आदि के कर्मचारी हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान न प्राप्त कर लें, तब तक पत्रादि का दूसरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाता रहेगा ।
4. राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) के अनुसार निम्नलिखित कागज पत्रों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य है :

   (1) संकल्प (2) सामान्य आदेश (3) नियम (4) अधिसूचनाएं (5) प्रशासनिक पत्र (6) प्रेस विज्ञप्तियां (7) संसद के किसी एक अथवा दोनों सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक तथा अन्य रिपोर्टें (8) सरकारी कागज पत्र (9) संविदाए (11) करार (12) अनुलप्तियां (12) टेंडर नोटिस और (13) टेंडर फार्म ।
5. धारा 3 (4) के अनुसार अधिनियम के अधीन नियम बनाते समय यह सुनिश्चित कर लेना होगा कि केन्द्रीय सरकार का कोई कर्मचारी हिन्दी या अंग्रेजी मे से किसी एक भाषा में प्रवीण होने पर भी अपना सरकारी कामकाज प्रभावी ढंग से कर सके और केवल इस आधार पर कि वह दोनों मापदण्डों में प्रवीण नहीं है, उसका कोई अहित न हो ।

6. राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 द्वारा अधिनियम की धारा 3 (5) के रूप में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त विभिन्न कार्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने संबंधी व्यवस्था तब तक चलती रहेगी जब तक हिन्दी को राजभाषा के रूप में न अपनाने वाले सभी राज्यों के विधान मंडल अंग्रेजी का प्रयोग समाप्त करने के लिए आवश्यक संकल्प न पारित कर लें और इन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद का प्रत्येक सदन भी इसी आशय का संकल्प पारित न कर दे ।

7. राजभाषा अधिनियम की धारा 4 में 26 जनवरी 1975 के बाद एक संसदीय राजभाषा समिति के गठन का उपबंध है । इसमें 30 सदस्य होंगे (20 लोकसभा + 10 राज्यसभा) यह समिति संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में हुई प्रगति की जाँच कर सिफारिशों सहित अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को सौंपेगी । समिति का यथासमय गठन कर दिया गया था, अब तक यह सात प्रतिवेदन प्रस्तुत कर चुकी है ।

8. अधिनियम की धारा 7 के अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्ण सहमति से उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए अथवा पारित किए गए किसी निर्णय डिक्री अथवा आदेश के लिए, अंग्रेजी भाषा के अलावा हिन्दी अथवा राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है । तथापि यदि कोई निर्णय, डिक्री या आदेश अंग्रेजी से भिन्न किसी भाषा में दिया या पारित किया जाता है तो उसके साथ संबंधित उच्च न्यायालय के प्राधिकार से अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी किया जाएगा । अब तक उत्तर प्रदेश, आन्धप्रदेश, राजस्थान और बिहार के राज्यपालों ने अपने-अपने उच्च न्यायालयों में उपर्युक्त उद्देश्यों के लिए हिन्दी के प्रयोग की अनुमति दे दी है ।

राजभाषा संकल्प

दिसम्बर 1967 में संसद के दोनों सदनों ने सरकार की भाषा नीति के संबंध में एक सरकारी संकल्प भी पारित किया, जिसे 18 जनवरी 1968 को अधिसूचित किया गया । इस संकल्प के पहले पैराग्राफ के अनुसार केन्द्रीय सरकार हिन्दी के प्रचार तथा विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए और उसके प्रयोग में तेजी लाने के लक्ष्य से एक अधिक गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करेगी और उसे कार्यान्वित करेगी ।

केन्द्रीय सरकार इस संबंध में किए गए उपायों तथा उनमें हुई प्रगति का ब्यौरा देते हुए एक वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट भी संसद के दोनों सदनों के सभा पटल पर प्रस्तुत करेगी । इस संबंध में निरन्तर कार्यवाही की जाती रही है ।

राजभाषा अधिनियम 1963 पारित होने के बाद संघ के सरकारी कामकाज में द्विभाषिक स्थिति शुरू हुई है, जिसमें कुछ कार्यों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाना अनिवार्य है और केन्द्रीय सरकार का प्रत्येक कर्मचारी अपने सरकारी कामकाज में हिन्दी अथवा अंग्रेजी दोनों में से किसी भी भाषा का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है।

राजभाषा नियम, 1976 में इन बातों की पुष्टि की गई है । लेकिन सरकार की यह सुविचारित नीति है कि संघ के कामकाज में हिन्दी का प्रयोग क्रमिक रूप से बढ़ाया जाए ताकि वह संघ की राजभाषा के रूप में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सके । राजभाषा नीति की

सफलता के लिए यह बहुत जरूरी है कि हिन्दी न जानने वाले केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिन्दी सिखाई जाए ताकि कम से कम वे हिन्दी में लिखी गई टिप्पणियों और मसौदों को पढ़ और समझ सकें । इसके लिए हिन्दी शिक्षण योजना के माध्यम से समुचित व्यवस्था की गई है ।

21.5 राजभाषा नियम 1976

25 जून 1975 को भारत सरकार के, गृहमंत्रालय के अधीनस्थ राजभाषा विभाग स्थापित किया गया और राजभाषा अधिनियम 1963 तथा यथासंशोधित 1967 में दिए गए प्रावधानों को व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत किए गए प्रावधानों को भारत के राजपत्र में राजभाषा नियम 1976 के रूप में प्रकाशित किया गया । केन्द्र सरकार के सभी कार्यालयों और उसके स्वामित्व या नियंत्रण में जितने भी उपक्रम या निगम आते हैं उन पर ये नियम लागू होते हैं । सरकारी कामकाज के लिए पूरे भारत के भाषाई क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए तीन वर्गो में बाँटा गया हैं । आपकी जानकारी के लिए नीचे उन तीनों वर्गों में आने वाले राज्यों की सूची दी जा रही है -

क-क्षेत्र :- इसके अन्तर्गत बिहार, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और अंडमान निकोबार केन्द्र शासित क्षेत्र आते हैं । बाद में बने तीन हिन्दी बहुल राज्य झारखंड, छत्तीसगढ़ एवं उत्तराखंड भी इसी के अन्तर्गत आएंगे ।

ख-क्षेत्र :- गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब तथा चंडीगढ़ केन्द्र शासित क्षेत्र इसमें आते हैं ।

ग-क्षेत्र :- क और ख क्षेत्रों में सम्मिलित राज्यों के अतिरिक्त अन्य सभी राज्य और संघ शासित इसमें सम्मिलित किए गए हैं । आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, गोआ, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और असम, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, मणिपुर, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम तथा पांडिचेरी, दादर नगर हवेली और लक्षद्वीप आदि केन्द्र शासित प्रदेश ग-क्षेत्र में आते हैं ।

केन्द्र और राज्य सरकारों के कार्यालयों के मध्य इन तीनों क्षेत्रों में पत्राचार इस रूप में होगा:-

1. 'क" क्षेत्र की राज्य सरकारों के कार्यालयों से केन्द्र सरकार के कार्यालय अनिवार्यत: हिन्दी में पत्राचार करेंगे । यदि किन्हीं विशेष कारणों से पत्र अंग्रेजी में भेजे ही गए तो उनका हिन्दी अनुवाद संलग्न कर भेजा जाएगा ।
2. “ख” क्षेत्र की राज्य सरकार या ऐसे राज्य में केन्द्र सरकार से अलग कार्यालयों को केन्द्र सरकार के कार्यालय से आमतौर पर हिन्दी में पत्र भेजे जाएंगे । इस क्षेत्र में भी अंग्रेजी में भेजे गए पत्रों के साथ उनका अनुवाद संलग्न होगा ।
3. “ग” क्षेत्र की राज्य सरकारों तथा केन्द्र सरकारों से भिन्न कार्यालयों को अंग्रेजी में पत्र भेजे जाएंगे । अर्थात् केन्द्र सरकार अपने कार्यालयों से हिन्दी में ही पत्राचार करेगी । हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए ही इस तरह के कदम उठाए जा रहे हैं लेकिन कई बार इस स्थिति को प्रावधानों तक ही सीमित देखा गया है ।

इसके अलावा "ग" क्षेत्र के केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से "क" और "ख" क्षेत्र के राज्यों में स्थित केन्द्र सरकार से भिन्न कार्यालयों में हिन्दी अथवा अंग्रेजी में पत्राचार किया जा सकता है । इस नियम के अन्तर्गत सभी कर्मचारियों को उनकी सुविधानुसार आवेदन तथा अनुमोदन हिन्दी या अंग्रेजी में देने की व्यवस्था की गई ।

राजभाषा नियमों के 10 (4) में यह व्यवस्था की गई कि जिन कार्यालयों में 80 प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों को हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान है उन्हें भारत के राजपत्र में अधिसूचित किया जाएगा। जिससे उन कार्यालयों से हिन्दी में ही पत्राचार किया जा सके ।

राजभाषा नियम 1976 के नियम 11 के अनुसार केन्द्र सरकार के कार्यालयों में प्रयुक्त होने वाली संहिताओं, नियमावलियों, फार्मा एवं क्रिया विधि साहित्य आदि को हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में तैयार कर द्विभाषी रूप में छपवाया जाएगा । इसके अलावा कार्यालयों के नाम, सूचना पट्ट, मोहरें, लेखन सामग्री आदि पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा । राजभाषा नियम 1976 की कुछ और महत्वपूर्ण बातें नीचे दी जा रही है:-

1. हिन्दी में प्राप्त किए गए पत्रों का उत्तर हिन्दी में ही दिया जाएगा ।
2. सभी दस्तावेजों पर जो अधिकारी हस्ताक्षर करेगा उसका दायित्व यह सुनिश्चित करना होगा कि हिन्दी और अंग्रेजी में जारी समस्त दस्तावेज द्विभाषी रूप में तैयार किए और छपवाए जा रहे हैं ।
3. राजभाषा अधिनियम और राजभाषा नियमों का अनुपालन कार्यालय में समुचित रूप में हो रहा है या नहीं । इसकी निगरानी की जिम्मेदारी प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान की होगी । उसे इस संबंध में प्रभावी जांच की व्यवस्था करनी होगी ।
4. जिन अधिकारियों कर्मचारियों ने मैट्रिक या इसके बराबर स्तर की कोई परीक्षा पास करते हुए हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन्हें हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त माना जाएगा ।
5. यदि कोई कर्मचारी फाइल पर टिप्पणी या मसौदा हिन्दी में लिखता है तो उससे उसका अंग्रेजी अनुवाद नहीं मांगा जाएगा ।

21.6 हिन्दी में प्रचार प्रसार और विकास के लिए गठित विविध संस्थाएँ : राजभाषा आयोग एवं राजभाषा समितियां

हिन्दी के प्रचार-प्रसार और विकास के लिए कई समितियां, उपसमितिया एवं आयोग गठित किए गए है जो राज्य और केन्द्र स्तर पर हिन्दी के उन्नयन में सहायक है । कुछ के बारे में आपको हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के संदर्भ में बताया जा चुका है । नीचे उनके नाम और कार्यकलाप संक्षेप में दिए जा रहे हैं:-

1. राजभाषा आयोग- इसके विषय में जानकारी दे दी गई है (देखें हिन्दी की संवैधानिक स्थिति)
2. केन्द्रीय हिन्दी समिति - सन् 1964 में पहली बार गृह मंत्रालय के अधीन एक सर्वोच्च समिति की जरूरत को महसूस करते हुए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रीय हिन्दी

समिति का गठन किया गया । इस समिति का काम हिन्दी कार्यान्वयन की निगरानी था । 5 सितम्बर 1967 को यह पुनर्गठित हुई । प्रधानमंत्री के अतिरिक्त इसमें केन्द्र सरकार के गृह एवं राज्यमंत्री, राज्यों के आठ मुख्यमंत्री, सात सांसद और हिन्दी के दस विशिष्ट विद्वान सम्मिलित होते हैं । राजभाषा विभाग के सचिव इसके सदस्य सचिव होते हैं । इसकी साल में एक बैठक जरूरी है । समिति का निर्णय भारत सरकार का निर्णय माना जाता है ।

3. हिन्दी सलाहकार समिति - विभिन्न मंत्रालयों में हिन्दी के ठीक ठीक कार्यान्वयन के लिए सलाहकार समितियां गठित की गई है । प्रति तीन मास समितियों की बैठक की व्यवस्था है । इनका कार्यकाल तीन वर्ष का होता है । संबंधित मंत्रालय के मंत्री इसके अध्यक्ष होते हैं ।

4. राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ- इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 से अधिक नहीं रखी जाती । तीन महीने में एक बार समिति की बैठक आवश्यक है । इस समिति के कार्यों की निगरानी की जिम्मेदारी मंत्रालय के संयुक्त सचिव को दी जाती है । इस समिति के मुख्य कार्य हैं- हिन्दी कार्यान्वयन का पुनरीक्षण-गृहमंत्रालय के अनुदेशों के पालन की जांच-तिमाही प्रगति रिपोर्ट का पुनर्परीक्षण-हिन्दी कार्यान्वयन के मार्ग में आई समस्याओं का हल खोजना एवं हिन्दी टाइपिंग और आशुलिपि के प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त संख्या में सरकारी कर्मचारियों को भेजना ।

5. केन्द्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति- भारत सरकार के राजभाषा विभाग के सचिव की अध्यक्षता में सभी मंत्रालयों/विभागों की कार्यान्वयन समितियों में समन्वय के उद्देश्य से यह गठित की गई है । विभिन्न मंत्रालयों में कार्यान्वयन समितियों के अध्यक्ष एवं मंत्रालयों/विभागों के राजभाषा निदेशक और उप सचिव इसके सदस्य होते हैं । इसके कार्य भी करीब करीब राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के समक्ष है।

6. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति - इसे 'नराकास' लघु संज्ञा से भी जाना जाता है । बड़े नगरों जहाँ केन्द्र सरकार के दस से अधिक कार्यालय हैं में इनका गठन किया गया है । नगर के केन्द्रीय कार्यालयों के विभागीय अध्यक्ष या उनके प्रतिनिधि के रूप में राजभाषा अधिकारी इस समिति के सदस्य होते हैं । इसकी बैठकें वर्ष में दो बार होती है जिसकी अध्यक्षता नगर के वरिष्ठतम अधिकारी करते हैं । इसकी बैठकों में हिन्दी प्रशिक्षण, टंकण, आशुलिपि, देवनागरी लिपि के टाइपराइटरों (अब कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर भी) की उपलब्धता तथा हिन्दी के कार्यान्वयन के मार्ग में आई कठिनाइयों को दूर करने के बारे में विचार किया जाता है ।

21.7 विचार संदर्भ / शब्दावली

1. संविधान- वह विधान या कानून जिसके अनुसार किसी राज्य, राष्ट्र अथवा संस्था का संघटन, संचालन और व्यवस्था होतीं है । हर देश का एक संविधान होता है जो देश के संचालन की नीतियां तय करता है।

2. संवैधानिक-संविधान द्वारा संस्तुत, संविधान के अनुसार ।

3. अधिनियम-व्यवस्था, नियम कानून ।
4. प्रतिवेदन- किसी घटना अथवा कार्य का विवरण जो किसी को सूचित करने के लिए हो, किसी को दी जाने वाली सूचना (रिपोर्ट)
5. अधिसूचना-अधिकृत सूचना, राज्य अथवा केन्द्र सरकार द्वारा आम जनता अथवा किसी कार्यालय के कर्मचारियों को दी जाने वाली सूचना ।
6. संशोधन-सुधार, संसद में जो नियम पहले पारित किये गये हैं, उनमें यदि कुछ जोड़ना या बदलना हो तो अधिनियम में संशोधन पेश करके और पारित करके ही उसे बदला जा सकता है ।
7. प्रगामी प्रयोग-भविष्य में किया जाने वाला प्रयोग जो विकास या उन्नति से जुड़ा हो ।
8. प्राधिकृत पाठ-वह लिखित अंश जिसे सत्यापित कर मान्य किया गया हो । वह पाठ जिसे ठीक-ठाक माना गया हो ।
9. अष्टम् अनुसूची-संविधान की एक अनुसूची जिसमें भारत की समस्त राष्ट्रीय भाषाएं दर्ज है । फिलहाल संविधान की आठवीं अनुसूची में बाइस भाषाएं शामिल है ।
10. अध्यादेश-राज्य की ओर से गजट में (राजपत्र में) निकाला गया वह आधिकारिक जरूरी आदेश जो किसी कार्य व्यवस्था आदि के संबंध में हो । आमतौर पर संसद का सत्र न होने की हालत में अध्यादेश जारी होते हैं ।
11. करार- समझौता, दो राज्यों के देशों के बीच किसी एक बात को लेकर समझौता या संधि ।
12. सामाजिक संस्कृति-मिलीजुली संस्कृति, आपसी मेल और सौहार्द की संस्कृति ।
13. भाषायी अल्पसंख्यक-भाषा की दृष्टि से संख्या में कम, वह वर्ग जो देश की ऐसी भाषा बोलता है जो बहुसंख्यक जनता द्वारा नहीं बोली जाती ।
14. संविदा- कुछ निश्चित शर्तों के आधार पर दो पक्षों के बीच होने वाला समझौता ।
15. प्रावधान- गुंजाइश, व्यवस्था किए जाने की क्रिया ।

21.8 सारांश

इस इकाई में भारत सरकार की भाषानीति से आपका परिचय कराया गया और इस संदर्भ में हिन्दी का भारतीय संविधान में स्थान एवं राजभाषा अधिनियमों/नियमों को समझाया गया । किस तरह आजादी की लड़ाई में हिन्दी ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और आजादी प्राप्त करने के बाद भारत में भाषा की संकल्पना किस रूप में विकसित हुई और देश की सामासिक संस्कृति की रक्षा तथा देश को एकसूत्रता में बांधने के लिए किस तरह हिन्दी को राष्ट्रभाषा/राजभाषा का स्थान दिया गया । ये सारी बातें विस्तारपूर्वक बताई गई । संविधान के खंड 10 (3) में 343-351 के अन्तर्गत किए गए संवैधानिक उपबंधों की जानकारी सविस्तार देते हुए राष्ट्रपति जी के 1960 के अध्यादेश से परिचित कराया गया । इसी इकाई में आपने राजभाषा अधिनियम 1963,1967 (यथा संशोधित) के विभिन्न उपबंधों एवं राजभाषा नियम 1976 को पढ़ा और समझा । हिन्दी के प्रचार, प्रसार, विस्तार और समृद्धि के लिए भारत

सरकार द्वारा गठित राजभाषा आयोग एवं विभिन्न समितियों के कार्यकलाप का अध्ययन करते हुए निस्संदेह आप भारत सरकार की राजभाषा नीति के बारे में एक सुस्पष्ट समझ बना पाए होंगे ।

21.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. स्वातंत्र्योत्तर भारत में भाषा की संकल्पना पर विचार कीजिए ।
2. भारत सरकार की भाषा नीति का परिचय दीजिए ।
3. राजभाषा अधिनियम 1963 और यथासंशोधित अधिनियम 1967 पर विचार कीजिए ।
4. राजभाषा नियम 1976 पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए ।
5. राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए किए गए सरकारी प्रयत्नों की चर्चा कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. संविधान में राजभाषा विषय के उपबंध कौन-कौन से है?
2. राष्ट्रपति जी के अप्रैल 1960 के आदेश पर टिप्पणी लिखिए ।
3. अनुच्छेद 343 के अन्तर्गत कौन-कौन से उपबंध हैं?
4. हिन्दी के विकास में संघ सरकार का क्या उत्तरदायित्व है?
5. 'क' 'ख' एवं 'ग' क्षेत्र से क्या तात्पर्य है? इनके अन्तर्गत कौन-कौन से राज्य हैं?

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. संविधान की आठवीं अनुसूची में............................... भाषाएं हैं ।
2. राजभाषा आयोग का गठन.................................... की अध्यक्षता में हुआ ।
3. हिन्दी टंककों/आशुलिपिकों... की व्यवस्था की गई ।
4. भारतीय संविधान के.. भाग में राजभाषा विषयक व्यवस्था की गई है ।
5. राजभाषा विषयक राष्ट्रपतिजी का दूसरा आदेश सन्............................... में जारी हुआ ।

घ. सही गलत पर निशान लगाइए

1. हिन्दी को 26 जनवरी 1965 से राजभाषा घोषित किया गया । सही/गलत
2. नेहरूजी ने राजभाषा अधिनियम 1963 को संसद में प्रस्तुत किया था । सही/गलत
3. केन्द्रीय हिन्दी समिति के अध्यक्ष राज्य के मुख्यमंत्री होते हैं । सही/गलत
4. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें हर महीने होती है । सही/गलत
5. अनुच्छेद 350 (1) में राज्य के अल्पसंख्यकों को अंग्रेजी में शिक्षा दिलाने का प्रावधान है । सही/गलत

21.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. दंगल झाल्टे; प्रयोजन मूलक हिन्दी, विद्या विहार, नई दिल्ली

2. शंकर दयाल सिंह; हिन्दी राष्ट्रभाषा राजभाषा जन भाषा, किताबघर
3. भारत का संविधान; भारत सरकार प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, नई दिल्ली
4. राजभाषा हिन्दी के प्रयोग संबंधी नियम; राजभाषा विभाग द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली

इकाई-22 अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का स्वरूप
22.3 मनोभाषा विज्ञान
22.4 भाषा शिक्षण
22.5 अनुवाद
22.6 भाषा-तुलना
22.7 शैली विज्ञान
22.8 कोश विज्ञान
22.9 विचार संदर्भ/शब्दावली
22.10 सारांश
22.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
22.12 संदर्भ ग्रंथ

22.0 उद्देश्य

इस इकाई में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के स्वरूप पर विचार किया गया है । अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की मान्यताओं और धारणाओं पर भी आलोकपात किया गया है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के स्वरूप की चर्चा कर सकेंगे,
- अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के क्षेत्र पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- मनोभाषाविज्ञान भाषा-शिक्षण, अनुवाद, भाषा-तुलना, शैली विज्ञान, कोश विज्ञान सम्बन्धी विवेचन करने का प्रयास कर सकेंगे ।
- भाषा विज्ञान के व्यावहारिक पहलुओं की चर्चा कर सकेंगे ।

22.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पहले आपने भाषा विज्ञान की विभिन्न अवधारणाओं की सही समझ प्राप्त कर ली होगी । भाषा के उद्भव तथा विकास की जानकारी भी हासिल कर ली होगी । भाषा विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को जानना एवं समझना एक रोचक तत्व होता है । भाषा विज्ञान के सैद्धांतिक पक्षों का उपयोग अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान कहलाता है । अंग्रेजी में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के लिए Applied Linguistics पदबंध प्रचलित है ।

रसायन शास्त्र के सिद्धांतों का औषधि के क्षेत्र में अनुप्रयोग कर हम विभिन्न प्रकार की जीवन रक्षक दवाइयाँ बना सकते हैं । ठीक उसी तरह भाषा विज्ञान की मान्यताओं को आधार बनाकर उनका उपयोग भाषा-शिक्षण के संदर्भ में किया जा सकता है, इस संदर्भ में भाषा-शिक्षण को हम अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान के अंतर्गत रख सकते हैं । स्पष्ट है कि जहाँ भाषा विज्ञान हमें

भाषा की संरचना और उसके विश्लेषण का ज्ञान प्रदान करता है वहाँ भाषा के अनुप्रयोग के बारे में जानकारी प्रदान करने वाला शास्त्र अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान कहलाता है । इस इकाई के अगले उपशीर्षकों में हम भाषा विज्ञान के अनुप्रयुक्त क्षेत्रों के बारे चर्चा करेंगे ।

22.2 अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का स्वरूप

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का अर्थ आपने जान लिया है । अनुवाद, भाषा शिक्षा, कोशकला शैली विज्ञान, और मनोभाषा विज्ञान आदि अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के विभिन्न क्षेत्र है, अनुवाद हो या कोशकला, भाषा तुलना हो अथवा शैली विज्ञान - इनमें भाषाओं का अच्छा ज्ञान अपेक्षित होता है । भाषा-शिक्षा में भी भाषा-दोष के कारण ढूँढे जाते है, उन दोषों के निराकरण हेतु संभावित उपाय सुझाये जाते है । भाषा-तुलना के माध्यम से भाषा के सही स्वरूप को जाना एवं समझा जा सकता है । अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के विविध क्षेत्रों में ज्ञानार्जन के लिए भाषा विज्ञान की सही जानकारी अत्यंत आवश्यक है । भाषा विज्ञान में अच्छे ज्ञान के बिना उसका अनुप्रयोग पक्ष अधूरा माना जाता है । पुन: अनुप्रयोग के बिना भाषा विज्ञान के सिद्धांत एवं उसकी मान्यताएँ अपूर्ण रह जायेंगी । अत: भाषा-विज्ञान एवं अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का अन्योन्याश्रित संबंध है ।

22.3 मनोभाषा विज्ञान

भाषा मनुष्य की सबसे बडी पूँजी है । भाषा का सर्वाधिक व्यवहार मनुष्य द्‌वारा होता है । मनुष्य की भाषा व्यवहार क्षमता जन्मणना होती है । मनुष्य इसे सामाजिक संप्रेषण के माध्यम के रूप में स्वीकार करता है । 'मनो भाषा विज्ञान' में भाषा विज्ञान एवं मनोविज्ञान की अंतःक्रियाओं का अध्ययन होता है । भाषाई व्यवस्था के वैज्ञानिक सिद्धांत का अन्य नाम भाषा विज्ञान है । मानसिक प्रक्रियाओं के भाषाई ज्ञान के सिद्धांत को मनोविज्ञान कहते है, इसलिए मनोभाषाविज्ञान में भाषाविज्ञान एवं मनोविज्ञान का समन्वित अध्ययन होता है । भाषा ज्ञान, भाषा से प्राप्ति और भाषा व्यवहार से संबंध रखने वाली समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन मनोभाषाविज्ञान में होता है । भाषा-अर्जन में क्या अर्जित होता है, किस प्रकार अर्जित होता है एवं अभिव्यक्ति में उसका किस प्रकार - उपयोग होता है, इन समस्त व्यापारों का अध्ययन मनोभाषाविज्ञान में होता है । पॉल फीज के शब्दों में कहा भी जा सकता है - "मनोभाषाविज्ञान हमारी अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं और संप्रेषण के बीच संबंधों का अध्ययन है और हमारे बाल्यकाल या बाद में सीखी गयी भाषा के द्‌वारा प्रदत्त माध्यम से संबद्ध है ।"

मनोभाषा विज्ञान केवल भाषा विज्ञान के कोडीकरण तथा विकोडीकरण की क्रियाओं से संबद्ध नहीं है । व इसका कार्य केवल भाषागत प्रदत्तों का विश्लेषण करना है । वक्ता के कथन के उद्‌देश्य को कोड संकेतों में परिणात करना ही नहीं है और न इसका कार्य केवल भावागत प्रदत्तों का विश्लेषण करना है । मनोभाषा विज्ञान में भाषा अर्जन और उसके अनुरक्षण से संबंधित वास्तविक भाषाई व्यवहार का भी अध्ययन होता है । सामान्य अधिगम सिद्धांत, वाचिक व्यवहार और अनुबंधन, भाषा अधिगम के प्रमुख मानक सिद्धांत, भाषा और संज्ञान में संबंध, सार्वभौमिक तत्वों की प्रकृति आदि के क्षेत्र में मनोभाषाविज्ञान का प्रयोग होता है ।

मनोभाषा विज्ञान कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान के क्षेत्र में भी कार्यरत है । ये समस्याएँ निम्नवत् है -

1. बालक अपनी मातृभाषा की शिक्षा कैसे प्राप्त करता है?
2. किसी बालक एवं किसी वयस्क की भाषा में क्या अंतर है : बाल भाषा कैसे वय: भाषा में परिवर्तित होती है ।
3. भाषा अधिगम कैसे होता है?
4. भाषा-सृजन एवं भाषा-संवेदना में क्या संबंध हैं?
5. वाक्यों का निर्माण कैसे होता है और वे कैसे समझे जाते हैं?

मनोभाषा विज्ञान में भाषा अर्जन और भाषा अधिगम दो अति महत्वपूर्ण तत्व है । अपने प्रयास और अनुभवों से कुछ प्राप्त करने की प्रक्रिया को अर्जन कहा जाता है जबकि किसी विषय के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया अधिगम कहलाती है । प्रथम के लिए वातावरण तो दूसरे के लिए अध्ययन-अध्यापन आवश्यक होता है ।

शिशु के भाषा अर्जन या भाषा अधिगम के बारे में व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि भाषा केवल अनुभव या अभ्यास द्वारा सीखी जाती है । शिशु का मन कच्ची मिट्टी की तरह होता है । वह जैसे-जैसे बडा होता है, चलता-फिरना, खाना-पीना आदि व्यवहार सीख लेता है । ठीक उसी प्रकार भाषा का अर्जन भी कर लेता है ।भाषा के अधिकगम के बारे में भी व्यवहारवादियों का ऐसा ही विचार हैं ।

शिशु के भाषा अर्जन या भाषा अधिगम के बारें में संज्ञानवादियो या बुद्धिजीवियों की मान्यता कुछ भिन्न है । शिशु के मस्तिष्क में पहले से ही एक डेटा प्रोसेसिंग मेकानिज्म होता है । शिशु भाषा की सामग्री को सुनने के बाद उसके बारे में प्राकल्पना करता है और डेटा प्रोसेसिंग की सहायता से नियमों की खोज करता है । शिशु प्रकल्पना के माध्यम से भाषा सीखता है । भाषा अर्जन एक सृजनात्मक प्रक्रिया है । यह शिशु की सहजात और अनिवार्य प्रवृत्ति है । मनोभाषावैज्ञानिक भी संज्ञानवादियों के विचार को अपनाते हैं, मनो भाषा वैज्ञानिको के अनुसार शिशु का मस्तिष्क एक कम्प्यूटर की तरह होता है, कम्प्यूटर में पहले से ही डाटा फीड किये जाते हैं । ठीक उसी तरह शिशु के मस्तिष्क में जन्म के पहले जैविक उपकरण होता है । यह भाषा अर्जन में सहायक होता है । भाषा अर्जन में निम्न क्रियाओं पर अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है -

1. दूसरों की भाषा को समझना
2. शब्दसमूह का निर्माण
3. शब्दों को संयुक्त करके वाक्य निर्माण
4. उच्चारण

प्रारंभिक छह महीनों में शिशु सीखने के क्रम में एकाक्षरी ध्वनि 'मा', 'आ' आदि करता है । इसके बाद उन ध्वनियों की पुनरावृत्ति करते हुए द्विअक्षरीय ध्वनि अपनाता है फिर धीरे-धीरे वह बड़ा होता है । इसी क्रम में चार वर्ष का होते-होते वह वयस्कों जैसी व्याकरणिक भाषा का प्रयोग करने लगता है । बालक के सहज विकास के साथ-साथ भाषा का अर्जन होता है ।

भाषा की अर्जन या विकास क्रिया को सहज क्रिया माना जा सकता है, लेकिन अधिगम ऐसा नहीं है । अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाएँ प्राप्त की जा सकती हैं । अधिगम में अनेक प्रकार की क्रियाएँ तथा प्रक्रियाएँ सम्मिलित है ।

अधिगम के संबंध में व्यवहारवादी और बुद्धिवादी मनोवैज्ञानिक भिन्न-भिन्न मत-पोषण करते हैं । व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक वातारण को महत्व देते हैं तो बुद्धिवादी मनोवैज्ञानिक 'सूझ' या अंतदृष्टि को । व्यवहारवादियों की मान्यता है कि किसी विशिष्ट वातावरण में उद्दीपन 'एस' और अनुक्रिया 'आर' का बंधन अधिगम कहलाता है । 'आर-एस' सिद्धांत से भी यह जाना जाता है ।

भाषाई अभ्यास करना ही भाषा-अधिगम है । भाषा का यंत्रवत और स्वचालित ढंग से प्रयोग करना ही भाषा का अधिगम का लक्ष्य है । भाषा अधिगम उसके निविष्ट की प्रकृति पर निर्भर करता है । बालक बजस प्रकार की निविष्टयाँ सुनता है उनका अनुकरण करता है अभ्यास करता है । इसलिए भाषा अधिगम में बाल की भाषा के प्रति संपर्क महत्वपूर्ण होता है । व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों के आधार पर संरचनावादी भाषा वैज्ञानिकों ने संरचना विधि का प्रतिपादन किया है । विलियम माउलटन इनमें से प्रमुख है । उन्होंने अधिगम के संदर्भ में भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं ।

1. भाषा मौखिक है, लिखित नहीं
2. भाषा सिखाने का उद्देश्य भाषा कौशल सिखाना है यह केवल भाषा के बारे में जानकारी देना नहीं है ।
3. भाषा आदतों का समूह है ।
4. भाषा का वास्तविक रूप वह है जिसे मातृभाषा-भाषी वक्ता बोलता है ।

भाषा एक व्यवहार भी है । इसलिए व्यवहार करने से ही भाषा का अधिगम हो सकता है । कंठस्थ करके भी भाषा अच्छी तरह से सीखी जा सकती है । श्रवण-भाषण, पठन-लेखन आदि के माध्यम से भाषा अधिगम हो सकता है । भाषा के अधिगम के लिए यह ध्यान देना आवश्यक है कि एक समय एक ही शिक्षण बिंदु लेना उचित है । एक बिंदु पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् दूसरे बिंदु को अपनाना चाहिए । अन्य भाषा के शिक्षण अथवा अधिगम में कई प्रकार की त्रुटियाँ होती हैं क्योंकि अध्येता के पास पहले एक भाषा होती है । उस भाषा की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संरचना द्वितीय भाषा की स्थितियों से भिन्न होती है । फलस्वरूप अधिगम का अंतरण होता है । मनो भाषा विज्ञान त्रुटियों, अंतरणों तथा कारणों का अध्ययन करता है । इसलिए अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान में मनोभाषा विज्ञान एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है ।

22.4 भाषा शिक्षण

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है भाषा-शिक्षण । भाषा शिक्षण का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । इसके एकाधिक संदर्भ हैं । इन संदर्भों में भाषा-शिक्षण सर्वाधिक प्रचलित है । मातृभाषा-शिक्षण, अन्य भाषा शिक्षण आदि में भाषा विज्ञान की उल्लेखनीय देन रही है । सर्वप्रथम भाषा शिक्षण का सामान्य अर्थ जान लेना उचित लगता है । भाषा शिक्षण

का आशय है भाषा का शिक्षण । भाषा शिक्षण में भाषा ही अध्ययन की वस्तु है । इसमें भाषा साधन है और साध्य भी । भाषा का अध्ययन करने वाला भाषा-अध्येता कहलाता है । भाषा-अध्येता किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर भाषा सीखता है । यहाँ भाषा-शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है । परंतु वह सिद्धांतों का प्रणेता न होकर उसका व्याख्याता होता है ।

भाषा-शिक्षण में मातृभाषा एवं अन्य भाषा शिक्षण दो प्रमुख भेद हैं । अध्येता की आवश्यकता, प्रयोजन आदि में भिन्नता होने से भाषा-शिक्षण भी भिन्न हो सकता है । मातृभाषा के माध्यम से व्यक्ति अपनी सामाजिक पहचान बनाता है । अपनी अस्मिता को निर्धारित करता है । एक मानक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं जैसे हिंदी की अधीनस्थ बोलियाँ है ब्रज, अवधी, भोजपुरी । ब्रज या अवधी अथवा भोजपुरी या मगही बोलने वाले अपनी मातृभाषा हिंदी ही बताते हैं । कारण यह कि इससे एक वृहत्तर समाज से जुड़ने तथा अपनी अस्मिता स्थापित करने का उद्देश्य सिद्ध होता है । मातृभाषा के माध्यम से अर्जित की गई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति, ज्ञान तथा बोधनक्षमता के विकास एवं अपने समाज और संस्कृति की सही समझ उत्पन्न होती है । इसलिए मातृभाषा का कोई विकल्प नहीं है । भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने इसे 'निज भाषा' कहा है । मातृभाषा का विकास सामाजिक विकास का केन्द्र बिंदु है । साक्षरता का आधार मातृभाषा है । व्यक्ति चाहे किसी भी भाषा में अपने विचार प्रकट क्यों न करें, उसके विचार सर्वप्रथम मातृभाषा में आते हैं, व्यक्ति की औपचारिक शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से पूरी होती है अत: भारतेन्दु का कथन द्रष्टव्य है -

"'निज भाषा उन्नति अहै
सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के
मिटत न हिय को शूल" । ।

किसी भी विषय को जानने-समझने के लिए मातृभाषा की सहायता लेने एवं तदभाषा की शैलियों से परिचित होने के पश्चात् शिक्षण सार्थक हो सकता है । शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में मातृभाषा (प्रथम भाषा) को महत्व देना परम आवश्यक है । मातृभाषा अधिगम द्वारा व्यक्ति अनेक क्षमताएँ अर्जित करता है । व्यक्ति को उसके कई बौद्धिक व्यवहारों को साधनें, नियंत्रित करने और संपन्न करने की क्षमता मातृभाषा के द्वारा प्राप्त होती है । इन्हीं कारणों से मातृभाषा को एक सामाजिक यथार्थ कहा गया है । मातृभाषा के विकास का मानदंड सामाजिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास का परिचायक है ।

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि अन्य भाषा शिक्षण का एक महत्वपूर्ण विभाजन है । मातृभाषा से इतर किसी दूसरी भाषा को अन्य भाषा के रूप में जाना जाता है । भाषा शिक्षण में अन्य भाषा की भी भूमिका उल्लेखनीय है । अन्य भाषा के दो वर्ग हैं -

1. द्वितीय भाषा
2. विदेशी भाषा

बात द्वितीय भाषा की हो तो मन में प्रश्न उठता है कि प्रथम भाषा क्या होती है? बालक जिस भाषा को सबसे पहले स्वयं स्वाभाविक रूप से सीखता है उसे प्रथम भाषा कहते है

। हिंदी के संदर्भ में प्रथम भाषा उसकी कोई न कोई बोली होती है । इससे सहारे बालक अपने परिवार के सदस्यों तथा आत्मीय जनों के साथ अपने भावों को अभिव्यक्त करता एवं बांटता है । अर्थात् अपने दैनिक जीवन की भाषा जो व्यक्तिगत रूप से प्रयुक्त होती है उसे प्रथम भाषा कहा जाता है । विद्वानों ने इसे 'मातृबोली' भी कहा है ।

बहरहाल, अन्य भाषा की चर्चा अपेक्षित है । मातृभाषा की आवश्यकता से भिन्न होती है अन्य भाषा की आवश्यकता । अन्य भाषा के वैयक्तिक एवं सामाजिक संदर्भ भी भिन्न होते हैं । द्वितीय भाषा एवं मातृभाषा का परिवेश कुछ हद तक समान होता है । ये भाषाएँ एक ही राष्ट्र की होती है और इनका सामाजिक तथा ऐतिहासिक विकासक्रम भी समान होता है, उदाहरणतया, हिंदी प्रथम भाषा/मातृभाषा हुई तो गुजराती, पंजाबी, मराठी आदि द्वितीय भाषा हो सकती है ।

आपने विद्यालय में अध्ययन करते समय द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी का पठन-पाठन किया होगा । ऐसा क्यों? यह तो एक विदेशी भाषा है । वास्तव में एक लम्बी अवधि तक अंग्रेजी भारतीय भाषाओं के बीच रही प्रोसेसिंग । परस्पर संपर्क की भाषा भी रही । इसने भारतीय भाषा परिवार में विकल्प की भाषा के रूप में अपने को प्रतिष्ठित किया । कार्यालय, तकनीकी, ज्ञान-विज्ञान, उच्च शिक्षा, तथा औद्योगिक विकास के क्षेत्र में इस भाषा का अलग महत्व रहा है । इसलिए अंग्रेजी सीखने के पीछे हमेशा एक सामाजिक दबाव काम करता आया है । परंतु धीरे-धीरे अंगरेजी का स्थान हिंदी लेने लगी है । संपर्क भाषा के रूप में इसने अपनी सफलता हासिल की है ।

विदेशी भाषा भी अन्य भाषा के अंतर्गत है । प्रयोक्ता के किसी अन्य समाज अथवा राष्ट्र की संस्कृति को जानने-समझने के माध्यम के रूप में विदेशी भाषा का प्रयोग होता है । यह अपने भाषा-परिवार की भाषा नहीं है । न ही मातृभाषा के निकट की भाषा है । इसे सीखने के लिए न तो कोई सामाजिक दबाव होता है न ही इसका कोई बड़ा असर प्रयोक्ता के मानसिक विकास पर पड़ता है । किसी भावात्मक लगाव के कारण विदेशी भाषा सीखी जाती है । आवश्यकता के अनुसार विदेशी भाषा सीखी जाती है । फ्रेंच, जर्मन, जापानी आदि भाषाएँ विदेशी भाषा के उदाहरण हैं ।

भाषा-शिक्षण के अंतर्गत मातृभाषा और अन्यभाषा के स्वरूप के बारे में आपको जानकारी हासिल हो गई । अब भाषा-शिक्षण में प्रयुक्त विधियों के बारे में बताया जाएगा । मातृभाषा-शिक्षण एवं अन्यभाषा शिक्षण में इन विधियों का उपयोग किया जाता है । भाषा-शिक्षण की सफलता इन विधियों पर निर्भर करती है । यूँ तो भाषा-शिक्षण की अनेक विधियाँ प्रचलित है और नई-नई विधियाँ प्रस्तावित की जा रही हैं परंतु भाषा-शिक्षण की प्रमुख विधियों को चार प्रमुख बिंदुओं में विभाजित किया जा सकता है । ये हैं -

1. व्याकरण विधि
2. व्याकरण अनुवाद विधि
3. प्रत्यक्ष विधि
4. संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण

1. व्याकरण विधि - इस विधि के अंतर्गत शब्द, शब्द-संयोजन तथा व्याकरणिक नियमों का अभ्यास कराया जाता है । इस विधि में व्याकरणिक नियमों से व्यावहारिक भाषा को अधिक महत्व दिया जाता है ।
2. व्याकरण अनुवाद विधि - इस विधि में व्याकरण और अनुवाद को समान महत्व दिया जाता है । इस विधि के अंतर्गत प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा के बीच अनुवाद की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण माना जाता है । शब्द भेद, धातु रूप, कारक. काल-रचना, आदि कंठस्थ करवाये जाते है । इसके बाद कोश की सहायता से उसके अनुसाद की आवश्यकता होती है । चूंकि इस विधि में भाषा की जीवंतता, लक्ष्य भाषा के महत्व तथ शिक्षार्थी की रूचि पर ध्यान नहीं दिया जाता है, इसलिए इस विधि की सार्थकता संदिग्ध हो गई ।
3. प्रत्यक्ष विधि - प्रत्यक्ष विधि के अंतर्गत व्याकरण अनुवाद विधि की सीमाओं को दूर किया जाता है । भाषा-शिक्षण को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया जाता है । इस विधि के अंतर्गत मातृभाषा को माध्यम नहीं बनाया जाता है । लक्ष्य भाषा के साथ सीधे संपर्क स्थापित किया जाता है । मौखिक अभ्यास कराया जाता है । इसलिए इसका अन्य नाम मौखिक वार्तालाप विधि है । इस विधि की शिक्षण प्रक्रिया में देर तक वाक्यों को सुना जाता है और उनका अभ्यास कराया जाता है । इससे वाक्य आदत के रूप में ढल जाते है । प्रत्यक्ष विधि सर्वाधिक लोकप्रिय है ।
4. संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण : यह विधि प्रत्यक्ष विधि की पूरक है । भाषा-शिक्षण को प्रभावी बनाने तथा उसके व्यावहारिक पक्ष पर बल देने के लिए संप्रेषणात्मक भाषा शिक्षण को महत्व दिया जाता है । इस विधि से भाषा शिक्षण को एक ऐसा आधार मिला जिसमें भाषा के मौखिक रूप और उसकी समाज सांस्कृतिक विशेषताओं को महत्व प्रदान किया गया । इस विधि ने यह स्थापित किया कि भाषा-शिक्षण का आशय भाषा प्रयोग के नियमों को सीखना है, भाषा के व्याकरणिक नियमों को सीखना नहीं ।

यहाँ उल्लेख्य है कि भाषा-शिक्षण की अनेक विधियाँ तो हैं परंतु विधि के प्रभावी प्रयोग के लिए उचित सामग्री का होना आवश्यक है । इसमें अध्यापकों का सही प्रशिक्षण भी आवश्यक है । भाषा-शिक्षण के लिए कुछ शिक्षण सामग्रियाँ अनिवार्य है । इसके अंतर्गत पाठ्य पुस्तकें, व्याकरण, शब्दकोश आदि है । ब्लैक बोर्ड, चार्ट, फ्लैश कार्ड, ग्रामोफोन, स्लाइड, भाषा प्रयोगशाला, रेडियों, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि सामग्री भी भाषा शिक्षण को व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक बनाते हैं ।

भारत एक बहुभाषी देश है । यहाँ भाषा-शिक्षण की स्थिति अति महत्वपूर्ण है । प्रथम द्वितीय तृतीय भाषा के रूप में अनेक भाषाएँ सिखाई जाती है । सामाजिक स्थिति एवं राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार भाषा शिक्षण की उपादेयता निर्धारित होती है । संचार क्रांति के युग में भाषा-शिक्षण की भूमिका का भी विस्तार हुआ है । दूरदर्शन में किसी भी कार्यक्रम की 'डबिंग' के माध्यम से दर्शक अपनी भाषा में उसका लाभ उठा सकते हैं ।

इस संदर्भ में अनुवाद की देन उल्लेखनीय है । इसका क्षेत्र काफी व्यापक है । विभिन्न भाषाओं के सृजनपरक साहित्य का अनुवाद हो रहा है । सार्थक अनुवाद का सारा दारोमदार सफल अनुवादक पर........रहता है । सफल अनुवादक वो हो सकता है जो स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में दक्ष हो । दो भाषाओं में दक्षता अर्जित करने के लिए भाषा शिक्षण सर्वाधिक उपयोगी होता है ।

अंतराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भाषा-शिक्षण ने पूरे विश्व को एक परिवार में बदलने का प्रयास किया है । सैकड़ो भारतीय विश्वविद्यालयों में विदेशी भाषाएं सिखाई जा रही हैं । संसार के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है । इन शिक्षालयों में विषयवस्तु की जानकारी भर देना मात्र नहीं है शिक्षार्थियों के मन में भाषा संस्कार उत्पन्न किए जाने का भी प्रयास होता है । भाषा शिक्षण के माध्यम से शिक्षार्थी अपनी भाषा या किसी दूसरी भाषा में अधिक सक्षम होता है । आज के विश्व में द्विभाषी या बहुभाषी व्यक्ति वैचारिक दृष्टि से एक भाषी व्यक्ति की तुलना में अधिक समर्थ और शक्तिशाली होता है । ऐसे में, भाषा शिक्षण की भूमिका स्वयमेव बढ़ जाता है । इसलिए भाषा शिक्षण को बड़ी गंभीरता से अपनाया जा रहा है।

भाषा के त्रुटि विश्लेषण, परीक्षण, मूल्यांकन आदि भाषा-शिक्षण के महत्वपूर्ण पक्ष है । भाषा दोष विश्लेषण चॉम्स्की के उपागम पर आधारित है । चॉम्स्की के अनुसार भाषा अर्जन की प्रक्रिया में त्रुटियाँ स्वाभाविक है । संरचनागत विभिन्नता के कारण ये त्रुटियाँ होती हैं, भाषा के नियमों के परिपालन की प्रक्रियाएं किस रूप में काम करती है, इसकी जानकारी भी हमें चॉम्स्की के उपागम से मिलती है ।

भाषा शिक्षण सोद्देश्य होता है । इस संदर्भ में भाषा का परीक्षण होना भी अनिवार्य है । भाषा-शिक्षण में हमें विविध भाषिक कौशलों में अर्जित क्षमता का परीक्षण करना उचित है ।

भाषा-शिक्षण में प्रस्तुतीकरण, सामग्री आदि को भी प्रभावी बनाने की आवश्यकता है । मौखिक कौशलों का विकास करना भी जरूरी है । इसके लिए अभ्यास-कार्य तैयार करना तथा उस पर अमल करना आवश्यक है ताकि भाषा-शिक्षण को हम प्रभावी, उपयोगी एवं सार्थक बना सकें ।

22.5 अनुवाद

आज अनुवाद एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है यह अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का एक प्रमुख क्षेत्र है । अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में अनुवाद की आवश्यकता एवं उपयोगिता सर्वदा महसूस की जाती है । भूमंडलीकरण के दौर में भावाभिव्यक्ति, ज्ञान-विज्ञान के विकास आदि के लिए अनुवाद की सहायता लेनी पड़ती है । अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अत्यंत स्वाभाविक अंग अनुवाद है । भाषा के माध्यम से ही अनुवाद की प्रक्रिया शुरू होती है । अनुवाद का भाषा विज्ञान से गहरा संबंध है । भाषा के कई स्तर है जैसे ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, शैली आदि । इनका अध्ययन यूँ कहें कि वैज्ञानिक अध्ययन अनुवाद में अति सहायक होता है ।

अनुवादकर्ता को अनुवादक कहा जाता है । विदेश में इंटरप्रीटर या दुभाषिए की आवश्यकता होती है । अनुवादक या दुभाषिए के भाषा-ज्ञान का आधार ही सफल अभिव्यक्ति/संप्रेषण का माध्यम बनता है । अनुवादक के सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ

आती हैं । इन समस्याओं में से कुछ भाषिक स्तर की होती है तो कुछ अन्य प्रकार की इन पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जायेगा ।

पहले कहे गए को फिर से कहना अनुवाद है । इसे और स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि पहले किसी भाषा में लिखी या कही गई बात को पीछे किसी अन्य भाषा में कहने या लिखने की प्रक्रिया में केवल भाषा का अंतरण आता है । अर्थ एक ही बना रहता है । अनुवाद दो भाषाओं के बीच का संबंध है । इसमें एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त बात को दूसरी भाषा में शाब्दिक प्रतीकों के माध्यम से पुन प्रस्तुत किया जाता है । अनुवाद का द्वैभाषिक रूप ही अधिक प्रचलित तथा आलोचित है । परंतु एक भाषिक अनुवाद भी होते हैं । जैसे पुरानी हिंदी से आधुनिक हिंदी या पुरानी अंग्रेजी से आधुनिक अंग्रेजी । फिर भी, अनुवाद का बहुलांश में दो भाषाओं के संदर्भ में प्रयोग होता है । जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है उसे मूल भाषा या स्रोत भाषा कहते हैं । जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है । उसे लक्ष्य भाषा के नाम से जाना जाता है । मूल कृति 'गोदान' हिंदी भाषा मे रचित है इसका अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया जाये तो हिंदी स्रोत भाषा एवं अंग्रेजी लक्ष्य भाषा होगी । कोई जर्मन अनुवादक हिंदी न जाने और अंगरेजी अनुवाद को अपना आधार बनाए तो अंग्रेजी फिलटर भाषा के रूप में जानी जाती है ।

अनुवाद पुन: प्रस्तुति है । इसमें भाषा तो बदल जाती है, अर्थ नहीं बदलता । भाषा का सामाजिक- सांस्कृतिक ऐतिहासिक और राजनीतिक परिवेश होता है । अनुवादक केवल शब्दों का उल्था प्रस्तुत करना नहीं चाहता । सफल अनुवादक उसके परिवेश को भी चित्रित करता है । हालांकि आशय की पूर्ण समानता संभव नहीं हो पाती है । फिर भी, अनुवादक को यथासंभव प्रयास करना चाहिए । अर्थ की समतुल्यता पर विशेष ध्यान देना चाहिए । मूल रचनाकार के उद्देश्य के सफल रूपायन को सर्वदा ध्यान में रखना चाहिए ।

आप जानते हैं कि भाषा के दो रूप हैं - मौखिक एवं लिखित । इसी प्रकार अनुवाद के भी दो पक्ष होते हैं । मौखिक अनुवाद के अंतर्गत दुभाषिए आते हैं । जो तत्काल स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में मौखिक अनुवाद करते हैं और स्रोताओं को वक्ता के विचारों से परिचित कराते हैं । लिखित अनुवाद का महत्व होता है इसलिए यह अनुवाद सहज, एवं स्वाभाविक होना चाहिए । सबसे अच्छा अनुवाद उसे कहा जाता है जो अनुवाद होते हुए भी मूल कृति का रस प्रदान करें ।

अनुवाद का भाषा-विज्ञान से भी गहरा संबंध होता है ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य आदि स्तरों का ज्ञान होना अनुवादक के लिए आवश्यक है ।इन स्तरों पर मूल भाषा तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति एवं संरचना में निहित अंतर से परिचित होना जरूरी होता है । प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट ध्वनियाँ होती हैं । उसका अपना शब्द भंडार भी होता है । प्रत्येक भाषा की रूप व्यवस्था जैसे लिंग, वचन, पुरूष, कारक, क्रिया आदि की व्यवस्था भी भिन्न होती है । अनुवादक के लिए इन विषयों की जानकारी हासिल करना भी आवश्यक होता है ।

भाषा की मूलभूत इकाई है ध्वनि । ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत भाषा की विभिन्न ध्वनियाँ, ध्वनिगुच्छों, स्वनिमों, अक्षर, मात्रा, बलाघात आदि का अध्ययन किया जाता है । ध्वनि तथा उच्चारण से ही भाषा की वर्तनी व्यवस्था सम्बन्धित है । ध्वनियों के संयोजन से शब्द, शब्दों से पद और वाक्य बनते हैं । इसलिए ध्वनि ही मूलभूत इकाई है, एक भाषा की

ध्वनि दूसरी भाषा में नहीं होती । जैसे, हिंदी की 'त' ध्वनि का प्रयोग अंग्रेजी में 'ट' (T) होता है । अंग्रेजी में 'V' और 'W' दो अलग-अलग उच्चारण हैं परंतु हिन्दी में इनके लिए 'व' का ही उच्चारण होता है ।

लिप्यंतरण की प्रक्रिया में भी ध्वनियों का काफी महत्व रहता है । पाश्चात्य चिंतक Taine का उच्चारण 'तेन' होता है जबकि Rembtand के लिए 'रेम्बा' । यहाँ 'टाइने' या 'रेम्ब्रांड्ट' उच्चारण गलत मान्य होता है ।

अनुवाद में शब्द विज्ञान का ज्ञान होना भी जरूरी है । सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहा जाता है । अर्थ वहन करने वाले शब्द को सार्थक माने जाते हैं । शब्द की परिभाषा उसके प्रयोग-संदर्भ, उसके स्रोत, उसकी व्याकरणिक कोटियाँ आदि शब्द विज्ञान के अंतर्गत आते हैं । शब्द का अर्थ जान लेना ही काफी नहीं हैं । शब्द का प्रयोग किस संदर्भ में हुआ है । उसकी जानकारी प्राप्त करना भी अपेक्षित है, शब्द का अर्थ एक हो सकता है परंतु उसके संदर्भ भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं, जैसे अंग्रेजी का शब्द है फादर Father । हिंदी में सामाजिक स्थितियों के अनुसार 'पिता' के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है - पिताजी, बाबूजी, पापा, वालिद, बच्चा, पिताश्री, बाप, प्यो आदि ।

पारिभाषिक शब्दावली के संदर्भ में भी शब्द विज्ञान की आवश्यकता है, पारिभाषिक शब्द रूढ़ होते है और विशिष्ट संदर्भ में ही प्रयुक्त होते हैं । विशिष्ट शास्त्रों, विज्ञानों के लिए विशिष्ट शब्दों का निर्माण हुआ है जैसे, दर्शन के क्षेत्र में 'विशिष्टाद्वैतवाद, गणित में 'दशमलव' रसायन शास्त्र में 'ग्राम-अणु विलोपन', पदार्थ विज्ञान में 'अचुंबकीयपदार्थ, आदि । सामान्य बोलचाल में इन शब्दों की जरूरत नहीं होती हैं । कभी कभार अनुवादक को शब्दों के अभाव में समतुल्य शब्दों का निर्माण करना भी पडता है ।

अनुवाद में रूप रचना संबंधी नियमों की जानकारी अपेक्षित हैं, संज्ञा, सर्वनाम, लिंग, वचन, पुरूष, कृदंत, उपसर्ग, प्रत्यय का अध्ययन रूप विज्ञान के क्षेत्र में आता है । रूप रचना के ज्ञान से अनुवाद कर्म सफल होता है, सटीक बनता है ।

अनुवाद में वाक्य विज्ञान की समझ सहायक होती है । भाषा के सही स्वरूप को समझने में भी वाक्य विज्ञान की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । सामान्य सूचना देने वाले दो वाक्यों में किस प्रकार अंतर हो सकता है, इसे अनुवादक को समझना होता है । इस काम में वाक्य विज्ञान की जानकारी की जरूरत है । उदाहरण के लिए:

(क) संतोष ने कलमदान तोड़ दिया ।

(ख) संतोष से कलमदान टूट गया ।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों से प्राप्त समान सूचना है 'कलमदान का टूटना, दोनों में कर्ता संतोष है । कर्म है कलमदान । 'टूटना' क्रिया है । इन वाक्यों की संरचना की भिन्नता है । इसलिए उनके अर्थ में अंतर आ गया है । पहले वाक्य में यह अर्थ होता है कि संतोष ने स्वेच्छा से, जानबूझकर कलमदान तोड़ दिया दूसरे वाक्य से स्पष्ट होता है कि संतोष की किसी चूक के चलते कलमदान टूट गया । वह नहीं चाहता कि कलमदान तोड़ दे । इस प्रकार

सामान्य समान सूचना देने वाले वाक्यों मं निहित अंतर को समझने में वाक्य विज्ञान सहायक होता है।

कभी-कभी दो भाषाओं में वाक्यों की व्याकरणिक संरचना समान प्रतीत होती है परंतु उन संरचनाओं से संबद्ध वाक्यार्थ भिन्न होता है । हिंदी में कर्मवाव्य एवं कर्तृवाच्च प्रयुक्त होते हैं तो अंग्रेजी में Active एवं Passive वाक्य संरचना का प्रयोग होता है । हिंदी में निम्न दो प्रकार के वाक्य मिलती है :

	(क)	'गोदान' उपन्यास प्रेमचंद द्वारा लिखा गया था ।
	(ख)	'गोदान' उपन्यास प्रेमचंद ने लिखा था ।
अंग्रेजी	(क)	The Novel 'Godan' was written by Premchand.
	(ख)	The 'Godan' novel was written by premchand.

हिंदी में रचित दोनों वाक्य सही होते हुए भी दूसरे प्रकार के वाक्यों का अधिकाधिक प्रयोग होता है । ऐसे वाक्य सहज लगते हैं । एक अन्य उदाहरण देखा जा सकता है :

(क) यह दरवाजा चोरों द्वारा तोड़ दिया गया था ।

(ख) यह दरवाजा चोरों ने तोड़ा था ।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों के लिए अंग्रेजी में प्रयुक्त वाक्य है :

The doors was broken by the thieves.

अनुवादक को प्रथम प्रकार के असहज एवं बनावटी वाक्यों से बचना चाहिए । अंग्रेजी में active voice सहज लगता है परंतु हिंदी में कर्तृवाच्य संरचनाएँ सहज प्रतीत होती है, स्वाभाविक भी लगती है ।

अनुवाद में अर्थ विज्ञान का भी बड़ा महत्व है । शब्द का अर्थ अभिधा, लक्षणा या व्यंजना में व्यक्त होता है । वक्ता या रचनाकार ने शब्द से किस आशय का अर्थ स्पष्ट करना चाहा है यह अनुवादक के लिए जानना अति आवश्यक है । मैदान में खड़ा 'गधा' और कक्षा में बैठे किसी मूर्ख छात्र के लिए प्रयुक्त शब्द 'गधा' में अंतर होता है । इसलिए शब्दों के अर्थ संदर्भ, प्रयोग, काल, स्रोत, लिंग, सहप्रयोग बलाघात,, अनुतान आदि से भी निर्धारित होते हैं । अनुवाद कर्म में इनका तो प्रयोग होता ही है, पद, पदबंध, वाक्य, प्रोक्ति, मुहावरे एवं लोकोक्ति के संदर्भो को भी जानना-समझना अनुवादक के लिए आवश्यक होता है । अनुवादक को ध्यान देना पड़ता है कि किसी भी शब्द का स्रोत क्या है? अंग्रेजी शब्द check का प्रर्योग आमतौर पर रोकथाम, नियंत्रण आदि के अर्थ में होता है । परंतु अमेरिका में इसी शब्द का प्रयोग बैंक में प्रयुक्त Cheque के लिए भी होता है ।

किसी भाषा में मुहावरे तथा लोकोक्तियों के प्रयोग के विशेष संदर्भ होते हैं । दो व्यक्तियों में बड़ा भारी अंतर हो और दोनों में तुलना करनी हो तो हिंदी में कहा जाता है - "कहीं राजा भोज और कहाँ गंग तेली" अंग्रेजी अनुवाद में इसके संदर्भ और अर्थ को महत्वपूर्ण होना चाहिए, न कि यहाँ प्रयुक्त शब्द । ठीक उसी तरह लंबोदर का शब्दार्थ 'लंबे पेटवाला' होता है, पर इसका प्रयोग केवल 'गणेश' के लिए होता है ।

अनुवाद के क्षेत्र में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का प्रयोग अति महत्वपूर्ण है । भाषा विज्ञान के विविध स्तरों का प्रयोग अनुवाद में होता है तो अनुवाद अत्यंत सहज एवं वैज्ञानिक सम्मत होता है । शैली विज्ञान अनुवाद को कैसे सहायता प्रदान करता है ? इस विषय पर भी थोड़ी सी जानकारी हासिल करना उचित लगता है । ध्यान रहे कि शैली का भी संबंध मूलतया भाषा से है । किसी भी रचना की शैली रचनाकार के व्यक्तित्व, विचारधारा और प्रकृति का परिचय प्रदान करती है । उदाहरण के लिए हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के ललित निबंध उनकी विनोद वृत्ति के परिचायक है तो निराला की अनेक कविताएँ उनके विद्रोही तेवर से परिचित कराती हैं, प्रेमचंद की कहानियों में ग्रामीण जन-जीवन के बिंब अंकित है । जो ग्रामीण जन-जीवन की रीति-नीतियों, आचार-विचारों के परिचायक बनते हैं । रचनाकार के विचार और स्वभाव का परिचय प्रदान करती है । उसकी रचनाएँ । अत: अनुवाद करते समय इस महत्वपूर्ण बिंदु परसदा ध्यान केंन्द्रित करना चाहिए । मूल रचना की आत्मा सदा बनी रहे अन्यथा शैली से अभिहित कथ्य के खंडित होने की प्रबल संभावना बनी रहती है । शैली विज्ञान के नियमों एवं प्रविधियों की समुचित जानकारी हासिल करना परम आवश्यक है । स्रोत भाषा का मूल कथ्य लक्ष्य भाषा तक सही-सही बना रहे तो अनुवाद न केवल सफल होता है । सार्थक भी बन जाता है ।

सारांश यह कि अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान का एक उल्लेखनीय क्षेत्र है । ध्वनि विज्ञान, शब्द विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान, शैली विज्ञान के नियमों एवं विधियों का परिपालन अनुवाद में होता है।

22.6 भाषा तुलना

भाषाओं के विश्लेषण एवं वर्णन का आधार भाषा विज्ञान से मिलता है । इस आधार के सहारे दो भाषाओं में लिपि, वर्तनी, उच्चारण, शब्द, रचना, विन्यास आदि के स्तर पर जब दो भाषाओं की तुलना की जाती है । उसे भाषा तुलना कहा जाता है । तुलनात्मक भाषाविज्ञान ओर भाषा तुलना को एक मान लिया जाता है परंतु ये दोनों एक नहीं है, भिन्न-भिन्न हैं । तुलनात्मक भाषा-विज्ञान एक ही परिवार की भाषाओं संबद्धता का अध्ययन करता है । परंतु भाषा तुलना में यह अध्ययन एक ही परिवार की भाषाओं तक सीमित नहीं होता है । व्यतिरेकी विश्लेषण में भी दो भाषाओं की तुलना की जाती है । दोनों में भाषाओं की तुलना होती है । परंतु इनके उद्देश्यों में अंतर रहता है । इसकी प्रविधि में भी अंतर है ।

एक ही परिवार की भाषाओं की तुलना के आधार पर उनके परस्पर संबंधों की जानकारी हासिल होती है । उनमें निहित अंतरों की खोज होती है । भाषाओं का वर्गीकरण होता है, समान तत्वों की विभिन्नता पर प्रकाश डालते हुए मूलभूत एकता की पहचान होती है । संसार की किन्ही दो भाषाओं में कुछ समान तत्व होंगे तो कुछ असमान विषय भी हो सकते है । व्यवहारवादी सिद्धांत के अंतर्गत व्यतिरेकी विश्लेषण किया जा सकता है । सगोत्रीय भाषाओं में समानता अधिक होगी जबकि अन्य भाषाओं में विषमताएँ अधिक होंगी । व्यतिरेक से आशय विपरीतता है । अंग्रेजी में इसके लिए Contrast शब्द का प्रयोग होता है । उदाहरण के लिए 'कोना' और 'खाना' शब्द व्यतिरेक में हैं और अर्थ भेद करते हैं । क/ओर/ख ध्वनियों की

व्यतिरेकी व्यवस्था ही दोनों में अर्थ-भेद का आधार है । इस प्रकार अर्थ भेद उत्पन्न करने वाले विपरीत तत्वों को निश्चित करना व्यतिरेकी विश्लेषण का मुख्य लक्ष्य है ।

व्यतिरेकी विश्लेषण का सर्वाधिक विरोध भाषा-त्रुटि विश्लेषण करता है । भाषा त्रुटि विश्लेषण में त्रुटियों के पूर्वानुमान के सिद्धांत को नकारा गया । भाषाओं में भिन्नता होने के बावजूद गलतियाँ नहीं हो सकती है । जैसे, हिंदी में एक सर्वनाम है 'उसका', अंग्रेजी में इसके लिए दो रूप हैं - His एवं Her हिंदी की तुलना में अंग्रेजी में समानीकरण है । परंतु किसी भी अध्येता से अंग्रेजी में यह त्रुटि नहीं होती है । वास्तव में त्रुटि विश्लेषण को वर्तनी तक सीमित रखना नहीं चाहिए । हमारे मस्तिष्क में विचार जन्म लेते हैं और अभिव्यक्ति का रूप धारण करते हैं । इसलिए त्रुटि विश्लेषण करते समय अन्य अंतर्निहित संरचनाओं की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है । अक्सर हमारे गहन विचारों का साथ भाषा नहीं देती । हम कुछ कहना चाहते हैं परंतु अभिव्यक्ति भिन्न रूप धारण कर लेती है । इसका अध्ययन भाषा त्रुटि विश्लेषण में किया जाता है ।

भाषा की तुलना क्यों एवं किसलिए की जाती है ? भाषा की तुलना में क्या उपयोगिता है? इन प्रश्नों पर विचार करते हुए वी.रा. जगन्नाथन ने निम्न आरेख प्रस्तुत किया है ।

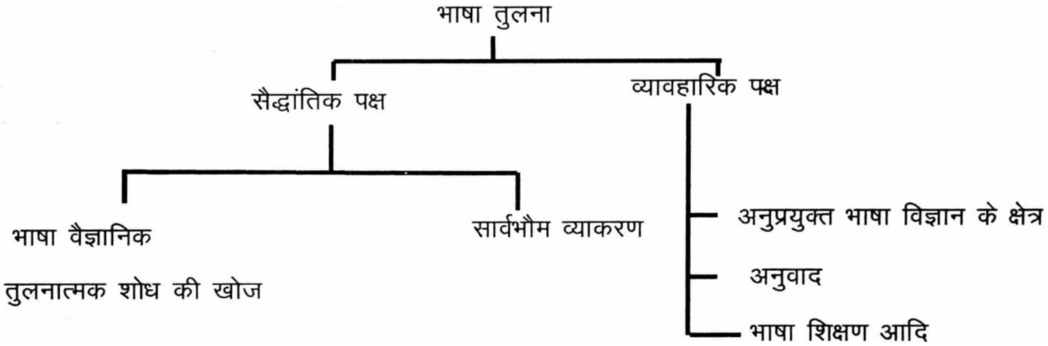

भाषा तुलना के सैद्धांतिक पक्ष के अंतर्गत सार्वभौम व्याकरण की संकल्पना विकसित की जा सकती है । इसके आधार पर व्याकरण का एक सामान्य ढाँचा प्रस्तुत किया जा सकता है । सार्वभौम व्याकरण के संदर्भ में किए गए कार्यों में भाषा की सामान्य विशेषताएँ भी प्रस्तुत की जा सकती है । भाषाओं के तुलनात्मक शोध-कार्य से नये आयाम खुल सकते हैं । भाषा तुलना में सैद्धांतिक पक्ष के अंतर्गत भाषा विज्ञान का स्वरूप खड़ा होता है ।

भाषा की तुलना के व्यावहारिक पक्ष के अंतर्गत अनुवाद, भाषा शिक्षण आदि आते हैं । इनमें भाषा विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिपादित सिद्धांतों का उपयोग होता है । भाषा विज्ञान के सिद्धांतों के अनुप्रयोग व्यावहारिक पक्ष में होते हैं । ध्वनि, लिपि, शब्द, वाक्य आदि के स्तरों पर भाषा की तुलना करते हुए समतुल्य तत्वों की जानकारी प्रदान की जाती है । समतुल्य तत्वों के अभाव में अनुवाद भ्रामक सिद्ध होता है ।

लिपि के स्तर पर अंग्रेजी के u को उ ऊ, अ आदि के समान माना जाता है । जैसे Put-पुट, But-बट, Bus-बस आदि ।

भाषाओं में शब्द और अर्थ का सामंजस्य एक जैसा नहीं होता है । इसलिए अनुवादक को व्यापक शोध तथा विस्तृत अध्ययन का सहारा लेना पड़ता है । हिंदी में अभ्यास के लिए

अंग्रेजी Practice शब्द का प्रयोग होता है । जबकि यह रिवाज, व्यायाम आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है । ऐसे में, अनुवादक को शब्द के अर्थ के लिए सही संदर्भ ज्ञात करना जरूरी होता है । एक गलत अनुवाद का उदाहरण देखिए

The class-teacher advised to practice mathematics.

शिक्षक ने गणित का व्यायाम करने के लिए सलाह दी ।

Thousands of sleepers were burnt.

एक दूसरा गलत अनुवाद का उदाहरण देखें.

हजारों सोने वाले जला दिये गये, जबकि उक्त वाक्य का सही अनुवाद होगा - हजारों रेल के स्तीपर जला दिये गये थे ।

पदबंध, क्रिया, वाक्य विन्यास, वाक्य संरचना आदि के संदर्भों में भी भाषा की तुलना होती है । यहाँ भी अनुवादक को सही संदर्भो का ध्यान रखते हुए समतुल्य रूप का चयन करना होता है ।

अन्य भाषा के रूप में भाषा शिक्षण में भाषा की तुलना का महत्व है । अरूणाचल प्रदेश तथा अन्य कई प्रदेशों में महाप्राण ध्वनियों का प्रचलन नहीं होता है । इसलिए इन प्रांतों के शिक्षार्थी 'घंटा' को गटा, 'छाता को चाता, 'भरपूर को 'बरपूर आदि बोलते हैं । अध्यापक ‘चाता' को 'छाता, गंटा को 'घंटा' आदि मान लेता है । छात्रों की कठिनाइयों को पहचान कर उनका निराकरण करना होता है । ऐसे में भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अध्यापकों की बहुत सहायता करता है ।

भाषा की तुलना में चयन का स्थान महत्वपूर्ण है । भाषा शिक्षण में इस बात की तुलना की जाती है कि शिक्षार्थी ने प्रारंभ से हिंदी सीखी है या अन्य भाषा के संदर्भ में हिंदी की शिक्षा प्राप्त की है । इस बिंदु पर ध्यान दिए बिना चयन नहीं किया जा सकता । अपनी भाषा के प्रभाव के फलस्वरूप शिक्षार्थी को ध्वनि, लिपि, वर्तनी, शब्द, वाक्य आदि के स्तरों पर कठिनाई हो सकती है । एतद् सम्बन्धी गलतियाँ भी होती हैं । अत: भाषा शिक्षण में भाषा तुलना की अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है । भाषा तुलना के आधार पर पाठ्य सामग्री का निर्माण अधिक वैज्ञानिक एवं तर्क सम्मत होगा ।

शिक्षार्थी की मातृभाषा की पहचान भाषा शिक्षण योजना को नया आयाम देती है । चीनी अथवा स्पैनिश भाषा-भाषी को हिंदी शिक्षण में लगाया जाये तो लिपि, उच्चारण की शिक्षा पर अधिक बल देना होगा । इसी प्रकार यदि किसी गुजराती या मराठी भाषी को हिंदी सिखाना हो तो लिपि, उच्चारण एवं वर्तनी में सबसे कम समय देना होगा इस संदर्भ में सामग्री निर्माण एवं प्रस्तुतीकरण की भूमिका अति महत्वपूर्ण है । यह कार्य अध्यापक द्वारा आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत करना पडता है । छात्रों की त्रुटियों को चिह्नित करना, उन त्रुटियों के संभावित कारणों का पता लगाना और उनके निराकरण हेतु आवश्यक कदम उठाना होता है । इस पूरी प्रक्रिया में भाषा तुलना बहुत बड़ी सहायता पहुँचाती है ।

नई पाठ्य सामग्री को प्रस्तुत करते समय भी अध्यापक छात्रों की मातृभाषा के ज्ञान से सहायता ले सकता है । इस कार्य के लिए भी भाषा की तुलना की आवश्यकता होती है ।

उदाहरण के तौर पर हिंदी वाक्य -'रोज दस पन्ने पढा करो'- 'पढ़ा करो' का अंग्रेजी समतुल्य प्रयोग ढूँढना पड़ता है । अध्यापक बताएगा Read ten pages daily. ठीक उसी प्रकार 'मुझे तंग मत किया करो' 'अथवा 'मुझे सुनाया न करो,' जैसे वाक्यों के समतुल्य अंग्रेजी रूप ढूँढने का अभ्यास करवा सकता है ।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भाषा तुलना आधुनिक अध्ययन क्षेत्र हैं । हम विश्व की किन्हीं दो भाषाओं की तुलना संरचनात्मक तथा अनुप्रयोगात्मक भाषा-विज्ञान के संदर्भ में कर सकते है । अनुवाद, भाषा शिक्षण, कोश विज्ञान आदि अनुप्रयोग के क्षेत्रों में दो भाषाओं की तुलना की जा सकती है ।

22.7 शैली विज्ञान

साहित्य के संपूर्ण अध्ययन के लिए भाषा वैज्ञानिक एवं काव्यशास्त्रीय दृष्टि का सम्मिलित प्रयास आवश्यक है । साहित्य में कलात्मकता, सृजनात्मकता, साहित्यिकता के साथ-साथ भाषा की उत्कृष्टता भी होती है । साहित्य भाषा की कुक्षि से जन्म लेता है । समर्थ भाषा साहित्य को सशक्त बनाती है । रचनाकार अपने भावों, विचारों और अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा-शक्ति का प्रयोग करता है । भाषा की इस शक्ति का अन्य नाम शैली है ।

भारतीय काव्यशास्त्र में 'शैली' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'शील' धातु से मानी गई है । स्वभाव, लक्षण, झुकाव, आदत, चरित्र आदि के अर्थ में 'शील' शब्द का प्रयोग होता है । बाद में वृत्ति, प्रवृत्ति, रीति और काव्य पद्धति के अर्थ में शैली शब्द का प्रयोग हुआ भारतीय परंपरा अनुसार काव्य शास्त्र में षट् सिद्धांतों में से एक है रीति सिद्धांत, वामन इसके प्रमुख प्रवर्तक थे । 'विशिष्ट पदरचना रीतिः' के आधार पर वामन ने रीति को पदों की विशिष्ट रचना कहा है । भरत के अनुसार रीति वक्ता के स्वभाव, उसकी संस्कृति या उसकी प्रादेशिकता के आधार पर निश्चित होती है । भामह ने भाषा और काव्य में अंतर स्पष्ट किया । उन्होंने सामान्य शब्दार्थ को वार्ता माना । कुंतक ने 'वक्रोक्ति काव्य जीविनम्' कहा । अत: स्पष्ट है कि भले ही हिंदी में शैली पर समुचित मात्रा में शास्त्रीय विवेचन अधिकाधिक नहीं हुआ है तथापि विभिन्न आचार्यों ने इस पर अपने विचार प्रकट किये है । गुलाब राय के अनुसार अभिव्यक्ति या गुण शैली है । करूणापति त्रिपाठी की मान्यता है कि आकर्षक, रमणीय, प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति शैली है ।

पाश्चात्य काव्य शास्त्र के अनुसार Style लैटिन भाषा के Stilus से व्युत्पन्न हुआ है । इसका अर्थ था 'लौह लेखनी' । वास्तव में लेखन की विशेषता के रूप में इस शब्द का प्रचलन हुआ । आगे चलकर अभिव्यक्ति के प्रतीक, लिखने की विशेष पद्धति, आदि के लिए उक्त शब्द का प्रचलन होने लगा । पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में शैली की विशेषताओं और उसके गुण-दोषों का सविस्तार विवेचन हुआ । प्लेटो ने सहज, विचित्र और मिश्रित शैली के रूप में शैली के तीन भेद गिनाये तो अरस्तु ने स्पष्टता और औचित्य के शैली के दो गुण के रूप में स्वीकार किया । पाश्चात्य चिंतक होरेस ने विवेक शब्द योजना और स्पष्टता जैसे गुणों को अनिवार्य माना । वाल्टर रेले ने शब्द और अर्थ पर बल दिया । इस प्रकार कहा जा सकता है कि पाश्चात्य

काव्यशास्त्र में शैली एक विलक्षण और विशिष्ट पद्धति के रूप में मान्य है । इसमें प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय है । स्थायित्व एवं परिवर्तन का समायोजन है । सरलता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, लयात्मकता आदि गुणों से शैली ओतप्रोत है ।

अब तक आपने शैली का सामान्य अर्थ जान लिया होगा । साथ ही, भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में वर्णित शैली सम्बन्धी अवधारणाओं के बारे आपकी एक समझ विकसित हो गई होगी । अब आपको शैली विज्ञान के स्वरूप के बारे में बताया जाएगा । शैली विज्ञान आलोचना की एक प्रणाली है । इससे साहित्यिक रचना की समझदारी व्यवस्थित व विकसित होती है । शैली विज्ञान वह विज्ञान है जो साहित्य को भाषिक कला की कोटि में रखता है इसमें एक ओर कला होती है तो दूसरी ओर भाषा रचनाकार की कृति के शैली परक प्रयोग का अध्ययन शैली विज्ञान का क्षेत्र है । साहित्यकार की कृति ही शैली विज्ञान का प्रतिपाद्‌य है । शैली विज्ञान कृति का विश्लेषण करता है ।

यह विश्लेषण न तो पाठकीय होता है, न दार्शनिक, न ही सामाजशास्त्रीय अथवा मनोवैज्ञानिक । इसलिए शैली विज्ञान, एक भाषापरक आलोचना है । किसी भी कृति के सृजनात्मक बिंदु तक पहुँचने के लिए शैली विज्ञान सदैव दर्शन, समाज, मनोविज्ञान, भाषा विज्ञान के उपकरणों का उपयोग कर सकता है ।

शैली विज्ञान के अनुसार किसी भी साहित्यिक कृति को सही ढंग से समझने के लिए उसकी आंतरिक संरचना को समझना जरूरी होता है । उसकी काव्यात्मकता का संधान करना आवश्यक है । ध्वनि संयोजन, रूप प्रक्रिया, शब्द संस्कार, वाक्य रचना, प्रोक्ति संरचना को ध्यान में रखकर आंतरिक संरचना की खोज की जा सकती है । इसके बाद कवि या पाठक, सामाजिक या सांस्कृतिक मूल्यों का विवेचन कर पाता है । इसलिए शैली विज्ञान में कथ्य और अभिव्यक्ति के समन्वय पर अधिक बल दिया जाता है ।

शैली विज्ञान में कृति के भीतर के संसार को जीवित करने का प्रयास किया जाता है । इससे कृति की सृजनात्मकता सामने आती है । शैली विज्ञान में अंतरंग आलोचना का ही सर्वाधिक महत्व है ।

शैली विज्ञान के लिए अंग्रेजी में Stylistic शब्द का प्रयोग होता है । शैली की, शैली शास्त्र, रीति विज्ञान जैसे नामों से इसे जानने का भी प्रयास किया गया । परंतु शैली विज्ञान नामक शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ ।

शैली विज्ञान का उद्भव बीसवीं शताब्दी में हुआ । जेनेवा स्कूल के सुप्रसिद्ध चार्ल्स बेली ने इसकी प्रतिष्ठा की थी । उनके अनुसार भाषा की अभिव्यंजना एवं प्रक्रिया का अध्ययन ही शैली विज्ञान है । बेली ने साहित्यिक कृति को शैली विज्ञान की परिधि के बाहर रखा । लेकिन उनका सिद्धांत भाषा-प्रयोक्ता के सृजनात्मक तत्वों पर आधारित है । उनका भाषा -सिद्धांत साहित्यिक कृति की भाषा पर भी लागू हो सकते है । बेली ने अपने गुरू फर्दी सम्पूर के 'भाषा' और 'वाक्' सिद्धांत से प्राप्त किया था । सस्यूर के सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए बेली ने वैयक्तिक भाषा में भावात्मकता को निहित बताया । भावात्मकता भाषा में जो मूल्य प्रस्तुत करती है वह शैली के मूल में रहती है । इन्हीं मूल्यों का अध्ययन शैली विज्ञान का क्षेत्र है । अत: यह कहा

जा सकता है कि "व्यवस्थित भाषा की अभिव्यक्तियों का अध्ययन उनमें निहित प्रभावकारी तत्वों के आधार पर करना अर्थात् भाषा के माध्यम से होने वाली संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति का तथा संवेदनशीलता पर आधारित भाषा व्यापार का अध्ययन करना शैली विज्ञान का कार्य है ।" बेली के अनुसार साहित्यकार सदैव स्वेच्छा से और सचेत होकर अपनी भाषात्मक क्षमता का प्रयोग करता है । वह जिस चयन को प्रस्तुत करता है वह सोद्देश्य होता है । ऐसे में भाषा का सौंदर्यमूलक प्रभाव क्षुण्ण होता है । उसमें सहजता नहीं रह जाती है । भाषा बनावटी हो जाती है । ऐसी स्थिति में भाषा सर्वजन सुलभ होने से वंचित रह जाती है । बेली के इन विचारों का बड़ा विरोध हुआ । उनके शिष्यों ने भी उनके मत को अस्वीकृत कर दिया । यहाँ तक कि मारसेल क्रेसॉट ने उनके मत का खंडन किया और यह मान्यता दी कि साहित्य की कृति में साहित्यकार अपनी संप्रेषणीयता को पाठकों के सामने व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करता है ।

शैली विज्ञान और भाषा विज्ञान में परस्पर सम्बन्ध है । भाषा विज्ञान भाषा के प्रकार्यों का अध्ययन करता है । तो शैली विज्ञान भाषा की अनु प्रायोगिक विधा का विश्लेषण करता है । दोनों का संबंध भाषा से है । भाषा विज्ञान मुख्यत: भाषा के उस रूप तक सीमित है जो लोगों में सामाजिक संपर्क स्थापित करने में सहायक है । यह उस भाषा तक सीमित है । जो लोगों में सामाजिक संपर्क स्थापित करने में सहायक है । भाषा विज्ञान वाक अवयव की भाषा से संबंधित है जबकि शैली विज्ञान वाक्यों के संदर्भपरक अर्थ के अलावा संसाधनों तक ले जाता है । सस्यूर की यह संकल्पना थी । इसके आधार पर अमरीकी चिंतक नोअम चॉम्स्की ने भाषायी क्षमता और भाषायी व्यवहार की धारणा विकसित की । उनके अनुसार मनुष्य स्थिति एवं संदर्भ के अनुसार नई उक्तियों का सृजन करता है । ये उक्तियाँ पहले न तो बोली गई थी और न ही सुनी गई थी । परंतु समझी गई होती है । यह इसलिए कि संहिता की अभिव्यक्ति के रूप में संदेश के रूप में जानी-पहचानी जाती है । शैली विज्ञान भाषा संप्रेषण में आने वाली इकाइयों का अध्ययन प्रस्तुत करता है । भाषा के बोधात्मक, अभिधात्मक एवं सौंदर्य परक संसाधनों का, प्रायोगिक अध्ययन शैली विज्ञान द्वारा संभव होता है । भाषा के ये तीनो प्रकार्य परस्पर संबद्ध हैं । भाषा के बोधात्मक प्रकार्य से अभिव्यक्ति होती है । इसमें वक्ता अपने भावों एवं विचारों को प्रकट करता है । दूसरे प्रकार्य में वक्ता की वृत्ति एवं उससे व्यक्तित्व का पता चलता है । साथ ही, वक्ता और श्रोता का संबंध ज्ञात होता है । तीसरा प्रकार्य सौंदर्यपरक है जो व्यक्ति की भाषागत सृजनात्मकता से सबंधित है । यह प्रकार्य वाक्य के बीच के संबंधों तक ही सीमित न होकर स्थिति एवं संदर्भ के अनुसर कार्य करता है । इस प्रकार्य में वाक्यों की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है । इसे सृजनपरक प्रयोग भी कहा जाता है । शैली विज्ञान भाषा के अभिव्यंजनापरक प्रभावपरक एवं सौंदर्यपरक पक्षों का अन्वेषण करते हुए भाषा विज्ञान की सहायता करता है ।

भाषा विज्ञान वाक्य को मानता है, उसका विश्लेषण करता है जबकि शैली विज्ञान वाक्य से परे पूरी कृति को अपनी परिधि में समेट लेता है । वाक्य, उपवाक्य कोशीय रूप, वक्ता एवं श्रोता का संबंध, व्याख्यात्मक अभिलक्षण आदि की भी व्याख्या शैली विज्ञान के अंतर्गत की जाती है । भाषा विज्ञान किसी साहित्यिक कृति के ध्वनि विधान, लय, छंद, वाक्य रचना आदि को समझने में सहायता करता है । भाषा का वर्णनात्मक ज्ञान भाषा विज्ञान से प्राप्त होता है ।

जबकि शैली विज्ञान भाषा के सृजनात्मक प्रयोग की भी जानकारी देता है । इसमें केवल शाब्दिक अर्थ की व्याख्या नहीं होती अर्थगत विचलन पर भी ध्यान दिया जाता है । अत: स्पष्ट है कि शैली विज्ञान का क्षेत्र भाषा विज्ञान के क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक है ।

साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में शैली विज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है । शैली विज्ञान में साहित्यिक कृति की सौंदर्यपरक व्याख्या की जाती है । इसमें साहित्यिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया जाता है । शैली विज्ञान में भाषा का अध्ययन तो होता ही है, कलात्मक भाषिक रचना की शैली का भी अध्ययन होता है । साहित्यिक आलोचना का क्षेत्र भी सीमित है क्योंकि यहाँ केवल मूल्य निर्णय के साथ सौंदर्यानुभूति को महत्व दिया जाता है । शैली विज्ञान में भाषा का विश्लेषण, मूल्य निर्णय के साथ साथ सहानुभूति भी समाहित है । वर्णनात्मकता के आधर पर शैली विज्ञान किसी भी शैली का अध्ययन करता है, विश्लेषण करता है और विशेषताओं का निर्णय करता है । शैली विज्ञान के व्यापक परिसर को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है, कि यह अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है । शैली विज्ञान किसी भी साहित्यिक कृति का संपूर्ण विवेचन करने की क्षमता रखता है ।

22.8 कोश विज्ञान

आज के युग में कोश हमारे लिए नित्य प्रयोजनीय है । भारत जैसे बहुभाषी देश में नियमित रूप से कोश का उपयोग होता है । कोश किसी भी रूप या अर्थ को स्थिरता और मानकता प्रदान करता है । भाषा के मानकीकरण हेतु कोश का प्रयोग होता है । अर्थात कोश भाषा को (Standard) मानक बनाता है । परंतु कोश निर्माता जानबूझकर मानकीकरण नहीं करता । कोश केवल संदर्भ ग्रंथ नहीं होता है । दिन-ब-दिन ज्ञान की प्रगति के साथ-साथ कोशों की उपयोगिता भी बढती जा रही है । विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच नाना प्रकार के आदान प्रदान हेतु कोशों की आवश्यकता पड़ती है । तकनीकी शब्दावली तथा पारिभाषिक शब्दों के लिए कोशों का उपयोग जरूरी है । इन्हीं सब जरूरतों को ध्यान में रखकर अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अंतर्गत कोश विज्ञान का पठन-पाठन शुरू किया गया है ।

भारतीय भाषाओं के संदर्भ में कोश का स्थान, महत्वपूर्ण है । इसका सबसे प्राचीन नाम 'निघण्टु' है । इस शब्द का प्रयोग पर्यायवाची, अनेकार्थ, नानार्थ आदि के लिए भी हुआ करता है । तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि भाषाओं में आज भी कोश के लिए 'निघंटु' का प्रयोग होता है । अभिधान, शब्द कल्पद्रुम, शब्दार्थ कौस्तुभ, शब्द पारिजातम शब्द चिंतामणि शब्द सागर, शब्द रत्नाकर, शब्द मुक्तावली, शब्द मंजरी, शब्दाभिधान शब्दार्णव, आदि भी कोश के लिए प्रयुक्त होते है ।

कोश विज्ञान एक संदर्भ ग्रंथ है । कोश विज्ञान से हम शब्द का संदर्भ जान सकते हैं । शब्द का अर्थ और प्रयोग, शब्दोच्चारण, शब्द की व्युत्पति तथा विकास के बारे में शब्दकोश परिचित कराता है । शब्द से निर्मित विविध रूप, मुहावरे एवं उसकी व्याकरणिक विशेषताओं की जानकारी भी हमें कोश विज्ञान से होती है । अत: शब्द के संदर्भ में सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप में, वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने की कला का अन्य नाम कोश विज्ञान है ।

कोश विज्ञान के लिए अंग्रेजी शब्द Lexicography का प्रचलन है । इसका शब्दार्थ विज्ञान तथा भाषा विज्ञान से अटूट संबंध है । कोश विज्ञान अनुप्रयुक्त विज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण अंग है । शब्दों के उच्चारण एवं अर्थ की पूर्ति के लिए कोश विज्ञान का प्रयोग होता है । इसका अन्य विज्ञानों से भी गहरा संबंध होता है । कोश की प्रविष्टि में कोशकार को भाषा के व्याकरण का ज्ञान होना आवश्यक है । द्विभाषी, त्रैभाषिक शब्दकोशों के संदर्भ में कोशकार को समानार्थी शब्द, व्याकरण, व्यतिरेकी विश्लेषण पर ध्यान देना पड़ता है ।

पहले भी बताया जा चुका है कि मानकीकरण के क्षेत्र में कोश का सबसे बड़ा योगदान है । समाज में प्रचलित विभिन्न शब्द रूपों में से मानक रूप को लेना एवं विभिन्न प्रतिस्पर्धी शब्दों में से सर्वाधिक मान्य रूप को शब्दकोश में प्रविष्टि देना पड़ता है ।

जैसा कि उपर कहा गया है कि कोश में शब्दों का उच्चारण, व्युत्पत्ति, अर्थ, प्रयोग, पर्याय, व्याकरणिक कोटि आदि का विवरण दिया जाता है । वर्णानुक्रम अर्थात् अकारादि क्रम में कोशों की प्रविष्टियाँ होती हैं । कालक्रम, आकार, भाषा की प्रकृति आदि के आधार पर कोशों का वर्गीकरण किया जाता है । कोश निम्न प्रकार के हो सकते हैं - बोली कोश, पेशा कोश, तकनीकी कोश, कूटभाषा कोश, वर्तनी कोश, उच्चारण कोश, समनाम कोश, विपरीतात्मक कोश, व्याकरणिक कोश, आवृत्ति कोश, पर्यायवाची कोश, विलोम कोश, कृति कोश, शिक्षार्थी कोश, भाषी कोश, द्विभाषी कोश, बहु भाषी कोश अदि ।

कोश निर्माण एक लंबी प्रक्रिया है । इस कार्य में कई वर्ष लग जाते हैं । कोश कार्य के मुख्यत: तीन चरण होते हैं । ये हैं -

(क) नियोजन, सामग्री संकलन और प्रविष्टियों का चयन

(ख) कोश की प्रविष्टि की संरचना

(ग) प्रविष्टियों की क्रम व्यवस्था, मुद्रण प्रति प्रस्तुत करना ।

सामग्री संकलन (स्रोतों का विवरण), कार्ड बनाकर उन्हें भरना, शब्द सूची का चयन, कोश प्रविष्टि की संरचना, शब्दों के अर्थ और वर्णन, नामांकन, पदबंध, उदाहरण, लिपि, उच्चारण, व्याकरणिक कोटियों आदि को नियोजित करना पड़ता है । शब्द की व्युत्पत्ति पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है उदाहरण के तौर पर कुछ शब्दों के स्रोत का विवरण निम्नतया प्रदत्त है :

थान पु. (सं. स्थान)
1. जगह, स्थान
2. निवास स्थान, डेरा
   गुहा. (कहीं) थान करना - जम या अडकर बैठ जाना ।
3. घोड़ों के बाँधे जाने का स्थान
4. कुछ निश्चित लंबाई के कपड़े, गोटे आदि का पूरा टुकडा
5. संख्या, अदद जैसे चार थान

चौमुहानी स्त्री (हि. चौ = चार + फा. मुहाना) : चौराह चौरास्ता चतुष्पथ

मर्यादा - स्त्री (सं.) 1 सीमा, हद 2. तट, किनारा, 3. प्रतिज्ञा 4. नियम, 5. सदाचार 6. प्रतिष्ठा 7. धर्म

कोशकार को पूरी कोशिश करनी चाहिए कि शब्दों के अधिक से अधिक स्तरीय भेदों का निरूपण हो सके । इसके लिए कोशकार को उस भाषा के शैली विज्ञान, समाज विज्ञान आदि की सहायता लेनी पड़ती है । ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अध्ययन से उसे कालक्रमिक भेदों का निरूपण करने में मदद मिल सकती है । कोश विज्ञान में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की समर्थ उपस्थिति पाई जाती है ।

22.9 विचार / संदर्भ शब्दावली

1. पदबंध - शब्द रचना, संरचनात्मक शब्द, कुछ शब्दों के मेल से बना सामासिक शब्द ।
2. अधिगम - किसी विषय के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया ।
3. अभिलक्षण - विशेषता या मूलभूत लक्षण जो उस वस्तु को अन्य वस्तुओं से अलगाते हैं ।
4. व्यतिरेकी विश्लेषण - व्यतिरेक से आशय है कि विपरीतता अत: भिन्न गोत्रीय भाषाओं का तुलनात्क अध्ययन वाले इसके अंतर्गत आता है ।
5. जैविक - जन्मजात, जीवन संबंधी
6. कंठस्थ - पूरी तरह याद
7. विलोम - उलटा, विपरीत
8. विलोपन - विलीन या लुप्त हो जाने की प्रक्रिया ।
9. समतुल्य - बराबर, समकक्ष, जो परस्पर तुलनीय हो सकें ।
10. कुक्षि - कोख, गर्भ
11. स्वयमेव - खुद ही, स्वयं ही
12. कोस्तुभ - एक कीमती मणि
13. बोधगम्य - सरल, आसानी से समझ में आने लायक
14. षट् सिद्धांत - काव्य शस्त्र के छ सिद्धांत - रस, ध्वनि, रीति वक्रोक्ति अलंकार एवं औचित्य।
15. प्रथम भाषा - मातृभाषा के लिए प्रयुक्त शब्द ।

22.10 सारांश

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का प्रयोग लम्बी अवधि से एक विचारधारा के रूप में होता आया था । बीसवीं शताब्दी के मध्यभाग में पहली बार इस शब्द का प्रयोग हुआ था । लैंग्वेज लर्निंग नाम से प्रकाशित जर्नल का उपविषय 'अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का त्रैमासिक जर्नल रख गया था । अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान अंत: विषयात्मक है । उसका अन्य विषयों के साथ रचनात्मक संबंध है । यह अन्य विषयों को जोड़ता है । मनोभाषा विज्ञान, भाषाशिक्षण, अनुवाद, भाषा तुलना, शैली विज्ञान, कोश विज्ञान आदि अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के महत्वपूर्ण अंग हैं ।

ये विषय अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के उल्लेखनीय क्षेत्र हैं । भाषा के मानकीकरण, भाषा विज्ञान के विकास तथा भाषा के विविध संदर्भों से परिचित होने के लिए इन क्षेत्रों की भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । भाषा विज्ञान के व्यावहारिक पहलुओं की संपूर्ण जानकारी हासिल करने में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान बड़ी भूमिका का निर्वाह करता है ।

22.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए भाषा अर्जन एवं भाषा अधिगम की प्रक्रिया सविस्तार समझाइए ।
2. 'मनोभाषा विज्ञान' का आशय स्पष्ट करते हुए उसके क्षेत्र का परिचय दीजिए ।
3. मातृभाषा शिक्षण के स्वरूप का विवेचन कीजिए ।
4. भाषा शिक्षण की प्रमुख विधियों का परिचय दीजिए ।
5. त्रुटि विश्लेषण की प्रक्रिया और प्रयोजन समझाइए ।
6. अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र के रूप में अनुवाद की चर्चा कीजिए ।
7. अनुवाद और भाषा विज्ञान के संबंध पर प्रकाश डालिए ।
8. भाषा तुलना की प्रयोजनीयता का विवेचन कीजिये ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. मनोभाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा अर्जन में किन क्रियाओं पर अधिकार पाना आवश्यक है? विलियम माउलटन ने अधिगम के संदर्भ में भाषा की कौन-कौन सी विशेषताएं बताई हैं?
2. भाषा शिक्षण में मातृभाषा का महत्व बताइए ।
3. भाषा शिक्षण में 'अन्य भाषा' से क्या तात्पर्य है ।
4. भाषा शिक्षण की प्रमुख विधियों को किन बिन्दुओं में विभाजित किया जा सकता है?

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. गुलाब राय के अनुसार................................या गुण शैली है ।
2. भाषा की मूलभूत इकाई...................................है ।
3. कोशों की प्रविष्टियाँ......................................में होती है ।
4. ....एक ऐसी प्रक्रिया है । जिससे नवीन ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।
5. शिशु का मन..................मिट्टी की तरह होता है ।

घ. सही और गलत चिह्नित कीजिए -

1. अंग्रेजी में अनुप्रयुक्त के लिए Practicas Livgronric पदबंध प्रचलित है ।
सही/गलत
2. मनो भाषा विज्ञान में भाषा विज्ञान एवं मनो विज्ञान की बाह्य क्रियाओं का अध्ययन होता है । सही/गलत

3. मातृभाषा का विकास सामाजिक विकास का केन्द्र बिन्दु है ।

सही/गलत

4. अनुवाद मौलिक सृजन है । सही/गलत

5. सस्यूर ने भाषा और वाक् सिद्धांत का प्रतिपादन किया । सही/गलत

6. Thousands of sleepers were burnt का सही अनुवाद है - हजारों सोने वाले जला दिए गए

सही/गलत

22.12 संदर्भ ग्रंथ

1. मनोरमा गुप्त; केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
2. प्रो. चतुर्भुज सहाय; भाषा शिक्षण और भाषा विज्ञान, गवेषणा 71-72 केन्द्रीय हिंन्दी संस्थान आगरा
3. मनोरमा सं. गुप्त; कोश विज्ञान, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
4. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव; एवं कृष्णा कुमार; गोस्वामी, अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ, आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली
5. सं. रवीन्द्रनाथ तिवारी; डॉ. भोलानाथ गोस्वामी; डी. कृष्णकुमार; अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान, आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली

इकाई-23 भाषा शिक्षण और हिन्दी

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 भाषा शिक्षण: अर्थ एवं परिभाषा
23.2.1 भाषा शब्द का अर्थ एवं परिभाषा
23.2.2 शिक्षा एवं शिक्षण का अर्थ
23.2.3 भाषा शिक्षण का अर्थ एवं स्वरूप
23.3 भाषा शिक्षण का सैद्धान्तिक परिचय
23.3.1 भाषा शिक्षण का महत्त्व
23.3.2 भाषा शिक्षण का उद्देश्य
23.3.3 भाषा शिक्षण की विधियाँ
23.3.4 भाषा शिक्षण के विविध उपकरण
23.4 भाषा शिक्षण और हिन्दी
23.4.1 हिन्दी वाचन शिक्षण
23.4.2 हिन्दी लेखन शिक्षण
23.4.3 हिन्दी उच्चारण शिक्षण
23.4.4 हिन्दी वर्तनी शिक्षण
23.5 भाषा शिक्षण एवं हिन्दी साहित्य
23.5.1 हिन्दी कविता शिक्षण
23.5.2 हिन्दी कहानी शिक्षण
23.5.3 हिन्दी नाटक शिक्षण
23.6 विचार संदर्भ/शब्दावली
23.7 सारांश
23.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
23.9 संदर्भ ग्रंथ

23.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में भाषा शिक्षण और हिन्दी का अध्ययन किया जाएगा । इसे पढ़ने के बाद आप:-

- बता सकेंगे कि भाषा, शिक्षा, शिक्षण, एवं भाषा शिक्षण का अर्थ एवं स्वरूप क्या है ।
- भाषा शिक्षण के सैद्धान्तिक स्वरूप से परिचित हो सकेंगे ।
- भाषा शिक्षण के महत्त्व, उद्देश्य, विधियाँ एवं विविध उपकरणों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

- हिन्दी के वाचन, लेखन, उच्चरण और वर्तनी शिक्षण से परिचित हो सकेंगे ।
- हिन्दी साहित्य में कविता, कहानी और नाटक शिक्षण का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।

23.1 प्रस्तावना

भाषा, ज्ञान और शिक्षा की आधारशिला है । क्योंकि भाषा से ज्ञान और ज्ञान से शिक्षा एवं अन्य कार्य होते हैं । सभ्य समाज में मानव सृष्टि की उन्नति में भाषा एवं शिक्षा की वैसी ही आवश्यकता है जैसी जीवन की रक्षा के लिये श्वास एवं भोजन की ।

मनुष्य भाषा के द्वारा अपने सूक्ष्म विचारों को व्यक्त करता है वह शिक्षा द्वारा अपनी विचार शक्ति की वृद्धि और विचार की शुद्धि द्वारा उचितानुचित का निर्णय करता है ।

भारतीय शिक्षक ने भाषा शिक्षण व्यवस्था में एक प्रमुख स्थान प्राप्त किया । आधुनिक शिक्षण विधियों-दृश्य, श्रृव्य और दृश्य- श्रृव्य माध्यम द्वारा छात्रों को शिक्षित किया जा रहा है । जिससे शिक्षक कक्षा में भाषा के शुद्ध वाचन, लेखन, उच्चारण एवं वर्तनी के साथ-साथ कविता, कहानी, नाटक आदि का उत्कृष्ट शिक्षण कर सकें ।

इसके द्वारा छात्र एवं अध्यापक भाषा शिक्षण और हिन्दी का ज्ञान प्राप्त कर अपने ज्ञान को विकसित कर सके ।

23.2 भाषा शिक्षण : अर्थ एवं परिभाषा

23.2.1 भाषा शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

भाषा वह साधन है जिससे हम मन के भाव दूसरों पर प्रकट करते हैं । भाषा मन के भाव प्रकट करने का ढंग या प्रकार मात्र है । मानव को ईश्वर की ओर से भाषा रूपी अमूल्य वरदान मिला है भाषा वस्तुत: मानव शरीर में दैवी अंश है जो इस सृष्टि में केवल मनुष्य मात्र को ही प्राप्त है । काव्यादर्श में दण्डी का कथन है, यह दिव्य ज्योति ही समस्त संसार में अपना प्रकाश फैलाए हुए है । इस भाषा रूपी ज्योति के बिना संसार घोर अंधकारमय होता । इस भाषा रूपी दैवी अंश के कारण ही मनुष्य इस संसार में सर्वोत्तम जीव माना गया है । मनुष्य जिस यंत्र के द्वारा बोलता है उस यंत्र को स्वर यंत्र कहते हैं । ओस्कार रसेल ने इसे 'मानवीय ध्वनि प्रसारण केन्द्र' कहा है ।

1. भाषा विज्ञान में जिस भाषा शब्द का ग्रहण है वह इंगित आदि से भिन्न मानवीय व्यक्त वाणी है अर्थात् उच्चारण अवययों द्वारा उच्चरित वाणी को भाषा कहा गया है । भाषा शब्द संस्कृत की भान् धातु से बना है । भाष धातु का अर्थ है । (भान् व्यक्तायां वचि) अर्थात व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है उसे भाषा कहते हैं । भाषा शब्द से मुख्य रूप से मानवीय व्यक्त वाणी का ही बोध होता है । क्योंकि इस व्यक्त भाषा के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानवीय भावों की अभिव्यक्ति की जाती है

भाषा : परिभाषा

संसार में भाषा की व्याख्या सर्वप्रथम संस्कृताचार्यों ने की । पाणिनि संस्कृत व्याकरण के प्रणेता माने जाते हैं उनके बाद इस क्षेत्र में वार्तिककार, कात्यायन और पतंजलि ने कार्य किया ।

1. पतंजलि के अनुसार : "भाषा वह व्यापार है जिससे हम वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं ।"
2. सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार : "भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है, यह विश्व की हृदयतंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में अभिव्यक्ति होती है ।"
3. ब्लॉक और ट्रेगर के अनुसार: "भाषा यादृच्छिक ध्वनि संकेतों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से कोई सामाजिक समूह सहयोग एवं अन्तःक्रिया करता है ।" (यह परिभाषा के स्वरूप इकाई में भी दी गई है)

अत: भाषा व्यक्त शब्द, विश्व की हृदयतंत्री एवं यादृच्छिक ध्वनि संकेतों की व्यवस्था है ।

23.2.2 शिक्षा एवं शिक्षण का अर्थ

शिक्षा मनुष्य जीवन के परिष्कार एवं विकास की कहानी है । जीवन के प्रत्येक अनुभव को शिक्षा कहा जा सकता है । वास्तव में समस्त मानव जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है अर्थात समस्त व्यवहार जो मनुष्य के ज्ञान की परिधि को विस्तृत करे, उसकी अन्तर्दृष्टि को गहरा करे, उसकी प्रतिक्रियाओं का परिष्कार करें, भावना और क्रियाओं को उत्तेजित करें अथवा किसी न किसी रूप में उसको प्रभावित करे वह शिक्षा ही है । शिक्षा जीवन प्रक्रिया है अध्यापक और अध्येता के बीच आत्मिक संबंध निर्माण से शिक्षा का प्रारंभ होता है।

शिक्षा शब्द अंग्रेजी के Education शब्द से हिन्दी में आया है । Education शब्द का अर्थ है आंतरिक क्षमता को बाहर लाना । शिक्षा शब्द निर्देश, विद्यालयीकरण ट्यूशन, प्रशिक्षण, अनुशासन, शिक्षण, पालन-पोषण, एवं संस्कृति का समानार्थी माना जाता है ।

शिक्षा का व्यापक अर्थ : शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है । मनुष्य जन्म से मृत्यु तक जो कुछ भी सीखता और अनुभव करता है वह शिक्षा के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत आता है । उसके सीखने और अनुभव करने का परिणाम यह होता है कि वह धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण में सामन्जस्य स्थापित कर लेता है ।

जे.एस.मेकेंजी के अनुसार : "व्यापक अर्थ में 'शिक्षा' एक ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है, और जीवन के प्राय: प्रत्येक अनुभव के भण्डार में वृद्धि करती है ।

अत: शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों वैयक्तिकता का पूर्ण विकास, समूह में परिवर्तन और वातावरण में सामन्जस्य स्थापित करती है ।

शिक्षण का अर्थ

शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है, सामाजिक तथ्य शिक्षण को प्रभावित करते हैं सामाजिक तथ्य एवं मानवीय घटक परिवर्तनशील होते हैं शिक्षण को अनेक घटक और परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं, जैसे-किसी राष्ट्र के शासन का स्वरूप सामाजिक दर्शन, सामाजिक मूल्य एवं संस्कृति आदि ।"

एच.सी.मौरिसन (1934) के अनुसार

"शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें अधिक विकसित व्यक्तित्व कम विकसित व्यक्तित्व के सम्पर्क में आता है और कम विकसित व्यकितत्त्व की अग्रिम शिक्षा के लिये विकसित व्यक्तितत्त्व व्यवस्था करता है ।" इसमें शिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षक का स्थान प्रधान माना जाता है, और छात्र का स्थान गौण है ।

शिक्षण की बिशेताएं

शिक्षा शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण प्रक्रिया की अनेक परिभाषाएँ दी हैं । जिनकी अधोलिखित विशेषताएँ इस प्रकार हैं ।

1. शिक्षण एक अन्त: प्रक्रिया है ।
2. शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है
3. शिक्षण एक सामाजिक तथा व्यावसायिक प्रक्रिया है ।
4. शिक्षण एक विकासात्मक प्रक्रिया है ।
5. शिक्षण कला तथा विज्ञान दोनों ही है ।
6. शिक्षण में भाषा, सम्प्रेषण का कार्य करती है ।
7. शिक्षण एक उपचार विधि है ।
8. शिक्षण एक तार्किक क्रिया है ।
9. शिक्षण का मापन किया जाता है ।
10. शिक्षण में सुधार तथा विकास भी किया जाता है ।
11. शिक्षण एक औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रक्रिया है ।

23.3.4 भाषा शिक्षण का अर्थ एवं स्वरूप

भाषा शिक्षण का अर्थ है, छात्रों की भाषिक दक्षता बढ़ाना अर्थात् भाषा सुनने, भाषा बोलने, लिखने और पढ़ने में उन्हें दक्ष करना है । सर्वप्रथम शिशु अपनी माँ के द्वारा एवं अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क से अनुकरण के द्वारा सहज रूप से मातृभाषा का शिक्षण प्राप्त करता है । तत्पश्चात् विद्यालय में जाकर भाषा शिक्षण के द्वारा मातृभाषा के दोनो पक्ष लिखना और बोलना सीखना है ।

भाषा शिक्षण को दो पक्षों में विभाजित किया जाता है । 1) भौतिक पक्ष, 2) मानसिक पक्ष,

(1) भौतिक पक्ष के अन्तर्गत (वर्ण, शब्द, पद, वाक्य, लिपि, एवं विराम चिन्ह) और उच्चारण करने वाले अंग (जीभ तालु, नासिका, स्वरयंत्र,) ध्वनियों को सुनने वाले अंग (कान) और ध्वनि संकेतों को व्यक्त करने वाली सामग्री (तख्ती, स्लेट, कागज), ध्वनियों को लेखबद्ध करने वाली सामग्री (पेन, पेंसिल आदि) और ध्वनियों का पतन करने वाले अंग (आँख, स्वरयंत्र, जीभ) आते हैं ।

(2) मानसिक पक्ष के अंतर्गत मनुष्य का मन, भाव, भावना, मनोवेग, मनोभाव, मस्तिष्क एवं विचार आते हैं । अत: भाषा बोलने, लिखने, सुनने और शिक्षण की क्रिया तब तक शुरू नहीं होती जब तक हमारा मन और मस्तिष्क भाषा शिक्षण के लिये तैयार नहीं होता है ।

अत: भाषा शिक्षण के लिये मानसिक और भौतिक पक्ष का सामंजस्य होना आवश्यक है।

प्रभावशाली व्यक्तितत्व सफल भाषा शिक्षण का प्रधान गुण माना गया है । मनोविज्ञान के अध्ययन से ज्ञात होता है कि छात्र में सर्वप्रथम अनुकरण तद्न्तर, अन्वेषण की प्रवृत्ति जाग्रत होती है । छात्र के भविष्य के अन्वेषण, पूर्व के अनुकरणों पर आधारित होते हैं । एक भाषा द्वारा ही उसके मनोभावों का आदान-प्रदान होता है । इसलिये भाषा शिक्षण का पूर्णत: ज्ञान एक शिक्षक के लिये आवश्यक है । जिससे वह भाषा शिक्षण का महत्त्व छात्रों को समझा सके ।

भाषा शिक्षण में भाषा का ज्ञान अत्यावश्यक है ।

23.3 भाषा शिक्षण का सैद्धान्तिक परिचय

23.3.1 भाषा शिक्षण का महत्त्व

भाषा की शिक्षा देने की प्रक्रिया को हम भाषा शिक्षण कहते हैं प्रत्येक मनुष्य कम से कम एक भाषा की शिक्षा अवश्य प्राप्त करता है, बाल्यावस्था में वह माता-पिता की भाषा को अनुकरण के द्वारा सीख लेता है, मनुष्य में यह भाषा शिक्षण आदत निर्माण की प्रक्रिया है । पावलोव के अधिगम सिद्धान्त का प्रयोग अक्षर ज्ञान के लिये किया जाता है जिसमें ध्वनि को महत्त्व दिया जाता है । भाषा शिक्षण के चार सोपान होते हैं

(1) अनुबन्धन- अक्षरों तथा वर्णों का ज्ञान भाषा शिक्षण

(2) प्रशिक्षण- लिखने, पढ़ने, बोलने, के कौशलों का शिक्षण

(3) अनुदेशन-कविता, गद्य, तथा लेखन का बोध एवं साहित्य शिक्षण

(4) प्रतिवादन-समीक्षा आलोचना, समालोचना, एवं सौन्दर्यानुभूति का शिक्षण

भाषा शिक्षण एक निरन्तर चलने वाली सतत् प्रक्रिया है । जिसका आरम्भ अनुबन्धन शिक्षण से किया जाता है जिससे छात्रों को वर्णों का ज्ञान तथा उनकी आदतों का विकास कराया जाता है । इसके बाद प्रशिक्षण से भाषा सबंधी कौशलों का विकास एवं सामूहिक अभ्यास कराया जाता है । तीसरी अवस्था अनुदेशन की आती है जिसमें शब्दों के अर्थ कविता तथा गद्य के भाव एवं अर्थ का ज्ञान दिया जाता है । अन्तिम शिक्षण का रूप प्रतिवादन का होता है जिसमें कविता काव्य, गद्य, कहानी नाटक आदि का आकलन, आलोचना समालोचना तथा सौन्दर्यानुभूति की क्षमताओं एवं भावों का विकास किया जाता है । भाषा शिक्षण का सम्पादन शिक्षण की प्रथम दो अवस्थाओं में किया जाता है ।

23.3.2 भाषा शिक्षण का उद्देश्य

भाषा जीवन के क्रियाकलापों- के सम्प्रेषण का माध्यम तथा साधन है इसलिये उपयोग की दृष्टि से इसके दो पक्ष हैं ।

(1) भाषा पक्ष (2) साहित्य पक्ष

भाषा पक्ष के भी दो रूप हैं

(1) ज्ञान पक्ष (2) कौशल या व्यवहार पक्ष

भाषा की एक संरचना होती है इसमें वर्णमाला, ध्वनि, शब्द वाक्य, ध्वनि, वर्तनी, अनुच्छेद होते हैं । भाषा के तत्त्वों का ज्ञान और उनका प्रयोग भाषा शिक्षण के मुख्य उद्देश्य है । भाषा में कौशलों का विकास-शुद्ध लिखने, शुद्ध बोलने, शुद्ध पढ़ने का सम्बन्ध व्याकरण से होता है । कौशल के भी दो पक्ष होते हैं ।

(क) कौशलों का विकास या ग्रहण करना

(ख) कौशलों का अभिव्यक्ति में समुचित उपयोग करना । ज्ञानात्मक उद्देश्य भाषा और साहित्य दोनों पक्ष के होते हैं । भाषा में कौशल पक्ष प्रधान होता है जबकि साहित्य में कलात्मक भावपक्ष तथा सौन्दर्यानुभूति की प्रधानता होती है ।

भाषा-शिक्षण के प्रमुख दो ही उद्देश्य होते हैं-

(1) ज्ञानात्मक उद्देश्य

(2) कौशलात्मक उद्देश्य

1. **ज्ञानात्मक उद्देश्य :** ज्ञानात्मक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित अपेक्षित व्यवहार किये जाते हैं ।
   (1) भाषा सम्बन्धी तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना अथवा पहचान करना ।
   (2) भाषा सम्बन्धी अशुद्धियों की पहचान करना और उनमें सुधार करना ।
   (3) भाषा सम्बन्धी तत्त्वों के उदाहरण प्रस्तुत करना तथा तुलना करना ।
   (4) भाषिक तत्त्वों में परस्पर अन्तर तथा सम्बन्ध ज्ञात करना ।
   (5) इन तत्त्वों का विश्लेषण तथा वर्गीकरण करना आदि ।

2. **कौशलात्मक उद्देश्य :** कौशलात्मक उद्देश्य का सम्बन्ध भाषिक तत्त्वों को कुशलता से प्रयोग करने की क्षमता के विकास करने से है । भाषा के अन्तर्गत चार कौशलों का विकास किया जाता है, पढ़ना, लिखना, बोलना तथा सुनना । इनका सम्बन्ध शुद्ध उच्चारण, शुद्ध वर्तनी, शुद्ध व्याकरण के प्रयोग से है । कौशलात्मक उद्देश्य की प्रमुख क्रियाएँ या कौशल निम्नलिखित हैं ।
   (1) शुद्ध एवं स्पष्ट वाचन की योग्यता प्रदान करना ।
   (2) सुनकर शुद्ध अर्थ ग्रहण करने की क्षमता का विकास करना ।
   (3) बोलकर अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।
   (4) लिखकर अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त करने की योग्यता का विकास करना ।
   (5) गद्‌य, पद्‌य, कहानी तथा नाटक आदि पढ़कर अर्थ ग्रहण करने की योग्यता का विकास करना ।

भाषा शिक्षण के अन्य उद्देश्य

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों तथा भाषाशास्त्रियों ने उच्च कक्षाओं में भाषा शिक्षण के अन्य उद्देश्य किये हैं ।

1. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे सामान्य गति से बोली गई भाषा को ठीक-ठीक समझ सकें ।
2. उचित विराम चिन्हों का प्रयोग करते हुए वे शुद्ध हिन्दी में बातचीत कर सकें ।
3. उनकी बोलचाल की भाषा में किसी भी प्रकार का उच्चारण दोष नहीं होना चाहिये ।
4. छात्रों में इतनी क्षमता उत्पन्न करना कि वे उच्च स्तर पर सस्वर वाचन कर सके ।
5. उन्हें इस योग्य बनाना कि वे वर्णनात्मक तथा सूचनात्मक सामग्री का संक्षेपीकरण एवं पल्लवन कर सकें । छात्रों में इतनी योग्यता उत्पन्न करना कि वे सुनी हुई घटनाओं का ठीक-ठीक विवरण लिखित एवं मौखिक रूप में दे सकें ।
6. किसी सामान्य विषय पर शुद्ध तथा सरल हिन्दी में व्यक्तिगत विचार व्यक्त करने एवं लिखने की दक्षता प्राप्त कर सकें ।
7. उच्च कक्षाओं में छात्र-छात्राओं को इस बात का अवसर देना चाहिये कि वे हिन्दी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन एवं शिक्षण दे सकें ।

23.3.3 भाषा शिक्षण की विधियाँ

भारत देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है । किन्तु कुछ प्रदेशों में हिन्दी भाषा का ज्ञान नहीं होने के कारण वहाँ हिन्दी भाषा-शिक्षण की विधियों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है जिससे सर्वसाधारण सरलता से राष्ट्र भाषा हिंदी का ज्ञान अर्जित कर सके । प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव में हिन्दी भाषा को प्रभावशाली नहीं बनाया जा सकता है । हिन्दी भाषा शिक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं ।

(1) प्रत्यक्ष विधि

(2) परोक्ष विधि

(3) व्यवस्थित विधि

(4) वेस्ट की विधि या नवीन विधि

1. **प्रत्यक्ष विधि :** प्रत्यक्ष विधि में नवीन भाषा को उसी ढंग से सिखाया जाता है जिस विधि से छात्र अपनी मातृ-भाषा को सीखता है । इस विधि में निम्नलिखित नियमों को अपनाया जाता है ।
    (i) वार्तालाप की प्रधानता - भाषा शिक्षण का प्रारंभ वार्तालाप से किया जाता है । छात्र पहले वाक्य बोलना सीखता है । उसे वार्तालाप की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती हैं।
    (ii) वार्तालाप के पश्चात लेखन का आरम्भ - जब छात्र वार्तालाप में सफलता प्राप्त कर लेता है तो भाषा की लिपि का भी ज्ञान कराया जाता है तथा लिखने के लिये उत्साहित किया जाता है ।
    (iii) व्याकरण शिक्षण की आगमन विधि - इस पद्धति में छात्र को व्याकरण का ज्ञान व्यावहारिक दृष्टि से कराया जाता है ।

इस विधि का प्रयोग करके छात्र उच्चारण की शुद्धता सीखते हैं तथा उन्हें वार्तालाप का अभ्यास होता है।

श्रीधरनाथ मुखर्जी इस विषय में लिखते हैं कि- 'किसी भी शिक्षण-विधि में भाषा का उपयोग एकदम बन्द नहीं किया जा सकता । प्रत्यक्ष वस्तु क्रिया या हाव-भाव, दिखाकर, अथवा दृष्टान्तों द्वारा थोड़े-बहुत शब्द अवश्य समझाये जा सकते हैं, किन्तु सभी शब्द इस पद्धति के अनुसार नहीं सिखाये जा सकते, जैसे विशेषण, भाववाचक संज्ञाएँ इत्यादि ।

2. **परोक्ष विधि** : इस विधि में मातृ-भाषा के माध्यम से किसी नवीन भाषा को पढ़ाया जाता है । इस विधि में निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखा जाता है ।
   (i) प्रत्येक वाक्य का शब्द मातृ-भाषा में अनुदित करके पढ़ाया जाता है ।
   (ii) पाठ्य-पुस्तकों की रचना व्याकरण के आधार पर ही की जाती है । तथा सम्पूर्ण व्याकरण का अनुवाद कर लिया जाता है ।
   (iii) अनुवाद के माध्यम से नवीन भाषा तथा मातृभाषा की तुलना की जाती है ।
   (iv) अनुवाद के माध्यम से नवीन शब्द और मुहावरे उचित प्रकार से समझाये जाते हैं । इस विधि में अनेक दोष हैं इस विधि में व्याकरण के नियमों को विशेष महत्त्व दिया जाता है जिससे शिक्षण बँधा सा रहता है । इस विधि में केवल वाचन पर ही बल दिया जाता है, जिससे छात्र बोलचाल की शिक्षा उचित प्रकार से नहीं प्राप्त कर पाते ।

3. **व्यवस्थित स्वरूप** : इस विधि में भाषा के कुछ चुने हुए प्रमुख शब्द और निर्मित समान वाक्यों के माध्यम से भाषा शिक्षण आरम्भ होता है । इस विधि से छात्र तीन या चार वर्ष में भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है । परन्तु यह पद्धति अंग्रेजी भाषा के लिये ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है । हिन्दी भाषा के वाक्य की रचना में तथा अंग्रेजी भाषा के वाक्य की रचना में अत्यधिक अन्तर है । परन्तु इस विधि में दोष भी विद्यमान हैं, जैसे इसमें शब्द-रचना पर ध्यान नहीं दिया जाता । जिससे शब्द भण्डार के विकसित होने की सम्भावनाऐ नहीं रहती ।
   इस विधि के आधारभूत नियम निम्नलिखित हैं ।
   (i) मौखिक कार्य को भाषा शिक्षण का आधार बनाया जाता है ।
   (ii) वाक्यों के गठन को कण्ठस्थ करा दिया जाता है ।
   (iii) छात्रों को भाषा सीखने के लिये प्रेरित किया जाता है ।
   (iv) वाक्यों की संरचनाओं पर विशेष बल दिया जाता है ।
   (v) अन्य भाषा का प्रयोग किया जा सकता है ।

4. **वेस्ट की विधि या नवीन विधि :** इस विधि के निर्माता माइकेल वेस्ट थे । उन्होंने अंग्रेजी, शिक्षण में प्रयत्न विधि का प्रयोग किया तथा स्वयं अंग्रेजी पढ़ाने की विधि का निर्माण किया, जो वेस्ट की विधि या 'नवीन पद्धति' कहलाई ।
   वेस्ट की विधि के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:-
   (i) भाषा-शिक्षण में वाचन की प्रधानता- वेस्ट के अनुसार भाषा शिक्षण का आरम्भ वाचन से किया जाना चाहिये । किसी भी भाषा में दक्षता प्राप्त करने के लिये

आवश्यक है कि शब्द का विकास किया जाए । वाचन के द्वारा बालक नये-नये शब्दों को सीखता है । जिससे उसके शब्दकोष का विकास होता है

(ii) विभिन्न पद्धतियाँ - 'वेस्ट महोदय के अनुसार वाचन, लेखन तथा भाषण सिखाने के लिये अलग अलग पद्धतियों का प्रयोग किया जाय । किसी पाठ को पढ़ाते समय एक साथ ही तीनों का अभ्यास करना अनुचित है ।

(iii) मातृ-भाषा का महत्त्व :- वेस्ट महोदय नवीन भाषा के शिक्षण में 'मातृभाषा' के उपयोग को उचित समझते हैं । उनके विचार में नवीन भाषा के शब्दों का ज्ञान कराने के लिये अनुवाद को भी स्थान मिलना चाहिये ।

उपर्युक्त विधियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि भाषा-शिक्षण को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि समस्त छात्र सही वाचन, लेखन तथा पठन कर सकें ।

23.3.4 भाषा शिक्षण के विविध उपकरण

भाषा शिक्षण में सहायक शिक्षण का विशेष महत्त्व है । शिक्षक की सफलता इस बात में है कि उनके द्वारा दिया गया ज्ञान छात्रों ने कितनी अधिक मात्रा में ग्रहण किया है । किसी भी पाठ को शिक्षकों द्वारा छात्रों को समझाने के लिये प्राय: दो प्रकार के उपकरण अपनाये जाते हैं । प्रथम वे साधन जिनके बिना, शिक्षण का कार्य चल नहीं सकता यथा श्यामपट-चॉक, डस्टर आदि । भाषा-शिक्षण को प्रभावी बनाने के की दृष्टि दूसरे प्रकार का साधन है, जिनका उपयोग शिक्षक पाठ की प्रकृति और छात्रों के शैक्षिक स्तर तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी सूझ-बूझ से उपयोग में लाता है । यथा वस्तु का मूर्त रूप, मॉडल चित्र आदि ।

भाषा शिक्षण के विविध उपकरणों को हम इस चित्र द्वारा विस्तार से समझ सकेंगे-

भाषा शिक्षण के विविध उपकरण

मौखिक या श्रव्य साधन	दृश्य साधन	श्रव्य-दृश्य साधन
1. वर्णन	1. वास्तविक वस्तुएँ	1. चलचित्र
2. कथन	2. नमूने	2. टेलीविजन
3. व्याख्या	3. चित्र	3. ड्रामा
4. उदाहरण	4. मानचित्र	4. समाचार संबंधी फिल्म
5. निदर्शना	5. रेखाचित्र तथा खाके	
6. प्रश्न एवं उत्तर	6. ग्राफ	
7. तुलना	7. चार्ट	
8. दृष्टान्त	8. बुलेटिन बोर्ड	
9. संस्मरण	9. लेनेल बोर्ड	
10. लघुकथा	10. संग्रहालय	
11. अन्तर्कथा	11. जादू की लालटेन	
12. उपमा	12. चित्र विस्तारक यन्त्र	

13.	सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे	13.	स्लाइड- फिल्म पट्टियाँ तथा चित्रदर्शक
14.	ग्रामोफोन	14.	मूक चित्र
15.	रेडियो	15.	तालिका
16.	भाषायन्त्र	16.	सारणी
17.	टेप रिकार्डर		
18.	स्टीरियो		

श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रयोग करने से शिक्षण में कुशलता आती है । साथ ही शिक्षण और अधिक प्रभावशाली बन जाता है । श्रव्य दृश्य सामग्री के प्रयोग से शुष्क तथा अरूचिकर विषयों अथवा उप-विषयों को अन्य प्रविधियों की अपेक्षा अधिक सरल, रोचक तथा स्पष्ट बनाया जा सकता है । अब हम इन साधनों पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे ।

1) श्रव्य साधन

(1) वर्णन:- किसी घटना, दृश्य या आयोजन का अपने शब्दों में विस्तार से उल्लेख करने को वर्णन कहते हैं जैसे-किसी समारोह का वर्णन आदि ।

(2) आख्यान या कथन:- किसी घटना, दृश्य एवं शोध का तथ्यात्मक विवरण कथन है ।

(3) व्याख्या- किसी जटिल शब्द, वाक्य, वाक्यांश या बात को खण्ड-खण्ड करके बोधगम्य बनाना ही व्याख्या है ।

(4) उदाहरण:- विषय वस्तु को स्पष्ट करने की दृष्टि से उदाहरण का प्रयोग किया जाता है । उदाहरणों की । भाषा का सरल एवं बोधगम्य होना जरूरी है ।

(5) निदर्शना - जब किसी क्लिष्ट बात या अंश को दिखाकर स्पष्ट किया जाये अथवा मौखिक रूप से इस तरह स्पष्ट किया जाये कि सुनने वाले के मस्तिष्क में उस बात का चित्र सा खिंच जाये, तब हम उसे निदर्शना कहते हैं ।

(6) प्रश्न एवं उत्तर- प्रश्न युक्ति शिक्षण में सर्वाधिक उपयोग में आने वाली युक्ति है । उसी के जवाब में दिया गया वाक्य उत्तर कहलाता है ।

(7) तुलना - आकृति से लगभग समान लगने वाली दो वस्तुओं एवं बातों की समानताओं एवं भिन्नताओं को एक साथ देखना तुलना कहा जाता है ।

(8) दृष्टांत - दृष्टांत मौखिक उदाहरण होते हैं ।

(9) संस्मरण - अपने जीवन में घटित हुई घटना को दूसरों को सुनाना ही संस्मरण है ।

(10) लघुकथा-विद्यार्थियों को पाठ के कुछ अंश समझाने के लिये लघु कथाओं का प्रयोग किया जाता है ।

(11) अन्तर्कथा - अन्तर्कथा का क्षेत्र कुछ भी हो सकता है, अन्तर्कथा बड़ी एवं छोटी भी हो सकती है ।

(12) उपमा - उपमाओं का प्रयोग किसी अज्ञात वस्तु की समानता ज्ञात वस्तु से करने के लिये किया जाता है ।

(13) सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे-सूक्तियाँ किसी महापुरूष अथवा बड़े लोगों द्‌वारा निरीक्षण अथवा अनुभव के आधार पर कही जाती हैं । मुहावरे अपने शाब्दिक अर्थ से भिन्न अर्थ देते हैं ।

(14) रेडियो - रेडियो से वही ध्वनि सुनाई पड़ती है जो रेडियो स्टेशन से प्रसारित की जाती है।

(15) भाषा यन्त्र - प्रमुख भाषिक यंत्र जैसे - ऑसिलोग्राफ एवं स्पेक्ट्रोग्राफ द्‌वारा किसी भी भाषिक ध्वनियों के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है ।

(16) ग्रामोफोन - यह चाबी के आधार पर चलने वाली मशीन है ।

(17) टेप रिकार्डर - यह बिजली या बैटरी के द्‌वारा चलने वाली मशीन होती है । इसमें एक ही टेप पर अनेक बार रिकार्ड किया जा सकता है ।

(18) स्टीरियो - टेप रिकार्डर में कहानी, कविता, गीत आदि के शब्दों को टेप पर रिकार्ड किया जाता है । उसी टेप को जब स्टीरियो पर लगाते हैं, तो रिकार्ड की हुई ध्वनि अपने मूल रूप में स्पीकरों द्‌वारा पुन: उसी रूप में ध्वनित होने लगती है ।

2) दृश्य साधन

(1) वास्तविक वस्तुएँ - वास्तविक वस्तुओं के अन्तर्गत शिक्षण की आवश्यक सामग्री श्यामपट्ट, चॉक, डस्टर आते हैं ।

(2) नमूने - किसी भी शिक्षण सामग्री को स्पष्ट करने के लिये उसे नमूने के रूप में प्रस्तुत करना होता है । चित्र-चित्रों में आकृति होती है लेकिन आकार नहीं होता है ।

(3) मानचित्र - किसी भी स्थान विशेष व देश विशेष की खिंची गई चित्रों के माध्यम से बनाई गई आकृति रेखा चित्र कहलाती है । इसे स्थानों की स्थिति बताने के लिये प्रयोग किया जाता है ।

(4) रेखाचित्र तथा खाके - यह भी मानचित्र का ही पर्याय है ।

(5) ग्राफ - ग्राफ अर्थव्यवस्था की स्थिति के उतार-चढ़ाव पर आधारित होता है ।

(6) चार्ट - शिक्षण सामग्री को संक्षिप्त एवं सरल तरीके से समझाने के लिये चार्ट का प्रयोग किया जाता है ।

(7) बुलेटिन बोर्ड - यह समाचार को प्रसारित करने का माध्यम है ।

(8) लेनेल बोर्ड - यह शिक्षा के क्षेत्र में एक नई पद्धति है । जिसे - हम एक बोर्ड (तख्ता) कह सकते हैं । जिस पर किसी भी रंग का फैल्ट या बिलियर्ड क्लाथ लगाया जाता है । इस बोर्ड पर चित्र, अक्षर आदि चिपका सकते हैं ।

(9) संग्रहालय - संग्रहालय में विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ संग्रहित की जाती हैं ।

(10) दृश्य साधन में अन्य सहायक साधन जैसे-जादू की लालटेन, चित्र विस्तारक यन्त्र, स्लाइड, फिल्म,

(11) पटियाँ तथा चित्रदर्शक मूकचित्र, तालिका, सारिणी आदि साधन का भाषा शिक्षण में प्रयोग किया जाता हैं जिससे शिक्षण सरल व सटीक बनता है ।

3) श्रव्य-दृश्य साधन

(1) चलचित्र:- शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिये भिन्न-भिन्न चल चित्रों की सहायता ली जाती है । यह चल चित्र, छबिग्रहों में दिखाये जाने वाले चलचित्रों से भिन्न होते हैं । यह 16 मिलीमीटर फिल्म पर बनाए जाते हैं और 16 मिलीमीटर प्रक्षेपक के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं ।यह कक्षा में छात्रों को दिखाने के लिये बनाये जाते हैं ।

(2) टेलीवीजन - टेलीवीजन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम अधिक से अधिक 50-60 मील की परिधि में ही देखे और सुने जाते हैं ।

(3) ड्रामा-ड्रामा का हिन्दी अर्थ नाटक है जो मनोरंजन के माध्यम से शिक्षा को आसान बनाने का तरीका है । इसके लिये अभ्यास की आवश्यकता होती है । इसमें आंगिक संकेतों के द्वारा भावों को व्यक्त किया जाता है ।

(4) समाचार संबंधी फिल्म-समाचार सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी की एक फिल्म तैयार की जाती है बाद में जब चाहे उसका दोबारा उपयोग कर सकते हैं ।

भाषा शिक्षण के विविध उपकरण के सम्बन्ध में जितने बिन्दुओं की विवेचना की गई है उन सभी का सार यही है कि सहायक साधन आकर्षक हों और उसका अवसरानुकूल ही उपयोग किया जाये एवं विद्यार्थी उससे लाभान्वित हों ।

23.4 भाषा शिक्षण और हिन्दी

23.4.1 हिन्दी वाचन शिक्षण

वाचन एक कला है वाचन का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्व होता है । व्यक्ति का सबसे सुन्दर आभूषण उसकी सुसंस्कृत एवं मधुर वाणी है क्योंकि अन्य सभी आभूषण तो टूट या घिस जाते हैं । किन्तु वाणी सदा बनी रहती है । वाचन में ज्ञानात्मक स्तर पर पाठ्यवस्तु होती है जिसके माध्यम से हम सम्प्रेषण कर पाते हैं । इस प्रकार पाठ्यवस्तु प्रथम अवस्था एवं सम्प्रेषण की अवस्था द्वितीय होती है । कैथरीन ओकानर के अनुसार,, "वाचन वह जटिल सीखने की प्रक्रिया है जिसमें सुनने के गतिवाही माध्यमों का मानसिक पक्षों से सम्बन्ध होता है।"

वाचन में शब्दों के उच्चारण का विशेष महत्त्व होता है । भाषा शिक्षण वाचन एवं लेखन से आरम्भ किया जाता है । वाचन के तीन प्रकार हैं-

(i) सस्वर वाचन

(ii) मौन वाचन

(iii) अध्ययन

(i) सस्वर वाचन : स्वर सहित वाचन को सस्वर वाचन कहा जाता है । इसमें छात्र पढ़ने के साथ-साथ बोलता भी जाता है । इसमें चार प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित हैं । लिपिबद्ध अक्षरों को देखना, पहचानना, शब्दों को समझना, उच्चारण करना तथा अर्थ ग्रहण करना । सस्वर वाचन के दो प्रकार हैं (1) अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन (2) छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन । जब पाठ्य सामग्री को अध्यापक स्वयं वाचन करके छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है तब उसे आदर्श वाचन कहते हैं । आदर्श वाचन के पश्चात्

अनुकरण वाचन किया जाता है । जब छात्र अध्यापक के आदर्श पाठ के अनुरूप वाचन करने का प्रयत्न करते हैं । तो उसे अनुकरण (सस्वर) वाचन कहा जाता है । वाचनकर्ता के अनुसार वैयक्तिक वाचन तथा सामूहिक वाचन को भी महत्त्वपूर्ण बिन्दु में रखा जाता है ।

(ii) मौन वाचन : मौन वाचन का शाब्दिक अर्थ है बिना होंठ हिलाये चुपचाप पढ़ना, परन्तु सूक्ष्म अर्थों में मौन वाचन का अर्थ चुपचाप पढ़ते हुए अधिक से अधिक अर्थ ग्रहण करना है । मौन वाचन के लिये शान्तिपूर्ण वातावरण, वाचन की मुद्रा, धैर्य की भावना, विकसित शब्द कोष, एकाग्रता, उचित प्रवाह तथा गति आदि बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है । मौन वाचन से मनन तथा तार्किक शक्ति का विकास होता है । मौन वाचन के दो प्रकार हैं (1) गम्भीर मौन वाचन (2) त्वरित मौन वाचन । गम्भीर मौन वाचन में प्रत्येक शब्द वाक्य तथा भाव पर गम्भीरतापूर्वक विचार अथवा मनन किया जाता है । त्वरित मौन वाचन का उद्देश्य मनोरंजन की प्राप्ति है ।

हिन्दी वाचन शिक्षण की विधियाँ:-

हिन्दी वाचन शिक्षण के अन्तर्गत शुद्ध वाचन की शिक्षा देने के लिये विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग विधियों का प्रयोग किया जाता है । इनमें कुछ विधियों का विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

(1) अक्षर बोध प्रणाली - इसमें छात्रों को वर्णमाला के सभी अक्षरों का बोध कराया जाता है, जैसे -अ,आ, इ,ई । इसमें शिक्षण का क्रम वर्णाक्षर-शब्द-वाक्य रहता है ।

(2) शब्द शिक्षण विधि - इस विधि में छात्रों को पहले सार्थक एवं सरल शब्दों की शिक्षा दी जाती है जैसे-नाना, मामा, पापा, चाचा, आदि ।

(3) वाक्य शिक्षण विधि - इस विधि में पहले वाक्य बोला जाता है, तत्पश्चात् शब्द ज्ञान और अन्त मे अक्षर ज्ञान कराया जाता है ।

(4) कहानी विधि - इस विधि में अनेक चित्रों के सहयोग से छात्रों को कहानी सुनाई जाती है । चित्रों के नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में कहानी से सम्बन्धित वाक्य लिख दिये जाते हैं ।

(5) सामूहिक पठन विधि - इस विधि में बाल-गीत और संवादों की शिक्षा दी जाती है । विद्यार्थी, अध्यापक के आदर्श वाचन का अनुकरण समवेत स्वर में करते हैं ।

(6) ध्वनि साम्य विधि - इस विधि में समान उच्चारण वाले शब्दों को साथ-साथ सिखाया जाता है ।

(7) भाषा शिक्षण - यन्त्र विधि- इस विधि में शुद्ध उच्चारण वाले रिकार्डों को बजाया जाता है यह 'अनुकरण' प्रधान है ।

(8) खेल विधि - यह विधि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की देन है ।

इन विधियों में कितनी ही पूर्णता क्यों न हो, कुशल शिक्षण के द्वारा ही हम हिन्दी वाचन शिक्षण को सरल बना सकते हैं ।

23.4.2 हिन्दी लेखन शिक्षण

किसी भी भाषा या विषय में पूर्ण दक्षता प्राप्त करने के लिये पढ़ना और लिखना दोनो ही सीखना आवश्यक है । अपने विचारों तथा भावों को मूर्त रूप देने तथा दूसरों तक पहुँचाने के लिये लेखन की आवश्यकता होती है । उदाहरणार्थ पत्र लेखन या पुस्तक लिखकर विचारों को दूसरों तक पहुँचाना। वाचन तथा पठन-पाठन में दक्षता प्राप्त करने के पश्चात भी शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाता । इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक तीसरे प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता पड़ती है और वह है लेखन की शिक्षा देना या लेखन-शिक्षण । लेखन शिक्षण के सम्बन्ध में तीन मत प्रमुख हैं ।

(1) प्रथम मत के अनुसार लेखन की शिक्षा पठन की शिक्षा से पूर्व दी जानी चाहिये क्योंकि लेखन पठन की अपेक्षा सरल है । इस मत को मानने वाली मैडम माण्टेसरी हैं ।

(2) अन्य कुछ लोगों के विचार से लेखन से पूर्व पठन की शिक्षा दी जानी चाहिये ।

(3) तीसरे मत को मानने वालों का कहना है कि पठन लेखन दोनों साथ-साथ चलते रहना चाहिये ।

पठन से पूर्व लेखन की शिक्षा देना मैडम माण्टेसरी की व्यक्तिगत मान्यता है, अन्यथा न तो यह मनोवैज्ञानिक ही प्रतीत होता है और न यावहारिक ही । लेखन की शिक्षा पठन से पूर्व देना संभव नहीं है पठन की प्रक्रिया बोली तथा मस्तिष्क से संबंधित है । इसी प्रकार लेखन का काम हाथ तथा मस्तिष्क से छात्रों का मस्तिष्क पठन और लेखन दोनों में ही कार्य करता है । छात्र पहले बोलना सीखता है, तत्पश्चात् लिखना । तीसरा मत जो पठन और लेखन के संबंध में दोनों एक साथ सिखाने पर बल देता है, उस संबंध में यदि बहुत ही गहराई से, विचारपूर्वक सोचा जाय तो दो मानसिक क्रियाएँ एक साथ चल नहीं सकती । एक ही साथ दो व्यक्तियों की बात न तो सुन सकते हैं । और न ही दो व्यक्तियों से अलग-अलग बातें एक साथ कह सकते हैं । ठीक इसी प्रकार एक ही समय में पठन और लेखन की शिक्षा साथ-साथ नहीं चल सकती ।

23.4.3 हिन्दी उच्चारण शिक्षण

वाचन एवं लेखन की शिक्षा द्वारा भाषिक अभिव्यक्ति का विकास किया जाता है । अभिव्यक्ति की क्षमताएँ वाचन तथा लेखन की शुद्धता पर आधारित होती हैं । वाचन की प्रक्रिया में शुद्ध उच्चारण का विशेष महत्त्व है । शुद्ध उच्चारण की क्षमताओं से वाचन की योग्यता का विकास होता है और शुद्ध वर्तनी से लेखन की क्षमता एवं कौशल का विकास होता है । वाचन की क्षमताओं के निदान से उच्चारण की अशुद्धियों का पता चलता है ।

भाषा में उच्चारण का महत्त्व सबसे अधिक होता है । भाषा के अन्तर्गत व्याकरण से कही अधिक महत्त्व शुद्ध उच्चारण का है । शुद्ध उच्चरित वाक्य व्याकरण सम्मत न होने पर भी अर्थ प्रदान करता है, परन्तु व्याकरण सम्मत वाक्य का अशुद्ध उच्चारण करने पर वह अपूर्ण माना जाता है क्योकि श्रोता उसे समझ नहीं पाते अथवा प्रयत्न करके ही उसका अर्थ समझ पाते हैं । शुद्ध उच्चारण शिक्षित व्यक्ति की पहली पहचान होती है । अशुद्ध उच्चारण करने वाले व्यक्तियों की योग्यता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है । भाषा के लिखित रूप की रक्षा के लिये भी शुद्ध उच्चारण अति आवश्यक होता है । शुद्ध उच्चारण लिखित भाषा के पठन एवं लेखन

कौशल, दोनों का आवश्यक तत्त्व होता है । शुद्ध उच्चारण के अभाव में मौखिक पठन प्रभावहीन होता है, उसका न तो पाठक आनन्द ले पाता है और न श्रोता । लिखित भाषा, मौखिक भाषा की प्रतिरूप होती है, हम जैसा मौखिक रूप से सोचते हैं एवं बोलते हैं वैसा ही हम लिखते हैं । हिन्दी भाषा में जैसा उच्चारण किया जाता है ठीक वैसा ही लिखा जाता है ।यदि हम किसी शब्द का उच्चारण अशुद्ध करते हैं तो फिर उसे लिखेंगे अशुद्ध रूप में ही । तब हम कह सकते हैं कि किसी भाषा के सर्वमान्य मौखिक एवं लिखित रूप की उत्कृष्टता के लिये शुद्ध उच्चारण सर्वाधिक आवश्यक है । शुद्ध उच्चारण का प्रभाव भी श्रेष्ठ होता है ।

भाषा की शिक्षा में उच्चारण, अक्षरों व शब्दों की ध्वनियों का विशेष महत्त्व होता है । भाषा का शुद्ध उच्चारण करने से बोधगम्यता आती है एवं भाषा परिष्कृत होती है । जिस भाषा का क्षेत्र जितना व्यापक होता है उसमें उतनी ही अधिक उच्चारण भिन्नता होती है ।

उच्चारण के अनुसार हिन्दी ध्वनियों में स्वरकृत भेद, कालकृत भेद, स्थानकृत भेद, आभ्यन्तर प्रयलकृत भेद, बाह्य प्रयत्न भेद पाए जाते हैं ।

उच्चारण की अशुद्धियाँ

हिन्दी भाषा में ध्वनि सबसे सूक्ष्म महत्त्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक इकाई है, इसमें कुछ ऐसी सूक्ष्मताएँ हैं जिन्हें छात्र समझ नहीं पाते और उच्चारण में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ करते हैं इन अशुद्धियों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है:-

(1) अक्षरों के उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियाँ

- (1) ग तथा घ के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (2) छ तथा क्ष के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (3) ट तथा ठ के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (4) ड तथा ढ के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (5) ण तथा न के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (6) त तथा ध के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (7) द तथा ध के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (8) ब तथा व के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (9) श तथा ष के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (10) श तथा स के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (11) ष तथा स के उच्चारण की अशुद्धियाँ

(2) संयुक्ताक्षरों की उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियाँ

- (1) क्ष (क + ष) के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (2) त्र (त + र) के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (3) ज्ञ (ज + ञ) के उच्चारण की अशुद्धियाँ
- (4) ध के उच्चारण की अशुद्धियाँ

मात्रायुक्त अक्षरों की उच्चारण सम्बंधी अशुद्धियाँ

- (1) ि तथा ी (इ तथा ई की मात्रा) के उच्चारण की अशुद्धियाँ

(2) ु तथा ू (उ तथा ऊ की मात्रा)के उच्चारण की अशुद्धियाँ

(3) े तथा ै (ऐ तथा ए की मात्रा) के उच्चारण की अशुद्धियाँ

(4) ो तथा ौ (ओ तथा औ की मात्रा) के उच्चारण की अशुद्धियाँ

(4) अनुनासिक, अनुस्वार और अर्द्ध अनुस्वार सम्बन्धी उच्चारण अशुद्धियाँ

(5) ध्वनि लोप सम्बन्धी उच्चारण अशुद्धियाँ

(6) ध्वनि आधिक्य सम्बन्धी उच्चारण अशुद्धियाँ

(7) ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी उच्चारण अशुद्धियाँ

(8) नाक से बोलने व उर्दू ध्वनि नुक्ता (.) की अनावश्यक उच्चारण संबंधी अशुद्धियाँ

(9) स्वराघात उच्चारण सम्बन्धी अशुद्धियाँ

हिन्दी उच्चारण शिक्षण में उच्चारण अशुद्धियों के कारण

हिन्दी भाषा के उच्चारण में अशुद्धियाँ होने के अनेक कारण हैं । हिन्दी उच्चारण में होने वाली सामान्य अशुद्धियों के सामान्य कारणों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं ।

1. शारीरिक संरचना एवं शारीरिक विकार के कारण उच्चारण में अशुद्धि आती है ।
2. मानसिक कारण - भाषा का उच्चारण शरीर और मन के योग से होता है । शरीर में या मन में विकार आ जाने से उच्चारण में अशुद्धि आना स्वाभाविक है । भय, संकोच एवं शीघ्रता इसके कारण हैं ।
3. सामाजिक कारण-सामाजिक कारणों के अन्तर्गत बोलियों का प्रभाव, अन्य भाषाओं का प्रभाव आदि कारण उच्चारण को प्रभावित करते हैं ।
4. शैक्षिक कारण - जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार प्रसार बढ़ा है, स्कूलों में बच्चों की संख्या भी बढ़ी है । जिससे सभी बच्चों पर शिक्षक ध्यान नहीं दे पाते और बच्चे अशुद्धियाँ करते हैं । इनमें मूल ध्वनियों, मात्राओं, अनुनासिक, अनुस्वार और अर्द्धअनुनासिक का अस्पष्ट ज्ञान,स्वराघात के नियमों की अनभिज्ञता आदि हैं ।
5. भाषायी कारण- हिन्दी भाषा की मूल ध्वनियों में इतनी समानता है कि अस्पष्टता का सामना करना पड़ता है जैसे छ, क्ष, ट, ठ, इसके साथ ही कुछ मूल ध्वनियों के अनिश्चित कारण मात्राओं की विचित्रता एवं र के चार रूप और ऋ का प्रयोग छात्रों की भूल के कारण बनते हैं ।

शुद्ध उच्चारण की शिक्षा

शुद्ध उच्चारण ही शिक्षित व्यक्ति की पहली पहचान है । इसलिये शुद्ध उच्चारण के लिये हमें इन आवश्यक बिन्दुओं की ओर दृष्टि डालनी होगी ।

1. छात्रों के मानसिक संतुलन का विकास
2. छात्रों के उच्चारण अवयव अथवा स्वर यंत्र की देखभाल
3. विशुद्ध भाषा का प्रयोग करने वालों की संगत
4. उच्चारण सम्बन्धी सामान्य नियमों का ज्ञान
5. शुद्ध उच्चारण सम्बन्धी अभ्यास
6. स्वउपचार विधि

7. वैज्ञानिक उपचार शिक्षण विधियाँ
8. परम्परागत उपचार शिक्षण विधियाँ

इस प्रकार अशुद्धियों का निवारण करके और निरन्तर अभ्यास के द्वारा हम शुद्ध हिन्दी का उच्चारण करने में सफल हो सकते हैं ।

23.4.4 हिन्दी वर्तनी शिक्षण

वर्तनी की शुद्धता भाषागत शुद्धता का अनिवार्य गुण है । इसके अभाव में भाषा की शक्ति क्षीण हो जाती है । वर्तनी का क्षेत्र अधिक व्यापक है । शुद्ध वर्तनी के अभाव में किसी भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं हो सकता, इसलिये वर्तनी की शिक्षा प्राथमिक स्तर से ही आरम्भ कर दी जाती है और उच्च माध्यमिक स्तर तक दी जाती है । शुद्ध वर्तनी का महत्व सभी स्तरों पर रहता है ।

हिन्दी भाषा बोलने तथा लिखने में अन्तर पाया जाता है । इसका कारण भौगोलिक परिस्थितियाँ होती हैं क्योंकि अक्षरों तथा शब्दों के उच्चारण में अन्तर आता है यही भेद वर्तनी में हो जाता है । उच्चारण तथा वर्तनी परस्पर पूरक होती है और एक दूसरे को प्रभावित भी करती है । शुद्ध वर्तनी का तात्पर्य मानक वर्तनी से है । क्षेत्रीय वर्तनी का सम्प्रेषण की दृष्टि से उपयोग किया जाता हैं, सर्वमान्य वर्तनी तथा भाषा की दृष्टि से शुद्ध वर्तनी को मानक हिन्दी कहा जाता है ।

शुद्ध वर्तनी की आवश्यकता एवं महत्त्व

हिन्दी भाषा की दृष्टि से शुद्ध वर्तनी का विशेष महत्त्व है । भाषा की अपनी मूल ध्वनियाँ होती हैं जिन्हें अक्षर कहते हैं । इन अक्षरों को चिन्ह विशेष से अभिव्यक्त किया जाता है । और इन चिन्ह विशेष के समूह को लिपि कहते हैं । हिन्दी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है । इस लिपि में प्रत्येक मूल ध्वनि के लिये चिन्ह विशेष तो हैं ही साथ ही संयुक्त ध्वनियों को संयुक्ताक्षरों द्वारा अभिव्यक्त करने का विधान भी है और कुछ ध्वनियों को मात्राओं, अनुनासिक, अनुस्वार और चन्द्र बिन्दु द्वारा कुछ ध्वनियों को अक्षरों के नीचे मुक्ता लगाकर और कुछ ध्वनियों को अक्षर के ऊपर अर्द्धचन्द्र लगाकर अभिव्यक्त किया जाता है । किसी शब्द में प्रयुक्त ध्वनियों को उनके लिये निश्चित चिन्ह विशेष के माध्यम से अभिव्यक्त करने को शुद्ध वर्तनी कहते हैं ।

भाषा की शुद्धता वर्तनी पर ही आधारित होती है क्योंकि लेखन सम्प्रेषण का स्थायी माध्यम होता है । भाषा संबंधी कौशल का विकास शुद्ध वर्तनी से सम्भव होता है । भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति शुद्ध वर्तनी से की जा सकती है साथ ही रचनाओं का प्रस्तुतीकरण भी शुद्ध वर्तनी से होता है । व्यक्ति के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण में भी वर्तनी का अधिक महत्त्व है ।

वर्तनी की अशुद्धियाँ

हिन्दी भाषा के अन्तर्गत वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों में- अक्षर संबंधी अशुद्धियाँ, संयुक्ताक्षर सम्बन्धी वर्तनी अशुद्धियाँ, मात्राएँ एवं रेफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ, अनुनासिक, अनुस्वार और चन्द्र बिन्दु सम्बन्धी वर्तनी अशुद्धियाँ, ध्वनि लोप सम्बन्धी वर्तनी अशुद्धियाँ, ध्वनि

आधिक्य सम्बन्धी वर्तनी अशुद्धियाँ, ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी वर्तनी अशुद्धियाँ, अनुस्वार और नुक्ता का अनावश्यक प्रयोग शब्द रचना सम्बन्धी वर्तनी की भूलें आती हैं, वर्तनी अशुद्धियों के अन्य कारण भी इसमें अहम् भूमिका निभाते हैं जिसमें शारीरिक कारण (शारीरिक संरचना, शारीरिक विकार वाग्यंत्र में विकार) मानसिक कारण (भय अथवा संकोच,शीघ्रता एवं असावधानी), सामाजिक कारण (बोलियों का प्रभाव, अन्य भाषाओं का प्रभाव) शैक्षिक कारण (मूल ध्वनियों एवं चिन्हों का अस्पष्ट ज्ञान, मात्राओं का अस्पष्ट ज्ञान, उच्चारण एवं वर्तनी संबंधी नियमों की अनभिज्ञता), भाषायी कारण (मात्राओं की विचित्रता, मूल ध्वनियों की अधिकता) सम्मिलित हैं । पुस्तकों के मुद्रण की अशुद्धियाँ भी इसे प्रभावित करती हैं और शब्दों अथवा लेखन अभ्यास के अभाव के कारण भी अशुद्धियाँ होती है ।

वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के प्रकार

वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के प्रकार निम्नलिखित हैं ।

1. सामान्य लिपि सम्बन्धी अशुद्धियाँ
2. पंचम वर्ण सम्बन्धी अशुद्धियाँ
3. अनुस्वार सम्बन्धी अशुद्धियाँ
4. अक्षरों या वर्णों की अशुद्धियाँ
5. मात्राओं की अशुद्धियाँ
6. लिंग तथा वचन सम्बन्धी अशुद्धियाँ
7. सन्धि व समास सम्बन्धी अशुद्धियाँ
8. प्रत्यय एवं उपसर्ग सम्बन्धी अशुद्धियाँ

वर्तनी में सावधानियाँ

लेखन में वर्तनी का विशेष महत्त्व है क्योंकि लिखने की शुद्धता वर्तनी पर निर्भर होती है । लेखन में शिक्षक को दोनों पक्षों पर ध्यान देना चाहिये- शब्दों व अक्षरों में सुन्दरता तथा एकरूपता हो । वर्तनी में निम्नलिखित सावधानियों का ध्यान रखना आवश्यक है ।

1. वर्तनी तथा लेखन दोनों की शुद्धता, पर ध्यान दिया जाना चाहिये ।
2. वर्तनी तथा लेखन सम्बन्धी नियमों का अनुसरण किया जाय ।
3. निरोधात्मक तथा सुधारात्मक उपायों को प्रयुक्त किया जाए ।
4. वर्तनी सम्बन्धी भाषा विज्ञान का ज्ञान भी शिक्षक को होना चाहिये ।
5. वर्तनी के सुधार में अभ्यास पर विशेष बल दिया जाना चाहिये ।

अत: हम कह सकते है कि भाषा में शुद्ध हिन्दी वर्तनी शिक्षण की आवश्यकता है ।

23.5 भाषा शिक्षण एवं हिन्दी साहित्य

23.5.1 हिन्दी कविता शिक्षण

मानव जीवन को रमणीय बनाने के लिये अनेकों ललित कलाओं में कविता प्रमुख स्थान रखती है, मनुष्य के मन में जो श्रृंगार करूण, वीर, वात्सल्य, आदि भावनाएँ हैं कवि अपनी

कविता के द्वारा इनको स्पर्श करता हुआ सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, के आदर्श की ओर ले चलता है । कविता अनुभव करने की वस्तु है व्याख्या करने की नहीं । आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में 'रसात्मक वाक्य' को काव्य माना है ।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।"

पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार -

"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्द काव्यम्।"

अर्थात्- रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है ।

कविता शिक्षण के उद्देश्य-

कविता शिक्षण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं

1. कवि के भावों और विचारों के साथ-साथ तादात्मय स्थापित कर छात्रों को अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराना ।
2. छात्रों में कवि के भावों कल्पनाओं और अभिव्यक्ति की सुन्दरता की जाँच करने की योग्यता व्यक्त करना ।
3. लय ताल और भाव के अनुसार कविता पाठ करने की योग्यता पैदा करना ।
4. भाव भंगिमाओं और स्वर के उतार चढ़ाव के साथ कविता का अभ्यास करना ।

कविता शिक्षण की प्रविधि

1. प्रस्तावना

पूर्ण ज्ञान के आधार पर विषय का परिचय देने के लिये प्रस्तावना दी जाती है

(i) कवि परिचय द्वारा

(ii) कविता के अनुकूल वातावरण उपस्थित करके

(iii) समान्तर कविता पाठ द्वारा

(iv) उसी पाठ के द्वारा

अध्यापक द्वारा सस्वर वाचन

सस्वर वाचन कविता शिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण सोपान है । अच्छे सस्वर वाचन से कविता का सम्पूर्ण भाव समझ में आ जाता है । सस्वर वाचन कई प्रकार से किया जा सकता है जैसे - (i) केवल छन्द की गति और यति के अनुसार पठन करना । कविता की रचना छन्दों या वृत्तों में की जाती है । छन्दों में मात्राओं और वृतों में वर्णो की समानता का ध्यान रखा जाता हैं इन कारणों से कविता में लय होती है । कविता में पाठ, नाप, तत्त्व और लय का ध्यान रखा जाता है । (ii) भाव के अनुसार राग में वाचन करना (iii) वाचन के साथ साथ कविता के विभिन्न भावों को हाव-भाव, चेष्टा एवं अंग संचालन द्वारा व्यक्त करना ।

केन्द्रीय भाव ग्रहण के प्रश्न - यधपि अध्यापक के सस्वर वचन से ही छात्रों के हृदय में रस का संचार होने लगता है, किन्तु वह संचार स्थायी और वास्तविक नहीं होता । इसलिये सुवाचन के उपरान्त अंतिम पाँचवा सोपान भाव स्पष्टीकरण है । भाव स्पष्टीकरण की निम्नांकित विधियाँ हैं।

(i) प्रश्नोत्तर - प्रश्नोत्तर द्वारा भाव बोध कराया जाता है किन्तु प्रश्न उतने ही पूछे जाते हैं जितने से भाव स्पष्ट हो जाए । अधिक प्रश्न पूछने से कक्षा के वातावरण में नीरसता आने की आशंका रहती है ।

(ii) अन्तर्कथा - भाव विश्लेषण के लिये कहीं-कहीं अन्तर्कथा का नाममात्र के लिये संकेत दिया जाता है ।

(iii) स्वकथन- प्रश्नोत्तर विधि से यह जरूरी नही कि कविता का भाव पूरी तरह से स्पष्ट हो जाये इसलिये अध्यापक स्वकथन, प्रवचन, सहायक कथन आदि का सहारा लेता है ।

(iv) व्याख्या-यदि कविता छात्रों के मानसिक स्तर से ऊँची है तो उसकी व्याख्या करनी पड़ती है ।

(v) भाव साम्य-यदि कविता पूर्ण भाव को स्पष्ट करने के लिये कभी-कभी अन्य कवियों अथवा उसी कवि के उद्धरण देकर भाव पुष्ट किया जाता है उद्धरण सोच समझकर जाते हैं और दोनों की तुलना करके भाव को स्पष्ट किया जाता है ।

(vi) स्पष्टीकरण और सौन्दर्यानुभूति - छात्रों को भाव सौन्दर्य और रसानुभूति दोनों को पाने का प्रयत्न करना चाहिये । भाव सौन्दर्य के साथ विचार सौन्दर्य, भाषा सौन्दर्य, कल्पना, सौन्दर्य की अनुकूइत एवं रस, अलंकार, छंद आदि स्पष्ट होना चाहिये ।

(vii) द्वितीय आदर्श वाचन अध्यापन द्वारा- जब भाव विश्लेषण के बाद कविता के सभी सौन्दर्य तत्त्व स्पष्ट हो जाएँ तब भावों की एकाग्रता तथा पूर्ण रसास्वादन करने के लिये शिक्षक को द्वितीय आदर्श वाचन देना चाहिये ।

(viii) अर्थ ग्रहण तथा सौन्दर्य बोध परीक्षण- यह परखने के लिये छात्रों नें कविता के सौन्दर्य तत्त्व को किस सीमा तक आत्मसात किया है, इस हेतु अध्यापक को अर्थग्रहण सम्बन्धी प्रश्न पूछने चाहिये ।

(ix) रचनात्मक कार्य द्वारा कक्षा में रचनात्मक एवं काव्यमय वातावरण बना रहे, इस उद्देश्य से उसी भाव की अन्य कविताएँ भी छात्रों को सुनाई जा सकती हैं और छात्रों से सुनी जा सकती हैं ऐसा करने से छात्रों को कविता कण्ठस्थ करने की प्रेरणा मिलती है।

23.5.2 हिन्दी कहानी शिक्षण

कहानी हिन्दी साहित्य की सबसे रूचिकर लघु गद्य रचना है जिसमें मानव जीवन चरित्र का वर्णन, बड़े ही मर्मस्पर्शी, हृदयस्पर्शी कलात्मक एवं आकर्षक रूप में होता है, वर्तमान काल में ही नहीं अपितु मानव सभ्यता के आदिकाल से कहानी मनोरंजन पूर्ण उद्देश्य का एक सफल साधन रही है, छोटे छात्र कहानी सुनने में अधिक रूचि लेते हैं । इसलिये कक्षा में कहानी शिक्षण विधि का अधिक प्रयोग किया जाता है ।

हिन्दी भाषा में कहानी शिक्षण का अधिक महत्त्व है । भाषा इतिहास, भूगोल आदि विषयों में कहानी प्रणाली का प्रयोग किया जाता है ।

मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार

"कहानी एक ऐसी रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग अथवा एक मनोभाव को प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य हो । यह एक ऐसा सुन्दर उद्यान नहीं है, जिसमें भली भाँति, बेल-बूटे, फल तथा फूल हों, वरन् यह एक ऐसा गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने सन्तुलन रूप में दृष्टिगोचर होता है ।"

कहानी शिक्षण के उद्देश्य

कहानी, शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण साधन है, इसलिये कहानी शिक्षण के समय में निम्नलिखित उद्देश्य सामने रखने चाहिये ।

1. छात्रों का मनोरंजन करना ।
2. छात्रों का शारीरिक, बौद्धिक, चारित्रिक और संवेगात्मक विकास करना ।
3. छात्रों की कल्पना शक्ति का विकास करना ।
4. छात्रों को यथार्थ और आदर्श जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देना ।
5. छात्रों की ज्ञानवृद्धि करना ।

हमारे उद्देश्य कितने ही अच्छे क्यों न हों, सभी शिक्षक और सभी कहानियाँ इन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकते । सभी कहानियों में जीवन का संदेश एवं नैतिक उपदेश नहीं होते । कुछ कहानियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनका छात्रों के चरित्र पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है । अत: शिक्षक की कुशलता और अच्छी कहानी के चयन से ही उन उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव है ।

कहानी शिक्षण की प्रविधि

कहानी साहित्यिक विधा के साथ-साथ शिक्षण विधि भी है, कहानी में कहानी शिक्षण विधि का विशेष महत्त्व है, कहानी शिक्षण की प्रविधियाँ इस प्रकार है ।

1. अच्छी कहानी चुन लेने के उपरांत शिक्षक को कहानी के शिक्षण बिन्दु चुन लेने चाहिये । कहानी में क्या-क्या मुख्य बातें हैं । जिन पर प्रकाश डालना आवश्यक है । यह निश्चित कर लेना चाहिये ।
2. कहानी सुनाने के प्राप्य उद्देश्यों को स्थिर कर लेना चाहिये ।
3. छात्रों के अवधान को बनाये रखने के लिये प्रश्नोत्तर प्रणाली का आश्रय लेना चाहिये ।
4. कहानी के बीच-बीच में यथायोग्य श्यामपट्ट पर रेखाचित्र बनाते रहना चाहिये, क्योंकि सुनने की अपेक्षा देखना अधिक प्रभावी क्रिया है ।
5. बच्चों को कहानी कहने के लिये प्रेरित करना चाहिये ।
6. कहानी शिक्षाप्रद होनी चाहिये । शिक्षक को कहानी की शिक्षा छात्रों से प्रश्नों के माध्यम से प्राप्त करनी चाहिये ।

23.5.3 हिन्दी नाटक शिक्षण

आधुनिक काल में मनोरंजन के अनेक साधन उपलब्ध हैं । किंतु प्राचीन काल में मनोरंजन के साधनों का इतना प्राचुर्य न था । उस समय मनोरंजन के जो साधन उपलब्ध थे, उनमें व्यक्ति अपने महापुरूषों अथवा पूर्वजों द्वारा की गई विविध प्रकार की क्रियाओं का प्रदर्शन

करके मनोरंजन करते थे । इस प्रकार मन को आनन्दित करने के साधन ने युगान्तर में एक साहित्यिक विधा को जन्म दिया, जिसे नाटक के नाम से पुकारा गया ।

संस्कृत नाटक को दृश्य काव्य कहा गया है, जो कानों और नेत्रों दोनों को सुख देता है, इसलिये उसकी विशिष्टता भी घोषित की गई है ।

"काव्येषु नाटक रम्यम् ।"

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटक की व्याख्या करते हुए लिखा है-

"अवस्था अनुकृति नाटकम्" किसी भी अवस्था में अनुकरण को नाटक कहते हैं ।"

नाटक में अभिनय की प्रधानता होती है । अभिनय करने वाले को नट-नटी कहते हैं । ये चार प्रकार के अभिनय करते हैं । (i) वाचिक, (ii) आंगिक, (iii) सात्विक और (iv) आहार्य

अभिनव भारती ने "अभिनव नाट्यशास्त्र" में नाटक की व्याख्या करते हुए लिखा है-

"नाटक वह प्रयोग है जिसमें किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथा के आधार नाट्यकार द्वारा रचित रूप के अनुसार नाट्य प्रतियोगिता द्वारा प्रशिक्षित नट रंगमंच पर अभिनय और संगीत की सहायता से दर्शकों के हृदय में उसे उत्पन्न करके मनोविनोद करते हैं, और परोक्ष रूप से उन्हें उपदेश और मानसिक शक्ति प्रदान करते हैं"

नाटक शिक्षण के उद्देश्य

नाटक शिक्षण के सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

1. छात्रों को स्वस्थ मनोरंजन देना - अभिनेता अभिनय के द्वारा छात्रों का मनोरंजन करते हैं । मनोरंजक नाटक को पढ़कर, सुनकर, और अभिनय को देखकर भी किया जाता है । मनोरंजन के उद्देश्य से गहन अध्ययन-अध्यापन द्वारा नाटक का अभिनय कराया जाता है ।
2. देश की संस्कृति, प्राचीन महत्ता और गौरव तथा वर्तमान प्रगति से परिचित कराना - नाटकों के द्वारा भारत की प्राचीन परम्परा, संस्कृति, धर्म, इतिहास, एवं मर्यादाओं का दर्शन कराया जाता है ।
3. अपने देश तथा समाज की बदलती हुई परिस्थितियों से अवगत कराना - देश और समाज की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं । छात्रों को उन परिस्थितियों से अवगत कराने के लिये नाटक विधा अत्यन्त उत्तम मानी गई है ।
4. आदर्श पात्रों के उद्दात चरित्र चित्रण द्वारा छात्रों की भावनाओं का परिष्करण करना - नाटकों में प्राय: आदर्श पात्रों के उदात्त चरित्र चित्रण किया जाता है और जब ये नाटक रंगमंच पर खेले जाते हैं । अथवा कथा से गद्य पाठों के रूप में पढाये जाते हैं, तब ये छात्रों पर अपना प्रभाव अंकित करते हैं ।
5. छात्रों में साहित्यिक अभिरूचि का विकास करना - नाटक एवं एकांकी गद्य की प्रमुख विधाओं में से एक है । छात्रों में इस विधा के लिये प्रेम तभी पैदा हो सकता है, जब नाटकों का अध्ययन कक्षा में विधिवत हो ।

6. भाव भंगिमाओं क विकास का अवसर - छात्रों को उचित आरोह-अवरोह के साथ विविध प्रकार की भाव भंगिमाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है । इसके शिक्षण से वार्तालाप कला का प्रशिक्षण मिलता है और उद्देश्य की पूर्ति होती है ।

7. आत्माभिव्यक्ति का अवसर देना-छात्रों को अभिनय कला से परिचित कराते हुए उन्हें, आत्माभिव्यक्ति और आत्म-प्रकाशन के अवसर देना ।

नाटक का शिक्षण प्रविधि- नाटक साहित्य की विधा के साथ शिक्षण विधि भी है ।.. .....में नाटक शिक्षण विधि का विशेष महत्त्व है नाटक के शिक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं ।

(1) व्याख्या शिक्षण विधि- इस विधि में अध्यापक द्वारा पठन एवं व्याख्या की जाती है, इसमें वह प्रसंग प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा कथावस्तु का स्पष्टीकरण पात्रों का चरित्र चित्रण, कथोपकथन तथा विविध भावों एवं अनुभूतियों की विवेचना की जाती है ।

(2) आदर्श अभिनय विधि - इसमें शिक्षक सम्पूर्ण नाटक को रंगमंच के कलाकार की भाँति पात्रों के हाव-भाव, हर्ष, विषाद आदि भावों द्वारा अभिनय प्रस्तुत करता है, आदर्श नाट्य प्रणाली में शिक्षक ही सक्रिय रहता है । शिक्षक ही अंग संचालन के द्वारा नाटक के पात्रों का वाचिक आंगिक अभिनय करता है । जबकि छात्र मूक दर्शक और श्रोता बने रहते हैं ।

(3) कक्षा अभिनय प्रणाली - इसमें कक्षा में छात्रों को विविध पात्र मानकर उचित भाव भंगिमा के साथ पढ़ने के लिये कहा जाता है । वे कक्षा में पात्रों के अनुसार वाचन करते हैं और अपने दैनिक सामान्य वेशभूषा में ही रहते हैं । इस प्रणाली में रंगमंच सज्जा दृश्य परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया जाता ।

(4) रंगमंच अथवा अभिनय विधि - रंगमंच पर नाटक को विधिपूर्वक खेलना रंगमंच अभिनय विधि कहलाती है । इसमें शिक्षक छात्रों को कक्षा में बहुत पहले से एक-एक पात्र की भूमिका दे देते हैं । बाद में सब मिलकर विशेष कार्यक्रम में नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करते हैं ।

(5) समवाय अथवा संयुक्त शिक्षण विधि- समवाय का अर्थ है सभी प्रणालियों के गुणों को लेकर ऐसी प्रणाली अपनाना जिसमें दोष कम से कम हों और उद्देश्यों की पूर्ति भी हो जाय और अध्यापन विधि भी अपने में पूर्ण हो । इस विधि में पहले शिक्षक स्वयं अभिनेता या पात्र की भूमिका का निर्वाह करता है । उसके उपरांत छात्रों से पात्र के अनुरूप वाचन कराया जाता है । तदोपरांत शिक्षक पाठ की विषय वस्तु को अधिक ग्राह्य बनाने के लिये सूक्ति व्याख्या शुद्धोचारण आदि की समीक्षा की जाती है । ऐसा करने से छात्र नाटक के उस पाठ की विषय वस्तु को समझ लेंगे । जिससे नाटक शिक्षण के सभी उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी ।

23.6 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.	श्रव्य माध्यम	:	सुनकर सूचना ज्ञान मनोरंजन का माध्यम जैसे रेडियो, टेप रिकॉर्डर
2.	दृश्य श्रव्य माध्यम	:	देख और सुनकर ज्ञान, मनोरंजन, और सूचनाएं प्राप्त करने

			का माध्यम टेलीविजन, नाटक, सिनेमा
3.	भाष्	:	कहना, बोलना
4.	सूक्ष्मातिसूक्ष्म	:	अति सूक्ष्म, छोटे से छोटा
5.	आतंरिक	:	भीतरी, मन के भीतर स्थित
6.	अनुबंधन	:	लगाव, संबंध, अक्षरों तथा वर्गो का ज्ञान भाषा शिक्षण
7.	प्रशिक्षण	:	सिखाना, लिखने पढ़ने एवं बोलने के कौशलों का शिक्षण
8.	अनुदेशन	:	शिक्षा देने की क्रिया, कविता, गद्य तथा लेखन को बोध एवं साहित्य
9.	प्रतिवादन	:	समीक्षा, आलोचना, समालोचना एवं सौन्दर्यानुभूति का शिक्षण
10.	आख्यान	:	कहानी (इतिहास अथवा पुराण से संबंधित कथा का वर्णन)
11.	ध्वनिसाम्य विधि	:	इस शिक्षण विधि में समान उच्चारण वाले शब्दों को साथ-साथ सिखया जाता है ।
12.	त्वरित	:	शीघ्र
13.	अनभिज्ञता	:	जानकारी न होना
14.	दक्षता	:	कुशलता, ठीक से सीख लेना
15.	अन्तर्कथा	:	कहानी के भीतर कहानी (इतिहास या पुराण से संबंधित)
16.	अवधान	:	मनोयाग, ध्यान
17.	निदर्शना	:	जब किसी व्यक्ति बात या अंश को दिखाकर इस प्रकार स्पष्ट किया जाए कि श्रोता के मस्तिष्क पर इस बात का चित्र सा खिंच जाए ।
18.	मौन वाचन	:	मन ही मन पढ़ना बिना ओठ हिलाए पढ़ना, इस प्रक्रिया द्वारा अधिक से अधिक अर्थ ग्रहण किया जाता है ।
19.	प्रभावी	:	असर डालने लायक, प्रभावशाली
20.	सस्वर, पाठ	:	ताल, लय के साथ पढ़ना

23.7 सारांश

इस इकाई में आपने भाषा शिक्षण और हिन्दी के बारे में जानकारी प्राप्त की । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि भाषा शिक्षण किसे कहते हैं ।

भाषा, मानव समाज को विधाता की ओर से प्राप्त एक अमूल्य वरदान है । वाक् शक्ति के बल पर ही मनुष्य एक श्रेष्ठ प्राणी बन सका है । हिन्दी भाषा वर्तमान समय में राष्ट्र भाषा है । हम भारत के किसी भी स्थान पर जाये, हिन्दी भाषा के माध्यम से विचार-विनिमय द्वारा अपने कार्यों को भली-भाँति पूरा कर सकते है । भाषा शिक्षण की नयी अवधारणा में भाषा को दो पक्षों में विभाजित किया गया । 1) भौतिक पक्ष 2) मानसिक पक्ष- दोनो पक्षों में सामन्तस्य जरूरी है । भाषा शिक्षण के चार सोपान हैं :- 1) अनुबंध 2) प्रशिक्षण, 3) अनुदेशन 4) प्रतिवादन ।

भाषा शिक्षण का संपादन अनुबंधन और प्रशिक्षण द्वारा किया जा सकता है ।

भाषा शिक्षण के लिये चार प्रशिक्षण विधियाँ प्रभावशाली होती हैं

1) प्रत्यक्ष विधि 2) परोक्ष विधि 3) व्यवस्थित विधि 4) नवीन विधि इन विधियों के शिक्षण द्वारा छात्र वाचन लेखन एवं भाषण में दक्ष हो जाता है ।

भाषा शिक्षण एवं भाषा अर्जन के लिये मौखिक अभ्यास के साथ-साथ विविध उपकरणों का भी उपयोग होता है । जिसमें श्रव्य साधन, दृश्य साधन, श्रव्य-दृश्य साधन द्वारा भाषा का शिक्षण दिया जाता है ।

भाषा शिक्षण में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है कि वह राष्ट्रभाषा हिन्दी का शुद्ध वाचन, लेखन, उच्चारण और वर्तनी का शिक्षण दें और भाषा सम्बन्धी अशुद्धि को शुद्ध करें । मानव जीवन को सुंदर एवं मूल्यवान बनाने के लिये कविता शिक्षण, कहानी शिक्षण, और नाटक शिक्षण का महत्त्वपूर्ण योगदान है इसके द्वारा भाषा शिक्षण की क्षमता एवं दक्षता भी परिलक्षित होती है ।

23.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. भाषा शब्द का अर्थ बताते हुए शिक्षा एवं शिक्षण को समझाईये ।
2. भाषा शिक्षण का सैद्धान्तिक परिचय दीजिये ।
3. भाषा शिक्षण के विविध उपकरणों पर प्रकाश डालिये ।
4. भाषा शिक्षण और हिन्दी साहित्य शीर्षक से एक निबंध लिखिए
5. भाषा शिक्षण विधि से हिन्दी शिक्षण किस प्रकार करेंगे समझाइए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. शिक्षण का अर्थ बताते हुए इसकी विशेषताएं लिखिए ।
2. भाषा शिक्षण का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए ।
3. भाषा शिक्षण की परोक्ष विधि से क्या तात्पर्य है?
4. हिन्दी वाचन शिक्षण विधियों का उल्लेख कीजिए ।
5. छात्रों से उच्चारण संबंधी कौन-कौन सी भ्रांतियों के कारण वर्तनी गलत हो जाती है ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. अक्षरों तथा वर्णो का ज्ञान भाषा शिक्षण.............................. कहलाता है ।
2. शिक्षण एक..........................प्रक्रिया है ।
3. .... के द्वारा बालक नए नए शब्द सीखता हैं ।
4. .... साधनों के प्रयोग से शिक्षण में कुशलता आती है ।
5. .... में समान उच्चारण वाले शब्दों को साथ साथ सिखया जाता है ।

घ. सही / गलत चिन्ह लगाइए

1. खेल विधि भारतीय शिक्षा प्रणाली की उपज है ।   सही / गलत

2. त्वरित मौन वाचन का उद्देश्य ज्ञानवर्द्धन है । सही/गलत

3. वर्तनी के सुधार में अभ्यास पर बल देना जरूरी है । सही / गलत

4. नाटक शिक्षण द्वारा केवल मनोरंजन किया जा सकता है । सही/गलत

5. संस्कृत नाटक को श्रव्यकाव्य कहा गया है । सही / गलत

23.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पी. डी. पाठक; जी. एस. डी. त्यागी; शिक्षा के सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.
2. सावित्री सिंह; हिन्दी शिक्षण, लॉयल बुक डिपो, मेरठ.
3. डी. शिखा चतुर्वेदी-हिन्दी शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ.
4. योगेन्द्र जीत; हिन्दी भाषा शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा.
5. बी. एन. शर्मा; हिन्दी शिक्षण, साहित्य प्रकाशन, आगरा.
6. रमन बिहारी लाल; हिन्दी शिक्षण, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ.
7. वामन शिवराम आप्टे; संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा. लि. दिल्ली.

इकाई-24 शैली विज्ञान : उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 अर्थ (भारतीय एवं पाश्चात्य संदर्भ)

24.3 परिभाषाएँ

24.4 शैली एवं शैली विज्ञान

24.5 उद्भव और विकास

24.5.1 संस्कृत काव्यशास्त्रीय शैली विज्ञान

24.5.2 पाश्चात्य शैली विज्ञान

24.5.2.1 आँग्ल अमेरिकी शैली विज्ञान

24.5.2.2 रूसी-चैक शैली विज्ञान

24.5.2.3 फ्रांसीसी शैली विज्ञान

24.5.2.4 जर्मन शैली विज्ञान

24.5.2.5 स्पेनी शैली विज्ञान

24.6 विचार संदर्भ/शब्दावली

24.7 सारांश

24.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

24.9 संदर्भ ग्रंथ

24.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि -

- शैली विज्ञान का भारतीय एवं पाश्चात्य संदर्भ में क्या अर्थ हैं ।
- शैली विज्ञान को किस तरह परिभाषित किया गया है ।
- शैली विज्ञान का उद्भव एवं विकास भारत एवं पाश्चात्य चिंतन में किस प्रकार हुआ ।
- आँग्ल-अमेरिकी शैली विज्ञान का परिचय पा सकेंगे ।
- रूसी-चेक शैली विज्ञान की जानकारी पा सकेंगे ।
- फ्रांसीसी शैली विज्ञान का परिचय मिलेगा ।
- जर्मन शैली विज्ञान का परिचय मिलेगा ।
- स्पेनी शैली विज्ञान का परिचय मिलेगा ।

24.1 प्रस्तावना

भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन में साहित्य के विश्लेषण की विभिन्न। पद्धतियाँ समय-समय पर विकसित होती रही हैं । भारत में इसकी शुरूआत जहाँ आचार्य भरत से मानी जाती है वहीं पाश्चात्य चिंतन में प्लेटो और अरस्तु इसके प्रारम्भिक स्रोत माने गये हैं ।

साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होता है और भाषा का निर्माण समाज के सांस्कृतिक विकास का परिणाम है जिसके अंतर्गत परिवेश, परंपरा, मूल्य विश्वास एवं भौगोलिक परिस्थितियों आदि का योगदान रहता है । साहित्य की भाषा के संरचनात्मक अध्ययन का कार्य जहाँ भाषा विज्ञान के माध्यम से होता है वहीं उसके प्रयोग के वैशिष्ट्य का अध्ययन शैली के माध्यम से होता है । वस्तुत: शैली विज्ञान भाषा के वैशिष्ट्य के अध्ययन का तरीका है जिसके माध्यम से किसी प्रयोग के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं भाषा वैज्ञानिक कारणों को समझने का प्रयास किया जाता है । इस इकाई की पूरी अवधारणा को विस्तार से भारतीय एवं पाश्चात्य संदर्भों में समझाने का प्रयास किया जाएगा ।

24.2 अर्थ (भारतीय एवं पाश्चात्य संदर्भ)

'शैली' शब्द के मूल में 'शील' शब्द है जिसका प्रयोग प्राचीन काल से मिलता है । इस शब्द की व्युत्पति 'शी' धातु में 'लक' प्रत्यय के योग से मानी गयी है जिसका अर्थ 'स्वभाव' किया गया है । 'शील' शब्द को विभिन्न व्याकरणिकों ने 'एकाग्र' एवं 'अभ्यास' के अर्थ में भी प्रयुक्त किया है । यास्क ने निरूक्त में 'शील' शब्द का प्रयोग 'अभ्यास' या 'पुनरूक्ति' के अर्थ में किया है-

'अभ्यासे भूयां समर्थ मन्यन्ते । यथा अहो दर्शनीया अहो दर्शनीया इति । तत् परूच्छयस्य शील ।

'शील' शब्द में 'अण' प्रत्यय के योग से शैली शब्द बना है जिसका सामान्य अर्थ अभिव्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति से लगाया जाता है । शैली शब्द का प्राचीनतम प्रयोग पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है जहाँ वे लिखते हैं- 'ऐसा कि आचार्यस्य शैली लक्ष्यते' । 11वीं शताब्दी में प्रदीपकार कम्पट ने 'शैली' को पूरी तरह स्पष्ट करते हुए इसे शील अर्थात् स्वभाव में होने वाली वृत्ति कहा है - 'शीले स्वभावे वृत्ति: शैली ।'

आधुनिक अर्थ में 'शैली ' शब्द के Style शब्द के हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका सामान्य अर्थ प्रकार या तरीका होता है । 'स्टाइल' शब्द लैटिन के स्टाइलुस (Stilus) से निष्पन्न है जिसका अर्थ 'लोहे की कलम' से लगाया जाता है । वस्तुत: उस समय ऐसी कलम से मोम की बनी हुई टिक्कियों पर विभिन्न प्रकारों की लिखावट का काम लिया जाता था पर आगे चल कर इस शब्द से 'भाषिक अभिव्यक्ति' का अर्थ लिया जाने लगा । मानक हिन्दी कोश में शैली का अर्थ 'ढंग' या 'तरीका' दिया गया है जो कि आधुनिक संदर्भ में समीचीन प्रतीत होता है । सामान्यत: किसी वक्ता की बोली में अभिव्यक्ति के प्रसंग और उद्देश्य से आने वाले वैशिष्ट्य को शैली कहते हैं । ये वैशिष्ट्य विभिन्न भाषागत उपकरणों के माध्यम से ही पहचाने जाते है । भाषा की यह विशिष्टता जो अंतर उपस्थित करती है वे अभिव्यक्ति के विभिन्न उद्देश्यों एवं प्रयोगों से भाषा का अलग रूप निर्मित करते हैं और शैली कहलाते हैं । वास्तव में शैली का सम्बन्ध भाषा के प्रयोग पक्ष के साथ है जो एक ओर तो उसकी संरचना एवं शब्द प्रयोग पर अवलंबित होता है और दूसरी ओर अभिव्यक्ति के उद्देश्य

और प्रसंग पर । इस प्रकार शैली भाषा की शाब्दिक बुनावट का अध्ययन है जो उसे अभिव्यक्ति के प्रसंग एवं उद्देश्य के आधार पर विवेचित करता है ।

शैली की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है । पाश्चात्य चिंतन में इस शब्द का प्राचीन प्रयोग काव्यशास्त्र के संदर्भ में न होकर 'वाग्मिताशारत्र' (Rehetorics) के संदर्भ में मिलता है जहाँ 'वाग्मिता' को आकर्षक बनाने की तकनीक के रूप में यह वर्णित है । आगे चलकर 'शैली' की अवधारणा का विकास साहित्य की भाषा के प्रयोगों के वैशिष्ट्य के अध्ययन के लिए होने लगा । पाश्चात्य भाषा चिंतकों ने इसे लेकर वृहद एवं सूक्ष्म विवेचन किया । इस क्रम में बूफ़ो ने जहाँ इसे विशिष्ट रचनाकार की कृति की अनिवार्य विशिष्टताओं को निर्दिष्ट करने वाला शास्त्र कहा वहीं स्विफ्ट ने इसे रचना के 'पाठ' या 'प्रोक्ति' से जड़ दिया । वस्तुत: 'शैली' की आधुनिक अवधारणा भाषा के वर्णनात्मक विश्लेषण से जुडी है । भाषा विज्ञान में जहाँ भाषा के संरचनात्मक विश्लेषण की प्रवृत्ति होती है वहीं शैली विज्ञान में कृति की बुनावट का अध्ययन होता है । इन प्रभावी तत्त्वों को आरेखित करने के लिए तीन दृष्टियाँ अपनाई जाती हैं - (1) वक्ता या लेखन की दृष्टि (2) पाठ-केन्द्रित दृष्टि और (3) पाठक या श्रोता की दृष्टि ।

पाश्चात्य साहित्यालोचन में शैली को लेकर गंभीर एवं विशद अध्ययन हुआ है और विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टियों से इसे निरूपित किया है । सेमूर चैटमैन, स्टीफेन उलमान, निल्स एरिक एंक्तिस्ट, डेविड क्रिस्टल, डेरेक डेवी, आइ.आर. गालाप्रेन, केटी वेल्स, रोलां बार्थ जैसे प्रसिद्ध भाषाशास्त्रियों ने शैली को लेकर अपनी अपनी स्थापनाएँ दी हैं । स्टीफेन उलमान ने शैली की वैयक्तिकता के आधार पर इस रचनाकार के विशिष्ट भाषिक अभ्यासों के साथ-साथ उसमें निहित अनुभवों की प्रकृति से जोड़ कर देखा है । डेविड क्रिस्टल एवं डेरेक डेवी ने शैली में निहित अर्थों को स्पष्ट करते हुए इसे (1) भाषिक-प्रवृत्ति (2) भाषिक प्रकृति की भागीदारी (3) अभिव्यंजना प्रणाली एवं (4) अभिव्यंजना प्रणाली की उत्तमता, प्रभाव परकता एवं सुन्दरता के माध्यम से स्पष्ट किया है ।

सेमूर चैटमेन ने ‘शैली' के अर्थ पर व्यापक विचार करते हुए उसके चार पक्षों का निर्देश किया है-

1. शैली के अंतर्गत रचनाकार द्वारा किये गये शब्दों के चयन एवं उसके प्रयोग की विशिष्टता का अध्ययन किया जाता है ।
2. शैली वस्तुनिष्ठ रूप में भिन्नता का उद्घाटन होता है । जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर, मुख-मण्डल एवं व्यक्तित्व में भिन्न और विशिष्ट होता है उसी प्रकार अभिव्यक्ति आदि में भी । इस अर्थ में शैली 'वर्णनात्मक' होती है । जिसका लक्ष्य 'वैशिष्ट्य का आरेखन' होता है ।
3. 'शैली’ का अभिव्यक्तिपरक अर्थ है वैचारिक तत्त्व या कथ्य की अपेक्षा अभिव्यंजना का संवहन ।
4. 'शैली’ का चौथा पक्ष संबोधित करने का लहजा या टोन है । इसके अन्तर्गत सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त प्रोक्ति की प्रविधि को वक्ता और श्रोता की सामाजिक स्थिति के औपचारिक-अनौपचारिक परिवेश के सापेक्ष विवेचित किया जाता है ।

आइ.आर. गालप्रिन ने शैली को भाषा के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करने वाले तत्त्वों के रूप में व्याख्यायित करते हुए इसे अभिव्यंजना-कौशल के रूप में देखा है जबकि ज्योफ्री एन.लीच ने इसे वह मार्ग बताया है जिसमें भाषा व्यवहृत होती है । उनका यह मानना है कि भाषा-व्यवहार के क्षेत्र में किसी रचनाकार द्वारा विशिष्ट संदर्भ, विधा एवं पाठ में होने वाले विकल्पात्मक चयन को शैली कहते हैं उनका यह भी कहना है कि शैली विशेषत: सहित्यिक भाषा में होती है और उसका विशेष सरोकार भाषा के काव्यात्मक या सौन्दर्यात्मक रूप से होता है ।

24.3 परिभाषाएँ

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'शैली' को लेकर विद्वानों में एक राय नहीं है तथा विभिन्न दृष्टियों से इसे परिभाषित करने की कोशिश की गयी है । कुछ प्रमुख परिभाषाओं के माध्यम से हम 'शैली' को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे:-

लूक्स के अनुसार : 'शैली एक ऐसा साधन है जिससे एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है । यह शब्दों से विभूषित व्यक्तितत्व अथवा शब्दबद्ध चरित्र है ।'

मिल्टन मरी के अनुसार : 'शैली रचनाकार के वैशिष्ट्य, विनिमय प्रतिपादन की प्रविधि तथ उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति है, जिसे साहित्य की चरम उपलब्धि कहा जा सकता है ।

निक्स एरिक एक्विंस्ट के अनुसार :

1. शैली एक प्रकार का व्यवस्थित भाषिक वैविध्य है ।
2. शैली विभिन्न अभिव्यक्तियों में से श्रेष्ठ चयन है ।
3. शैली निजी विशिष्टताओं का सम्मिलित रूप है ।
4. शैली स्थापित प्रतिमान से विचलन है ।
5. शैली सामूहिक विशेषताओं का समुच्चय है ।
6. शैली भाषा-तात्विक इकाइयों का अन्त: संबंध है ।

हॉकेट के अनुसार : 'एक भाषा में सामान्यत: एक ही अभिप्राय एवं अभिसूचन की दो भिन्नात्मक स्थितियाँ, जो अपनी भाषायी संरचना में भी भिन्न होती है, अलग-अलग शैलियाँ कही जा सकती हैं ।'

मिल माइल्स के अनुसार : 'शैली उसी प्रकार वस्तु का चयन करती है जिस प्रकार वह अभिव्यक्ति की व्यवस्था करती है ।

आर.एस. सेस के अनुसार : 'साहित्यिक अध्ययन के लिए शैली केवल भाषिकीय घटक नहीं है, वह कथ्य, संरचना-चरित्र और सबसे अधिक सौन्दर्यपरक साभिप्रायता को प्रतिफलित करने वाला घटक भी है ।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार : 'भाषा की व्यापक संभावना के संदर्भ में भाषिक प्रतीक एवं उसके अनेक विकल्पों में से किसी एक के चयन का परिणाम शैली है ।'

नागेन्द्र के अनुसार : 'शैली विशेष भाषिक संरचना है ।'

भोलानाथ तिवारी के अनुसार : 'शैली भाषिक अभिव्यक्ति का वह विशिष्ट ढंग है, जो प्रयोक्ता के व्यक्तितत्व, विषय, विधा, काल, साहित्यिक-धारा तथा स्थान आदि से सम्बद्ध होता है तथा जो

चयन, विचलन, समानान्तरता एवं अप्रस्तुत विधान आदि भाषिक सामान्य अभिव्यक्ति के लिए असुलभ उपकरणों एवं उनके संयोजन पर आधृत होता है ।'

इन परिभाषाओं के अध्ययन से शैली की जो सामान्य विशेषताएँ प्रकट होती हैं उन्हें इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

1. शैली विषय-वस्तु के आंतरिक सत्य को उद्‌घाटित करने का रचना-सिद्धांत है ।
2. शैली चयन है जिसके अंतर्गत किसी एक भाषा की दो ऐसी अभिव्यक्तियों के अंतर का आरेखन होता है जिनका अर्थ लगभग समान होता है परन्तु जो अपनी भाषिक संरचना में एक दूसरे से भिन्न होते है ।
3. शैली शब्द-चयन एवं भाषा में उनके विशेष प्रयोग-क्रम का अध्ययन होता है जो श्रोता, पाठक या उद्देश्य पर आधारित होते हैं ।
   - (i) शैली विचलन है अर्थात भाषा के सामान्य मानक रूप से अलग प्रयोग है ।
   - (ii) शैली अन्तर्वाक्यीय पाठ का वैशिष्ट्य है अर्थात शैली विज्ञान वाक्य की बड़ी इकाई पाठ का वह विश्लेषण है जिससे उसमें अन्तर्निहित भाव प्रकट हो जाएँ।
   - (iii) शैली विचार की प्रतिलिपि है अर्थात रचनाकार की वैचारिकता की अभिव्यक्ति रचना में शैली के रूप में होती है ।
   - (iv) शैली व्यक्तिक विशेषता है अर्थात शैली रचनाकार के निजी व्यक्तित्व की रचनात्मक प्रस्तुति है जिसकी अभिव्यंजना पद्धति विशिष्ट होती है ।

24.4 शैली एवं शैली विज्ञान

किसी रचना की शैली का वैज्ञानिक अध्ययन शैली-विज्ञान है । यह भाषा की लघुतम इकाई 'शब्द' से शुरू होकर उसके चरम गुणात्मक रूप 'पाठ' तक का अध्ययन करता है । वास्तव में भाषा-प्रयोग के वर्णात्मक अध्ययन को शैली-विज्ञान कहा जाता है । कड्डन के अनुसार 'शैली - विज्ञान भाषा-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान की तरह ही एक विश्लेषणात्मक विज्ञान है जो भाषा के ध्वनि-विज्ञान, छन्दविज्ञान रूपविज्ञान, वाक्य-रचना और कोश-विज्ञान' जैसे सभी अभिव्यंजनात्मक पहलुओं का संवहन करता हैं स्पष्ट है कि इसके अंतर्गत 'भाषा' के अध्ययन के विभिन्न उपकरणों को शामिल कर लिया गया है । प्रसिद्ध भाषाविद् एच.डी. विडोसन ने शैली विज्ञान को भाषा के आधार पर साहित्यिक पाठ का अध्ययन माना हैं इस क्रम में उन्होंने स्पष्ट किया है कि यह आलोचना एवं भाषा-विज्ञान से अलग होते हुए भी भाषा और अभिव्यक्ति को जोड़ने का माध्यम है स्टीफेन उलमान शैली-विज्ञान को भाषा विज्ञान से अलग व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि शैली विज्ञान भाषा विज्ञान का प्रभाव मात्र नहीं हैं, बल्कि एक ऐसी समानान्तर ज्ञान की धारा है जो समान तत्त्वों का अनुसंधान अपनी दृष्टि से करता है । डी. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव ने शैली विज्ञान को स्पष्ट करते हुए कहा है कि - 'शैली-विज्ञान भी साहित्य को समझने-समझाने की एक दृष्टि है, जो शैली के साक्ष्य पर एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना और गठन पर प्रकाश डालती है और दूसरी ओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अन्तर्निहित साहित्यकता का उद्‌घाटन करती है ।'

24.5 उद्भव और विकास

शैली के आधार पर रचना के मूल्यांकन की परंपरा भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यालोचन में प्राचीन काल से ही रही है । यधपि आधुनिक शैली विज्ञान की प्रविधि एवं प्राचीन मूल्यांकन दृष्टि में अत्यधिक अन्तर देखा जा सकता है फिर भी उसके एतिहासिक महत्त्व की अपेक्षा नहीं की जा सकती । भारतीय संदर्भ में संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा को साहित्य के शैलीगत अध्ययन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । वस्तुत: संस्कृत काव्यशास्त्र का मूलाधार साहित्यिक प्रभावों के भाषामूलक प्रयोगें का अध्ययन है और यही दृष्टि आधुनिक शैली वैज्ञानिक अध्ययन में पायी जाती है । इस अर्थ में 'शैली' के ऐतिहासिक संदर्भ को समझने के लिए संस्कृत काव्यशास्त्रीय साहित्यालोचन संबंधी मान्यताओं का आरेखन महत्वपूर्ण होगा ।

24.5.1 संस्कृत काव्यशास्त्रीय शैली विज्ञान

संस्कृत समालोचना में 'शैली' शब्द का समतुल्य शब्द 'रीति' है जिसके प्रयोग की प्रस्तावनों भारतीय शैली विज्ञान के संदर्भ में की गई है । डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने 'रीति' शब्द के प्रयोग को अधिक समीचीन मानते हुए कहा है कि भाषागत सर्जनात्मक विशेषताओं का ज्ञान कराने के लिए 'शैली' के स्थान पर 'रीति' शब्द का ही प्रयोग उचित है क्योंकि भाषा के गुणों के आधार पर उसका अलग-अलग रेखांकन 'रीति' से ही संभव है । इसके साथ-साथ भाषा में विद्यमान सामाजिक वैशिष्टयगत प्रयोगों के अध्ययन के लिए भी रीति शब्द ही अधिक उपयुक्त है । यधपि 'मार्ग', 'संघटना' या 'वृत्ति' शब्द की चर्चा भी इस संदर्भ में की जा सकती है परन्तु 'रीति' को सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है । संस्कृत काव्याशास्त्रीय शैली विज्ञान को सामान्यत: दो वर्गों में विभाजित किया गया है-

1. अभिव्यंजनावादी वर्ग एवं
2. अनुभूतिवादी वर्ग

अभिव्यंजनावादी वर्ग के अन्तर्गत वामन के रीति सिद्धांत, भामह एवं दण्डी के अलंकार सिद्धांत, कुंतक के वक्रोक्ति एवं क्षेमेन्द्र के औचित्य सिद्धांत को रखा जा सकता है । वामन ऐसी 'पद रचना' को रीति कहते हैं जो 'विशिष्ट' है । यह 'पद रचना' तीन प्रकार से हो सकती है- वैदर्भी, पांचाली एवं गौड़ी, जो भिन्न-भिन्न शब्दगुणों एवं अर्थगुणों के अनुपात से विशिष्ट होती है । भामह ने अलंकार के मूल में 'वक्रोक्ति' अर्थात 'विशिष्ट कथन भंगिमा को स्वीकार करके अलंकार को काव्य के अभिव्यंजना पक्ष का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना । कुंतक तो वक्रोक्ति को ही काव्य की आत्मा मानते हैं वे कवि-स्वभाव, कवि-प्रतिभा एवं कवि-व्यापार को काव्यनिष्पत्ति के लिए आवश्यक बताते हुए रचना में अनुभूति पक्ष एवं अभिव्यक्ति की अविभाज्यता पर बल देते हैं और इसी आधार पर काव्य-भाषा को सामान्य भाषा से अलग आधार प्रदान करते हैं । आचार्य क्षेमेन्द्र भाषा संरचना के साथ साहित्य संरचना के स्तर पर औचित्य की स्थापना करते हैं जिसका आधार 'उपयुक्तता' है । औचित्य की सत्ता पद, वाक्य,

गुण, अलंकार, रस, क्रिया कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात आदि के अधीन होती है जो भाषा-संरचना के साथ-साथ साहित्यिक संरचना के भी अंग होते हैं ।

अनुभूतिवादी वर्ग के अंतर्गत रस एवं ध्वनि को रखा जा सकता है । 'रस' जहाँ साहित्य के सामान्यबोध के लिए आवश्यक आधार का सृजन करता है वहीं ध्वनि साहित्यिक अनुभव के विविध रूपों को स्पष्ट करता हैं । अर्थ की वाक्य लक्ष्य एवं व्यंग्य, ये तीन श्रेणियाँ करके आनन्दवर्धन साहित्यिक अनुभव के निष्पादक उपकरणे के रूप में इसकी स्थापना करते हैं और इनका संबंध भाषा के रूपात्मक उपकरणों स्वनिम, अक्षर, शब्द, श्रृंखला, वाक्य तथा वाक्यबंध से जोड़ते हैं रस-ध्वनि, अलंकार-ध्वनि एव वस्तु-धनि के माध्यम से वे साहित्यिक अभिव्यक्ति की सभी विशिष्टताओं को ध्वनि के अन्तर्गत लाने का प्रयास करते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृत काव्यशास्त्रीय शैली विज्ञान में साहित्यिक अनुभवों को प्रकट करने वाले शैलीगत उपकरणों का वर्णन प्रकारान्तर से विभिन्न काव्याशास्त्रीय मान्यताओं के अंतर्गत किया गया है ।

24.5.2 पाश्चात्य शैली विज्ञान

पाश्चात्य साहित्य चिंतन में इस परंपरा का आरंभ प्लेटो तथा अरस्तु से माना जाता है जहाँ 'वाग्मिता' अथवा भाषण कला (Rhetorics) के संदर्भ में 'शैली' की उपादेयता पर विचार किया गया है । किस प्रकार के भाषण के लिए किस प्रकार के अभिव्यक्ति-उपकरण, काव्यरचनाएँ, शब्दकोश, अलंकार आदि प्रयोग में लाए जा सकते हैं, उसका उल्लेख अरस्तु क्विंटी-लियन आदि के ग्रंथों में मिलता है । आगे चलकर मध्ययुग एवं पुनर्जागरण काल में शैली के अध्ययन की संकल्पना को काव्यशास्त्रीय विवेचन के अंतर्गत ले लिया गया जिसका प्रभाव समीक्षा व्यापार तक ही सीमित न रहकर काव्य रचना पर भी पड़ा ।

शैली के अध्ययन की आधुनिक परंपरा : 'शैली' के अध्ययन की आधुनिक परंपरा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में सोस्थूर द्वारा प्रवर्तित भाषा वैज्ञानिक संरचनावाद से मानी जाती है । सोस्यूर के अनुसार एक काल खंड की भाषा का अध्ययन उसके पूर्वगामी तथ्यों के संदर्भ में न होकर समसामयिक संदर्भ में होना चाहिए । इसी तरह साहित्यिक कृति का अध्ययन भी उसकी सरंचना, भाषा बुनावट एवं साहित्य-कृति के रूप में ही होना चाहिए न कि पूर्वगामी तथ्यों के सापेक्ष । इस प्रकार सोस्यूर ने साहित्य के अध्ययन की जो प्रविधि निर्धारित की उसे शैली वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता हैं साहित्यिक शैली विज्ञान के अन्तर्गत 'भाषा विज्ञान' किस सीमा तक शामिल हो सकता है, उसे पर कुछ प्रारम्भिक विवाद था परन्तु सोस्यूर के शिष्य चार्ल्स बेली ने भाषा विज्ञान के संदर्भ में जिस शैली विज्ञान का प्रवर्तन किया उसमें साहित्यिक कृति की साहित्यिक भाषा के विश्लेषण से रचना के अंतर्लक्षी अध्ययन की बात कही गई जिससे यह विवाद कुछ हद तक समाप्त हो गया ।'

शैली विज्ञान के विकास को समग्रत: आरेखित करने के लिए उसे निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

24.5.2.1 आंग्ल अमेरिकी शैली विज्ञान

इस धारा का प्रारंभ आई.ए. रिर्चडस की व्यवहारिक समीक्षा से माना जाता हे । रिचर्ड्स ने इस समीक्षा धारा में यधपि 'शैली' शब्द का प्रयोग नहीं किया है परन्तु उनकी दृष्टि एवं प्रणाली शैली विज्ञान की ही है । व्यावहारिक समीक्षा के अंतर्गत साहित्यिक कृतियों के सूक्ष्म वाचन एवं उनकी व्याख्या के संदर्भ में कृति की शब्दिक बनावट एवं साहित्यिक गठन के विश्लेषण पर बल दिया जाता था । भाषा के अर्थ-पक्ष एवं प्रयोगात्मक मनोषिज्ञान को प्रस्थान बिंदु बनाकर प्रवर्तित की गयी इस पद्धति में व्यवस्था और क्रम का विशेष महत्व था इसका मुख्य प्रयोजन यह स्पष्ट करना था कि कविता के वाचन तथा व्याख्या की प्रकृति क्या है, कविता की पाठक के मन पर कैसी प्रतिक्रिया होती है, कविता को समझने में कैसी बाधाएँ आती हैं अथवा कविता के वाचन से प्रथमत: किस प्रकार की अवधारणा तत्काल घटित होती है । इसके विवेचन के लिए रिचर्ड्स ने अर्थ के चार पहलुओं- सेंस, टोन, फीलिंग एवं इंटेंशन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि साहित्यिक कृति को उपलब्ध करने के लिए इन चारों का विश्लेषण आवश्यक है । उनके अनुसार इन चारों की समष्टि ही साहित्यिक अर्थ है।

अमेरिकी विद्वानों ने समीक्षा की इसी धारा को नई समीक्षा (New Criticism) के नाम से आगे बढ़ाया । इस समीक्षा धारा की मान्यता यह थी किसी भी साहित्यिक कृति की व्याख्या युग के संदर्भ में होती है तथा युग में परिवर्तन से व्याख्या में भी परिवर्तन आता है तथा यह अंतर कृति में ही उपस्थित रहता है । 'New Criticism' नामक रचना के माध्यम से रैंसम ने इसे स्थापित किया तथा ब्रक्स, वॉरनर, टेंट, ब्लैकमूर, विम्सैट जैसे विद्वानों ने इसे आगे बढ़ाया नई समीक्षा के अंतर्गत साहित्यिक कृति के विवेचन की जो दृष्टि निर्मित हुई उसे निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. कविता को कविता के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए । कृति स्वयं में ही साध्य है साधन नहीं रचनाकार की जीवनी, तत्कालीन सामाजिक परस्थितियां पाठक पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक प्रभाव, साहित्य का इतिहास आदि कृति को कृति के रूप में जानने के लिए आवश्यक नहीं हैं ।
2. प्रक्रिया की दृष्टि से कृति का सूक्ष्म वाचन ओर व्याख्या अनिवार्य है ।
3. साहित्य एक विशेष प्रकार की भाषा है जिसका स्वरूप शास्त्र-भाषा या तर्क-भाषा से भिन्न है । शोधों, अलंकारों तथा प्रतीकों द्वारा कृति की व्याख्या होती है जो सावयव अन्विति (Organic Unity) के रूप में कृति की संरचना करते हैं ।
4. साहित्यिक विधाओं में अंतर गौण हैं किसी के घटक के रूप में कथानक, पात्र आदि की अपेक्षा शब्द, प्रतीक तथा बिंब को ग्रहण करना अधिक उपयुक्त है । ये घटक एक केन्द्रीय भाव के चारों ओर ताने-बाने के समान आपस में जुड़े होते हैं जिनसे संरचना की निष्पत्ति होती है ।

आज आंग्ल-अमेरिकन शैली-विज्ञान के अंतर्गत भाषा विज्ञान का प्रयोग आरंभ हो गया है । क्रिस्टल, फाउलर, लीच, लेबिन, चैटमैन हिल याकोब्लन आदि विद्वानों ने उसे खूब आगे बढ़ाया हैं हिल ने शैली के अंतर्गत सादृश्य (Analogy) की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि सादृश्य एक पूर्ण काव्य सिद्धांत हे जो अन्य विधाओं की तुलना में कविता पर सर्वाधिक लागू होता है । उनके अनुसार सादृश्य से कविता को शैलीगत अन्विति अर्थात रचनात्मक संगठन प्राप्त होता है । यह सादृश्य योजना गठन एवं बनावट दोनों स्तर पर होती है तथा अलग होते हुए भी परस्पर सम्बद्ध रहती है ।

याकोब्सन ने शैली के अंतर्गत सममूल्यता के सिद्धांत को काव्य सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया । उनका यह सिद्धांत कविता तक सीमित हैं उनके अनुसार सममूल्यता कविता की अभिव्यक्ति का मूल तत्व है । सममूल्यता का अर्थ है सम्बधगत समानता । इसके अंतर्गत ऐसी दो स्थितियों को सममूल्य मानते हैं जिनमें सम्बन्धों में समानता मिलती है और यदि उनमें से एक को अस्वीकृत कर दिया जाये तो उसका प्रभाव दूसरी पर भी पड़ेगा और एक प्रकार के विरोध की सृष्टि होगी । याकोब्सन ने काव्य-भाषा के स्पष्टीकरण के लिए चयन और विन्यास की बात भी की है । काव्य भाषा में चयन का आधार सामान्यत: सममूल्यता, सादृश्य, पर्यायता एवं विरोध होते हैं जबकि विन्यास का आधार होता है सन्निधि । उनके अनुसार भाषा का काव्यात्मक प्रकार्य तब सम्पन्न होता है जब सममूल्यता के आधार पर किये गये चयन अभिव्यक्तियों में सन्निहित होते हैं ।

24.5.2.2 रूसी-चैक शैली विज्ञान

शैली विज्ञान का विकास रूप में रूपवाद (Formalism) ओर चेक में संरचनावाद (Structuralism) के नाम से हुआ । शैली विज्ञान की ये दोनों धाराएँ अलग-अलग होते हुए भी इस दृष्टि से सम्बद्ध हैं कि चेक शैली वैज्ञानिक चिंतन ने रूसी रूपवाद से ही प्रेरणा प्राप्त कर उसका ही विकास किया ।

रूसी रूपवादियो ने साहित्यिक कृति में साहित्यिक उपकरणों पर बल देते हुए स्पष्ट किया कि ये उपकरण प्रतिष्ठित प्रतिमान से विचलन करने पर ही अस्तितत्व में आते हें तथा इन्हें पहचाना और विश्लेषित किया जा सकता है । विक्टर शक्लोवस्की का मानना है कि यथार्थ का विरूपण उसे वैचित्र्य प्रदान करना सब कलाओं का मूल तत्त्व है । इस विचार को व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हुए वी.वी. विनोग्रादोव (V.V. Vinogradov) ने माना कि साहित्यिक रचना के रूपात्मक स्तर को निष्पन्न करने वाले उपकरण हैं विचार-तत्त्व, विषय तत्त्व तथा साहित्यिक संरचना । शैली का संबंध सबके साथ है और वही सब स्तरों को संगठित करती है । उनके अनुसार शैली विज्ञान के तीन प्रकार हैं-

1. भाषागत अथवा संरचनात्मक शैली विज्ञान, जिसमें भाषा वैज्ञानिक संकल्पनाओं का उपयोग होता है ।
2. वाकशैली विज्ञान-जिसमें विधाओं के साथ-साथ पाठ के अलग-अलग रूपों का अध्ययन होता है ।

3. साहित्यिक शैली विज्ञान-इसमें साहित्यिक कृति की संरचनागत विशेषताओं के सौन्दर्यात्मक प्रभावों का अध्ययन होता है ।

चेक संरचनावादी शैली विज्ञान के पुरस्कर्ता मुकारोवस्की को माना जाता है । उन्होंने शैली विज्ञान को दो रूपों में प्रस्तुत किया - 1. संरचनावादी एवं 2. प्रतीकवादी (Semiotics) । संरचनावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत स्पष्ट किया गया कि साहित्यिक कृति के घटक आपसी संबंधों के आधार पर ही अर्थवान होते हैं ओर यह घटकों के आपसी तनाव या सामंजस्य दोनों से ही संभव हो सकताहै । इसके अतिरिक्त संरचनावादी दृष्टिकोण में भाषा की बहुप्रकार्यता (Polyfunctionality of language) पर भी विचार किया गया है जो रूपवादी शैली विज्ञान में नहीं था । इस सिद्धांत के अनुसार साहित्यिक कृति में सौंदर्यात्मक प्रकार्य की प्रमुखता होती है जिससे रचना में स्वकेन्द्रियता आती है । यह प्रकार्य बहिर्मुखी न होकर अंतर्मुखी होता है साहित्य-भाषा पर केन्द्रित होता है ।

प्रतीकवादी शैली विज्ञान के अंतर्गत साहित्यिक कृति को एक प्रतीक मानते हुए साहित्य विवेचन के अंतर्लक्षी एवं बहिर्लक्षी दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है । इसके अतिरिक्त साहित्यिक कृति से रचनाकार एवं पाठक के संबंधों की व्याख्या करते हुए उसके आस्वादन की प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया जाता है । शैली विज्ञान की चेक विचारधारा 'प्राग स्कूल' के नाम से विख्यात है । शैली के विषय में इसकी कुछ प्रमुख अवधारणायें इस प्रकार हैं-

1. 'प्राग स्कूल' ने प्रयोजनमूलक शैलियों (Functional Styles) की संकल्पना की जिसके अंतर्गत शैलियों की विविधता एवं उसके प्रतिमानों के लचीलेपन की बात कही गयी ।
2. 'प्राग स्कूल' की यह मान्यता थी कि शैली भाषा का सामान्य गुण है । भाषा में शैली अनिवार्य रूप से रहती है तथा शैलीहीन भाषा की कल्पना असंगत है ।
3. यह शैली के दो रूपों की बात करता है- सम्प्रेषणात्मक एवं काव्यात्मक । सम्प्रेषणात्मक शैली सूचनात्मक एवं वस्तुगत होती है जिसका प्रयोग प्रशासनिक कार्य, कानून, विज्ञान आदि क्षेत्रों में होता है जबकि काव्यात्मक शैली व्यक्तिगत होती है एवं इसमें व्यक्ति के निजत्व की अभिव्यक्ति मिलती है ।
4. 'प्राग स्कूल' की एक महत्वपूर्ण मान्यता है अभिव्यक्तियों की समानता (Automatization) एवं विशिष्टता (foreg Uounding) । भाषा में प्रसंग-भेद से दोनों तरह की अभिव्यक्तियां मिलती हैं साहित्यिक कृति में विशिष्ट अभिव्यक्तियों की प्रधानता होती है जो रचना के आंतरिक तनाव, वैषम्य, असंगति एवं अनेकार्थ से संबंधित होती है ।
5. 'प्राग स्कूल' ने शैली-विश्लेषण की चार योजनाओं का प्रवर्तन किया- क सौन्दर्यात्मक ख. वैज्ञानिक ग. बोलचाल की एवं घ. जन-सम्पर्कीय ।
6. शैली अध्ययन के क्षेत्र में सांख्यिकी के प्रयोग की शुरुआत प्राग स्कूल से हुई तथा साथ ही अनुवाद एवं तुलनात्मक शैली विद्वान के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य हुए ।

24.5.2.3 फ्रांसीसी शैली विज्ञान

फ्रांसीसी शैली विज्ञान के प्रवर्तक चार्ल्स बेली माने जाते हैं । इनका मानना है कि भाषा मानव जीवन का साधन है जो मानवीय भावों से संश्लिष्ट है और मानव जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम है । उनके अनुसार भाषा के भावात्मक पक्ष का अध्ययन शैली विज्ञान है । उसके लिए उन्होंने वाणी को महत्त्व प्रदान किया और स्पष्ट किया कि यह प्रसन्नता-अप्रसन्नता, स्वीकृति-अस्वीकृति आदि युक्त होती है और शैली विज्ञान में इसी का तार्किक अध्ययन होता है । वे साहित्यिक भाषा की अपेक्षा व्यक्ति की नैसर्गिक भाषा के अध्ययन को ही शैली विज्ञान की सामग्री मानते थे ।

बेली के पश्चात फ्रांसीसी शैली विज्ञान का वैविध्यपूर्व विकास हुआ । चार्ल्स ब्रूनो (Charles Bruneau) ने बेली के विपरीत साहित्यिक कृतियों को महत्त्व दिया परन्तु ज्यां मारूजे (Jean Marouzeau) ने पुन: साहित्यिक सौन्दर्य के स्थान पर उसके पाठ को महत्त्व प्रदान किया । ले. हीर (Yves le Hir) ने पाठ के स्थान पर कृति में 'चेतना' की खोज को अधिक महत्त्व प्रदान किया और यह माना कि शैली विज्ञान पाठक तथा लेखक के बीच मध्यस्थता का कार्य करता है । जेराल्ड आन्त्वा (Gerald Antoine) भाषा तथा वाणी दोनों को ही शैली-विज्ञान का विषय मानते हैं । उन्होंने शैली के अध्ययन की यांत्रिक प्रविधियों का विकास किया जिसके अंतर्गत उपकरणों की सूची बनाना, उनका वर्गीकरण, विषयवस्तु एवं लेखक के मनोविज्ञान के व्यंजक शब्दों की गणना आदि आते थे ।

फ्रांसीसी शैली विज्ञान में माइकेल रिफातेअर (Michael Riffaterre) ने महत्त्वपूर्ण योगदान करते हुए शैली विज्ञान को भाषा विज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा माना है । इनके अनुसार पाठ में उपलब्ध सौन्दर्यात्मकता ही शैली है जो पाठ को विशिष्ट बना देती है । इस विशेष साहित्यिक प्रभाव का अध्ययन ही शैली-विज्ञान है जो पाठ के भीतर ही विद्यमान हैं रोलां बार्थेस (Roland Gerrard Barthes) मानते हैं और इस बात पर बल देते हैं कि विश्लेषण पाठ के साथ होना चाहिए न कि पाठ को एक संरचनाबद्ध इकाई मानकर उसका विश्लेषण करना चाहिए ।

तोदोरोव (Tzvetan Todorav) वाक्य की सीमा से आगे जाकर पूरे पाठ के अध्ययन के पक्ष में हैं । वे सम्पूर्ण रचना को एक लंबा, अतिदीर्घ वाक्य मानते हैं । साहित्यिक कृति की स्वनिष्ठता की चर्चा करते हुए वे पाठ में दो तरह की भाषाओं को महत्त्व देते हैं- 1. सहज या पारदर्शी भाषा तथा 2. अलंकृत या अर्ध-पारदर्शी भाषा । शैली वैज्ञानिक अध्ययन में सम्पूर्ण कृति का अध्ययन आवश्यक है । उन्हें गद्य विश्लेषण का विशेषज्ञ माना जाता है। इस प्रकार फ्रांसीसी शैली विज्ञान निरंतर विकासशील रहा है तथा प्रतीक विज्ञान (Semotics) पाठगत प्रतीक विज्ञान (Textual Semiotics) साहित्यिक प्रतीक विज्ञान (Literary Semiotics) तथा नव-संरचनावाद (Neo-Structuralism) के रूप में शैली विज्ञान का नया विकास वहाँ हो रहा है।

24.5.2.4 जर्मन शैली विज्ञान

जर्मन शैली विज्ञान का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी में वाकरनागल (Wackernagal) तथा स्तांथाल (Steainthal) जैसे विद्वानों के प्रयास से होता है । इन विद्वानों ने भाषाओं की शैली को अध्ययन का आधार बनाया । इस समय शैली -अध्ययन की दो प्रवृतियाँ थीं-

क. **राष्ट्रीय शैली का सिद्धांत** - जिसके अंतर्गत यह माना जाता था कि भाषा एक भाषिक समुदाय की मानसिक तथा आत्मिक अभिव्यक्ति है जिसके अध्ययन से किसी राष्ट्र की मानसिक, सामाजिक प्रकृति का ज्ञान होता है ।

ख. **व्यावहारिक शैली का सिद्धांत** - इसके अंतर्गत कृति की व्याकरणिक एवं तार्किक समीक्षा करके उसमें निहित साहित्यिक प्रभावों का उद्घाटन किया जाता था ।

जर्मन शैली विज्ञान का आगामी विकास पाठ-केन्द्रित अध्ययन के आधार पर तीन प्रमुख धाराओं में दिखलाई देता है-

(i) **मनोवैज्ञानिक दृष्टि-** इस दृष्टि के समर्थक विद्वान यह मानते थे कि रूपक आदि शैलीगत युक्तियाँ लेखक के व्यक्तित्व की व्याख्या का महत्वपूर्ण साधन हैं । एक साहित्यिक कृति में लेखक के चेतन एवं अचेतन तत्त्वों का समायोजन होता हैं रचना में प्रयुक्त शब्द, बिम्ब आदि लेखक के अचेतन की अभिव्यक्ति होते हैं जिनके अध्ययन से रचना के मूल तत्त्व को समझा जा सकता है इसके अतिरिक्त लेखक की जगत के प्रति अवधारणा भी उसकी रचना में प्रकट होती है और इन्हीं दोनों से रचनाकार की शैली का निर्माण होता है ।

(ii) **सौन्दर्यात्मक दृष्टि-** कार्ल वास्लर (Kare Vossler) लियो स्पित्जर जैसे विद्वान भाषा को शैली विज्ञान के अंतर्गत मानते हुए शैली-विज्ञान को सौन्दर्यशास्त्र का अंग मानते हैं । स्पित्जर भाषा तथा साहित्य के अध्ययनों की मौलिक एकता में विश्वास रखते हैं तथा यह मानते हैं कि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन से ही साहित्यिक कृतियों को अच्छी तरह से समझा जा सकता है । उनके अनुसार शैली विज्ञान स्वतंत्र न होकर साहित्यिक कृति की समीक्षा का सहायक माध्यम होता है ।

शैली विज्ञान की इस धारा में कुर्टियस (Ernst Robert, Curtius) हेल्मुट हैट्जफेल्ड (Helmut Hatzfeld) तथा उलिक लियो (Ulrich Leo) का नाम भी महत्त्वपूर्ण है । कुर्टियस ने जहाँ साहित्यिक कृति में लेखक की 'आत्मिक अभिवृत्ति' (Spiritual Attitude) की बात कही वहीं हैट्जफेल्ड ने पाठ-विश्लेषण में संरचनावादी पद्धति का समावेश किया । लियो ने शैली वैज्ञानिक व्याख्या को आत्मनिष्ठ मानते हुए व्याख्याकार के वैयक्तिक, सामाजिक कारणों को महत्त्वपूर्ण माना और स्पष्ट किया कि इनके कारण एक ही पाठ की कई व्याख्याएँ संभव हैं ।

(iii) **बहुसूत्रीय दृष्टि-** बहुसूत्रीय दृष्टि शैली विज्ञान की मूल अवधारणा है कि साहित्यिक रचना का अध्ययन अनेक सूत्रीय (Pluralistic) आधार पर होना चाहिए । इसके अनुसार पाठ का संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इसके

साथ पाठ का ऐतिहासिक पक्ष भी लेना चाहिए और विचारों के इतिहास का अध्ययन भी होना चाहिए । इस धारा के प्रमुख लेखक आरबाख (Auerbach) माने जाते हैं ।

24.5.2.5 स्पेनी शैली विज्ञान

आधुनिक स्पेनी विज्ञान के जनक आमादों आलोसो (Amado alonso) तथा दामासो आलोसो (Damaso Alonso) को माना जाता है जो महान स्पेनी विद्वान पिदाल (R.M. Pidal) की परंपरा में आते हैं । आमादो ने भाषा के शैली वैज्ञानिक अध्ययन एवं वाणी (Speech) के शैली वैज्ञानिक अध्ययन में अंतर बताते हुए व्योकरण को भी इसके अंदर शामिल किया । उन्होंने भाषा-विश्लेषण के शब्दगत एवं वाक्यगत तत्त्वों को लेते हुए स्पष्ट किया कि प्रत्येक रचना में वस्तुगत सामंजस्य के साथ-साथ अभिव्यंजनागत समायोजन (Expressive Harmonies) भी होते हैं । इसलिए केवल शब्दों के चयन का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है । बल्कि उसके प्रयोग का स्थान एवं उसके आसपास प्रयुक्त होने वाले अन्य शब्दों का अध्ययन भी आवश्यक है ।

दामासो ने कविता को लेकर विशेष कार्य किया । शैली विज्ञान विषयक उनकी तीन स्थापनाएँ महत्त्वपूर्ण है :

(i) भाषा में भाव-साहचर्य, भाव-विरोध एवं विभिन्न विचारों का सामंजस्य होता है ।

(ii) शैली के अध्ययन के लिए रचना के बाहय रूप संकेतक (Signifier) और संकेतित के बीच होता है जबकि आंतरिक रूप संकेतक एवं संकेतित की चेतना को स्पष्ट करता है।

(iii) साहित्यिक कृति का अध्ययन सामान्य पाठक, समीक्षक एवं वैज्ञानिक - तीन दृष्टियाँ से होना चाहिए । इन तीनों में क्रमश: अध्ययन की सूक्ष्मता आती जाती है ।

24.6 विचार संदर्भ / शब्दावली

1.	बहु सूत्रीय दृष्टि	इस दृष्टि के अनुसार किसी साहित्यिक पाठ का अध्ययन अनेक दृष्टियों से होना चाहिए अर्थात् संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन ही पर्याप्त नहीं इसमें ऐतिहासिक पक्ष भी शामिल होना चाहिए ।
2.	स्टालुस	लैटिन भाषा का शब्द अर्थ है लोहे की कलम कभी मोम से बनी टिकियों पर लोहे की कलम से लिखावट का काम किया जाता था । कालान्तर में यह भाषिक अभिव्यक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा जिससे अंग्रेजी का स्टाइल और..... हिन्दी शब्द शैली बनाया गया ।
3.	पुनरूक्ति	फिर से कहना, दुहराना, एक अलंकार ।
4.	वक्रोक्ति	विशिष्ट कथन, भंगिमा, कहने का खास तरीका ।
5.	प्रविधि	तरीका
6.	विकल्पात्मक	बदले में ग्रहण किया गया, कोई दूसरा तरीका ।
7.	अभिसूचन	विशेष रूप में सूचना देने की प्रक्रिया
8.	सममूल्यता	समस्तता को कविता की अभिव्यक्ति का मूल तत्त्व मानते हुए

	सिद्धांत	संबंधगत समानता का अध्ययन ।
9.	गुणात्मक	गणों पर आधारित ।
10.	निजत्व	अपनापन, खास अपना तरीका ।
11.	जनसंपर्कीय	लोगों से जुड़ाव रखने वाली प्रविधि
12.	समतुल्य	बराबर तुलना करने लायक ।
13.	यांत्रिक प्रविधियाँ	यंत्रों की मदद से किया गया अध्ययन शैली अंतर्गत उपकरणों की सूची बनाना उनका वर्गीकरण, विषयवस्तु एवं लेखक के मनोविज्ञान के व्यंजक शब्दों की गणना आदि आते है।
14.	प्रतिलिपि	लिखी हुई चीज की नकल
15.	स्वकेन्द्रियता	साहित्य की भाषा पर केन्द्रित अन्तर्मुखी अध्ययन जिसमें रचनाकार का निजी वैशिष्ट्य लक्ष्य किया जा सके ।

24.7 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि शैली विज्ञान का विकास विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग दृष्टियों एवं प्रविधियों के सापेक्ष हुआ। भारतीय संस्कृत काव्यशास्त्रीय शैली विज्ञान में जहाँ इसका विकास रीति के माध्यम से अभिव्यंजनावादी एवं अनुभूतिवादी रूपों में हुआ वहीं पाश्चात्य जगत में यह प्लेटो एवं अरस्तु के चिंतन से आरंभ हुआ । शैली के अध्ययन की आधुनिक परंपरा में आंग्ल-अमेरिकी, रूसी-चेक तथा फ्रांसीसी परंपरा में साहित्यिक कृति की आंतरिक सत्ता का विश्लेषण तथा उद्घाटन ही शैली विज्ञान का चरम लक्ष्य माना गया जबकि इसके विपरीत जर्मन तथा स्पेनी परंपरा में शैली का विकास रचनाकार एवं रचनात्मक मानसिकता के अध्ययन के क्रम में अधिक हुआ।

24.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. शैली के अर्थ से संबंधित भारतीय एवं पाश्चात्य विचारों का परिचय दीजिए ।
2. शैली की विविध परिभाषाओं का विश्लेषण कीजिए ।
3. शैली विज्ञान के उद्भव एवं विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
4. आंग्ल-अमेरिकी शैली विज्ञान की विवेचना कीजिए ।
5. जर्मन शैली-विज्ञान के विविध पक्षों पर विचार कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. शैली विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र क्या है?
2. शैली शब्द अंग्रेजी के किस शब्द के अनुवाद पर आधृत है? इस शब्द का अर्थ बताइए ।
3. फ्रांसीसी शैली विज्ञान के मूल बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए ।
4. शैली विज्ञान विषयक दामासो की स्थापनाएँ बताइये ।
5. शैली विज्ञान संबंधी विक्टर शक्लोवस्की के विचार लिखिए ।

ग. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. शैली शब्द के मूल में........................... शब्द है ।
2. स्विफ्ट ने शैली शब्द को रचना के पाठ या.. से जोड़ दिया ।
3. सोस्यूर ने भाषा वैज्ञानिक... का प्रवर्तन किया ।
4. शैली विज्ञान का विकास रूस में.. के रूप में हुआ ।
5. शैली विज्ञान की चेक विचारधारा.. कहलाती है ।

घ. सही / गलत पर निशान लगाइए

1. फ्रांसीसी शैली विज्ञान के प्रवर्तक चार्ल्स बेली माने जाते हैं ।

   सही/गलत
2. संस्कृत समालोचना में शैली का समतुल्य कोई शब्द नहीं है ।

   सही/गलत
3. रिचर्ड ने अर्थ के चार पहलुओं की चर्चा की है ।

   सही/गलत
4. माइकेल रिफातेअर ने शैली विज्ञान को भाषा विज्ञान की स्वतंत्र शाखा माना ।

   सही/गलत
5. साहित्यिक अध्ययन के लिए शैली केवल भाषिकीय घटक है ।

   सही/गलत

24.9 संदर्भ ग्रंथ

इकाई 25 के संदर्भ ग्रंथ देखें ।

इकाई-25 शैली विज्ञान : प्रतिमान एवं प्रक्रिया क्षेत्र और अन्य अनुशासनों से संबंध

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 शैली विश्लेषण के प्रकार

25.3 शैली विश्लेषण के विविध स्तर

25.4 शैली विश्लेषण-प्रतिमान निरूपण

25.4.1 अग्रप्रस्तुति

25.4.1.1 विचलन

25.4.1.2 विपथन

25.4.1.3 समानांतरता

25.4.1.4 विरलता

25.4.2 शैली चिन्हक

25.4.3 शैली चिन्हक के प्रकार

25.4.3.1 धनात्मक शैली चिन्हक

25.4.3.2 ऋणात्मक शैली चिन्हक

25.5 शैली विश्लेषण की प्रक्रिया

25.5.1 विश्लेषण

25.5.2 संश्लेषण

25.5.3 निर्वचन

25.6 शैली विज्ञान क्षेत्र एवं अन्य अनुशासन

25.6.1 भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान

25.6.2 समाज विज्ञान और शैली विज्ञान

25.6.3 कोश विज्ञान और शैली विज्ञान

25.6.4 अनुवाद और शैली विज्ञान

25.7 विचार संदर्भ/शब्दावली

25.8 सारांश

25.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

25.10 संदर्भ ग्रन्थ

25.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि

- शैली विश्लेषण क्या हैं ।
- शैली विश्लेषण के कितने प्रकार है ।
- शैली विश्लेषण के कौन से विविध स्तर हैं ।
- शैली विश्लेषण के प्रतिमान निरूपण के रूप में अग्रप्रस्तुति की क्या भूमिका है ।
- अग्रप्रस्तुति के विश्लेषण के लिए प्रयुक्त चार पक्षों विचलन, विपथन, समानान्तरता और विरलता का क्या आशय है ।
- शैली चिन्हक से क्या तात्पर्य है ।
- शैली विश्लेषण की प्रक्रिया के अन्तर्गत विश्लेषण, संश्लेषण और निर्वचन की क्या भूमिका है ।

इस इकाई में आप शैली विज्ञान के क्षेत्र और अन्य अनुशासनों से शैली विज्ञान का संबंध पढ़ेंगे और

- बता सकेंगे कि शैली विज्ञान का अन्य अनुशासनों से क्या संबंध है,
- भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान का अन्य अनुशासनों से क्या संबंध है,
- शैली विज्ञान और मनोवविज्ञान से किस प्रकार संबंधित है,
- कोशविज्ञान में शैली विज्ञान की क्या उपयोगिता है,
- अनुवाद में शैली विज्ञान किस प्रकार सहायक सिद्ध होता है

25.1 प्रस्तावना

शैली विश्लेषण किसी रचना के अध्ययन की वह वैज्ञानिक प्रविधि है जिसके द्वारा रचना की भाषा के चरित्र एवं उसकी विभिन्न परिस्थितियों के अध्ययन से रचना में निहित मूल एवं वास्तविक कथ्य के प्रयोग की विशिष्टता का उद्‌घाटन किया जाता है । इसके लिए शैली वैज्ञानिकों ने रचना के भिन्न-भिन्न पक्षों की पहचान की हे जिनसे शैली-विश्लेषण की प्रक्रिया पूरी की जाती है । इस अध्याय के अन्तर्गत शैली विश्लेषण के इन्हीं उपकरण का अध्ययन अपेक्षित है । शैली विश्लेषण की सामान्यत: दो दृष्टियाँ प्रचलित हैं । वे इस प्रकार हैं-

1. **शैली मापक्रमी दृष्टि** : इसके अन्तर्गत विश्लेषण-कर्ता का उद्देश्य उन सभी प्रकार के अभिलक्षणों को खोजना व रेखांकित करना होता है जिनसे रचना विशेष की भाषिक पहचान स्पष्ट होती है । इसके अन्तर्गत अभिव्यक्ति मात्र का विश्लेषण करने वाली प्रवृत्ति का प्रयोग किसी रचना ओर रचनाकार के सम्पूर्ण अभिज्ञान के लिये किया जाता हैं लिविन, चैटमैन आदि शैलीविदों ने इस विधि की प्रस्तावना की थी ।
2. **शैली वैज्ञानिक दृष्टि :** इसमें कृति की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उसके कथ्य-सौंदर्य एवं अन्तर्वस्तु को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है । इसके लिए पाठ के माध्यम से साहित्यिक कृति के सम्पूर्ण प्रभाव की व्याख्या की जाती है । हिन्दी में प्रचलित शैली-वैज्ञानिक अध्ययन में इसी विश्लेषण पद्धति का प्रयोग होता है ।

   शैली विज्ञान भाषा-विज्ञान का वह अनुप्रयुक्त रूप है जिसके माध्यम से किसी रचना की आलोचना उसके आन्तरिक पक्षों के आधार पर की जाती है । शैली विज्ञान भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन का वह व्यावहारिक रूप है जो भाषा के व्याकरणिक एवं संरचनागत

अध्ययन के बजाय उसकी आंतरिक संघटना एवं संयोजन का अध्ययन करता है जिसके द्वारा कोई संदेश या अभिव्यक्ति अपनी विशिष्ट पहचान बनाती है । ये संदेश पारंपरिक भाषिक व्यवस्था से चयन, विचलन, विपथन आदि के माध्यम से अपने को अलग करते हैं और विशेष प्रभाव तथा उद्देश्य के लिये निर्मित होते हैं शैली वैज्ञानिक अध्ययन के प्रचलन से पूर्व किसी रचना का अध्ययन या तो उसकी चेतना के स्तर पर होता था अथवा भाषा के स्तर पर । भाषाई अध्ययन के अन्तर्गत व्याकरणिक कोटियों का अध्ययन प्रमुख था, परन्तु जबसे शैली वैज्ञानिक अध्ययन की परंपरा शुरू हुई है, रचना के अध्ययन का एक नया माध्यम प्राप्त हुआ है ।

आज शैली विज्ञान का अध्ययन केवल साहित्यिक क्षेत्र में ही नहीं होता और उससे केवल कविता या अन्य साहित्यिक विधाओं को समझने की दृष्टि ही नहीं प्राप्त होती, बल्कि अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में इस विधि का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है । भाषा विज्ञान समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, कोशविज्ञान, अनुवादविज्ञान, मानवविज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में शैली वैज्ञानिक अध्ययन की महत्ता को स्वीकार किया गया है । वस्तुत: इसके माध्यम से भाषा की प्रयुक्ति का वैशिष्ट्य आरेखित करना अध्ययनकर्ता का उद्देश्य होता है और इससे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उसे अपने अध्ययन में विशेष दृष्टि प्राप्त होती है । कुछ प्रमुख विषयों के साथ शैली विज्ञान का अन्तर्सम्बन्ध निम्नलिखित है-

25.2 शैली विश्लेषण के प्रकार

शैली विश्लेषण के प्रकारों का उल्लेख करते हुए शैली चिन्तक एंक्विस्ट ने इसे तीन दृष्टियों से विभाजित किया है-

1. तुलनात्मक शैली विश्लेषण : इसके अन्तर्गत कृति की शैली को मानक से अतिक्रमण के रूप में देखा जाता है और पाठ विशेष में प्रयुक्त शैली के रूपों की तुलना उसके मानक रूपों से सम्पन्न करके रचना के वैशिष्ट्य को प्रकट किया जाता है ।
2. वर्णनात्मक शैली विश्लेषण : जहाँ अभिव्यक्ति विशेष में शैली के कुछ विशिष्ट गुणों का आरेखन किया जाए वहाँ वर्णात्मक शैली विश्लेषण होता है । इसके अन्तर्गत शैली को पुष्ट करने वाली विशेषताओं को अलग किया जाता है, उन्हें उद्घाटित किया जाता है और उनका वर्णन भी होता है । मुख्यत: यह वैशिष्ट्य आन्तरिक और रेखांकित होता है । इसी को प्रकट करना वर्णात्मक शैली विश्लेषण है ।
3. परिवेशगत शैली विश्लेषण : जहाँ शैली लाक्षणिक मानते हुए रचनाविशेष की भाषा एवं उसमें प्रयुक्त होने वाले परिवेश - दोनों के बीच में अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है उसे परिवेशगत शैली विश्लेषण कहते हैं ।

25.3 शैली विश्लेषण के विविध स्तर

किसी कृति के शैली विश्लेषण के लिए जहाँ विभिन्न भाषायी प्रतिमानों की आवश्यकता पड़ती है, वहीं भाषिक स्तर के स्वरूप को भी जानना आवश्यक होता है क्योंकि भाषिक स्तर के प्रतिमानों के माध्यम से ही किसी रचना के अन्तःस्वरूप को जानने का प्रयत्न होता है । भाषिक

स्तर के निर्धारण के विषय में शैली विश्लेषकों में कुछ मतदभेद दिखाई देता है । प्रसिद्ध शैली शास्त्री डेविड क्रिस्टल और डेविड डेवी ने उसके चार स्तर बताए हैं- 1 ध्वनि 2. व्याकरण 3. शब्द 4. अर्थ ।

ध्वनिस्तर के अन्तर्गत मूलत: मानवीय वाचिक स्वनों की उपयोगिता और विशेषता का अध्ययन होता है । व्याकरण स्तर के अन्तर्गत किसी भाषा की आंतरिक संरचना का विश्लेषण करके यह पता लगाया जाता है कि ये किस रूप में और अनुक्रम में कार्य करते हैं । इसमें रूपशास्त्र और वाक्य रचनाशास्त्र को भी शामिल किया जाता है जो मुहावरों आदि में प्रयुक्त होकर विशेष भाषा वैज्ञानिक संदर्भों की रचना करते हैं । ऐसे शब्दों का अध्ययन शैली विश्लेषण में आवश्यक माना जाता है । इसके अन्तर्गत विशेष शाब्दिक प्रयोग और पाठ में उसके कथ्य और विषय को देखते हुए अर्थ का अध्ययन आवश्यक होता है । पारंपरिक रूप से इसे पदसज्जा अथवा diction भी कहा जाता है ।

अर्थ स्तर के अन्तर्गत भाषा के दीर्घतर फैलाव का अध्ययन किया जाता है । वस्तुत: अर्थ का स्तर वह स्तर है जहाँ केवल शब्द के आधार पर अर्थ का अध्ययन नहीं होता बल्कि अन्य भाषिक इकाईयों के आधार पर उसका अध्ययन होता है । इसके अन्तर्गत कथ्य के विकास के सांचे, उसकी अवधारणाओं, लाक्षणिक प्रयोगों, विद्ग्धता आदि का भी अध्ययन किया जाता है ।

जी.एन. लीच ने शैली विश्लेषण के स्तरों की व्याख्या करते हुए उसे तीन भागों में विभाजित किया है पहला भाषान्वयन अथवा क्रियान्वयन स्तर, अभिव्यंजना कृति (Ferm) का स्तर और अर्थ का स्तर । वे भाषान्वयन के अन्तर्गत स्वनशास्त्र और लेखिम शास्त्र को रखते हैं । इसी के अन्तर्गत रूप-रचना और वाक्य-रचना का भी अध्ययन होता है । अर्थ के स्तर पर उसके दो रूपों अभिधात्मक या अभिधार्थक (probablistic) और प्रतीयमान (Cognitive) अर्थयपों को लिया जाता है ।

25.4 शैली विश्लेषण-प्रतिमान निरूपण

किसी रचना के शैली वैज्ञानिक अध्ययन के लिये प्रतिमान निरूपण की आवश्यकता होती है । प्रतिमान शैली विश्लेषण को वस्तुनिष्ठता प्रदान कर अध्ययन के निष्कर्षों में निश्चितता और वैज्ञानिकता का समावेश करता हैं प्रतिमान वह प्रवृत्तिगत ढाँचा है जिसके आधार पर किसी कृति अथवा पाठ का वस्तुनिष्ठ, क्रमिक और व्यवस्थित विश्लेषण संभव हो पाता है । किसी भी प्रतिमान को निर्धारित करते समय चार प्रमुख बिन्दुओं का ध्यान रखना आवश्यक होता है:

1. प्रतिमान को भाषाई वैविध्य के रेखांकन में समर्थ होना चाहिए ।
2. प्रतिमान में संसक्ति तथा समंजसता का गुण होना चाहिये जिससे पाठ और मानक पाठों के विविध पक्षों को स्पष्ट किया जा सके ।
3. प्रतिमान की तीसरी आवश्यकता उसकी उपयुक्तता (adequacy) होती है । जिससे पाठ से सम्बन्धित सभी शैली चिन्हको को उद्याटित करने शक्ति उसमें आ सके ।

4. प्रतिमान का अन्तिम आवश्यक गुण यह होता है कि उसमें व्यापकता होनी चाहिए जिससे विश्लेषक को सुस्पष्ट (Categorical) शब्दों में उसके संभाव्य (probabilistic) नियमों के साथ वर्णित किया जा सके ।

किसी रचना या पाठ के शैली वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए प्रतिमानों के निर्धारण को लेकर शैलीविदों में पर्याप्त मतभेद रहे हैं । फिर भी विद्वानों ने इसे मुख्यत: दो रूपों में प्रस्तुत किया है-

1. अग्रप्रस्तुति प्रतिमान (Foreg Uounding)
2. शैलीचिन्हक प्रतिमान (Style marker)

25.4.1 अग्रप्रस्तुति

अग्रप्रस्तुति के लिये हिन्दी में पेशबन्दी और अग्रगामिता जैसे शब्द भी प्रयुक्त होते हैं । शैली वैज्ञानिक विश्लेषण में अग्रप्रस्तुति का आशय भाषा में उपस्थित होने वाले उन अप्रत्याशित अथवा विशेष प्रयोगों से हैं जो सामान्य से अलग प्रतीत होते हुए पाठक का ध्यान विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं । हैवनेक ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा था कि अग्रप्रस्तुति से हमारा आशय भाषा के ऐसे कौशलों से है जो हमारा ध्यान आकर्षित करे और असामान्य रूप से प्रत्यक्षीकृत हो उठे । वस्तुत: जब कोई भी भाषाई वैशिष्ट्य पाठक के ध्यान को आकर्षित करते हुए उसे उसके विशेष प्रयोग की सार्थकता पर विचार करने के लिए विवश कर दे और वह यह जानने क लिए उत्सुक हो जाये कि यह भाषिक प्रयोग क्यों हुआ है तो वह उस विशेष प्रयोग में निहित विशेष अर्थ को ग्रहण करने के लिए अपनी कल्पनाशीलता के माध्यम से विशिष्ट अर्थमूल्यों को ग्रहण करता है । इसे ही शैलीविदो ने अग्रप्रस्तुति के रूप में व्याख्यायित किया है ।

किसी भी कृति का भाषाई वैशिष्ट्य चार रूपों में अग्रप्रस्तुत हो सकता है ।

1. व्याकरणिक मानकों का उद्देश्यपूर्ण उल्लंघन
2. पाठ के मानकों का साभिप्राय उल्लंघन
3. कृति पर अतिरिक्त, अनपेक्षित नियमों का आरोपण
4. उल्लंघन, आरोपण से अलग अन्य प्रयुक्तियाँ

इन्हीं आधारों पर विद्वानों ने कृति की अग्रप्रस्तुति के विश्लेषण के लिये चार पक्षों का निर्धारण किया है । वे हैं

1. विचलन (Deviation)
2. विपथन (Deflection)
3. समानांतरता (Parallelism)
4. विरलता (Rarity)

25.4.1.1 विचलन

भाषा के मानक प्रयोग से किया जाने वाला अतिक्रमण या उल्लंघन विचलन कहलाता है । स्पित्जर मुकार्वोस्की, गेरे चॉमस्की, लिविन आदि प्रसिद्ध शैलीविदों ने विचलन को शैली

वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अत्यन्त आवश्यक माना है । वस्तुत: विचलन शैली के अध्ययन के लिए वह महत्त्वपूर्ण संकल्पना है जिसका व्यवहार रचना के भाषिक वैशिष्ट्य जैसे उसके अव्यवहारणिक प्रयोग आदि को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है । विचलन की वह पहचान वस्तुत: प्रयुक्ति के मानक के आधार पर प्रकट की जाती है, यधपि इस विचार के बारे में पर्याप्त मतभेद हैं ।

विचलन का प्रांरभिक संबंध किसी रचना के व्याकरणिक वैशिष्ट्य के अध्ययन से माना जाता है । किसी रचना के विभिन्न व्याकरणिक स्तरों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मानक भाषा प्रयोगों से वह किसी प्रकार भिन्न है । विचलन की यह पहचान व्याकरण के विशेष प्रयोग की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है कि किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह रचना में गृहीत हुई है । विचलन को आरेखित करने के लिए सामान्यत: दो तरीकों को प्रयोग होता है । पहली पद्धति में सामान्य अविचलित या मानक व्याकरण के आधार पर यह रेखांकित किया जाता है कि किन नियमों में परिवर्तन के कारण विचलित पाठ उत्पन्न हुआ है ।

दूसरी पद्धति में विचलित पाठ में प्रयुक्त व्याकरण का विवेचन-विश्लेषण किया जाता है । जिसमें उसकी तुलना मानक या अविचलित पाठ के व्याकरण से की जा सके ।

विचलन के प्रकार : विचलन के प्रकारों को लेकर शैलीविदो में पर्याप्त मतभेद हैं और उन्होंने अपने ढंग से इसका निर्देश किया है । एस.आर. लिविन ने विचलन को ब्राहमता और आन्तरिकता के आधार पर दो भागों में विभाजित किया है । लिविन के अनुसार आन्तरिक विचलन वह विकल्प है जो किसी रचना की अपनी पृष्ठभूमि के विरोध में भरता है । यहाँ मानक को विश्लेषण रचना में ही प्राप्त किया जाता है अर्थात् रचनाकार द्वारा उसी कृति में प्रयुक्त मानक भाषिक रूप से इतर विचलन युक्त प्रयोग किया जाता है और उस विचलन का विश्लेषण उसी रचना के मानक के सापेक्ष किया जाता है तो वह आन्तरिक विचलन होता है ।

बाह्य विचलन रचना से इतर मानक की पृष्ठभूमि में उपस्थित होता है । यहाँ मानक रचना में न होकर उससे बाहर होता है । सामान्यत: यह मानक व्याकरणिक या बोलचाल के स्वीकृत प्रयोगों के सापेक्ष निर्मित होता है और जो रचना में इस मानक से अलग रूप प्रयुक्त होता है तब उसे बाह्य विचलन कहते हैं । बाह्य विचलन को भी लिविन ने दो प्रकार का बताया है । पहला सुस्पष्ट विचलन और दूसरा सांख्यिकीय विचलन । सुस्पष्ट विचलन मूलत: रचना की आधार भाषा के व्याकरण अथवा स्वीकृत भाषिक प्रयोग के मानक से अतिक्रमण करने को कहते हैं । दूसरे शब्दों में इसे व्याकरणिकता कहा जा सकता है । सांख्यिकीय विचलन किसी भाषा के विविध प्रयोगों के अनुपात के अध्ययन से निर्धारित होता है । यहाँ सामान्य भाषा में होने वाले भाषायी प्रयोगों और कृति में प्रयुक्त भाषायी रूपों के प्रयोग की तुलना करते हुए उसकी आनुपातिकता निकाली जाती है । इस आनुपातिकता के आधार पर भाषाओं के वैशिष्ट्य को प्रकट किया जाता है । चूँकि यह पूरा अध्ययन सांख्यिकीय पद्धति पर आधारित होता है इसलिये इसे सांख्यिकीय विचलन कहते हैं । लिविन द्वारा किये गये विचलन के इन प्रकारों को प्रसिद्ध शैली वैज्ञानिक वान पियर भी कमोबेश स्वीकार करते हैं । जबकि ज्योफ्री एच.लीच ने इसे अन्य प्रकार से तीन रूपों में विभाजित किया है- प्राथमिक विचलन, द्वितीयक विचलन और तृतीयक विचलन ।

प्राथमिक विचलन : लीच के, अनुसार प्राथमिक विचलन दो रूपों में उपस्थित होता है । पहला जहाँ भाषा किसी विशेष चयन का अनुसरण करती है परन्तु कवि इस निर्धारित प्रयोग से बाहर जाकर अलग शब्द चयन करता है ।

द्वितीयक विचलन : दूसरा प्राथमिक विचलन वह है जहाँ भाषा किसी चयन का तो अनुसरण करती है परन्तु कवि स्वयं चयन की मुक्तता को अस्वीकार करता हुआ किसी विशेष भाषाई रूप का प्रयोग बार-बार करता है । लीच ने इसे स्पष्ट करते हुए प्राथमिक विचलन को असामान्य अनियमितता (abnormal irrelarity) और असामान्य नियमितता के रूप में प्रकट किया है । द्वितीयक विचलन में सामान्यत: भाषा की अभिव्यक्ति के निर्धारित मानकों का अतिक्रमण नहीं होता बल्कि साहित्यिक रचना के मानकों का अथवा काव्यात्मक सिद्धांतों का अतिक्रमण होता है । इसके अन्तर्गत रचनाकार विशेष अथवा विधा विशेषज्ञ के मानकों का भी समावेश होता है । इस प्रकार के विचलन को पारंपरिक (conventional deviation) भी कहा जाता है ।

तृतीयक विचलन : तृतीयक विचलन के अन्तर्गत पाठ के आन्तरिक मानक से विचलन होता है । लिविन ने इसे ही आन्तरिक विचलन कहा है । इसके अन्तर्गत पाठ के आन्तरिक मानक से अलग तरह के अतिक्रमणों का अध्ययन किया जाता है ।

लोमैन ने विशद वाक्योक्ति (macro syntagm) को केन्द्र में रखकर विचलन के प्रकारों का निर्देश किया है । उनके द्वारा निर्दिष्ट विचलन तीन प्रकार के होते हैं-

वाक्यांश परक विचलन : यह विचलन वहाँ उपस्थित होता है जहाँ मुख्य उपवाक्य में सकर्मक क्रिया का अभाव होता है ।

अपूर्ण वाक्य परक विचलन : जब वाक्य के अन्त में संदर्भ के लिय आवश्यक प्रसंग का अभाव होता है तब अपूर्ण वाक्य परक विचलन होता है ।

पूर्ण वाक्य परक विचलन: इस प्रकार का विचलन अपगठित वाक्यों तथा अस्वीकार्य वाक्यों मे प्रकट होता है ।

विचलन के विविध प्रकारों को देखने से स्पष्ट होता है कि इनमें रचना के विश्लेषण के अलग अलग आयामों को लेकर विचलन की अवधारणा पर विचार किया गया है । ऐसे में विचलन के निश्चित प्रतिमानों का निर्धारण कठिन होता है । वस्तुत: किसी रचना में विचलन के विविध स्तर होते हैं जिनके अध्ययन से विचलन के रूप और प्रकृति को समझा जा सकता है । विचलन के ये स्तर कई प्रकार के होते हैं । भाषिक इकाईयों के आधार पर प्रकट होने वाले विचलन के निम्नलिखित रूप हैं-

1. **ध्वनिस्तरीय विचलन** : जब शब्द विशेष में मानक रूप से प्रयुक्त होने वाली ध्वनियाँ अपने सामान्य लोगों से भिन्न रूप में उपस्थित होती है तब वहाँ ध्वनिस्तरीय विचलन होता है । इस प्रकार का ध्वनि स्तरीय विचलन रचना द्वारा विशेष अभिप्राय से कभी लय, तुक की पूर्ति, छन्द मात्रा पूर्ति अथवा विशेष प्रभाव की निर्मिति के लिए किया जाता है । जैसे निराला ने 'कुकुरमुत्ता' कविता में कैविटलिस्ट के स्थान पर कैपीटलिस्ट शब्द का प्रयोग किया है ।

2. **शब्द स्तरीय विचलन :** किसी रचना की भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द जब अपने मानक रूप को छोडकर विरूपित और विकृत होते हैं तब वहाँ शब्द स्तरीय विचलन प्रकट होता है । निराला ने 'गर्भ पकौडी में ब्राह्मण के लिए 'बम्हन' शब्द का प्रयोग किया है जो कि शब्द स्तरीय विचलन का अच्छा उदाहरण है ।

3. **रूपस्तरीय विचलन :** जब रूप के स्तर पर भाषा में किसी प्रकार का नवीन प्रयोग हो अथवा किसी स्वीकृत मानक रूप की जगह उसका कोई ऐसा दूसरा रूप वर्णित हो जो उचित न हो तो वहाँ इस प्रकार का विचलन उपस्थित होता है । इस प्रकार का विचलन व्याकरणिक कोटियों के असामान्य प्रयोग से प्रकट होता है ।

4. **वाक्यस्तरीय विचलन :** वाक्य स्तरीय विचलन की लोमैन ने अपने विवेचन में विस्तार से चर्चा की है । इसके अन्तर्गत वाक्याशंगत विचलन, वाक्यगत विचलन, अपूर्ण वाक्यगत विचलन, पूर्ण वाक्यगत विचलन आदि का उल्लेख हुआ है । वस्तुत: इस प्रकार के विचलन में वाक्यों में आने वाली उन विविधताओं का उल्लेख किया जाता है जो व्याकरणिक अथवा स्वीकृत मानकों से अलग होती है । वाक्य रचना के क्रम में कभी मुख्य वाक्य में सहायक क्रिया का अभाव हो जाता है तो कभी वाक्य में अपूर्णता, क्रमभंगता आदि दिखाई देते हैं । इन विविधताओं को ध्यान में रखकर ही वाक्य रतरीय को प्रकट किया जाता है ।

5. **प्रोक्तिस्तरीय विचलन :** प्रोक्तिस्तरीय विचलन प्रसिद्ध शैली वैज्ञानिक ग्राइस द्वारा निर्दिष्ट है जिसमें उन्होंने परिमाण, गुण, और संबंध के आधार पर प्रोक्तिस्तरीय विचलन का विवेचन किया है ।

   जब संदर्भ के अनुरूप आवश्यक मात्रा से अधिक या कम कहा जाए तो परिणाम संबंधी प्रोक्ति विचलन दिखाई देता है । कभी-कभी कम कहने, न कहने आदि से भी यह विचलन प्रकट होता है । इसी तरह जब किसी रचना में प्रोक्तिस्तर पर मिथ्या कथन किया जाता है अथवा ऐसी उक्ति प्रस्तुत की जाती है जिसे प्रमाणित नहीं किया जा सके वहाँ प्रोक्ति का गुण-संबंधी विचलन दिखाई देता है । इस प्रकार विचलन रचनाकार विशेष अभिप्राय से प्रस्तुत करता है । इसी तरह जब किसी रचना मे प्रोक्ति की प्रासंगिता और उसके संदर्भ की उपेक्षा कर दी जाती है जिससे उसमें तात्कालिक असम्बद्धता प्रकट होने लगती है तब वहाँ प्रोक्ति के संबंध का विचलन प्रकट होता है । यह विचलन भी रचनाकार सौद्देश्य रूप में करता है ।

6. **अर्थस्तरीय विचलन :** अर्थस्तरीय विचलन में वाक्य बाह्य संरचनात्मक स्तर पर तो पूरी तरह व्याकरणसम्मत और सुगठित होते हैं पर अर्थ कें स्तर पर वे प्राथमिक रूप से सहज स्वीकार्य नहीं हो पाते । वस्तुत: किसी वाक्य का अर्थग्रहण संदर्भ के अनुरूप स्वीकार्यता अथवा अस्वीकार्यता पर आधारित होता है । इसलिये पाठक या श्रोता एक वाक्य के अर्थ को किसी विशेष संदर्भ में स्वीकार कर सकता है । परन्तु उस संदर्भ से अलग करके उसके अर्थ को अस्वीकार भी कर देता है । सामान्यत: कविता में तमाम ऐसे वाक्य देखे जा सकते हैं जो अपनी अभिव्यक्ति में सहज एवं सामान्य अर्थ को

प्रकट नहीं करते । जैसे 'मनुष्य की गर्दन पर उगी हुई "सघन अयाल" अथवा “शब्दों पर उगे हुए बाल" जैसे वाक्य व्याकरणिक रूप से सुगठित होते हुए भी संदर्भ में इतर अर्थ के स्तर पर स्वीकार्य नहीं हो सकते । परन्तु काव्य में इनका विशेष और प्रभावशाली अर्थ हो सकता है ।

7. **लेखिम स्तरीय विचलन** : जहाँ रचना में आवश्यक विरामांकन का प्रयोग न किया जाए अथवा विरामांकन के प्रयोग की अवहेलना जानबूझकर की जाए और उससे विशेष प्रभाव की रचना की जाए वहाँ लेखिम स्तर का विचलन देखा जा सकता है । वस्तुत: विरामांकन के अभाव में रचना में अनेकविधता और अनेकार्थकता की स्थिति उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है । इसके अतिरिक्त लेखिम स्तर के विचलन के अन्य भी कई रूप देखने को मिलते हैं । कभी-कभी रचनाकार एक भाषा की वर्णलिपि में दूसरे भाषा की वर्णलिपि या अंक का प्रयोग करके विशेष प्रभाव पैदा करना चाहता है अथवा भाषिक लेखिम पद्धति में चित्रकला की लेखिम पद्धति का प्रयोग भी करता है । उदाहरण के लिए-

जीवहुँEश सcज बल, हरहुँ प्रजन की Pr ।

अथवा

करि वि४ देख्यो बहुत, जब विधु दोष न १ ।

इसके अतिरिक्त संस्कृत की वित्रकाव्य परंपरा अथसा ईसा पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी के यूनानी ब्यूकोलिक काव्य (216) में भी लेखिम विचलन को देखा जा सकता है । जिसमें कविता की पंक्तिपरक लेखिम पद्धति को छोडकर विभिन्न रूपाकारों में लेखिम प्रयोग किये गये हैं ।

25.4.1.2 विपथन

किसी रचना को पढ़ते हुए पाठक के मन में रचना से जिस तरह की प्रत्याशा निर्मित होती है अगर वह किन्हीं कारणों विफल होती है तो शैलीशास्त्रीय भाषा में उसे विपथन कहते हैं । वस्तुत: पाठ, परंपरा, संस्कृति, सौन्दर्यबोध अथवा सामान्य विषयवस्तु के मानक के रूप में पाठक के मन में रचना से जो प्रत्याशा उत्पन्न होती है वह यदि रचनाकार द्वारा सायास भंग की जाती है तो यह विपथन कहलाता है । इस तरह विपथन एक तरह से भंग प्रत्याशा है । विपथन विचलन से इस प्रकार भिन्न है कि विचलन व्याकरण के मानक रूप से होने वाला अतिक्रमण है जबकि विपथन, साहित्यिक पाठ, साहित्यकार और साहित्यशास्त्र के मानक से होने वाला अतिक्रमण है ।

विपथन के दो रूप हो सकते हैं मुक्त विपथन और संश्लिष्ट विपथन मुक्त विपथन किसी रचना में स्वतंत्र रूप से उपस्थित होकर मानक से अलग रूप में प्रकट होता है । इसमें अग्रप्रस्तुति के किसी अन्य उपकरण का संश्लेष नहीं होता ।

यह मुक्त विपथन कई प्रकार का हो सकता है-

1. जब रचनाकार अपने किसी पाठ विशेष जैसे उपन्यास, कहानी, कविता आदि में स्वयं द्वारा निर्मित ढाँचे अथवा संरचना का भाषा के किसी भी स्तर पर अतिक्रमण करता है तो वहाँ पाठ के मानक से सम्बन्धित मुक्त विपथन उपस्थित होता है ।
2. जब कोई रचनाकार अपनी रचना में अपने सर्जनात्मक सिद्धांतों को छोड़कर अचानक नये सिद्धांतों को ग्रहण करता है तो वहाँ साहित्यकार के निजी मानक से संबंधित मुक्त विपथन दिखाई देता है ।
3. कभी-कभी रचनाकार जिस विधा में रचना कर रहा है उस विधा के सामान्य स्वीकृत मानक रूप से अलग हटकर यदि उसमें अपने अनुसार परिवर्तन उपस्थित करता है तो उसे साहित्यिक रूप विधा के विपथन के रूप में जाना जाता है ।
4. जब रचनाकार द्वारा समाज विशेष के सांस्कृतिक अथवा सौंदर्यबोधात्मक स्थापित मानकों को छोड़कर अन्य प्रकार से रचना की जाती है तो ऐसे विपथन को सांस्कृतिक सौंदर्यात्मक विपथन कहा जाता है ।
5. जब रचनाकार द्वारा साहित्य में प्रयुक्त होनेवाली पारंपरिक विषयवस्तु अथवा सामग्रियों को छोड़कर नयी विषयवस्तु अथवा सामग्रियों को ग्रहण किया जाता है तो ऐसे विपथन को विषयवस्तु अथवा शिल्प के मानक से उत्पन्न विपथन के रूप में देखा जाता है ।

संश्लिष्ट विपथन : यह विपथन का वह प्रकार है जिसमें अग्रप्रस्तुति के दूसरे लक्षणों जैसे विचलन, समानांतरता का भी संश्लेष होता है परन्तु इन सभी में विपथन की प्रवृति सर्वाधिक प्रबल होती है ।

विपथन के स्तर : रचना में विपथन को ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, प्रोक्ति, अर्थ एवं लिपि स्तर पर आरेखित किया जा सकता है । ध्वनि स्तर पर जब रचनाकार या कवि अपनी रचना में किसी एक तरह की ध्वनि संरचना जैसे घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण, नासिक्य आदि का व्यवहार करता हुआ अचानक किसी दूसरे प्रकार की ध्वनि संरचना को ग्रहण कर लेता है तो वहाँ ध्वनिस्तरीय विपथन होता है । इसी तरह से शब्दस्तरीय विपथन में भी किसी रचना में प्रयुक्त विशेषप्रकृति वाले शब्दों से इतर दूसरी प्रकृतिवाले शब्दों का प्रयोग अचानक होने लगे तो उसे शब्द स्तरीय विपथन कहते हैं । रूपस्तरीय, वाक्यस्तरीय, प्रोक्तिस्तरीय, अर्थस्तरीय और लिपिस्तरीय विपथन की प्रक्रिया भी यही है । इन सभी में रचनाकार अपनी रचना में स्वयं द्वारा स्थापित मानकों का अतिक्रमण करता हुआ अचानक किसी नये तरह के रूप, वाक्य, प्रोक्ति, अर्थ अथवा लेखन शैली की संरचना करता है । इन सभी स्तरों पर विपथन की प्रक्रिया व्याकरण से इतर कृति में आने वाले परिवर्तन को प्रकट करती है । यहाँ विशेष यह है कि रचनाकार स्वयं अपने द्वारा स्थापित मार्गों को छोड़कर किसी नये मार्ग का अनुसरण साभिप्राय करता है ।

25.4.1.3 समानांतरता (Parallelism)

अगर विचलन का सिद्धांत अनियमितता की संकल्पना को अपना आधार बनाता है तो समानान्तरता रचना में अतिरिक्त नियमितता की संकल्पना को । समानान्तरता का अर्थ होता है

किसी रचना में भाषिक लक्षणों या विधान की पुनरावृत्ति की नियमितता । पुनरावृति की यह नियमितता भाषा के हर स्तर पर देखी जा सकती है । अग्रगामिता के अध्ययन क्रम में शैली विश्लेषक समानान्तरता को अध्ययन के सार्थक उपकरण के तौर पर देखा जा जाता है जो रचना में प्रयुक्त विभिन्न भाषिक नियमितताओं का आरेखन करता है । समानान्तरता को मुख्य रूप से निम्नलिखित कोटियों में विभाजित किया जाता है-

1. संघटन आधारित समानान्तरता
2. प्रकार्य आधारित समानान्तरता
3. पाठ आधारित समानान्तरता

संघटन आधारित समानान्तरता : जब किसी रचना की भाषा की संरचना में सक्रिय विभिन्न संघटकों में व्याप्त समानान्तरता का अध्ययन किया जाता है तो उसे संघटना आधारित समानान्तरता कहते हैं । इसके अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, परसर्ग, क्रिया, निपात आदि के प्रयोगों में विशेष अनुक्रम समानान्तरता की सृष्टि की जाती है । रचना में व्याप्त छांदसिक योजना भी रचना में ध्वनीय समानान्तरता प्रकट करती है ।

प्रकार्य आधारित समानान्तरता : प्रकार्य आधारित समानान्तरता में रचना में व्याप्त आवृति की प्रकृति का अध्ययन किया जाता है । वस्तुत: कोई शब्द या पदबन्ध रचना में किस प्रकार बार-बार उपस्थित होकर विशेष प्रभाव की सृष्टि करता हैं इसका अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है । जैसे "फिर वही कोमल हवा कोमल सितारे, फिर वही कोमल नदी कोमल किनारे" में शब्द-स्तर और वाक्य स्तर दोनों में समतामूलक समानान्तरता प्राप्त होती है ।

कभी-कभी यह समानान्तरता शब्दों के विरोधमूलक प्रयोगों में भी आवृत होती है । सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-शोक, निन्दा-प्रशंसा जैसे प्रयोग विरोधमूलक समानान्तरता को प्रकट करते हैं ।

पाठ आधारित समानान्तरता : पाठ आधारित समानान्तरता किसी निश्चित पाठ की सीमा में भाषा के विभिन्न स्तरों पर उपस्थित पाठीय समानान्तरता को प्रकट करती है । उदाहरण के लिये 'राम की शक्तिपूजा' अथवा गोदान जैसी रचना में पाठ के सापेक्ष उसकी भाषा की पूरी रचना प्रकट होती है । वह समानान्तरता भाषा के विभिन्न भाषिक स्तरों जैसे शब्द, अर्थ, प्रोक्ति आदि के स्तरों पर रचना में उपस्थित होकर रचना का वैशिष्ट्य प्रकट करती है।

भाषिक इकाईयों के आधार पर समानान्तरता : समानान्तरता को विभिन्न भाषिक इकाईयों के आधार पर अधिक स्पष्टता से प्रकट किया जा सकता है-

1. **ध्वनि स्तरीय समानान्तरता :** ध्वनि स्तरीय समानान्तरता वहाँ उपस्थित होती है जहाँ किसी विशेष व्यंजन या ध्वनि की साभिप्राय आवृत्ति होती है । यह आवृत्ति घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण, विवृत-संवृत जैसी ध्वनियों के माध्यम से रचना में प्रकट हो सकती है । छंद शास्त्र की पूरी संकल्पना ध्वनिमूलक समानान्तरता पर आधारित होती है । उदाहरण के लिए निराला की निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता है-

कण-कण कर कंकण, प्रिय
किण-किण रव किंकिणी
रणन-रणन नूपुर, उर लाज

लौट रंकिणी

स्पष्ट है कि इन पंक्तियों में घोष ध्वनियों का आवर्त्तन ध्वनिगत समानान्तरता की सृष्टि कर रहा है ।

शब्द स्तरीय समानान्तरता : शब्द स्तरीय समानान्तरता वहाँ होती है जहाँ किसी कृति में किसी शब्द विशेष का आवर्तन बार-बार किया जाता है । उदाहरण के लिए भवानीप्रसाद मिश्र के 'सतपुडा के जंगल' में पागल शब्द की आवृति हुई है-

घास पागल, कास पागल
शाल और पलाश पागल
लता पागत, बात पागल
डाल पागल, पात पागल
मत्त मुर्गे और तीतर
इन वनों के खूत भीतर ।

शब्द स्तरीय समानान्तरता आवृति के अतिरिक्त तत्समता, तद्भवता आदि आधारों पर भी हो सकती है । कभी-कभी इस प्रकार की समानान्तरता शब्दों के विरोधमूलक प्रयोग में प्रकट **होती है ।**

वाक्य स्तरीय समानान्तरता : वाक्य स्तरीय समानान्तरता रचना में व्याप्त समान वाक्य की आवृत्ति को प्रकट करती है । वस्तुत: कभी-कभी एक ही वाक्य रचना में विभिन्न संदर्भो में वाक्य बार-बार प्रयुक्त होते हैं और विशेष भाषिक प्रभाव की सृष्टि करते हैं । अज्ञेय ने अपने प्रसिद्धि उपन्यास 'नदी के द्वीप' में 'अकेले हैं न, तभी लीक पकड़कर चलते हैं", वाक्य की आवृत्ति कई बार की है । इसी तरह निराला ने 'खून की होली जो खेली' वाक्य का प्रयोग अपनी एक कविता में बार-बार किया है ।

प्रोक्ति स्तरीय समानान्तरता : सामान्यत: प्रोक्ति स्तरीय समानान्तरता की आवृत्ति और प्रोक्ति के विरोधमूलक प्रयोगों में सन्निहित होती है । जहाँ किसी रचना में प्रोक्ति की आवृति हो वहाँ आवृतिपरक और जहाँ प्रोक्ति के प्रयोग में विरोध प्रकट हो वहाँ प्रप्रेत्तीमूलक समानान्तरता होती है । उदाहरण के लिए राह चलते जिस दिन बैठे-बैठे जानूंगा, मेरे पीछे कोई है और मुड़कर नहीं देखूँगा, और उस दिन मैं जान लूंगा कि मेरी खोज मेरे लिए खोज समाप्त हो गयी है ।' में आवृत्ति मूलक प्रोक्ति प्रकट होती है । इसी तरह जब विरोधी प्रवृत्ति की प्रोक्तियाँ एक साथ प्रकट हों तो वहाँ विरोधात्मक प्रोक्ति प्रकट होती है ।

अर्थ स्तरीय समानान्तरता : अर्थ स्तरीय समानान्तरता किसी कृति में पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग अथवा विरोधमूलक अर्थ की सृष्टि करने वाले शब्दों के प्रयोग की आवृत्ति में प्रकट होती हैं, जैसे पंत ने 'परिवर्तन' कविता में संसार के लिए विश्व, संसृति, जगत, जग, जगती जैसे पर्यायों का प्रयोग किया है । यह अर्थ स्तरीय समानान्तरता कही जा सकती है । इसी तरह सुख-दुख, अपना-पराया, सवाल-जबाब, धूप-छाया, चढ़ती-उतरती आदि प्रयोगों में अर्थ स्तरीय समानान्तरता देखी जा सकती है ।

25.4.1.4 विरलता

विरलता शब्द प्रयोग एक विधान है । रचना में विरल शब्द सामान्यत: एक बार ही प्रयुक्त होता है । और समस्त रचना के अर्थ को नियंत्रित करता है । इन्हें उन्मीलक (keyword) शब्द भी कहा जाता है । काव्य रचना में प्रयुक्त दूसरे प्रकार के शब्द प्रतिपाद्य शब्द (Theme word) होते हैं । ये प्रतिपाद्य होते हैं ।

उन्मीलक शब्द कृति की गहन संरचना से जुड़कर अर्थवत्ता का संचालन करता हैं प्रतिपाद्य शब्द उस अर्थवत्ता के आयामों को प्रशस्त करता है । कभी-कभी ऐसा होता है कि विचलन न हो विपथन भी न हो किन्तु विरलता होती है, प्रतिपाद्य शब्द भी होते हैं । अग्रप्रस्तुत पढ़ ही कभी-कभी उन्मीलक शब्द और कभी-कभी प्रतिपाद्य शब्द की भूमिका निभाते है । उन्मीलक और प्रतिपाद्य शब्द में केवल एक अन्तर है कि प्रतिपाद्य शब्द एकाधिक बार आवर्तित होता है जबकि उन्मीलक शब्द सामान्यत: एक ही बार आता है ।

25.4.2 शैली चिन्हक (Style marker)

शैली चिन्हक से आशय भाषा के उन तत्त्वों से है जिनका प्रयोग किसी कृति में संदर्भ विशेष के प्रासंगिक मानक से अलग होता है । अत: कोई भी भाषिक वैशिष्ट्य किसी कृति में शैली चिन्हक के रूप में तब पहचाना जाता है जब प्रसंग के मानक रूप का अतिक्रमण करता है अथवा मानक के अनुरूप वहाँ उपस्थित नहीं होता । प्रसिद्ध शैलीविद् एंक्विस्ट शैली चिन्हक को संदर्भ से युक्त भाषिक तत्त्व कहा है जो रचना में विशेष तौर पर उपस्थित होते हैं । वस्तुत: शैली चिन्हक के लिए संदर्भबद्धता आवश्यक होती हैं ये शैली चिन्हक अपनी स्वरूपगत व्याप्ति में चयन और संयोजन से भिन्न होते हैं ।

25.4.3 शैली चिन्हक के प्रकार

शैली चिन्हक दो प्रकार के होते हैं-

1. धनात्मक और 2.ऋणात्मक

25.4.3.1 धनात्मक शैली चिन्हक

किसी रचना में जब शैली चिन्हक अपनी संदर्भबद्धता के आधार पर रेखांकित किये जाते हैं तो उसे धनात्मक शैली चिन्हक कहते हैं । उदाहरण के लिये 'राम की शक्तिपूजा' का वाक्य "हे अमा निशा उगलता गगन घन अंधकार" में मनग लगग नध नय और र जैसी घोष ध्वनियों के प्रयोग हुए हैं । ये ध्वनियाँ यहाँ संदर्भबद्ध रूप में उपस्थित हैं इसे यहाँ ध्वनिस्तरीय धनात्मक शैली चिन्हक कहा जा सकता है ।

25.4.3.2 ऋणात्मक शैली चिन्हक

किसी कृति की भाषा में विभिन्न भाषिक तत्त्वों की विशेष अनुपस्थिति को ऋणात्मक शैली-चिन्हक के रूप में देखा जा सकता है । इस प्रकार के शैली चिन्हक की अवधारणा जटिल है और इसे लुप्त भाषिक तत्त्वों के आधार पर रेखांकित किया जा सकता है । निराला की एक

पंक्ति "प्रिय यामिनी जागी" के आधार पर इसे समझा जा सकता है । इस वाक्य का पूर्ण आयाम होगा "वह प्रिय यामिनी भर जाग रही है । परन्तु वाक्य में "वह" “भर” और “रही है” की अनुपस्थिति ऋणात्मक शैली चिन्हक को प्रकट करती है ।

25.5 शैली विश्लेषण की प्रक्रिया

शैली विश्लेषण की प्रक्रिया से आशय है किसी रचना के अध्ययन क्रम में शैली विश्लेषण के प्रतिमानों के प्रयोग के उपाय । वस्तुत: किसी रचना की शैली के अध्ययन को सार्थकता प्रदान करने के लिए प्रतिमानों का किस प्रकार उपयुक्त ढंग से प्रयोग किया जा सकता है । इसका अध्ययन इस प्रक्रिया के अन्तर्गत होता है । सामान्य तौर पर शैली विश्लेषण की तीन प्रमुख प्रक्रियाएँ होती है-

25.5.1 विश्लेषण

किसी कृति या पाठ में प्राप्त होने वाले शैलीगत वैशिष्ट्य का निरूपण विश्लेषण कहलाता है । यहाँ शैली विश्लेषक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी रचना में भाषिक स्तर पर प्राप्त होने वाली उन सभी विशेषताओं की पहचान के लिए उपयुक्त प्रतिमानों का प्रयोग करे और प्राप्त होने वाले निष्कर्षों को सही ढंग से विश्लेषित करे । अगर प्रतिमानों का प्रयोग किसी पाठ के अध्ययन क्रम में सही विश्लेषण के साथ नहीं होगा तो अध्ययन से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों में त्रुटि की संभावना रहती है । उदाहरण के लिए यदि किसी कविता विशेष में प्राप्त होने वलो वाक्य स्तरीय या अर्थस्तरीय विचलन की पहचान करनी है तो उस कविता में भाषा के किन-किन रूपों में यह विचलन किस तरह अभिक्त है उसे संतुलित विश्लेषण के आधार पर प्रकट किया जा सकता है । वस्तुत: शैली विश्लेषण में विश्लेषक के लिये यह आवश्यक है कि वह उचित प्रतिमानों का प्रयोग करे, भाषिक स्तरों पर वैशिष्ट्य को प्रकट करने के लिये उसका उचित विवेचन करे जिससे रचना की सही पहचान हो सके ।

25.5.2 संश्लेषण

संश्लेषण से आशय है विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों को आपस में जोड़कर विवेचित करना वस्तुत: शैली वैज्ञानिक अध्ययन का आशय यह नहीं है कि किसी रचना के अध्ययन-क्रम में उसे खण्ड-खण्ड या टुकड़े-टुकड़े में विभाजित कर दे । ऐसा करने से रचना का वास्तविक सौंदर्य समाप्त हो जायेगा ओर विश्लेषण की कोई सार्थकता नहीं होगी । -उदाहरण के लिए यदि किसी फूल के विश्लेषण के लिये उसकी पंखुड़ियाँ को अलग-अलग कर उसकी जाँच की जाए तो फूल का सौंदर्य या उसकी अर्थवत्ता ही समाप्त हो जायेगी । शैली वैज्ञानिक अध्ययन क्रम में विश्लेषक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह तथ्यों के अलग-अलग विवेचन क्रम में उस कृति के सौंदर्य को विकृत, नीरस या अव्यवस्थित न कर दे । अत: विश्लेषक के लिये यह आवश्यक होता है कि वह शैली वैज्ञानिक अध्ययन की प्रक्रिया के प्रथम चरण में प्रतिमानों के आधार पर जिन तथ्यों का अलग-अलग अध्ययन करता है द्वितीय चरण में उन तथ्यों को परस्पर

संगुफित कर पूर्ण इकाई के रूप में उन्हें प्रस्तुत करे । अध्ययन की इस प्रक्रिया को संश्लेषण करते हैं ।

25.5.3 निर्वचन

शैली विश्लेषण की अंतिम प्रक्रिया को निर्वचन कहते हैं निर्वचन विश्लेषणकर्ता की वैयक्तिक और मौलिक अन्तर्दृष्टि से संबंधित होता है । इसके अंतर्गत अर्थ से अर्थ को जोड़कर अर्थ की छाया में निहित अन्य अर्थों का साभिप्राय उद्घाटन किया जाता है । वस्तुत: शैली वैज्ञानिक अध्ययन में विश्लेषण और संश्लेषण के पश्चात प्राप्त होने वाले विशेष अभिप्रायों की अभिव्यक्ति की जाती है । निर्वचन के अन्तर्गत रचना की मूल्यसंगत मीमांसा भी शामिल हो सकती है ।

25.6 शैली विज्ञान क्षेत्र एवं अन्य अनुशासन

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं, भाषा विज्ञान की अनुप्रयोगात्मक शाखाओं में शैली विज्ञान एक है । रचनाकार भाषा का जो कलात्मक प्रयोग करता है उसे ही उसकी शैली कह सकते हैं । दूसरे शब्दों में शैली रचनाकार के व्यक्तित्व की परख है । शैली के कलात्मक विश्लेषण से रचनाकार के संप्रेषण को प्रशस्त किया जा सकता है । इस प्रकार शैली तत्व के वस्तुनिष्ठ आधार पर विवेचन और विवेचन से निष्पन्न सौंदर्य का उद्घाटन करने वाले विधान को शैली-विज्ञान कह सकते हैं । विज्ञान इसलिए कि इसकी एक सुनिश्चित प्रणाली है । वस्तुनिष्ठ इसलिए कि यह भाषा वस्तु पर आधारित है तभी वीतिविण प्रतीति (अवरोध रहित विश्वास) संभव है । इसी में इसकी मूल्यवत्ता है ।

साहित्य में कथ्य को संप्रेषित करने के कुछ साधन होते हैं- इन साधनों की व्यवस्था होती है जिनका तर्कसम्मत अध्ययन करने वाली भाषा-विज्ञान ही अनुप्रयोगात्मक शाखा शैली विज्ञान हैं लुकस जैसे विद्वान साहित्य के आधारभूत संरचना तत्व विश्लेषण को शैली विज्ञान का प्रतिपाद्य मानते हैं । हेलीडे कृति के कोशीय और व्याकरणिक साधनों में निहित वर्णनात्मक कोटियों के अध्ययन को शैली विज्ञान कहते हैं । लेकिन यह स्पष्ट है कि साहित्य के संदर्भ में ये धारणाएँ कुछ अधूरी हैं साहित्य केवल विश्लेषण के लिए नहीं पढ़ा जाता बल्कि उसमें निहित संप्रेषणीय संदेश के लिए पढ़ा जाता है । इसकी मूल्यवत्ता उसके सौदर्यात्मक पक्ष में है ।

साहित्य की भाषा की व्यवस्था सामान्य भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था से उद्भूत होती है । लेकिन इस व्यवस्था को अलग से पहचाना जा सकता है, यहाँ तक कि रचनाकार विशेष में यह विशेषता उसकी पहचान बनाकर उभरती है तब उसे रचनाकार का चिन्ह (marker) जाता है । रचना की भाषा उद्भूत विशेषताएं रचनाकार के भाषा प्रयोग की कुशलता को प्रकट करती हैं । भाषा का यह कलात्मक रूप ही रचनाकार की शैली है आपको बताया जा चुका है कि शैली विज्ञान अग्रप्रस्तुति, विचलन, विपथन, विरलता ओर समानान्तरता को दृष्टि में रखते हुए किसी रचना के सौंदर्यबोध का विश्लेषण करता है । शैली-विज्ञान के क्षेत्र के बारे में रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव कहते हैं । "शैली-विज्ञान साहित्य और भाषा के उस संधि स्थल पर खड़े होकर अपनी विश्लेषणात्मक पद्धति की नींव डालता है जिसमें कला की विशिष्टताओं के कार्यकारण संबंधों के

आधार को देखना समझना संभव हो । साहित्य और भाषा के अतरंग संबंधों की सही प्रकृति को सामने रखकर वह भाषा की अपनी शक्तियों का उद्घाटन करता है । अत: शैली विज्ञान का क्षेत्र वस्तुत: वह संधि माना गया है जिसे कलाशास्त्र और भाषा विज्ञान सम्मत रूप से काटते हैं ।

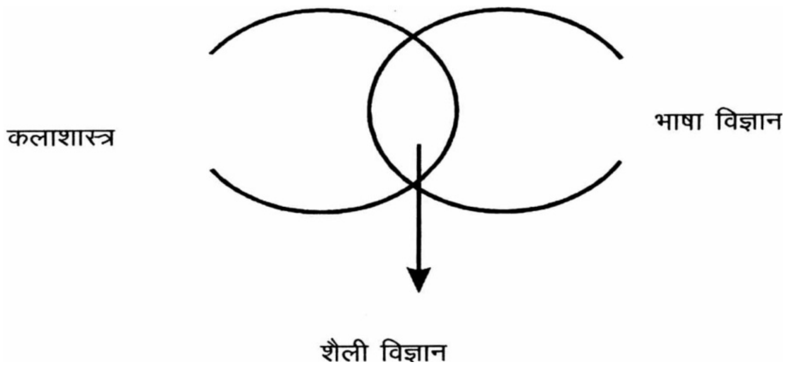

शैली विज्ञान आलोचना की वह दृष्टि है जो अपने भीतर कला की सौंदर्यपरक संवेदना और भाषा की सर्जनात्मक शक्ति दोनों अन्तर्मुक्त कर अपना लक्ष्य साधता हैं अगर आलोचना की सही भूमिका उसमें निहित है कि किसी साहित्यिक कृति की सौंदर्यपरक संवेदना को भाषा की सर्जनात्मक शक्ति द्वारा उद्घाटित और प्रकाशमान किया जाए तथा एक गुणी आलोचक के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह एक साथ साहित्यचेता और भाषोवेत्ता दोनों ही हो । यही कारण हे कि प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री और भाषा वैज्ञानिक शेमन याकोबसन मानते हैं कि "भाषा के काव्यफलक के प्रति बधिर भाषा वैज्ञानिक और भाषा वैज्ञानिक समस्याओं से उदासीन एवं भाषा वैज्ञानिक प्रमाणों से अपरिचित साहित्यशास्त्री दोनों ही समान रूप से अपने रूख से बहुत पीछे हैं।"

शैली विज्ञान का क्षेत्र इस दृष्टि से अत्यंत व्यापक है जहाँ पर साहित्यलोचन और भाषाशास्त्रीयता के मध्य समन्वय सूत्री की भूमिका का निर्वहन करते हुए शैली शास्त्रीय अध्ययन का पथ प्रशस्त करता है । अपने इस दायित्व को निभाने का कर्तव्य पूरा करते हुए शैली विज्ञान अनेक समाज विज्ञानों से घनिष्ठ रूप में जुड़ जाता है । नीचे कुछ समाज विज्ञानों से शैली विज्ञान का संबंध निदर्शित किया जा रहा है ।

25.6.1 भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान

शैली विज्ञान भाषा विज्ञान की प्रायोगिक पद्धति है । इसकी विधि भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, प्रोक्ति आदि से निष्पन्न है जिनके माध्यम से किसी रचना के आन्तरिक संदेश को प्रकट करने का प्रयास किया जाता हैं वस्तुत: भाषा विज्ञान जहाँ भाषा का वैज्ञानिक और निरपेक्ष अध्ययन करता है, वहीं शैली विज्ञान किसी रचना का अध्ययन उसके प्रयोगों के वैशिष्ट्य के सापेक्ष करता है जिसमें विशिष्ट संदेश निहित होते हैं इस प्रकार शैली वैज्ञानिक अध्ययन भाषा वैज्ञानिक तथ्यों से परिचालित होते हुए भी भाषा विज्ञान की सीमा का अतिक्रमण करते हुए रचना की उन सामाजिक, सांस्कृतिक और वैयक्तिक पक्षों की खोज करता है जिससे रचना में विशिष्ट अर्थ की सृष्टि होती है । अत: यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि शैली विज्ञान भाषा विज्ञान के अन्तर्गत रहते हुए भी इसकी सीमा

का अतिक्रमण करता है । शैली विज्ञान में भाषा वैज्ञानिक प्रविधि केवल अध्ययन का माध्यम है, लक्ष्य नहीं । इसके अंतर्गत भाषिक विश्लेषण के साथ-साथ रचना के प्रभाव पक्ष की व्याख्या भी होती है और कथ्य के वैशिष्ट्य को ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, प्रोक्ति आदि के विशेष प्रयोग के माध्यम से उद्घाटित करने का प्रयास किया जाता है ।

भाषा विज्ञान रचना के उन भाषिक संसाधनों का पता लगाता है जो वास्तविक संदेश का सृजन करने हेतु प्रयुक्त होते हैं और वाक्यों के भीतर निश्चित व्याकरणिक संरचना से परिचालित होते हैं । परन्तु ये वाक्य व्याकरणिक संरचनाओं के अतिरिक्त अपने अर्थ की सृष्टि करते हैं अर्थात् व्याकरणिक दृष्टि से चाहे कोई वाक्य सही हो अथवा गलत, वक्ता अलग-अलग तरीकों से अपनी अभिव्यक्ति कर सकता है और वह अपने विचारों को सही और सटीक ढंग से श्रोताओं अथवा पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकता है यह वक्ता की सर्जनात्मक और भावात्मक शक्ति पर निर्भर करता है कि वह किन संदर्भों में किस श्रोता वर्ग के सामने किस तरह के वाक्यों अथवा शब्दों का प्रयोग करता है । अत: यह स्पष्ट है कि शैली विज्ञान भाषा विज्ञान की उस सर्जनात्मक, भावात्मक शक्ति से जुड़ा है जो भाषा विज्ञान के अंतर्गत नहीं आता ।

भाषा विज्ञान मुख्य रूप से उस भाषा तक सीमित है जो निश्चित समुदाय के द्वारा अपनी व्यक्तिगत, सामजिक एवं राष्ट्रीय अनुभूतियों को एक दूसरे तक सम्प्रेषित करने का माध्यम बनती है, जो विभिन्न व्याकरणिक नियमों से बंधी होती है और जिसकी विशिष्ट शब्द सम्पदा होती है । जबकि शैली विज्ञान भाषा की संदर्भपरक प्रयुक्ति अर्थात वाक् के अध्ययन की प्रणाली है । अमेरिकी विद्वान नोएम चॉमस्की ने भाषायी क्षमता और भाषायी व्यवहार के अंतर को स्पष्ट करते हुए एक को भाषा विषयक ज्ञान से संबंधित बताया और दूसरे को उसकी अनौपचारिक प्रयुक्ति के रूप में । उनके अनुसार मानव एक ऐसा सृजनशील प्राणी है जो स्थिति और संदर्भ के अनुसार नयी उक्तियों का सृजन करता है । हो सकता है कि ये उक्तियाँ पहले कभी न बोली गयी हों या न सुनी गयी हों, परन्तु वे हमेशा समझी जाती रही हैं । इस विशेष समझ को संप्रेषित करने हेतु ही शैलियों का निर्माण होता है जिसके अध्ययन से रचनाकार का वैशिष्ट्य प्रकट होता है । शैलियों का यह वैशिष्ट्य सामाजिक परंपराओं के अनुरूप व्यक्त होता है । चूँकि शैली विज्ञान भाषा के सामाजिक एवं सर्जनात्मक प्रकार्य का अध्ययन करता है, अत: वह यह पता लगाता है कि संप्रेषण में कौन-कौन सी भाषिक इकाईयाँ शामिल हैं और संदेश जिस तरीके से व्यवस्थित हैं उसमें विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ किस प्रकार सम्मिलित है ।

शैली विज्ञान भाषा के बोधात्मक, अभिधात्मक और सौंदर्यपरक उपकरणों के प्रयोजनमूलक पक्षों का अध्ययन है । प्रसिद्ध शैली वैज्ञानिक हेलीडे ने सामाजिक दृष्टि से इन्हें उद्भावनापरक रचनाकार से संबंधित और साहित्यिक पक्ष कहा है । वस्तुत: भाषा के ये प्रकार्य एक दूसरे से अलग नहीं हैं बल्कि आपस में जुड़े हुए हैं । भाषा का बोधात्मक पक्ष संदर्भ की अभिव्यक्ति करता है । इसके अंतर्गत वक्ता या रचनाकार की वैयक्तिक शक्ति है । भाषा के उस अध्ययन से जो रचनाकार से संबंधित हो, रचना करने वाले के व्यक्तित्व, स्वभाव एवं मानसिक सोच का पता चलता है । इससे उसके और पाठक के बीच किस प्रकार का संबंध है यह भी ज्ञात होता है । शैली का तीसरा महत्वपूर्ण प्रकार्य भाषा की सर्जना से जुड़ा है जो भाषा

के आंतरिक चरित्र को प्रकट करता है । यह आंतरिक चरित्र परिस्थितियों और संदर्भों से भी प्रेरित होता है । भाषा का यह आंतरिक चरित्र सिर्फ शब्दों या वाक्यों के बीच निहित संबंधों तक ही सीमित नहीं है बल्कि अपनी अर्थाभिव्यक्ति में यह भाषायी चरित्र की सीमा का अतिक्रमण भी करता है । भाषा के इस गुण के कारण वक्ता या रचनाकार की अभिव्यक्ति में एक विशेष सौंदर्य या विशेष सर्जनात्मक प्रयोग दिखाई देता है । शैली विज्ञान भाषा के अभिव्यंजनापरक, प्रभावपरक और सौंदर्यपरक पक्षों का अन्वेषण करने में भाषा विज्ञान की सहायता करता है ।

भाषा विज्ञान का वक्ता या रचनाकार के साथ सीधा संबंध नहीं होता । वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द या वाक्य-संरचना न तो हमेशा भाषा विज्ञान द्वारा नियमित होते हैं और न ही परिचालित । बल्कि एक समाजिक प्राणी होने के नाते उसकी भाषा में सामाजिक संरचना, सामाजिक व्यवहार और मानव संस्कृति का योग रहता है जिसके अध्ययन में शैली विज्ञान सहायक सिद्ध होता है । विभिन्न सामाजिक परस्थितियों में एक ही वाक्य को भिन्न-भिन्न तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है । टेलीफोन पर बात करते हुए, कार्यालय में अपने अधीनस्थों से बात करते हुए, कॉलेज में प्रिंसिपल या अध्यापकों से बात करते हुए, मित्रों से बात करते हुए, भाषा बदलती रहती है । ऐसी स्थिति में वक्ता और श्रोता उनके सम्बन्ध परिस्थितियों, मानसिकता और भाषायी व्यवस्था को ध्यान में रखकर शैली वैज्ञानिक अध्ययन किये जा सकते हैं जिसमें भाषा विज्ञान केवल सहायक की भूमिका में ही दिखाई देता है। यहाँ यह जानना महत्त्वपूर्ण होगा कि भाषा विज्ञान किसी अभिव्यक्ति के बाह्य पक्ष का अध्ययन है जबकि शैली विज्ञान अभिव्यक्ति के आंतरिक पक्ष का । भाषा विज्ञान किसी अभिव्यक्ति के अर्थ का उद्घाटन है जबकि शैली विज्ञान उस अभिव्यक्ति में निहित भाव का । शैली विज्ञान में भाषा माध्यम है जिससे किसी अभिव्यक्ति में निहित सौंदर्य की सर्जनात्मकता को प्रकट किया जाता है जबकि भाषा विज्ञान का लक्ष्य भाषा के विविध उपकरणों का अध्ययन है ।

भाषाविज्ञान के लिये भाषा की महत्तम इकाई वाक्य होता है जबकि शैली विज्ञान वाक्य से आगे बढ़कर पूरी कृति को अपने अध्ययन में समेट लेता है । वह किसी रचना के प्रोक्ति विश्लेषण में साहित्यिक पाठ और इस पाठ के अन्य पहलुओं जैसे वाक्यों, उपवाक्यों, कोशिय रूपों और व्याख्यात्मक लक्षणों तथा वक्ता और श्रोता के संबंधों की भी व्याख्या करता है । इतना ही नहीं, वह रचना की प्रस्तुति जैसे पैराग्राफ, इकाई संरचना, वाक्य-उपवाक्य व्यवस्था आदि की भी अपेक्षित व्याख्या करता है ।

भाषाविज्ञान भाषा का वर्णात्मक ज्ञान कराता है जबकि शैलीविज्ञान भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग के वैशिष्ट्य को स्पष्ट करता है । वस्तुत: सर्जनात्मक प्रयोग से संदर्भ के अनुरूप अर्थ में भी परिवर्तन होते हैं और इसमें व्याकरणिक नियमों का अतिक्रमण भी होता है । शैलीविज्ञान शब्द, ध्वनि, रूप, वाक्य आदि व्याकरणिक कोटियों की सहायता लेकर अभिव्यक्ति में निहित विशेष संदेश को प्रकट करता है । भाषाविज्ञान का संबंध भाषा संगठन या संरचना का पता लगाने से होता है जबकि शैली विज्ञान उसमें निहित सौंदर्य के उद्घाटन को अपना लक्ष्य बनाता है । वह वाक् (Speech) के सामान्य शैलीगत अभिलक्षणों की स्थापना करता है । वास्तव में शैली विज्ञान भाषायी साधनों की प्रयोजनमूलक इकाईयों का सही और वृहद ज्ञान कराने में सहायक होता है । इस प्रकार शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान से घनिष्ठ रूप से जुड़ा होकर भी उससे

दृष्टि और व्यवहार में भिन्न होता है । भाषा विज्ञान की सहायता से वह रचना के आंतरिक पक्षों के उद्‌घाटन में प्रवृत होता है ।

25.6.2 समाज-विज्ञान और शैली-विज्ञान

कोई भी रचना समाज में ही सिद्ध हो सकती है और सामाजिक अभिव्यक्ति ही उसका लक्ष्य होता है । अत: किसी समाज को समझने के लिये उसके भाषायी चरित्र को समझना महत्त्वपूर्ण होता है । जर्मन शैली वैज्ञानिक वॉकर नागल तथा स्टैन्धैल जैसे विद्‌वानों ने यह माना है कि भाषा एक भाषिक समुदाय की मानसिक तथा आत्मिक अभिव्यक्ति होती हैं किसी समाज विशेष के द्‌वारा प्रयुक्त होने वाले शब्द, प्रतीक, उपमान या अन्य उपकण उस समुदाय की विशेष मानसिकता को प्रकट करते हैं । इसी प्रकार किसी रचनाकार की भाषा में प्रयुक्त चयन, विचलन, विपथन, समानान्तरता आदि के वैशिष्ट्‌य के आरेखन से जहाँ उस रचनाकार की मानसिकता का पता चलता है वहीं उस पूरे युग और काल के चरित्र का भी संकेत मिलता है । हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य में प्रयुक्त भाषिक उपकरणों के अध्ययन से उस पूरे परिवेश और मानसिकता का आकलन किया जा सकता है जिसमें वे रचनाएँ सृजित हुई । इसी प्रकार कबीर आदि की भाषा उस पूरे सामाजिक संदर्भ, उसकी वर्ण व्यवस्था, सामन्ती मनोवृत्ति आदि की सूचना दे सकती है जिससे वह उत्पन्न हुई है । समाजविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, शिक्षा, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक परिस्थितियों, रीति-रिवाज आदि के आरेखन में उस क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली भाषा के अध्ययन से बहुत सहायता प्राप्त की जा सकती है । वस्तुत: किसी व्यक्ति या रचनाकार की भाषा उसकी सामाजिक परिस्थितियों की उपज होती है और उन परिस्थितियों की पूरी छाप उसमें विद्‌यमान रहती है जिसका आरेखन उस के शैलीवैज्ञानिक अध्ययन से ही हो सकता है । उदाहरण के लिये जिस क्षेत्र में जो सामग्री पायी जाती है अथवा जैसा खानपान, वेशभूषा, रहन-सहन आदि होता है, वहाँ की भाषा में वे उपकरण ही प्रयुक्त होते हैं । उदाहरण के लिये अरब देशों में सौंदर्य के उपमान के रूप में बादाम का फूल ही आयेगा न कि कमल का फूल ।

मानवविज्ञान के अध्ययन में भी शैलीविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । मानव सभ्यता के उत्थान के विविध चरणों, उसके सांस्कृतिक वैभव आदि की जानकारी में उसकी भाषा का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । अगर उनके द्‌वारा सभ्यता के किसी चरण में प्रयुक्त भाषा का इस दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो उनके मानवशास्त्रीय पहलुओं के बारे में नये तथ्य प्राप्त हो सकते हैं ।

25.6.3 कोश-विज्ञान और शैली-विज्ञान

कोशविज्ञान के अन्तर्गत कोश के निर्माण की प्रविधि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है जिसके माध्यम से किसी शब्द के मूल अर्थ के साथ उसके अर्थ की विविध भंगिमाओं की प्रविष्टि कोश को अधिक संगत और उपादेय बनाती है कोश वस्तुतः भाषा एक निर्धारक होता है और उसमे अभिब्यक्त अर्थ मानक अर्थ के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। वस्तुत: भाषा एक सतत प्रवाहमान धारा है जिसमें प्रयुक्त शब्द, संदर्भ परिस्थिति और स्थान के अनुसार अपनी

भिन्न-भिन्न अर्थ-छवियाँ प्रकट करते हैं । ऐसे में उनका मानक रूप निर्धारित करना एक मुश्किल काम होता है । इसीलिये कोश निर्माण में उन सिद्धांतों का व्यवस्थित एवं सुसंगत पालन आवश्यक माना जाता है जिससे प्रविष्टियों का उचित चयन एवं प्रस्तुतीकरण हो सके । इसके लिये जहाँ एक ओर भाषावैज्ञानिक पद्धतियों की सहायता ली जाती है वहीं दूसरी ओर अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के रूप में शैलीविज्ञान का उपयोग सहायक होता है ।

शैलीविज्ञान अध्ययन के माध्यम से किसी शब्द के अर्थ का निश्चय भाषा संरचना के सापेक्ष उसके प्रयोग से किया जाता है । इसके अंतर्गत उन संदर्भों को प्रकट किया जाता है । जिनमें उनका अर्थ निश्चित होता है अगर हम अर्थ के साथ उसके प्रयोग का संदर्भ भी दें तभी उसके अर्थ का वैशिष्ट्य स्पष्ट होगा । उदाहरण के लिये चलता शब्द को ले सकते हैं । इस शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थों के लिये किया जा सकता है । जैसे 'गाड़ी चलती है', वह 'चलती भाषा में लिखता है', 'आजकल सब कुछ चलता है', इत्यादि । स्पष्ट हे कि बिना संदर्भगत संकेत के चलता / चलती शब्द के प्रयोग वैशिष्ट्य को नहीं समझा जा सकता है । इसी तरह एक अर्थ के लिये प्रयुक्त होने वाली विभिन्न शब्दों के प्रयोग में शैलिवैज्ञानिक वैशिष्ट्य ही प्रमुख होता है । माँ, अम्मा, माता, माई आदि शब्दों का प्रयोग अपनी अभिव्यक्ति में शैली वैशिष्ट्य का नमूना होता है और प्रत्येक शब्द अपने परिवेश विशेष को प्रकट करता है । अत: बिना शैलीवैज्ञानिक निर्देश के इन सभी शब्दों का एक ही अर्थ निर्धारण अनुचित हो सकता है । इसी तरह नन्हा, छोटा, लघु आदि शब्दों या फूल, कुसुम, पुष्प, सुमन आदि शब्दों के प्रयोग वैशिष्ट्य को देखा जा सकता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि कोशविज्ञान में शब्दों के विवेचन विश्लेषण क्रम में शैलिवैज्ञानिक दृष्टि से उनका मूल्यांकन एवं अर्थ निर्धारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । चाहे द्विभाषीय कोश हो या समभाषी कोश, दोनों ही में शैलीविज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

25.6.4 अनुवाद और शैली विज्ञान

अनुवाद और शैलीविज्ञान का अत्यन्त घनिष्ठ और महत्त्वपूर्ण संबंध है । क्योंकि पूरी अनुवाद-प्रक्रिया में मूल भाषा के चरित्र की लक्ष्य-भाषा में उचित अभिव्यक्ति वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करके ही प्राप्त की जा सकती है ।

प्रख्यात भाषाविद् नाइडा ने अनुवाद को परिभाषित करते हुए कहा है कि लक्ष्य भाषा में मूल भाषा के संदेश के निकटतम सहज सममूल्यों को प्रस्तुत करना अनुवाद है । यह सममूल्यता पहले अर्थ के स्तर पर और फिर शैली के स्तर पर होती है ।

वास्तव में किसी रचना के अन्य भाषा में अनुवाद के समय रचना के पाठ में निहित उन भाषिक इकाइयों को स्पष्ट करना महत्वपूर्ण होता है जिनका चयन पाठ के उद्देश्य तथा प्रसंग के अनुसार किया जाता है । इसी तरह अनुवाद के लिये लक्ष्य भाषा में मूल भाषा की शैली के समान शैली के प्रयोग की समस्या सामने आती है । जैसे यदि मूल भाषा का पाठ सामाजिक व्यवहार अथवा वैयक्तिक शैली का है तो लक्ष्य भाषा में भी उसके सममूल्यों की शैली का प्रयोग आवश्यक होता है ।

शास्त्रीय या साहित्यिक शैलियों के अनुवाद में भी इसका ध्यान रखना आवश्यक होता है । किसी रचना का लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय मूल भाषा के प्रसंग के अतिरिक्त उसके उद्देश्य अथवा विधा का भी ध्यान रखना आवश्यक है । जैसे किसी पाठ की रचना का उद्देश्य सौंदर्यबोध से संबंधित, व्यावहारिक या वैज्ञानिक कुछ भी हों सकता है । इसके अनुवाद के लिये लक्ष्य भाषा में उसी तरह की दृष्टि या शब्दावली के प्रयोग को उचित माना जाएगा । जैसे रेडियोवार्ता, शोध प्रबन्ध आदि के अनुरूप ही लक्ष्य भाषा में उसकी अभिव्यक्ति उचित होगी । इसके लिये उसी प्रकार की प्रविधि उपयुक्त होगी जैसे मूल भाषा में है ।

अनुवाद के क्षेत्र में शैलीविज्ञान की भूमिका तब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब साहित्य की किसी विधा का अन्य भाषा में अनुवाद किया जता है । वास्तव में साहित्यिक अनुवाद मूलत: भाषा की समस्या न होकर पाठ में विद्यमान शैली के अनुवाद की समस्या है । साहित्य में प्रयुक्त भाषा अपने विभिन्न सामाजिक संदर्भों के साथ प्रयुक्त होती है और अन्य भाषा में उनका अनुवाद सर्जनात्मक भाषान्तरण कहा जाता है । इसके अंतर्गत मूलभाषा में रचित किसी कविता या उपन्यास, कहानी आदि गद्य-रचना का भाषांतरण लक्ष्य-भाषा में करते हैं । इसी तरह साहित्यिक अनुवाद में साहित्य की विधाओं आदि का भी ध्यान रखना आवश्यक माना जाता है । मूल भाषा में प्रयुक्त अलंकारों आदि से उत्पन्न प्रभावों को भी लक्ष्य भाषा में प्रकट करने की कोशिश शैलीवैज्ञानिक प्रविधि की सहायता से ही संभव हो पाती है ।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि अनुवाद के क्षेत्र में शैलीविज्ञान की एक निश्चित और प्रभावशाली भूमिका है जिसके अभाव में सटीक और स्पष्ट अनुवाद की प्रक्रिया लगभग असंभव प्रतीत होती है ।

25.7 विचार संदर्भ/शब्दावली

1. विचलन-	शैलीविज्ञान में भाषा के मानक प्रयोग से किया जाने वाला अतिक्रमण या उल्लघंन ।
2. विपथन-	शैलीविज्ञान में किसी रचना को पढ़ते हुए पाठक के मन में रचना से जिस तरह की प्रत्याशा निर्मित होती है उसकी किन्ही कारणों से विफल होने पर विपथन की स्थिति होती है ।
3. समानान्तरता-	किसी रचना में भाषिक लक्षणों या विधान की पुनरावृत्ति की नियमितता जो भाषा के हर स्तर पर देखी जा सकती है ।
4. अग्रप्रस्तुति-	शैलीवैज्ञानिक निश्लेषण में अग्रप्रस्तुति का आशय भाषा में उपस्थित होने वाले उन अप्रत्याशित अथवा विशेष प्रयोगों से है जो सामान्य से अलग प्रतीत होने वाले पाठक का ध्यान विशेष रूप से अपनी और आकर्षित करने लगते हैं ।
5. कंकण-	कंगन, हाथ में पहना जाने वाला एक आभूषण ।
6. किंकिणि-	करधनी, कमर में पहना जाने वाले एक आभूषण ।
7. प्रायोगिक-	प्रयोग से संबंधित, व्यावहारिक ।
8. विश्लेषण-	किसी कृति या पाठ में प्राप्त होने वाले शैलीगत वैशिष्ट्य का निरूपण ।

9. संश्लेषण-	विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों को आपस में जोड़ कर विवेचित करना ।
10. निर्वचन -	अर्थ से अर्थ को जोड़कर, अर्थ की छाया में निहित अन्य अर्थों का सभिप्राय उद्‌घाटन ।
11. शैली चिन्हक-	भाषा के वे तत्त्व जिनका प्रयोग किसी कृति में संदर्भ विशेष के प्रासंगिक मानक से अलग होता है ।
12. संगुफित-	विशेष रूप में गुँथे हुए ।
13. धनात्मक शैलीचिन्ह -	किसी रचना में जब शैली-चिन्हक अपनी संदर्भबद्धता के आधार पर रेखांकित किये जाते हैं तब धनात्मक शैली चिन्ह कहलाते हैं ।
14. ऋणात्मक शैलीचिन्ह-	किसी कृति की भाषा में विभिन्न भाषिक तत्त्वों की विशेष अनुपस्थिति 'ऋणात्मक शैली चिन्ह' कहलाती है ।

25.8 सारांश :

एम.ए. उत्तरार्द्ध के तृतीय प्रश्न पत्र (भाषा विज्ञान) की अंतिम इकाई में आपने भाषा विज्ञान की अनुप्रयोगात्मक शाखाओं में प्रमुख शैली विज्ञान का अध्ययन किया । इस अध्ययन में आपके सामने स्पष्ट हो गया होगा कि रचनाकार भाषा का जो कलात्मक प्रयोग करता है उसके ही उसकी शैली कह सकते हैं । आप शैली विज्ञान की अवधारणा, शैली वैज्ञानिक विश्लेषण प्रतिमान एवं प्रक्रिया के साथ शैली विज्ञान के क्षेत्र एवं ज्ञान के अन्य अनुशासनों से उसके संबंध में अवगत हुए। सारांशत: इस इकाई को पढ़ने के बाद आपने निम्नांकित बिन्दुओं को स्पष्टत: समझा-

1. शैली विश्लेषण की तीन प्रमुख प्रक्रियाएँ होती हैं- विश्लेषण, संश्लेषण और निर्वचन और शैली विश्लेषण की सामान्यत: दो विधाएं शैली मापक्रमी और शैली वैज्ञानिक प्रचलित है ।
2. शैली विश्लेषण के तीन प्रकार होते हैं - तुलनात्मक वर्णनात्मक ओर परिवेशगत शैली विश्लेषण ।
3. शैली विश्लेषण के लिये सामान्यत: दो प्रतिमान निर्धारित किये जाते हैं- अग्रप्रस्तुति प्रतिमान और शैली चिन्हक प्रतिमान ।
4. अग्रप्रस्तुति का आशय भाषा में उपस्थित होने वाले उन अप्रत्याशित अथवा विशेष प्रयोगों से है जो सामान्य से अलग प्रतीत होते हुए पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं ।
5. कृति की अग्रगामिता के विश्लेषण के लिए चार पक्षों का निर्धारण किया जाता है- विचलन, विपथन, समानान्तरता और विरलता ।
6. भाषा के मानक प्रयोग से किया जाने वाला अतिक्रमण, उल्लघंन या व्यतिक्रम विचलन कहलाता है ।

7. किसी रचना का पाठ पढ़ते हुए पाठक के मन में रचना से जिस तरह की प्रत्याशा निर्मित होती है अगर वह किन्हीं कारणों से विफल होती है तो शैली शास्त्रीय भाषा में उसे विपथन कहते हैं ।

8. किसी रचना में भाषिक लक्षणों या विधान की पुनरावृत्ति की नियमितता को समानान्तरता कहते हैं ।

9. आज शैलीविज्ञान का अध्ययन केवल साहित्यिक क्षेत्र में ही नहीं होता वरन अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में इस विधि का प्रयोग लाभदायक सिद्ध हुआ है ।

10. भाषाविज्ञान, समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, कोशविज्ञान, अनुवादविज्ञान, मानवविज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में शैलीविज्ञान अध्ययन की महत्ता को स्वीकार किया गया है ।

11. शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की प्रायोगिक पद्धति है जिसकी प्रविधि भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं से निष्पन्न है ।

12. भाषाविज्ञान भाषा का वर्णनात्मक ज्ञान कराता है जबकि शैलीविज्ञान भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग के वैशिष्ट्य को स्पष्ट करता है ।

13. कोई भी रचना समाज में ही सिद्ध होती हैं किसी रचनाकार की भाषा उसकी सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न होती है जिसका आरेखन उसके शैलीवैज्ञानिक अध्ययन से होता है ।

14. कोशविज्ञान के अन्तर्गत कोश निर्माण की प्रविधि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है । इसके लिये भाषावैज्ञानिक पद्धतियों के साथ अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के रूप में शैलीविज्ञान का प्रयोग सहायक होता है ।

15. अनुवाद और शैलीविज्ञान का भी महत्वपूर्ण संबंध है क्योंकि अनुवाद-प्रक्रिया में मूल भाषा के चरित्र की लक्ष्य भाषा में उचित अभिव्यक्ति शैलीवैज्ञानिक पद्धति द्वारा ही की जाती है ।

25.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

क. दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. शैली विश्लेषण के स्तरों की विवेचना कीजिए ।
2. शैली विश्लेषण के प्रतिमानों का परिचय कीजिए
3. विचलन के प्रकारों पर प्रकाश डालिए ।
4. समानान्तरता किसे कहते हैं इसकी कोटियों का विश्लेषण कीजिए ।
5. भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान के संबंधों पर विचार कीजिए ।

ख. लघूत्तरी प्रश्न

1. संश्लेषण का आशय स्पष्ट कीजिए ।
2. शैली विज्ञान में विपथन से क्या तात्पर्य है?
3. भाषिक इकाईयों के आधार पर समानतरता को स्पष्ट कीजिए ।
4. शैली विज्ञान का क्षेत्र बताइए ।
5. समाज विज्ञान और शैलीविज्ञान का संबंध बताइए ।

ग. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए**

1. प्रतिमान की तीसरी आवश्यकता उसकी................................. होती है ।
2. प्रतिमान को.. के रेखांकन में समर्थ होना चाहिए ।
3. किसी कृति की भाषा में विभिन्न भाषिक तत्त्वों की विशेष.. ऋणात्मक शैली चिन्हक है ।
4. शैली विश्लेषण की अन्तिम प्रक्रिया को..............................कहते हैं ।
5. शैली विश्लेषण भाषा विज्ञान की............................. पद्धति है ।

घ. **सही गलत चिन्ह लगाइए**

1. भाषा के मानक प्रयोग से किया जाने वाला अतिक्रमण विपथन कहलाता है ।
   सही/गलत
2. किसी भी कृति का भाषाई वैशिष्ट्य दो रूपों में अग्रप्रस्तुत हो सकता है ।
   सही/गलत
3. संश्लेषण से आशय है विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों का विवेचन ।
   सही/गलत
4. शैली-विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । सही/गलत
5. विचलन का सिद्धांत अनियमितता की संकल्पना को अपना आधार बनाता है ।
   सही / गलत

25.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव; अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान, सिद्धांत एवं प्रयोग राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. शशिभूषा शीतांशु पाण्डेय; शैली और शैली विज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. गवेषणा पत्रिका अंक 73/1999, केन्द्रीय हिन्दी
   गवेषणा पत्रिका अंक, 88/2007, संस्थान
   गवेषणा पत्रिका अंक, 87, 2007 आगरा

ISBN - 13/978-81-8496-105-8